लोक प्रशासन

(सिद्धान्त तथा व्यवहार)

PUBLIC ADMINISTRATION

(Theory and Practice)

लेखक

चन्द्र प्रकाश भाम्भरी,

एम० ए०, पी एच० डी०

रीडर, राजनीतिशास्त्र विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।

तृतीय संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण १९६४



जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी,

पुस्तक प्रकाशक ...... मेरठ

AUTHOR

Other Books by the Same Author

1. Parliamentary Control over Finance in India (A Study in Financial Administration)
2. Parliamentary Control over State Enterprise in India (A Study in Public Administration)
3. Substance of Hindu Polity

Thoroughly Revised and Enlarged
Third Edition July, 1964
Price Rs. 12 50 Paise only

Published by
K. N GUPTA
For
Jai Prakash Nath & Co.,
MEERUT

Printed by
Gupta Printing Press
MEERUT

तृतीय हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'लोक-प्रशासन' (Public Administration) नामक मेरी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण का सभी क्षेत्रों में काफी स्वागत किया गया तथा इस सम्बन्ध में हैदराबाद, पूना व बम्बई आदि से छात्रों एवं अन्य पाठकों के प्रशंसा-पत्र भी आये। मैं उन सभी छात्रों, अध्यापकों, विभिन्न समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी अंग्रेजी पुस्तक का स्वागत किया है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में अब हिन्दी भाषा ही अधिकाधिक रूप में शिक्षा का माध्यम होती जा रही है, अतः छात्रों एवं अन्य पाठकों के सम्मुख उक्त पुस्तक का तीसरा हिन्दी संस्करण उपस्थित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इस पुस्तक में सन् १९६४ तक के अद्यावधिक तथ्यों (up-to-date-facts) का समावेश किया गया है।

अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर करते समय, अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद करने में हिन्दी के उपयुक्त एवं प्रामाणिक शब्दों की समस्या प्रायः सामने आती है। इस पुस्तक में अधिकांशतः हिन्दी के उन विशिष्ट एवं पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है जोकि भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली (Technical Terminology) की विशेषज्ञ समिति द्वारा स्वीकार किये गये हैं। हिन्दी अनुवाद विद्यार्थियों को ग्राह्य हो सके, इसलिये शीर्षकों एवं हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों के आगे कोष्ठकों में अंग्रेजी शब्द भी दे दिये गये हैं। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक की भाषा को, स्नातकोत्तर कक्षाओं के उच्चस्तर का ध्यान रखते हुए, तथा सम्भव सरल, सुबोध एवं रुचिकर बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। मुझे पूर्ण आशा है कि 'लोक प्रशासन' का यह हिन्दी संस्करण भी अंग्रेजी संस्करण की भाँति ही उपयोगी, मूल्यवान तथा लोकप्रिय सिद्ध होगा।

इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के लिए मैं श्री बसन्त लाल जैन, एम० ए० मरघना तथा विपिन चन्द्र, एम० ए० लक्चरार, मेरठ कॉलिज, मेरठ का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने कि इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के कठिन कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और इस कार्य को सतत परिश्रम तथा पूर्ण उत्साह व लगन के साथ किया। इस हिन्दी संस्करण के शीघ्र प्रकाशन का पूर्ण श्रेय परम सहयोगी मित्र श्री कान्तीनाथ गुप्ता को है जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मुझे आशा है कि हिन्दी में प्रशासन के साहित्य-क्षेत्र में इस पुस्तक को प्रमुख स्थान प्राप्त होगा। पुस्तक के सम्बन्ध में आने वाले सुझावों का मैं हार्दिक स्वागत करूँगा।

जयपुर
! जुलाई, १९६४

चन्द्र प्रकाश भाम्भरी

अंग्रेजी के प्रथम संस्करण की भूमिका

'लोक प्रशासन' के सिद्धान्त तथा व्यवहार पर लिखी गई यह पुस्तक पाठकों के सन्मुख रखते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह पुस्तक मुख्य रूप से भारतीय विश्व-विद्यालयों के छात्रों के लिए लिखी गई है। इस पुस्तक में, यद्यपि ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासकीय समस्याओं का विशद विवेचन किया गया है, तथापि, भारतीय प्रशासन की समस्याओं पर इसमें विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। भारतीय प्रशासन पद्धति के अनेक उदाहरण देकर पुस्तक में विषय को छात्रों के लिए सरल, सुबोध एवं सुग्राह्य बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

यह पुस्तक चार भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में प्रशासन के ढाँचे तथा संगठन की सैद्धान्तिक समस्याओं पर विचार किया गया है; दूसरे में लोक सेवी वर्ग प्रशासन की समस्याओं का तीसरे में वित्तीय प्रशासन की समस्याओं का और चौथे भाग में नागरिक तथा प्रशासन के बीच के सम्बन्धों का विवेचन किया गया है।

पुस्तक के अन्त में चुने हुए ग्रंथों की एक सूची भी दी गई है जिससे कि छात्रों को प्रस्तुत पुस्तक में विवेचन की गई विभिन्न समस्याओं के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिकृत ग्रंथों एवं कृतियों का अध्ययन करने को प्रोत्साहन मिले। अन्त में, मैं मेरठ कालिज के पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं कर्मचारीवर्ग को तथा नई दिल्ली स्थित लोक-प्रशासन की भारतीय संस्था के अधिकारी वर्ग को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनके द्वारा कि मुझे अनेक ऐसी पत्रिकाओं तथा सरकारी रिपोर्टों आदि से जानकारी प्राप्त करने की सुविधाएं प्रदान गईं, जोकि इस पुस्तक के लिखने के लिये अत्यन्त आवश्यक थी।

इस पुस्तक की उन्नति के सम्बन्ध में आने वाले सुझावों के लिए मैं पाठकों का अत्यन्त आभारी रहूँगा।

लक्ष्मी भवन,
छीपी तालाब, मेरठ

चन्द्र प्रकाश भांभरी

विषय-सूची

भाग १

लोक प्रशासन

पृष्ठ

अध्याय १ : लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र — १

प्रारम्भिक भूमिका, प्रशासन लोक प्रशासन की परिभाषा, प्रशासन के अर्थ के विषय मे लेखको के विचार, लोक प्रशासन का क्षेत्र, लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध मे 'POSDCORB' विचार, 'POSDCORB' विचार की आलोचना, लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन, लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे भेद, क्या लोक प्रशासन एक विज्ञान है ? लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण, राजनीति तथा प्रशासन का विभाजन, और निष्कर्ष।

अध्याय २ : मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका महाप्रबन्धक के रूप मे : — २७

भूमिका, मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्तव्य, मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका का कार्यालय, सयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य निष्पादक का कार्यालय, इगलैड मे मन्त्रि-परिषद् सचिवालय, भारत मे मन्त्रि परिषद् सचिवालय, सगठन तथा प्रणाली सभाग, सैनिक प्रशाखा, आर्थिक प्रशाखा।

अध्याय ३ . सगठन की कुछ सामान्य समस्यायें : — ४४

भूमिका, सगठन की समस्या के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण—उरविक का दृष्टिकोण, इस दृष्टिकोण की आलोचना, सगठन के आन्तरिक सचालन की कुछ मुख्य समस्यायें, प्राधिकार, प्राधिकार मे पूर्ण सन्तुलन होना चाहिए, नेतृत्व, पद-सोपान अथवा क्रमिक प्रक्रिया का सिद्धान्त, समन्वय या समायोजन, समायोजन स्थापना की विधियाँ, हस्तान्तरण, निर्णय लेना, सचार, देख-रेख व नियन्त्रण, सगठन के आधार, निष्कर्ष, आदेश की एकता, नियन्त्रण का क्षेत्र, एकीकृत व्यवस्था बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था, पुनर्गठन, सगठन के रूप।

अध्याय ४ : सूत्र तथा स्टाफ : ८२

सूत्र तथा स्टाफ का अर्थ, सूत्र तथा स्टाफ के बीच भेद के विषय मे कुछ सावधानी, सामान्य स्टाफ, सहायक स्टाफ, विशिष्ट अथवा तकनीकी स्टाफ, निष्कर्ष : स्टाफ अभिकरणों के विषय मे कुछ भ्रम।

अध्याय ५ : विभाग : ६५

विभागीय सगठन के वैकल्पिक आधार (१) कार्य अथवा उद्देश्य—विभागीय सगठन के आधार के रूप म, (२) प्रक्रिया—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे, (३) सेवा किये जाने वाले व्यक्ति—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे, (४) क्षेत्र अथवा प्रदेश—विभागीय सगठन के रूप मे, भारत सरकार मे विभाग का सगठन, भारत सरकार के मन्त्रालय तथा विभाग, विदेश मन्त्रालय, गृह अथवा स्वराष्ट्र मन्त्रालय, प्रतिरक्षा मन्त्रालय, वित्त-मन्त्रालय, सामुदायिक विकास, पचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय, मन्त्रालय का सगठन।

अध्याय ६ : ब्यूरो तथा मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का सगठन : ११८

एक बनाम अनेक अध्यक्ष, ब्यूरो प्रणाली के सगठन के लाभ, मण्डल अथवा आयोग या बहुल प्रणाली की अध्यक्षता के लाभ, मण्डलीय पद्धति की हानियाँ, मण्डलो की सदस्यता, मण्डलो अथवा आयोगों की किस्मे।

अध्याय ७ स्वतन्त्र नियामकीय आयोग : १२६

भूमिका, राष्ट्रपति, कांग्रेस अथवा न्यायपालिका से आयोगो का सम्बन्ध, कांग्रेस और आयोग, राष्ट्रपति और आयोग न्यायपालिका और आयोग, नियामकीय कार्य की प्रकृति तथा सचालन, स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की स्थापना के कारण, स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की आलोचना, निष्कर्ष।

अध्याय ८ : सरकारी उद्यमों का प्रशासन : १३५

सरकारी उद्यमो मे प्रबन्ध के स्वरूप, विभागीय प्रबन्ध, सरकारी निगम, सयुक्त पूँजी कम्पनी, मिश्रित सयुक्त पूँजी कम्पनी, सचालन ठेका सरकारी उद्यम पर मन्त्रीय नियन्त्रण, ससदीय नियन्त्रण, सरकारी निगमों पर ससदीय नियन्त्रण, पृथक समिति की स्थापना के पक्ष मे दी जाने वाली दलील की जाँच, समिति के पक्ष मे तर्क, समिति के विपक्ष मे तर्क,

सरकारी निगमो के साथ सरकार का वास्तविक सम्बन्ध, कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ।

अध्याय ६ : प्रशासन के स्तर : १८२

भारत मे केन्द्र तथा राज्यों के बीच सम्बन्ध, सघ तथा राज्यो के बीच शक्तियो का विवरण, शक्तिशाली केन्द्र, राज्य के विषयो पर विधि निर्माण करने की सघीय ससद की शक्ति, केन्द्र और राज्यो के बीच प्रशासकीय सम्बन्ध, केन्द्र तथा राज्यो के बीच वित्तीय सम्बन्ध, सयुक्त राज्य मे साधनो का विभाजन, भारत मे सघ तथा राज्यों के बीच साधनो का विभाजन, सघीय स्रोत, राजकीय स्रोत, समवर्ती स्रोत, कर-प्राप्तियो का वास्तविक बटवारा, वित्त आयोग, राज्य-स्थानीय सम्बन्ध, स्थानीय सस्थाओ पर राज्य का नियन्त्रण, भारत मे स्थानीय सस्थाओ पर राज्य के नियन्त्रण का आलोचनात्मक अध्ययन, भारत मे सघ तथा राज्यो के बीच सम्बन्ध।

अध्याय १० पचायती राज : २२०

पृष्ठ भूमि, स्वतन्त्रता और उसके बाद, मेहता कमेटी, तीन स्तरीय योजना, राजस्थान मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, पचायती राज की सस्थायें, पचायत, निर्वाचन, कार्य की अवधि, पचायत के अधिकारी-वर्ग, सरपच के कार्य, पंचायत के कार्य, आय के साधन, पचायत समिति, समिति की रचना, पचायत समिति के सदस्य, कार्य-काल, समिति के अधिकारी, समिति के कार्य, समिति की आय के साधन, जिला-परिषद्, जिला परिषद् के कार्य, आय के साधन, ग्राम सभा, न्याय-पचायत, तुलना, समस्यायें तथा सम्भावनायें।

अध्याय ११ : क्षेत्रीय सस्थायें २३६

प्रधान कार्यालय और स्थानीय कार्यालयो के बीच सम्बन्ध, क्षेत्र-स्थलो की स्थापना के कारण, क्षेत्रीय सस्थाओ से उत्पन्न होने वाली प्रशासकीय समस्यायें, केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण, अर्थ, विकेन्द्रित व्यवस्था की आवश्यक बातें, केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी तत्व, केन्द्रीकरण के दोष, केन्द्रीकरण के लाभ, विकेन्द्रीकरण के लाभ, विकेन्द्रीकरण के दोष, क्षेत्रीय सेवाओ का सगठन, विलोबी के विचार, एकल पद्धति, बहुल पद्धति, क्षेत्रीय सेवाओ के सगठन के विषय मे लूथर गुलिक के विचार, क्षेत्रीय व प्रधान कार्यालयो के सम्बन्ध, क्षेत्र-स्थलो पर प्रधान कार्यालय के

नियन्त्रण की रीतियाँ, प्रधान कार्यालयों तथा क्षेत्र-स्थलों के बीच ऐक्य अथवा तालमेल उत्पन्न करने की रीतियां, क्षेत्र मे समन्वय, निष्कर्ष ।

अध्याय १२ : प्रशासनिक सुधार : २५१

भूमिका, वैज्ञानिक प्रबन्ध, सरकार मे समय तथा क्रिया का अध्ययन, प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो मे सुधार, सगठन तथा प्रणालिया, भारत सरकार मे सगठन तथा प्रणाली (ओ० तथा एम०), कार्यक्रम की रूपरेखा, भारत मे 'सगठन तथा प्रणाली' सगठन, विशिष्ट पुनर्गठन इकाई, निष्कर्ष ।

अध्याय १३ : भारत मे नियोजन तथा योजना आयोग : २७

भूमिका, नियोजन के प्रकार, भारत मे आर्थिक नियोजन, *योजना का निर्माण, भारत में योजना आयोग, योजना* आयोग का स्वरूप तथा मन्त्रिपरिषद से इसका सम्बन्ध, योजना निर्धारण, राष्ट्रीय विकास परिषद, योजना का क्रियान्वन तथा आर्थिक नियोजन के अन्तर्निहित परिणाम, योजना का मूल्याकन, निष्कर्ष ।

भाग २

कार्मिक-वर्ग प्रशासन

(Personnel Administration)

अध्याय १४ : सिविल सेवा का योग तथा महत्व : २६

महत्व, सिविल सेवा अथवा नौकरशाही, नौकरशाही के विशिष्ट लक्षण, नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र की बुराइया, नौकरशाही के दोष, निरकुशता का आरोप, इन दोषो को दूर करने के लिए सुझाव ।

अध्याय १५ सिविल अथवा असैनिक सेवा—इसके कार्य और विभिन्न पद्धतियाँ ३०३

कार्य, लूट-खसोट बनाम योग्यता प्रणाली, योग्यता प्रणाली, कुलीनतन्त्रीय तथा प्रजातन्त्रीय प्रणाली ।

अध्याय १६ - जीवनवृत्ति के रूप मे सरकारी सेवा : ३११

भूमिका, जीवन वृत्ति के सिद्धात के मार्ग मे आने वाली बाधाए, पदोन्नति के लिए उपलब्ध अवसर, विशेषज्ञो के लिए जीवन-वृत्ति, लिपिक-वर्ग के कर्मचारियो के लिए जीवन-वृत्ति, सामान्य प्रशासन मे जीवन-वृत्ति ।

अध्याय १७ : वर्गीकरण और प्रतिफल : ३१६
अर्थ, वर्गीकरण की रीति, पद-वर्गीकरण के लाभ, विश्लेषण प्रपत्र, पद-वर्गीकरण के लाभ व हानियां, संयुक्त राज्य अमेरिका मे पद-वर्गीकरण, ब्रिटिश सिविल सेवा के विभिन्न वर्ग, भारत मे सेवाओ का वर्गीकरण, प्रतिफल—आवश्यक तत्व व सिद्धांत।

अध्याय १८ : लोक कर्मचारियों की भर्ती : ३३५
निषेधात्मक और निश्चयात्मक भर्ती की विचारधारा, भर्ती की समस्यायें, सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करने की अच्छाइयां तथा दोष, लोक कर्मचारियो के लिए अपेक्षित योग्यतायें अथवा अर्हतायें, कर्मचारियों की योग्यताओ की जाँच करने का ढंग, लिखित परीक्षा, लिखित परीक्षा की किस्में, निबन्ध परीक्षा, लघु-उत्तर परीक्षायें, मौखिक परीक्षा, कार्य-सम्पन्नता की परीक्षा, शिक्षा, अनुभव तथा शारीरिक जांच का मूल्य, बुद्धि परीक्षा, योग्यताओं के निर्धारण के लिए प्रशासकीय यन्त्र, भारत मे लोक सेवा आयोग, आयोग का गठन तथा कार्य, लोक-सेवा आयोग के किसी सदस्य का हटाया जाना या निलम्बित किया जाना, आयोग के कार्य, लोक सेवा आयोगो के प्रतिवेदन, सरकार और लोक सेवा आयोग के बीच मतभेद, विवाद-पूर्ण विचारो का आदान-प्रदान, कम सम्मान, प्रमाणन, नियुक्ति और परिवीक्षा।

अध्याय १९ : प्रशिक्षण : ३६२
प्रशिक्षण का उद्देश्य, प्रशिक्षण के प्रकार (प्रशिक्षण की मुख्य श्रेणियां) (१) औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रशिक्षण, (२) पूर्व-प्रवेश प्रशिक्षण, (३) सेवाकालीन प्रशिक्षण (४) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण, प्रशिक्षण के प्रकार : (१) व्यावसायिक प्रशिक्षण, (२) पृष्ठ प्रवेशीय प्रशिक्षण, (३) अतिरिक्त प्रशिक्षण, (४) केन्द्रीकृत प्रशिक्षण, (५) प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक प्रशिक्षण, (६) गतिशीलता के लिए प्रशिक्षण, (७) पर्यवेक्षण के लिए प्रशिक्षण, (८) उन्नततर प्रशासन के लिए प्रशिक्षण। प्रशिक्षण देने की रीतियाँ, संयुक्त राज्य अमेरिका मे लोक कर्मचारियो का प्रशिक्षण, यूनाइटेड किंगडम; भारत मे लोक कर्मचारी-वर्ग का प्रशिक्षण, (१) भारतीय प्रशासन सेवाओ के लिए प्रशिक्षण, (२) भारतीय विदेश सेवा के लिए प्रशिक्षण, (३) भारतीय पुलिस सेवा के

लिए प्रशिक्षण, (४) भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा के लिए प्रशिक्षण, (५) आय कर सेवा (६) केन्द्रीय सचिवालय सेवा, भारत म प्रशिक्षण कार्यक्रम म किये गए नवीन परिवर्तन, प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी मे तथा तदोपरान्त।।

अध्याय २० पदोन्नति . ३८२

पदोन्नति का अर्थ व महत्व, पदोन्नति के लिए-पात्रता का क्षेत्र, पदोन्नति की समस्यायें, पदोन्नति के सिद्धान्त ज्येष्ठता बनाम योग्यता, ज्येष्ठता का सिद्धान्त, ज्येष्ठता के सिद्धान्त के दोष, योग्यता का सिद्धान्त (पदोन्नति के लिए योग्यता को जाचने की रीतियाँ), (१) पदोन्नति के लिए परीक्षायें (क) खुली प्रतियोगिता परीक्षा, (ख) सीमित प्रतियोगिता परीक्षा, (ग) उत्तीर्णता परीक्षा, परीक्षा पद्धति की आलोचना (२) सेवा अभिलेख अथवा कार्यकुशलता माप, (१) उत्पादन अभिलेख, (२) बिन्दुरेखीय दर मापमान पद्धति, (३) व्यक्तिगत तालिका पद्धति, (४) विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय, सयुक्त राज्य अमेरिका मे पदोन्नतियाँ, इगलैंड मे पदोन्नति की प्रणाली, भारत मे पदोन्नति प्रणाली, (१) भारत मे पदोन्नति के अवसर, (२) पदोन्नति की रीतिया तथा सिद्धात, पदोन्नतियो के सम्बन्ध म वेतन आयोग की सिफारिशें, कार्य-कुशलता मापक प्रपत्र (यू० एस० ए०)।

अध्याय २१ अनुशासन, पदावनति, पदच्युति और सेवा निवृत्ति ४१०

भूमिका, पार्थक्य तथा सेवा निवृत्ति, सेवा निवृत्ति योजनाओ के उद्देश्य, भारत मे लोक-सेवको के लिए आचार-सहिता और अनुशासन के नियम, (१) सरकारी कार्मिक वग की निष्ठा, (२) राजनीति के सम्बन्ध मे तटस्थ रहने के नियम, (३) भारत मे अनुशासन तथा अपील के नियम-दण्ड दण्ड देने की विधि अथवा प्रक्रिया, वे परिस्थितियाँ जिनमे अपील करने का अधिकार नही होता, अपील सुनने वाली सत्ता द्वारा अपीलों पर विचार, अपील दायर करने की प्रक्रिया व रूप, इन नियमों के निर्माण से पूव दायर की गई अपीलें, पुनर्विचार अथवा सशोधन, विनति पत्र, (४) भारत मे लोक सेवको के लिए निवृत्ति-लाभ, सामान्य शर्तें, सीमा, पेन्शन से प्रतिलब्धि अथवा वसूली, सेवा निवृत्ति पेन्शन, निवृत्ति लाभो की स्वीकृति की शर्तें, परिवार

पेन्शन , निष्कर्ष कर्मचारियो के उत्साह तथा अनुशासन का महत्व ।

अध्याय २२ कर्मचारियों के सगठन अथवा सघ ४३२

भूमिका, कर्मचारियो की मांगें पूरी करने के उपाय , भारत मे कर्मचारियो के सघ , सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का साधन , ह्विटले परिषदें ; आरम्भ, ह्विटले परिषदो के उद्देश्य तथा कार्य, ह्विटले परिषदो का सगठन ; (१) राष्ट्रीय परिषद, (२) विभागीय परिषदें, (३) जिला अथवा क्षेत्रीय समितियां , ह्विटले परिषदो की सत्ता की सीमायें, ह्विटले परिषदो के योग का मूल्यांकन, सिविल सेवा पचनिर्णय अथवा विवेचन न्यायाधिकरण , भारत मे सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का यन्त्र, ह्विटले परिषदो की आवश्यकता ; कर्मचारी-वर्ग परिषदो के उद्देश्य , भारत मे विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत के यत्र की आलोचना ।

अध्याय २३ : अमेरिकन सिविल सेवा : ४५५

भूमिका सन् १८८३ का पेन्डलटन अधिनियम , सिविल अथवा असैनिक सेवा आयोग , अमेरिकन सिविल सेवा प्रणाली के दोष ।

अध्याय २४ : ब्रिटिश सिविल-सेवा : ४६३

भूमिका ; प्रशासनिक वर्ग ; कर्तव्य ; सख्या तथा वेतन ; कार्य के घटे तथा अवकाश , कार्यपालक अथवा निष्पादक वर्ग के कर्तव्य, सख्या तथा वेतन , काम के घण्टे तथा अवकाश , लिपिक वर्ग , विवरण तथा कर्तव्य, सख्या तथा वेतन , काम के घण्टे तथा अवकाश , लिपिक सहायक वर्ग ; कर्तव्य ; सख्या तथा वेतन, अवकाश , सिविल सेवा आयोग , सिविल सेवा और आर्थिक आयोजन ।

अध्याय २५ भारतीय सिविल अथवा असैनिक सेवा : ४७५

सिविल सेवा का ढाचा ; परिवर्तनशील समाज मे सिविल सेवा ; भारत के लिए आर्थिक सिविल सेवा ; औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र योजना ; नियन्त्रणकारी सत्ता , पदक्रम तथा वेतन ; भर्ती, प्रशिक्षण तथा परिवीक्षा ; अवकाश, पेन्शन तथा सेवा की अन्य शर्तें ; निष्कर्ष ।

भाग ३

वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration)

अध्याय २६ वित्तीय प्रशासन की समस्या . ४६५

वित्त का महत्व , वित्तीय प्रशासन ; वित्तीय प्रशासन के अभिकरण · (१) व्यवस्थापिका सभा, (२) कार्यपालिका, (३) राजकोष अथवा वित्त विभाग, (४) लेखा-परीक्षण, (५) संसदीय समितियां ; समस्या का सारांश ।

अध्याय २७ आय-व्ययक अथवा बजट : ५०३

बजट की परिभाषा ; प्रस्तावित बजट का स्वरूप ; बजट के आर्थिक तथा *सामाजिक परिणाम , बजट के महत्वपूर्ण* सिद्धान्त ; बजट के विभिन्न प्रकार · (१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट, (२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट, (३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट , बजट तथा पद्धति , बजट पद्धति के आवश्यक तत्व , बजट सम्बन्धी कार्यविधियाँ और समस्यायें (१) अनुमान तैयार करना, (२) बजट पर व्यवस्थापिका की स्वीकृति ।

अध्याय २८ ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में वित्तीय प्रशासन ५१२

ब्रिटेन में वित्तीय प्रशासन , अनुमानों की तैयारी ; सदन में अनुमान अथवा प्राक्कलन , सदन तथा सम्पूर्ण सदन की समिति में अन्तर , पूर्ति समिति ; पूर्ति प्रस्तावों का स्वरूप , पूर्ति समिति की कार्यविधि , उपाय और साधन समिति ; ब्रिटिश राजकोष , राजकोष के कार्य , राजकोष का संगठन , अर्थ महामात्य , राजकोष द्वारा प्रदान किये जाने वाले योग की आलोचना , प्लौडेन रिपोर्ट , लेखा-परीक्षण , निष्कर्ष , संयुक्त राज्य अमेरिका में वित्तीय प्रशासन , अनुमानों अथवा *प्राक्कलनों की तैयारी , बजट विभाग या ब्यूरो* , बजट अनुमानों की तैयारी , कांग्रेस में बजट , "Pork Barrel" and "*Logrolling*" , राजस्व के उपाय , बजट का प्रबन्ध , ब्रिटिश तथा अमेरिकन पद्धतियों की तुलना, समानतायें, विभिन्नतायें ।

अध्याय २९ भारतीय बजट अथवा आय-व्ययक ५३५

भारतीय बजट की तैयारी , वित्त मन्त्रालय द्वारा अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण (१) *स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय* ,

(२) प्रचलित योजनायें या कार्यक्रम, (३) नवीन योजनायें अथवा कार्यक्रम, अनुमानों का पुनर्वर्गीकरण, स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय, प्रचलित योजनायें, नवीन योजनायें, सरकारी आय के अनुमान, व्यवस्थापिका के लिए बजट।

अध्याय ३० व्यवस्थापिका मे भारतीय बजट ५४३

वित्त पर ससद की शक्ति के सम्बन्ध मे सावैधानिक उपबन्ध; अनुपूरक, अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदान, लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान, राज्य सभा की वित्तीय शक्तिया, सदन मे बजट, बजट का प्रस्तुतीकरण, बजट पर सामान्य वाद विवाद, मागो पर मतदान, कटौती प्रस्ताव, (१) नीति सम्बन्धी कटौती प्रस्ताव, (२) मितव्ययता कटौती, (३) प्रतीक कटौती, विनियोजन विधेयक, करो पर मतदान, वित्त विधेयक, भारत तथा ब्रिटेन की वित्तीय कार्यविधि की तुलना, परिशिष्ट, भारत की संचित निधि, लोक लेखे तथा आकस्मिकता निधि, आकस्मिकता निधि।

अध्याय ३१ भारत मे बजट की क्रियान्विति (१) ५५५

वित्त मन्त्रालय, विभाग का सगठन, वित्त मन्त्रालय के योग का आलोचनात्मक मूल्यांकन।

अध्याय ३२ भारत मे बजट की क्रियान्विति (२) ५६३

राजकोषीय नियन्त्रण, धन का सग्रह, धन का अभिरक्षा तथा सवितरण, राजकोष, पुनर्विनियोजन, ब्रिटेन मे व्यय पर राजकोषीय नियन्त्रण।

अध्याय ३३ लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण ५७०

लेखे, लोक लेखाकन के आवश्यक तत्व, (१) लेखों का केन्द्रीकरण, (२) लेखाकन-पद्धति की प्रकृति, (३) निधियो का वर्गीकरण, (४) बजट सम्बन्धी नियन्त्रण के लेखे, (५) राजस्व लेखाकन, (६) व्यय लेखाकन, लोक लेखे—इसकी विभिन्न किस्में (१) लेखो की रोकड प्रणाली तथा सभूत प्रणाली, (२) लागत मूल्य लेखाकन प्रणाली, भारत मे लेखाकन, भारत मे लेखाकन की कार्यविधि, लेखो तथा लेखा परीक्षण की पृथकता, निष्कर्ष, लेखा परीक्षण, लेखा परीक्षण के प्रकार, पूर्व लेखा-परीक्षण तथा उत्तर लेखा परीक्षण, लेखा परीक्षक के कार्य, इगलैड मे व्यय नियन्त्रण

लेखा-परीक्षण , संयुक्त राज्य में व्यय-नियन्त्रण ; लेखा-परीक्षण , भारत का नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक ; नियुक्ति तथा सेवा की शर्तें , कर्त्तव्य ; भारत में लेखा-परीक्षण विभाग का संगठन , लेखा-परीक्षण के सम्बन्ध में विवाद ।

अध्याय ३४ संसदीय वित्त समितियाँ ५८७

सार्वजनिक लेखा समिति ; समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें , अनुमान समिति ।

भाग ४

नागरिक तथा प्रशासन

(Citizen and Administration)

अध्याय ३५ प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण . ५६६

भूमिका ; भारत में प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण , (१) संसदीय प्रश्न, (२) वाद विवाद तथा पर्यालोचन (३) समितियों के द्वारा संसदीय नियन्त्रण, (४) लेखा-परीक्षण के द्वारा नियन्त्रण की सीमायें , हस्तांतरित अथवा अधीनस्थ विधान ; (१) अर्थ, (२) हस्तान्तरित विधान की आवश्यकता, (३) हस्तान्तरित विधान में बचाव अथवा सुरक्षायें , सूक्ष्म परीक्षण समिति की व्यवस्था ; भारत में अधीनस्थ विधान पर समिति ।

अध्याय ३६ प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण ६१५

भूमिका ; क्या कोई नागरिक सरकार पर मुकदमा चला सकता है ? अधिकारियों का वैयक्तिक उत्तरदायित्व, न्यायिक समीक्षा की रीतियाँ (१) बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश, (२) उत्प्रेषण आदेश, (३) प्रतिषेध आदेश, (४) अधिकार पृच्छा आदेश, (४) परमादेश , फ्रांसीसी प्रशासकीय अधिकार , निष्कर्ष ।

अध्याय ३७ प्रशासकीय कानून तथा न्यायिक निर्णय ६२४

प्रशासकीय कानून , प्रशासकीय न्यायिक निर्णय , इस पद्धति के गुण व दोष ।

अध्याय ३८ लोक सम्पर्क ६३१

भूमिका , लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम , भारत में लोक सम्पर्क के यन्त्र (१) अखिल भारतीय आकाशवाणी,

(२) प्रेस सूचना ब्यूरो, (३) विज्ञापन तथा दृष्टिक प्रचार का निदेशालय, (४) प्रशासन सभाग, (५) फिल्म सभाग, बम्बई, (६) फिल्मो के गुण दोष विवेचको का केन्द्रीय मण्डल, (७) अनुसधान तथा अभ्युद्देशय सभाग, (८) भारतीय समाचार पत्रो के रजिस्ट्रार का कार्यालय, (६) पचवर्षीय योजना प्रचार ; निष्कर्ष , सरकारी लोक सम्पर्क मे सामान्य विचारणीय बातें ; मूलभूत मान्यतायें , बाधायें ।

परिशिष्ट १ : ६४०

प्रशासनिक क्रिया-प्रणाली पर प्रधान मन्त्री द्वारा १० अगस्त १९६१ को ससद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया वक्तव्य ।

परिशिष्ट २ . ६४७

(अ) आर्थिक मामलो का विभाग ; (१) विनिमय नियन्त्रण, (२) आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता, (३) आन्तरिक वित्त, (४) आर्थिक परामर्श, (५) बजट, (६) नियोजन, (७) बिक्री कर, (८) बीमा, (६) निगम, (१०) स्टाक एक्सचेंज, (११) कैपिटल ईशूज, (१२) विभिन्न ; (ब) व्यय विभाग, (स) राजस्व विभाग ।

परिशिष्ट ३ . ६५३

केन्द्रीय अनुमान समिति की वित्तीय वर्ष मे परिवर्तन पर प्रस्तुत की गई २०वी रिपोर्ट के कुछ अश ; (अ) वित्तीय वर्ष ।

परिशिष्ट ४ . ६५६

कार्य स्तर विषयक बजट निर्माण ।

Bibliography 657

भाग १

लोक प्रशासन

(PUBLIC ADMINISTRATION)

१

लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र
(Meaning, Nature and Scope of Public Administration)

राज्य की क्रियाओं में आजकल तेजी के साथ वृद्धि हो रही है। आधुनिक राज्य उन कार्यों को सम्पन्न कर रहे हैं जो कि पहिले निजी संगठनों अथवा व्यक्तियों द्वारा किये जाते थे। अब वे दिन बीत चुके जबकि राज्य का उत्तरदायित्व समाज में केवल शान्ति व सुरक्षा की स्थापना करना ही था। विज्ञान तथा शिल्पकला की उन्नति के इस युग में राज्य से सम्बन्धित निषेधात्मक (Negative) विचारधारा का स्थान निश्चयात्मक लोक-कल्याणकारी (Positive welfare) विचारधारा ने ले लिया है। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही राज्य द्वारा अनेक महत्वपूर्ण जनोपयोगी कार्य सम्पन्न किये जाते रहे हैं। वर्तमान समय में राज्य व्यक्तिगत जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों का नियन्त्रण करता है, नियमन करता है अथवा उनमें हस्तक्षेप करता है। राज्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लोगों के जीवन को व्यवस्थित एवं नियमित करता है। जीवन का ऐसा कोई—सामाजिक, भौतिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक—पहलू नहीं है जो कि राज्य के नियन्त्रण अथवा देख-भाल के अन्तर्गत न आता हो। सरकार के सभी अंग हमारे दैनिक जीवन में व्याप्त हो गये हैं और इसके नियम तथा कानून जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में मानवीय कार्यों को प्रभावित करते हैं।

आजकल राज्य का कर्तव्य केवल यह ही नहीं है कि वह अपराधियों से लोगों के जीवन को सुरक्षा प्रदान करे, बल्कि यह भी है कि वह उन्हें भूखों मरने से तथा बीमारी से बचाये। राज्य समाज के भौतिक तथा नैतिक विकास के लिये उत्तरदायी होता है।

राज्य की निरन्तर बढ़ती हुई क्रियाओं के साथ ही साथ, लोक-प्रशासन का योग तथा महत्व स्वभावतः बढ़ता ही जा रहा है। राज्य की क्रियाओं की सफलता या असफलता उन पदाधिकारियों पर निर्भर होती है जो कि राज्य की नीति को क्रियान्वित करते हैं। एक अच्छी नीति को भी यदि अयोग्यता तथा अकुशलता के साथ क्रियान्वित किया जाये तो उसके अच्छे परिणाम नहीं निकलते। चूँकि सरकार के कार्यों के क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हो गई है अतः प्रशासन तथा कुशल प्रबन्धक आदि सभी महत्वपूर्ण हो गये हैं। यदि राज्य का प्रशासकीय ढाँचा तीव्रता, कुशलता तथा सत्यनिष्ठा के साथ कार्य नहीं करता है, तो यहाँ तक कि अच्छी से अच्छी योजनाएँ तथा नीतियाँ भी असफल हो जाती हैं। यह तथ्य भारत में भी स्वीकार

किया गया है। कांग्रेस के ६५वें अधिवेशन म 'नियोजित विकास के कार्य-क्रमो को लागू करने' के सम्बन्ध म एक प्रस्ताव पास हुआ था। इसमें अन्य बातों के साथ यह भी उल्लेख किया गया था कि—

"हम यह समझ लेना चाहिये कि ठीक-ठीक नीतियो तथा कार्य-क्रमो को केवल निर्धारित कर देना ही काफी नहीं है, उनकी कसौटी है उन नीतियो व कार्य-क्रमों का क्रियान्वित करना तथा पूर्ण करना। इस कसौटी के द्वारा ही सभी श्रेणियों के पदाधिकारियो के कार्य की पृथक्-पृथक् जाच की जानी चाहिये और इसी के आधार पर उनकी प्रशंसा अथवा आलोचना की जानी चाहिये।"

इस प्रकार आधुनिक समाज में लोक-प्रशासन को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो गया है। इसे 'आधुनिक सभ्यता का हृदय' भी कहा जाता है। प्रशासन अनेक सामाजिक विवादो को सुलझाता है तथा समाज मे सगठन तथा एकता स्थापित करता है। समाज मे शान्ति, एकता तथा स्थिरता बनाये रखने के लिये प्रशासन का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि लोक-प्रशासन की मशीनरी ही छिन्न भिन्न हो गई, तो सभ्यता आपसे आप ही नष्ट हो जायगी। लोक प्रशासन सामाजिक ढाचे, सामाजिक सगठन तथा सामाजिक सम्बन्धो को स्थायित्व प्रदान करता है। हमारे दैनिक जीवन म जब लोक प्रशासन का इतना महत्व है, तो उसका अध्ययन स्वभावत. ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रशासन
(Administration).

'लोक-प्रशासन' की परिभाषा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम 'प्रशासन' शब्द का अर्थ भली-भाँति समझ लें। वर्ग द्वारा की जाने वाली प्रत्यक क्रिया म प्रशासन की आवश्यकता होती है चाहे वह क्रिया परिवार म सम्पन्न हुई हो अथवा कृषि फार्म या फैक्टरी म। कुछ वाछित उद्देश्यो की पूर्ति के लिए मनुष्यो तथा सामग्री का उचित सगठन तथा निर्देशन करने को ही प्रशासन कहते हैं। जब कभी भी कोई दो व्यक्ति किसी ऐसे कार्य को करने के लिय परस्पर सहयोग करते है जिसको कि उनमे से अकेला कोई भी सम्पन्न नही कर सकता था तो उसम प्रशासन के तत्व पाये जाते हैं।

'प्रशासन' शब्द अग्रेजी शब्द 'Administer' का हिन्दी रूपान्तर है। इस अग्रेजी शब्द की रचना लैटिन भाषा के दो शब्द ad और ministrare' से मिल कर हुई है जिसका अर्थ है "सेवा करना"। शासन करने से तात्पर्य है प्रबन्ध करना, निर्देशन करना अथवा सेवा करना। इस प्रकार एक साथ मिलकर की जाने वाली प्रत्यक वर्गीय क्रिया प्रशासन मे सम्बद्ध होती है।

ई० एन० ग्लेडन (*E N Gladden*) के अनुसार प्रशासन का अर्थ है "लोगों की परवाह करना या देखभाल करना, कार्यो का प्रबन्ध करना ।"[1]

1 *E N Gladden* An Introduction to Public Administration, p 17

प्रोफेसर जॉन ए० वीग *(Prof John A Vieg)* के अनुसार, " कार्यों को व्यवस्थित ढंग से क्रमबद्ध करना तथा साधनों का पूर्व निर्धारित रीति से उपयोग करना ही प्रशासन है जिसका उद्देश्य है कि उन्हीं कार्यों को होने दिया जाए जिन्हें कि हम सम्पन्न करना चाहते हैं और साथ ही साथ ऐसी वृद्धियों को रोका जाए जिनका हमारी इच्छाओं के साथ सामजस्य न बैठता हो।[1]

नीग्रो *(Nigro)* के शब्दों में, "किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये मनुष्यों तथा सामग्रियों (Materials) का जो सगठन तथा उपयोग किया जाता है उसे प्रशासन कहा जाता है।"[2]

व्हाइट *(White)* के मतानुसार, किसी उद्देश्य तथा लक्ष्य की पूर्ति के लिये बहुत से व्यक्तियों के निर्देशन (Direction), समन्वय (Coordination) तथा नियत्रण (Control) को ही प्रशासन की कला कहा जाता है।"[3]

फिफनर *(Pfiffner)* ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है, "वाञ्छित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मानवीय तथा भौतिक साधनों का सगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है।"[4]

हरबर्ट ए० साइमन *(Herbert A Simon)* के अनुसार, "सबसे अधिक व्यापक अर्थ में, समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये वर्गों (Groups) द्वारा साथ मिलकर की जाने वाली क्रियाओं को प्रशासन कहा जा सकता है।"[5]

लूथर गुलिक *(Luther Gullick)* के शब्दों में, "प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को सम्पन्न कराने से है, जिसके साथ ही साथ निर्धारित लक्ष्य पूरे हो सकें।"

जब लोग कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये एक साथ मिलते हैं या परस्पर सहयोग करते हैं, तो उन क्रियाओं को प्रशासन कहा जाता है जिन्हें कि वे अपने निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिये सम्पन्न करते हैं। परन्तु जब किसी सरकारी कार्य को करने के लिये लोग परस्पर मिलते हैं तो उनकी क्रियाओं का प्रबन्ध तथा निर्देशन किया जाता है, इसीलिये कुछ वाछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये मनुष्यों तथा सामग्री के उचित सगठन तथा निर्देशन को भी प्रशासन कहा जाता है।

लोक प्रशासन की परिभाषा
(Definition of Public Administration)

'लोक-प्रशासन क्या है' ? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। इस विषय के लेखकों ने लोक-प्रशासन के अर्थ के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं। एक बात का स्पष्टीकरण प्रारम्भ में ही कर देना उचित है। प्रशासन की परिभाषा करते समय यह कहा गया था कि जब भी लोग कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के

1 *F. M. Marx*, (Ed) Elememts of Public Administration, p 3
2 *Nigro, F. A* · Public Administration
3 Introduction to the Study of Public Administration, p 4
4 *J. M Pfiffner* and *Presthus* Public Administration
5 *Simon, Smithbury* and *Thompson*, Public Administration, p 3

लिए आपस में मिलकर कार्य करते हैं तो उन क्रियाओं को प्रशासन कहा जाता है जोकि वे अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए सम्पन्न करते हैं। यदि वे क्रियायें 'व्यक्तिगत हित' की अपेक्षा 'सार्वजनिक हित' अथवा 'लोकहित' के लिए की जाती हैं तो उन्हें लोक-प्रशासन की संज्ञा दी जाती है, चूंकि सरकार की क्रियायें सार्वजनिक हित के लिये सम्पन्न की जाती है, अतः सरकारी कार्यों के प्रशासन को लोक-प्रशासन कहा जाता है। आय-कर अधिकारी (Income Tax Officer) द्वारा करों का संग्रह, पुलिस द्वारा अपराधियों की गिरफ्तारी तथा सड़कों, सार्वजनिक मार्गों, नदियों के पुलों व नहरों का निर्माण आदि—लोक-प्रशासन की क्रियाओं के कुछ उदाहरण हैं। लोक प्रशासन तथा प्रशासन के अन्य रूपों में मुख्य भेद यही है कि लोक-प्रशासन का अन्तिम उद्देश्य सर्वमान्य का हित करना होता है।

जब यह कहा जाता है कि लोक प्रशासन में सरकार की क्रियायें सम्मिलित की जाती हैं तो यह प्रश्न पैदा होता है कि सरकार की तीन शाखायें होती हैं अर्थात् व्यवस्थापिका (Legislative), कार्यपालिका (Executive) तथा न्यायपालिका (Judicial), क्या लोक प्रशासन में सरकार के इन तीनों ही अंगों के कार्य सम्मिलित किये जाते हैं, अथवा इसका सम्बन्ध सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा से ही है? लोक-प्रशासन के विद्वानों में इस प्रश्न पर मतैक्य नहीं है। कुछ की राय तो यह है कि लोक-प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के तीनों ही अंगों—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका—के कार्यों से होना चाहिये क्योंकि प्रशासन की समस्यायें इन तीनों ही शाखाओं में वर्तमान हैं। उदाहरण के लिये, सरकार की न्यायपालिका शाखा में प्रशासन की समस्यायें पाई जाती है। उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) को उच्च न्यायालय (High Court) के और उच्च न्यायालय को जिला न्यायालयों (District Courts) के कार्यों की देखभाल तथा उनका नियन्त्रण, निरीक्षण व निर्देशन करना पड़ता है। यह कार्य इसी प्रकार और आगे भी चलता है। इन लेखकों का मत यह है कि चूंकि प्रशासन की समस्यायें सरकार के इन तीनों ही अंगों के सामने आती है अतः ऐसा कोई कारण नहीं है कि लोक प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के सम्पूर्ण कार्यों का अध्ययन न किया जाय।

अन्य लेखक लोक प्रशासन के अध्ययन को सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा तक ही सीमित रखते हैं। उनका विचार है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल सार्वजनिक नीति को लागू करने तथा पूरा करने से है। इसका सम्बन्ध सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा की क्रियाओं से ही है। उनके मतानुसार, लोक-प्रशासन सरकार की सम्पूर्ण कला का एक भाग है। इस प्रकार, लोक प्रशासन क्या है? इस प्रश्न के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। इस कठिनाई के कारण ही ग्लेडन *(Gladden)* को यह कहने की प्रेरणा मिली —

"लोक-प्रशासन में एक सर्वव्यापकता पाई जाती है जिससे इसकी परिभाषा करने में बाधा उपस्थित होती है। लोक-प्रशासन को केवल गतिशीलता के साथ तथा

सरकार के बदलते हुए कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए भी समझा जा सकता है। इस बात का पता लगाने के लिये कि इसमे कोई मौलिक तत्व पाया भी जाता है या नही यह आवश्यक है कि इसका अध्ययन गहराई के साथ, समय की गतिशीलता के साथ और वास्तविक रूप मे किया जाए।"[1]

लोक प्रशासन के अर्थ के विषय में लेखकों के विचार

(Views of Writers on the Meaning of Public Administration)

अब हम यह देखेंगे कि लोक-प्रशासन के अर्थ के बारे मे विभिन्न लेखकों ने क्या-क्या विचार व्यक्त किये है।

विलोवी (*Willoughby*) के कथनानुसार, "अपने व्यापक अर्थ मे, लोक-प्रशासन उस कार्य का प्रतीक है जो कि सरकारी कार्यों के वास्तविक सम्पादन से सम्बद्ध होता है, चाहे वे कार्य सरकार की किसी भी शाखा से सम्बन्धित क्यो न हो…… । अपने सकुचित अर्थ मे, यह केवल प्रशासकीय शाखा की कार्यवाहियो की ओर सकेत करता है।"[2]

इस प्रकार, इन लेखक महोदय ने लोक-प्रशासन की दो परिभाषाये दी है—एक व्यापक और दूसरी सकुचित। यदि लोक-प्रशासन के व्यापक अर्थ को लिया जाये तो इसमे वह कार्य सम्मिलित किया जाता है जो कि सरकार की तीनो ही शाखाओं—अर्थात् सरकार की व्यवस्थापिका शाखा के प्रशासन, न्याय के प्रशासन और कार्यपालिका के प्रशासन—के कार्यों के वास्तविक सम्पादन से सम्बद्ध हो। सकुचित अर्थ मे, लोक-प्रशासन सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा की क्रियाओ से ही सम्बन्धित होता है। 'लोक-प्रशासन के सिद्धान्त' (Principles of Public Administration) नामक अपनी पुस्तक मे उन्होने शब्द के केवल सकुचित अर्थ का ही उल्लेख किया है और अपने आपको केवल कार्यपालिका शाखा की प्रशासकीय क्रियाओ अथवा कार्यवाहियो से ही सम्बन्धित रखा है।

एल०डी०ह्वाइट (*L D White*) का कहना है कि "लोक-प्रशासन मे वे सभी कार्य आ जाते है जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियो को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।"[3]

ह्वाइट ने लोक-प्रशासन की परिभाषा व्यापक अर्थ मे की है। उनकी परिभाषा के अनुसार, लोक-प्रशासन की परिधि मे वे सभी कार्य आ जाते है जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियो को पूरा करना या क्रियान्वित करना अथवा लागू करना होना है। लोक-प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के विभिन्न अगो की वे सभी क्रियायें

---

1 The Essentials of Public Administration, *E N Gladden*, pp 28-29

2 *W F Willoughby* Principles of Public Administration, Indian Edition, p 1

3 "Public Administratoin consists of all those operations having for their purpose the fulfilment or enforcement of public policy." (Introduction to the Study of Public Administration) —*L. D White*

सम्मिलित की जाती हैं जो कि वे कानून, न्याय, सामाजिक कल्याण, स्वास्थ्य व सफाई आदि के क्षेत्र मे सम्पन्न करते हैं।

ह्वाइट ने और आगे कहा कि "लोक प्रशासन की व्यवस्था उन सभी कानूनों नियमों क्रियाओं, सम्बन्धों, संहिताओं (Codes) और रीति-रिवाजों का मिश्रण है जो कि सार्वजनिक नीति को पूरा करने अथवा क्रियान्वित करने के लिये किसी भी सरकार के अधिकार क्षेत्र में किसी भी समय प्रचलित होते है।"[1]

वुडरो विल्सन (*Woodrow Wilson*) के शब्दों मे, "लोक-प्रशासन विधि अथवा कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप मे कार्यान्वित करने का नाम है। विधि को कार्यन्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।"[2]

लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) ने लिखा है कि प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को सम्पन्न कराने से है जिससे कि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हो सके। इस प्रकार प्रशासन का विज्ञान ज्ञान की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा ऐसी किसी भी परिस्थिति मे, जहाँ कि आदमी एक सामान्य उद्देश्य के लिए एक साथ काम करने को सगठित हुये हो, वे पारस्परिक सम्बन्धों को समझ सकें, नतीजों का अनुमान लगा सकें और परिणामों को प्रभावित कर सकें, लोक प्रशासन प्रशासन के विज्ञान का वह भाग है जो सरकार से सम्बन्धित है और इसलिए उसका सम्बन्ध कार्यपालिका से है जहाँ कि सरकार का काम मुख्य रूप से होता है, यद्यपि उसको स्पष्ट रूप से उन प्रशासकीय समस्याओं पर भी ध्यान देना होता है जो व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के क्षेत्र मे आती हैं। इस प्रकार लोक-प्रशासन राजनीति विज्ञान (Political Science) का एक भाग है और सामाजिक विज्ञानों मे से एक है।"[3]

फिफनर (*Pfiffner*) के अनुसार, "लोक-प्रशासन का अर्थ है सरकार का काम करना, फिर चाहे वह कार्य स्वास्थ्य प्रयोगशाला मे एक्स-रे मशीन को सचालित करने का हो अथवा टकसाल मे सिक्के ढालने का । प्रशासन से तात्पर्य है लोगो के प्रयत्नो मे समन्वय कायम करके सरकार के कार्य को सम्पन्न करना जिससे कि वे (लोग) एक साथ कार्य कर सकें अथवा अपने निश्चित कार्यों को पूरा कर सकें। प्रशासन ऐसे कार्यों को अपने हाथ मे लेता है जो कि तकनीकी तथा विशिष्टता की दृष्टि से उच्च कोटि के होते हैं जैसे कि सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा पुलों का निर्माण ···। यह हजारों और यहाँ तक कि लाखों कर्मचारियों की क्रियाओं का

1 Ibid, p 4

2 'Public Administration is detailed and systematic application of law Every particular application of law is an act of administration"
—*Woodrow Wilson*, the Study of Administration

3 *Luther Gullick* Science, values and Public Administration" in Luther Gullick and L. Urwick (Eds) Papers on the Science of Public Administration

प्रबन्ध, निर्देशन तथा निरीक्षण भी करता है जिससे कि उनके प्रयत्नों में कुछ व्यवस्था तथा कुशलता उत्पन्न की जा सके·····।"[1]

डिमोक (*Dimock*) के शब्दों में, 'प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के 'क्या' और 'कैसे' से है। क्या से अभिप्राय विषय में निहित ज्ञान से है, अर्थात् किसी भी प्रशासकीय क्षेत्र से सम्बन्धित वह विशिष्ट ज्ञान जो प्रशासक को अपना कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है। कैसे' से अभिप्राय प्रबन्ध करने की उस कला एवं सिद्धान्तों से है जिनके अनुसार सामूहिक योजनाओं को सफलता की ओर ले जाया जाता है। इनमें से दोनों अनिवार्य हैं, और वे दोनों ही मिलकर उस समन्वय की रचना करते हैं जिसे प्रशासन की संज्ञा दी गई है··।"[2]

वाल्डो (*Waldo*) का कहना है कि लोक प्रशासन 'मानवीय सहयोग का एक पहलू' तथा 'विभिन्न वर्गों वाले प्रशासन से सम्बन्धित एक वर्ग' है जो कि 'उच्च कोटि की विचारशक्ति से युक्त एक प्रकार का सामूहिक मानवीय प्रयत्न है।'[3]

मार्क्स (*Marx*) तथा साइमन (*Simon*) का यह मत है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की केवल प्रशासकीय शाखा से ही है।

तथापि, आज जब हम 'लोक प्रशासन शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अभिप्राय मुख्यतः संगठन, कर्मचारी वर्ग के कार्यों तथा कार्य करने की उन रीतियों से होता है जो कि सरकार की कार्यपालिका शाखा को सौंपे गये सिविल अथवा असैनिक कार्यों को प्रभावशाली ढंग से पूरा करने के लिये यह आवश्यक होते हैं। हम इस शब्द का प्रयोग परम्परागत अथवा रिवाजी अर्थ में करेंगे।"[4]

पुनः साइमन (*Simon*) के शब्दों में, "सामान्य प्रयोग में लोक-प्रशासन से अभिप्राय 'उन क्रियाओं से है जो कि केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय सरकारों द्वारा सम्पादित की जाती है।"[5]

'लोक प्रशासन क्या है?' इस प्रश्न से सम्बन्धित सम्पूर्ण वाद-विवाद को संक्षेप में फिर से दोहराते हुए यह कहा जा सकता है कि लोक-प्रशासन का सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप में सरकार के सभी कार्यों से होना चाहिये चाहे वे उसकी किसी भी शाखा द्वारा सम्पादित किये गये हों। किन्तु यदि सरकार की सभी शाखाओं की उन

1 Public Administration *John, M Pfiffner*, theR onald Press Company, New York, 1946, pp 4-6

2 *Marshall E Dimock*, "The Study of Administration" American Polititical Science Review, XXX, No 1 (February 1937), 31-32.

3 The Administrative State, *Waldo*, Ronald Press, New York, 1948 pp 5 6 The Study of Public Administration (Double day short studies in Political Science, *Garden City, New York, 1955), Ideas and Issues in Public Ad*ministration, McGraw-Hill, New York, 1953

4 Elements of Public Administration, Ed *F M Marx*, New York, 1946 *Prentice* Hall, Inc, p 6

5 *Simon and Others* Public Administration, p 7

सभी जटिल एव मिश्रित क्रियाओं का अध्ययन किया जाय जो कि सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्पन्न की जाती है, तो विषय अत्यधिक विस्तृत हो जायेगा, उसमे भ्रम उत्पन्न होगा और उसकी एकरूपता समाप्त हो जायेगी। अत इस पुस्तक मे अध्ययन की दृष्टि से लोक-प्रशासन का अर्थ सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा के सगठन एव कार्यों से ही लिया जायेगा।

लोक-प्रशासन का क्षेत्र
(The Scope of Public Administration) :

लोक-प्रशासन की व्याख्या करते समय दो प्रकार की विचारधारायें हमारे सामने आईं। एक विचारधारा के अनुसार लोक-प्रशासन की परिभाषा व्यापक अर्थ मे की गई और दूसरी के अनुसार सकुचित अर्थ मे। यदि इसके व्यापक अर्थ को लिया जाये तो लोक प्रशासन के अध्ययन मे सरकार की तीनों ही शाखाओं—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका—के क्षेत्र तथा क्रियायें सम्मिलित की जाती है। यदि लोक-प्रशासन के इस अर्थ को स्वीकार किया जाये तो इसके अध्ययन की परिधि मे वे सभी मिश्रित क्रियायें सम्मिलित की जायेंगी जो कि सार्वजनिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सरकार की सभी शाखाओं द्वारा सम्पादित की जाती हैं। इसमें जहाँ सशस्त्र सेनाओं की प्रशासकीय समस्यायें सम्मिलित होगी वहाँ असैनिक विभागो की प्रशासकीय समस्याओं का अध्ययन भी किया जायेगा। यह स्वाभाविक है कि ऐसा अध्ययन बडा कठिन हो जायगा और यह हो सकता है कि उससे भ्रम उत्पन्न हो। इसी कारण लोक प्रशासन की सकुचित परिभाषा स्वीकार की गई और यह कहा गया कि इसके अध्ययन मे मुख्यत सगठन, कर्मचारी वर्ग के कार्यो तथा कार्य करन की उन रीतियो को सम्मिलित किया जाना चाहिये जो सरकार की कार्यपालिका शाखा को सौंप गये सिविल अथवा असैनिक कार्यो को प्रभावशाली ढग से पूरा करने के लिये आवश्यक हो। लोक-प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा से ही होता है और इसमें सगठन, कार्यप्रणाली तथा कार्य विधि के उन मामलों का अध्ययन किया जाता है जो कि सामान्यत सभी अथवा अधिकाश प्रशासकीय अभिकरणों (agencies) से सम्बन्धित होते हैं। लोक-प्रशासन की समस्याओं को निम्नलिखित पांच पृथक किन्तु घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित, वर्गों मे बाटा जा सकता है—

(१) 'सामान्य प्रशासन' (General Administration)—अर्थात् प्रशासन के ऊपर 'निर्देशन, निरीक्षण तथा नियन्त्रण' करने का कार्य किसे सम्पन्न करना है ?

(२) 'सगठन' (Organisation)—प्रशासकीय कार्य को सम्पन्न करने के लिये सेवाओं का सगठन किस प्रकार किया जाता है ?

(३) 'कर्मचारी वर्ग' (Personnel)—विभिन्न सेवाओं तथा क्रियाओं का प्रबन्ध किसके द्वारा होता है ?

(४) अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए कर्मचारी-वर्ग को प्रदान की जाने वाली सामग्री, पूर्ति, यन्त्र तथा साज-सज्जा।

(५) 'वित्त' (Finance)—यह ऊपर उल्लेख की गई सभी समस्याओं से कठिन विषय है। इस प्रकार लोक प्रशासन का कार्य-क्षेत्र प्रशासन के अन्तर्गत 'मनुष्यों, सामग्रियो तथा उपायों' की समस्याओं का अध्ययन करना है।

लोक-प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध मे 'POSDCORB' विचार
('POSDCORB' View of the Scope of Public Administration)

लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) ने लोक-प्रशासन की इन उपर्युक्त समस्याओं का वर्णन और भी अधिक आधुनिक रूप मे किया। उन्होंने इनका उल्लेख 'पोस्ड कोर्ब' (POSDCORB) शब्द के रूप म किया। इस शब्द की रचना कुछ अग्रेजी शब्दो के पहिले अक्षरो को मिलाकर हुई है।

वे शब्द इस प्रकार हैं —

P = Planning (योजनायें बनाना)
O = Organising (सगठन करना)
S = Staffing (कर्मचारियो की व्यवस्था करना)
D = Directing (निर्देशन करना)
Co = Coordinating (समन्वय करना)
R = Reporting (रिपोर्ट देना)
B = Budgeting (बजट तैयार करना)

योजनायें बनाना (Planning)—इससे अभिप्राय यह है कि उन कार्यों की मोटी रूप-रेखा तैयार करना जिनका किया जाना आवश्यक है और साथ ही उन तरीको को भी निश्चित करना जिनके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाता है।

सगठन करना (Organizing)—अधिकारी-वर्ग के ऐसे स्थायी ढाँचे को तैयार करना जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य के लिए काम के उप-विभागो की व्यवस्था की जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनकी परिभाषा की जाती है और उनमे समन्वय स्थापित किया जाता है।

कर्मचारियों की व्यवस्था करना (Staffing)—स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण (training) और उनके लिये कार्य करने की अनुकूल दशाओं का निर्माण करना।

निर्देशन करना (Directing)—इससे अभिप्राय है कि प्रशासन सम्बन्धी निर्णय करना तथा उन्ही के अनुरूप कर्मचारियों को विशिष्ट व सामान्य आदेश तथा सूचनायें देना और इस प्रकार कार्य का नेतृत्व करना।

समन्वय करना (Coordinating)—कार्य के विभिन्न भागो को परस्पर सम्बन्धित करना अथवा उनमे समन्वय स्थापित करना।

रिपोर्ट करना (Reporting)—इसका अर्थ यह है कि प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के सम्बन्ध मे उन लोगो को सूचनायें प्रदान करना जिनके प्रति कार्यपालिका (Executive) उत्तरदायी है। इस प्रकार स्वय अभिकरण (Agency) तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियो को अभिलेखों (Records) अन्वेषण तथा निरीक्षण से परिचित रखना।

बजट तैयार करना (Budgeting)—राज्य की आय तथा व्यय का पूरा लेखा तैयार करना। इसके अन्तर्गत वित्तीय योजनायें तैयार करना, हिसाब किताब रखना तथा प्रशासकीय विभागो को वित्तीय साधनो के द्वारा अपने नियन्त्रण मे रखना आदि बातें सम्मिलित हैं।[1]

लोक प्रशासन के क्षेत्र से सम्बन्धित 'POSDCORB' विचार की आलोचना (A Criticism of 'POSDCORB' View of the Scope of Public Administration) :

लोक-प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध मे ल्यूइस मेरियम *(Lewis Meriam)* के विचार—

'लोक सेवा तथा विशिष्ट प्रशिक्षण (Public Service and Special Training) नामक अपने व्याख्यानो मे ल्यूइस मेरियम ने यह तो स्वीकार किया कि पोस्डकोर्ब (POSDCORB) क्रियायें व्यवहारत सभी प्रशासकीय स्थितियो मे पाई जाती हैं परन्तु उन्होने यह तर्क दिया कि लोक-प्रशासन के POSDCORB विचार मे एक आवश्यक तत्व की उपेक्षा कर दी गई है, और वह तत्व है 'पाठ्य विषय का ज्ञान' (Knowledge of subject matter)। उन्होने कहा कि "हम कुछ कार्यों की योजना बनानी होती है, हमे कुछ कार्यों का सगठन करना होता है, हमे कुछ कार्यों का निर्देशन करना होता है।" उन्होने आगे कहा कि "किसी भी अभिकरण (Agency) के प्रभावपूर्ण एव बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासन के लिए उस पाठ्य-विषय (Subject matter) का गहरा ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है जिससे कि वह प्रशासकीय अभिकरण मुख्यत सम्बन्धित होता है।"[2]

'कैंची के दो फलको के समान लोक-प्रशासन दो फलकों (Blades) वाला औजार है। उस औजार का एक फलका है POSDCORB के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रो का ज्ञान, और दूसरा फलका है उस पाठ्य-विषय (Subject matter) का ज्ञान जिसमे कि ये तकनीकें लागू की जाती हैं। उस औजार को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके दोनो ही फलके (Blades) ठीक हो।'[3] इस प्रकार मेरियम (Meriam) ने "सामान्य प्रशासक" जैसी किसी भी चीज के अस्तित्व को अस्वीकार किया क्योकि उनका विश्वास है कि सामान्य प्रशासन का

1 *Luther Gullick* Notes on the theory of Organization in Luther Gullick and L Urwick (Eds) Papers on the Science of Administration' p 13

2 *Lewis Meriam* Public Service and Special Training (1916), p 2

3 Ibid, p 267

प्रत्येक मामला अपना निजी पाठ्य-विषय से विशिष्ट रूप से बधा होता है। इस प्रकार POSDCORB पाठ्य-विषय (Subject matter) के महत्व पर जोर नही देता। वस्तुस्थिति यह है कि लोक-प्रशासन के उपयुक्त क्षेत्र मे दोनो ही विचार, अर्थात् 'पोस्ड कोर्ब (POSDCORB) तथा पाठ्य-विषय, सम्मिलित किये जाने चाहियें। POSDCORB हमें प्रशासन की ऐसी तकनीकें (Techniques) प्रदान करता है जो कि सभी प्रकार के प्रशासन मे आमतौर पर पाई जाती हैं। जब ये तकनीकें या विधियाँ प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रचलित समस्याओं पर लागू की जाती हैं तो वह व्यावहारिक प्रशासन (Applied Administration) हो जाता है। अत लोक-प्रशासन के क्षेत्र मे इन दोनो ही विचारो के बीच कोई विरोध नही पाया जाता। 'POSDCORB' विचार तो प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर जोर देता है और 'पाठ्य-विषय सम्बन्धी विचार' (Subject Matter View) प्रशासन के व्यावहारिक पहलू पर जोर देता है। अत लोक-प्रशासन मे दोनो का ही अध्ययन किया जाना चाहिये।

लोक-प्रशासन के अन्तर्गत केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय–सभी स्तर की सरकारो की एक सामान्य प्रक्रिया के रूप मे प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। इसमे सगठन की समस्याओ, सरकार की क्रियाओं तथा सचालन अधिकारियो द्वारा अपनाये जाने वाले तरीको का अध्ययन किया जाता है। इसमे कर्मचारी-वर्ग तथा वित्तीय प्रबन्ध की समस्याओ का भी अध्ययन किया जाता है। प्रजातन्त्रीय देशों मे सार्वजनिक सम्बन्ध तथा लोक-प्रशासन की सार्वजनिक उत्तरदायिता अध्ययन का एक आवश्यक पहलू होता है।

वास्तव मे लोक-प्रशासन की क्रियाओ का क्षेत्र इस बात पर निर्भर करता है कि लोग सरकार से क्या आशा करते है। यदि लोग यह आशा करते हैं कि सरकार का सम्बन्ध केवल कानून व व्यवस्था की स्थापना, न्याय के प्रशासन तथा ठेकों अथवा समझौतो को लागू करने मे है, तो लोक-प्रशासन की क्रियाओ का क्षेत्र सीमित कहा जायेगा। और दूसरी ओर, यदि लोग सरकार से यह आशा करते है कि वह उनके स्थायी कल्याण मे वृद्धि करेगी, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सामाजिक सुरक्षा की गारन्टी देगी और एक अच्छे रहन-सहन के स्तर का आश्वासन देगी, आदि-आदि, तो लोक-प्रशासन की क्रियाओ का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होगा।

प्रोफेसर ह्वाइट ने इस विचार का इन शब्दो मे समर्थन किया है—

"अपने व्यापक अर्थ में, प्रशासन के लक्ष्य स्वय राज्य के साध्य हैं। उदाहरण के लिये, शान्ति और व्यवस्था की स्थापना, न्याय की प्राप्ति, नवयुवको की शिक्षा, बीमारी एव सकट के विरुद्ध सुरक्षा तथा समाज के विभिन्न लडने वाले वर्गों तथा हितो के बीच एकता एव समझौता कायम करना और सक्षेप मे, अच्छे जीवन की प्राप्ति—इन सभी का प्रशासन एव राज्यो के लक्ष्यो से सम्बन्ध है।"[1]

1 Ibid, p 5.

लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन
(Public and Private Administration)

लोक प्रशासन के अर्थ तथा क्षेत्र के अतिरिक्त, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या लोक-प्रशासन एवं व्यक्तिगत प्रशासन में कोई भेद है। कभी कभी लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन अथवा सरकारी और गैर-सरकारी प्रशासन के बीच भेद किया जाता है।

जैसा कि साइमन (Simon) ने बताया है कि "सामान्य कल्पना यह है कि सरकारी प्रशासन का संगठन 'नौकरशाही' (Bureaucratic) आधार पर होता है किन्तु व्यक्तिगत प्रशासन की रचना का आधार व्यापारिक है, सरकारी प्रशासन का सम्बन्ध राजनीति से होता है जबकि व्यक्तिगत प्रशासन राजनीति से परे होता है, सरकारी प्रशासन की मुख्य विशेषता 'लालफीताशाही' (Rad Tapism) होता है किन्तु व्यक्तिगत प्रशासन म ऐसी बात नही पाई जाती।"[1]

लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन के बीच समानता के कुछ तत्वों का उल्लेख किया जाता है। लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन के बीच जो भेद किया जा सकता है वह पूर्ण नही है। बडे पैमाने की प्राइवेट व्यावसायिक संस्थाओं तथा विभिन्न सरकारी क्रियाओं एवं सेवाओं की कार्य-पद्धति तथा उनके संगठन के बीच *अनेक समानतायें पाई जाती हैं। प्रबन्ध तथा संगठन सम्बन्धी अनेक तकनीकें तथा* पद्धतियाँ लोक तथा व्यक्तिगत, दोनो ही प्रकार के प्रशासन में सामान्य रूप से पाई जाती हैं। फाइलें रखने, नोट करने तथा आँकडे उपलब्ध करने आदि से सम्बन्धित अनेक निपुणतायें दोनो ही प्रकार के प्रशासन म पाई जाती है। यही कारण है कि बहुधा अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी बडी-बडी व्यवसायिक संस्थाओं म पुन नियुक्त कर लिये जाते है और कभी कभी सरकार भी अपनी औद्योगिक संस्थाओं के संचालन के लिए प्राइवेट व्यावसायियो की सेवायें प्राप्त करती है।

लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे भेद
(Difference between Public and Private Administration)

दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे ऊपर उल्लेख की गई समानताओं के बावजूद इनमे कई विभिन्नतायें भी पाई जाती है। पाल० एच० एपिलबी *(Paul H Appleby)* इस विचार के सबसे ओजस्वी प्रणेता थे कि लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन म कई महत्वपूर्ण विशेषतायें पाई जाती है।

उनके कथनानुसार, व्यापक अर्थ मे सरकारी कार्य तथा स्थिति के कम से कम तीन ऐसे पूरक पहलू हैं जो कि सरकार तथा अन्य सभी संस्थाओं व क्रियाओं (व व्यक्तिगत प्रशासन) के बीच विभिन्नता प्रकट करते है। वे पहलू है क्षेत्र प्रभाव व विचार का विस्तार, जनता के प्रति उत्तरदायित्व, राजनैतिक प्रवृति।'[2]

1 Ibid p 8

2 Big Democracy p 110

कोई भी व्यक्तिगत व्यवसाय सरकार के सदृश विस्तृत नही होगा। सरकार की क्रियायें जितने विस्तृत क्षेत्र मे फैली होती है बडे से बडे व्यक्तिगत व्यवसायिक उद्यम की क्रियाये भी उतने क्षेत्र तक नही फैली होती है। कोई भी व्यक्तिगत या गैर-सरकारी व्यवसाय जनता के प्रति उस रूप मे जवाबदेह नही होता जिस प्रकार कि सरकारी विभाग होते हैं। दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे पाया जाने वाला यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भेद है। लोक-प्रशासन को जनता प्रेस (समाचार पत्रों) तथा सार्वजनिक मचो की आलोचनाओ का सामना करना पडता है। जन आलोचना की सूक्ष्म अन्वेषण करने वाली दृष्टि प्रशासन की ओर घूम जाती है। कोई भी विशिष्ट पग उठाने से पूर्व प्रशासको (Administrators) को इस बात पर सावधानी के साथ विचार करना पडता है कि उस पर जनता की सम्भावित प्रतिक्रिया क्या होगी।

प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को 'जनता की आलोचना रूपी बारूद' के बीच रहना तथा कार्य करना पडता है। इसके अतिरिक्त, सरकार को, किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व जनता के परामर्शो, उसकी अभिलाषाओ, इच्छाओ तथा भावनाओ को दृष्टिगत रखना पडता है। सरकार को इस बात का विचार करना पडता है कि किसी भी नीति को अपनाने के क्या राजनैतिक परिणाम होगे।

*नीचे लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन के बीच विभिन्नता की महत्व-*पूर्ण बातो का उल्लेख सक्षेप मे किया गया है।

(१) लोक-प्रशासन के अन्तर्गत आने वाली क्रियाओ का क्षेत्र बडे से बडे प्राइवेट व्यवसाय की क्रियाओ के क्षेत्र से काफी बडा होता है।

(२) लोक प्रशासन अपने आपको समुदाय की अनिवार्य आवश्यकताओ से सम्बन्धित रखता है। समुदाय की मूलभूत तथा महत्वपूर्ण आवश्यकताये लोक-प्रशासन द्वारा सन्तुष्ट की जाती है। लोक-प्रशासन का सम्बन्ध लोगो के जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा से होता है जो कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

(३) लोक-प्रशासन की क्रियाओ का आधार लाभोपार्जन करना नही होता जबकि व्यक्तिगत प्रशासन मे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना ही प्रेरक शक्ति होता है। लोक-प्रशासन का उद्देश्य समाज की सेवा करना होता है। लोक-प्रशासन की समस्त शक्तियां लोगो के जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने मे लगाई जाती है। और व्यक्तिगत व्यवसाय अपने लाभो को अधिकतम करने मे ही व्यस्त रहता है। लोक-प्रशासन अनेक ऐसे कार्य तथा सेवाये अपने हाथ मे लेता है जिनसे हो सकता है कि राजकोष को अधिक हानि उठानी पडे, परन्तु वे सेवाये समाज के जीवन के लिये आवश्यक होती हैं। व्यक्तिगत प्रशासन मे प्रशासक को यदि यह अनुभव हो जाए कि इस योजना अथवा कार्य मे लाभ नही होगा तो वह उसको छोड देगा, यद्यपि कभी-कभी उद्योगपति इस बात को स्वीकार नही करते कि व्यक्तिगत व्यवसाय का पूर्ण

ध्येय व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना है। वे कहते हैं कि वे भी समाज की सेवा की भावना से प्रेरित होते हैं।

(४) लोक-प्रशासन के अन्तर्गत व्यवहार मे कुछ एकरूपता अथवा समानता पाई जाती है। लोक-प्रशासन द्वारा बिना किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किये समाज के सभी सदस्यो को वस्तुऐं तथा सेवाऐं प्रदान की जाती हैं। व्यक्तिगत प्रशासन मे पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किया जा सकता है।

(५) लोक-प्रशासन का नियन्त्रण तथा नियमन देश के कानूनो के द्वारा किया जाता है। इसके कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, कार्य करने का ढग व इसकी क्रियाओ का क्षेत्र—सभी का निर्धारण देश के कानून से होता है। इसको कानून की सीमाओ के अन्तर्गत रह कर ही कार्य करना पडता है। यही कारण है कि लोक-प्रशासन को अनेक बार लाल फीताशाही (Red Tapism) कार्य की दैनिक परिपाटी तथा देरी आदि का सामना करना पडता है। सरकारी अधिकारी को कोई भी कार्यवाही किये जाने से पूर्व कानून की समस्त औपचारिकतायें (Formalities) पूरी करनी पडती हैं। किन्तु एक व्यक्तिगत व्यवसाय अपने कानून तथा नियम स्वय ही बनाता है जो कि व्यक्तिगत सुविधानुसार बदल जा सकते हैं। लोक-प्रशासन मे कोई भी कार्य करने के लिये सरकारी कर्मचारियो को कानूनी अधिकार की आवश्यकता होती है।

(६) दोनो ही प्रकार के प्रशासन मे विभिन्नता की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि लोक-प्रशासन अपने द्वारा किए जाने वाले प्रत्यक कार्य के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। इसको जनता के सम्मुख अपने सभी कार्यों की न्यायोचितता सिद्ध करनी पडती है। यह व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका द्वारा नियन्त्रित होता है। जनता के प्रति उत्तरदायी होना—लोक-प्रशासन की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषताओ मे से एक है। यह एक ऐसा लक्षण है जो कि व्यक्तिगत प्रशासन मे नही पाया जाता। सरकारी अधिकारियो को सदा यह बात ध्यान मे रखनी पडती है कि जनता द्वारा इनके सभी कार्यों के गुण-दोषो की विवेचना की जाती है, उन पर वाद-विवाद किया जाता है, उनकी आलोचना तथा सूक्ष्म जाच की जाती है। जनमत (Public opinion) सबसे बडा प्रतिरोध है जो कि सरकारी अधिकारियो को मनमाने कार्य करने से रोकता है। व्यक्तिगत व्यवसायो मे जनता द्वारा इतनी अधिक सूक्ष्म जाच पडताल नही की जाती।

(७) लोक-प्रशासन मे सरकारी अधिकारी के अपने नाम का कोई महत्व नही होता। वह अपने व्यक्तिगत नाम से काय नही करता बल्कि सरकारी सत्ता के एक एजेन्ट के रूप मे तथा उस पद के अधीन कार्य करता है जिस पर कि वह आसीन होता है।

(८) जनता के प्रति सरकारी अधिकारियो का रुख प्राइवेट व्यवसाय के रुख से भिन्न होता है। कोई भी सरकारी अधिकारी तब तक जनता की सेवा नही कर

सकता जब तक कि उसमे 'जन-हित तथा जन-सेवा की भावना' न हो। सरकारी कर्मचारियो को समुदाय की सेवा की भावना से कार्य करना पडता है।

(९) लोक-प्रशासन म वित्त (Finance) तथा प्रशासन पृथक-पृथक कार्य करते है। सरकारी अधिकारी जो धन व्यय करते हैं उनका उससे कोई सम्बन्ध नही होता। लोक प्रशासन मे सरकारी अधिकारियो पर भारी वित्तीय नियन्त्रण रहता है। व्यक्तिगत व्यवसाय मे धन निवेशकर्त्ता (Investor) के पास रहता है और वह उस धन को किस प्रकार व्यय करता है इसके बारे मे वह किसी के भी प्रति उत्तरदायी नही होता। दूसरी ओर, लोक प्रशासन मे जब सरकारी अधिकारी सार्वजनिक धन को खर्च करते हैं तो जनता के प्रतिनिधि के रूप मे व्यवस्थापिका (Legislature) उन पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखती है।

(१०) लोक प्रशासन द्वारा समुदाय को प्रदान की जाने वाली अनेक सेवायें एकाधिकारी (Monopolistic) प्रकृति की होती हैं।

उपरोक्त वाद-विवाद के निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि लोक-प्रशासन मे एकरूपता, अनामता तथा जनता के प्रति उत्तरदायिता की विशेषतायें पाई जाती है। यह कायदे व कानूनो के अन्तर्गत रहकर कार्य करता है और नागरिको को सेवायें प्रदान करते समय उनके बीच भेद-भाव नही कर सकता। लोक-प्रशासन की अपनी कुछ विशिष्ट तकनीकें तथा विशेषतायें होती हैं जो कि इसको व्यक्तिगत प्रशासन से पृथक करती हैं। किन्तु इस सबके बावजूद, लोक-प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन मे अन्तर केवल मात्रा का है, गुण का नही। बडे बडे व्यवसाय भी सरकार द्वारा बनाये गये कायदे व कानूनो के अन्तर्गत कार्य करते हैं। व्यक्तिगत व्यवसाय भी देश के कानूनो से इतने स्वतन्त्र नही होते जैसा कि समझा जाता है। लोक प्रशासन तथा व्यक्ति प्रशासन के अन्तर को अधिक बढा चढा कर नही बताना चाहिये। जहाँ तक इस तर्क का सम्बन्ध है कि व्यक्तिगत व्यवसाय के प्रशासन का भेदमूलक लक्षण व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना होता है, यह भी पूर्णत मान्य नही है। व्यक्तिगत व्यवसाय का पूर्ण ध्येय सदा व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना ही नही होता।

क्या लोक-प्रशासन एक विज्ञान है ?

(Is there a Science of Public Administration?)

लोक-प्रशासन से सम्बन्धित एक अन्य विवादास्पद समस्या यह है कि क्या इसको विज्ञान का दर्जा दिया जाना चाहिये ? क्या लोक प्रशासन को विज्ञान कहकर पुकारा जा सकता है ?

'लोक प्रशासन विज्ञान है या नहीं' इस प्रकार का उत्तर देने से पहले इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है कि विज्ञान से क्या अभिप्राय है ? विज्ञान शब्द का वास्तविक अर्थ है क्रमबद्ध ज्ञान। किन्तु 'विज्ञान' शब्द साधारणतः गणित, रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र जैसे अनेक भौतिक विज्ञानो से जुडा हुआ है। अत जन-साधारण की भाषा मे इसका अर्थ उस ज्ञान से लगाया जाता है जो प्रत्यक्ष दिशा मे सत्य

तथा ठीक प्रमाणित हो। इसके तथ्यों की जाँच की जा सकती है। विज्ञान निरीक्षण, प्रयोगों तथा अनुभवों के द्वारा अपने नियम बनाता है और फिर उनके आधार पर भविष्यवाणियाँ की जा सकती हैं। विज्ञान के नियम, जब भी निश्चित दशायें वर्तमान हों, सामान्य रूप से सभी जगह तथा प्रत्येक समय लागू होते हैं। विज्ञान के अध्ययन में जो रीति अपनाई जाती है वह है—अनुसन्धान (Investigation) परीक्षण (Observation), प्रयोग (Experimentation), सारणीकरण (Tabulation), वर्गीकरण (Classification) तथा सह-सम्बन्ध (Correlation)। इसके बाद इनसे सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। ये सामान्य निष्कर्ष, नियम तथा सिद्धांत पूर्णतः ठीक होते हैं तथा उनकी जाँच की जा सकती है। विज्ञान प्रत्येक दिशा में सत्य तथा ठीक होता है। इसके तथ्यों को पृथक् किया जा सकता है और फिर भी उनमें सापेक्षिक एकरूपता पाई जाती है। इस प्रकार यथार्थता अथवा पूर्णतः ठीक होना, समान रूप से लागू करने के लिये नियमों का वर्तमान होना तथा भविष्यवाणियाँ करना अथवा निष्कर्ष निकालना ही भौतिक विज्ञान के लक्षण हैं।

प्रश्न यह है कि क्या ये लक्षण लोक प्रशासन में पाये जाते हैं? क्या लोक-प्रशासन का ज्ञान ऐसा है जो कि पूर्णतः यथार्थ हो अथवा पूर्णतः ठीक उतरता हो? क्या इसके कोई ऐसे सिद्धान्त अथवा नियम हैं जो सभी जगह समान रूप से लागू हो सकें? क्या इसके तथ्यों की जाँच की जा सकती है? क्या इसके द्वारा भविष्यवाणियाँ की जा सकती हैं अथवा निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं?

अब हम इसकी *यथार्थता अथवा पूर्णता* के प्रश्न पर विचार करते हैं। बात यह है कि किसी भी सामाजिक विज्ञान को यथार्थता अथवा पूर्णता की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। सामाजिक विज्ञानों को मनुष्यों से व्यवहार करना पड़ता है। मनुष्यों के व्यवहारों में भारी विभिन्नतायें पाई जाती हैं और उनके बारे में भविष्यवाणियाँ नहीं की जा सकतीं। अतः किसी भी सामाजिक विज्ञान में ऐसे *यथार्थ अथवा पूर्ण नियम नहीं होते जिनके आधार पर यह भविष्यवाणियाँ कर सकें।* यदि यथार्थता अथवा पूर्णता (Exactness) ही विज्ञान का लक्षण होता है तो कोई भी सामाजिक विज्ञान, विज्ञान होने का दावा नहीं कर सकता। इसी कारण यदि पूर्णता को ही विज्ञान का लक्षण माना जाय तो लोक-प्रशासन भी विज्ञान होने का दावा नहीं कर सकता।

एक अन्य प्रश्न *यह है कि क्या लोक-प्रशासन ने किसी ऐसे नियम का विकास* किया है जिसको समान रूप से सभी जगह लागू किया जा सके। क्या लोक प्रशासन के कोई अपने सिद्धान्त हैं? कुछ ऐसे सिद्धान्तों के निर्माण का एक प्रयत्न किया गया है जिनके आधार पर लोक प्रशासन के अस्तित्व तथा प्रकृति को प्रतिपादित किया जाता है। प्रोफेसर एच० ए० साइमन ने 'Administrative Behaviour' (1947) *नामक अपनी* पुस्तक में प्रशासन के अग्रलिखित सिद्धान्तों का उल्लेख किया है —

(१) वर्गों के बीच कार्यों के विशेषीकरण (Specialization) के द्वारा प्रशासकीय कार्य-कुशलता अथवा निपुणता (Administrative Efficiency) बढ जाती है।

(२) किसी एक वर्ग के सदस्यो को सत्ता के निर्धारित पद-सोपान (Hierarchy) मे क्रमबद्ध करके प्रशासकीय निपुणता बढ जाती है।

(३) पद-सोपान मे किसी भी स्तर पर नियन्त्रण के क्षेत्र को कुछ सीमित करके प्रशासकीय निपुणता बढ जाती है।

(४) नियन्त्रण करने की दृष्टि से (क) उद्देश्य, (ख) प्रक्रिया, (ग) सेवा किये जाने वाले व्यक्ति अथवा (घ) स्थान के अनुसार कर्मचारियो के वर्ग बनाकर प्रशासकीय निपुणता बढ जाती है।[1]

परन्तु य सिद्धान्त प्रत्येक स्थिति मे दृढता के साथ लागू नही किये जा सकते। इसके अतिरिक्त, इनमे अनिश्चितता अथवा सदिग्धता का दोष पाया जाता है। जैसा कि प्रो० एच० ए० साइमन ने तीसरे 'सिद्धान्त' के विषय मे स्वय ही स्वीकार किया है।

"यह माना जाता है कि उन अधीनस्थ कर्मचारियो की सख्या जो किसी भी एक प्रशासक से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं, यदि सीमित—मान लीजिये छ — करदी जाय तो प्रशासकीय कार्यकुशलता बढ सकती है। यह मत कि 'नियन्त्रण का क्षेत्र' सीमित होना चाहिये, प्रशासन के एक अविवादास्पद तीसरे सिद्धान्त के रूप मे दृढतापूर्वक स्वीकार किया जाता है। नियन्त्रण के क्षेत्र को सीमित करने के बारे म दिये जाने वाले सामान्य तर्क सर्वविदित हैं और यहाँ उनको दोहराने की आवश्यकता नही है। एक बात जो सामान्य रूप से स्वीकार नही की जाती वह है प्रशासन से सम्बन्धित एक विपरीत सिद्धान्त, जो कि यद्यपि नियन्त्रण के क्षेत्र के एक सिद्धान्त की तरह प्रचलित नही है किन्तु उसके समर्थन मे भी उतने ही महत्वपूर्ण तर्क दिये जा सकते हैं। यह सिद्धान्त निम्नलिखित है

"कोई भी मामला कार्यरूप मे परिणित होने से पहिले सगठन के जितने स्तरो से गुजरता है उनकी सख्या न्यूनतम रखकर प्रशासकीय निपुणता मे वृद्धि की जाती है।"

'यह सिद्धान्त उन मूलभूत सिद्धान्तो मे से एक है जो कि कार्यविधियो को सरल करने मे प्रशासकीय विश्लेषणो (Administrative analysis) का पथप्रदर्शन करते हैं। किन्तु अनेक स्थितियो मे इस सिद्धान्त से जो परिणाम निकलते है वह नियन्त्रण के क्षेत्र के सिद्धान्त (Principle of span of control), आदेश की एकता के सिद्धान्त (Principle of unity of command) तथा विशेषीकरण के सिद्धान्त (Principle of specialization) की आवश्यकताओ के प्रत्यक्ष विरुद्ध पडते हैं।[2]

1 H A Simon p 21
2 H A Simon, p 26

से पहले प्रशासक (Administrator) को सदा स्वयं ही उस पर विचार करना होता है।

लोक-प्रकाशन के अध्ययन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण :

कार्यकुशलता व मितव्ययता की प्राप्ति लोक-प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। इस विषय के प्रारम्भिक लेखकों ने प्रशासन में कार्यकुशलता की प्राप्ति के प्रश्न पर ही विशेष बल दिया। वस्तुतः लोक-प्रशासन के वे तथाकथित 'सिद्धान्त' जो इसके विकास के प्रारम्भिक अवस्था मे प्रतिपादित किये गये थे, कार्यकुशलता की प्राप्ति के लिए सुझाये गये साधनमात्र थे।[1]

राजनीति व प्रशासन का विभाजन :

उपरोक्त कार्यकुशलता प्रधान दृष्टिकोण तथा अमरीकी सरक्षणता-विरोधी आन्दोलन (Antipatronage movement) को इस विचार से और भी बल मिला कि नीति-निर्माण का कार्य नीति को क्रियान्वित करने के कार्य से भिन्न है प्रथम कार्य जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका सभाओं का है तथा दूसरा कार्य तकनीकी दक्षता-प्राप्त एव राजनीतिक रूप से 'तटस्थ' (Neutral) प्रशासनिक अधिकारी-वर्ग का है। इस मान्यता पर 'राजनीति' व 'प्रशासन' के बीच एक विभाजन रेखा खीच दी गई कि 'राजनीति' के क्षेत्र मे तो मुख्य प्रश्न यह निर्णय करना है कि "क्या-क्या कार्य करने चाहिएँ ?" जबकि 'प्रशासन' के क्षेत्र मे मुख्य प्रश्न यह है कि "कार्य किस प्रकार किया जावे ?"[2] इस प्रकार 'नीति-निर्धारण' का कार्य 'राजनीति' से सम्बन्धित मान लिया गया और 'नीति-क्रियान्वन' का कार्य 'प्रशासन' से सम्बन्धित।

---

1 For Further details refer to John M Pfiffner and Robert V Presthus, *Public Administration* chapter I pages 7—21, Paul Meyer, *Administrative Organization*, A Comparative Study of the Organization of Public Administration, Stevens and Sons Ltd, London, 1957, Chapter I, pages 17—25, Dwight Waldo, *The Administrative State*, Chapters 2 and 3 pages 22—61, Morstein Marx (ed) *Elements of Public Administration*, Chapter 2, pages 27—48, Gullick and Urwick (ed) *Papers on the Science of Administration*, Chapters 4 and 5, pages 99—130, Herbert A Simon, *Administrative Behaviour*, A Study of *Decision Making Processes in Administrative Organization*, 1957, Chapter 2, pages 20—44

2 For details refer to Woodrow Wilson 'The Study of Administration' *Political Science Quarterly*, Vol 2 (June 1887), pages 197—222 As he observes 'The field of administration is a field of business It is *removed from the hurry* and strife of politics, that administration lies outside the proper sphere of politics Administrative questions are not political questions Although politics *sets the tasks for administration* it should not be suffered to manipulate its offices,' quoted by Dwight Waldo *Ideas and Issues In Public Administration*, A Book of Readings, McGraw Hill Book Co, N Y 1953, page 65 For further details also refer to, Goodnow Frank, J *Politics and Administration*, The Macmillan Co, 1900, Paul H *Appleby, Policy and Administration*, Alabama University Press, 1949

प्रशासन व राजनीति के इस भेद की काफी आलोचना हुई है और अब लोक-प्रशासन के विद्यार्थी ने इसको अस्वीकृत कर दिया है। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति निर्माण या निर्धारण के कार्य मे भी घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमे सक्रियभाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति-निर्धारण *का कार्य प्रशासनिक अधिकारी वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी* सम्पन्न किया जा सकता है। ऐसे किसी भी मंत्री की ओर संकेत करना कठिन है जो प्रशासन के लिए नीतियाँ निर्धारित करते समय अपने प्रशासनिक अधिकारियो (Civil servants) के परामर्श या विचारो से प्रभावित न हुआ हो। बहुत से, बल्कि सत्य तो यह है कि *अधिकांश, विधेयक मन्त्रीगण अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारियो की प्रेरणा* पर ही व्यवस्थापिका सभाओ के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका सभायें अधिकाश विधेयको को उनकी रूपरेखा मात्र मे ही पारित करती हैं, उनको विस्तृत रूप देने का कार्य प्रशासनिक अधिकारियो के कन्धो पर छोड दिया जाता है। 'हस्तान्तरित विधान' (Delegated Legislation) की सम्पूर्ण धारणा 'राजनीति' व 'प्रशासन' के विभाजन को अर्थहीन व तथ्यहीन सिद्ध कर देती है। तथ्यो व आंकडो के अभाव मे किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आकडे प्रशासनिक अधिकारी ही प्रदान करते हैं। अनेक कानून केवल इस कारण सशोधित अथवा रद्द कर दिये जाते हैं कि प्रशासनिक अधिकारियो को उन्हे क्रियान्वित करते समय अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। कानूनो व नीतियो की व्यावहारिकता अथवा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियो के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। प्रत्येक पग पर राजनीति व प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं; प्रत्येक पग पर प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। कोई भी ऐसी *नीति जो प्रशासनिक अनुभव पर आधारित नही है, भयंकर परिणामो को ही* जन्म देगी। प्रशासनिक अधिकारीगण अपने व्यापक व दीर्घ अनुभव के कारण प्रत्येक प्रशासनिक समस्या से पूरी तरह परिचित होते हैं और इस ज्ञान के कारण वे नीति-निर्माण के कार्य मे महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। ऐसे प्रशासनिक अधिकारियो के मत व परामर्श की अवहेलना फिर कैसे की जा सकती है? इस प्रकार "तुम अपना रास्ता नापो और मैं अपना" वाले दृष्टिकोण पर आधारित राजनीति व प्रशासन के उपरोक्त विभाजन को तथ्यो के विपरीत व अव्यावहारिक घोषित कर दिया गया है।

इतना ही नही, यह विचार भी कि सरकारी एजेन्सियो के प्रशासन का मूल्यांकन कार्य-कुशलता को प्रधानता देकर किया जाना चाहिए, अब विवाद का विषय बन गया है। इस दावे को भी चुनौती दी जा रही है कि प्रशासन के भी अपने कुछ 'सिद्धान्त' हैं। यह कहा जाने लगा है कि ये तथाकथित सिद्धान्त वास्तव मे कार्य-कुशलता की प्राप्ति के लिए सुझाये गये कुछ मार्ग प्रदर्शक तत्व (Guides) मात्र हैं और ये केवल कुछ विशिष्ट प्रशासनिक परिस्थितियों का वर्णन व विश्लेषण मात्र करते हैं। इनको सिद्धान्त न कहकर 'प्रशासन की कहावतें' (Proverbs of Administration)

कहना अधिक उपयुक्त होगा।[1]

लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति एक अन्य महत्वपूर्ण दृष्टिकोण 'सरकारी संस्थाओं के प्रशासनिक संगठन के वर्णन' (Description of administrative structure of the government bodies) पर बल देना है। यह दृष्टिकोण प्रशासन की 'पोस्ड कोर्ब' गतिविधियों (POSDCORB techniques) के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक संगठन, कार्मिक-वर्ग प्रशासन (Personnel administration) तथा वित्तीय प्रशासन का अध्ययन करना है।[2] किन्तु इस दृष्टिकोण में कठिनाई यह है : क्या उस वातावरण व सन्दर्भ (Environment) को, जिसमें लोक-प्रशासन कार्य करता है, दृष्टिगत रखे बिना प्रशासनिक संगठन व गतिविधियों का अध्ययन सम्भव व लाभप्रद है ? अध्ययन के इस दृष्टिकोण या रीति में मानवीय तत्व (Human factor) पर भी ध्यान नहीं दिया जाता। संगठन प्रधान अध्ययन (Structural study) आवश्यक तो है पर लोक प्रशासन की जटिल विषय-वस्तु को भली भाँति समझने के लिए अपूर्ण है।

लोक-प्रशासन के अध्ययन के प्रति एक तीसरा दृष्टिकोण 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' (Scientific Management) के आन्दोलन से सम्बन्धित है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों के अनुसार लोक प्रशासन की समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों और मान्यताओं के अनुकूल होना चाहिए।[3] यह आन्दोलन फ्रेडरिक टेलर (Frederick W Taylor) के शोध-लेखों (Researches) के साथ प्रारम्भ हुआ।[4] टेलर के अनुसार निजी उद्योग के क्षेत्र तथा लोक-प्रशासन के क्षेत्र में कार्यकुशलता सम्बन्धी समस्याएँ एक सी ही हैं। दोनों में कोई मूलभूत भिन्नता नहीं है। उसने काम करने के 'एक ही सर्वोत्तम तरीके" पर बल दिया। उसने कहा कि हर प्रकार के क्रिया-कलापों के प्रबन्ध के लिए वैज्ञानिक आधार पर सर्वोत्तम मार्ग या सिद्धान्त खोजे

---

1 Refer to Herbert A Simon, 'The Proverbs of Administration' *Public Administration Review* 6 (Winter 1946)

2 For studies of such a kind the most important is L. D White's 'Introduction to the Study of Public Administration' wherein he defines Public Administration as 'the management of men and materials in the accomplishment of the purposes of the State' To this can also be added Luther Gulick' who in *Papers on the Science of Administration* develops Henry Fayol's analysis of the administrative function Refer to the Papers published by the Institute of Public Administration N Y 1937

3 For details refer to Dwight Waldo's *The Administrative State* Chapter 3 'Scientific Management and Public Administration' pages 47—61, wherein he says, 'Scientific management is a system almost as elaborate as Marxism, with its central figures, its schisms, its mutations, its nuances, etc.,' page 47

4 Refer to his *The Principles of Scientific Management*, N. Y, 1915, and *Shop Management* N Y, 1911, both works reprinted in a combined volume, *Scientific Management*, N Y, and London, 1947

जा सकते हैं।[1]

लोक-प्रशासन के अध्ययन की नवीनतम रीति 'सामाजिक-मनोवैज्ञानिक' (Socio-psychological) या 'व्यवहारवादी' (Behaviourist) रीति है तथा इसके प्रमुख समर्थक हरबर्ट ए० साइमन (Herbert A Simon) हैं। अपनी पुस्तक 'Administrative Behaviour A Study of Decision-Making Procession Administrative Organizaion' मे उसने लोक प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत रीति का विरोध किया है। 'सामाजिक मनोवैज्ञानिक' या 'व्यवहारवादी' दृष्टिकोण के समर्थक यह कहते हैं कि लोक-प्रशासन के अध्ययन मे विशेष बल इस बात पर होना चाहिए कि प्रशासनिक सगठन (Organization) मे मानवीय व्यवहार का स्वरूप कैसा होता है तथा विभिन्न प्रकार के सगठन अपनी गतिविधियाँ किस प्रकार सचालित करते है। इस विचारधारा को मानने वालो का तर्क है विभिन्न प्रकार के सगठनो मे मानवीय व्यवहार व ग्राचरण का निष्पक्ष परीक्षण व अध्ययन किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियो का यह भी दावा है कि प्रशासनिक सगठनो की व्यावहारिक गतिविधियो का अध्ययन करके प्रशासन व सगठन के विषय मे कुछ सामान्य निष्कर्ष (Generalized conclusions) निकाले जा सकते हैं। लोक-प्रशासन के 'सिद्धान्तो' की आलोचनात्मक समीक्षा करने के बाद साइमन कहते हैं प्रत्येक विज्ञान के पास सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने से पूर्व कुछ धारणाएँ (Concepts) होनी चाहिएँ।'[2] साइमन के अनुसार निर्णय लेना' (Decision making) लोक-प्रशासन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधि है। विभिन्न सगठनो मे काम करने वाले व्यक्तियो की भी अन्य व्यक्तियों की तरह अपनी इच्छायें व आकाक्षायें होती है। उनका व्यवहार उनकी मनोवैज्ञानिक दशाओ, प्रेरणाओ तथा सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित होता है। प्रशासनिक विज्ञान का सम्बन्ध मानवीय व्यवहार-विषयक इन्ही तथ्यो के अध्ययन से होना चाहिए, उसे 'आदर्शों' (Values) के प्रश्न म नही उलझना चाहिए। सगठन क्या है ? यह पारस्परिक व्यवहार मे सलग्न व्यक्तियो के एक समूह का ही नाम है। इन सब व्यक्तियो का व्यवहार अनेक प्रकार के 'प्रभावो (Influences) के आधीन होता है। प्रशासन के विद्यार्थियो को इन 'प्रभावो' का अध्ययन करना चाहिए। इसके लिए उसे समाज शास्त्र व मनोविज्ञान की रीतियो का प्रयोग करना पडेगा। इस प्रकार 'व्यवहारवादी' रीति मे व्यावहारिक घटनाओ के अध्ययन (Empirical case studies), सावधानी से बनाई हुई सीमित धारणाओ, शब्दो की सुस्पष्ट परिभाषा

1 As Poul Meyer rightly observes 'Taylorism thus becomes the foundation of the whole movement for the improvement of the efficiency of administration which not only deals with problems of an organizational character but also prescribes a certain standard performance for the adminis trative staff" *Administrative Organization, A Comparative study of the Organization of Public Administration,* Stevens & Sons Ltd, London, 1957, page 20

2 *Administrative Behaviour*, page 37

तथा सुनिश्चित प्रयोग, मान्यताम्रा (Assumptions) के पूर्ण विवेचन व उनकी सीमाम्रो के वर्णन तथा ऐसे निष्कर्ष निकालने पर बल दिया जाता है जिनकी मन्य मनुसन्धानकर्त्ता समीक्षा कर सकें। इस रीति या हृष्टिकोण का स्वरूप सर्वव्यापी है और इसका उद्देश्य कुछ सामान्य निष्कर्षों (Generalizations) की एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना है जिनकी सहायता से यह समझा व समझाया जा सके कि सगठन व्यावहारिक रूप से किस प्रकार काम करते हैं तथा उनमें काम करने वाले व्यक्ति कैसे माचरण करते हैं।[1]

साराश म लोक प्रशासन जैसे विषय के उचित अध्ययन के लिए उपरोक्त सभी हृष्टिकोण उपयोगी हैं। इस विषय के अध्ययन मे *मानवीय तत्व (Human factor)* का स्थान सर्वोपरि रहना चाहिए।

लोक प्रशासन के अध्ययन की विधियो' (Methods) के विषय मे कुछ शब्द यहाँ मनुपयुक्त नही होगे इस सम्बन्ध मे बहुत से हृष्टिकोणो व रीतियो का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। वैज्ञानिक, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अथवा व्यवहारवादी विधियो का विवेचन किया जा चुका है। लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिए विविध प्रकार के साधनो का प्रयोग करते समय 'तथ्यो व मादर्शो' सम्बन्धी विवाद को हृष्टिगत रखना मावश्यक है।

लोक-प्रशासन का 'तुलनात्मक अध्ययन' (Comparative study) इस विषय के अध्ययन तथा शोध कार्य की एक लोकप्रिय विधि बन गया है। चुने हुए प्रशासनिक निर्णयो के अध्ययन के लिए 'केस विधि' (Case method) की ओर भी काफी ध्यान दिया जा रहा है। प्रशासन में निर्णय लेने की प्रक्रिया अत्यधिक दुरूह व जटिल बताई जाती है। प्रत्येक निर्णय मे अनेक प्रकार के तत्वो का योगदान रहता है। निर्णय की प्रक्रिया मे अनेक प्रकार के मार्गों मे से किसी एक का चुनाव करना पडता है। सम्बन्धित अधिकारी को निर्णय लेने से पूर्व यह सोचना व निश्चय करना पडता है कि विभिन्न मार्गो में कौनसा मार्ग चुना जाये और क्यो चुना जाये। ऐसे सभी प्रश्न महत्वपूर्ण होते है और इनसे सम्बन्धित प्रक्रियाम्रो का अध्ययन करने के लिये 'केस विधि' का प्रयोग किया जाता है। यह माशा की जाती है कि पर्याप्त सख्या मे ऐसे प्रशासनिक मामलो (Cases) का अध्ययन करने के बाद कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालना सम्भव हो सकेगा।[2]

---

1 Also refer to R S Parker *New Concepts of Administration*, 'Public Administration', Australia March 1962 Vol XXI, N 1 'Administrative Behaviour' and 'Administrative Science Quarterly' Published by the Graduate School of Business and Public Administration Cornell University, Ithaca, N Y

2 For details refer to Jitendra Singh "Case Method as a Tool of Building and Testing Hypotheses," *The Indian Journal of Public Administration*, New Delhi, July–September, 1962, Vol VIII No. 3, pages 332–347. For the distinction between case report, case history, case study and case-problem—

किन्तु ऐसे सामान्य निष्कर्ष (Generalizations) बनाने मे एक कठिनाई यह है कि जिस प्रकार के 'केस-अध्ययनो' (Case studies) पर वे आधारित होते है उन पर अध्ययन-कर्त्ता के निजी विचारो व पूर्वाग्रहो (Prejudices), उसकी व्यक्तिगत पसन्दगियो व नापसन्दगियो का प्रभाव रहता है। उसके द्वारा किया गया विश्लेषण एक विशेष प्रकार का झुकाव लिए हुए होता है। ऐसे अध्ययन-कर्त्ता के निष्कर्षों के औचित्य-अनौचित्य की जाच करने वाली कसौटी का अभाव है।[1]

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की विधियो व साधनो का प्रयोग लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिये किया जाता है। विश्लेषण की जिन विधियो का विकास अन्य सामाजिक विज्ञानो ने किया है, उनका भी लोक-प्रशासन के अध्ययन के लिए लाभप्रद प्रयोग किया जा सकता है।[2]

निष्कर्ष
(Conclusion)

लोक-प्रशासन का अर्थ, क्षेत्र तथा इसकी प्रकृति का अध्ययन करने के पश्चात् इसका महत्व स्वत ही स्पष्ट हो जाता है। लोक-प्रशासन को 'आधुनिक सभ्यता का हृदय' कहा जाता है। राज्य (State) की क्रियाओ एव कार्यों मे वृद्धि होने के साथ ही साथ, लोक-प्रशासन के कार्यों तथा उत्तरदायित्वो में स्वभावत वृद्धि होती जा रही है। चार्ल्स ए० बीयर्ड *(Charles A. Beard)* के शब्दो मे, प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण कोई दूसरा विषय नही है। सभ्य सरकार का भविष्य, और, मेरी सम्मति मे, सभ्यता का भविष्य हमारी इस योग्यता के ऊपर आधारित है कि हम प्रशासन के सम्बन्ध मे एक ऐसे विज्ञान, दर्शन (Philosophy) एव व्यवहार को विकसित करें जो सभ्य समाज के कर्तव्यो को पूरा करने की क्षमता रखता हो।"[3]

विज्ञान तथा शिल्पकला सम्बन्धी विकासो के कारण समाज की समस्यायें अत्यधिक विषम होती जा रही हैं। ऐसी परिस्थिति मे प्रशासकों को महान् शारीरिक व मानसिक गुणो से युक्त होकर अपने पेचीदे कार्यों को पूरा करने की जरूरत है। लोक-प्रशासको पर ऐसे सबसे अधिक कठिन एव नाजुक कार्यों को सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व है जिन पर कि मानव का अस्तित्व (Existence) ही निर्भर होगा अत

refer to Harold Stein, (ed) *Public Administration and Policy Development A Case Book*, N Y, Harcourt, Brace and Company, 1952, also Henry Reining, "Case-Method and Public Personnel Administration," *Public Personnel Review*, XII, July 1951, pages 151–158

1 For Case Studies refer to F M G Willson, *Administrators in Action*, George Allen and Unwin Ltd, 1961

2 For this refer to *Political Science, A Philosophical Analysis*, Vernon Van Dyke, Stevens & Sons Ltd. London, 1960

3 Charles A Beard, "*The Role of Administration in Government*" in the work unit in Federal Administration (Chicago, 1937), p 3, his other book *Public Policy and General Welfare* (New York, 1941), pp 149, 158–160, also deals with the—subject in an interesting way

उनको तो असाधारण विशिष्टताओं एव गुणों से युक्त होना चाहिए। इसी कारण वुडरो विल्सन *(Woodrow Wilson)* को यह कहना पड़ा

" प्रशासन को एक ऐसा विज्ञान होना चाहिए जोकि सरकार के मार्ग को दृढ बनाने का प्रयत्न करे अपने सगठन को मजबूत तथा शुद्ध बनाए और अपने कार्यों को कर्त्तव्य पालन की भावना के साथ सर्वोपरि रखे।" पॉल पीगर्स *(Paul Pigors)* के अनुसार, "लोक प्रशासन कम से कम प्रयत्न और जोखिम के साथ प्रचलित व्यवस्था को जारी रखने की गारन्टी करता है। इसका मूलभूत उद्देश्य व्यवस्था के अन्तर्गत अपरीक्षित एव नवीन मार्गों की खोज करना नहीं बल्कि उसका प्रबन्ध करना व उसको कायम रखना है। अत प्रशासक समाज में स्थिरता लाने वाले यन्त्र तथा परम्पराओं (Traditions) के सरक्षक हैं।"[1] प्रशासन अनेक सामाजिक विवादों को सुलझाता है तथा समाज में एकता, मेल व शान्ति स्थापित करता है।

---

1 Paul Pigors *Leadership or Domination*, p.264



मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका महाप्रबन्धक के रूप में
(The Chief Executive as General Manager)

प्रत्येक देश मे मुख्य कार्यपालिका ही प्रशासन की प्रधान होती है। लोक-प्रशासन के अमेरिकन लेखको ने मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को महाप्रबन्धक (General manager) की सज्ञा दी है। आमतौर पर सयुक्त प्रकृति (Corporate character) के एक सुसगठित निजी उद्यम के प्रधान (*Head*) को महाप्रबन्धक (*General manager*) के नाम से पुकारा जाता है और महाप्रबन्धक के रूप मे वह उस उद्यम अथवा व्यवसाय का पर्यवेक्षण (Supervision) निर्देशन (Direction) तथा नियन्त्रण (Control) करता है। इसी प्रकार मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका राज्य की प्रशासकीय मशीनरी का प्रधान होता है। किसी निजी उद्यम के महाप्रबन्धक के समान, वह राज्य की प्रशासकीय मशीनरी का निर्देशन, पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण करता है। प्रशासकीय प्रबन्ध मे नीति का विकास करने मे मुख्य कार्यपालिका को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। लोक-प्रशासन मे मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका की स्थिति केन्द्रीय होती है। चूंकि वही प्रशासन का प्रधान होता है अतः उस ही राज्य की सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी का निर्देशन, पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण करना होता है। उसे ही प्रशासकीय प्रबन्ध व्यवस्था मे नेतृत्व करना होता है।

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के प्रशासकीय कार्यों पर विचार-विमर्श करने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि दोनो ही प्रकार की मुख्य कार्यपालिकाओ, जोकि विभिन्न देशो मे पाई जाती हैं, के भेद को समझ लिया जाय अर्थात् ससदीय मुख्य कार्यपालिका (Parliamentary type chief executive) और अध्यक्षात्मक मुख्य कार्यपालिका (Presidential type chief executive), इगलैंड और भारत ससदीय किस्म की मुख्य कार्यपालिका के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं और सयुक्त राज्य अमेरिका अध्यक्षात्मक किस्म की मुख्य कार्यपालिका का एक विशिष्ट उदाहरण है। ससदीय किस्म की कार्यपालिक मे औपचारिक अथवा नाम मात्र की मुख्य कार्यपालिका (Titular chief executive) तथा वास्तविक मुख्य

कार्यपालिका (Real Chief Executive) के बीच भी भेद किया जाता है। औपचारिक अथवा नाम मात्र की मुख्य कार्यपालिका वह होती है जिसे वास्तविक प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार की मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक (Chief executive) के उदाहरण हैं—ब्रिटेन का राजा तथा भारत के राष्ट्रपति (Indian president)। ब्रिटेन का राजा अथवा रानी तथा भारतीय राष्ट्रपति यद्यपि राज्य के प्रधान होते हैं किन्तु इन देशों में वास्तविक कार्यपालिक शक्तियाँ मन्त्री परिषद् (Cabinet) में निहित होती हैं जिसे कि वास्तविक मुख्य कार्यपालिका (Real chief executive) के नाम से पुकारा जाता है। संसदीय प्रणाली में सरकार की सभी प्रशासकीय शक्तियाँ मन्त्री परिषद् में निहित होती हैं, जो कि अपने सब कार्यों के लिये राज्य की व्यवस्थापिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी होती है। संसदीय पद्धति में मन्त्री परिषद् (Cabinet) संसद (Parliament) के प्रति उत्तरदायी होती है और वह केवल तभी तक कार्य कर सकती है जब तक कि इसे संसद का विश्वास प्राप्त रहे। मन्त्री परिषद् द्वारा जो कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, हेल्डेन कमेटी (Haldane Committee) ने उनका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

"(१) संसद के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली नीति का अन्तिम रूप से निर्धारण।

(२) संसद द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार राष्ट्रीय कार्यपालिका (National executive) का सर्वोच्च नियन्त्रण, और

(३) राज्य के विभिन्न विभागों के कार्यों की सीमाओं का निर्धारण तथा उनमें समन्वय की स्थापना।"[1]

संसदीय प्रणाली में मन्त्री परिषद् का बना रहना व्यवस्थापिका के बहुमत के विश्वास पर निर्भर होता है।

कार्यपालिका की अध्यक्षात्मक पद्धति (Presidential system) संयुक्त राज्य अमेरिका में पाई जाती है। इस पद्धति में औपचारिक अथवा नाम मात्र की मुख्य कार्यपालिका (Titular Chief Executive) तथा वास्तविक मुख्य कार्यपालिका (Real chief executive) में कोई अन्तर नहीं होता। अध्यक्षात्मक पद्धति में केवल एक कार्यपालिका (Singular executive) होती है जो कि एक निश्चित अवधि के लिए चुनी जाती है तथा जो व्यवस्थापिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। इसमें एक व्यक्ति ही शासन का वास्तविक प्रमुख होता है और उसका कार्य-काल निश्चित होता है। मुख्य कार्यपालिका की संसदीय तथा अध्यक्षात्मक पद्धतियों के भेद पर प्रकाश डालते हुए प्रो॰ लास्की *(Prof Laski)* ने कहा कि

1 Report of the Machinery of Government Committee, 1918 p 6

"दोनो पद्धतियो के बीच भेद का सार यह है कि हमारे यहाँ इगलैंड मे तो व्यवस्थापिका का कार्यपालिका से पृथक कोई हित (Interest) नही होता किन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका मे उनके पृथक होने के कारण व्यवस्थापिका का हित पृथक ही होता है। अत हमारे यहाँ लोक सदन (House of commons) का अपने निर्देशक मण्डल (Board of Directors) म विश्वास होना चाहिये अन्यथा या तो निर्देशक मण्डल ही नया होगा अथवा ससद (Parliament) ही नई बनेगी। किन्तु अमेरिका मे ····· राष्ट्रपति अर्थात President किसी भी सदन (House) पर प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण नही कर सकता। उसे उसको भग करने का अधिकार नही होता। वह व्यवस्थापिका को प्रेरित कर सकता है धमकी दे सकता है और प्रलोभन दिखा सकता है। पर अमेरिकी व्यवस्थापिका का जीवन राष्ट्रपति की इच्छा के प्रतिकूल भी स्वतन्त्र रूप से जारी रहता है और दूसरी ओर काग्रेस (Congress) भी राष्ट्रपति को किसी कार्य के लिये मजबूर नही कर सकती· ·।"[1]

उपरोक्त दोनो प्रकार की कार्यपालिकाओ के अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड तथा सोवियत रूस मे अन्य प्रकार की कार्य-पालिकायें पाई जाती हैं। स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका (Collegial or plural type of executive) मे सात सदस्य होते है जो कि स्थिति अथवा पद मे पूर्णत बराबर होते हैं। उनमे कोई भी एक दूसरे से श्रेष्ठ नही होता। सोवियत रूस मे, सिद्धान्त रूप मे तो इगलैण्ड तथा भारतवर्ष के नमूने की एक ससदीय व्यवस्था तथा एक मन्त्री परिषद (Cabinet) पाई जाती है। परन्तु वस्तुत सोवियत राजनैतिक व्यवस्था मे न तो मन्त्री परिषद् का ही कोई महत्व है और न ससद (Parliament) का ही। असल मे तो कम्युनिस्ट पार्टी की तानाशाही के अन्तर्गत वहाँ एकदलीय तथा सामन्तशाही व्यवस्था वर्तमान है।

मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्य
(Administrative Functions of the Chief Executive)

प्रशासन के प्रमुख के रूप मे, मुख्य कार्यपालिका प्रशासन सम्बन्धी किन किन कार्यो को सम्पन्न करती है ? अपने प्रशासकीय सगठनो के प्रधानो (Heads) के रूप मे मुख्य कार्यपालिकाओ के प्रबन्ध सम्बन्धी क्या-क्या मुख्य कर्तव्य होते है ? इस प्रश्न का उत्तर लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) ने दिया है

"मुख्य कार्यपालिका" का क्या कार्य है ? वह क्या कार्य करती है ? उत्तर है पोस्डकोर्ब (POSDCORB)।

पोस्डकोर्ब (POSDCORB) शब्द अग्रेजी के कुछ अक्षरो को मिलाकर बनाया गया है जिसका उद्देश्य मुख्य कार्यपालिका के कार्य के विभिन्न कर्तव्यमूलक तत्वो की ओर ध्यान आकर्षित करना है और वह इसलिए चूँकि "प्रशासन"

1 Laski, *op cit*, pages, 222 23

(Administration) तथा "प्रबन्ध" (Management) शब्दों में अब कोई विशिष्ट सार नहीं रहा। पोस्डकोर्ब (POSDCORB) शब्द की रचना कुछ अंग्रेजी शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाकर की गई है।

"योजनाएं बनाना" (Planning)—इससे अभिप्राय है कि उन कार्यों की मोटी रूपरेखा तैयार करना जिनका किया जाना आवश्यक है और साथ ही उन तरीकों को भी निश्चित करना जिनके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाता है।

संगठन करना (Organising)—अर्थात् अधिकारी-वर्ग के ऐसे स्थायी ढांचे को तैयार करना जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य के लिये काम के उप-विभागों (Subdivisions) की व्यवस्था की जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है, उनकी व्याख्या की [illegible] और उनमें समन्वय (Coordination) स्थापित किया जाता है।

[illegible] व्यवस्था करना (Staffing)—स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण (Training) तथा उनके लिए कार्य करने की अनुकूल दशाओं का निर्माण करना।

निर्देशन करना (Directive)—इससे अभिप्राय है कि प्रशासन सम्बन्धी निर्णयों को करना तथा उन्हीं के अनुरूप कर्मचारियों को विशिष्ट व सामान्य आदेश तथा सूचनायें देना और इस प्रकार कार्य का नेतृत्व करना।

समन्वय करना (Coordinating)—अर्थात् कार्य के विभिन्न भागों को परस्पर सम्बन्धित करना और उनमें समन्वय स्थापित करना।

रिपोर्ट देना (Reporting)—इसका अर्थ है कि प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के सम्बन्ध में उन लोगों को सूचनायें प्रदान करना जिनके प्रति कार्यपालिका (Executive) उत्तरदायी है। इस प्रकार स्वयं को तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अभिलेखों (Records), अन्वेषण तथा निरीक्षण से परिचित रखना।

बजट तैयार करना (Budgeting)—राज्य की आय तथा व्यय का पूरा लेखा तैयार करना। इसके अन्तर्गत वित्तीय योजनायें तैयार करना, हिसाब-किताब रखना तथा प्रशासकीय विभागों को वित्तीय साधनों के द्वारा अपने नियन्त्रण में रखना आदि बातें सम्मिलित हैं।"[1]

मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के प्रशासन से सम्बन्धित कर्तव्यों के पोस्डकोर्ब (POSDCORB) वर्णन के प्रकाश में अब हम इस बात पर विस्तार से विचार करेंगे कि उसके (मुख्य कार्यपालिका के) वास्तविक कार्य क्या हैं?

(१) प्रशासकीय नीति का निर्धारण करना (Formulation of the Administrative Policy)—मुख्य कार्यपालिका के कार्यों की पोस्डकोर्ब (POSDCORB) व्याख्या के अनुसार, उसका सबसे पहला कार्य प्रशासकीय नीति की मुख्य रूप रेखाएँ निर्धारित करना है। पदाधिकारी अनेक महत्वपूर्ण मामलों के

---

1 Luther Gulick, 'Notes on the Theory of Organisation," in Luther Gulick and L. Urwick (Eds) *Papers on the Science of Administration*, p 13

सम्बन्ध मे मुख्य कार्यपालिका से विचार-विमर्श करते हैं तथा उसका परामर्श लेते हैं। मुख्य कार्यपालिका किसी भी सम्बन्धित पदाधिकारी के किसी विशिष्ट कार्य को अनुमोदित अथवा अस्वीकृत कर सकती है। मुख्य कार्यपालिका महत्वपूर्ण प्रशासकीय मामलो पर विभागीय अधिकारियो को परामर्श देकर प्रशासन की नीति का मार्ग-दर्शन तथा नियन्त्रण करती है। अनेक बार ऐसा होता है कि व्यवस्थापिका (Legislature) विस्तृत प्रश्नो के सम्बन्ध मे कोई निर्णय नही करती। वह तो केवल कानून के सामान्य सिद्धान्त निर्धारित कर देती है। जब कभी भी ऐसा कोई कानून लागू किया जाता है तो *मुख्य कार्यपालिका ही महत्वपूर्ण नीति-सम्बन्धी मामलो का निर्णय* करती है और वही व्यवस्थापिका द्वारा उस कानून मे छोडे गये अभावो की पूर्ति करती है। कानून को लागू करने की अवधि के बीच, कार्यपालिका अनेक बार अधिकारियो को यह सलाह देती है कि उन्हे कौन सा काम करना चाहिये और कौन सा नही। इस प्रकार मुख्य कार्यपालिका प्रशासकीय नीति की मुख्य रूप-रेखायें निर्धारित करती है तथा उसके क्रियान्वित अथवा निष्पादन (Execution) पर प्रभाव डालती है।

(२) सगठन के विस्तृत रूप का निश्चय करना (Laying down the detail of the organization)—अनेक कानूनो को लागू करने के लिये व्यवस्थापिकाओ (Legislatures) को प्राय विभागो (Departments), ब्यूरो (Bureaus) आयोगो (Commissions), कार्यालयो (Offices) तथा निगमो (Corporations) की स्थापना करनी पडती है। इन इकाइयो (Units) की आन्तरिक सगठन से सम्बन्धित विस्तृत बातो की पूर्ति मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) द्वारा ही की जाती है। *वही सगठनो की विशद रूपरेखायें निर्धारित करती है जिनके द्वारा* वि नीति के लक्ष्य पूरे किये जाते हैं। प्राय ऐसा होता है कि मुख्य कार्यपालिका को विभागो अथवा निगमो आदि के आन्तरिक सगठन मे सुधार, परिवर्तन एव हेर फेर करने पडते हैं। अनेक बार, प्रशासन को सकटो का सामना करना पडता है और ऐसी परिस्थितियों मे यह हो सकता है कि मुख्य कार्यपालिका द्वारा नये अभिकरणो (Agencies) की स्थापना की जाये अथवा पहले से ही स्थापित अभिकरणो का पुनर्गठन किया जाये। इस प्रकार मुख्य कार्यपालिका के सगठनो के विस्तृत रूपो का निर्धारण करती है जिनके द्वारा कि प्रशासन कार्य करता है

(३) कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उन्हे पदच्युत करने का अधिकार (Authority to appoint and remove the personnel)—सभी देशो मे राज्य के उच्च पदाधिकारियो की नियुक्ति करने का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को प्राप्त होता है। भारत मे सभी महत्वपूर्ण पदो की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति (President) के द्वारा की जाती हैं। उदाहरण के लिए, राज्यो के राज्यपालो (Governors), राजदूतों (Ambassadors), उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) तथा राज्यो के उच्च न्यायालयो (State High Courts) के मुख्य न्यायाधीशो एव न्यायाधीश

(Judges), संघीय लोकसेवा आयोग (Union Public Service Commission) के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्तियाँ। मुख्य कार्यपालिका जिन पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है उनको पदच्युत करने का भी अधिकार प्राप्त होता है। भारत के संविधान (Constitution) में उल्लिखित शर्तों के अन्तर्गत, उन उच्च पदाधिकारियों को पदच्युत करने का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को प्राप्त होता है जिन्हें कि वह नियुक्त करती है।

निम्न श्रेणी के प्रशासकों अथवा कर्मचारियों की भर्ती लोक-सेवा आयोग द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यपालिका के प्रभाव क्षेत्र से बाहर के कर्मचारियों का चुनाव प्रतियोगिता परीक्षा (Competitive Examination) के द्वारा किया जाता है।

(४) निर्देश एवं आदेश जारी करने का अधिकार (Authority of issue Directions and Commands)—किसी संगठन में काम करने की प्रेरणा निर्देशों एवं आदेशों से प्राप्त की जाती है। मुख्य कार्यपालिका का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि कानून समुचित रीति से क्रियान्वित किये जा रहे हैं या नहीं, और सरकार का प्रत्येक अभिकरण (Agency) एवं विभाग (Department) ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है या नहीं। वही विभिन्न विभागीय अध्यक्षों (Departmental heads) को विशिष्ट एवं सामान्य निर्देश जारी करती है जिससे कि प्रशासन का कार्य उचित रूप से चलता रहे। निर्देश एवं आदेश जारी करके वह प्रशासन का नेतृत्व करती है। जब हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है तो उसे हस्तक्षेप भी करना पड़ता है। जब उसके पथ प्रदर्शन की मांग होती है तो उसे पथ-प्रदर्शन करना पड़ता है। ये निर्देश (Directions) अधिशासी आज्ञाओं (Executive orders), घोषणाओं, पत्रों एवं परिपत्रों (Circulars) आदि का रूप ले लेते हैं। इन्हीं आज्ञाओं, निर्देशों तथा सूचनाओं के द्वारा मुख्य कार्यपालिका देश की प्रशासकीय मशीनरी पर प्रभावपूर्ण रीति से अपना प्रभुत्व एवं नियन्त्रण स्थापित करती है।

(५) प्रशासकीय संगठन के सम्पूर्ण कार्यों में समन्वय स्थापित करना (Coordination of the whole administrative organisation)—प्रशासनिक संगठनों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना—मुख्य कार्यपालिका का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। प्रशासन को एक एकीकृत संगठन के रूप में ही अपना कार्य करना चाहिए। सैंकड़ों अधिकारी संगठन तथा कार्यालय प्रशासन के कार्य में व्यस्त रहते हैं। उनकी क्रियाओं में उचित रूप से इसलिए समन्वय किया जाता है कि जिससे उनमें परस्पर किसी भी प्रकार का टकराव एवं दोहराव उत्पन्न न हो। मुख्य कार्यपालिका को विभिन्न विभागों (Departments) की भिन्न-भिन्न क्रियाओं में परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय स्थापित करना पड़ता है। उसे विभिन्न प्रशासकीय विभागों के मतभेदों को सुलझाकर उनमें परस्पर एकता कायम करनी पड़ती है। वही विभिन्न विभागों के पारस्परिक विवादों एवं मतभेदों को सुलझाने का अन्तिम आश्रय है।

सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी के सुचारु एवं कुशल सचालन के लिए उसके कार्यों मे समन्वय स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। मुख्य कार्यपालिका का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है।

(६) सम्पूर्ण प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण करना और उन पर नियन्त्रण रखना (Supervision and control of the functions of the whole administration)—प्रशासन के प्रधान के रूप मे मुख्य कार्यपालिका का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। विभिन्न प्रशासकीय अभिकरणो तथा विभागो की कार्य प्रणाली से सम्बन्धित सभी जानकारी उसको प्राप्त होनी चाहिये। जब कभी भी वह आवश्यक समझे, उसे जांच पडताल करने की आज्ञा देने का अधिकार होता है। वह प्रशासकीय विभागो से उनके कार्यों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी, अभिलेख (Record) कागजात अथवा फाइलें मांग सकती है। निरीक्षण तथा नियन्त्रण का यह कार्य इसलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योकि मुख्य कार्यपालिका अपनी काफी सत्ता अधीनस्थ अधिकारियो को सौंप देती है। अत उसका कर्तव्य है कि वह यह देखे कि उसने जो अधिकार हस्तान्तरित किये हैं कहीं उनका दुरुपयोग तो नही किया जा रहा है। मुख्य कार्यपालिका को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह राज्य (State) के किसी भी *विभाग, बोर्ड, ब्यूरो अथवा आयोग (Commission)* के कार्यों तथा प्रबन्ध की किसी भी समय देखभाल तथा जाँच पडताल कर सके। यह कार्य वह या तो स्वय कर सकती है अथवा इसी कार्य के लिए नियुक्त किये गये एक अथवा अधिक व्यक्तियो द्वारा सम्पन्न करा सकती है। भूतकाल मे सरकारी विभागो, सरकारी निगमो (Public corporations) के कार्यों तथा उच्च अधिकारियों के आचरण (Conduct) की जाँच पडताल करने के लिये भारत सरकार द्वारा अनेक जाँच समितियो (Enquiry Committees) एव आयोगों (Commissions) की नियुक्तियाँ की जा चुकी हैं। इनमे सबसे महत्वपूर्ण जाँच जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation) के कार्यों के सम्बन्ध मे जस्टिस एम० सी० छागला द्वारा की गई थी। मुख्य कार्यपालिका सम्बद्ध विभागो (Departments) से किसी भी प्रकार की जानकारी एव रिपोर्ट मांग सकती है। मुख्य कार्यपालिका के इस कर्तव्य का उल्लेख करते हुए विलौबी (*Willoughby*) ने लिखा है

"महा प्रबन्धक (General manager) का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह नियमित समयान्तरो के पश्चात् अपने निर्देशक मण्डल (Board of directors) के सम्मुख तत्कालीन परिस्थितियो एव आवश्यकताओ के बारे मे तथा इस विषय मे पूर्ण व विस्तृत विवरण प्रस्तुत करे कि भूतकाल में उसके द्वारा तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियो द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे प्रशासन कार्य किस प्रकार चलाया गया और यदि उसको यह कार्य उचित ढग से करना है तो उसके लिए जरूरी है कि वह स्वय अपन अधीनस्थ कर्मचारियो से वह सब विस्तृत सामग्री प्राप्त करे जिसकी कि उसे आवश्यकता है। ऐसा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो जिससे कि वह उपलब्ध की जाने वाली सामग्री एव जानकारी की प्रकृति तथा उसको

प्रस्तुत किए जाने की विधि का निर्धारण कर सके। यह भी वाछनीय है कि अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रत्येक प्रतिवेदनों (Reports) का मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के प्रतिवेदन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो और मुख्य कार्यपालिका को यह अवसर प्रदान किया जाये कि वह उनके प्रतिवेदनों पर अपनी टीका टिप्पणी कर सके तथा यह प्रकट कर सके कि वह प्रतिवेदनों में दिये गये उनके विवरण एवं सिफारिशों से कहाँ तक सहमत है तथा कहाँ तक उनका समर्थन करती है। किन्तु ऐसा विवरण प्रस्तुत न किये जाने की स्थिति में, एक ओर तो मुख्य कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के बीच वैसा स्पष्ट सम्बन्ध कायम न हो पायेगा जैसा कि होना चाहिये और विभिन्न क्षेत्रों के व्यावहारिक प्रशासन के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न होगा।"[1]

(७) बजट बनाना अथवा वित्तीय प्रबन्ध पर नियन्त्रण करने का अधिकार (Budgeting or the Authority to Control the management of Finance)- मुख्य कार्यपालिका को वित्तीय स्थितियों के सम्बन्ध में भारी सत्ता प्राप्त होती है। बजट तैयार करना, व्यवस्थापिका (Legislature) के सम्मुख उसको प्रस्तुत करना और व्यवस्थापिका द्वारा अनुमोदन होने के पश्चात् उसको क्रियान्वित करना—ये मुख्य कार्यपालिका के कर्त्तव्य हैं। वह वित्तीय योजनाएँ तथा वित्तीय नीतियों का निर्माण करती है और इस प्रकार वह वित्तीय क्षेत्र में देश का नेतृत्व करती है।

मुख्य कार्यपालिका के प्रशासन में सम्बन्धित कार्यों की उपरोक्त सूची से यह स्पष्ट है कि उसे व्यापक तथा महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने होते हैं तथा राज्य की प्रशासकीय मशीनरी का उचित रीति से कार्य कर सकना मुख्य कार्यपालिका के ठोस निर्णयों, प्रेरणाओं तथा नेतृत्व कर सकने की उसकी क्षमता पर निर्भर होता है। अतः केवल एक अत्यन्त योग्य व्यक्ति ही मुख्य कार्यपालिका के इन कार्यों को सम्पन्न कर सकता है।

मुख्य प्रशासक (Administrator in chief) होने के कारण, मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को (चाहे वह एक व्यक्ति हो अथवा कुछ व्यक्तियों का समूह) केवल सरकार की प्रशासकीय मशीनरी के साथ ही व्यवहार नहीं करना पड़ता, अपितु उसे न्यायपालिका (Judiciary) व्यवस्थापिका (Legislature), विधायकगणों (Legislators), अन्य मुख्य निष्पादकों अथवा मुख्य कार्यपालिकाओं, राजनैतिक दलों, जनता के विचारों तथा हितबद्ध समुदायों (Interested groups), से भी सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। इससे उसके कार्य की द्विमुखी प्रकृति (Dual nature) प्रकट होती है। एक ओर तो वह प्रशासन का प्रधान होता है और दूसरी ओर देश का राजनैतिक नेता होता है। उसे केवल प्रशासकीय कार्यों को ही सम्पन्न नहीं करना पड़ता बल्कि लोगों, समुदायों, विभिन्न हितों, समाचार-पत्रों, सशद

1 W F Willoughby, *op cit*, p 42-43

(Parliament) तथा दल (Party) से भी सम्बन्ध रखना एव व्यवहार करना पडता है। उसे समाचार-पत्रो तथा सार्वजनिक सभाग्रो के ग्रालोचनात्मक प्रहारो से प्रशासन को बचाये रखना होता है। उसे ससद के सदस्यो तथा विभिन्न राजनैतिक दलो की ग्रालोचनाग्रो का भी सामना करना पडता है। अपने विचारो व मतो को जनता तक पहुँचाने के लिए उसे सचार के साधनो का भारी उपयोग करना पडता है। जैसा कि जॉन ए० वीग (*John A Vieg*) ने कहा है "योग्यतम सहायको के होने के बावजूद भी, इस बात की ओर व्यक्तिगत ध्यान देना राष्ट्रपति (President) का कर्त्तव्य होगा कि वह कितना सार्वजनिक प्रचार करना चाहते हैं तथा राजनैतिक ज्ञान प्रदान करने वाली कितनी सेवाग्रो की व्यवस्था की ग्रावश्यकता समझते हैं। इस बात पर जोर देने की ग्रावश्यकता नही है कि जहाँ तक उसके द्वारा विभिन्न साधनो का प्रत्यक्ष उपयोग किये जाने का सम्बन्ध है, बुद्धिमानी इसी मे है कि वह प्रचार व कथन सम्बन्धी अपने विशिष्ट गुणो का अधिकतम उपयोग कर तथा अपनी कमियो को न्यूनतम कर दे।"[1] इस प्रकार मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को *जनता के सम्मुख प्रशासन का प्रतिनिधित्व करना पडता है। मुख्य निष्पादक* **अथवा मुख्य कार्यपालिका को राजनैतिक नेता (Political leader) तथा प्रशासन के प्रधान (Head of Administration) के द्विमुखी कार्य सम्पन्न करने पडते हैं।** इस द्विमुखी प्रकृति (Dual nature) के विषय म लिखते हुए प्रोफेसर ह्वाइट (*Prof White*) ने कहा है

'एक प्रजातन्त्रीय देश मे राजनीति तथा प्रशासन का समन्वय होना आवश्यक है और अनुकूल परिस्थितियो के अन्तर्गत ऐसा निष्पादक अथवा ऐसी कार्यपालिका इस कार्य को अच्छी प्रकार सम्पन्न कर सकती है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी उचित है कि प्रजातन्त्रीय व्यवस्था उत्तरदायी नेतृत्व की आवश्यकता होती है और उनकी नीति को प्रशासन के कारण कोई ठेस नही पहुँचेगी। राजनैतिक निष्पादको (Political executives) का यह विशिष्ट कर्त्तव्य है कि वे प्रशासकीय निर्देशन तथा प्रेरणा शक्ति प्रदान करें तथा सरकार की व्यवस्थापिका व कार्यपालिका शाखाग्रो के बीच समन्वय स्थापित करें और जनता के एक अभिकरण (Agency) के रूप मे उन लोगो के *प्रशासन की रक्षा भी करें जो इसको एक दल* (Party) का केवल *एक* उपासग (Adjunct) मात्र समझते हैं।'[2]

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका को प्रशासन से सम्बन्धित अनेक बातो का निर्णय करना पडता है और प्रशासकीय कार्यक्षमता एव कुशलता बहुत हद तक उसके निर्णयो पर ही निर्भर रहती है। यह उसकी जिम्मेवारी है कि वह देखे कि अन्य लोग उचित रीति तथा कुशलता के साथ अपना कार्य कर रहे हैं या नही। अत उसमे व्यक्तियो को परखने व समझने की योग्यता होनी चाहिये। उसके अन्दर

1 F M Marx, (Ed) Elements of Public Administration p 172 73

2 L D White op cit, p 56.

सार्वलौकिक उत्सुकता (Catholic curiosity) होनी चाहिये। उसे अनेक कार्य करने होते हैं और उससे यह आशा नहीं की जाती कि वह हर एक बात के बारे में काफी कुछ जानता होगा। उसे विशेषज्ञों (Specialists) के साथ काम करना होता है, परन्तु उसे प्रत्येक चीज के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी ही चाहिये जिससे वह यह जान सके कि ऐसे आदमी कहाँ से प्राप्त किये जायें जो कि किसी विशिष्ट कार्य के बारे में अत्यधिक ज्ञान रखते हों तथा जिन्होंने अपने विशिष्ट क्षेत्रों में विकास के क्रम को बराबर जारी रखा हो।"[1]

मुख्य निष्पादक में आत्म-निर्भरता (Self reliance) का गुण होना चाहिये जिससे कि वह शीघ्रता के साथ निर्णय करने में समर्थ हो सके। उसमें इतनी योग्यता भी होनी चाहिये कि वह अन्य लोगों से राजभक्ति या निष्ठा प्राप्त कर सके, अर्थात् उसमें प्रबल मानवीय, सहानुभूति तथा स्नेहपूर्ण होने चाहिएं। चरित्र (Character), बुद्धिमानी, निर्णय करने में शीघ्रता, अच्छा स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व, कार्य के प्रति रुचि, अधीनस्थ कर्मचारियों में विश्वास उत्पन्न कर देने की क्षमता—ये वे कुछ गुण हैं जो मुख्य निष्पादक कार्यपालिका (Chief Executive) को एक सफल प्रशासक बना देते हैं।

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका का कार्यालय (The Office of the Chief Executive)

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका के कार्य बहुत अधिक तथा जटिल हैं। मुख्य प्रशासक (Administrator in Chief) के रूप में उसकी यह जिम्मेवारी है कि वह यह देखे कि सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी उचित रूप से तथा कुशलता के साथ कार्य कर रही है या नहीं। देश की विशाल प्रशासकीय यन्त्र रचना का प्रभावपूर्ण रीति से निर्देशन व निरीक्षण करने तथा उस पर नियन्त्रण रखने के लिये मुख्य कार्यपालिका को एक ऐसे विशेष कार्यालय की आवश्यकता होती है जो कि उसके कार्यों को सम्पन्न करने में उसकी सहायता कर सके। मन्त्रिपरिषद् व्यवस्था (Cabinet System) वाली सरकार में, जहाँ कि देश के प्रशासन के लिये मन्त्रिपरिषद् के १६ या १७ सदस्य सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं ऐसे कार्यालय अथवा 'सामान्य कर्मचारी-वर्ग' (General staff) की आवश्यकता और भी अधिक होती है। जब मन्त्रिपरिषद् प्रशासन के लिए सामूहिक रूप से जिम्मेवार होती है तो प्रशासनिक मामलों के बारे में सामूहिक रूप से ही विचार विमर्श (Collective discussion) होना चाहिये। ऐसे विचार विमर्श अथवा वाद-विवादों का लेखा-जोखा अथवा अभिलेख (Record) भी रखा जाना चाहिये जिससे कि मन्त्रि-परिषद् के किसी मन्त्री (Minister) को यदि कभी किसी विचार विमर्श के बारे में संदेह हो तो वह उस अभिलेख से उस विषय में जानकारी प्राप्त कर सके।

1 Nigro op cit p 52

इसके अतिरिक्त, मुख्य कार्यपालिका प्रत्येक मामले पर विस्तार से विचार नहीं कर सकती। अत: कार्यों का सूक्ष्म परीक्षण करने की प्रक्रिया (Sifting process) का आश्रय लिया जाता है जिसके द्वारा कि कम महत्वपूर्ण मामलों के निर्णय मन्त्रि परिषद् से बाहर ही कर दिये जाते हैं। उसके कार्यालय अथवा "सामान्य कर्मचारी वर्ग" को 'फिल्टर्यर' और 'फनल' (filter and funnel) के रूप में कार्य करना होता है। इसका कार्य है कि यह मुख्य कार्यपालिका को इस योग्य बना दे कि वह छोटी-छोटी तथा आवश्यक बातों में अपना समय नष्ट किये बिना ही महत्वपूर्ण मामलों को निपटा सके।

प्रोफेसर एल० डी० ह्वाइट (*L. D. White*) ने ऐसे कार्यालय के निम्न उद्देश्य बताये हैं :

"(१) मुख्य कार्यपालिका को पूर्ण तथा नवीनतम बातों एवं घटनाओं से परिचित रखना।

(२) समस्याओं के सम्बन्ध में पूर्व-विचार करने में तथा भावी कार्यक्रमों की योजनायें बनाने में उसकी सहायता करना।

(३) इस बात का प्रबन्ध करना कि वे मामले, जिन पर कि कार्यपालिका को निर्णय देना है, उसके पास शीघ्रता के साथ तथा ऐसी दशा में पहुँच जायें कि जिससे वह उन पर बिना देर किये विवेकपूर्ण निर्णय कर सके तथा साथ ही, कार्यपालिका को अविचारपूर्ण व जल्दबाजी के निर्णयों से बचाये रखना।

(४) ऐसे प्रत्येक मामले को अलग रखना जिस पर कि शासन व्यवस्था के अन्तर्गत बाहर निर्णय हो सकता है।

(५) उसका समय नष्ट होने से बचाना।

(६) स्थिर नीति तथा कार्यपूर्ति के निर्देशन सहित ऐसे उपाय करना कि जिससे अधीनस्थ कर्मचारी उसके निर्णयों को मानें तथा उन्हें क्रियान्वित करें।"[1]

बजट तैयार करना—मुख्य कार्यपालिका का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्य है। विशेषज्ञों तथा तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों की सहायता के बिना वह इस कार्य को पूरा नहीं कर सकती। इन्हीं सब कारणों से प्रत्येक मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को एक 'सामान्य कर्मचारी वर्ग' (General staff) की आवश्यकता होती है जो कि कार्यों को सम्पन्न करने में उसकी सहायता कर सके।

यह कार्यालय एक ऐसा अंग होगा जिसके द्वारा कि मुख्य कार्यपालिका अपने कार्यों को सम्पन्न करेगी तथा अपनी शक्तियों (powers) का प्रयोग करेगी। यह कार्यालय ऐसे प्रलेख (documents) तथा सूचनाएँ एकत्र करेगा जिनके आधार पर मुख्य कार्यपालिका प्रशासकीय निर्णय करेगी। यह कार्यालय मुख्य कार्यपालिका

1 L. D. White, *op. cit.*, p. 52.

के निर्णय सम्बद्ध विभागों (Departments) को प्रेषित भी करेगा। यह सम्बद्ध विभागों के सन्मुख मुख्य कार्यपालिका की आज्ञाओं (orders) की व्याख्या करेगा जिससे कि वे समुचित रीति से उनको लागू कर सकें। इस प्रकार यह कार्यालय मुख्य कार्यपालिका की आँखों, कानों तथा हाथों का कार्य करेगा, जिनकी सहायता से वह प्रशासन का निर्देशन, निरीक्षण तथा नियन्त्रण करेगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मुख्य निष्पादक का कार्य
(Office of the Chief Executive in the United States of America):

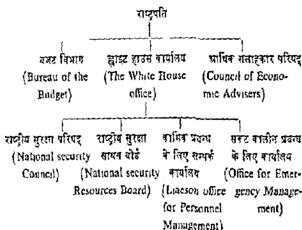
संयुक्तराज्य अमेरिका के राष्ट्रपति (President) का अपना प्रशासनिक स्टाफ होता है जो कि उसके विविध कार्यों की पूर्ति में उसकी सहायता करता है। प्रशासकीय प्रबन्ध के लिये स्थापित राष्ट्रपति की समिति (President's committee on Administrative Management) (१९३७) ने दृढ़ता के साथ यह सिफारिश की थी कि ऐसे निष्पादन कार्यालय (Executive office) की स्थापना होनी चाहिए; और सन् १९३९ में राष्ट्रपति ने उस सिफारिश की मुख्य बातों को लागू किया। जैसा कि अब है, राष्ट्रपति के निष्पादन कार्यालय (स्टाफ) में ह्वाइट हाउस कार्यालय (White House office), बजट विभाग (Bureau of the Budget), आर्थिक सलाहकार परिषद (Council of economic advisers) तथा अनेक अन्य अभिकरण (agencies) सम्मिलित हैं। ह्वाइट हाउस कार्यालय में राष्ट्रपति की सहायता के लिए अनेक सचिव (Secretaries), सहायकगण तथा पाँच या छः प्रशासकीय सहायक होते हैं। ये सचिव राष्ट्रपति के 'राजनैतिक' कार्यों की पूर्ति में अर्थात् ऐसे कार्यों की पूर्ति में जो कि वह कांग्रेस (Congress) प्रेस दल (party) वर्गों (groups) तथा सामान्य जनता के सम्बन्ध में सम्पन्न करता है, उसकी सहायता करते हैं। ये सचिव कांग्रेस, स्वतिशः कांग्रेस के सदस्यों सरकार के निष्पादन अभिकरणों (Executive agencies), समाचारपत्रों तथा रेडियो से पत्र-व्यवहार करते हैं। 'सामान्य लोक प्रशासकीय सहायक' (General public administrative assistants), जो कि दल एवं विशेषज्ञ होते हैं प्रशासकीय कार्यों को पूरा करने में राष्ट्रपति की सहायता करते हैं। वे उसके लिए प्रतिवेदन (Report) तैयार करते हैं अथवा अन्य कोई भी कार्य करते हैं जो कि राष्ट्रपति द्वारा उन्हें सौंपा जाता है। वे केवल राष्ट्रपति के लिये ही कार्य करते हैं तथा सरकार के अन्य विभागों (Departments) पर किसी भी प्रकार के अधिकार का प्रयोग नहीं करते। राष्ट्रपति को कर्मचारी वर्ग की सहायता बजट विभाग (Bureau of the Budget) द्वारा प्रदान की जाती है। इस विभाग का निर्माण सन् १९२१ के बजट तथा एकाउन्टिंग अधिनियम (Budget and Accounting Act) के द्वारा किया गया था। इसका प्रमुख कार्य, वार्षिक बजट तैयार करने में राष्ट्रपति की सहायता करना है। जैसी कि अधिनियम की व्यवस्था की गई है, बजट विभाग निम्न कार्य भी

सम्पन्न करता है : "बजट विभाग, जब भी राष्ट्रपति का निर्देश होगा तभी, विभागो (Department) तथा सस्थानो (Establishments) का सविस्तृत अध्ययन करेगा जिससे कि राष्ट्रपति इस बात का निर्णय करने मे समर्थ हो सके कि निम्नलिखित के बारे मे (लोक सेवाओ को सम्पन्न करने के कार्य अधिक मितव्ययता तथा कुशलता लाने के उद्देश्य से) क्या-क्या परिवर्तन किये जाने चाहियें, (१) ऐसे विभागो अथवा सस्थानो के तत्कालीन सगठन क्रियाओ एव कार्य की रीतियो के बारे मे, (२) उसके निमित्त किये जाने वाले विनियोजन (Appropriations) के बारे मे, (३) विशिष्ट क्रियायें विशिष्ट सेवाओ को सौंपने के बारे मे, अथवा (४) सेवाओ के पुनर्वर्गीकरण के बारे मे।" इस प्रकार बजट विभाग (Bureau of the Budget) के माध्यम से राष्ट्रपति विभिन्न विभागो के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है और अपने आपको इस बात से आश्वस्त कर सकता है कि वे विभाग सन्तोषजनक रूप मे कार्य कर रहे हैं। आर्थिक सलाहकार परिषद्, जिसका निर्माण कांग्रेस (Congress) द्वारा सन् १९४६ मे किया गया था, राष्ट्रपति को आर्थिक समस्याओ के बारे मे जानकारी एव परामर्श प्रदान करती है और राष्ट्रपति द्वारा कांग्रेस मे प्रस्तुत किये जाने वाले वार्षिक आर्थिक प्रतिवेदन (Economic Report) के तैयार करने मे विशेष रूप से उसकी सहायता करती है। "ये तीनो स्टाफ सगठन, जिनका कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राष्ट्रपति को वह सम्पूर्ण सहायता प्रदान नही करते जितनी कि उसे आवश्यकता होती है, परन्तु वे राष्ट्रपति के लिए यह सम्भव बना देते हैं कि वह उन व्यापक उत्तरदायित्वो एव कार्यों को कुछ निश्चिन्तता के साथ पूरा कर सके जो कि अपने पद के कारण उसे करने होते हैं। स्टाफ के सदस्य सूचना तथा आकडे एकत्र करते है तथा उन पर विचार करते हैं, योजनायें बनाते हैं तथा उन्हे राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत करते है, राष्ट्रपति को परामर्श देते हैं तथा उसके साथ विचार-विनिमय करते हैं, प्रशासकीय नियम तथा कानून बनाते हैं, और अनेक तरीको से, जैसा कि राष्ट्रपति उन्हे निर्देश करता है, वे सरकार की निष्पादन भुजा (Executive arm) के रूप मे कार्य करते हैं। ये व्यक्ति राष्ट्रपति को उन उत्तरदायित्वो एव कार्यों से मुक्त नही करते, जो मुख्य प्रशासक (Chief administrator) के रूप म उसे पूरे करने होते है। पर वे इतना अवश्य करते हैं कि अनेक बातों के विषय म सावधान रहकर तथा राष्ट्रपति को उच्चकोटि का परामर्श प्रदान करके, उसके लिए यह सम्भव बना देते हैं कि वह सर्वोच्च प्रशासक (Supreme administrator) के रूप मे अपने वास्तविक कर्तव्यो को पूरा कर सके।"[1]

---

[1] American Government National, State and Local, Johnson claudius of New York, Thomas Y Crowell Company, 1953, pp 252-53

राष्ट्रपति का निष्पादन कार्यालय[1]
(*Executive Office of the President*)



इंगलैंड में मन्त्रि-परिषद् सचिवालय
(Cabinet Secretariat in England)

ब्रिटेन में, मन्त्रि परिषद् समितियां (Cabinet Committees) तथा मन्त्रि परिषद सचिवालय (Cabinet secretariat) मन्त्रि परिषद् (Cabinet) की सहायता करते हैं। मन्त्रि-परिषद् समितियां दो प्रकार की हैं स्थायी समितियाँ (Standing or Permanent Committees) तथा तदर्थ समितियां (Ad Hoc Committees)। मन्त्रि परिषद् समितियां या तो विचार करने के लिए अथवा कार्य का एकीकरण करने के लिए होती हैं, कभी कभी दोनों प्रकार की होती हैं। ये समितियां मन्त्रि परिषद के सम्मुख एक अर्थ निर्मित नीति प्रस्तुत करती हैं। ये विभागीय मतभेदों (Departmental differences) अथवा कठिनाइयों को भी दूर कर सकती हैं। सन् १९५१ में ऐसी पांच स्थायी समितियां वर्तमान थी

(१) विधान समिति (The Legislation Committee)—(पहिले यह Home affairs committee के नाम से प्रसिद्ध थी)। इस समिति पर विधान के उस वार्षिक कार्यक्रम को तैयार करने का उत्तरदायित्व होता है जो कि संसद के सत्र (Session) का उद्‌घाटन करते समय राजा (King) के भाषण में सम्मिलित किया जाता है। यह समिति पृथक् पृथक् मन्त्रियों (Ministers) द्वारा जारी किए जाने वाले सभी विधानों का पयवक्षण करती है उनकी प्राथमिकताओं के सम्बन्ध में सुझाव

1 Adopted from U S Government Organisation Manual, 1950-51, p 493

देती है, उनके समय विभाग (Time table) तथा ससदीय विधियो व उपायो का निधारण करती है।

(२) प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee)—यह समिति शान्ति तथा युद्धकालीन प्रतिरक्षा से सम्बन्ध रखती है।

(३) लार्ड प्रेसीडैन्ट की समिति (The Lord President's Committee)—यह केवल सामाजिक सेवाओ के बारे मे अपनाई जाने वाली सिविल नीति से सम्बन्धित एक प्रकार की उपमन्त्री-परिषद् (Sub Cabinet) है।

(४) आर्थिक नीति समिति (The Economic Policy Committee)—इसका सम्बन्ध आर्थिक मामलो से होता है।

(५) उत्पादन समिति (Production Committee) इसका सम्बन्ध घरेलू उपयोग तथा निर्यात के लिए सरकार के विनिर्माण कार्यक्रमो (Manufacture programmes) से होता है।

इस प्रकार, मन्त्रि-परिषद् अपने कार्य मे इन पाँच स्थायी समितियो तथा लगभग २० या ३० तदर्थ समितियो से सहायता लेती है।

सचिवालय

(The Secretariat):

मन्त्रि-परिषद् सचिवालय का सम्बन्ध मन्त्रि-परिषद् की बैठको (Meetings) के लिए कार्यसूची (Agenda) तैयार करने से होता है। यह मन्त्रि-परिषद् की बैठको के कागजातो तथा निर्णयो को सुरक्षित भी रखता है। सचिवालय मे एक सचिव (Secretary), एक उप-सचिव (Deputy secretary), प्रत्येक निजी सचिवो (Private secretary) सहित, दो अवर सचिव (Under secretaries), केन्द्रीय साख्यिकीय कार्यालय का निर्देशक (Director of the Central Statistical Office), तीन सहायक सचिव (Assistant Secretaries), एक मुख्य लिपिक (Chief Clerk) और स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) तथा एक अधीनस्थ स्टॉफ (Subordinate Staff) होता है। मन्त्रि-परिषद् की बैठको मे केवल सचिव ही उपस्थित रहता है। मन्त्रि-परिषद् को अपने कार्यों को सम्पन्न करने म सचिवालय से अत्यधिक सहायता मिलती है।

मन्त्रि परिषद् सचिवालय की उपयोगिता के बारे मे लिखते हुए प्रो० हरमन फिनर ने कहा कि "मन्त्रि-परिषद् को या उसकी समितियो को अथवा पृथक्-पृथक् मन्त्रियो को जब भी आवश्यकता होती है विशेषज्ञो की सहायता मिलती है और अपनी समझ के अनुसार वे इस सहायता का उपयोग करते हैं। यह सहायता सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्राप्त किये गए तथा छने हुए तथ्यो (Facts) एव विचारो (Ideas) के रूप मे मन्त्रि-परिषद् तक पहुँचती है। फिर वहाँ से, मार्गदर्शन, परामर्श एव तथ्यो के इच्छुक, बाहर के तथा नीचे के विभागीय अधिकारियो को नीतियो तथा इच्छाओ के रूप मे प्रेषित कर दी जाती है।"[1]

1 Herman Finer, Governments of Greater European Powers, U S 1956, pp 167 68

भारत मे मन्त्रि-परिषद् सचिवालय
(Cabinet Secretariat in India)

इगलैंड की तरह हमारे देशो मे भी मन्त्रि परिषद सचिवालय है जो कि मन्त्रि परिषद् तथा उसकी विभिन्न समितियो के विचार विनियमो तथा निर्णयो (Decisions) के अभिलेख (Records) रखता है विभिन्न समितियाँ जैसे प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee) सयुक्त नियोजन समिति (Joint Planning Committee) आर्थिक समिति (Economic Committee), विदेशी मामलो की समिति (Foreign Affairs Committee) तथा मन्त्रि-परिषद् की नियुक्ति उप समिति (Appointment sub committee)। सचिवालय की सगठन रचना इस प्रकार है—(१) प्रधान सचिवालय (Main Secretariat), (२) सगठन तथा प्रणाली सभाग (Organisation and Method Division), (३) सैनिक प्रशाखा (Military Wing) और (४) आर्थिक प्रशाखा (Economic Wing)।

(१) मन्त्रि परिषद सचिवालय का अध्यक्ष एक सचिव (Secretary) होता है। उसकी सहायता के लिए एक सयुक्त सचिव (Joint secretary), एक उप-सचिव ४ अवर सचिव (Under secretaries) तथा ६ अनुभाग अधिकारी (Section officers) होते हैं। प्रधान सचिवालय की चार शाखाए होती है (क) मन्त्रि परिषद् शाखा (Cabinet Branch), (ख) समन्वय शाखा (Coordination Branch) (ग) प्रशासन शाखा (Administration Branch), तथा (घ) सामान्य शाखा (General Branch)।

(२) सगठन तथा प्रणाली सभाग (Organisation and method Division)—इस सभाग की स्थापना मार्च १९५४ मे की गई थी। इस सभाग का एक निर्देशक (Director) है जो कि भारत सरकार के स्थापना अधिकारी (Establishment officer) के रूप मे तथा गृह मन्त्रालय मे सयुक्त सचिव के रूप मे भी कार्य करता है। निर्देशक एक अधिकारी से सहायता लेता है जिसे कि 'निर्देशक का सहायक' (Assistant to the Director) कहा जाता है। सन् १९५५ मे एक उप निर्देशक (Deputy Director) का पद भी बना दिया गया था। विभिन्न मन्त्रालयो (Ministries) तथा विभागो (Departments) मे सगठन तथा प्रणाली इकाइयाँ (कोष्ठ) O and M units (cells) बने होते हैं जिनके द्वारा इस सभाग (Division) का काय चलाया जाता है। सगठन तथा प्रणाली सभाग ने सन् १९५४–५५ के अपने प्रतिवेदन (Report) मे अपने कार्यो की योजना की रूपरेखा बनाई। इसके उद्देश्य ये हैं

(क) सभी सम्बन्धित विभागो कार्यालयो तथा मन्त्रालयो को उनमे पाई जाने वाली अकुशलताओ तथा उनके सुधार की आवश्यकता एव क्षेत्र के बारे मे सचेत रखना।

(ख) कार्यों को निबटाने से सम्बन्धित तथ्यो (Facts) का पता लगाना तथा यह देखना कि वास्तव मे गलती कहाँ है और क्या है, काम मे देरी के कारणो की

छानबीन करना और यह देखना कि वे कौन से तत्व हैं जो कि काम मे कुशलता व क्षमता लाने मे बाधक बनते है ।

(ग) सुधार के लिए उपयुक्त उपाय बताना तथा उन्हे क्रियान्वित करना ।

(३) सैनिक प्रशाखा (The Military Wing)– इस प्रशाखा का सम्बन्ध मन्त्रि-परिषद् की प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee of the Cabinet), प्रतिरक्षा मन्त्री की समिति (Defence Minister's Committee), स्टॉफ समिति के प्रमुखो (Chief of the Staff Committee), प्रधान कार्मिक अधिकारी की समिति (Principal Personnel Officer's Committee), प्रधान सभरण अधिकारी की समिति (Principal Supply Officer's Committee), सयुक्त नियोजन समिति (Joint Planning Committee), सयुक्त प्रशासन नियोजन समिति (Joint Administration Planning Committee) व सयुक्त गुप्त वार्ता समिति (Joint Intelligence Committee) आदि की बैठको के सचिवालय सम्बन्धी कार्य (Secretariat work) से है ।

(४) आर्थिक प्रशाखा (The Economic Wing)—यह प्रशाखा मन्त्रि-परिषद् की आर्थिक, उत्पादन व वितरण समिति तथा अर्थसचिवो की समिति (Committee of Economic Secretaries) आदि के सचिवालय सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य के लिए उत्तरदायी होती है ।

मन्त्रि-परिषद् सचिवालय तथा सचिव के विषय मे रुथनास्वामी (Ruthna swamy) ने कहा है कि

"इस स्टॉफ की सहायता से मन्त्रि-परिषद् का सचिव (Secretary) भारत सरकार के सभी विभागो (Departments) द्वारा ऐसे सभी मामलो मे, जिनमे कि मन्त्रि-परिषद् अथवा मन्त्रि-परिषद् का नेता, प्रधान-मन्त्री (Prime Minister) रुचि लेते है समन्वय (Coordination) उत्पन्न करने तथा समय पर कार्यवाही किये जाने के अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है । अग्रजी नमूने के अनुरूप, उससे यह आशा की जाती है कि वह सिविल सेवा (Civil service) तथा सिविल कर्मचारियो के परामर्शदाता (Adviser) व वृद्ध मार्गदर्शक के रूप मे कार्य करे । वह अपने सचिवालय के सहयोग से विभिन्न विभागो को जोडने वाली कडी सिद्ध होगा तथा विभागो के मध्य एक प्रकार के अन्तर्संचार मार्ग के रूप मे कार्य करेगा । अपनी सर्वप्रमुख स्थिति के कारण चूंकि वह सिविल सेवा का प्रधान (Head) होता है अत इस नाते उसका यह एक बहुत बडा कर्त्तव्य होगा कि वह सगठन तथा सेवाओ के कार्मिक वर्ग मे एसा सुधार करे कि जिससे वे उन उच्च तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यो को पूरा कर सकें जो कि उन्हे सौंपे गये हैं । मन्त्रि-परिषद का सचिव एक सर्वोच्च श्रेणी का प्रशासक होना चाहिए जिसका चुनाव प्रेरणा (Initiative), शक्ति (Energy), चतुराई तथा बहुविध अनुभव (Experience) सम्बन्धी विशिष्ट गुणो एव योग्यताओ के आधार पर किया जाना चाहिए ।"[1]

1 Ruthnaswamy M Principles and Practice of *Public Administration*, Allahabad 1956, II Ed, p 222.

३

संगठन की कुछ सामान्य समस्याएं
(Some General Problems of Organization)

व्यक्ति हो अथवा सरकारें (Governments), जब वे कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कोई भी कार्य करते हैं तो उसके लिए नये संगठनों (Organisations) का निर्माण करते हैं। जब कभी भी सरकारें यह अनुभव करती हैं कि कोई विभाग (Department) कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर रहा है तो वे उसका पुनर्गठन करती हैं। जब कोई संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रहता है तभी वह पुनर्गठन के आक्रमण का शिकार बनता है। प्रायः लोग इस बात का रोना रोते हैं कि सरकार इस कारण कुशलता एवं दक्षतापूर्वक कार्य नहीं कर रही है क्योंकि इसका संगठन वैज्ञानिक व व्यवस्थित नहीं है। व्यक्तिगत अथवा वर्गीय क्रियाओं के लिए संगठन के व्यापक महत्व पर दृष्टिपात करने से यह प्रश्न पैदा होता है कि संगठन से हमारा अभिप्राय क्या है? संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड शब्दकोष (Concise Oxford Dictionary) में 'संगठन करना' (To organize) की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—'किसी चीज का व्यवस्थित ढांचा बनाना' (To give orderly structure to) अथवा 'किसी चीज का आकार निश्चित करना तथा उसको कार्य करने की स्थिति में लाना' (To frame and put into working order)। इस प्रकार शब्दकोष के अर्थ के अनुसार, "किसी चीज के परस्पराश्रित भागों (parts) को सम्बन्धित करने के कार्य को 'संगठन' की संज्ञा दी गई है जिससे कि प्रत्येक भाग को विशिष्ट कार्य मिल जाये और वह सम्पूर्ण भागों से सम्बन्ध रखता हुआ उस कार्य को सम्पन्न कर सके।" संगठन का अर्थ है कि कर्मचारीवर्ग के कार्य तथा उत्तरदायित्व इस प्रकार व्यवस्थित कर दिये जायें कि वे उस उद्देश्य को पूरा कर सकें जिसके लिए वे एक साथ मिलने को सहमत हुये थे। जब कभी भी कुछ व्यक्ति कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक साथ मिलते हैं तो उन्हें एक आयोजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होता है और इसी को संगठन कहा जाता है। उनके कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का पृथक्-पृथक् निर्धारण कर दिया जाता है और उनकी क्रियाओं में समुचित रूप से समन्वय (Coordination) स्थापित किया जाता है। किसी भी कार्य अथवा प्रायोजना (Project) के सुचारु संचालन के लिए एक अच्छे संगठन का होना अत्यन्त आवश्यक है। खराब अथवा निकृष्ट संगठन का परिणाम यह होता है कि कार्यों में परस्पर संघर्ष तथा उद्देश्यों के बारे में भ्रम उत्पन्न हो जाता है और कार्य की गति में पक्षाघात (लकवे)

जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। ग्लेडन *(Gladden)* के मतानुसार, "सगठन का सम्बन्ध किसी उद्यम में लगे हुये व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्धो के उस आकार अथवा रूप से है जिसका निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि जिससे वे उस उद्यम के कार्यों को पूरा कर सके।"[1] इसी प्रकार प्रोफेसर गॉस के कथनानुसार, "किसी सामूहिक कार्य में लगे हुए व्यक्तियो तथा वर्गों के प्रयत्नो एव उनकी क्षमताओ को ऐसे तरीके से परस्पर सम्बन्धित करने का नाम ही सगठन है जिससे कि कम से कम सघर्ष पैदा हुए ही वाञ्छित उद्देश्य पूरे हो सकें और उन लोगो को, जिनके लिए कि वह कार्य किया जा रहा है तथा उनको जो उस उद्यम अथवा कार्य मे लगे है अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके।"[2]

साइमन *(Simon)* ने 'सगठन' शब्द की व्याख्या अत्यन्त व्यापक अर्थ मे की है। उन्होने 'मनुष्यो के एक वर्ग मे उनके परस्पर व्यवहारो एव अन्य सम्बन्धो के जटिल आकार (Complex Pattern) को ही सगठन का नाम दिया है।[3]

इस प्रकार पृथक् पृथक् निर्धारित कर्तव्यो एव उत्तरदायित्वो के साथ उन व्यक्तियो का सयुक्त होना सगठन है जो कि कुछ वाञ्छित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलाये जाते है। कार्यो तथा कर्मचारियो के ऐक्यपूर्ण परस्पर-सम्बन्ध (Inter-relation) का नाम ही सगठन है।[4]

---

1 E N. Gladden, *The Essentials of Public Administration*, 1953, P 185

2 John M Gaus and others, *The Frontiers of Public Administration* 1936 pp 66-7

3 Herbert A. Simon, *Administrative Behaviour*, Mac Millan, p XVI

Definitions of Organization

4 (i) Organization is the arrangement of personnel for facilitating the accomplishment of some agreed purpose through the allocation of functions and responsibilities It is the relating of efforts and capacities of individuals and groups engaged upon a common task in such a way as to secure the desired objective with the least friction and the most satisfaction to those for whom the task is done and those engaged in the enterprise *The Frontiers of Public Administration*, John M Gaus 1936 pp 66-7

(ii) J. D Mooney, "*Organization* is the form of every human association for the attainment of a common purpose" *The Principles of Organization*, p 1

(iii) 'Organization' consists of the relationship of individuals to individuals and of groups to groups, which are so related as to bring about an orderly division of labour Pfiffner, *Public Administration*, p 45

(iv) " By formula organization we mean a planned system of Co-operative effort in which each participant has a recognized role to play and duties or tasks to perform " Simon and Others, *Public Administration*, p 5

(v) Organization is "the formal structure of authority through which work sub-divisions are arranged, defined and co-ordinated for the defined objective" Luther Gullick Notes on the *Theory of Organization Papers on Science of Administration*, p 13

संगठन की समस्या के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण
(Different Approaches to the Problem of Organization) :

भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने संगठन की समस्या के प्रति भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से विचार प्रगट किये हैं।

उरविक का दृष्टिकोण—संगठन की समस्या से सम्बन्धित उरविक (*Urwick*) के विचार 'प्रशासन के तत्व' (The Elements of Administration) नामक उनकी पुस्तक में दिये गये हैं। संगठन के प्रति उनका दृष्टिकोण 'यान्त्रिक अथवा इञ्जीनियरिंग (Mechanistic or the Engineering) दृष्टिकोण है। एक मोटर-गाड़ी का उदाहरण देते हुये उन्होंने कहा कि मनुष्य एक मोटरगाड़ी के बनाने तथा उसके चलाने (Driving) के बीच बिल्कुल स्पष्ट रूप से भेद करते हैं। वे उसके निर्माण की प्रक्रिया को विभिन्न नमूना तथा रूपों में विभाजित करते हैं। 'मशीन का रूपांकन करने (Designing the machine) का नाम ही संगठन है।'

इस प्रकार, रूपांकन की प्रक्रिया (Designing process) ही संगठन है। अपनी परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा कि यदि इस शब्द को सीमित अर्थ में विचार किया जाय तो संगठन का मतलब है "उन क्रियाओं का निर्धारण करना जोकि किसी भी कार्य अथवा योजना के लिए आवश्यक हों और उनको ऐसे वर्गों में क्रमबद्ध करना जोकि विभिन्न व्यक्तियों को सौंपे जा सकें।"[1]

इस प्रकार उरविक (*Urwick*) के यान्त्रिक दृष्टिकोण के अनुसार, संगठन एक नमूने अथवा रूपांकन (Design) के सदृश है जोकि विशेषज्ञों (Experts) द्वारा सुस्पष्ट सिद्धान्तों के आधार पर तैयार किया जा सकता है। संगठन का निर्माण मशीन के समान किया जा सकता है।

इस दृष्टिकोण की आलोचना
(Criticism of this view)

'यान्त्रिक' अथवा 'इञ्जीनियरिंग' दृष्टिकोण इन मानों में दोषपूर्ण है क्योंकि यह संगठन में मानवीय तत्व के महत्व की उपेक्षा करता है। संगठन का संचालन करने वाले लोगों के मानसिक तथा नैतिक दावों पर विचार किये बिना इसमें (संगठन में) व्यवहार करना पूर्णतः अवास्तविक होगा। किसी भी संगठन की असल प्रकृति को समझने के लिए कर्मचारियों के व्यवहार के ढंग पर विचार करना चाहिये। संगठन का संचालन करने वाले व्यक्तियों की मनोदशा (Psychology) का अध्ययन किये बिना, संगठन के केवल बाहरी ढाँचे का ही ज्ञान प्राप्त करके उसकी असल प्रकृति का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। "जब तक कि कर्मचारी वर्ग के कार्य का स्पष्टीकरण नहीं होता जिसके आधार पर कि ऐसे व्यक्तियों का चुनाव किया जा सके, जिन्हें कि संगठन की योजना में वर्णित स्थानों की पूर्ति करनी है, तथा उन्हें अपने अपने कर्त्तव्यों तथा विभिन्न सम्बन्धों के बारे में प्रशिक्षित किया जा सके, तब तक

1 L. Urwick, *The Elements of Administration*, p 36

सगठन का ढांचा (Structure) और कुछ नही बल्कि केवल चार्ट, रेखा चित्र, दैनिक कार्य की परिपाटी, मैनयुअल, अनुदेशो, (Instructions) अथवा शब्दो का समूह मात्र है।'[1] इस प्रकार, हम इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा नही कर सकते कि सगठन ऐसे व्यक्तियो का एक वर्ग (Group) है जिनके साथ मशीन के अनेक दातो (Cogs) के सदृश व्यवहार नही किया जा सकता। जीवित प्राणी होने के कारण चूंकि उन व्यक्तियो की अपनी इच्छायें, भावनायें, आशायें तथा आशकायें होती है अत सगठन का कोई भी ऐसा सिद्धान्त, जिसने कि मानवीय तत्व को अपने अध्ययन के क्षेत्र से बाहर निकाल दिया हो, समस्या का विकृत रूप ही प्रस्तुत करता है। सगठन का यह मानव-विहीन (Non-human) अथवा यान्त्रिक दृष्टिकोण इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि व्यक्ति, जोकि सगठन की इकाइयाँ (Units) होते हैं, ऐसे पूर्व-निर्धारित उद्देश्य एव स्तर के अनुरूप कार्य करते हैं जिससे कि उनकी भावनात्मक इच्छायें (Subjective desires) तथा आकाक्षायें सगठन के उद्देश्य की प्राप्ति मे हस्तक्षेप न करें। इस प्रकार स्पष्ट है कि सगठन के किसी भी सिद्धान्त मे 'मानवीय तत्व' (Human factor) की उपेक्षा कभी नही की जानी चाहिये। जैसा कि प्रोफेसर डिमोक *(Prof Dimock)* ने कहा है कि "किसी चीज को ऐसा एकीकृत रूप देने के लिए उसके परस्पर आश्रित भागो को व्यवस्थित रूप से सयुक्त करने का नाम ही सगठन है जिसके द्वारा कि निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सत्ता, समन्वय तथा नियन्त्रण को लागू एव क्रियान्वित किया जा सके। परन्तु ये परस्पर आश्रित भाग ऐसे व्यक्तियो के बने होते हैं जिन्हे कि उद्यम (Enterprise) के उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए निर्देशन तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा जिनके कार्य मे परस्पर समन्वय (Coordination) किया जाना चाहिए। ढाँचा (Structure) तथा मानवीय सम्बन्ध (Human relations) दोनो के ही मिश्रण का नाम सगठन है।"[2]

सगठन से सम्बन्धित एक अन्य प्रश्न यह पैदा होता है कि सगठनात्मक ढाँचे (Organizational Structure) का समायोजन (Adjustment) उपलब्ध मानवीय सामग्री के अनुसार किया जाना चाहिये अथवा मानवीय सामग्री का समायोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह सगठन मे ठीक बैठ सके ? क्या सगठन का ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिये कि वह उपलब्ध व्यक्तियो की योग्यताओ के अनुरूप हो या उपलब्ध मानवीय सामग्री तथा उसकी योग्यताओ का ध्यान किये बिना ही सगठन के एक आदर्श ढाचे का निर्माण कर लिया जाना चाहिये ? कुछ लोगो का तो यह विश्वास है कि सगठन ऐसा होना चाहिये कि वह उपलब्ध व्यक्तियो

1 E. H Anderson and G T Schwenning, *The Science of Production Organization*, New York, 1938 p 227

2 Marshall Edward Dimock and Gladys Ogden Dimock Public Administration Rinchart and Company, Inc New York, 1954, p 104, Herbert A Simon in third Chapter, Human Behaviour and Organization of his book *Public Administration*' and deals with this problem thoroughly

के अनुसार ही स्वयं को उपयुक्त तथा अनुकूल बनाले, जबकि अन्य लोगों का मत इससे विपरीत है।

परन्तु उरविक (*Urwick*) इस विचार के पोषक हैं कि सगठन का निर्माण आदर्श सिद्धान्तों के आधार पर कर लिया जाना चाहिए और तब उसमें मनुष्यों का समायोजन (Adjustment) किया जाना चाहिए। उनके मतानुसार, पहिले 'आकृति, (Design) अथवा सगठन का निर्माण होना चाहिए और फिर व्यक्तियों को उसमें ठीक स्थान पर बिठाने की व्यवस्था करनी चाहिये। इसके लाभ के बारे मे लिखते हुए उरविक ने कहा कि सगठन की समस्याओं को उचित रीति से सुलझाना चाहिये। जहाँ तक भी आवश्यक हो मनुष्यों का समायोजन अवश्य करना चाहिये। यदि सगठनकर्त्ता पहिले सगठन की योजना तथा रूपरेखा बना लेता है तो उसमें मनुष्यों की थोडी बहुत ही हेर-फेर करनी होगी और सगठन मे भी थोडे ही परिवर्तन करने होंगे। परन्तु यदि उसने पहले आदमी लिये और फिर उन सबको ही सगठन मे लाने की दृष्टि से सगठन का निर्माण का प्रयत्न किया तो उसका सगठन अनेक थेगडी व जोड लगे हुये एक पाजामे के सदृश हो जायेगा।

उरविक (*Urwick*) के मतानुसार, बात ऐसी नही है कि व्यक्ति की योग्यताओं (Qualifications) के अनुरूप सगठन मे कभी भी परिवर्तन किया जा सके। प्रयत्न यह होना चाहिये कि जब भी आवश्यक हो, एक आदर्श सगठन का निर्माण कर लिया जाए। व्यक्ति उस सगठन के अनुसार ही अपने आप को उपयुक्त बना लेगे। उरविक का मत है कि सगठन का निर्माण आदर्श सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिये। यदि सगठन की आकृति का निर्माण तार्किक आधार (Logical basis) पर नहीं किया गया है तो वह सगठन 'निर्दयी, अपव्ययी तथा अकुशल" है।[1] पर इस मामले में अधिक कठोरता नहीं बरती जानी चाहिये। यदि सगठन को व्यक्तियों के अनुरूप ठीक बनाने के लिये कभी उसके ढाचे मे कुछ हेर-फेर अथवा पुनर्समायोजन करने की आवश्यकता हो तो यह कर लिया जाना चाहिए। आखिरकार सगठन भी तो व्यक्तियों का एक कार्यकारी सम्बन्ध ही है। यह कोई ऐसी अव्यक्तिगत प्रक्रिया नहीं है जैसी कि इमारत के बनाने मे ईंटों और पत्थरों को एक दूसरे से जोड़ने मे पाई जाती है। यदि चुनाव करने की स्वाधीनता बडी मात्रा मे प्राप्त है और किसी विशिष्ट कार्य के लिये अत्यधिक मानवीय सामग्री उपलब्ध है तब सगठन का आदर्श ढाचा बनाया जाना चाहिये और व्यक्तियों की खोज करनी चाहिये तथा योग्यताओं के आधार पर सगठन के ढाचे मे उनको यथा स्थान नियुक्त कर देना चाहिये। यदि उपलब्ध व्यक्तियों के चुनाव की मात्रा सीमित है तो कुछ हद तक सगठनात्मक ढाचे का पुनर्समायोजन (Readjustment) कर लेना चाहिये। अतः स्पष्ट है कि सगठन मानवीय तत्व की उपेक्षा नहीं कर सकता अन्यथा उसमे रोग विषयक स्थितियां उत्पन्न हो जायेंगी।

1 Urwick *Ibid*, p 38

सगठन औपचारिक (Formal) भी होता है और अनौपचारिक (Informal) भी , औपचारिक सगठन (Formal organization) वह होता है जिसमे कि सम्बन्धो का आकार औपचारिक रूप से चार्ट अथवा रेखाचित्र मे निर्धारित कर दिया जाता है । सगठन के ढाचे की योजना औपचारिक रूप से बनाली जाती है और उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियो के सम्भावित सम्बन्धो का उल्लेख लिखित आचार-सहिताओ (Codes of conduct) मे कर दिया जाता है ।

परन्तु जब व्यक्ति एक साथ कार्य करते है तो उनमे परस्पर एक भावात्मक तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध का विकास होता है जो कि सम्भावित औपचारिक सम्बन्ध (Formal relationship) से विपरीत हो सकता है । इसे सगठन मे अनौपचारिक (Informal) सम्बन्ध का नाम दिया गया है । यह हो सकता है कि उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियो का असल सम्बन्ध (Actual relationship) व्यवहार म वैसा न घटित हो जैसी कि लिखित आचार-सहिताओ के द्वारा आशा की जाती है । काम मे लगे हुय कर्मचारी-वर्ग का यह असल सम्बन्ध ही अनौपचारिक सगठन (Informal organization) है । औपचारिक सगठन मे ढाचे का विचारपूर्ण नियोजन किया जाता है, चार्ट विशिष्ट सम्बन्धो को प्रकट करत है, किन्तु अनौपचारिक सगठन मे असल सम्बन्ध उससे भिन्न हो सकता है जैसी कि औपचारिक सगठन मे आशा की जाती है । चूंकि किसी सगठन मे काम करन वाले विभिन्न कर्मचारियो के व्यक्तित्व भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं अत इस कारण ही अनौपचारिक सगठन की उत्पत्ति होती है । यह हो सकता है कि कुछ अधिकारी अधिक दृढ निश्चयी हो तथा दूसरे कम परिश्रमी हों, और इस सीमा तक ही वे निम्न श्रेणी के कर्मचारियो के प्रभावो से शामिल हो भी सकते हैं और नही भी । अनेक बार ऐसा होता है कि कार्य की औपचारिक योजना (Formal plan) अपूर्ण होती है । यह कर्मचारियो के मार्ग-दर्शन के लिये थोडे से लिखित अथवा मौखिक अनुदेश (Instructions) प्रस्तुत करती है तथा उन कार्यों का उल्लेख करती है जो कि उन्ह करन होते है। इस प्रकार छोडे हुए इस रिक्त स्थान के क्षेत्र मे असल व्यवहार का रूप उससे भिन्न हो सकता है जैसा कि औपचारिक चार्टों एव रेखाचित्रो मे आशा की जाती है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कोई भी सगठन केवल आदर्श एव अव्यावहारिक सिद्धान्तो के आधार पर ठोस रूप मे कार्य नही कर सकता । किसी भी सगठन का वास्तविक कार्य सचालन पूर्णतया इस योजना के अनुरूप नही हो सकता जैसा कि विशेषज्ञो (Experts) ने निर्धारित की हो । सगठन मे काम करने वाले व्यक्तियो का अनौपचारिक सम्बन्ध (Informal relationship) औपचारिक सम्भावित सम्बन्ध से भिन्न हो सकता है । मानवीय व्यवहार सर्वदा ही एक निर्धारित ढाचे के अनुसार नही हो सकता क्योकि मानवीय व्यक्तित्व (Human personality) स्वय ऐसे जटिल एव उलझनपूर्ण तत्वो के दबाव मे रहता है जो कि एक निश्चित स्थान पर मनुष्य के आचार (Conduct) को प्रभावित करते हैं ।

संगठन के अर्थ का अध्ययन करने के पश्चात् अब हम उन अन्य समस्याओं पर दृष्टिपात करते हैं जो कि किसी भी संगठन के कार्य-संचालन में उत्पन्न हो जाती हैं और इसी समय पहली समस्या, जो कि संगठन के सम्बन्ध में उत्पन्न होती है, 'समन्वय' (Coordination) की है।

संगठन के आन्तरिक संचालन की कुछ मुख्य समस्यायें

Some Problems Involved in the Internal Working of Organizations)

प्राधिकार (*Authority*)—प्रशासनिक संगठन की रचना पद-सोपान (Hierarchy) पर आधारित होती है। उच्च और निम्न अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्धों के औपचारिक स्वरूप को ही संगठन कहा जाता है। प्राधिकार की हम कानून, स्थिति तथा मानवीय सम्बन्धों—तीन भिन्न दृष्टियों से परिभाषा कर सकते हैं। *संविधान या कानून किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को निर्णय लेने का सर्वोच्च* प्राधिकार सौंपता है और उन्हें यह शक्ति देता है कि वे उन निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश दें व उनसे काम लें। यह कानूनी या *औपचारिक (Legal or formal) प्राधिकार का अर्थ है। उच्च अधिकारी के पास* कानूनी रूप में अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देने की शक्ति है और अधीनस्थ कर्मचारियों का कानूनी तौर पर यह दायित्व है कि ऐसे सब आदेशों का पालन करें। कानून इस प्रकार प्राधिकार का क्षेत्र व उसकी सीमा निर्धारित करता है।

प्राधिकार किसी संगठन में व्यक्ति की स्थिति (Status) से भी सम्बन्ध रखता है। *कभी कभी अधिकारी प्राधिकार व्यक्ति संगठन के पद-सोपान में अपनी स्थिति के* फलस्वरूप प्राप्त करता है। केवल कानून ही व्यक्ति को प्राधिकार प्रदान नहीं करता, उसका पद भी उसको महत्वपूर्ण प्राधिकार प्रदान करता है।

किन्तु यह तर्क कि व्यक्ति को प्राधिकार कानून या अपनी प्रशासनिक स्थिति से प्राप्त होता है *पूरे चित्र को हमारे सम्मुख प्रस्तुत नहीं करता। कानून तथा पद से* प्राप्त होने वाले प्राधिकार का प्रयोग एक तीसरे तत्व पर निर्भर करता है जिसका महत्व कम व्यक्ति समझ पाते हैं। प्रत्येक संगठन में विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को संयुक्त रूप में कार्य करना पड़ता है। मिलकर काम करने के फलस्वरूप उन व्यक्तियों में कुछ अनौपचारिक सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं। ये अनौपचारिक सम्बन्ध औपचारिक या कानूनी प्राधिकार का स्वरूप संशोधित कर देते हैं। कानूनी या औपचारिक प्राधिकार का प्रयोग वास्तव में तभी सम्भव है जब सम्बन्धित संगठन के सभी व्यक्ति उसके सामान्य उद्देश्यों के प्रति निष्ठा की भावना से प्रेरित होकर प्राधिकार की आवश्यकता को स्वीकार कर लें।[1] प्राधिकार के सफल प्रयोग के लिए इस प्रकार सर्व-

---

1 For further details for this concept of authority refer to. Mary Parker Follet "The Illusion of Final Authority", *reprinted in* Albert Lepawsky (Ed) *Administration The Art and Science of Organization and Management* (N Y, 1949), pages 326–327 Also refer to Chester I Barnard, *The Functions*

प्रथम यह आवश्यक है कि उससे शासित होने वाले व्यक्ति उसके अनुसार काम करने के लिए तत्पर हों। यह तत्परता तभी आ सकती है जब संगठन का हर व्यक्ति आदेशों को भली भाँति समझ सके, उसमें उन आदेशों को क्रियान्वित करने की योग्यता तथा क्षमता हो और वह इस विश्वास से प्रेरित हो कि सब आदेश संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ही जारी किये गए हैं।[1]

व्यावहारिक दृष्टिकोण की भाषा में (In behaviouristic terms) प्राधिकार का अर्थ यह है कि प्रत्येक अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी अपने उच्चाधिकारी के आदेशानुसार ही अपना व्यवहार नियमित करता है। वह अपने उच्चाधिकारी के आदेशों का बिना किसी आलोचना के स्वीकार कर लेता है तथा उनका पालन करता है।[2]

सारांश में किसी संगठन में प्राधिकार के प्रयोग का अर्थ है निर्णय लेना, उन्हें क्रियान्वित करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश व निर्देश देना तथा उनके आचरण व व्यवहार के तरीकों को प्रभावित करना। अधीनस्थ अधिकारी तथा कर्मचारी कहाँ तक प्राधिकार को मानते हैं और उसके अनुसार काम करते हैं, यह प्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्चाधिकारी की सूझ-बूझ, व्यक्तित्व व योग्यता पर निर्भर करता है। समझदार उच्चाधिकारी को चाहिए कि वह सदा अधीनस्थ कर्मचारियों को साथ लेकर कदम उठाये। अभिप्राय यह है कि उसे अधीनस्थ कर्मचारियों का सदा पूरा सहयोग व समर्थन प्राप्त होता रहना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं को उनके आदर व स्नेह के योग्य सिद्ध करे जिससे उसके संगठन में काम करने वाले सभी व्यक्ति संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तन-मन से कार्य कर सकें। उच्चाधिकारी में यह समझने की क्षमता होनी चाहिए कि उसके सहयोगी व अधीनस्थ कर्मचारी उससे किस प्रकार के नेतृत्व व व्यवहार की आशा रखते हैं।

of the Executive (Cambridge Mass 1938) Ordway Tead *The Art of Administration* (N Y, 1951) and Herbert A Simon, *Administrative Behaviour* Chapter VII pages 123–153 The Role of Authority, John D Millet *Management in the Public Service The Quest for Effective Performance* N Y, 1954, pages 5–16

1 For further details refer to Chester I Barnard, *op cit* page 165 Herbert A Simon observes "Authority" may be defined as the power to make decisions which guide the actions of another It is a relationship between two individuals one "superior", the other "subordinate The superior frames and transmits decisions with the expectation that they will be accepted by the subordinate The subordinate expects such decisions, and his conduct is determined by them (Simon, *Administrative Behaviour*, page 125)

2 For full details of this approach refer to Simon *Administrative Behaviour*, pages 127–129, Simon and others, *Public Administration*, Chapters 8 and 9, pages 180–217

जो उच्चाधिकारी यह क्षमता रखता है वह अपने संगठन के सभी सदस्यों का विश्वास-पात्र बन जाता है और अपने प्राधिकार का प्रयोग सरलता व सफलता के साथ कर सकता है।

प्राधिकार व दायित्व मे पूर्ण सन्तुलन होना चाहिए

(Authority should be Commensurate with Responsibility) :

किसी भी संगठन के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि प्राधिकार और दायित्व मे पूर्ण सन्तुलित अनुपात हो। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उसके अधिकारियों को पर्याप्त प्राधिकार दिये जाने चाहियें। जिस व्यक्ति को किसी कार्य को सम्पन्न करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है उसे वे सब शक्तियां व सुविधायें भी प्राप्त होनी चाहियें जो उसके कार्य को सुचारु रूप म सम्पन्न करने के लिए अनिवार्य हैं। वह अपनी जिम्मेदारी या दायित्व को कहां तक सफलतापूर्वक व कार्य कुशलता से निभाता है यह तो बहुत कुछ उसके विवेक और कठिन परिश्रम पर निर्भर करेगा किन्तु उसके कार्य म आवश्यक प्राधिकार व सुविधाओं के अभाव के रूप म कोई रुकावट नहीं आनी चाहिये। इस प्रकार की रुकावट के रहते हुए विवेक व परिश्रम किसी काम न आ सकेंगे। प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए व्यक्ति के पास उचित कदम उठाने का प्राधिकार होना चाहिए। जब कोई अधिकारी प्राधिकार का प्रयोग करता है तो वह उसके परिणामों के लिए जिम्मेदार होता है, किन्तु यदि उसकी शक्तियां उसके कार्यों की प्रकृति को देखते हुए सीमित हैं तो उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही सीमित होगी। कोई भी अधिकारी उस दुष्परिणाम के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए जिसको रोकने मे वह अपनी सीमित शक्तियों या प्राधिकार के कारण असमर्थ था। अतएव शक्ति तथा पूर्ण जिम्मेदारी मे सन्तुलन होना चाहिये और दोनों सुनिश्चित होनी चाहियें।

नेतृत्व

(Leadership)

प्रशासनिक संगठन मे प्राधिकार की समस्या के साथ ही घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला एक अन्य प्रश्न है, और वह है नेतृत्व का प्रश्न। एक अर्थ में प्राधिकार (Authority) के प्रयोग के फलस्वरूप अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा-पालक इस कारण भी बन जाते हैं कि प्राधिकार के पीछे कानून व दण्ड का बल रहता है। संकुचित अर्थ में इस प्रकार प्राधिकार और दण्डात्मक शक्ति (Coercive power) मे कोई भेद नहीं है। किन्तु औपचारिक दण्डात्मक शक्ति या प्राधिकार के प्रयोग द्वारा सभी व्यक्तियों से आज्ञाओं या आदेशों का पालन करवाना कठिन है। इसके लिये प्राधिकार के प्रयोग के साथ-साथ समझाने बुझाने, तर्क वितर्क तथा विचार-विमर्श की प्रक्रियाओं का भी आश्रय लेना पड़ता है। यहां संगठन मे अच्छे व सुयोग्य नेतृत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। नेतृत्व उस प्रक्रिया का नाम है जो एक संगठन सदस्यों से सूझ-बूझ तथा प्रेरणा द्वारा सहयोग प्राप्त करती है शक्ति या बल के प्रयोग द्वारा नहीं। यह उस प्रभाव का नाम है जो एक संगठन के

सब सदस्यो को स्वत ही सयुक्त व सहयोगिक रूप से उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की प्रेरणा देता है। प्रशासन मे सफल नेता के अधीनस्थ कर्मचारी नही, अनुयायी होते हैं। वह उनसे काम लेने के लिये केवल मात्र दण्डात्मक शक्ति का ही प्रयोग नही करता, इससे पूर्व वह उनके दिमागो व दिलो पर अपने व्यक्तिगत गुणो का प्रभाव डालकर उनका सहयोग व समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वह सगठन के उद्देश्यो के प्रति पूर्ण निष्ठा का प्रदर्शन करके अन्य कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने की कोशिश करता है। यदि वह मानसिक रूप से जागरूक है, उसमे आवश्यक मानवीय गुण हैं और उसका चरित्र उच्च व दोष रहित है तो वह ऐसा विश्वास सरलता से प्राप्त कर सकता है।[1] अच्छे प्रशासनिक नेता मे अच्छा स्वास्थ्य उत्साह, सेवा भाव, ईमानदारी तथा निष्ठा जैसे गुणो का होना अनिवार्य है।[2] कुछ व्यक्तियों का कहना है कि एक प्रशासनिक नेता की वास्तविक विशेषतायें तभी स्पष्ट होती है जब वह एक विशिष्ट स्थिति म व्यक्तियो के एक विशिष्ट समूह मे कार्य करता है। एक ही नता का विविध प्रकार की स्थितियो मे सफलतापूर्वक काम करने के लिय विभिन्न प्रकार के गुणो की आवश्यकता होती है। यह एक सामान्य कथन है कि शान्तिकाल के प्रधान-मन्त्री म तथा सकटकाल के प्रधान मन्त्री मे भिन्न प्रकार के गुण होने चाहियें।

प्रत्येक प्रशासनिक नेता को देश की राजनीतिक आवश्यकताओ के प्रति जागरूक रहना चाहिये तथा उसमे उत्तरदायित्व की भावना होनी चाहिये। प्रशासनिक सगठन की समस्याओ का निराकरण करते समय उसे जनहित को अपने सामने रखना चाहिये। उसम 'राजनीतिक विवेक' (Political sense) का होना भी आवश्यक है तथा उसमे देश क राजनीतिक वातावरण को परखने की क्षमता होनी चाहिये। उसका यह भी दायित्व है कि वह अपने सगठन क आन्तरिक सचालन को अधिक से अधिक कार्य-कुशलता (Efficient) बनाये। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह सगठन के लक्ष्यो व उद्देश्यो को अच्छी प्रकार समझ सके, तदनुसार निर्णय ले सके, आवश्यकता पड़ने पर प्राधिकार को उचित मात्रा मे दूसरों को हस्तान्तरित (Delegate) कर सके और सगठन का पालन करवा सके। निर्णय लेने समय उसे उचित व अनुचित का चुनाव करना पड़ता है। इसके लिए उस सावधानी से सभी आवश्यक तथ्य तथा आकडे प्राप्त करने चाहियें। उसे अपने निर्णयो के सम्भावित परिणामो का भी

---

1 For details concerning qualities of Leadership refer Ordway Tead *The Art of Leadership*, N Y, 1935, pages 82—83, A W Gouldner (ed) *Studies in Leadership* Harper & Brothers N Y, 1950, John D Millett, *Management in The Public Service*, N Y, 1954, Chapter 2, pages 33—54, some 'traits" of Leadership have been enumerated (N B Refer to Ordway Tead "*The Art of Leadership* and Chester I Barnard *The Functions of the Executive*)

2 Refer to 'Inadequacies of the Trait Approach', Donald C Rowatt *Basic Issues in Public Administration* The MacMillan Co, N Y, 1961, pages 158—175

अनुमान होना चाहिए। उसकी निजी सफलता व उसके सगठन की सफलता काफी हद तक उसके निर्णयो की अच्छाई व उनके उचित क्रियान्वन पर निर्भर करेगी। कानूनो व प्रशासनिक प्रक्रियाओ का अन्धानुकरण असफल नेतृत्व का परिचायक है। सफल नेता को इस भाव से कदम उठाने चाहियें कि "व्यक्ति नियमो के लिए नही बने हैं, नियम व्यक्तियो के लिए बने हैं।" (Rules are for men, not men for rules)। व्यक्तियो के सगठित समूह म उसे अपनी सच्ची हिस्सेदारी का सबूत देना चाहिये। प्रशासनिक क्षेत्र मे ऐसे नेता कैसे प्राप्त किये जाये ? प्रशासनिक दायित्वो को सफलतापूर्वक निभाने के लिए उन्हे कैसे प्रशिक्षित किया जाये ? नेतृत्व से सम्बन्धित ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं।[1] व्यक्ति का नेतृत्व तभी प्रभावशाली होता है जब उसके समूह के सब सदस्य आत्मीयता से यह कहे 'यह व्यक्ति हमारा व्यक्ति है, क्योकि यह हमारी ही भाषा मे बोलता है (अर्थात् हमसे अपनत्व व निकटता अनुभव करता है)।

पद सोपान अथवा क्रमिक प्रक्रिया का सिद्धान्त ~ (Principle of Hierarchy or Scalar Process)

प्रत्येक सगठन मे पारस्परिक सम्बन्धो की एक रूपरेखा का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिए जिससे कि काय के प्रवाह मे सुविधा रहे। एक मामूली से व्यावसायिक उद्यम मे एक व्यक्ति नौ या दस व्यक्तियो को आदेश देता है, उनके कार्यों का पर्यवेक्षण (Supervision) तथा देख रेख करता है। परन्तु एक बडे सार्वजनिक उद्यम (Public enterprise) मे, जहाँ कि हजारो व्यक्ति कार्य करते हैं, पारस्परिक सम्बन्धो की स्पष्ट रूपरेखा का निर्धारण किया जाना इसलिए आवश्यक होता है जिससे कि सगठन सुचारु रूप से तथा दक्षता के साथ काय कर सके।

प्रशासकीय ढाचे का रूप कोण स्तूप' (Pyramid) अथवा 'पद सोपान' (Hierarchy) के सदृश होता है जहाँ कि प्रत्येक पदासीन व्यक्ति अपने अधीन पर नियन्त्रण रखता है। सगठन मे कार्यों का अनेक हिस्सो मे विभाजन तथा उप विभाजन किया जाता है और ये हिस्से (Parts) अधिकाधिक होते जाते हैं। सबसे ऊपर शिखर पर एक व्यक्ति होता है और उसम नीचे को सगठन का ढाचा अनेक अनुभागो (Sections) मे तथा अन्त मे अनक कर्मचारियो मे बिखरता चला जाता है जो कि सगठन के आधार होते हैं। सगठन पद सोपान (Hierarchy) के समान अथवा श्रेणी बद्ध (Graded) हो जाता है जो कि अनेक क्रमिक स्तरो से युक्त होता है तथा जिसमे प्रत्येक अधीन व्यक्ति अपने से एक दम ऊपर के कर्मचारी के प्रति उत्तरदायी होता है और उसके माध्यम स ही वह शिखर तक के अन्य उच्च कर्मचारियो के प्रति

1 For further details about the qualities of leadership also refer to T N Whitehead *Leadership in Democratic Society* Cambridge Mass. Harvard University Press 1936) Marshall E Dimock, *The Executive in Action* (N Y, Harper, 1945)

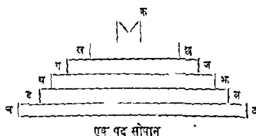
उत्तरदायी होता है। जब हम यह कहते हैं कि सगठन पद-सोपान के सिद्धान्त पर आधारित है तो इसका मतलब होता है कि सत्ता (Authority) शिखर से नीचे की ओर क्रमश उतरती चली जाती है।

सगठन मे पद-सोपान का सिद्धान्त (Principle of hierarchy) एक अन्य नाम, अर्थात् "क्रमिक प्रक्रिया" (Scalar process) के नाम से भी विख्यात है अब। हम यह देखेंगे कि क्रमिक प्रक्रिया का ठीक-ठीक अर्थ क्या है ? जेम्स मूनी *(James Mooney)* के अनुसार

"सगठन मे क्रमिक-सिद्धान्त (Scalar principle) का रूप वही होता है जिसे कि कभी-कभी पद-सोपान का सिद्धान्त कहा जाता है। परन्तु परिभाषा सम्बन्धी विभिन्नताओ से बचने के लिए यहाँ क्रमिक (Scalar) ही अधिमान्य (Preferable) है। क्रम (Scale) का मतलब है चरणो की पक्ति (A Series of Steps), अर्थात् श्रेणीबद्ध (Graded)। सगठन मे इसका अर्थ है कर्त्तव्यो को श्रेणी-बद्ध करना (Grading of duties), किन्तु विभिन्न कार्यों के अनुसार नही ''''''बल्कि सत्ता तथा उसके तुल्य उत्तरदायित्व की मात्राओ के अनुसार। सुविधा की दृष्टि से सगठन के इस रूप को हम क्रमिक-शृ खला (Scalar chain) कहेंगे'''''' । जब कभी भी हम कोई ऐसा सगठन पाते है, चाहे वह दो व्यक्तियो का ही क्यो न हो, जिसमे व्यक्ति उच्च तथा अधीनस्थ अथवा प्रवर तथा अवर (Superior and Subordinate) के रूप मे सम्बन्धित होते हैं तो उसमे क्रमिक सिद्धान्त वर्तमान होता है। यह क्रमिक शृ खला समन्वय की ऐसी व्यापक क्रिया का निर्माण करती है जिसके द्वारा समन्वय करने वाली सर्वोच्च सत्ता सगठन के सम्पूर्ण ढाँचे मे सक्रिय एव प्रभावशाली हो जाती है।"

सगठन के क्रमिक सिद्धान्त (Scalar principle) की उत्पत्ति क्रम (Scale) शब्द से हुई है जिससे तात्पर्य चरणो की पक्ति (A Series of Steps) अर्थात् श्रेणी-बद्ध (Graded) होने से है। और जब यह सगठन मे लागू होता है तो इसका मतलब होता है कि सत्ता (Authority) प्रबन्ध के शिखर-स्थान से अवरोही क्रम (Desending order) मे बढती है, अर्थात् क्रमिक रूप मे (Step by Step)। सगठन एक सीढी के समान है जिसमे कि किसी भी व्यक्ति को क्रमिक रूप मे चढना या उतरना पडता है। इसी प्रकार, सगठन के पद-सोपान (Hierarchy) मे व्यक्ति को क्रम से चढना या उतरना होता है। क्रमिक व्यवस्था (Scalar System) की आत्मा आदेश की एकता (Unity of Command) है। क्रम के शिखर पर एक बिन्दु (Point) (अथवा मुख्य निष्पादक) होता है जहाँ कि सत्ता के सूत्र (Lines of Authority) तथा उत्तरदायित्व (Responsibility) केन्द्रित होते हैं। इसमे सत्ता के सूत्र ऊपर तथा नीचे दोनो ओर जाते हैं जिससे कि हर एक कर्मचारी अन्तिम रूप मे सगठन के प्रधान (Head) के प्रति जवाबदेह हो जाता है और उसकी आज्ञायें (Orders) प्राप्त करने मे समर्थ हो जाता है। क्रमिक व्यवस्था के अन्तर्गत सगठन एक 'कोणस्तूप'

(Pyramid) के सदृश होता है जिसमे कि सर्वोच्च नेतृत्व शिखर पर होता है सत्ता क्रमिक रूप म आगे बढ़ती है और जिसके तल पर विस्तृत आधार होता है। सत्ता की क्रमिक-शृंखला (Scalar Chain) से तात्पर्य है कि प्रत्येक कार्यवाही शृंखला की प्रत्येक कड़ी मे से होकर गुजरनी चाहिये, चाहे उस कार्यवाही की दिशा ऊपर की ओर को हो अथवा नीचे की ओर को। चित्र क रूप मे इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।



एक पद सोपान

ख क के अधीन है, ग ख के अधीन (Subordinate) है, किन्तु ग भी क तथा ख के अधीन है। यदि क के द्वारा ग को कोई आज्ञा दी जाती है तो वह आज्ञा (Order) ख के द्वारा आनी चाहिये, और यदि ग को कोई बात क से कहनी है तो उसे वह ख के माध्यम से कहनी चाहिए। घ ग के अधीन है परन्तु वह ख और क आदि के भी अधीन है। इस प्रकार एक शृंखला या जंजीर के सदृश, इस व्यवस्था मे सत्ता का सूत्र क्रमिक रूप मे ऊपर तथा नीचे दोनो ओर को जाता है। च किसी कार्य के लिए सीधे क के पास नहीं पहुँच सकता। उसे ङ घ ग तथा ख के माध्यम से क तक पहुँचना होगा। इसी प्रकार यदि क च को किसी भी प्रकार का आदेश ख ग घ और ङ के माध्यम से देगा। प्रत्येक आज्ञा अथवा पत्र-व्यवहार 'उचित मार्ग द्वारा (Through Proper Channel) जाना चाहिये अर्थात् तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate Superior) द्वारा शिखर अधिकारी तक क्रम से आना चाहिए। एक लिपिक (Clerk) प्रधान लिपिक (Head Clerk) के अधीन है, प्रधान लिपिक एक कार्यालय अधीक्षक (Office Superintendent) के अधीन है तथा कार्यालय अधीक्षक अनुभाग-अधिकारी (Section Officer) के अधीन है आदि-आदि। यदि लिपिक को कोई बात अनुभाग अधिकारी से कहनी है तो वह प्रधान लिपिक के माध्यम से कार्यालय अधीक्षक तक जायेगा और तब उसकी मार्फत अनुभाग अधिकारी तक पहुँचेगा। इसी प्रकार यदि अनुभाग अधिकारी लिपिक को कोई आदेश देना चाहता है तो वह आदेश कार्यालय अधीक्षक की मार्फत प्रधान लिपिक तक पहुँचेगा और तब उसके माध्यम से लिपिक तक।

क्रमिक प्रक्रिया अपना निजी सिद्धान्त (Principle), प्रक्रिया (Process) तथा प्रभाव (Effect) रखती है। वे इस प्रकार हैं: (१) नेतृत्व (Leadership)

(२) सत्ता का प्रत्यायोजन (Delegation of authority), तथा (३) कार्यात्मक परिभाषा (Functional definition)। सिद्धान्त है नेतृत्व, प्रक्रिया है सत्ता का प्रत्यायोजन और प्रभाव है कार्यात्मक परिभाषा।

समन्वय या समायोजन
(Coordination)

'विशेषीकरण' (Specialization) तथा 'कार्य विभाजन' (Division of work) हर संगठन की विशेषता होती है। संगठन के भिन्न भिन्न सदस्य भिन्न भिन्न कार्य सम्पन्न करते हैं। यह विशेषीकरण तथा कार्य-विभाजन सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। किन्तु संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसके सभी सदस्यों में 'समूह भाव' (Team spirit) तथा सहयोग का होना अनिवार्य है। हर संगठन में यह प्रयास करना आवश्यक है कि कार्यों में अतिव्यापन (Overlapping) तथा दोहरापन (Duplication) न हो तथा सभी कर्मचारी व अधिकारी अधिक से अधिक समूह भाव से कार्य करें। विशेषीकरण तथा कार्य विभाजन स्वयं में कोई साध्य या ध्येय (End) नहीं है। उनका महत्व तो अधिकतम लाभप्रद परिणाम की प्राप्ति के लिये प्रयुक्त साधन (Means) के रूप में ही है। अधिकतम लाभप्रद परिणाम की प्राप्ति तभी सम्भव है जब हर व्यक्ति का कार्य अन्य व्यक्तियों के अनावश्यक हस्तक्षेप से रहित हो, पर साथ ही यह भी जरूरी है कि संगठन का हर सदस्य अपना-अपना काम करते हुए संगठन के सामान्य (Common) उद्देश्य की प्राप्ति में योगदान दे। ऐसा तब हो सकता है जब भिन्न भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न गतिविधियों या कार्यों में समायोजन या समन्वय स्थापित करने का उचित प्रबन्ध हो। दूसरे शब्दों में, सब गतिविधियों का स्वरूप भिन्न रहते हुए भी उनका अन्तिम उद्देश्य एक ही होना चाहिये। वे एक दूसरे के विरुद्ध न हों, पृथक् रहते हुए भी एक दूसरे की पूरक हों। इस दृष्टि से समायोजन (Coordination) को संगठन का प्राथमिक सिद्धान्त (First principle) बताया गया है, अन्य सब सिद्धान्त गौण हैं।[1]

समायोजन का उद्देश्य संगठन के विभिन्न भागों के सम्बन्धों को इस प्रकार निर्धारित करना होता है कि वे पृथक् पृथक् कार्य करते हुए भी 'पूर्ण संगठन' (Whole) के परिणाम या उत्पादन (Product) में अधिकतम योगदान कर सकें। यही संक्षेप में समायोजन का अर्थ है। संघर्षों को दूर करके संगठन कार्यों में समन्वय तथा ऐक्य

1 Mooney and Reiley describing the importance of coordination wrote in 'Onward Industry' that "This term expresses the principles of organization in toto, nothing less. This does not mean that there are no subordinated principles, it simply means that all the others are contained in this one of coordination. The others are simply the principles through which co-ordination operates, and thus becomes effective." page 19

(Unity of action) लाना ही इसका उद्देश्य है।[1] दूसरे शब्दो मे, सामूहिक प्रयास के सुव्यवस्थित प्रबन्ध का ही नाम समायोजन है।

समायोजन स्थापना की विधियाँ
(Methods of achieving Coordination)

किसी सगठन मे समायोजन स्थापित करने का एक तरीका यह है कि उसके सदस्यो की गतिविधियो को इस प्रकार सम्बद्ध किया जाये कि अन्योन्याश्रिता *(Inter-dependence)* तथा पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हो सके। इस प्रकार का समायोजन सगठन के अध्यक्ष के आदेशो, निर्देशो व आज्ञा-पत्रो द्वारा लाया जाता है। सगठन के अध्यक्ष का औपचारिक अधिकार (Formal authority) कार्यों मे ऐक्य उत्पन्न करता है किन्तु केवल औपचारिक अधिकार ही समायोजन की प्राप्ति के लिए काफी नही है। कुछ अन्य विधियो का भी प्रयोग आवश्यक है। अन्तर्विभागीय बैठके (Inter-departmental meetings) तथा सम्मेलन, अन्तर्विभागीय समितियाँ और समायोजन हेतु निर्मित विशिष्ट सस्थायें (Specialized bodies) इस प्रकार की कुछ अन्य विधियाँ हैं। इन सब विधियो द्वारा सगठन के सदस्यो मे उद्देश्य या ध्येय के एकत्व *(Singleness of purpose)* की भावना पैदा करने का प्रयास किया जाता है। इससे समायोजन की स्थापना सरल हो जाती है। भारत मे केन्द्र तथा राज्यो मे प्रत्येक प्रशासनिक स्तर पर समायोजन हेतु तरह-तरह के सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। राज्यपालो व मुख्य-मन्त्रियो के सम्मेलन तथा राष्ट्रीय विकास-परिषद (National Development Council) एव क्षेत्रीय परिषदो (Zonal Councils) के सम्मेलन प्रतिवर्ष समायोजन के उद्देश्य से ही आयोजित किये जाते हैं। राज्यो मे विभागाध्यक्षो, विभागीय सचिवो तथा जिलाधीशो के सम्मेलन करने का भी यही उद्देश्य रहता है। विचारो का लिखित तथा अलिखित आदान-प्रदान समायोजन की क्रिया को सरल बनाता है। सगठन मे अनौपचारिक सम्बन्धो का विकास भी इसमे सहायता पहुँचाता है। विभिन्न सरकारी विभागो मे बहुत सी 'स्टॉफ सस्थाएँ (Staff agencies), ब्यूरो तथा आयोगो का यही उद्देश्य रहता है। यह एक आम शिकायत है कि भारत सरकार के विभिन्न विभागों की गतिविधियो मे समायोजन का अभाव है। लोक-प्रशासन के आकार मे विस्तार तथा प्रशासनिक अधिकारी-वर्ग की सख्या मे वृद्धि भी समायोजन के अभाव के लिए काफी हद तक उत्तरदायी है। अनेक बार आयोगो व अन्य प्रशासनिक सस्थाओ की स्थापना बिना यह सोच-समझे कर दी जाती है कि उनका सम्पूर्ण प्रशासन पर क्या प्रभाव होगा। किन्तु समायोजन के मार्ग मे

---

1 Some definitions of co-ordination. Charlesworth, J C observes, co-ordination *"is the integration of the several parts into an orderly whole to achieve the purpose of the undertaking"* *Governmental Administration*, Harper and Bros, N Y, 1951 W H Newman observes Co-ordination is "the orderly synchronisation of efforts to provide the proper amount, timing and direction of execution resulting in harmonious and unified actions to a stated objective" *Administrative Action*, Prentice Hall Inc, N Y., 1953, page 403

सबसे बड़ी बाधा देश के प्रशासनिक संगठन के सदस्यों में एक सामान्य उद्देश्य की अनुभूति (A sense of common purpose) का न होना है। संगठन के अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि वह सदस्यों मे इस प्रकार की एक सकारात्मक भावना (positive spirit) पैदा करने का प्रयास करे। कभी-कभी भावुकता भरी अपीलों (Emotional appeals) का भी प्रयोग करना पड़ता है।

हस्तान्तरण
(Delegation)

किसी भी जटिल संगठन के कार्य-कुशल संचालन के लिये यह आवश्यक है कि आदेश की शृंखला (Chain of Command) में हर स्तर पर शक्ति हस्तान्तरण की व्यवस्था रहे। हस्तान्तरण की प्रक्रिया द्वारा एक उच्चाधिकारी किसी अधीनस्थ अधिकारी को निर्णय लेने तथा कार्य सम्पन्न करने का प्राधिकार सौंप देता है। हस्तान्तरण का अर्थ है व्यक्ति को अपने दायित्वों को निभाने के लिये व्यक्तिगत विवेक के अनुसार निर्णय लेने की छूट (Discretion) देना। संगठन ऊपर से नीचे तक उच्चाधिकारियों तथा अधीनस्थ अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्धों की शृंखला के स्वरूप का नाम है। इस शृंखला में अनेक स्तरों पर उच्चाधिकारियों के लिए अपने प्राधिकार तथा दायित्वों का कुछ भाग अधीनस्थ अधिकारियों को हस्तान्तरित करना आवश्यक हो जाता है। हस्तान्तरित प्राधिकार के प्रयोग के लिए अधीनस्थ अधिकारी उच्चाधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है। शक्ति या प्राधिकार के हस्तान्तरण का अभिप्राय यह नहीं कि उच्चाधिकारी ने उसे सदा के लिये पूर्णतया त्याग दिया है। मौलिक रूप से हस्तान्तरण के बाद भी प्राधिकार पूर्णरूपेण उसी का रहता है, क्योंकि जिस अधीनस्थ अधिकारी को वह हस्तान्तरित किया गया है वह उसके प्रयोग के लिए उच्चाधिकारी के नियन्त्रण तथा उसकी देख-रेख में रहता है। प्राधिकार का हस्तान्तरण करने वाले उच्चाधिकारी की यह जिम्मेदारी ज्यों की त्यों बनी रहती है कि वह यह देखे कि जिस अधीनस्थ अधिकारी को प्राधिकार हस्तान्तरित किया गया है वह उसका उचित प्रयोग कर रहा है या नहीं। वास्तव में हस्तान्तरण का उद्देश्य प्राधिकार को विभिन्न स्तरों पर सुविधा की दृष्टि से वितरित करना है। हस्तान्तरण करने वाले उच्चाधिकारी तथा हस्तान्तरित शक्ति प्राप्त करने वाले अधीनस्थ अधिकारी में एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वह यह है कि अधीनस्थ अधिकारी को निर्णय लेने की 'छूट' तो निस्सन्देह प्रदान की गई है परन्तु 'छूट' देने वाले उच्चाधिकारी का यह पूरा अधिकार है कि वह उस 'छूट' के प्रयोग पर नियन्त्रण रखे। अधीनस्थ अधिकारी अपने प्रत्येक कार्य के लिए उच्चाधिकारी के प्रति जिम्मेदार होगा। शक्ति या प्राधिकार का यह हस्तान्तरण एक उच्च इकाई (Unit) से निम्न इकाई की ओर या एक उच्चाधिकारी से निम्न अधिकारी की ओर होता है। उच्च इकाई या उच्च अधिकारी को हस्तान्तरण का स्वरूप बदलने

संशोधित करने तथा अपनी इच्छानुसार हस्तान्तरित शक्ति वापिस लेने का पूरा अधिकार होता है।

हस्तान्तरण की आवश्यकता तथा इसके लाभ स्वयंसिद्ध हैं। संगठन का अध्यक्ष तथा अधिकांश उच्चाधिकारी इस स्थिति में नहीं होते कि वे स्वयं उस सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग कर सकें जो कानून द्वारा उनको प्रदान की गई है। अपने काम को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए उन्हें अपनी कानूनी शक्ति का कुछ भाग निम्न अधिकारियों को हस्तान्तरित करना ही पड़ता है। हस्तान्तरण के फलस्वरूप उच्चाधिकारी छोटी छोटी, नित्य प्रति की मामूली गतिविधियों तथा समस्याओं से छुटकारा पा जाता है और वह इस प्रकार अपना मूल्यवान समय अधिक महत्वपूर्ण बड़ी समस्याओं पर केन्द्रित कर सकता है। इसके अतिरिक्त अधीनस्थ अधिकारी को भी हस्तान्तरण से लाभ पहुँचता है। हस्तान्तरित अधिकार का प्रयोग करने से उसमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

हस्तान्तरण के परिणामस्वरूप संगठन के हर सदस्य में साझेदारी (Partnership) तथा जिम्मेदारी की भावनायें पैदा होती हैं। हस्तान्तरण के अभाव में अध्यक्ष का कार्य-बोझ बढ़ जाता है और वह अपने संगठन के क्रिया-कलापों पर प्रभावशाली नियन्त्रण करने में असमर्थ हो जाता है। हस्तान्तरण द्वारा ही वह अपने समय का सदुपयोग कर सकता है और संगठन पर प्रभावशाली नियन्त्रण रख सकता है। हस्तान्तरण इस प्रकार संगठन की कार्य कुशलता में वृद्धि करता है। जब हर अधिकारी व कर्मचारी के पास थोड़ी बहुत हस्तान्तरित शक्ति होती है तो उसे यह आभास होता है कि संगठन का वह भी एक मूल्यवान सदस्य है और उसके कार्य का भी महत्व है। यह आभास उसमें आत्म-विश्वास तथा संगठन के प्रति निष्ठा पैदा करता है। उसे यह महसूस होता है कि उसकी योग्यता का मान तथा आदर हो रहा है। हस्तान्तरण से उच्चाधिकारी, निम्नधिकारी तथा सम्पूर्ण संगठन सभी लाभान्वित होते हैं।

किन्तु बहुत से संगठनों के अध्यक्ष तथा उच्चाधिकारी हस्तान्तरण के लाभों को नहीं समझ पाते। बहुत से उच्चाधिकारी अधिक से अधिक शक्तियाँ अपने ही हाथों में संचित देखना चाहते हैं। वे शक्ति का हस्तान्तरण करते हुए संकोच या अनिच्छा का प्रदर्शन करते हैं। उन्हें यह आशंका रहती है कि ऐसा करने से अधीनस्थ अधिकारियों के समक्ष उनकी स्थिति कमजोर पड़ जायगी। कुछ उच्चाधिकारी यह भी समझते हैं कि सारी योग्यता उन्हीं के पास है, सभी अधीनस्थ अधिकारी अयोग्य हैं, उन्हें शक्ति हस्तान्तरित करना संगठन को कमजोर बनाना है। ऐसे उच्च अधिकारियों पर यह विचार हावी रहता है कि यदि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति का स्वयं प्रयोग नहीं किया तो सारा संगठन छिन्न विछिन्न और अस्त-व्यस्त हो जायेगा। ऐसे उच्चाधिकारियों में अपनी योग्यता का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र देखने तथा अधीनस्थ अधिकारियों की योग्यता को भी अयोग्यता के रूप में देखने की प्रवृत्ति पनपने लगती है। ये अविश्वासी जीव ही हस्तान्तरण के कट्टरतम शत्रु हैं।

हस्तान्तरण के मार्ग में उपरोक्त बाधाओं के रहते हुये भी अधिकांश व्यक्ति इसकी आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। हस्तान्तरण औपचारिक (Formal) भी होते हैं और अनौपचारिक (Informal) भी। उच्चाधिकारी या तो लिखित रूप में प्राधिकार का हस्तान्तरण करता है या अधीनस्थ अधिकारी को बुलाकर मौखिक रूप से उसे कुछ शक्ति सौंप सकता है। शक्ति के हस्तान्तरण का तरीका कुछ भी हो, उच्चाधिकारी को हस्तान्तरित शक्ति के प्रयोग पर नियन्त्रण रखने के लिए कुछ प्रबन्ध अवश्य करना पड़ता है। हस्तान्तरण का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा यदि उस पर नियन्त्रण तथा देखभाल का अंकुश नहीं होगा। प्राधिकार के हस्तान्तरण के, संक्षेप में, ये कुछ पहलू हैं।

निर्णय लेना
(Decision Making)

निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रशासन का हृदय कहा गया है। प्रशासन का उद्देश्य सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करना है। किन्तु यह कोई सरल कार्य नहीं है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रशासक को विभिन्न मार्गों में से सर्वोत्तम मार्ग को चुनना पड़ता है। ऐसा चुनाव करना स्वयं एक कठिन कार्य है। जब अनेक प्रकार के मार्ग सामने होते हैं तो प्रशासक के लिए उचित निर्णय लेना एक कठिन समस्या बन जाती है।[1]

एक प्रशासक को बहुत सी दुरूह और पेचीदा समस्याओं का निराकरण करना होता है। इसका अभिप्राय यह है कि उसे समय-समय पर महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं। अपने संगठन के किसी भी कार्यक्रम को क्रिया के रूप में परिणित करने से पूर्व उसे एक निश्चित निर्णय पर पहुँचना होता है। प्रशासन एक मानवीय गतिविधि (Human activity) है और संगठन अनेक व्यक्तियों की सहयोगिक, सामूहिक गतिविधि का नाम है, इसलिए निर्णय लेने की प्रक्रिया में मानवीय व्यवहार (Human Behaviour) के बहुत से तत्व सम्मिलित होते हैं।

जैसा पहले कहा गया है, जब एक प्रशासक को कोई निर्णय लेना होता है तो उसे अनेक रास्तों में किसी एक का चुनाव करना होता है जो कि एक कठिन कार्य है। यदि हर कार्य में एक ही स्पष्ट तथा सुनिश्चित चुनाव होता तो निर्णय लेना अत्यन्त सरल होता। किन्तु निर्णय लेने की प्रक्रिया में मानवीय तत्वों के रहते हुए ऐसा असम्भव है। निर्णय लेते समय अनिवार्यतः किसी एक मार्ग को चुनना पड़ता है तथा अन्य मार्गों को अस्वीकृत करना पड़ता है। यह कार्य कठिन इसलिए है कि निर्णय

---

1 For further details refer to Chester I Barnard *The Functions of Executive* (Cambridge Harvard University Press, 1938), Herbert A Simon, *Administrative Behaviour* A Study of Decision-Making Processes in Administrative Organization, The MacMillan Co., N Y, 1957, Also Edward C. Banfield 'A Criticism of the Decision Making Scheme', *Public Administration Review*, 17 (Autumn, 1957) pages 278 85 U S. A

लेने वाले व्यक्ति को अपने विवेक का बहुत सावधानी से प्रयोग करना पड़ता है। एवं उचित तथा ठीक निर्णय पर पहुँचने के लिए उसे अनेक प्रकार की सूचनायें तथा तथ्य एकत्रित करने पड़ते हैं। जिस प्रश्न या स्थिति पर निर्णय लेना है उससे सम्बन्धित हर पहलू की जानकारी उसके पास होनी चाहिये। जब तथ्य तथा सूचनायें एकत्रित हो जायें तो उसे उनका वर्गीकरण व निरीक्षण करना होता है। एक रास्ते की अन्य रास्तों के साथ उसे तुलना करनी पड़ती है तथा सम्भावित परिणामों पर विचार करना पड़ता है। उस प्रश्न चुनाव के सभी सम्भावित परिणामों के बारे में पहले से ही सोच लेना चाहिये। यह इसलिए आवश्यक है कि परिणामों पर विचार किये बिना निर्णय लेने से अक्सर कदम गलत दिशा में उठ जाते हैं। अतः निर्णय लेने की प्रक्रिया में भावी परिणामों के पूर्व अध्ययन को काफी बल तथा महत्व दिया जाता है। प्रत्येक ऐसा निर्णय जो सम्भावित परिणामों पर विचार किए बिना लिया गया है, एक गलत तथा हानिकारक निर्णय है।

जब परिणामों का पूर्व निरीक्षण हो चुके तो विभिन्न परिणामों का तुलनात्मक मूल्यांकन करना पड़ता है। यहाँ निर्णय लेने की प्रक्रिया में आदर्शों (Values) का प्रश्न निहित है। अनेक बार निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने वाले विभिन्न अधिकारियों में आदर्शों सम्बन्धी मतभेद उठ खड़े होते हैं। जब निर्णय लेने की प्रक्रिया में यह प्रश्न पैदा हो जाये कि किस परिणाम को प्राथमिकता दी जाये तो 'मूल्यांकन' की क्रिया प्रारम्भ होती है। अनेक बार प्रतियोगी आदर्शों में से किसी एक आदर्श का चुनाव प्रशासक को करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर 'साध्य' व 'साधन' तथा 'तथ्य' एवं 'आदर्शों' के मध्य एक महत्वपूर्ण विवाद उठ खड़ा होता है। तब विवेक (Rationality) के जरिये ही विवाद का निर्णय किया जाता है। विवेक यह बताता है कि विभिन्न मार्गों के परिणामों का मूल्यांकन करके सही मार्ग का चुनाव कैसे करना चाहिये। हर प्रशासक से आशा की जाती है कि निर्णय लेते समय वह अधिकतम विवेक का प्रयोग करेगा। किन्तु विवेकपूर्ण चुनाव के मार्ग में भी अनेक बाधायें होती हैं। मानवीय व्यवहार में कई बार भावुकतापूर्ण व अविवेकपूर्ण तत्व अधिक शक्तिशाली बन जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ निर्णय लेने के लिए प्रशासक को चाहे कितनी भी आवश्यक सुविधायें, आवश्यक सूचनायें क्यों न प्रदान कर दी जायें, उसका निर्णय उसकी व्यक्तिगत पसन्दगियों व नापसन्दगियों से अवश्य प्रभावित होगा। उसका निर्णय उसके मानसिक झुकावों से अछूता नहीं रह सकता। ऐसे मानवीय तत्व निर्णय लेने की प्रक्रिया से अलग नहीं किये जा सकते। कभी-कभी किसी समस्या पर निर्णय लेने के लिए जो आवश्यक जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए वह अपूर्ण रह जाती है। कभी-कभी प्रशासक अपने किसी निर्णय के परिणामों का ठीक-ठीक अन्दाज नहीं लगा पाता। इन सब कठिनाइयों के कारण प्रशासनिक निर्णय कभी । पक्षपातपूर्ण तथा

अधूरे तथ्यो, परिणामो के अपर्याप्त अनुमान तथा प्रशासक के व्यक्तिगत पूर्वाग्रहो (Prejudices) इत्यादि के जाले मे ही उलझ कर रह जाते हैं और इस प्रकार हानिकारक सिद्ध होते है।[1]

संचार

(Communication) :

सचार की उचित व्यवस्था के अभाव मे कोई भी प्रशासनिक सगठन कार्य नही कर सकता। सगठन मे आन्तरिक सहयोग तथा समायोजन (Coordination) की प्राप्ति के लिए सचार व्यवस्था का होना अत्यधिक आवश्यक है। सगठन मे प्राधिकार के प्रयोग के लिए इसका महत्व 'केन्द्रीय' है। उच्चाधिकारियो द्वारा जो निर्णय लिए जाते हैं, वे यदि ठीक-ठीक अधीनस्थ अधिकारियो तक नही पहुचाये जायेंगे तो उनको या तो क्रियान्वित ही नही किया जायेगा या विकृत रूप मे क्रियान्वित किया जायेगा। किन्तु सचार-व्यवस्था से अभिप्राय निर्णयो को अधीनस्थ अधिकारियो तक पहुँचाने मात्र से नही है। इससे पूर्व कि किसी निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए कोई कदम उठाया जाये यह आवश्यक है कि सम्बन्धित अधिकारीगण उसे भली प्रकार समझ लें। इन अधिकारियो को विस्तार से यह समझा देना चाहिए कि क्रियान्वित किये जाने वाले निर्णय या निर्णयो का क्या महत्व है, उनके पीछे क्या ध्येय है तथा किन कारणो से ये निर्णय आवश्यक हो गये थे। उनका क्रियान्वन तभी कार्य-कुशलता से हो सकेगा। सचार का उद्देश्य इस प्रकार तरह-तरह के मस्तिष्को को एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक दूसरे के निकट लाना होना चाहिये। सचार केवल सूचना प्रसारण ही नही है, यह वह प्रक्रिया है जिससे सगठन के सदस्यो मे पारस्परिक सहिष्णुता व आदान प्रदान की भावनायें विकसित की जाती हैं।

प्रत्येक सगठन मे सचार-व्यवस्था एक दुतरफे यातायात (Two way traffic) के समान होती है। इतना ही काफी नही है कि उच्चाधिकारी निर्णयो को अधीनस्थ कर्मचारियो तक निर्देशो इत्यादि द्वारा पहुचायें। अधीनस्थ अधिकारी तथा कर्मचारी भी तथ्य, आँकडे तथा सूचनायें उच्चाधिकारियो तक पहुँचाते हैं। वस्तुत उच्चाधिकारी श्रेष्ठ निर्णय तभी ले सकते हैं जब उन्हे प्रत्येक परिस्थिति, तथ्य तथा सूचना का ज्ञान हो। इस ज्ञान के अभाव मे उनके निर्णय निरर्थक साबित होगे। सचार इस प्रकार ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर दोनो दिशाओ मे होता है। निर्देश तथा आदेश ऊपर से नीचे आते हैं और तथ्य एव आँकडे नीचे से ऊपर जाते हैं। सचार व्यवस्था इस प्रकार समायोजन स्थापना, पारस्परिक सहिष्णुता तथा उचित निर्णय

1 Also refer to G R Terry. *Principles of Management*, Illinois, Richard D Irwin, Inc 1956, William J. Gore, and Fred S Silander "A Bibliographical Essay in Decision Making", 4, *Administrative Science Quarterly* (June 1959), pages 97—121 and Special Issue on Decision Making', 3, *Administrative Science Quarterly* (December 1958)

लेने और अधिकारियो द्वारा उनके प्रभावशाली क्रियान्वन के लिए अत्यधिक आवश्यक है ।[1]

प्रत्येक सगठन मे सचार, औपचारिक तथा 'अनौपचारिक', दोनो प्रकार का होता है । प्रत्येक सगठन मे ऊपर से नीचे निर्देश तथा आदेश भेजने की एक औपचारिक व्यवस्था रहती है। उच्चाधिकारियो तथा निम्नाधिकारियो के पारस्परिक सम्बन्धो को निर्धारित करते समय उनमे सचार की रूपरेखा भी स्पष्ट कर दी जाती है । सगठन की 'आचरण सहिता' (Code of Conduct) अथवा 'नियमावली' मे इसका उल्लेख रहता है । यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि कौन किसको आदेश देगा तथा कौन किसके प्रति उत्तरदायी होगा । औपचारिक सचार-व्यवस्था मे साधारणतया लिखित रूप से आदेशो, सूचनाओ इत्यादि का आदान-प्रदान किया जाता है ।

किन्तु हर सगठन मे सचार का यह औपचारिक तरीका ही पर्याप्त नहीं समझा जाता । समस्याओ को मानवीय धरातल पर समझने व समझाने के लिए उपरोक्त औपचारिक सचार विधि अत्यधिक शुष्क है । निर्णयो से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी को दूसरो तक पहुचाने म यह विधि अपर्याप्त है । फलस्वरूप प्रत्येक सगठन मे एक अनौपचारिक सचार व्यवस्था का विकास अवश्यम्भावी हो जाता है । यह औपचारिक सचार-व्यवस्था की पूरक होती है । प्रत्येक सगठन के सदस्य औपचारिक रूप से निर्धारित सम्बन्धो के दायरे से बाहर कुछ अनौपचारिक सम्पर्क तथा सम्बन्ध बना लेते हैं । उनके पारस्परिक व्यक्तिगत सम्बन्ध अनौपचारिक सचार के साधन बन जाते हैं । अनौपचारिक सम्बन्धो तथा सम्पर्कों से कई बार गप्पों व बाजारू अफवाहो की जानकारी सरलता से हासिल की जा सकती है । उनका उत्तर फिर तथ्य प्रस्तुत करके दिया जा सकता है । सचार-व्यवस्था मे दो पक्ष होते हैं—एक भेजने वाला व एक प्राप्त करने वाला । सचार नियमो, उपनियमो, पत्रो, निर्देशो तथा प्रतिवेदनो (Reports) का रूप ले सकता है । सचार-व्यवस्था का प्रभावशाली होना उसके परिणामों पर निर्भर है । अगर निर्दिष्ट उद्देश्य प्राप्त हो जाते हैं तो सचार व्यवस्था को सफल समझिये, अन्यथा नही । और निर्दिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सचार स्पष्ट तथा सन्देह रहित होना चाहिए । सन्देश-सचार के लिए प्रयुक्त भाषा मे अस्पष्टता, असगतियाँ तथा शब्दो के अर्थों सम्बन्धी सन्देह नही होने चाहियें । इसके अतिरिक्त सन्देश निर्देश दूर दूर के स्थलो तथा विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो को भेजे जाते हैं । प्राप्त करने वाले व्यक्ति के मानसिक स्तर को दृष्टिगत रख कर सचार की भाषा तथा

1 For further details refer to John D Millett *Management in the Public Service The Quest for Effective Performance*, McGraw Hill Book Co, N Y, 1954 Chapter 4 Communication, pages 81—97 Herbert A Simon and others, *Public Administration*, N Y, 1956 Chapter X, Securing Teamwork . Communication Process, pages 218—243, Pfiffner, Presthus *Public Administration*, 4th Ed, The Ronald Press Co, N Y, 1963 Chapter 7, Communication, pages 133—153, and John T Dorsey, "A Communications Model for Administration', 2, *Administrative Science Quarterly* (December, 1957)

विधि मे परिवर्तन आवश्यक हो जाते हैं। कई बार समस्याओ के विस्तृत विवेचन के लिए सभी सम्बन्धित व्यक्तियो के सम्मेलन बुलाने आवश्यक हो जाते है। सम्मेलन सचार का एक श्रेष्ठ साधन है। इससे सम्बन्धित अधिकारियो को खुले दिमाग से दूसरो के विचारो को सुनने का अवसर प्राप्त होता है। यही सचार व्यवस्था का उद्देश्य होता है। सम्मेलन मे भाग लेने वाले व्यक्तियों की आशकायें तथा सन्देह इस प्रकार दूर हो जाते है। अनेक बार उच्चाधिकारियो के लिए दूसरे अधिकारियो तक सम्पूर्ण आवश्यक जानकारी सचारित करना कठिन हो जाता है। कई बार वे ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे दूसरे समझ नही पाते। कई बार वे ऐसे शब्दो का प्रयोग कर बैठते है जिनके भिन्न व परस्पर विरोधी अर्थ निकलते हैं। ये सब प्रभावशाली सचार के मार्ग मे बाधायें हैं। उच्च प्रशासको का यह काम है कि वे समय-समय पर अपनी सचार-व्यवस्था की जाँच करते रहे तथा उसमे आवश्यक सुधार करते रहे। अगर निर्णय ठीक से क्रियान्वित नही हो रहे हैं तो यह देखना चाहिये कि इसके लिए सचार-व्यवस्था ही तो उत्तरदायी नही है और अगर उसमे दोष दिखाई दे तो उन्हे दूर करने के लिए कदम उठाने चाहियें। निर्णयो को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए उत्तम सचार व्यवस्था अत्यधिक आवश्यक है।

देख-रेख व नियन्त्रण
(Supervision and Control)

जब निर्णय निम्न अधिकारियो तक सचारित कर दिये जायें तो उच्चाधिकारी का अगला कार्य यह देखना है कि उन्हे ठीक-ठीक क्रियान्वित किया जाये। उनका कर्त्तव्य यह आश्वस्त करना है कि सगठन सुचारु रूप से काम करता रहे तथा निर्दिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रयास निरन्तर जारी रहे। प्रशासनिक सगठन की इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए 'देख-रेख' तथा 'नियन्त्रण' को महत्वपूर्ण माना गया है। उच्चाधिकारी अधीनस्थ अधिकारियो का मार्ग प्रदर्शन करते है, उनकी गतिविधियो पर निगरानी रखते हैं तथा उनके कार्यों के परिणामो का पर्यवेक्षण (Observation) करते हैं। नकारात्मक दृष्टि से (Negatively) देख रेख का अभिप्राय सगठन के सदस्यो की गतिविधियो का निर्देशन करना तथा उनकी जाँच करना है, सकारात्मक दृष्टि से (Positively) इसका अभिप्राय सदस्यो को काम करने के सर्वोत्तम तरीके सुझाना है। देख-रेख का उद्देश्य सगठन के विभिन्न अगो म समायोजन स्थापित करना है तथा यह देखना है कि सब अग अपना-अपना कार्य उचित रूप से सम्पन्न करते रहे।[1] देख रेख का सम्बन्ध सगठन की गतिविधियो के परिणामो को देखने से है। यह काम तब सम्पन्न हो सकता है जब कार्यकुशलता की जाँच के लिए

1 Some of the following replies were given to a question What is meant by 'supervision The replies were Being safeguarded from making mistakes Being helped by a person who understands satisfaction in having a point of reference Being made to feel inadequate and inferior because of the authority

कुछ निष्पक्ष आधार तथा कसौटी मौजूद हो। कभी कभी देख-रेख बजट में निहित धाराओं एव व्यवस्थाओं द्वारा भी होता है। अधीनस्थ अधिकारियों को अपने कार्य की प्रगति पर प्रतिवेदन, कागजात, फाइलें इत्यादि उच्चाधिकारियों को भेजनी पड़ती हैं। देख रेख करने वाला उच्चाधिकारी उनकी सहायता से सगठन के कार्यों व उनके परिणामों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वह लक्ष्य निर्धारित करता है तथा उसकी यह जिम्मेदारी है कि वह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सगठन की गतिविधियों की देख रेख करे।

सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य तो कार्य-समापन है। सगठन में ऐसा वातावरण बनाना चाहिये सब सम्बन्धित व्यक्ति यथासम्भव, अधिकतम सहयोग कार्य-समापन में दें। देख-रेख करने वाला अधिकारी त्रुटियों का पता लगाकर भावी कदमों के लिए मार्ग निर्देशन करता है। उसका कार्य निरीक्षण तथा जाँच करना ही नहीं है, अपितु सामूहिक कार्य (Team work) के लिए सबको प्रेरित व प्रोत्साहित करना भी है।[1]

देख रेख अधिकारी को न्यायपूर्ण ईमानदार निष्पक्ष तथा खुले मस्तिष्क का होना चाहिए। उसे लोक-सम्पर्क (Public relations) तथा समूह-व्यवहार में प्रशिक्षित होना चाहिए। भारत में पचायती राज अधिनियमों के अन्तर्गत जिलाधीशों तथा विभिन्न तकनीकी विभागों के अधिकारियों को पचायती राज सस्थाओं पर नियन्त्रण व देख रेख के अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसके पीछे यह धारणा है कि पचायती राज सस्थाओं की सफलता के लिए अधिकारियों का उन पर उचित नियन्त्रण तथा उनकी देख रेख अनिवार्य है।[2]

---

and power of the person over me Being pushed around" Margaret Williamson defines *supervision "as a process by which workers are helped by a designated staff member to learn according to their needs, to make the best use of* their knowledge and skills and to improve their abilities so that they do their jobs more effectively and with increasing satisfaction to themselves and the agency" (Supervision—Principles and Methods, N Y, Woman's Press, 1950 *pages* 3 7) Also *refer to* John D Millett, *op cit*, Chapter 4 'Supervision', *pages* 98–122, Dimock, *Public Administration, 1960*, Chapter 24, Dynamics of Supervision, pages 406–424

1 Pfiffner summarizes the important human characteristics of supervision in these words "The supervisor on the lower levels secures cooperation and production by de emphasizing his own ego stimulating group participation, *and encouraging the maximum satisfaction of individual egos that is consistent with coordination*" (John M Pfiffner "The Supervision of Personnel Human Relations in the Management of Men', N Y Prentice Hall, 1951), page 215

2 For it Refer to Henry Maddick Control Supervision And Guidance of Panchayati Raj Institutions' Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Vol VIII, October December 1962, No 4 pages 500—511, John D Millett *rightly observes "Supervision is more than a process, it is a spirit* ch animates the relationships between levels of organization and which induces maximum administrative accomplishment, or when unsuccessful, generates administrative paralysis Effective Management is concerned to realize the first and to avoid the second" *op cit*, page 122

संगठन के आधार
(Bases of Organization)

जैसा कि हम देख चुके है कि सगठन मे विभिन्न व्यक्तियो के बीच कार्य का विभाजन कर दिया जाता है और तब उनकी क्रियाओ मे उचित समन्वय कायम किया जाता है जिससे कि सगठन उन उद्देश्यो को प्राप्त करने मे समर्थ हो सके जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था। सगठन "विभिन्न व्यक्तियो के बीच कार्य को बाटने की एक रीति है।' अत प्रश्न यह पैदा होता है कि इन कार्यों को किस प्रकार बाटा जाना चाहिये तथा किस आधार पर सगठन का निर्माण किया जाना चाहिये। लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) के अनुसार, किसी भी कार्य को बाटने की चार विभिन्न रीतियां अथवा सगठन के चार विभिन्न आधार होते है।

"सगठन के निर्माण मे ऊपर से नीचे तक हमे प्रत्येक कार्य का विश्लेषण करना पडता है और इस बात का निर्णय करना पडता है कि एकरूपता (Homogeneity) के सिद्धान्त को हानि पहुँचाये बिना सगठन को कितने वर्गों मे बाटा जाए। व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कोई आसान काम नही है। हम यह पायेंगे कि हर एक पद पर कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी के कार्य की प्रकृति की पहचान निम्न बातो के द्वारा होनी चाहिए

(१) प्रथम उस बड़े उद्देश्य (Major purpose) के द्वारा जिसके लिए कि वह कार्य कर रहा है, जैसे पानी की पूर्ति की व्यवस्था, अपराधों का नियन्त्रण अथवा शिक्षा का सचालन।

(२) उस प्रक्रिया (Process) के द्वारा, जिसका कि वह प्रयोग कर रहा है, जैसे कि इजीनियरिंग, डाक्टरी, बढईगीरी, स्टनोग्राफी, साख्यिकी (Statistics) व हिसाब किताब का काम।

(३) उन व्यक्तियो अथवा वस्तुओ (Persons or things) के द्वारा, जिनमें व्यवहार करना पडता है या जिनके लिए काम करना पडता है जैसे विदेशो मे बसने वाले व्यक्ति, भारतीय, वन, खानें, पार्क, अनाथ, किसान, मोटरगाडियां अथवा निर्धन।

(४) उस स्थान (Place) के द्वारा, जहा कि वह अपना कार्य सम्पन्न करता है, जैसे हवाई द्वीप, बोस्टन, वाशिगटन, अलबामा अथवा केन्द्रीय हाईस्कूल।'[1]

इस प्रकार कार्य अथवा उद्देश्य, प्रक्रिया अथवा व्यवसाय, सेवा किये जाने वाले व्यक्ति अथवा वस्तुएँ, स्थान अथवा क्षेत्र—सगठन के ये चार विभिन्न आधार हैं। अब हम इन पर एक-एक करके विचार करते हैं।

(१) कार्य (Function)—किसी भी विशिष्ट कार्य अथवा उद्देश्य (Function or purpose) की पूर्ति के लिए सगठन की स्थापना की जा सकती है, उदाहरणार्थ, शिक्षा के लिए स्कूल, स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी कार्यों के लिए अस्पताल आदि।

1 Gullick Notes on the *Theory of Organisation op. cit.* p 15

(२) प्रक्रिया (Process)—संगठन का निर्माण प्रक्रिया अथवा व्यवसाय (Process or profession) के आधार पर भी किया जाता है। प्रक्रिया अथवा व्यवसाय से तात्पर्य उस तकनीकी कुशलता (Technical skill) से है जो किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक हो, उदाहरण के लिए, इजीनियरिंग डाक्टरी, वकालत, आशुलिपि, सांख्यिकी, तथा हिसाब-किताब व लेखा आदि। संगठनों का निर्माण किसी भी कार्य से सम्बद्ध तकनीकी कुशलता के आधार पर किया जा सकता है उदाहरण के लिए वकीलों का विभाग (Department of lawyers), इजीनियरों का विभाग आदि। भारत में लोककर्म (Public Works Departments) प्रक्रिया के आधार पर किये जाने वाले संगठन के उदाहरण हैं। यह सम्भव नहीं हो सकता कि प्रक्रिया अथवा व्यवसाय को बहुत अधिक विभागों (Departments) के संगठन का आधार बना लिया जाए क्योंकि उन विशिष्ट अथवा तकनीकी कुशलताओं की न्यूनाधिक रूप से प्रत्येक विभाग में ही आवश्यकता होती है। अतः विशिष्ट अथवा तकनीकी कुशलता प्राप्त व्यक्तियों को तो किसी भी विभाग में, जहाँ कि उनकी आवश्यकता हो, काम करना चाहिए। उदाहरणार्थ, भारत सरकार के आशुलिपिकों का विभाग (Department of Stenographers) नहीं बनाया जा सकता क्योंकि आशुलिपिकों की तो प्रत्येक विभाग में ही आवश्यकता होती है। अतः प्रत्येक विभाग को अपना अपना आशुलिपिक नियुक्त कर लेना चाहिए।

(३) सेवा किए जाने वाले व्यक्ति (Clientele)—व्यक्तियों के एक समूह अथवा समुदाय के एक भाग के साथ व्यवहार करने के लिए भी संगठन का निर्माण किया जाता है। अतः वे सेवा किए जाने वाले व्यक्ति ही संगठन का आधार बन जाते हैं। भारत सरकार का पुनर्वास विभाग (Rehabilitation Department), जो कि पाकिस्तान से आए हुए विस्थापितों (Displaced persons) की सेवा करता है, इसका एक उदाहरण है। यहाँ सेवा किये जाने वाले व्यक्तियों को ही संगठन का आधार बनाया गया है क्योंकि यह विभाग केवल उन व्यक्तियों की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है जिन्हें कि देश विभाजन के बाद पाकिस्तान में अपने घरों को छोड़कर भारत आना पड़ा।

(४) क्षेत्र (Area)—अन्य में, वह स्थान, जहाँ कि कार्य किया जाता है—अर्थात् क्षेत्र—भी संगठन की क्रियाओं के लिये आधार बन सकता है। नेफा (NEFA), अर्थात् उत्तरी पूर्वी सीमान्त एजन्सी (North East Frontier Agency) एक विशेष क्षेत्र अथवा प्रदेश की समस्याओं से सम्बन्धित है। अतः यहाँ ... अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र ही संगठन का आधार है।

परन्तु इस प्रश्न का कोई भी निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता कि संगठन के आधार के रूप में इनमें से कौनसा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है। यह तो केवल सुविधा तथा परिस्थिति पर निर्भर होता है।

ब्रूकिंग्स सस्था (Brookings Institution) ने कई वर्ष पूर्व काग्रेसनल कमेटी (Congressional Committee) को परामर्श देते हुए इस सम्बन्ध मे एक अत्यन्त सारपूर्ण सुझाव दिया था।

"सम्पूर्ण सगठन के अन्तर्गत कोई भी एक तत्व (Factor) या आधार निर्णायक नही बन सकता। एक तत्व हमे एक स्थान पर निर्णय करने में सहायता दे सकता है, और अन्य स्थान अथवा अन्य स्थिति मे दूसरा तत्व अधिक सहायक हो सकता है। प्रत्येक अवस्था मे एक निर्धारक तत्व को अन्य के मुकाबले सतुलित कर लेना चाहिये। कुछ कार्यों तथा कुछ अभिकरणो (Agencies) के लिये, यह हो सकता है कि कोई भी एक तत्व सगठन के आधार के लिये सर्वोत्तम सिद्ध न हो सके। इसलिये हमे इन विकल्पो (Alternatives) मे से चुनाव करना होगा।[1]

सगठन के विभिन्न आधारो पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् अब यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशासकीय सगठन के कुछ सिद्धान्तो का अध्ययन किया जाय।

निष्कर्ष
(Conclusion)

सगठन के क्रमिक सिद्धान्त (Scalar principle) से मतलब है कि सत्ता अथवा नियन्त्रण उपर की ओर को अथवा नीचे की ओर को क्रम से आगे बढते है। नेता अधीनस्थ अधिकारी को अपनी सत्ता सौंपता है जो कि उसके द्वारा अन्य कर्मचारियो पर नियन्त्रण रखता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सगठन जजीर की कडियो के समान जुडा रहता है और सभी कर्मचारियो की क्रियाओ का समुचित रूप से समन्वय कर लिया जाता है। क्रमिक प्रक्रिया के विषय मे लिखते हुए मूनी *(Mooney)* तथा रैले *(Reiley)* ने कहा कि "जिस प्रकार की समन्वय करने वाली सर्वोच्च सत्ता (Supreme coordinating authority) प्रत्येक सगठन म कहीं भी और किसी भी रूप मे अवश्य वर्तमान रहनी चाहिये, उसी प्रकार सगठन को किसी भी ठीक विचारधारा के लिये यह भी उतना ही आवश्यक है कि उसमें औपचारिक रूप से क्रमिक प्रक्रिया वर्तमान हो, जिसके द्वारा कि वह समन्वय करने वाली सत्ता शिखर से ही सगठन के सम्पूर्ण ढाचे मे अपना कार्य कर सके।'[2] पद सोपान अथवा क्रमिक सिद्धान्त के निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) एक के बाद एक जजीर की कडियो के सदृश प्रत्येक कार्य से सम्बन्ध रखती है।

(२) पद-सोपान (Hierarchy) के द्वारा उपर की ओर अथवा नीचे की ओर पत्र व्यवहार करना व सन्देश भेजना सुविधाजनक हो जाता है। सगठन मे प्रत्येक व्यक्ति को यह पता रहता है कि उसे अपना पत्र-व्यवहार किसको सम्बोधित करना

[1] Quoted by F M Marx Elements of *Public Administration*, p 188
[2] Onward Industry, p 31

है और जिसके द्वारा उसका पत्र-व्यवहार सगठन के सबसे ऊचे अधिकारी तक पहुँच सकता है।

(३) पद सोपान सत्ता तथा उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजन अथवा सौंपने (Delegation) के सिद्धान्त पर आधारित होता है अत उसी के अनुसार निर्णय करने वाले अनेक केन्द्रो की स्थापना कर ली जाती है। किसी एक व्यक्ति अथवा केन्द्र पर काम का अधिक जमघट अथवा केन्द्रीकरण नही होता। विभाग का अध्यक्ष (Head of the Department) स्वय ही प्रत्येक निर्णय करने की अनिवार्यता से मुक्त हो जाता है।

(४) जब कोई सगठन बहुत बडा होता है और उसका सम्पूर्ण कार्य दूर-दूर के स्थानो तक फैला होता है, तो पद-सोपान के क्रम (Hierarchical gradation) के द्वारा ही केन्द्र तथा सगठन के दूरस्थ भागो मे सम्बन्ध कायम रखा जा सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विभाग प्रभावपूर्ण रीति से कार्य करने के लिए एक सूत्र मे बध जाता है।

(५) क्रमिक व्यवस्था (Scalar system) 'उचित मार्ग द्वारा' (Through proper channel) के सिद्धान्त की स्थापना करती है। यह सर्वोच्च अधिकारी का समय बचाती है। अनेक बाते या निर्णय उसके पास तक पहुँचने से पूर्व ही कर लिया जाता है। यदि ब अ के अधीन है और वह सगठन के सर्वोच्च अधिकारी के सम्मुख कोई कठिनाई रखना चाहता है तो वह सीधे उसके पास नही जा सकता। उसे पहिले अ के पास जाना होगा और यह हो सकता है कि अ उसकी समस्या सुलझा दे।

(६) क्रमिक व्यवस्था मे, आदेश की एकता का सिद्धान्त (Principle of unity of command) अर्थात् यह कि एक आदमी केवल एक व्यक्ति का ही अधीनस्थ (Suborbinate) होगा, पूर्णत लागू होता है। एक व्यक्ति का केवल एक ही तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate Superior) होगा जिससे कि वह आज्ञाय प्राप्त करेगा।

(७) क्रमिक सिद्धान्त (Scalar principle) सगठन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के सापेक्षिक उत्तरदायित्वो (Relative responsibilities) का स्पष्टीकरण करता है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती है कि कौन किसके अधीन है और इस प्रकार किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नही रहती।

किन्तु इसके बावजूद, यदि इस सिद्धान्त का दृढता एव कठोरता से पालन किया जाये तो कार्य मे देरी होने की सम्भावना रहती है। प्रत्येक कार्य अथवा बात को उचित माग से (Through proper channel) गुजरना होता है। इसके लिए उसे पद सोपान के प्रत्येक चरण का पार करना होता है। कोई भी व्यक्ति सर्वोच्च सत्ता से मिलन के प्रयत्न म पद-सोपान अथवा क्रम के दो चरणो (Steps) को एक साथ नही लाघ सकता।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए सदा 'अल्पमार्गों' (Short cuts) का सुझाव दिया जाता है। व्यवहार में, इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं कि सत्ता का उल्लंघन अथवा हनन भी न हो और कार्य शीघ्र सम्पन्न भी हो जाये। उरविक (*Urwick*) ने इस सम्बन्ध में यह कहा कि "यह बात उचित भी है और उपयुक्त भी कि प्रत्येक संगठन में औपचारिक क्रमिक शृंखला (Formal scalar chain) ठीक उसी प्रकार होनी चाहिये जिस प्रकार कि अच्छी प्रकार से निर्मित प्रत्येक मकान में जल-निकासी की व्यवस्था (Drainage system) होती है। परन्तु औपचारिक शृंखला को पत्र-व्यवहार के एकमात्र साधन के रूप में अनन्य रूप से प्रयोग करना उसी प्रकार अनावश्यक है जिस प्रकार कि व्यक्ति के लिए मकान की नालियों में समय बिताना अनावश्यक है।"[1] क्रमिक व्यवस्था स्वयं कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं है। यह तो संगठन के अन्तर्गत कार्यात्मक सह-सम्बन्ध (Functional correlation) कायम करने का एक माध्यम है। अतः संगठन के शीघ्र एवं कुशल-कार्य-संचालन के लिए अनेक बार 'अल्पमार्गों' की स्थापना की जाती है जिससे काम सुचारु रूप से शीघ्र सम्पन्न होता है।

आदेश की एकता
(Unity of Command)

किसी भी संगठन में, सत्ता के सूत्रों (Lines of authority) का स्पष्ट रूप से पता रहना चाहिए। संगठन के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी को अपने उन उच्च अधिकारियों (Superiors) का पता रहना चाहिये जिनसे कि उसे आदेश प्राप्त करने होते हैं। संगठन में सभी स्तरों पर उच्च-अधीनस्थ अथवा प्रवर-अवर सम्बन्ध (Superior Subordinate relation) पाया जाता है। परन्तु प्रश्न यह है कि एक आदमी कितने व्यक्तियों का अधीनस्थ (Subordinate) होना चाहिए ? एक आदमी अनेक व्यक्तियों का अधीनस्थ होना चाहिए अथवा केवल एक का ? आदेश का सिद्धान्त (Principle of command) जिसका कि समर्थन किया जाता है, यह है कि एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति का अधीनस्थ होना चाहिए और उसे केवल एक ही व्यक्ति से आदेश प्राप्त होने चाहियें। यही स्थिति, जिसमें कि आदेश की शृंखला में प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी केवल एक ही व्यक्ति के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, पारिभाषिक रूप में 'आदेश की एकता' के सिद्धान्त के नाम से विख्यात है एक व्यक्ति एक ही उच्च अधिकारी (Superior) का अधीनस्थ होता है और केवल एक ही उच्च अधिकारी से निर्देश (Directions) प्राप्त करता है। सैनिक आदेश (Military command) में इसका पालन किया जाता है। द्वितीय लेफ्टीनेन्ट (Second lieutenant) लेफ्टीनेन्ट का अधीनस्थ होता है और उससे आदेश प्राप्त करता है। लेफ्टीनेन्ट एक कैप्टेन (Captain) के अधीन होता है तथा उससे आदेश प्राप्त करता है और इस प्रकार आदेश की यह शृंखला आगे भी चलती रहती है।

1 L. Urwick, *op cit.*, p. 47

इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब एक कर्मचारी केवल एक ही उच्च अधिकारी का अधीनस्थ होता है तथा उससे आदेश प्राप्त करता है तो उसके आज्ञाओं (Orders) के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न नहीं होता। वह अनेक उच्च अधिकारियों (Superiors) से मतभेद एवं विवाद उत्पन्न करने वाले अनुदेश (Instructions) नहीं प्राप्त करता। आदेश के अनेक स्रोतों से भ्रम उत्पन्न होता है, कार्य में अकुशलता आती है तथा कार्य का उत्तरदायित्व निश्चित नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि एक व्यक्ति केवल एक ही उच्च अधिकारी का अधीनस्थ है तो उस कर्मचारी के कार्यों का निरीक्षण प्रभावपूर्ण रीति से किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त में कठिनाई उस समय उत्पन्न होती है जब कि संगठन में काम करने वाले तकनीकी कर्मचारीवर्ग (Technical personnel) पर आदेश लागू करना होता है। तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्ति अथवा विशेषज्ञ को विशेषज्ञ से ही अनुदेश प्राप्त होने चाहियें, परन्तु आदेश की एकता का सिद्धान्त (*Principle of unity of* command) आदेश के दृष्टिकोण से तकनीकि कर्मचारी वर्ग तथा प्रशासकीय कर्मचारीवर्ग में कोई भेद नहीं करता। इस सिद्धान्त के अनुसार यह आवश्यक है कि संगठन का प्रधान (Head) विभिन्न कर्मचारियों के कार्य की प्रकृति में किसी भी प्रकार का भेद किए बिना ही सभी कर्मचारियों को आदेश दे। आदेश की एकता के सिद्धान्त का इस तथ्य (Fact) में कैसे मेल बैठाया जाए कि संगठन में जो अनेक विशेषज्ञ (Specialists) काम कर रहे हैं उन्हें तो केवल विशेषज्ञों के द्वारा ही आदेश मिलने चाहिएँ। प्रश्न यह है कि जिला बोर्ड का एक डाक्टर जिला बोर्ड के निष्पादन अधिकारी (Executive officer) से आदेश प्राप्त करे अथवा जिला चिकित्सा अधिकारी (District Medical Officer) से ?

एफ० डब्ल्यू टेलर (*F W Taylor*) जैसे लेखकों ने 'द्विमुखी पर्यवेक्षण' (Dual supervision) का सुझाव दिया है। हरबर्ट ए० साइमन (*Herbert A Simon*) ने आदेश की एकता के सिद्धान्त को प्रमुखता दी है परन्तु उसमें इस प्रकार संशोधन किया है

"दो प्राधिकारी आदेशों (Authoritative commands) के परस्पर टकराव की स्थिति में, केवल एक ही निर्धारित व्यक्ति (Determinate person) होना चाहिये, जिसकी कि अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा मानें।"

इस प्रकार अनेक अवसरों पर, यह हो सकता है कि एक कर्मचारी के ऊपर दो उच्च अधिकारी (Superiors) हों। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए जॉन डी० मिलेट (*John D Millet*) ने कहा है कि "आवश्यकता इस बात की है कि आदेश की एकता की धारणा में इस बात के साथ ताल-मेल बैठाया जाये कि किसी भी कार्य का द्विमुखी निरीक्षण किया जा सकता है अर्थात् तकनीकी (Technical) तथा प्रशासकीय (Administrative)। दोनों ही प्रकार का निरीक्षण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। पहले किस्म के निरीक्षण का सम्बन्ध कार्य को सम्पन्न करने के

व्यावसायिक योग्यता से हो सकता है जबकि दूसरे निरीक्षण का मुख्य सम्बन्ध कार्य के लिये उपलब्ध साधनो—मानव तथा सामग्री—का कुशलता के साथ उपयोग करने से होता है।"[1] अनेक अवसर ऐसे आते है जबकि द्विमुखी निरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है, परन्तु एक बात सदा ध्यान मे रखनी चाहिये कि किसी भी परिस्थिति मे कोई कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेशो के अधीन न रहे क्योंकि उससे सगठन के कार्य-सचालन मे भारी भ्रम उत्पन्न होगा।

जान डी० मिलेट (*John D Millet*) ने आदेश की एकता के उपरोक्त अर्थ के अतिरिक्त दो और अर्थ किये है। उनके अनुसार आदेश की एकता दो अन्य बातो की ओर भी निर्देश कर सकती है।

"(१) यह एक ऐसी व्यवस्था की ओर भी निर्देश कर सकती है जहाँ की सम्पूर्ण प्रशासकीय सत्ता एक ही उत्तरदायी प्रधान (Head) (अर्थात् राष्ट्रपति या राज्यपाल) से प्रवाहित होती है।

(२) इसका आशय एकाकी प्रधान वाले अभिकरण (Single Headed Agency) तथा मण्डल अथवा आयोग (Board or Commission) की सापेक्षिक श्रेष्ठता (Relative Merit) के प्रश्न से हो सकता है।"[2]

परन्तु 'आदेश की एकता' का सर्वसाधारण अर्थ यही है कि एक व्यक्ति को केवल एक ही व्यक्ति के आदेशो के अधीन रहना चाहिये। यदि एक अधीनस्थ कर्मचारी से दो उच्च अधिकारियो (Superiors) के आदेशो का पालन करने को कहा जाता है तो इससे सगठन मे काफी भ्रम पैदा होगा क्योकि दो उच्च अधिकारियो के आदेश परस्पर विरोधी प्रकृति के हो सकते है। यदि वह दो उच्च अधिकारियो के आधीन है और एक उच्च अधिकारी उससे कहता है कि 'यह कार्य करो', किन्तु दूसरा उच्च अधिकारी कहता है 'यह कार्य मत करो', तो ऐसी स्थिति मे वह कर्मचारी बडी परेशानी मे पड जायेगा कि आखिर क्या करे।

नियन्त्रण का क्षेत्र
(Span of Control)

सगठन मे कर्मचारीवर्ग की कार्य-सचालन सम्बन्धी क्रियाओ पर नियन्त्रण रखा जाता है। कर्मचारीवर्ग पर यह नियन्त्रण यह देखने के लिये लगाया जाता है कि प्रत्येक कार्य निर्धारित नियमो तथा दिय हुए अनुदेशो (Instructions) के अनुसार किया जा रहा है या नही। नियन्त्रण के क्षेत्र (Span of control) से तात्पर्य है कि एक उच्च अधिकारी थोडे से (सीमित) अधीनस्थ कर्मचारियो के कार्य पर ही नियन्त्रण रख सकता है। नियन्त्रण के क्षेत्र पर यह सीमा इसलिए निर्धारित की जाती है क्योकि मानवीय ध्यान-क्षेत्र (Span of attention) सीमित होता है। एक व्यक्ति केवल सीमित कर्मचारियो—उदाहरणत सात, नौ, अथवा बारह—की क्रियाओ का

1 *Elements of Public Administration* Ed by M Marx p 150
2 *Elements of Public Administration* Ed Morstein Marx *p* 150

ही सक्रिय पर्यवेक्षण कर सकता है। *V A Graicunas* ने "सगठन मे सम्बन्ध" (Relationship in organization) नामक एक लेख मे नियन्त्रण के क्षेत्र से सम्बन्धित एक गणितीय सूत्र (Mathematical formula) का प्रतिपादन किया। उनका विचार था कि कोई भी उच्च अधिकारी ऐसे पाँच अथवा अधिक से अधिक छः अधीनस्थ कर्मचारियो से अधिक के कार्य का प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण नही कर सकता जिनका कार्य परस्पर सम्बद्ध हो। इसका कारण सरल है: 'निरीक्षण केवल व्यक्तियो का ही नही किया जाता बल्कि उन व्यक्तियो के बीच के सम्बन्धो की उलट-पुलट (Permutations) तथा सन्धियो (Combinations) का भी किया जाता है और प्रत्येक नए अधीनस्थ कर्मचारी के बढने पर इन दोनो मे से पहली चीज तो समान्तर श्रेणी (Arithmetical progression) से बढती है और दूसरी चीज गुणोत्तर श्रेणी (Geometrical progression) से बढती है। यदि एक उच्च अधिकारी अपने पाँच तत्काल अधीनस्थ कर्मचारियो (Immediate subordinates) मे एक छठा (Sixth) कर्मचारी और बढाता है तो इससे उसकी सत्ता के प्रत्यायोजन (Delegation) के अवसर मे तो २० प्रतिशत की वृद्धि होती है किन्तु उन सम्बन्धो की सख्या मे, जिनका कि उसे ध्यान रखना है, १०० प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होती है और अन्तत चूंकि मानवीय ध्यान क्षेत्र (Span of attention) से प्रभावित होने के कारण यह सीमाओ पर आधारित होता है अत इस सिद्धान्त को नियन्त्रण का क्षेत्र (*Span of Control*) कहा जाता है।[1]

नियन्त्रण के क्षेत्र की समस्या के सम्बन्ध मे, भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने उन कर्मचारियो की एक आदर्श सख्या मालूम करने की कोशिश की है जिन पर कि एक उच्च अधिकारी नियन्त्रण रख सकता है।

एल० उरविक *(L Urwick)* के अनुसार "उच्च प्राधिकारियो (Superior Authorities) के लिए आदर्श सख्या चार है, और उन लोगो के लिये जोकि निम्नतम स्तर पर हैं, आठ या बारह है।

हेनरी फेयल *(Henri Fayol)* के अनुसार "एक बडे उद्यम के शिखर स्थित प्रबन्धक (Manager) को अपने अधीनस्थ कर्मचारी पाँच या छः से अधिक नही रखने चाहियें।"[3]

कर्मचारियो की उस 'आदर्श सख्या (Ideal Number) की खोज, जिस पर कि एक व्यक्ति नियन्त्रण रख सकता है एक निरर्थक खोज है। एक व्यक्ति कितने

---

1 "Relationship in organization" by V A Graicunas in papers in the *Science of Administration* quoted by L. Urwick. *The Elements of Administration*. pp 52-3

2 L. Urwick, "Executive Decentralization with Functional coordination, "*Public Administration*", XIII No 4 (October, 1935), p 348

3 Henry Fayol "*The Administrative Theory* in the State" in Gullick and Urwick, *op. cit*, p 110

कर्मचारियो पर नियन्त्रण रख सकता है, इसका निर्धारण तो कुछ सामान्य तत्वो द्वारा होता है। लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) के अनुसार तीन तत्व (Factors) ऐसे हैं जो कि नियन्त्रण के क्षेत्र की समस्या पर अत्यधिक प्रभाव डालते है। वे तत्व है कार्य (Function), समय (Time) तथा स्थान (Space)। सर्वप्रथम, यदि एक अधिकारी ऐसे व्यक्तियो का निरीक्षण कर रहा है जो कि उस जैसे ही कार्य सम्पन्न करते है, उदाहरणार्थ, इजीनियर इजीनियरो का निरीक्षण कर रहा है, डाक्टर डाक्टरो का निरीक्षण कर रहा है, तो वह बहुसख्यक लोगो पर नियन्त्रण कर सकता है। इस स्थिति मे वह नियन्त्रण के बडे क्षेत्र पर काम करने म समर्थ हो सकेगा। किन्तु यदि एक इजीनियर के समक्ष चिकित्सा व शिक्षा सम्बन्धी कर्मचारी तथा सामाजिक कर्मचारी प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करते है तो उसके लिए नियन्त्रण का छोटा क्षेत्र ही वाछनीय होगा। दूसरे, यदि कोई सगठन पुराना तथा स्थायी है तो एक नये सगठन के मुकाबले उसका नियन्त्रण-क्षेत्र बडा हो सकता है। अन्त मे यदि किसी अधिकारी के अधीनस्थ कर्मचारियो के कार्यालय भौगोलिक दृष्टि से दूर-दूर तक फैले हुए है तो नियन्त्रण का छोटा क्षेत्र ही वान्छनीय होगा।[1]

कार्य, समय तथा स्थान के इन उपरोक्त तत्वो के अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व, जो कि नियन्त्रण के क्षेत्र (Span of control) से सम्बद्ध है, निरीक्षक अथवा पर्यवेक्षक की शक्ति (Energy) तथा व्यक्तित्व (Personality)। उन कर्मचारियो की सख्या, जिन पर कि एक व्यक्ति नियन्त्रण रख सकता है, केवल कार्य की प्रकृति पर ही निर्भर नही होगी अपितु निष्पादक (Executive) के व्यक्तित्व पर भी निर्भर होगी। नियन्त्रण के सिद्धान्तो के सार को हम सक्षेप मे निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते है :

"(१) बडे-बडे योग्य व बुद्धिमान व्यक्ति की भी निष्पादन क्षमता (Executive Capacity) की एक सीमा होती है।

(२) सभी निष्पादक (Executives) अपने-अपने नियन्त्रण क्षेत्र की सीमाओ के अधीन होते हैं।

(३) निष्पादन सम्बन्धो (Executive Relationship) की उस सख्या को सक्रिय नियन्त्रण क्षेत्र कहा जाता है जिसमे आगे की जाने वाली किसी भी वृद्धि से कार्य के बारे मे देरी तथा भ्रम उत्पन्न हो।

(४) जितनी ऊंची योग्यता होती है तथा जितना बडा उत्तरदायित्व होता है, सक्रिय नियन्त्रण-क्षेत्र (Effective span of control) भी उतना ही सकुचित होता है।

1 Luther Gullick, "*Notes on the Theory of Organization,*" in Luther Gullick and L. Urwick (Eds) Papers on the Science of Administration Institute of Public Administration, New York, 1937 pp 8-9.

(५) एक से परिमाण मे समन्वय (Co ordination) कायम करने के लिये यह आवश्यक है कि एक ही प्रकार के कार्य वाले तथा एकरूप (Unified) सगठन की अपेक्षा एक बडे, विविध रूप वाले तथा बिखरे हुए सगठन मे अधीनस्थ कर्मचारियो की सख्या कम हो ।"

एकीकृत व्यवस्था बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था
(Integrated System vs Independent System)

प्रशासकीय सगठन स्वतन्त्र अथवा असम्बद्ध (Independent or un-correlated) तथा एकीकृत अथवा विभागीय (Integrated or Departmental) हो सकता है। अब हम इनके अर्थ पर विचार करते हैं। प्रशासन की **एकीकृत व्यवस्था** (Integrated system) उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमे कि समान सेवायें सम्पन्न करने वाले अभिकरणो (Agencies) का विभागो (Departments) मे वर्गीकरण कर लिया जाता है और विभिन्न विभाग आपस मे सम्बद्ध कर दिये जाते हैं तथा सीधे मुख्य निष्पादक (Chief Executive) की सत्ता के अन्तर्गत रखे जाते है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता-सूत्र (Line of authority) अनेक सेवाओ से उन विभागो की ओर को चलता है जिनकी वे (सेवाये) अधीनस्थ इकाइयाँ (Subordinates units) हैं और फिर वहाँ से मुख्य निष्पादक तक जाता है जिसके नियन्त्रण मे कि सभी विभाग रहने चाहियें। हमारे यहाँ भारत सरकार मे ही मन्त्रि-परिषद् मन्त्रियो (Cabinet Ministers) (जिनसे कि सामूहिक रूप से मिलकर भारत की मुख्य कार्यपालिका बनती है) के नियन्त्रण मे लगभग बीस विभाग (Departments) हैं। समान कार्य सम्पन्न करने वाले सभी अभिकरणो का अनेक विभागो मे वर्गीकरण कर लिया गया है, उदाहरण के लिए, रेल-विभाग, विदेश विभाग, गृह-विभाग आदि-आदि, और ये सब विभाग मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) की सत्ता के अन्तर्गत रहते हैं। **विलोबी** *(Willoughby)* के अनुसार, "एकीकृत व्यवस्था मे यह प्रयत्न किया जाता है कि जिन सेवाओ की कार्यवाहियाँ एक सी सामान्य परिधि मे आती हैं और उसके परिणामस्वरूप जिनके बीच परस्पर घनिष्ठ रूप से कार्यकारी सम्बन्ध कायम रहना चाहिए, उन सभी सेवाओ का विभागो म वर्गीकरण कर लिया जाये, जिनके अध्यक्ष ऐसे अधिकारी हो जो कि उन सब पर सामान्य दृष्टि रखे और उनका कर्तव्य यह हो कि वह यह देख कि वे समान उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा मे एक स्वर स कार्य कर रही है। इस व्यवस्था के अन्तगत सत्ता सूत्र (Line of authority) अनेक सेवाओ (Services) से उन विभागों की ओर चलता है, जिनकी वे (सेवायें) अधीनस्थ इकाइयाँ है और फिर वहाँ से मुख्य कार्यपालिका अथवा व्यवस्थापिका (Legislature) तक जाता है जिसका कि अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) सभी विभागो तक फैला होना है।'[1] प्रशासन की एकीकृत अथवा गठित व्यवस्था मे सभी अग समान उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा मे साथ साथ कार्य करते हैं और इसमे

1 W F Willoughby *op cit*, p 75

सत्ता-सूत्र मुख्य निष्पादक के पास से अविच्छिन्न रूप मे चलता है और विभिन्न स्तरो पर होता हुआ व्यवस्था के सभी अगो तक पहुँचता है जिससे कि प्रशासन के सभी अग परस्पर सम्बद्ध तथा सम्बन्धित रहे। प्रशासन की भारतीय व्यवस्था को एकीकृत व्यवस्था कहा जाता है क्योकि सरकार विभागो (Departments) मे विभाजित है और वे सभी विभाग मन्त्रियो (अर्थात्, भारत की मुख्य कार्यपालिका) के नियन्त्रण मे कार्य करते हैं।

प्रशासन की अमेरिकन व्यवस्था स्वतन्त्र, एकीकरण-विहीन अथवा असम्बद्ध व्यवस्था के नाम से विख्यात है। प्रशासन की वह व्यवस्था, जिसमे कि सत्ता अनेक स्वतन्त्र कार्यालयो तथा आयोगो (Commissions) मे निहित रहती है, स्वतन्त्र (Independent) अथवा एकीकरण-विहीन (Disintegrated) व्यवस्था कही जाती है। इस व्यवस्था मे ये सभी कार्यालय तथा आयोग परस्पर सम्बद्ध नही होते। वे एक दूसरे से स्वतन्त्र होते है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक सेवा (Service) को एक स्वतन्त्र इकाई माना जाता है जिसका अन्य सेवाओ से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध या तो बिल्कुल नही होता अथवा थोडा सा होता है, और इसमे सत्ता-सूत्र सीधे चालित सेवा (Operating service) से मुख्य निष्पादक अथवा व्यवस्थापिका तक जाता है जिसके द्वारा कि इसका निर्माण हुआ था तथा जो वर्तमान मे भी उसका निर्देशन तथा नियन्त्रण करता है। सयुक्तराज्य अमेरिका मे अनेक ऐसे स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) तथा सरकारी निगम (Public corporations) है जो कि मुख्य निष्पादक के पूर्ण नियन्त्रण मे नही आते। इसी कारण इस व्यवस्था की अनेक बार आलोचना की जाती है और इन शाखाओ (Branches) का उल्लेख 'सरकार की शीर्षहीन चतुर्थ शाखा' (Headless fourth branch of the Government) के नाम से किया जाता है। अमरीकी प्रशासन व्यवस्था की इस स्थिति के बारे मे लिखते हुए फिफनर (*Pfiffner*) ने कहा कि सयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली मे अनेको ऐसे अभिकरण (Agencies) हो गये है जिनको कि स्वायत्तता (Autonomy) प्राप्त है। परन्तु उसके कारण शासन कार्य मे समन्वय (co-ordination) स्थापित करना कठिन हो गया है। अमेरिका मे लोक प्रशासन के छात्र तथा लोक प्रशासक इस व्यवस्था का विरोध करते है और एकमत से इसको अस्वीकार करते हैं। प्रशासन की एकीकृत प्रणाली के लाभ निम्न प्रकार है—

(१) इसमे प्रशासन के विभिन्न अभिकरणो (Agencies) का उचित समन्वय हो जाता है। चूंकि सरकार के कार्यों मे तेजी के साथ वृद्धि हो रही है अत यह आवश्यक है कि उसके सभी विभागो मे समन्वय स्थापित हो, अन्यथा एक प्रकार की प्रशासनिक अराजकता (Anarchy) उत्पन्न हो जायेगी। एकीकृत व्यवस्था मे चूंकि सरकार के भिन्न भिन्न विभागो का उचित रूप से समन्वय हो जाता है अत यही इसका सबसे पहला लाभ है।

(२) जब सेवाओं का एकीकरण विभागीय आधार पर किया जाता है तो अधिकार क्षेत्र के विवाद (Conflict of jurisdiction) का कोई प्रश्न नहीं उठता। यह व्यवस्था कार्यों अथवा क्रियाओं के अतिव्यापन (Overlapping) की सम्भावनाओं को भी दूर करती है।

(३) इस व्यवस्था के अन्तर्गत मुख्य निष्पादक (Chief executive) अपने बजट सम्बन्धी कार्यों को अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न कर सकता है। सभी विभागों के कार्यों की योजना तथा साधनों की तस्वीर उसके सामने रहती है अत वह सरलता के साथ बजट बना सकता है।

(४) इस व्यवस्था मे हर एक की सत्ता (Authority) तथा उत्तरदायित्व (Responsibility) का पूर्णत स्पष्टीकरण हो जाता है।

(५) यह व्यवस्था सरकार के विभिन्न अभिकरणों के बीच अधिक सहयोग उत्पन्न करती है।

(६) इस व्यवस्था म मुख्य निष्पादक सभी विभागों का सक्रिय पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण कर सकता है, और प्रशासन के प्रधान (Head) के रूप मे अपने कार्यों को सम्पन्न करने के लिये उसके द्वारा ऐसा पर्यवेक्षण एव नियन्त्रण करना अत्यन्त आवश्यक है।

इसके आलोचक (Critics) तथा स्वतन्त्र व्यवस्था (Independent system) के समर्थक यह कहते हैं कि प्रशासन की एकीकृत व्यवस्था (Integrated system) तानाशाही (Dictatorship) को प्रोत्साहन देती है क्योंकि इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण सत्ता मुख्य निष्पादक मे केन्द्रित हो जाती है। राष्ट्रपति (President) की सत्ता के प्रति उत्पन्न यह अविश्वास ही अमेरिका-वासियों को स्वतन्त्र व्यवस्था का समर्थक बनाता है। पर एकीकृत प्रणाली के जो लाभ गिनाये जाते हैं वे इतने वजनी हैं कि स्वतन्त्र व्यवस्था को आमतौर से समर्थन की दृष्टि से नहीं देखा जाता। विश्वास यह है कि स्वतन्त्र व्यवस्था प्रशासन म अराजकता तथा भ्रम उत्पन्न करती है क्योंकि इसमे प्रत्येक सेवा (Service) एक दूसरे से स्वतन्त्र होती है और इन सेवाओं के बीच ऐसी कोई कड़ी नहीं होती जो इनको परस्पर सम्बद्ध कर सके। व्यवहार मे यह व्यवस्था किस प्रकार दक्षता के साथ कार्य कर सकती है? हूवर आयोग (*Hoover Commission*) ने भी प्रशासन की एकीकृत अथवा विभागीय व्यवस्था की ही सिफारिश की। हूवर आयोग ने विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management) के बारे मे दिये गये कार्य-सम्बन्धी प्रतिवेदन (Report) मे विभागीय प्रबन्ध के अनेक सिद्धान्तों का उल्लेख किया। प्रतिवेदन मे इस बात पर जोर दिया गया कि संघ सरकार (Federal Government) के निष्पादन विभागों (Executive Departments) को *अध्यक्षपद से नीचे निष्पादन शाखा मे प्रशासकीय* ढाँचे मे पड़े सगठनात्मक तत्वों के रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिये, और यह कि निष्पादन विभागों से बाहर विशिष्ट प्रशासकीय अभिकरणों (जैसे कि स्वतन्त्र

मस्थानो Independent Establishments) के निर्माण को हतोत्साहित किया जाना चाहिये तथा स्वय ये विभाग भी क्रियाग्रो के सुस्पष्ट परस्पर सम्बन्धित वर्गों (Groups) पर ग्राधारित होने चाहियें ।

पुनर्गठन
(Reorganization)

समाज की माँगो मे परिवर्तन होता रहता है ग्रत स्वभावत ही बदलती हुई परिस्थितियो म ग्रनुकूल प्रशासन का पुनर्गठन होना चाहिए । सरकार के मूल ढाचे मे निश्चित ग्रवधियो के पश्चात् पुनर्गठन होना ग्रावश्यक है । इस तथ्य से इकार नही किया जा सकता कि "यदि प्रत्येक बीस या तीस वर्ष की ग्रवधि के पश्चात् एक बाह्य ग्रायोग (Outside Commission) द्वारा सरकारी ढाँचे की पुन जाच पडताल की जाये……तो उससे बडा लाभ होगा । बाह्य ग्रायोग ग्रभिकरणो के कार्यभारी ग्रधिकारियो (Incharge Officials) के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण मे रहने के लिये मामले को यूँही नही निबटा देगा । यह ग्राशा की जा सकती है कि किसी ग्रन्य ग्रान्तरिक एजेन्सी के मुकाबले बाहरी ग्रायोग की सिफारिशो पर ग्रधिक ध्यान दिया जायगा ।"[1] विभिन्न देशो मे समय-समय पर पुर्नगठन ग्रायोगो (Reorganization Commissions) की नियुक्तियाँ की जाती रही है, उदाहरणार्थ, सयुक्त राज्य ग्रमेरिका मे हूवर ग्रायोग । भारत सरकार ने इस सम्बन्ध मे विशेषज्ञो (Experts) की सम्मति ली ग्रौर उन्होने सरकार के समक्ष ग्रपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये । सन् १६४६ मे एन० गोपाल स्वामी ग्रायगर ने 'सरकारी यन्त्र रचना के पुर्नगठन पर प्रतिवेदन' (Report on the Reorganization of Machinery of Government) प्रस्तुत किया । सन् १६५१ म ए० डी० गोरवाला *(A D Gorwala)* द्वारा लोक प्रशासन पर प्रस्तुत किये गये प्रतिवेदन म तथा पॉल एपिलबी *(Paul Appleby)* के दो प्रतिवेदनो मे भारत के प्रशासकीय ढाँचे मे ग्रनेक परिवर्तन करने के सुझाव दिये गये ।

भारत म सन् १६५४ मे सगठन तथा प्रणाली सम्भाग (Organization and Method Division) की स्थापना की गई थी । १४ फरवरी सन् १६६० के हिन्दुस्तान टाइम्स (Hindustan Times) मे प्रशासन के ढाँचे की जाच से सम्बन्धित एक समाचार प्रकाशित हुग्रा था जिसमे ग्रन्य बातो के बीच यह कहा गया था कि "गृह मन्त्रालय मे भारत सरकार की प्रशासकीय मशीनरी के सुगम सचालन के लिए दूरगामी महत्व के सुझाव प्राप्त हुए है । इसके बाद कहा गया कि गृहमन्त्री प० गोविन्द वल्लभ पन्त ने ग्रालोचनायें ग्रामन्त्रित करने के लिये एक दस-सूत्री विवरण प्रसारित किया है जिसमे कहा गया है कि "एक उच्च स्तर समिति की शीघ्र ही स्थापना की जायेगी जो कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के बगलोर ग्रधिवेशन

1 Herbert Emmerich *Essays on Federal Reorganization*, University Ala, 1948 pp 142-145

म पास किये गये प्रस्ताव के अनुसार, प्रशासकीय ढाँचे में सभी स्तरों पर मितव्ययता, दक्षता एवं पूर्णता लाने के लिये केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों द्वारा व्यक्त किये विचारों की जाँच करेगी।" इस प्रकार समय-समय पर प्रशासकीय ढाँचे का पुनर्गठन किया जाता है।

संगठन के रूप
(Forms of Organizations)

संगठन के महत्वपूर्ण रूप निम्नलिखित हैं—

(१) सूत्र इकाइयाँ (Line Units)

(२) स्टाफ अभिकरण (Staff Agencies)

(३) विभाग (Departments)

(४) सरकारी निगम (Government Corporation)

(५) स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions)।

संगठन के सिद्धान्तों एवं समस्याओं के पर्यवेक्षण के निष्कर्ष को हम निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

(१) संगठन में सभी पदों का उत्तरदायित्व तथा सत्ता निश्चित तथा बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए। सत्ता उत्तरदायित्व के अनुरूप ही होनी चाहिये।

(२) संगठन म किसी एक पद पर नियुक्त कोई भी कर्मचारी एक से अधिक व्यक्तियों की आज्ञाओं के अधीन नहीं रहना चाहिये। इसे ही आदेश की एकता (Unity of Command) का सिद्धान्त कहा जाता है। अधीनस्थ कर्मचारियों की आज्ञायें उनके ऊपर के प्रमुख अधिकारी के द्वारा ही दी जानी चाहिये और यदि ऐसा नहीं करता है तो उस अधिकारी को ही हटा देना चाहिए।

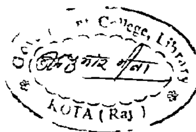
(३) विभाग के किसी भी प्रशासक (Administrator) के समक्ष प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करने वाले अधीनस्थ कर्मचारियों की संख्या उससे अधिक नहीं होनी चाहिये जितना का वह यथेष्ट रूप म निरीक्षण कर सकता हो। यही नियन्त्रण-क्षेत्र (Span of Control) का सिद्धान्त कहलाता है।

(४) विभाग के संचालक का प्रमुख कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह विभाग के अनेक बड़े सम्भागों (Major Divisions) के कर्मचारी वर्ग तथा कार्यों में समन्वय स्थापित करे। इसे समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination) कहा जाता है।

(५) कार्यों में दक्षता एवं कुशलता लाने के उद्देश्य से अधिकारियों (Officers) को अपनी सत्ता का हस्तान्तरण अथवा प्रत्यायोजन (Delegation) करना चाहिये। इस प्रत्यायोजन का सिद्धान्त (Principle of delegation) कहा जाता है।

संगठन के ये सिद्धान्त अनुभवों के परिणाम हैं परन्तु जैसे-जैसे और नया अनुभव प्राप्त हो, पुराने सिद्धान्तों में नवीन परिवर्तन तथा संशोधन किये ही जाते हैं

चाहिये। निष्कर्ष के रूप म हम कह सकते हैं कि "एक अच्छी खोजपूर्ण मनोवृत्ति सगठन की समस्याओ का एक लाभदायक हल प्रस्तुत करती है। सगठन के सिद्धान्तो (Principles of Organization) पर, चाहे वे कितने ही स्वत सिद्ध (Self Evident) क्यों न हों, उद्देश्य प्राप्ति के साधनो (Means to an end) के रूप म ही विचार किया जाना चाहिए और उद्देश्य सदा विवादपूर्ण होता ही है।"[1]



1 Dimock op. cit., p 133

४

सूत्र तथा स्टाफ (Line and Staff)

लोक प्रशासन के लेखकों को सूत्र (Line) तथा स्टाफ (Staff) के अन्तर की व्याख्या करने में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। डब्लू० एफ० विलोबी (*W F Willoughby*) ने 'लोक प्रशासन के सिद्धान्त' (*Principle of Public Administration*) नामक अपनी पुस्तक में सरकारी सेवाओं की 'मुख्य अथवा कार्यात्मक' (Primary of functional) तथा 'संस्थागत अथवा गृह प्रबन्ध' (Institutional or house keeping) क्रियाओं के मध्य एक मौलिक भेद किया है। उन्होंने कहा है कि 'मुख्य अथवा कार्यात्मक क्रियायें वे क्रियायें हैं जिनको कि कोई सेवा (*Service*) उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये सम्पन्न करती है जिसके लिये कि उसका अस्तित्व कायम है। दूसरी ओर संस्थागत अथवा गृह-प्रबन्ध क्रियायें उन क्रियाओं को कहते हैं जिनका एक सेवा द्वारा सम्पन्न किया जाना इसलिये आवश्यक होता है जिससे कि वह एक सेवा के रूप में वर्तमान रह सके तथा कार्य कर सकें।'[1] अन्य शब्दों में, मुख्य अथवा कार्यात्मक क्रियायें उन क्रियाओं को कहते हैं जिनको एक अभिकरण (Agency) द्वारा सम्पन्न किये जाने की आशा इसलिए की जाती है कि जिससे वह अभिकरण अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। संस्थागत अथवा गृह प्रबन्ध क्रियायें वे कार्य हैं, जो कि एक अभिकरण को कार्यरत रखने के लिए सम्पन्न किये ही जाने चाहिये। इस प्रकार, मुख्य क्रियायें तो स्वयं उद्देश्य हैं और संस्थागत क्रियाएं उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन हैं।

सरकारी अभिकरणों (Agencies) द्वारा सम्पन्न की जाने वाली दोनों प्रकार की क्रियाओं के बीच विलोबी द्वारा किया जाने वाला यह भेद (*Distinction*) एक अन्य भेद के समान है जो कि लोक-प्रशासन के लेखकों द्वारा प्राय प्रकट किया जाता है और वह भेद है सूत्र (Line) तथा स्टाफ के बीच का। ये दोनों ही शब्द सैनिक संगठन (Military organization) से लिये गये हैं। सेना में दो प्रकार की इकाइयां (Units) होती हैं, एक सूत्र इकाई (Line unit) तथा दूसरी स्टाफ इकाई (Staff unit)। सूत्र अधिकारी (Line officers) युद्ध के मैदान में सेना को आदेश देते हैं व उनका सञ्चालन करते हैं। वे लड़ाई का वास्तविक कार्य सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सूत्र इकाइयों का कार्य संगठन का मुख्य उद्देश्य, अर्थात् युद्ध में विजय प्राप्त करना होता है। परन्तु लड़ने वाली सेना

1 W F Willoughby, *Principles of Public Administration*, p 105

के लिए भोजन, औषधियो, अस्त्र-शस्त्र व गोला-बारूद आदि की भी व्यवस्था करनी होती है और इन चीजो के बिना सेना लड़ नही सकती। ये कार्य सेना की स्टाफ इकाइयो द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। स्टाफ इकाइयाँ असल म युद्ध मे लडती नही है बल्कि वे लडने वाले सैनिको की सहायता करती हैं। इनकी सहायता के बिना कोई भी सैनिक युद्ध मे लड नही सकता। ये इकाइयाँ उस मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायक होती है जिनके लिए कि सेना का निर्माण किया जाता है। ये इकाइयाँ योजना बनाती है तथा लडने वाली विभिन्न इकाइयो मे समन्वय कायम करती हैं जिससे लडाई सफलतापूर्वक लडी जा सके। अब हम यह देखेंगे कि नागरिक अथवा असैनिक प्रशासन (Civilian administration) मे सूत्र तथा स्टाफ से क्या तात्पर्य है।

सूत्र तथा स्टाफ का अर्थ
(Meaning of line and Staff)

किसी भी सरकार की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था अनेक बडी-बडी कठिनाइयो मे बटी होती है जिन्हे कि 'विभाग (Departments) अथवा 'अभिकरण (Agencies) कहा जाता है। य विभाग अथवा अभिकरण बडे-बडे ठोस कार्यो के आधार पर सगठित किये जाते है। इनका सम्बन्ध अपने क्षेत्र की विषय सामग्री से होता है। भारत सरकार मे ही वाणिज्य तथा उद्योग, स्वास्थ्य शिक्षा, खाद्य व कृषि आदि विभाग हैं। सरकार की प्रशासकीय व्यवस्था के ये बडे बडे सम्भाग (Major divisions) 'सूत्र' विभाग (Line departments) के नाम से पुकारे जाते है क्योंकि इनका सम्बन्ध उस मुख्य उद्देश्य से होता है जिसके लिये कि सरकार कायम रहती है। ये विभाग व्यक्तियो के लिये सेवाए सम्पन्न कर सकते है तथा उनके आचार व्यवहार का नियमन करते है। सूत्र अधिकारियो (Line officers) को नीति का निर्माण करना होता है और आदेश जारी करन होते है। अत सूत्र अभिकरण (Line agencies) वे अभिकरण हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मूल विषय सम्बन्धी उन कार्यों को सम्पन्न करना है जिनके बारे मे यह माना जाता है कि ये कार्य सगठन को सम्पन्न करते हैं। प्रत्येक बडा सूत्र विभाग अनेक इकाइयो (Units), जैसे कि ब्यूरो (Bureaus) अथवा सम्भागो (Divisions) आदि मे बटा होता है परन्तु प्रभावपूर्ण रीति से कार्य-सचालन के लिये ये सब 'आदेश की एक शृंखला' (A chain of Command) से सम्बद्ध रहते हैं। सूत्र सदृश सगठन म निष्पादक अथवा कार्यपालिका ही अपने अधीनस्थ कर्मचारियो पर पूर्ण अधिकार रखती है। सभी अनुदेश (Instructions) उसके ही द्वारा जारी किय जाते हैं और उसके कर्मचारी सत्ता के एकमात्र स्रोत के रूप मे उसकी ओर ही देखते हैं।

'सूत्र सगठन (Line organization) निश्चित ही एक सामान्य गणितीय उपसम्भाग (Sub-division) है······। इसमे सत्ता तथा उत्तरदायित्व की रेखाएँ ऊपर स नीचे तक उसी प्रकार फैली होती है जिस प्रकार कि पेड की एक पत्ती की

नसें (veins) उसके डण्ठल में इकट्ठी होती हैं तथा अनेक पत्तियों के डण्ठलों से टहनी तक, टहनियों से शाखा तक, और अनेक शाखाओं से पेड़ के तने तक फैली होती हैं, इन नसों, डण्ठलों, टहनियों, शाखाओं तथा तने को पेड़ के विकास व उसके जीवन में व्यवहारतः वैसे ही कार्य सम्पन्न करने होते हैं।"[1]

परन्तु इन सूत्र विभागों को उनके उद्देश्यों की पूर्ति में अन्य इकाइयों द्वारा सहायता प्रदान की जाती है जिन्हें कि 'स्टाफ इकाइयाँ' (Staff units) कहा जाता है। स्टाफ से तात्पर्य है कि जिस पर निर्भर रहा जा सके अथवा जिसके सहयोग से कठिनाइयों के बीच मार्ग ढूंढा जा सके। जिस प्रकार कि एक छड़ी (Staff) मनुष्य को चलने में सहायता देती है, उसी प्रकार स्टाफ इकाइयाँ विशिष्ट जानकारी तथा विवेकपूर्ण परामर्श प्रदान करके निष्पादक सत्ता की सहायता करती है। स्टाफ एक परामर्श देने वाला अंग है, इस पर किसी भी प्रकार का संचालन करने का उत्तरदायित्व नहीं होता। "स्टाफ सूत्र विभाग (Line department) के लिये योजना बनाता है, उसको सलाह देता है तथा उसकी सहायता करता है परन्तु यह आदेश नहीं दे सकता '' ''स्टाफ अभिकरणों का मुख्य उद्देश्य प्रबन्ध सम्बन्धी (Managerial) अथवा 'गृह प्रबन्ध (House-keeping) सेवाएं सम्पन्न करता है जिससे कि लक्ष्य फल प्राप्त हो सके।'[2] फयल (*Fayal*) ने औद्योगिक व्यवस्था में 'स्टाफ' के स्थान का वर्णन निम्न शब्दों में किया है—"बड़े उद्योगों (Enterprise) के प्रधानों (Heads) में चाहे कितनी ही योग्यता तथा कार्य-क्षमता क्यों न हो वे अपने समस्त कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को स्वयं पूरा नहीं कर सकते ···अतः वे व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग का सहारा लेते हैं जिनके पास ऐसी शक्ति योग्यता तथा समय होता है जिसका कि प्रधान में अभाव हो सकता है। व्यक्तियों के इस वर्ग से प्रबन्धकीय स्टाफ का निर्माण होता है। यह एक तरह की सहायता है तथा प्रबन्धक (Manager) के व्यक्तित्व का एक प्रकार से विस्तार है जिससे कि अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में उसे मदद मिल सके। केवल बड़े व्यवसायों में ही स्टाफ एक पृथक् संस्था के रूप में दिखाई देता है और व्यवसाय के महत्व के साथ ही साथ इसका महत्व भी बढ़ता जाता है"[3]

यह कहा जाता है कि स्टाफ की क्रियायें प्रशासक के व्यक्तित्व का केवल विस्तार मात्र है। मूनी (*Mooney*) के शब्दों में इसका अर्थ है अधिक आँखें, अधिक कान तथा अधिक हाथ जिससे कि प्रशासक अपनी योजनायें बना सके तथा उन्हें लागू कर सके।' प्रशासक (Administrator) अथवा मुख्य निष्पादक (Chief Executive) पोस्डकोर्ब (POSDCORB) क्रियायें सम्पन्न करता है। ये आठों अक्षर 'Planning' (योजनायें बनाना), 'Organizing' (संगठन करना) 'Staffing' (कर्मचारियों की व्यवस्था करना), 'Directing' (निर्देशन

1 Albert Lepawsky (Ed) *Administration*, p 291
2 A Lepawsky (Ed) *Administration*, p 320
3 Henry Fayal, in Gullick and Urwick (Eds), *op cit* p 104

करना), 'Co-ordinating' (समन्वय करना), 'Reporting' (रिपोर्ट देना), तथा 'Budgeting' (बजट तैयार करना)—इन अंग्रेजी शब्दो के प्रारम्भिक अक्षर है। इन क्रियाओ को सम्पन्न करने के लिए उसे सहायता, विशिष्ट परामर्श और तथ्यो एव आकडो की आवश्यकता होती है। ये सब कार्य उसके लिए स्टाफ इकाइयो द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। स्टाफ का कार्य-श्रम-विभाजन (Division of labour) के सिद्धान्त का अनिवार्य परिणाम है जिसे कि बडे सगठनो मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। परन्तु स्टाफ दो कार्य नही कर सकता। प्रथम तो, यह स्वय अपने आदेश जारी नही कर सकता। आदेश जारी करना प्रशासक अथवा सूत्र विभागो (Line Departments) का कार्य है। दूसरे, इसका कार्य नीतियो को क्रियान्वित करना नही है। यह तो केवल सूत्र-विभाग के लिए योजनायें बनाता है, परामर्श देता है, सुझाव देता है, उसकी सहायता करता है, तथा उसको कार्य करने के लिए तैयार करता है। विदेश कार्यालय (Foreign office) को विदेशी सम्बन्धो का सचालन करने के लिए विदेशो मे राजदूतावास (Embassies) दूतावास (Legations) तथा कोसलावास (Consulates) स्थापित करने ही पडते हैं। वह कार्य इसका सूत्र-कार्य (Line function) है। देश मे इसके अनुसधान (research), राजकोषीय (Fiscal) तथा प्रशिक्षण (Training) सभाग (Divisions) महत्त्वपूर्ण स्टॉफ कार्यों को सम्पन्न करते हैं।

सूत्र तथा स्टाफ के बीच भेद के विषय मे कुछ सावधानी
(A word of caution about the distinction between Line and Staff).

हमने यह देखा कि सूत्र इकाइयाँ (Line units) कार्य-निष्पादन करने वाली (Executive), तथा स्टाफ इकाइयाँ (Staff units) परामर्श देने वाली इकाइयां है। सूत्र (Line) का काम है कार्य करना अथवा कार्यवाही करना और स्टॉफ का कार्य है उसको सुगम बनाना। स्टॉफ सगठन को शुद्ध रूप से सम्मति देने वाला तथा परामर्श देने वाला सगठन कहा गया है। इसके द्वारा सूत्र के ऊपर किसी भी प्रत्यक्ष अधिकार के प्रयोग की आशा नही की जाती। यह कहा गया कि "जिस प्रकार सूत्र सगठन कार्य-निष्पादन के लिए बनाया जाने वाला सगठन है, ठीक उसी प्रकार स्टॉफ सगठन को विचार-विमर्श के लिए बनाया जाने वाला सगठन कहा जा सकता है।"[1] 'स्टॉफ' को पूर्णतया एक औपचारिक सगठन (Formal organization) माना जाता है जिसका आशय परामर्श देने के एकमात्र कार्य तथा आदेश देने के क्रमिक अधिकार मे भेद करना होता है।"[2]

सूत्र तथा स्टॉफ के वास्तविक सम्बन्ध के बारे मे पुनर्विचार भी किया गया है। लेपास्की (*Lepawsky*) ने इस सम्बन्ध मे नई विचारधारा की व्याख्या इन शब्दो मे की है कि "स्टॉफ तथा सूत्र समवर्गीय (Coordinates) है, जो कि सूत्र से स्टॉफ

1 Oliver Sheldon: *The Philosophy of Management*, London, 1923, p 120

2 James D Mooney and Aalm C Reiley, Onward Industry, New York, 1931, p 63.

तक एक पदसोपान के (Hierarchical) सम्बन्ध के आधार पर नहीं, बल्कि मुख्य निष्पादक के अन्तर्गत सत्ता तथा उत्तरदायित्व की एक क्षैतिज (Horizontal) रेखा पर कार्य करते हैं।"[1]

अतः सूत्र तथा स्टॉफ के बीच के इस भेद को, कि इनमें से एक का काम कार्यवाही करना है तथा दूसरे का परामर्श देना, अधिक बढ़ा चढ़ा कर नहीं कहना चाहिए। फिर, वास्तविक प्रशासन में क्रियाओं को सदा ही स्टॉफ अथवा सूत्र की श्रेणियों में स्पष्ट रूप से नहीं बाटा जाता। प्रत्येक संगठन में, सूत्र तथा स्टॉफ का कार्य किया जाता है। परन्तु कोई भी व्यक्ति संगठन में सदा ऐसी पृथक्-पृथक् इकाइयाँ अथवा अधिकारी नहीं पा सकता जो कि इन दो प्रकार के कार्यों में लगे हों। भारतीय प्रशासन में ही पॉल एच० एप्लिबी (*Paul H Appleby*) ने सूत्र स्टॉफ के भेदों के बारे में भारी कठिनाई का अनुभव किया। उन्होंने कहा

"ऐसी कोई शब्दावली (Terminology) तथा ऐसा कोई ढाचा नहीं है जो कि "सूत्र" (Line) तथा 'स्टाफ' (Staff) के बीच भेद कर सके। इन दोनों शब्दों का जन्म एक शताब्दी अथवा उससे भी अधिक पूर्व जर्मनी में हुआ था और तभी से ये शब्दावली अन्यत्र जनतन्त्रीय देशों में फैली तथा प्रयोग करते समय इसमें सुधार किया गया। इस शब्दावली के अनुसार स्टॉफ कार्यालय (Staff offices) वे हैं जो योजनायें बनाने में, सेना के आवागमन की क्रिया में, वित्तीय तथा कार्मिक (Personnel) नियन्त्रणों में, प्रशासकीय प्रस्तावों के कानूनी पर्यवेक्षण में, राजनैतिक रूप से नहीं बल्कि ठोस रूप से सार्वजनिक रिपोर्ट देने में व्यस्त रहते हैं। इसके विपरीत सूत्र संगठन वे हैं जो कि कार्य-क्रम सम्बन्धी क्रियायें सम्पन्न करते हैं, जो वास्तव में प्रशासन सम्बन्धी कार्यवाहियों का सचालन करते हैं, कानूनों को लागू करते हैं तथा विस्तृत उद्देश्यों को पूरा करते हैं। यहाँ (भारत में) ये शब्द संगठन के ढाचे में लागू नहीं हो सकते। इसमें तो इनका कोई मतलब ही नहीं है। इनका प्रयोग इस बात का वर्णन करने में किया जा सकता है जो यहाँ पाई ही नहीं जाती। प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों तथा केन्द्रीय करों के संग्रह को छोड़ कर, लगभग सम्पूर्ण केन्द्र एक बड़ा "स्टॉफ" संगठन है। इन तथा कुछ अन्य अपवादों (Exceptions) को छोड़ कर नई दिल्ली में कोई भी सूत्र कार्य नहीं है। अन्य देशों में, इन अपवादों के अलावा केन्द्र सरकार में अन्य कोई वास्तविक तथा पूर्ण प्रशासन नहीं है।

अन्य व्यवस्थाओं की शब्दावली में (उन क्षेत्रों को छोड़कर जिनका कि पहिले ही अपवाद के रूप में उल्लेख किया जा चुका है) सम्पूर्ण केन्द्र ही "स्टाफ" है जिसमें कोई "सूत्र" प्रशासन नहीं है।"[2]

1 Albert Lepwasky (Ed) *Administration*, p 998 See also chapter entitled ' Staff and Line Organization

2 *Public Administration in India*, *Report of a Survey by* Paul H Appleby *Consultant in Public Administration*, p 18

अत एल्विन ब्राउन का कहना है कि "इस विषय मे अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि अधिकांश सगठनो मे दो क्रम पाये जाते है : एक तो सूत्र—जो कि कार्य का निष्पादन करता है, और दूसरा स्टाफ—जो कि योजनाएँ बनाता है तथा अन्य अनेक आकस्मिक सेवाएँ सम्पन्न करता है।"[1]

कुछ लोगो की राय मे, 'स्टॉफ' को केवल परामर्श देने वाली इकाइयाँ बतलाना—देश की प्रशासकीय व्यवस्था म इन इकाइयो के वास्तविक महत्त्व तथा योग (Role) के विषय मे भ्रम उत्पन्न करता है। फिफनर (*Pfiffner*) के अनुसार, 'स्टाफ कार्य की परामर्शदात्री प्रकृति पर अत्यधिक जोर देने के कारण ही "स्टॉफ" शब्द के उपयोग के बारे मे बहुत अधिक भ्रम उत्पन्न हो गया है। एक सामान्य सी गलत धारणा यह बन गई है कि स्टॉफ कर्मचारी पृथक्, शिक्षा प्राप्त, विद्वान तथा रिटायर होने वाले व्यक्ति होते हैं जो कि प्रशासन के कार्य क्षेत्र से दूर रहते हुए डेस्को पर बैठते हैं, और वहाँ वे योजनाएँ बनाते है जोकि विचार के लिए मुख्य निष्पादक के पास भेज दी जाती हैं। नियम यह है कि मुख्य निष्पादक इन प्रतिवेदनो (Reports) तथा योजनाओ का अच्छी प्रकार अध्ययन करता है, उन पर अपना स्वतत्र निर्णय करता है और उसके बाद आदेश की शृखला (Chain of command) मे नीचे तक आज्ञाएँ (Orders) जारी करता है।"[2] इस प्रकार स्टॉफ केवल परामर्श देने वाला ही नही है। इसका स्थान तो सम्पादित किए जाने वाले कार्य के मध्य (हृदय) म होता है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि "स्टॉफ" सेवाएँ, स्टॉफ अभिकरण तथा स्टॉफ कर्मचारी विभिन्न प्रकार के होते हैं।" इन सब को तीन प्रमुख वर्गों मे बाटा जा सकता है सामान्य स्टॉफ (General staff), सहायक स्टॉफ (Auxiliary staff) तथा प्राविधिक अथवा तकनीकी स्टॉफ (Technical staff)। फिफनर (*Pfiffner*) का कहना है कि "इन तीनो ही वर्गों के अन्तर्गत सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं के बीच के भेद को समझ लेने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्टॉफ सेवाएँ (Staff services) अध्ययन करने, योजनाएँ बनाने तथा परामर्श देने के कार्य से काफी दूर हैं, ये तो शासन प्रबन्ध के असल कार्य को सुविधाजनक बनाती है।[3]

अब हम इन तीनो ही प्रकार की स्टाफ सेवाओ पर एक-एक करके विचार करेंगे।

सामान्य स्टॉफ
(The General Staff)

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है सामान्य स्टॉफ उस स्टाफ अथवा कर्मचारी-वर्ग को कहते हैं जो कि सामान्यतया मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) के प्रशासकीय कर्तव्यो को पूरा करने मे उसकी सहायता करता

1 Alvin Brown Organization, *A formulation of Policy*, p 278
2 Pfiffner, *op*, *cit* p 85
3 *Ibid*, p 85

है। यह परामर्श देना है, तथ्यो का सग्रह करता है और महत्वपूर्ण मामले मुख्य निष्पादक के सम्मुख निर्णय के लिए रखता है। असम्बद्ध तथा अनावश्यक वातो को समाप्त करके यह सम्बद्ध तथ्यो (Relevent facts) को मुख्य निष्पादक के सम्मुख रखता है और इस प्रकार उसका समय तथा शक्ति बचाता है। सामान्य स्टॉफ महत्वपूर्ण मामलो को निपटाने मे मुख्य निष्पादक की सहायता करता है जिससे कि अनावश्यक वातो मे उसका समय नष्ट न हो। सामान्य स्टॉफ को अन्य लोगो के लिए आदेश देने वाली जैसी कोई प्रत्यक्ष सत्ता प्राप्त नही होती।

प्रत्येक देश मे मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका के पास एक सामान्य स्टॉफ होता है जो कि उसके कर्तव्यो के पूरा करने मे उसकी सहायता करता है। भारत मे मुख्य कार्यपालिका का सामान्य स्टॉफ इस प्रकार है (१) मन्त्रि परिषद् सचिवालय (Cabinet secretariat), (२) वित्त-मन्त्रालय (Ministry of Finance) जो कि बजट सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने मे मुख्य कार्यपालिका की सहायता करता है उदाहरणार्थ बजट तैयार करने मे तथा बजट को क्रियान्वित करने मे आदि-आदि, (३) योजना आयोग (Planning Commission) जो मुख्य कार्यपालिका को उसके आर्थिक कर्तव्यो के पूरा करने मे परामर्श देता है तथा उसकी सहायता करता है, (४) स्वराष्ट्र अथवा गृह मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs) जो कि कर्मचारियो के चुनाव, भर्ती तथा नियन्त्रण मे मुख्य कार्यपालिका की सहायता करता है। भारतीय स्थिति के सम्बन्ध मे एक कठिनाई यह है कि ये 'सामान्य स्टॉफ' अभिकरण ('General staff' agencies) उस दिशा मे इतने विकसित नही हैं जैसे कि ससार के अन्य मुख्य निष्पादको अथवा मुख्य कार्यपालिकाओ के सामान्य स्टॉफ अभिकरण हैं। ब्रिटेन मे मन्त्रि-परिषद् सचिवालय तथा ब्रिटिश राजकोष (British Treasury) ही सामान्य स्टॉफ अभिकरण हैं जो कि मुख्य कार्यपालिका के कर्तव्यो को पूरा करने मे उसकी सहायता करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, राष्ट्रपति (President) की सहायता करने के लिए निम्न सामान्य स्टॉफ अभिकरण हैं—(१) ह्वाइट हाउस कार्यालय (White House Office), (२) बजट विभाग (Bureau of the Budget)[1]

सामान्य स्टाफ कर्मचारियो द्वारा अपने कार्यों को दक्षता एव कुशलता के साथ तथा सन्तोषजनक रूप मे सम्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि उनमे कुछ गुण होने चाहियें। वे गुण ये हैं—

(१) सामान्य स्टाफ कर्मचारियो को प्रत्येक चीज के बारे मे यथेष्ठ जानकारी होनी चाहियें। वे सामान्य-जानकार होने चाहियें।

(२) प्रत्येक जटिल मामलो के विषय मे उन्हें विस्तृत ज्ञान होना चाहिये। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि वे उन मामलो के विशेषज्ञ हो।

1 इन सबका विवेचन हम 'मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका महा प्रबन्धक के रूप में' नामक दूसरे पाठ के अन्तर्गत कर चुके हैं।

(३) सामान्य स्टाफ कर्मचारियो को चूंकि अन्य सूत्र अधिकारियो (Line officers) के साथ सहयोग (Co-operation) से काम करना होता है अत उनमे सहयोग करने की तथा मामलो पर योग्यता के साथ बातचीत चलाने एव विचार करने की क्षमता होनी चाहिये ।

(४) उनमे धर्म तथा अध्यवसाय जैसे गुण होने चाहिये क्योकि उन्हे तथ्यो के सग्रह करने का, उनका सूक्ष्म विवेचन करने का और उसके बाद सम्बद्ध सामग्री को निर्णय के लिए मुख्य निष्पादक के सम्मुख रखने का अत्यन्त दुष्कर कार्य सम्पन्न करना पडता है । यह एक बडा कठिन कार्य है, जैसा कि अनुसधान करने वाले विद्वान का कार्य होता है जो कि बडे धैर्य एव अध्यवसाय के बिना सम्पन्न नही हो सकता ।

(५) उनके अन्दर प्रसिद्धि पाने की अथवा प्रकाश मे आने की महत्वाकाक्षा नही होनी चाहिये । उन्हे तो अपने प्रधान के नीचे गौण बनकर ही रहना तथा कार्य करना चाहिये ।

(६) ये सूत्र अधिकारियो के साथ सहयोग से कार्य करते हैं परन्तु इन्हे उनके ऊपर कोई सत्ता प्राप्त नही होती । इस बात को इन्हे सदा दृष्टिगत रखना पडता है । झगडालू तथा सत्ता प्रेमी व्यक्ति सामान्य स्टाफ के पद के लिए अनुपयुक्त होते हैं । इसके लिए तो महत्वकाक्षा न रखने वाले विनयशील, गम्भीर तथा लगनशील व्यक्ति चाहियें ।

सहायक स्टाफ
(Auxiliary Staff)

प्रत्येक विभाग (Derpartment) का उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, जिसके लिए कि उसका अस्तित्व कायम होता है कुछ क्रियायें सम्पन्न करनी पडती हैं । रेलवे विभाग को यात्रियो के आवागमन तथा माल के यातायात के लिए रेलगाडियाँ चलानी पडती हैं । ये क्रियायें रेलवे की मुख्य अथवा प्रधान क्रियायें कही जाती हैं क्योकि ये क्रियाएँ उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए सम्पन्न की जाती है जिसके लिए कि रेलवे विभाग का निर्माण किया गया है । परन्तु रेलवे विभाग को कुछ अन्य क्रियाएँ भी इस लिए सम्पन्न करनी पडती हैं जिससे कि एक सेवा (Service) के रूप मे उसका अस्तित्व बना रह अथवा उसका सचालन हो सके । रेलगाडियाँ चलाने के लिए उसे कर्मचारियो की भर्ती करनी होती है । उस रेल की पटरियाँ बिछानी पडती हैं तथा रेलवे स्टेशनो का निर्माण करना पडता है । उसके लिए आवश्यक सामग्री खरीदनी होती है । रेलवे स्टेशनो के लिए सामग्री का खरीदा जाना तथा रेलगाडियो को चलाने के लिए कर्मचारियो की भर्ती करना—ये ऐसी क्रियाएं हैं जो कि रेलवे विभाग द्वारा इसलिए सम्पन्न की जाती हैं जिससे कि वह एक सदा के रूप मे कार्य करते तथा अपना अस्तित्व रख सके । डब्लू० एफ० विलोबी (*W. F Willoughby*) ने इन क्रियाओ को 'गृह प्रबन्ध' अथवा सस्थागत क्रियाओ (House keeping or institutional activities) की सज्ञा दी

है, परन्तु प्रो० एल० डी० ह्वाइट (*L. D. White*) ने इनको "सहायक सेवाओं" (Auxiliary services) का नाम दिया है। गृह-प्रबन्ध अथवा सहायक सेवाएं माध्यमिक (Secondary) सेवाएं हैं। ये उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कि विभाग कायम किये जाते हैं। ये क्रियाएँ उद्देश्य की प्राप्ति का साधन कही जा सकती हैं।

प्रत्येक विभाग अपना-अपना गृह-प्रबन्ध कार्य (House keeping work) कर सकता है। वह अपना स्वयं का सहायक कार्य (Auxiliary work) सम्पन्न कर सकता है। प्रत्येक विभाग भर्ती करने वाले अपने निजी अभिकरण (Agency) के द्वारा अपने कर्मचारियों की भर्ती (Recruitment) कर सकता है तथा अपने क्रय अभिकरण (Purchasing agency) के द्वारा अपने लिए सामग्री खरीद सकता है, आदि-आदि परन्तु गृह-प्रबन्ध अथवा सहायक सेवाएं सभी विभागों के लिए समान होती हैं। सभी विभागों (Departments) को कर्मचारियों व सामग्री आदि की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में स्वभावतः यह प्रश्न पैदा होता है कि सभी विभागों के इन सब-सामान्य कार्यों को क्यों न एक ऐसे केन्द्रीय अभिकरण (Central agency) के सुपुर्द कर दिया जाय जो कि मुख्य निष्पादक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो? सहायक अभिकरण (Auxiliary agencies) इन सब कार्यों को उन सभी विभागों के लिए सम्पन्न करेंगे जो कि एक सी ही प्रकृति के हों। प्रो० एल० डी० ह्वाइट (*L. D. White*) के अनुसार, "सहायक अभिकरण जनता की सेवा नहीं करते, यद्यपि यह हो सकता है कि उन्हें नागरिकों से व्यवहार करना पड़े। उनकी सेवा का पात्र तो सूत्र-अभिकरण (Line agency) होता है जिसकी सहायता वे आवश्यक सामान्य कार्यों का सम्पन्न करके करते हैं—जैसे कि माल तथा सामग्री खरीदकर, सार्वजनिक मुद्रण (Public printing) के ठेके लेकर, वास्तविक अचल सम्पत्ति की खरीद करके तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य सम्पन्न करके।"[1] सहायक अभिकरण एक सर्वमान्य क्रिया को सम्पन्न करते हैं जो कि सूत्र अभिकरणों को इस योग्य बनाती है कि वे अपने आपको कार्यकारी संगठनों के रूप में कायम रख सकें। भारत सरकार का प्रेस (Government of India Press) सरकार के सभी विभागों के लिए समस्त मुद्रण कार्य (Printing work) कर सकता है। एक केन्द्रीय क्रय अभिकरण (Central purchasing agency) सभी विभागों के लिये खरीद कर सकता है। एक केन्द्रीय सिविल सेवा आयोग (Central Civil service Commission) सभी सरकारी विभागों के लिये आवश्यक समस्त कर्मचारियों की भर्ती कर सकता है। सभी सम्बन्धित विभाग अपनी आवश्यकताओं की सूचना इन अभिकरणों को दे दें और तब ये विभागों के उत्तरदायित्व पर भर्ती का कार्य कर सकते हैं। जब सभी विभागों से सम्बन्धित ये समान कार्य केन्द्रीय सहायक अभिकरणों (Central auxiliary agencies) द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं तो इसके परिणाम स्वरूप कार्य में दक्षता (efficiency) तथा मितव्ययता (economy) आती है। विभाग का अध्यक्ष (Head of the Department) भर्ती तथा

1 L. D. White : op. cit. p. 30.

सामग्री की खरीद आदि से सम्बन्धित अनेक कार्यों से मुक्त हो जाता है। अत वह अपने आपको विभाग के मुख्य कार्यों की पूर्ति मे लगा सकता है। ऐसा होने से प्रशासन मे मितव्ययता सभव हो जाती है क्योकि यह व्यवस्था विभिन्न विभागो म कार्य के दोहराव (duplication) को रोकती है। सभी विभागो के लिय कार्य करने वाले एक सर्वसामान्य सिविल सेवा आयोग तथा एक सर्वसामान्य क्रय अभिकरण की बजाए यदि प्रत्येक विभाग का एक पृथक् सिविल सेवा आयोग और एक पथक क्रय अभिकरण रखे तो उसस बहुत अधिक तथा अनावश्यक खर्चा होगा।

कभी कभी "स्टाफ" तथा "सहायक क्रियाओ" (Auxiliary activities) के बीच भेद किया जाता है। यह कहा जाता है कि स्टाफ क्रिया परामर्श देने वाली क्रिया है, जबकि सहायक अभिकरण बजट, कर्मचारी वर्ग (personnel) तथा नियोजन (planning) आदि से सम्बन्धित कुछ सेवाएँ सम्पन्न करते हैं। स्टाफ, सगठन के नीति सम्बन्धी मामलो से भी सम्बद्ध होना है। यह नीतियो के पुन निर्धारण तथा उनमे पुन हर-फेर करन का सुझाव दे सकता है। सहायक अभिकरणो का सम्बन्ध किसी भी वर्तमान सगठन को केवल कायम रखने से होता है। सहायक सेवाएँ (Auxiliary services) चालित अभिकरण (operating agencies) होती हैं तथा ये कुछ सर्व सामान्य कार्यों को सम्पन्न करती हैं। शुद्ध स्टाफ क्रिया तो परामर्श देने वाली क्रिया होती है, जबकि सहायक अभिकरण विभागो के लिये खरीद (purchasing) व भर्ती (recruiting) करने जैसी कुछ सेवायें सम्पन्न करत हैं। दोनो की इकाइयाँ (units) केन्द्रीय अभिकरणो तथा सूत्र विभागो के काय को सुविधाजनक बनाती हैं।

विशिष्ट अथवा तकनीकी स्टाफ
(The Special or Technical Staff)

मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) को प्रशासन मे अनेक विशिष्ट, प्रावैधिक अथवा तकनीकी (Technical) मामलो से भी निपटना पड़ता है। अत मुख्य निष्पादक कुछ तकनीकी स्टाफ अधिकारियो को भी अपन पास रखते हैं, जैसे कि इजीनियर वित्तीय विशेषज्ञ (Financial experts) आदि, जो तकनीकी मामलो पर उन्हे परामर्श देते है। तकनीकी विशेषज्ञ मुख्य निष्पादको की सहायता करते हैं और उनकी सलाह उस क्षत्र मे बडी मूल्यवान सिद्ध होती है जिसके कि वे विशेषज्ञ होते हैं। वर्तमान युग मे, जबकि अणु क्षेत्रो मे तथा विज्ञान के जटिल एव गहन आविष्कारो के क्षेत्र मे तीव्र प्रगति हो रही है, मुख्य निष्पादक का इन समस्याओ के विषय मे भी जानकारी होनी चाहिये। और केवल ऐसा होने पर ही वह किसी भी नीति (Policy) को लेकर आगे बढ सकता है। अतः आधुनिक युग मे मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्य-पालिका के लिये तकनीकी स्टाफ की अत्यधिक आवश्यकता है।

निष्कर्ष : स्टाफ अभिकरणों के विषय में कुछ भ्रम
(Conclusion : Some Myths about Staff Agencies) :

जब यह कहा जाता है कि प्रशासन में दो प्रकार की इकाइयां होती हैं, एक सूत्र इकाई (line unit) और दूसरी स्टाफ इकाई (staff unit) तो इसका मतलब यह नहीं होता कि इस प्रकार सरकारी विभागों का नामकरण किया जा रहा है। यह हो सकता है कि एक सूत्र-विभाग स्टाफ-कार्य को सम्पन्न करे अथवा स्टाफ इकाई सूत्र कार्य को करे। इन नामों द्वारा जो भेद किया गया है उसका आशय तो मोटे तौर पर यह है कि विभिन्न सरकारी विभागों का जो क्रियाएँ सम्पन्न करनी पड़ती है वे दो प्रकार की होती है, एक तो है कार्य का निष्पादन (Execution) जो कि सूत्र इकाइयों द्वारा किया जाता है, दूसरी है परामर्शदात्री क्रिया जो कि स्टाफ इकाइयों द्वारा सम्पन्न की जाती है। इस मोटे से भेद को भी अत्यन्त सावधानी के साथ ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

हर्बर्ट ए० साइमन ने "सहायक" (Auxiliary) तथा "स्टाफ" की विचार धाराओं के बारे में कुछ भ्रम" शीर्षक के अन्तर्गत इस समस्या की विवेचना की है। उन्होंने यह प्रश्न पूछा है क्या स्टाफ इकाइयां केवल परामर्शदात्री (Advisory) है? क्या वे केवल परामर्श देने और सेवा करने का कार्य ही करती हैं, आदेश नहीं देती? "इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा सत्ता (authority) से तात्पर्य है आज्ञा-पालन कराने की योग्यता। यह तो स्पष्ट है कि ऊपर की इकाइयां (स्टाफ) सत्ता का प्रयोग करती हैं, वे नियन्त्रण करती तथा आदेश देती हैं। पर जब केन्द्रीय कार्मिक इकाई (Central personnel unit) किसी कार्मिक कार्यवाई का अनुमोदन करने से इन्कार कर देती है"'तब सूत्र इकाई के सम्मुख इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जाता कि वह उन आदेशों को मान।"[1]

भारत में योजना आयोग (Planning Commission) को केवल परामर्शदाता माना जाता है। यह एक स्टाफ अभिकरण (Staff agency) है, परन्तु इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। जैसा कि लोकसभा की अनुमान समिति (Estimates committee) ने कहा है कि समिति यह मानती है कि नियोजन में सीमित साधनों का बटवारा करना होता है और उसके परिणामस्वरूप प्राथमिकताओं (priorities) का निर्धारण करना होता है। वह यह भी अनुभव करती है कि एक संघीय संविधान (Federal constitution) के अन्तर्गत नियोजन की कुछ विशिष्ट कठिनाइयां होती हैं और उस स्थिति में जबकि राज्यों के वित्तीय साधन लोचहीन होते हैं तथा अपने विकास कार्यक्रमों के एक बहुत बड़े भाग की वित्तीय व्यवस्था के लिये उन्हें केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है, योजना आयोग जैसी संस्था के अनुमोदन (approval) को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है क्योंकि उसका अनुमोदन केन्द्र द्वारा राज्यों (states) को धन देने की एक पूर्व शर्त होती है। इसी के

1 Herbert A. Simon (Ed.) Public Administration

फलस्वरूप यह भावना पैदा हुई कि योजना आयोग एक परामर्श देने वाली संस्था नहीं है बल्कि इसकी गणना एक अतिरिक्त सत्ता (additional authority) के रूप में की जा सकती है, जो कि यद्यपि भारत सरकार की सामान्य मशीनरी का एक अंग नहीं है परन्तु वह कार्य भी प्रत्येक योजना का निर्धारण करता है और उसके निर्णय सभी के द्वारा कार्यान्वित किये जाते हैं। तथापि, समिति यह सुझाव देती है कि वर्तमान में अपनाई जाने वाली सम्पूर्ण कार्य विधि का पुनरावलोकन किया जाना चाहिए जिससे कि यदि कोई ऐसी बात या क्रिया सम्पन्न हो गई हो, जिससे उक्त भावना को बल मिला हो, तो उसे ठीक किया जा सके।'[1]

प्रश्न यह है कि ऐसा 'भ्रम' होता क्यों है? साइमन के अनुसार ऐसे भ्रम इसलिये उत्पन्न होते हैं क्योंकि वे संगठन के अनेक परस्पर विरोधी तथ्यों (contradictory facts) को एक साथ मिला देते हैं। आमतौर पर, स्टाफ के भ्रम सामान्य आज्ञाओं के उल्लंघनों (violations) को इस बात से इन्कार करते हुये छिपाते हैं कि ऐसे उल्लंघन हुये। ये भ्रम उन दो तरीकों के बीच की खाई को भरने में मदद करते हैं—एक तरीका तो वह, जैसा कि लोग सोचते हैं कि इस तरीके से उनके साथ संगठनों में व्यवहार किया जाना चाहिए और दूसरा तरीका वह जिसके अनुसार कि वास्तव में उनके साथ व्यवहार किया जाता है। इस बात को उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। प्रशासन का एक सिद्धान्त है कि सत्ता (authority) कार्य अथवा उत्तरदायित्व के ही अनुरूप होनी चाहिये। पुलिस विभाग अपराधियों को पकड़ता है, इस कार्य के लिये उसे मोटरकारों की आवश्यकता होती है। परन्तु मोटरकारों को खरीदने का यह अधिकार एक केन्द्रीय क्रय-सत्ता (Central purchasing authority) (An auxiliary service) को दे दिया गया है जिसके द्वारा कि व्यवहार में पुलिस विभाग की सत्ता में कटौती ही होने की सम्भावना रहती है।

'अत यदि हम एक केन्द्रीकृत क्रय विभाग (Centralized Purchasing department) की स्थापना करते हैं तो हम निश्चय ही इस बात से इन्कार करेंगे कि यह विभाग पुलिस विभाग पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण लगाता है। हम इस बात पर ही जोर देंगे कि इसका कार्य तो केवल सेवा करना मात्र है। जबकि तथ्य यह है कि क्रय विभाग पुलिस विभाग के इस सम्बन्ध में किये गये निर्णय को पलट सकता है कि विभाग को किस प्रकार की गश्ती कारें खरीदनी चाहिएँ। भ्रम का मुख्य कार्य इस तथ्य को छिपाना है कि सहायक क्रियाओं का केन्द्रीयकरण सूत्र विभागों (line departments) की स्वयं परिपूर्णता तथा सत्ता को कम ही करना है।'[2]

प्रशासन के अन्य सिद्धान्तों को ले लीजिये अर्थात् आदेश की एकता (unity of command) का सिद्धान्त, जिसका अभिप्राय है कि एक व्यक्ति को केवल एक

1 21st Estimates Committee Report 1957 58 (Second Lok Sabha) Planning Commission Pages, 11 13

2 Simon, *Ibid* p 287

ही उच्च अधिकारी से आज्ञायें प्राप्त करनी चाहिएँ। परन्तु वास्तविक कार्य-संचालन मे ऐसा होता नही। यदि ऐसा हो तो विशिष्टीकरण (specialization) ही असम्भव हो जायेगा। एक केन्द्रीय कार्मिक कार्यालय (Central personnel office) का लाभ ही क्या होगा यदि कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित इसके आदेशो का कोई भी पालन न करे। तथ्य (fact) यह है कि संगठन का एक सदस्य, अपने उच्च अधिकारी की आज्ञाओ के अतिरिक्त, कार्मिक अधिकारियो (Personnel officers), न्यायवादियो (attorneys), अन्य अनेको के आदेशो को भी स्वीकार करता है।

प्रश्न यह है कि स्टाफ सहायता (staff help) की विचारधारा 'आदेश की एकता' के सिद्धान्त तथा संगठन सम्बन्धी अनुभव (organizational experience) के वास्तविक तथ्यो के बीच की खाई को किस प्रकार भरती है। यह ऐसा इस बात को अस्वीकार करके करती है कि इन विशिष्ट स्टाफ इकाइयो (Specialized staff units) के आदेश वास्तव मे 'उनके' आदेश हैं। ये तो निष्पादक अथवा कार्यपालक (executive) अधिकारी के आदेश हैं। स्टाफ इकाइयां "उसके ही नाम से बोलती हैं", वे "निष्पादक अधिकारी के ही अंग हैं", उनकी (स्टाफ इकाइयो की) सत्ता 'वास्तव मे' उसकी (निष्पादक अधिकारी की) सत्ता है।"[1] इस प्रकार स्टाफ के सम्बन्ध मे भ्रमो (myths) तथा 'कल्पनाओ' (fiction) की उत्पत्ति संगठन के अनेक परस्पर विरोधी तथ्यो को एक साथ मिलाने के कारण हुई है। स्टाफ के ये भ्रम सामान्य आज्ञाओ के सम्बन्ध मे होने वाले उल्लंघनो को छिपाते हैं और इस बात से इन्कार करते हैं कि ऐसे उल्लंघन हुए हैं।

1 Simon and others Public Administration, p 287.

५

विभाग
(The Department)

सूत्र (line) तथा स्टाफ (staff) इकाइयों के बीच महत्वपूर्ण भेद की विवेचना करने के पश्चात् अब हम प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण सूत्र इकाई (line unit), अर्थात् विभाग से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करते है। विभाग उन उद्देश्यों को पूरा करने के लिये अपने कार्य सम्पन्न करते हैं जिनके लिये कि सरकार कायम रहती है। वे सगठन की बडी इकाइयाँ होती है जो कि प्रशासन के पृथक-पृथक् क्षेत्रो मे कार्य करती हैं। मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief executive) के साथ विभागो का तत्काल सम्बन्ध (Immediate relationship) होता है और मुख्य निष्पादक भी इन विभागो की सहायता से ही विधि (law) के निष्पादन तथा नागरिको की सेवा के अपने वास्तविक कार्य को पूरा करता है। प्रशासकीय पदसोपान (administrative hierarchy) मे विभाग ठीक मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्य-पालिका के नीचे होते हैं और सरकार का कार्य उनमे बटा रहता है।

विभागीय सगठन से सम्बन्धित सबसे पहली समस्या यह है कि विभागीय सगठन (departmental organization) के वर्गीकरण का आधार क्या हो। एक विभाग का सगठन किस आधार पर किया जाना चाहिए, यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

विभागीय सगठन के वैकल्पिक आधार
(Alternative Bases for Departmental Organization)

लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) के अनुसार उद्देश्य (Purpose), प्रक्रिया (Process), व्यक्ति (Persons) तथा स्थान (Place) विभागीय सगठन के आधार हो सकते हैं। अब हम इन पर एक-एक करके विचार करते हैं।

(क) उद्देश्य अथवा कार्य (Purpose or function)—विभाग का निर्माण किसी बडे उद्देश्य अथवा कार्य को पूरा करने के लिये किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, शिक्षा विभाग (*Department of Education*) व स्वास्थ्य विभाग आदि, उद्देश्य अथवा कार्य के आधार पर सगठित किये जाते है। भारत सरकार तथा राज्यों (States) के अधिकाश विभाग बडे अथवा प्रमुख कार्यों, जैसे कि स्वास्थ्य शिक्षा, सुरक्षा (Security) तथा प्रतिरक्षा (Defence) आदि, की पूर्ति के लिए सगठित किये गये है।

(ख) प्रक्रिया (Process) विभाग प्रक्रिया अथवा व्यवसाय (Profession) के आधार पर सगठित किए जा सकते हैं। प्रक्रिया अथवा व्यवसाय से तात्पर्य उस तकनीकी प्रवीणता (Technical skill) से होता है जो कि किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए आवश्यक होती है। जैसे कि इन्जीनियरिंग, डाक्टरी, बढ़ईगीरी, आशुलिपि (Stanography), साख्यिकी (Statistics) तथा लेखा व हिसाब-किताब आदि। विभागों की स्थापना उस तकनीकी योग्यता अथवा प्रवीणता के आधार पर की जा सकती है जोकि किसी कार्य के लिए आवश्यक होती है, जैसे वकीलों का विभाग (कानूनी प्रवीणता या योग्यता), इन्जीनियरों का विभाग (इन्जीनियरिंग प्रवीणता), लेखाकारों (Accountants) का विभाग (लेखा पद्धति की प्रवीणता) आदि। हमारे अपने देश में केन्द्र (Centre) में तथा राज्यों में लोक कर्म विभाग (Public Works Departments) हैं। उनका आधार वह प्रक्रिया अथवा तकनीकी प्रवीणता ही है जो किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक होती है।

(ग) सेवा किये जाने वाले व्यक्ति (Persons or clientele) विभागों की स्थापना व्यक्तियों के किसी समूह अथवा समाज के किसी वर्ग की सेवा करने के लिए भी की जा सकती है। इस स्थिति में सेवा किए जाने वाले व्यक्ति ही सगठन का आधार हो जाते हैं जैसे कि शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए विभाग (Department for the Rehabilitation of Refugees)। यहां सेवा किये जाने वाले व्यक्ति ही विभागीय सगठन का आधार हैं क्योंकि यह विभाग केवल समाज के एक वर्ग, अर्थात् विस्थापित व्यक्तियों (Displaced persons) से ही सम्बन्धित है।

(घ) स्थान अथवा क्षेत्र (Place or Area) अन्त में, वह स्थान जहां कि कार्य किया जाना है—अर्थात् क्षेत्र—विभागीय सगठन का आधार हो सकता है। ये अनेक तत्व हैं जिनके आधार पर विभाग सगठित किये जाते हैं। एरिस्टोटिल (*Aristotle*) ने भी यह जानना चाहा था कि विभागीय सगठन का आधार क्या हो? इस प्रश्न का उल्लेख उसने अपनी 'राजनीति' (Politics) में किया "क्या एक व्यक्ति बाजार में व्यवस्था बनाये रखे और दूसरा व्यक्ति किसी अन्य स्थान पर, अथवा क्या एक ही व्यक्ति को प्रत्येक स्थान के लिए उत्तरदायी बना दिया जाए? फिर, क्या कार्यालयों का विभाजन उन विषयों (Subjects) के आधार पर किया जाए जिनसे कि उन्हें निपटना पड़ता है, अथवा उन व्यक्तियों के अनुसार किया जाए जिनसे उन्हें व्यवहार करना पड़ता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि क्या एक ही व्यक्ति सामान्य रूप से सबकी भलाई का ध्यान रखे, अथवा एक लड़कों की देखभाल करे और दूसरा स्त्रियों की तथा इसी प्रकार और भी।"[1]

अब हम लूथर गुलिक (*Luther Gullick*) द्वारा बतलाये गये विभागीय सगठन के इन चारों सिद्धान्तों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करेंगे।

1 Aristotle, politics Book, IV, Chapter XV

(१) कार्य अथवा उद्देश्य—विभागीय सगठन के आधार के रूप मे
(Function or Purpose—as the basis of Departmental Organization)

यह विभागीय सगठन का सबसे अधिक लोकप्रिय अथवा प्रसिद्ध आधार है और इसके समर्थक भी सबसे अधिक सख्या म हैं। कार्य अथवा उद्देश्य के अनुसार विभागीकरण (Departmentalization) स तात्पर्य है कि अधीनस्थ प्रशासकीय इकाइयो को उस उद्देश्य के आधार पर एक विभाग मे वर्गीकृत किया जाए जिसकी पूर्ति मे प्रत्येक इकाई लगी हुई है, उदाहरण के लिए, एक रेलवे विभाग होना चाहिय जिसमे रेलो के कार्य तथा उनके सचालन से सम्बन्धित सभी इकाइयाँ (Units) तथा सभाग (Divisions) सम्मिलित हो। इस प्रकार, वे सब प्रशासकीय सेवाये अथवा इकाइयाँ, जिसका उद्देश्य एकसे ही काय सम्पन्न करना हो अथवा जा एकसी ही समस्याओ को सुलझाने के लिय बनी हो, एक विभाग के रूप मे सगठित कर ली जानी चाहिए। वे सब क्रियाये जो कि एक ही कार्य को सम्पन्न करन के लिए की जाती हैं एक अध्यक्ष (Head) अर्थात् मुख्य निष्पादक (Chief executive) अथवा मंत्रिपरिषद के मन्त्री (Cabinet minister) के अन्तर्गत एक विभाग (Department) मे केन्द्रित कर ली जाती हैं। इसके लाभ निम्न प्रकार है—

(१) जब किसी विशेष कार्य से सम्बन्धित सभी प्रशासकीय इकाइयो का एक विभाग मे एकीकरण कर लिया जाता है, तो कार्य का अधिक अच्छा समन्वय हो जाता है तथा कार्यवाही मे एकता आ जाती है। यदि सभी सैनिक इकाइया एक प्रतिरक्षा विभाग (Defence department) के अन्तगत न हो तो विभिन्न सैनिक इकाइयो मे जो कि सम्पूर्ण प्रशासन मे बिखरी होती हैं, उचित सहयोग तथा समन्वय की कमी के कारण युद्ध नही लडा जा सकता।

(२) जब किसी बडे उद्देश्य अथवा कार्य को विभागीय सगठन का आधार बनाया जाता है तो कार्यों के सम्पादन मे दोहराव (Duplication) नही हो सकता।

(३) यदि विभाग का आधार कार्य है तो एक साधारण व्यक्ति भी विभाग के उद्देश्यो को आसानी से समझ सकता है।[1]

हैल्डेन समिति (Haldane committee) न इस बात का समर्थन किया कि 'कार्य' (Function) अथवा 'उद्देश्य' (Purpose) ही विभागीय सगठन का आधार होना चाहिये। समिति ने कहा

"एक रीति, जिसे अपनाने की हम सिफारिश करत है, यह है कि प्रत्येक विभाग द्वारा सम्पूर्ण समुदाय के लिये सम्पन्न की जाने वाली विशिष्ट सेवा के अनुसार ही उसकी क्रियाओ के क्षेत्र की व्याख्या की जाये । तथापि इस रीति को पूर्ण दृढता के साथ लागू नही किया जा सकता। उदाहरण के लिए शिक्षा विभाग के

1 Professor Schuyler C. Wallace in his book titled *Federal Departmentalization* and sub titled 'A critique of theories of organization' has critically examined this problem Refer to his book New York, 1941, pp 98—104

कार्य से प्रसगवश स्वास्थ्य विभाग के क्षेत्र मे हस्तक्षेप हो सकता है जैसे कि स्कूल-भवन का निर्माण करने में तथा छात्रों के स्वास्थ्य की परवाह करने मे । अत: ऐसा प्रासगिक अतिव्यापन अनिवार्य ही है। ''' '' परन्तु हमारा विचार है कि यदि विभागीय कार्यों का वितरण एक सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किया जाये तो उससे काफी लाभ होगा और हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है कि सम्पूर्ण समुदाय के लिए सम्पन्न की जाने वाली सेवा की प्रकृति के अनुसार ही विभागीय कार्यों का वितरण करना' वह सामान्य सिद्धान्त है जिससे कम से कम भ्रम (Confusion) तथा अति-व्यापन (Overlapping) होने की सम्भावना है।

हम यह सुझाव देते हैं कि 'पृथक्-पृथक् विभागों के कार्यों को निर्धारित करने वाले सभी निर्णय इस बात को दृष्टिगत रख कर किये जाने चाहिये कि वे विशिष्ट कार्य प्रत्येक विभाग के प्रशासन के मुख्य ध्येय को किस सीमा तक पूरा करते हैं।[1]

'कार्य के सिद्धान्त (Principle of 'Function') को विभागीय सगठन का आधार मानने म कई कमियाँ पाई जाती है जिनको दृष्टिगत रखा जाना चाहिए। सबसे पहली कठिनाई, जिसका यहाँ सामना करना पड़ता है, यह है कि 'कार्य क्या है' ? क्या स्वास्थ्य (Health), शिक्षा (Education) तथा कल्याण (Welfare) को पृथक पृथक कार्य माना जाये और इनको पृथक्-पृथक् विभागों मे सगठित किया जाये अथवा लोक कल्याण (Public welfare) के एक विभाग मे इनका एकीकरण कर लिया जाय ? अत कार्य को विभागीय एकीकरण का आधार मानने से भ्रम उत्पन्न होता है क्योंकि कार्य की व्याख्या, व्यापक अथवा सकुचित रूप म, किसी भी प्रकार की जा सकती है।

जब कार्य विभागीय सगठन का आधार होता है, तो उससे विभागीय प्रबन्धकों (Departmental managers) मे आत्म निर्भरता (Self-sufficiency) की भावना उत्पन्न हो जाती है। उनमे विभागीय पक्षपात आ जाता है तथा अन्य विभागों के साथ सहयोग करने के प्रति अनिच्छा उत्पन्न हो जाती है। उनमे आत्म-महत्व (Self-importance) की मनोवृत्ति पैदा हो जाती है। यदि किसी सरकार के विभाग परस्पर सहयोग करना बन्द करदें और उनमे पृथकता की प्रवृत्ति पैदा हो जाये, तो कोई भी सरकार एक सेकिण्ड के लिए भी कार्य नहीं कर सकती। सरकार अपने कर्तव्यों के पालन मे केवल तभी सफल हो सकती है, जबकि उसके सभी विभाग परस्पर सहयोग करें। ये वे दोष हैं जो कि कार्य को विभागीय सगठन का आधार मानने से उत्पन्न होते हैं।"[2]

1 Report of the Machinery of Government Committee (1919) U K Paras 18-19, pp 7 8

2 For detailed study refer to Wallace, *Federal Departmentalization* pp 105—111

(२) प्रक्रिया—विभागीय संगठन के आधार के रूप में
(Process—as the Basis of Departmental Organization)

प्रक्रिया के अनुसार विभागीकरण से तात्पर्य है उन लोगों को एक विभाग के रूप में सगठित कर लेना जिन्होंने एकसा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया हो अथवा जो एकसी या एक ही प्रकार की सामग्री का उपयोग करते हैं। जिन लोगों ने एकसा ही व्यावसायिक प्रशिक्षण (Professional training) प्राप्त किया है, जैसे कि इन्जीनियरिंग, अध्यापन, डाक्टरी, कानून व लेखा-पद्धति आदि का प्रशिक्षण, वे सब एक ही विभाग में सगठित होंगे। सभी इन्जीनियर इन्जीनियरिंग विभाग मे तथा सभी वकील (Lawyers) वकीलों के विभाग में रहेंगे।

इसके पक्ष मे जिस लाभ का दावा किया जाता है वह यह है कि इससे नवीनतम तकनीकी प्रवीणता (Technical skill) एक विभाग में ले आई जाती है, जिसका उपयोग अन्य सभी विभाग कर सकते हैं। सब विभाग अपने-अपने पृथक् इजीनियरिंग अनुभाग (Engineering sections) क्यों रखें ? एक केन्द्रीय इजीनियरिंग विभाग क्यों न बना लिया जाये जो कि सभी विभागों की आवश्यकताओं को पूरा करे ? यह दावा किया जाता है कि पूर्णतया सुसज्जित कोई एक सेवा (Service) तकनीकी कार्य को अधिक कुशलता तथा मितव्ययता के साथ सम्पन्न कर सकती है। इसके अतिरिक्त, किसी भी तकनीकी क्षेत्र में काम करने वाले सभी व्यक्ति, विभिन्न विभागों में बिखरे रहने की बजाय, जब एक विभाग के रूप में सगठित कर लिये जाते हैं तो उनके द्वारा सम्पन्न किया गया कार्य अपेक्षाकृत उच्च कोटि का होता है। यदि सभी वकीलों को एक विधि विभाग (Department of law) के अन्तर्गत ले जाया जाये तो प्रशासकीय आज्ञाओं, विभागीय नियमों तथा प्रस्तावित विभागों के मसविदों (Drafts) को तैयार करने में अच्छा समन्वय (Co-ordination) तथा अधिक एकरूपता, (Uniformity) लाई जा सकेगी।

इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें समन्वय का अभाव (Lack of co-ordination) रहता है। एक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनेक क्रियायें एक साथ ही सम्पन्न की जानी चाहियें। परन्तु जब प्रक्रिया को विभागीकरण का आधार बनाया जाता है तो अनेक क्रियायें भिन्न-भिन्न विभागों में फैली रहती हैं। इन क्रियाओं में समन्वय होना चाहिये। युद्धकाल में, इजीनियरिंग इकाइयां, डाक्टरी दल तथा युद्ध सामग्री के कार्यालय का, पैदल सेना, टैंकों तथा तोपखानों के साथ समन्वय होना ही चाहिये, अन्यथा वे सारी सम्पूर्ण सैनिक कार्यवाहियाँ ही बेकार हो जायेंगी। किन्तु यदि प्रक्रिया को सगठन का आधार बनाया गया है तो ये सब क्रियायें युद्ध-विभाग (Department of war) से बाहर भिन्न भिन्न विभागों के प्रशासकीय नियन्त्रण में रहेंगी। युद्ध-काल में, अन्तर्विभागीय समन्वय नहीं प्राप्त किया जा सकेगा। अतः इसका विकल्प केवल यही है कि इन सब इकाइयों को एक विभाग में वर्गीकृत कर लिया जाये। लूथर गुलिक *(Luther Gullick)* के अनुसार "एक

प्रक्रिया की सफलता का प्रभाव सम्पूर्ण उद्यम पर पड़ता है और एक प्रक्रिया सम्भाग (Process division) में समन्वय न कायम किये जा सकने के फलस्वरूप किये जाने वाले सम्पूर्ण कार्य की साधना ही नष्ट हो सकती है।"[1] किसी भी एक कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक क्रियायें यदि अनेक विभागों में बिखरी हुई हैं तो किये जाने वाले कार्य का परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण ही होगा।

तकनीकी विशेषज्ञ (Technical specialists) जब पृथक्-पृथक् विभागों में रख दिये जाते हैं तो उनमें व्यवसायिक अहंकार तथा आत्म महत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन तकनीकी क्रियाओं को जोकि साधन (Means) हैं, उद्देश्य माना जाने लगता है। तकनीकज्ञ (Technicians) लोकप्रिय नियन्त्रण के किसी भी प्रयत्न का विरोध करते हैं और इस तथ्य की दुहाई देते हैं कि उनके विभाग की जटिलताओं को लोग कैसे समझ सकते हैं। इस स्थिति के कारण अनियन्त्रित नौकरशाही' (Uncontrolled bureaucracy) की बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं जो कि न्यूनतम की जानी चाहिएं।

(३) सेवा किए जाने वाले व्यक्ति—विभागीय संगठन के आधार के रूप में (Clientele—as the Basis of Departmental Organization):

सेवा किये जाने वाले व्यक्तियों (Persons served or clientele) के आधार पर किये जाने वाले विभागीकरण का मतलब है उन सब अधीनस्थ प्रशासकीय इकाइयों को एक विभाग में संगठित कर लेना, जिनका उद्देश्य समाज के किसी विशिष्ट वर्ग की सेवा करना है। भारत में इसका सर्वोत्तम उदाहरण है पुनर्वास तथा अल्प-सख्यकों के मामलों का मन्त्रालय (Ministry of Rehabilitation and minority affairs)। इसका निर्माण सितम्बर १९४७ में शरणार्थियों की उस समस्या को सुलझाने के लिये किया गया था जोकि इस उप-महाद्वीप के विभाजन के फलस्वरूप भारत तथा पाकिस्तान के बीच जनसख्या के बड़े पैमाने पर होने वाले आवागमन के कारण उत्पन्न हुई थी। इसके कार्य इस प्रकार हैं

(१) शरणार्थियों (Refugees) की सहायता तथा उनके पुनर्वास की व्यवस्थायें करना।

(२) निष्क्रान्त सम्पत्ति (Evacuee property) की व्यवस्था करना।

(३) विस्थापित व्यक्तियों के दावों (Claims) का निपटारा करना तथा उनके लिए क्षतिपूर्ति (Compensation) की धनराशि की व्यवस्था करना।

इस मन्त्रालय का कार्य विस्थापित व्यक्तियों (Displaced persons) के पुनर्वास, उनकी सहायता, तथा क्षतिपूर्ति (हरजाने) से सम्बन्धित सभी समस्याओं को सुलझाना है। इसका लाभ यह है कि जब एक विभाग का सगठन सेवा किये जाने वाले व्यक्तियों के आधार पर किया जाता है तो समाज के उस वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली सभी क्रियाओं का एक विभाग में समन्वय तथा एकीकरण किया जा सकता है। ऐसा

1 op cit p. 25

समन्वय तथा एकीकरण अन्य किसी प्रकार सम्भव नही हो सकता । इस रीति से वह विभाग उन सभी व्यक्तियो की सम्पूर्ण समस्याओ को अच्छी प्रकार समझता है जिनकी कि वह सेवा करता है और इस प्रकार समस्याओ का अच्छी प्रकार अध्ययन किया जा सकता है तथा कुशलता के साथ उन्हे सुलझाया जा सकता है ।

यदि इस प्रणाली को सार्वलौकिक अथवा सामान्य रूप से विभागीय सगठन के सम्पूर्ण ढाचे मे लागू किया जाय तो इससे विभागो की भरमार हो जायेगी । इस स्थिति मे तो बच्चो, युवको, वृद्धो, दुर्बलो, असमर्थों, बीमारो व विधवाओ आदि के भी विभाग (Departments) स्थापित हो जायँगे । अत इस सिद्धान्त को सार्वलौकिक अथवा सामान्य रूप मे लागू नही किया जा सकता । जैसे कि हैल्डेन समिति (Haldane Committee) ने कहा कि "विभाग सरकार की उन क्रियाओ के लिये ससद (Parliament) के प्रति उत्तरदायी होगी जो कि लोगो के एक विशिष्ट वर्ग के हितो को प्रभावित करती हैं और इस स्थिति मे अनेक विभाग स्थापित हो सकते है, उदाहरण के लिये, भिखारियो के लिए मन्त्रालय, बच्चो के लिए मन्त्रालय, बीमाशुदा व्यक्तियो के लिए मन्त्रालय, अथवा बेरोजगार व्यक्तियो के लिये मन्त्रालय । सगठन की इस प्रणाली का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि बहुत छोटे-छोटे रूप मे प्रशासन" (Lilliputation administration) की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है । समिति ने आगे कहा कि इस सिद्धान्त को दृढता के साथ कार्यान्वित करने से और अनेक विभाग स्थापित हो जायेंगे जैसे कि युवको का विभाग (Department of Youth), वृद्ध व्यक्तियो का विभाग, नगर-निवासियो का विभाग, कृषको का विभाग उत्पादको अथवा निर्माताओ का विभाग, खनिको (Minors) का विभाग, कॉलिज प्रोफेसरो का विभाग, डाक्टरो का विभाग तथा इसी प्रकार और भी ।" इसका परिणाम यह होगा कि छोटे-छोटे विभागो की इस बहुलता के कारण अन्तर्विभागीय समन्वय की समस्या को उस समस्या से पृथक् न किया जा सकेगा जो कि अब ब्यूरो स्तर (Bureau level) पर पाई जाती है । इसके परिणामस्वरूप अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी विवाद (Jurisdictional conflicts) भी उत्पन्न होगे । वृद्ध व्यक्तियो का विभाग उनके लिये क्या करेगा और क्या नही करेगा ? अधिकार क्षेत्र के निर्धारण का सिद्धान्त क्या होगा ? विभागीकरण की इस प्रणाली से अन्तर्विभागीय समन्वय (Inter departmental coordination) तथा विभागीय अधिकार क्षेत्र (Departmental jurisdiction) से सम्बन्धित अनेक अजेय एव जटिल प्रशासकीय समस्यायें पैदा होगी । सेवा किये जाने वाले व्यक्तियो के आधार पर किये जाने वाले विभागीय एकीकरण का सिद्धान्त तो केवल तभी क्रियान्वित किया जाना चाहिये 'जबकि वे समस्यायें, जो जनसख्या के किसी खास वर्ग से सम्बन्धित हो, इतनी स्पष्ट, वास्तविक तथा इतनी घनिष्ठरूप से सम्बन्धित हो कि उनको प्रभावशाली ढग से केवल तभी सुलझाया जा सकता है जबकि उनके हल करने का प्रयत्न अनेक पृथक्-पृथक् तत्वो स

नहीं बल्कि एक सामूहिक रूप में किया जाय''' ।"[1] विभागीकरण का यह सिद्धान्त केवल तभी अपनाया जाना चाहिये जबकि इसकी तीव्र आवश्यकता हो अथवा कुछ विशेष समस्याओं के उत्पन्न हो जाने के कारण समाज का कोई वर्ग वास्तव में किसी विशिष्ट व्यवहार के योग्य हो, जैसे कि भारत में पिछड़े वर्गों (Backward classes) की अपनी विशिष्ट समस्यायें हैं, अत एक पिछड़े वर्ग का विभाग स्थापित किया जा सकता है जो कि अपना सम्बन्ध पिछड़े वर्गों के कल्याण तथा उनकी सामान्य उन्नति से रखे ।

(४) क्षेत्र अथवा प्रदेश—विभागीय संगठन के आधार के रूप में (Area or Territory—as the Basis of Department Organization) :

विभाग उस क्षेत्र अथवा प्रदेश के आधार पर संगठित किये जा सकते हैं जहाँ कि वे सेवा कार्य करते हैं । उदाहरणार्थ, श्रीलंका (Ceylon) में रहने वाले भारतीयों का एक विभाग हो सकता है । उस सम्बन्धित विभाग का क्षेत्र होगा श्रीलंका । विदेश कार्यालय (Foreign office) सदा उस क्षेत्र अथवा प्रदेश के आधार पर बटा रहता है जहाँ कि उसका कार्य फैला होता है । भारत में, विदेश मन्त्रालय (Ministry of Foreign Affairs) में अनेक सभाग (Divisions) हैं जो कि पृथक्-पृथक् भौगोलिक क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं ।

विभागीकरण के इस सिद्धान्त का लाभ यह है कि किसी स्थान की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप ही बड़ी सरलता के साथ सरकारी नीतियों का निर्माण किया जा सकता है और उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की इच्छायें सन्तुष्ट की जा सकती है । यह हो सकता है कि देश के कुछ प्रदेशों की अपनी कुछ विशिष्ट समस्यायें हों । अत सरकारी नीति का निर्धारण करते समय उन समस्याओं को विचारार्थ लेना चाहिये ।

इससे हानि यह होती है कि देश के व्यापक हितों की लागत पर सकुचित प्रदेशवाद (Narrow regionalism) पनपने लगता है । प्रादेशिक विभागों को स्थानीय राजनीतिज्ञों तथा स्थानीय जोर डालने वाले वर्गों के हानिकर दबावों के अन्तर्गत काम करना पड सकता है । *Wallace* ने स्थान अथवा प्रदेश के आधार पर किये जाने वाले विभागीकरण के विचार को स्पष्टरूप से अस्वीकार किया है ।

विभागीय सगठन के सिद्धान्तों के इस अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न विभागों का निर्माण समय और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है । अधिकांश मामलों में, कार्य अथवा उद्देश्य ही विभागीकरण का आधार होता है । अनेक बार ऐसा होता है कि एक से अधिक तत्व विभागीय सगठन का आधार बन जाते हैं । यह कभी भी नहीं समझना चाहिए कि विभागों का सगठन पूर्णतया केवल एक ही तत्व के आधार पर किया जाता है ।

1 Wallace, *Federal Departmentalization*

भारत सरकार मे विभाग का सगटन
(Organization of a Department in the Government of India) :

प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से भारत सरकार का प्रशासकीय ढाँचा अनेक मन्त्रालयो (Ministries) मे बटा होता है। एक मन्त्रालय में दो या उससे अधिक विभाग होते हैं और उन सबका कार्यभारी (Incharge) एक मन्त्री (Minister) होता है। मन्त्रालय अथवा विभाग एक राजनैतिक प्रमुख अर्थात् एक मन्त्री के अधीन होता है। वही विभाग की मुख्य नीति का निर्धारण करता है और उस विभाग के कार्य के लिए ससद के प्रति उत्तरदायी होता है।

मन्त्री की सहायता एक सचिव (Secretary) द्वारा की जाती है जिसके नियन्त्रण मे केन्द्रीय सचिवालय (Central Secretariat) का एक भाग होता है। सचिव विभाग का प्रशासकीय प्रमुख (Administrative Head) होता है और वह मन्त्रालय की परिधि के अन्तर्गत आने वाली नीति तथा प्रशासन सम्बन्धी सभी मामलों मे मन्त्री का प्रधान सलाहकार (Adviser) होता है। नीति सम्बन्धी मामलो मे सचिव मन्त्री को परामर्श देता है। सचिव को किसी भी समस्या से सम्बन्धित तथ्य व आकडे मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करने होते है। उसे मन्त्री को सूचना, सलाह, और यदि आवश्यक हो तो चेतावनी भी दे देनी होती है। मन्त्रियो द्वारा किय जाने वाले नीति सम्बन्धी निर्णयो पर सचिव का अत्यधिक प्रभाव पडता है। "परन्तु लोकतन्त्रीय सरकार की स्थापना के पहले प्रवाह मे अनेक मन्त्रियो ने, जिन्हे कि प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलो का कतई अनुभव नही था, बिना विचार विमर्श के ही निर्णय दे डाले और दुर्भाग्य से अनेक सचिव भी मन्त्रियों के पक्षपात व अविचारपूर्ण निर्णयों के प्रचलित प्रवाह मे बह चले तथा बमुकाबले इसके कि वे सम्बन्धित मामलों की परिस्थितियो तथा राज्य के हितो को देखते हुए आवश्यक परामर्श तथा सहायता देते, उन्होने मन्त्रियो को उनकी रुचि तथा स्वीकृति के अनुकूल भी सलाह दी। इस प्रकार सचिवो के रूप मे वे अपने कर्त्तव्यो को पूरा न कर सके।"[1]

काम की अधिकता के कारण, सचिव की सहायता के लिए एक सयुक्त सचिव (Joint Secretary), उपसचिव (Deputy Secretary), अवर सचिव (Under Secretary) तथा कभी-कभी एक अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary) होता है।

सचिवालय (Secretariat) के उच्च पद भारतीय सिविल सेवा (Indian Civil service), भारतीय प्रशासन सेवा (Indian Administrative Service) तथा केन्द्रीय सेवा, श्रेणी प्रथम (Central Service, Class I) के अधिकारियो से भरे जाते हैं। ये पद (Posts) 'अवधि प्रणाली' (Tenure system) के आधार पर भरे जाते हैं जो कि भारत सरकार मे सन् १६०५ से प्रचलित है। उच्च सचिवालय अधिकारी राज्य मे बीस से पच्चीस वर्ष तक का प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने के

1 A D Gorwala, Report on Public Administration in India—1951

पश्चात् तीन वर्ष की अवधि के लिये सचिवालय में आते हैं । सचिवालय अधिकारी (Secretariat officials) काफी प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने के बाद राज्यों से प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त होकर आते हैं। सचिवालयिक पुनर्गठन पर प्रस्तुत किये ह्वीलर प्रतिवेदन (Wheeler Report) के अनुसार इस प्रणाली के मुख्य लक्षण ये हैं प्रथम तो यह कि *भारत सरकार के सचिवालय में स्टाफ की पूर्ति, सीधी भर्ती* करके नहीं बल्कि प्रान्तों (अब राज्यों) में पहले से ही काम कर रहे अधिकारियों को लेकर उसके द्वारा की जानी चाहिये और दूसरे यह कि केन्द्रीय सचिवालय में काम करने वाले पदाधिकारियों की पदावधि में और प्रान्तों (अब राज्यों) में काम करने वाले पदाधिकारियों की पदावधि (Tenure of office) में नियमित अदला-बदली होनी चाहिये।'[1]

भारतीय प्रशासन अधिकारी (Indian Administrative officers), भर्ती के पश्चात्, राज्यों में नियुक्त कर दिये जाते हैं और फिर काफी प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने के बाद वे सचिवालय में इन महत्वपूर्ण पदों[2] को सम्भालते हैं। परन्तु अल्पावधि (Short tenure) तथा केन्द्रीय सचिवों की राज्यों को वापिसी के कारण केन्द्रीय सचिवालय अनुभव तथा दीर्घावधि (Long tenure) की परम्परा से वंचित हो जाता है। अब सचिवों के कार्य काल की अवधि तीन वर्ष से अधिक होनी चाहिये।"

जैसा कि हम बतला चुके हैं, सचिव नीति सम्बन्धी मामलों में मन्त्री को परामर्श देते हैं। इससे नीचे विभाग का निष्पादक संगठन (Executive organization) होता है जिसका अपना विभागाध्यक्ष (Head of Department) होता है। 'सचिव (Secretaries) जहाँ मन्त्रियों (Ministers) की आँखों व कानों के समान है वहाँ विभागाध्यक्ष उनके हाथों के सदृश होते हैं। ये विभागाध्यक्ष ही होते हैं जो कि

1 Wheeler Report, Para 9.

2 उच्च सचिवालय स्टाफ (Higher Secretariat Staff) हैं :

इस श्रेणी में अधिकारियों के पाँच नियमित पद क्रम (Grades) हैं :

(क) सचिव—यदि इस पद की भर्ती भारतीय प्रशासन सेवा अधिकारी से की जाए तो वेतन रु० ३,००० मासिक, किन्तु भारतीय सिविल सेवा अधिकारी द्वारा भरा जाने पर रु० ४,००० मासिक।

(ख) संयुक्त सचिव—यदि इस पद को भा० प्र० से० अधिकारी द्वारा भरा जाए तो वेतन रु० २,२५० मासिक किन्तु भा० सि० सेवा अधिकारी द्वारा भरा जाने पर वेतन रु० ३,००० मासिक।

(ग) उपसचिव—वेतनक्रम रु० १,१००–५०; १,३००–३०; १,६००–१००, १८०० प्रतिमास।

(घ) अवर सचिव— वेतन रु० ८००–५०–१, ५०० प्रतिमास।

(ङ) कभी-कभी एक अतिरिक्त सचिव भी होता है।

अपने-अपने विभागों मे सरकार की नीति व कार्यक्रम को कार्यान्वित करते हैं · और उस रीति तथा सफलता के लिए उत्तरदायी ठहराये जाते है जिसके द्वारा कि वे अपना कार्य सम्पन्न करते हैं।"[1] विभागाध्यक्ष का सम्बन्ध नीति के निष्पादन (Execution) मे होता है, उसके निर्माण से नही। परन्तु भारत में मन्त्रालय तथा विभागाध्यक्ष के बीच ठीक-ठीक सम्बन्धो का विकास नही हुआ है। ए० डी० गोरवाला (*A. D. Gorwala*) के अनुसार, 'सगठन सम्बन्धी दोष का एक सर्वोत्तम उदाहरण, जिसमे कि प्रशासन की एक शाखा अन्य शाखा के कार्यों का अतिक्रमण करती है, उन सम्बन्धो द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो कि सचिवालय (Secretariat) अर्थात् मन्त्रालय (Ministry) और उसके अन्तर्गत काम करने वाले विभागाध्यक्ष के मध्य पाये जाते हैं। यहाँ यद्यपि इन दोनो के ही कार्यों की सीमाएँ बिल्कुल स्पष्ट हैं अर्थात् मन्त्रालय तो नीति के निर्माण के लिए उत्तरदायी हैं और विभाग उस नीति के कार्यान्वय (Implementation) के लिए, किन्तु तो भी विभाग द्वारा किये जाने वाले कार्यों को देखने के लिए मन्त्रालय इतना अधिक व्यग्र रहता है कि वह निरन्तर उसके कामो मे हस्तक्षेप करता है। परिणाम यह होता है कि विभागाध्यक्ष की समस्त प्रेरणा समाप्त हो जाती है और बजाय इसके कि वह अपने ही कार्य म व्यस्त रहे तथा उसम उन्नति करे, उसे अपना काफी समय अनावश्यक प्रतिवेदन (Reports) प्रस्तुत करने म व्यय करना पड़ता है जिनमे उसे पृथक् पृथक् मामलो का स्पष्टीकरण मन्त्रालय को भेजना पड़ता है और ऐसे मुद्दों पर उसे मन्त्रालय की आज्ञाएँ प्राप्त करनी पड़ती है जो कि स्पष्टत उसके अपने ही अधिकार-क्षेत्र मे होते है। विभागाध्यक्ष के कार्य को मन्त्रालय द्वारा स्वय किये जाने के प्रयत्न का परिणाम निश्चित रूप से अकुशलता तथा अस-फलता के रूप मे ही सामने आता है। काम म देरी होती है, काम अच्छी प्रकार नही हो पाता और जब काम बिगड़ जाता है तो ऐसा कोई एक व्यक्ति नही होता जिसे उसके लिये जिम्मेदार ठहराया जा सके। विभागीय प्रमुख तथा अन्य अधिकारी निराश हो जाते हैं और जो कुछ होता है वह यह कि समय का, मनुष्यो का तथा सामग्री का अपव्यय होता है, जिसके फलस्वरूप नीति भी पूर्णत सफल नही हो पाती। अच्छा तो यही होगा कि विभागाध्यक्ष को अपना काम करने दिया जाये और मन्त्रालय दूर से ही उस पर निगाह रखे और यह देखने के लिए कि काम किस प्रकार हो रहा है उससे निश्चित अवधियों के पश्चात् प्रतिवेदन (Reports) माँगता रहे। यदि ऐसे व्यवहार द्वारा मन्त्रालय ने विभागाध्यक्ष का विश्वास प्राप्त कर लिया तो विभागाध्यक्ष उचित समय पर स्वय ही ऐसी कठिनाइयाँ मन्त्रालय के सामने लायेगा जिनमे कि वह मन्त्रालय की सहायता चाहता है बजाय इसके कि वह मन्त्रालय से ईर्ष्या करे व बुरा माने जैसा कि जब उसे लगातार तंग किया जाता है तो वह करता है।"[2]

1 M. Ruthnaswamy Principles . and Practice of *Public Administration*, Second Edition p 208

2 A D Gorwala, Report on *Public Administration*, 1951 New Delhi, p 39

कुशल कार्य-सचालन के लिए मन्त्रालय/विभाग (Ministry/Department) प्रत्येक सभागों (Divisions) शाखाओं (Branches) तथा अनुभागों (Sections) में बटा होता है। अनुभाग (Section) एक अनुभाग अधिकारी (Section officer) के अधिकार में होता है। शाखा एक अवर सचिव (Under secretary) के अधिकार में होती है और इसमें दो अनुभाग होते हैं। दो शाखाओं को मिलाकर एक सभाग बनता है जो कि एक उपसचिव (Deputy Secretary) के अधिकार में होता है।"[1]

भारत सरकार के मन्त्रालय तथा विभाग
(Ministers and Development of the Govt. of India)

१ विदेश मन्त्रालय (Ministry of External Affairs)

२ प्रतिरक्षा मन्त्रालय (Ministry of Defence)

(अ) प्रतिरक्षा उत्पादन विभाग (Department of Defence Production)

३ वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry)

(अ) राजस्व विभाग (Department of Revenue)

(ब) व्यय विभाग (Department of Expenditure)

(स) आर्थिक मामलों का विभाग (Department of Economic Affairs)

४ गृह मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs)

५ विधि विभाग (Ministry of Law)

६ वाणिज्य व उद्योग मन्त्रालय (Ministry of Commerce and Industry)

---

1 विभाग में अधीनस्थ स्टाफ निम्न प्रकार होता है—

(१) अधीक्षक (Superintendent) (जिसे कि अब अनुभाग अधिकारी की सज्ञा दी गई है—वेतनक्रम रु० ३००-३०-८०० प्रतिमास, राजपत्रित श्रेणी प्रथम (Gazetted Class I)

(२) सहायक अधीक्षक (Assistant Superintendent)—वेतनक्रम रु० २७५-२५-५०० प्रतिमास श्रेणी द्वितीय।

(३) सहायक (Assistant)—वेतनक्रम रु० १६०-१०-३०० द० अ० १५ ४५० प्रतिमास अराजपत्रित श्रेणी द्वितीय (Non-Gazetted Class II)

(४) उच्च सभाग (Upper Division Clerk)—वेतनक्रम रु० ८०-५-१२० द० अ०-८ २००-१०/२-२०० मासिक।

(५) निम्न सभाग लिपिक (Lower Division Clerk)—वेतनक्रम रु० ६०-३-८१ द० अ० ४-१२५ ५-१३० पदक्रम तृतीय।

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभाग (Department of International Trade)

७ इस्पात व भारी उद्योग मन्त्रालय (Ministry of Steel and Heavy Industries)

(अ) भारी उद्योग विभाग (Department of Heavy Industries)

८ रेल मन्त्रालय (Ministry of Railways)

६ परिवहन व संचार मन्त्रालय (Ministry of Transport and Communications)

(अ) परिवहन विभाग (Department of Transport)

(ब) नागरिक उड्डयन तथा संचार विभाग (Department of Civil Aviation and Communication)

१० श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय (Ministry of Labour and Employment)

११ खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय (Ministry of Food and Agriculture)

(अ) खाद्य विभाग (Department of Food)

(ब) कृषि विभाग (Department of Agriculture)

१२ सिंचाई तथा विद्युत शक्ति मन्त्रालय (Ministry of Irrigation and Power)

१३ शिक्षा मन्त्रालय (Ministry of Education)

१४ स्वास्थ्य मन्त्रालय (Ministry of Health)

१५ वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा सांस्कृतिक मामलों का मन्त्रालय (Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs)

१६ सूचना व प्रसारण मन्त्रालय (Ministry of Information and Broadcasting)

१७ निर्माण-कार्य तथा गृह-निर्माण मन्त्रालय (Ministry of Works and Housing)

(अ) निर्माण-कार्य तथा गृह निर्माण विभाग (Department of Works and Housing)

(ब) पुनर्वास विभाग (Department of Rehabilitation)

१८ सामुदायिक विकास, पंचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय (Ministry of Community Development, Panchayat Raj and Cooperation)

१६ संसदीय मामलों का मन्त्रालय (Ministry of Parliamentry Affairs)

२० अणुशक्ति विभाग (Department of Atomic Energy)

विभागों व मन्त्रालयों की इतनी बड़ी संख्या में अन्तर्विभागीय समायोजन (Inter-department coordination) की समस्या का निहित होना स्पष्ट है। यह एक सामान्य शिकायत है कि भारत सरकार के मन्त्रालयों तथा विभागों में पारस्परिक समायोजन का अभाव है। यदि देश में कोयले का संकट है तो ईंधन से सम्बन्धित मन्त्रालय रेल तथा परिवहन मन्त्रालयों को यातायात की सुविधाओं के अभाव के लिए दोषी ठहराता है। इस तरह के उदाहरणों की कमी नहीं है। भारत जैसे एक लोक-कल्याणकारी देश में, जहाँ मन्त्रालय व विभागों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, यह आवश्यक है कि सरकार के सब अंगों व टुकड़ों में समायोजन हो तथा उनके कार्यों में दोहरापन तथा प्रतिच्छादन न हो।

अब हम कुछ चुने हुए मन्त्रालयों के संगठन तथा कार्यों का विवरण देंगे।

विदेश मन्त्रालय
(Ministry of Foreign Affairs)

यह मन्त्रालय निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है —

(१) विदेशी कार्य।

(२) विदेशों के साथ सम्बन्ध।

(३) भारत में विदेशी (Foreign), राजनयिक (Diplomatic) तथा कौंसली अधिकारियों (Consular officers) को प्रभावित करने वाले सभी मामले।

(४) भारत से निर्गमन (Migration from India), पारपत्र (Passports) और प्रवेशपत्र (Visas) तथा भारत से बाहर के स्थानों की तीर्थयात्रा।

(५) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त एजेन्सी तथा नागा पहाड़ी तुएनसांग क्षेत्र का प्रशासन।

(६) संयुक्त राष्ट्र संघ (U N O), अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संघ तथा अन्य संस्थायें।

(७) भारतीय विदेश सेवा।

(८) विदेशी प्रचार (Foreign Publicity)।

(९) पाण्डेचेरी तथा भारत की अन्य भूतपूर्व फ्रांसीसी बस्तियों का प्रशासन।

(१०) विदेशों में स्थित राजदूतावासों (Embassies) तथा कौंसलवासों (Consulates) में नियुक्तियाँ।

(११) विदेशों के साथ सन्धियाँ (Treaties) तथा करार (Agreements)।

यह मन्त्रालय निम्नलिखित विधियों अथवा कानूनों (Laws) के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है—

(क) भारतीय देशान्तरवास अधिनियम, १९२२ (The Indian Emigration Act, 1922)।

(ख) पारस्परिकता अधिनियम, १६४३ (The Reciprocity Act, 1943)।
(ग) बन्दरगाह हज समिति अधिनियम, १६३२ (The Port Haj Committee Act 1932)।
(घ) भारतीय तीर्थयात्रा जलयान नियम (The Indian Pilgrim Ships Rules)।
(ङ) तीर्थयात्री सरक्षण अधिनियम, १८८७ (बम्बई) (The Protection of Pilgrims Act)।
(च) मुस्लिम तीर्थयात्री सरक्षण अधिनियम, १८६६ (बगाल)।

यह मन्त्रालय ससार भर मे राजनयिक (Diplomatic) तथा कौंसली कार्यालयो (Consular offices) को कायम रखता है। इस मन्त्रालय मे ८५ अनुभाग (Sections) हैं जिनमे ३८ तो प्रशासनिक (Administrative) हैं और ४७ प्रादेशिक (Territorial) तथा तकनीकी (Technical)। ये अनुभाग निम्नलिखित १२ सभागो (Divisions) मे वर्गीकृत किये हैं।

१ अमेरिकन सम्भाग (American Division)—उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के देश और विदेशी सहायता।

२ पश्चिमी सम्भाग—सयुक्त राष्ट्र (United Nations) तथा योरोप (यूनाइटेड किंगडम तथा भारत में विदेशी बस्तियो को छोडकर)।

३ पूर्वी सम्भाग—चीन, जापान, कोरिया, भूटान, उत्तरपूर्वी सीमान्त एजेन्सी तथा नागा पहाडी—तुयेनसाग क्षेत्र।

४ दक्षिणी सम्भाग—पश्चिमी एशिया तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया, उत्तरी अफ्रीका, सूडान, अफगानिस्तान, ईरान, ब्रह्मा, श्रीलका पारपत्र (Ceylon passports) और दृष्टाक-एशियन अफ्रीकन तथा कोलम्बो शक्ति सम्मेलन (Visas-Asian-African and Colombo Power Conferences)।

५ अफ्रीका सम्भाग—अफ्रीका, ब्रिटेन तथा उपनिवेश (Colonies) (उत्तरी अफ्रीका तथा सूडान के अलावा अफ्रीका)।

६ पाकिस्तान सम्भाग (Pakistan division)।

७ नयाचार सम्भाग (Protocal division)—नयाचार, कौंसली कार्य Consular work) तथा देशान्तरवास (Emigration)।

८ प्रशासन सभाग (Administration Division)—विदेश स्थित भारतीय मिशनो मे तथा प्रधान कार्यालयो (Headquarters) मे प्रशासन (अर्थात् कर्मचारी वर्ग तथा गृह सम्बन्ध) स्थापना सम्बन्धी मामले (Establishment matters), बजट तथा लेखे, सामान्य प्रशासकीय मामले, ससद कार्य।

६ विदेशी प्रचार सभाग।

१० विदेशी सेवा निरीक्षक-वर्ग (Foreign Service Inspectorate) तथा अपहृत व्यक्ति (Abducted persons)।

११ ऐतिहासिक सभाग ।

१२. उत्तरी सभाग यह सभाग उत्तरी सीमा तथा चीन के साथ सम्बन्धो के बारे मे व्यवहार करता है ।

विदेश मन्त्रालय के अधीनस्थ कार्यालय निम्न प्रकार हैं—

(क) देशान्तरवास सस्थान (Emigration Establishments)

(ख) उत्तरी पूर्वी सीमान्त एजेन्सी

(ग) नागा पहाडी-तुएनसाग क्षेत्र

(घ) महानिरीक्षक का कार्यालय (Office of the Inspector General), आसाम राइफल्स ।

मन्त्रालय के कर्मचारी वर्ग (स्टाफ) की कुल सख्या इस प्रकार है—

सचिवालय (Secretariat) १४९२

अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate offices)—४४१३

राजदूतावास (Embassies) हाई कमीशन (High Commissions), दूतावास (Legations) विशिष्ट मिशन तथा महा-कौसलावास (Consulates-General) ६६० अन्य—७९

स्वय प्रधान मन्त्री (Prime Minister) ही इस विभाग के कार्यभारी (Incharge) हैं और इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि सिविल सेवक (Civil servants) भारत की विदेश नीति के सिद्धान्तो पर कोई बडा प्रभाव डालने मे समर्थ हो सकगे ।

किन्तु विदेश मन्त्रालय की कार्य प्रणाली के बारे मे लिखते हुए श्री ए० डी० गोरवाला ने कहा कि "कोई भी अनुभवी व्यक्ति, जो कि नई दिल्ली मे विदेश-कार्य मन्त्रालय अथवा हमारे कुछ प्रमुख राजदूतावासों (Embassies) तथा कौसलावासो (Consulates) का भ्रमण करे तो नेहरू की प्रशासकीय योग्यता की कमी को स्पष्ट देख सकता है । वहाँ बहुत व्यक्ति थोडा कार्य करते हैं । बहुत कम ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो उस देश की भाषा को सीखने का कष्ट उठाते हैं जहाँ की उनकी नियुक्ति हुई है । व्यर्थ की दिखावट तथा ऊँचे रहन-सहन पर बहुत धन का अपव्यय किया जाता है । एक अच्छे प्रशासक को काफी समय पहले ही इन हानिकारक स्थितियो से छुटकारा पाकर अपनी शासन-व्यवस्था का कुशल बना लेना चाहिये था । नेहरू के अधीन ये सब गडबडें तथा भूलें केवल होती ही नही हैं अपितु समय बीतने के साथ इनकी स्थिति और भी बदतर होती जाती है ।"[1]

गृह अथवा स्वराष्ट्र मन्त्रालय
(Ministry of Home Affairs)

गृह विभाग (Home Department) का सम्बन्ध देश मे कानून व व्यवस्था (Law and order) बनाये रखने से है । यह अग्रलिखित बातो से सम्बन्धित है—

1 A D Gorwala in a study of Nehru edited by Rafib Lakaria, p 260-61

१ लोक सेवायें (Public services)

२ लोक सुरक्षा (Public security)

३ केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रों का प्रशासन, अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह राज्यों की प्रशासनिक, वित्तीय तथा आर्थिक समस्याय ।

४ विदेशी (Foreigners), नागरिकता (Citizenship) राष्ट्रीयता (Nationality) समाचार पत्र सम्बन्धी कानून (Press laws) आदि ।

५ मुद्रणालयों, पुस्तको तथा समाचार पत्रों के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही से सम्बन्धित कानून या प्रशासन ।

६ समुद्र सीमाकर अधिनियम (Sea Customs Act) के अन्तर्गत पुस्तकों तथा अन्य प्रकाशनों के भारत में आयात पर प्रतिबन्ध ।

७ इसका सम्बन्ध केन्द्रीय सेवाओं (Contral Services) से है । यह उनकी सेवा की शर्तें निर्धारित करता है । यह संघीय लोक सेवा आयोग (Federal Public Service Commission) से व्यवहार करता है ।

८ इसका सम्बन्ध राष्ट्रपति (President), उपराष्ट्रपति (Vice-president), मन्त्रियों (Ministers), उपमन्त्रियों तथा राज्यपालों (Governors) के भत्तों (Allowances), विशेषाधिकारों (Privileges) व वेतनों से, उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) व अन्य न्यायाधीशों (Judges) की तथा उच्च न्यायालयों (High Courts) के मुख्य न्यायाधिपति व अन्य न्यायाधीशों की नियुक्तियों एवं सेवा की शर्तों से, पूर्वता अधिपत्र (Warant of precedence), राष्ट्रीय ध्वज (National Flag) तथा राष्ट्रपति व राज्यपालों के भण्डों से भी है ।

९ इस मन्त्रालय का सम्बन्ध भारत सरकार तथा भूतपूर्व भारतीय रियासतों के शासकों के मध्य के विलय तथा पारस्परिक करारों के प्रपत्रों (Instruments of accession and covenants) के विषय में उत्पन्न मामलों से है जिनके अन्तर्गत प्रिवी पर्स (Privy purses), इन शासकों की व्यक्तिगत सम्पत्तियों का निपटारा तथा इनके सम्बन्धियों (Relatives) को दिये जाने वाले भत्ते भी हैं ।

१० यह कुछ अन्य विविध कार्य भी करता है जिनमें जनगणना (Census) नागरिक प्रतिरक्षा (Civil defence) तथा हवाई हमले से बचने के उपाय (Air Raid precautions) हैं ।

११ यह माउन्ट आबू (Mount Abu) में पुलिस प्रशिक्षण स्कूल (Police Training School) चलाता है ।

१२ भारत में देशव्यापी स्तर पर अपराधों की स्थितियों के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करने तथा उनका सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए यह केन्द्रीय गुप्तवार्ता विभाग (Central Intelligence Department) (C I D) रखता है ।

मन्त्रालय निम्नलिखित १४ सभागों (Divisions) में बटा हुआ है और प्रत्येक सभाग एक उपसचिव (Deputy Secretary) के अधिकार में है—

१ विदेशी (Foreign)
२ प्रशासनिक सतर्कता (Ddministration Vigilance)
३ स्थापना (Establishment)
४ लेखे (Accounts)
५ अखिल भारतीय सेवाएँ
६ संघीय प्रदेश (Union Territories)
७ प्रशासन
८ सेवाएं (Services)
९ न्यायिक (Judicial)
१० नियोजन (Plaining)
११ केन्द्रीय सेवायें
१२ संकटकालीन सहायता (Emergency Relief)
१३ पुलिस
१४ पुलिस, तथा विदेशी (Foreigners)।

इस मन्त्रालय के संलग्न कार्यालय (Attached officers) इस प्रकार हैं—

(१) संघीय लोकसेवा आयोग (Union Public Service Commission)
(२) केन्द्रीय गुप्तवार्ता ब्यूरो (Central Intelligence Bureau)
(३) भारतीय प्रशासन सेवा प्रशिक्षण स्कूल
(४) परिगणित जातियों (Scheduled Castes) तथा अनुसूचित आदिम जातियों के लिए आयुक्त (Commissioner)
(५) महा रजिस्ट्रार कार्यालय (Office of the Registrar-General)
(६) देहली विशिष्ट पुलिस संस्थापन (Delhi Special Police Establishment)

इसके अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate officers) इस प्रकार हैं—

१ समन्वय निर्देशालय (Directorate of Co-ordination) (पुलिस बेतार का तार)।
२ सचिवालय प्रशिक्षणशाला (Secretariat Training School)।
३ केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कालिज, माउन्ट आबू।
४ राष्ट्रीय अग्नि सेवा कालिज, रामपुर (National Fire Service College, Rampur)
५ केन्द्रीय सरकारी राजकोष, त्रिवेन्द्रम (Central Government Treasury Trivandrum)।
३ केन्द्रीय रक्षित पुलिस (Central Reserve Police)।

यह मन्त्रालय अनेक केन्द्रीय सलाहाकार मण्डल (Central Advisory Boards) भी रखता है, जैसे आदिम जाति कल्याण मण्डल (Tribal Welfare Board), हरिजन कल्याण मण्डल (Harijan Welfare Board) आदि।

प्रतिरक्षा मन्त्रालय
(Ministry of Defence)

वर्तमान युग में, प्रत्येक देश का प्रतिरक्षा विभाग उसके लिए बड़ा महत्वपूर्ण होता है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं—

(क) भारत की प्रतिरक्षा तथा उससे सम्बन्धित प्रत्येक भाग, जिसमे कि प्रतिरक्षा की तैयारी तथा ऐसे समस्त कार्य सम्मिलित हैं जो कि युद्धकाल में प्रतिरक्षा के लिए, तथा उसकी समाप्ति के पश्चात् सेना भंग करने के कार्य में सहायक सिद्ध हों, तथा समुद्रीय भूमाप (Marine Surveys) और नौपरिवहन (Navigation) के खतरों से सम्बन्धित मामले।

(ख) स्थल सेना, नौसेना और वायुसेना तथा संघ की अन्य सशस्त्र सेनाओं का निर्माण, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय छात्र सेना (National Cadet Corps), सहायक छात्र सेना (Auxiliary Cadet Corps), प्रादेशिक सेना (Territorial Army) तथा लोक सहायक सेना (Lok Sahayak Sena) हैं।

(ग) छावनियों (Cantonments) का निर्माण, छावनी क्षेत्रों का सीमा निर्धारण, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन, छावनी बोर्डों का संविधान तथा मकानों की व्यवस्था का नियमन जिसमें ऐसे क्षेत्रों में किरायों का नियंत्रण भी सम्मिलित है।

(घ) स्थल सेना, नौसेना तथा वायुसेना का निर्माण कार्य जिसके अन्तर्गत आर्डिनेन्स फैक्टरियाँ भी हैं।

(ङ) प्रतिरक्षा सेवाओं के लिए सम्पत्ति (Property) का अधिगमन (Aquisition) अथवा अभियाचन (Requisition)। सन् १९५० के सरकारी भूगृहादि (निष्कासन) अधिनियम [Government Premises (Eviction) Act] के अन्तर्गत (प्रतिरक्षा सेवाओं के) सरकारी स्थानों के अनधिकृत प्रयोगकर्ताओं का वहाँ से निष्कासन।

(च) संघीय अभिकरण तथा संस्थायें (Union agencies and institution)

(अ) सशस्त्र सेनाओं के कर्मचारी-वर्ग के व्यवसायिक अथवा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए।

(ब) सेनाओं व प्रतिरक्षा विज्ञान संगठन (Defence Science Organisation) के सम्बन्ध में विशिष्ट अध्ययन अथवा अनुसंधान (Research) की उन्नति के लिए।

इस मन्त्रालय के सचिवालय (Secretariat) की तेरह मुख्य शाखायें (Branches) हैं—

१ ग्रार्डिनेन्स शाखा (Ordinance)

२ एडजुटेंट जनरल की शाखा (Adjutant General Branch)

३. वायु शाखा (Air Branch)

४ वेतन तथा पेंशन शाखा

५ सामान्य स्टाफ शाखा (General Staff Branch)

६ समन्वय शाखा (Co-ordnation Branch)

७ सावधानी या सतर्कता शाखा (Vigilance Branch)

८ नौसेना शाखा (Navy Branch)

९ कर्मचारीवर्ग शाखा (Personnel Branch)

१० पंजीकरण शाखा (Registration Branch)

११ कर्मचारी सम्पर्क शाखा (Personnel Relations Branch)

१२ क्वार्टर मास्टर जनरल की शाखा (Quartermaster General's Branch)

१३ प्रशासन शाखा (Administration Branch)।

स्थल सेना, नौसेना तथा वायु सेना के प्रधान कार्यालय अथवा सदर मुकाम (Headquarters) इस मन्त्रालय से संलग्न होते हैं। देश की प्रतिरक्षा से सम्बन्ध रखने वाली तीन महत्वपूर्ण समितियाँ निम्नलिखित हैं—

१ मन्त्रि परिषद् की प्रतिरक्षा समिति (Defence Committee of the Cabinet)।

२ प्रतिरक्षा मन्त्री की (अन्तर्सेवा) समिति।

३ स्टाफ के प्रमुखों की समिति (Chiefs of staff Committee)।

ये समितियाँ महत्वपूर्ण प्रतिरक्षा सम्बन्धी मामलों का निर्णय करती हैं।

वित्त मन्त्रालय
(Ministry of Finance)

इस मन्त्रालय का सम्बन्ध केन्द्र सरकार (Central Government) के वित्त के प्रशासन से है। वह सम्पूर्ण देश को प्रभावित करने वाले वित्तीय मामलों से व्यवहार करता है। इसका सम्बन्ध देश के लिए आवश्यक आय (Revenue) प्राप्त करने से है। यह भारत सरकार के सम्पूर्ण खर्च का नियन्त्रण करता है।[1]

1 Also refer to Chapter on 'Ministry of Finance—the part on '*Financial Administration*.'

इस प्रकार भारत सरकार के महत्वपूर्ण कार्य लगभग बीस मन्त्रालय विभागो द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं।[1]

सामुदायिक विकास, पचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय (Ministry of Community Development, Panchayati Raj and Cooperation)

योजनाओ को सफल बनाने, सर्वसाधारण म सामुदायिक एकता की भावना पैदा करन तथा राष्ट्रनिर्माण के कार्यों में उन्हें सक्रिय भाग लने की प्रेरणा देन के लिए भारत म सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। भारत की केन्द्रीय सरकार न इस कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की, इसकी मुख्य-मुख्य वित्तीय जिम्मेदारियाँ स्वय सम्भाली तथा राज्य सरकारो को इस कार्यक्रम को अपनाने और क्रियान्वित करन के लिए प्रेरित किया। निस्सन्देह इस कार्यक्रम के सभी विषय, जैसे, कृषि, पशु सरक्षण, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि राज्यो के ही विषय हैं किन्तु इस कार्यक्रम की रूप-रेखा का निर्धारण तथा इसके विकास का निर्देशन केन्द्रीय सरकार ने ही किया।

केन्द्रीय सरकार के कार्य क्षेत्र म सामुदायिक विकास कार्यक्रम सम्बन्धी सभी नीतिविषयक प्रश्नो (Policy questions) की जिम्मेदारी है। राज्यो के विकास खण्डो की सख्या तय करना, खण्डो के व्यय की मोटी-मोटी रूप रेखा तय करना तथा कार्यक्रमो के व्यय म केन्द्र का हिस्सा तय करना, जिसके लिए कुछ पूर्व-निर्धारित सिद्धान्त है, केन्द्र का दायित्व है। कार्यक्रम को लागू करने की जिम्मेदारी राज्यो की है।

३१ मार्च १९५२ को इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए एक 'सामुदायिक योजना प्रशासन (Community Projects Administration) की स्थापना की गई थी। यह सगठन एक 'प्रशासक' (Administrator) की अध्यक्षता म स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था तथा इसका कार्य सम्पूर्ण भारत मे सामुदायिक विकास कार्यक्रमो को नियोजित करना, निर्देशित करना तथा समायोजित करना था। इसके कार्य की देख-रेख के लिए योजना आयोग की एक केन्द्रीय समिति भी थी। १८ सितम्बर १९५६ को इस 'प्रशासन' को सामुदायिक विकास सम्बन्धी मन्त्रालय मे मिला लिया गया।[2]

---

1 सभी मन्त्रालयो के विस्तृत अध्ययन, उनके कार्यों तथा सगठन के लिए लोक-प्रशासन की भारतीय सस्था (Indian Institute of Public Administration) नई दिल्ली का 'भारत सरकार का सगठन' नामक लेख देखिये (सितम्बर, १९५८)।

2 The subject of Panchayats was transferred to the Ministry of Community Development with effect from March 10 1950 The subject of Co-operation was transferred to the Ministry of Community Development with effect from December 30 1958

मन्त्रालय का संगठन
(Organization of the Ministry)

सामुदायिक विकास, पंचायती राज तथा सहकारिता मन्त्रालय के दो विभाग हैं—

(अ) सामुदायिक विकास तथा पंचायती राज विभाग (Department of Community Development and Panchayati Raj)

(ब) सहकारिता विभाग (Department of Cooperation)

प्रथम विभाग के निम्नांकित विषय हैं—

१ ग्राम्य सामुदायिक विकास कार्यक्रम

२ पंचायती राज

३ सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज आन्दोलन से सम्बन्धित सरकारी अधिकारियों तथा गैर सरकारी व्यक्तियों का प्रशिक्षण (Training) तथा उनकी विचारधारा में अनुकूलन (Orientation)।

४ *सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज सम्बन्धी अध्ययन तथा* शोध कार्य।

प्रारम्भ में, केन्द्रीय सरकार का यह मन्त्रालय एक तरफ केन्द्रीय मन्त्रियों तथा दूसरी तरफ राज्यों के विकास आयुक्तों एवं राज्य सरकारों के मध्य एक 'सम्पर्क संस्था (Liaison agency) के रूप में था। सरकार की धारणा यह थी कि "ग्रामों के सामाजिक जीवन को परिवर्तित करने के लिए सामुदायिक विकास एक साधन है तथा ग्राम विस्तार सेवा (National Extension) एक यन्त्र है।" इस मन्त्रालय ने एक विस्तार सेवा संगठन (Extension Organization) निर्मित करने में सहायता दी तथा योजना को क्रियान्वित करने के लिए मन्त्रालयों व विभागों के लिए एक समायोजन यन्त्र (Coordinating machinery) का काम किया। बलवन्त राय मेहता समिति, जिसने सामुदायिक विकास योजना पर कुछ वर्ष पूर्व पुनर्विचार किया था, ने भी इस मन्त्रालय को *विभिन्न विकास कार्यों के समायोजन का काम सौंपने की ही सिफारिश की।* समिति का विचार था : 'कृषि, सामाजिक शिक्षा स्वास्थ्य, ग्रामीण उद्योग इत्यादि क्षेत्रों में जो भी कार्य केन्द्रीय सरकार को करना हो, वह सम्बन्धित मन्त्रालयों द्वारा किया जाना चाहिए तथा सामुदायिक विकास मन्त्रालय को विकास खण्डों में केवल उन मन्त्रालयों के कार्यों का समायोजन करना चाहिए।' इस समिति ने यह भी सिफारिश की कि सामुदायिक विकास मन्त्रालय को ही पंचायती राज तथा सहकारिता के विषय भी सौंप देने चाहियें। उपरोक्त सिफारिश को सरकार ने स्वीकार करके उपरोक्त विषय भी इस मन्त्रालय को हस्तांतरित कर दिये हैं।

क्या वास्तव में केन्द्रीय स्तर पर सामुदायिक विकास के लिए एक पृथक् मन्त्रालय होना चाहिये ? सामुदायिक विकास राज्यों का विषय है। फिर केन्द्र में इसके लिए एक पृथक मन्त्रालय की क्या आवश्यकता है ? श्री बी० मुकर्जी के अनुसार इस मन्त्रालय का काम "सामुदायिक विकास की विचारधारा (Ideology) का प्रचार व

प्रसारण करना तथा ग्रामीण विकास की समस्याओं पर दूसरों का ध्यान केन्द्रित करना होना चाहिए।"[1]

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय योजनाओं से सम्बद्ध तथा समायोजित करना अनिवार्य है। सामुदायिक विकास मन्त्रालय का कार्य राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारित करके अन्य सभी स्तरों पर कार्यक्रम के नियोजन म समन्वय लाना है। राष्ट्रीय स्तर पर दिग्दर्शन (Guidance) क लिय इस प्रकार के मन्त्रालय का होना आवश्यक है।[2]

---

1 B Mukerjee *Community Development in India* Orient Longmans, New Delhi, 1961, page 170

2 Also refer to B Mukerjee, *Community Development in India* Orient Longmans Ltd, 1961, S K. Dey, *Community Development A Chronicle* 1954-1961, Publications Divisions, Government of India, New Delhi, Hari Kishore Jain *Community Development Programme in India* The Bangalore Printing and Publishing Co Ltd, Bangalore, Government of India Estimates Committee 1956-57 Thirty Eighth Report on Ministry of Community Development (Community Projects Administration), New Delhi Lok Sabha Secretariat, December 1956, Estimates Committee, Fortieth Report on Ministry of Community Development (Community Projects Administration), Part II, New Delhi · Lok Sabha Secretariat, December, 1956, Estimates Committee, Forty-Second Report on Ministry of Community Development (Community Projects Administration), Part III, Lok Sabha Secretariat, December, 1956

६

ब्यूरो तथा मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का संगठन

The Bureau And Board or Commission Types of Organization)

(एक बनाम अनेक अध्यक्ष)
(The Single *vs.* Plural Head)

विभागीय सगठन के आधार की समस्या का विवेचन करने के पश्चात् अब विभाग (Department) की अध्यक्षता (Head ship) का प्रश्न सामने आता है। विभाग के कुशल सचालन मे विभागाध्यक्ष (Head of the Department) अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। **यदि कोई एक व्यक्ति विभाग का अध्यक्ष होता है तो वह ब्यूरो प्रणाली का सगठन** (Bureau Type of Organization) **कहलाता है।** विभिन्न देशो म सामान्यतया यही पद्धति अपनाई जाती है। इसमे विभाग के निर्देशन (Direction) तथा निरीक्षण का दायित्व एक ही व्यक्ति के हाथो म निहित रहता है। केन्द्र सरकार म हम देखते हैं कि एक मन्त्री (Minister) ही विभाग का अध्यक्ष होता है। उदाहरणत, प्रतिरक्षा मन्त्री (Minister for Defence) प्रतिरक्षा विभाग का अध्यक्ष होता है तथा रेल मन्त्री रेलवे विभाग का अध्यक्ष होता है, आदि। यदि **विभाग के निर्देशन तथा निरीक्षण का दायित्व कई व्यक्तियो में बांट दिया जाता है तो उसे *मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का सगठन (Board of Commission type* of Organization) कहा जाता है।** यदि विभाग का निर्देशन तथा निरीक्षण करने की सत्ता (Authority) अनेक व्यक्तियो मे निहित होती है तो उसे अनेक अध्यक्ष (Plural Head) या मण्डल अथवा आयोग प्रणाली के सगठन की सज्ञा दी जाती है। भारत मे हमारे यहाँ केन्द्रीय राजस्व मण्डल (Central Board of Revenue) है जो कि आय-कर (Income tax), सीमा कर (Customs) तथा आबकारी (Excise) विभागो का नियन्त्रण करता है। केन्द्रीय राजस्व मण्डल मे आजकल पाँच सदस्य हैं तथा वे आय-कर, सीमा कर तथा आबकारी विभागो की अध्यक्षता करते हैं। इस प्रणाली का एक अन्य उदाहरण रेलवे बोर्ड है। इसका एक सभापति (Chairman) तथा चार अन्य सदस्य हैं। यह भारत सरकार के एक मन्त्रालय के रूप मे कार्य करता है और रेलो के सचालन, स्थापना, निर्माण तथा नियमो के सम्बन्ध मे केन्द्र सरकार की *सभी शक्तियो का प्रयोग करता है।* **इस प्रकार, जब एक विभाग के**

नियन्त्रण की सत्ता एक ही व्यक्ति में निहित होती है तो उसे ब्यूरो पद्धति (Bureau System) कहा जाता है, और जब सत्ता एक से अधिक व्यक्तियों के हाथों में निहित रहती है, तो उसे मण्डलीय अथवा आयोग पद्धति कहा जाता है। कभी-कभी मण्डल (Board) तथा आयोग (Commission) के बीच भेद किया जाता है। यह कहा जाता है कि "मण्डल''''''उन सदस्यों का समुदाय है जिन्हें अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर सामूहिक रूप से कार्य करने को कहा जाता है' । आयोग उन सदस्यों का समुदाय है जिनका कार्य न केवल मण्डल के रूप में सामूहिक रूप से कार्य करना है, अपितु किये जाने वाले प्रशासनिक कार्य की निष्पत्ति के लिए स्थापित संगठनों के अध्यक्षों के रूप में पृथक्-पृथक् कार्य करना भी है।'[1]

यथेष्ट आयोग का सर्वोत्तम उदाहरण आयोग के आधार पर संगठित नगर-पालिका शासन (Municipal Government) है। नगरपालिका के सदस्य केवल मण्डल के रूप में सामूहिक रूप से ही कार्य नहीं करते अपितु संगठन की इकाइयों के पृथक्-पृथक् अध्यक्षों के रूप में भी कार्य करते हैं। एक सदस्य स्वास्थ्य अनुभाग (Health section) का अध्यक्ष होता है, दूसरा शिक्षा अनुभाग का अध्यक्ष होता है, आदि-आदि। परन्तु मण्डल तथा आयोग की शर्तें अदल-बदल करते हुए प्रयोग की जाती हैं। जब एक विभाग की अध्यक्षता एक से अधिक व्यक्तियों में निहित होती है तो इसे मण्डल अथवा आयोग पद्धति कहा जाता है।

ब्यूरो प्रणाली के संगठन के लाभ
(Advantages of the Bureau Type of Organization) :

१. यदि किसी संगठन में शीघ्र निर्णय तथा शीघ्र कार्यवाही किये जाने की आवश्यकता होती है तो उसके लिए एक अध्यक्ष (Single head) की योजना ही ठीक रहती है। एक व्यक्ति, व्यक्तियों के समुदाय की अपेक्षा, अधिक शीघ्रता से निर्णय कर सकता है।

२. इस प्रणाली के अन्तर्गत संगठन में उद्देश्य की एकता बनी रहती है।

३. एक व्यक्ति विभाग की नीतियों के निष्पादन में अपनी पूरी शक्ति लगा देता है।

४. जब विभाग का अध्यक्ष एक व्यक्ति होता है तो उस विभाग में अधिक अच्छी प्रकार से अनुशासन कायम रखा जा सकता है।

५. संगठन की ब्यूरो प्रणाली के अन्तर्गत, उत्तरदायित्व (Responsibility) बिलकुल स्पष्ट होता है तथा उसका स्थान-निर्धारण (Location) सरलता के साथ कर दिया जाता है।

६. जब विभाग का कार्य नैत्यक (Routine) प्रकृति का होता है तो एक अध्यक्ष की योजना अच्छी प्रकार कार्य करती है।

---

1 W. F. Willoughby, *op cit*, p 122

७. यदि विभाग के कार्य की तकनीकें (Techniques) तथा स्तर अच्छी प्रकार विकसित हैं और यदि उसे जनता का विश्वास प्राप्त है, तो उस विभाग के लिए एक अध्यक्ष पद्धति ही अपनाई जानी चाहिये।

८ ब्यूरो प्रणाली की अध्यक्षता (Hardship) मितव्ययी भी होती है क्योंकि इसमे केवल एक ही व्यक्ति के अनुपालन (Maintenance) पर धन व्यय किया जाता है।

९ जब विभाग की नीतियाँ तथा उद्देश्य स्पष्टत निर्धारित होते हैं और केवल कार्य क्रियान्वित करने की ही आवश्यकता रहती है तो उस स्थिति मे एक अध्यक्ष प्रणाली ही अपनाई जानी चाहिये।

१० यदि विभाग के कार्य-संचालन के लिए एक ही व्यक्ति उत्तरदायी है तो यह स्वाभाविक है कि वह बडे उत्साह, शक्ति तथा लगन से कार्य करेगा। वह अपना पूर्ण ध्यान विभाग के कार्य मे ही लगा देगा।

११ एलेक्जेन्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) ने एक प्रशासक पद्धति के गुणो को इन शब्दो मे व्यक्त किया है, "प्रशासन के प्रत्येक विभाग मे एक अध्यक्ष का होना अत्यधिक अधिमान्य (Preferable) है। उसमे हमे अधिक ज्ञान, अधिक क्रियाएँ व अधिक उत्तरदायित्व का अवसर प्राप्त होगा, और साथ ही साथ प्रशासन मे अधिक लगन और सावधानी भी बरती जायेगी।"[1]

मण्डल अथवा आयोग या बहुल प्रणाली की अध्यक्षता के लाभ
(Advantages of Board or Commission or Plural Type of Headship).

१ जहाँ कार्य नैत्यक प्रकृति का नही होता, अपितु उस पर विचार करने व विवेक का उपयोग करने की आवश्यकता होती है तथा जहाँ नीति का निर्माण करने की आवश्यकता होती है, वहाँ के लिए बहुल अथवा अनेक अध्यक्ष (Plural head) पद्धति ही अपनाई जानी चाहिये।

२. जब एक विभाग को ऐसे नियम तथा विनियम (Rules and regulations) बनाने होते हैं जो कि कानून के सदृश शक्ति रखते हैं अथवा लोगो के व्यक्तिगत अधिकारों को प्रभावित करते हैं तो उसके लिये मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का सगठन ही अच्छा रहता है।

३ जब विभागो को कुछ अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) कार्य सम्पन्न करने पडते हैं, जिनमे कि उन्हें सरकारी तथा व्यक्तिगत अधिकारो को प्रभावित करने वाले मामलो पर निर्णय देने होते हैं तो मण्डल अथवा आयोग पद्धति का सगठन ही अधिक उपयुक्त रहता है। ऐसे कार्यों को सम्पन्न करने के लिये शात विचार तथा विवेक की आवश्यकता होती है। ऐसे कर्त्तव्यो को पूरा करने का कार्य केवल एक ही व्यक्ति के सुपुर्द नही किया जाना चाहिए जिनसे लोगो के अधिकार प्रभावित होते हो।

1 The works of Alexander Hamilton (J C. Hamilton Ed) I, 154-5, September, 3 1780

४ यदि किसी संगठन के द्वारा विभिन्न हितो का प्रतिनिधित्व किया जाना हो तो उसके लिये मण्डल अथवा आयोग प्रणाली ही अपनाई जानी चाहिये । उदाहरणत श्रम विवाचन तथा सुलह मण्डलो (Labour Arbitration and Conciliation Boards) मे मालिको श्रमिको तथा सरकार का प्रतिनिधित्व किया जाता है अत उनके लिए आयोग पद्धति के संगठन का उपयोग किया जाता है ।

५ मण्डल अथवा आयोग प्रणाली के संगठन मे चूंकि सभी बडे दलो (Parties) को प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है अत उसमे दलीय राजनीति (Party politics) का तत्व कम हो जाता है । ऐसे संगठनो को निर्दलीय (Non partisan) बनाने के लिए, उन्हे सवदलीय (All partisan) बना दिया जाता है ।

६ यदि किसी प्रशासन को किसी भी प्रकार के बाहरी दबावो से बचाना है तो उसके लिए मण्डलीय प्रणाली ही उपयुक्त रहती है । उदाहरणत लोक सेवा आयोगो (Public Service Commissions) मे अनेक सदस्य होते हैं अत इनको बाहरी दबाव प्रभावित नही कर सकते ।

७ यदि कोई प्रशासनिक क्रिया इतनी विवादास्पद हो जाये कि उसके बारे मे समाज परस्पर विरोधी विचारो मे बट जाय तो विरोधी विचारो वाले वर्गों को मण्डलो म प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये जिससे कि वे अपने हितो की रक्षा कर अपनी इच्छा सन्तुष्ट कर सकें ।

८ मण्डलीय प्रणाली अनेक व्यक्तियो को एक साथ एक मेज पर इकट्ठा करती है । अत अनेक मस्तिष्क (Minds) एक मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक अच्छी प्रकार से सोचते हैं तथा निर्णय करते हैं ।

९ यह प्रणाली समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अधिक सहयोग उत्पन्न करती है ।

१० मण्डलीय अथवा आयोग प्रणाली का उपयोग ऐसे किसी भी अभिकरण (Agency) के लिए किया जाना चाहिये जिससे व्यापक विवेकपूर्ण अथवा नियंत्रित शक्तियो का उपयोग करने के लिए कहा जाय और जो शक्तियां निजी व्यक्तियो अथवा सम्पत्ति के महत्वपूर्ण हितो को प्रभावित करती हो ।

मण्डलीय पद्धति की हानिया
(Disadvantages of Board System)

१ जब अनेक व्यक्ति एक विभाग की अध्यक्षता करते हैं तो उस संगठन मे किसी भी प्रकार के आदेश की एकता (Unity of command) नही स्थापित की जा सकती । इससे संगठन मे एकीकरण तथा उत्तरदायी निर्देशन के अभाव की सम्भावना रहती है ।

२ जब अनेक व्यक्ति सामूहिक रूप से काय करते है तो व्यक्तिगत उत्तर-दायित्व का निर्धारण नही किया जा सकता ।

३ मण्डलीय पद्धति मे किये जाने वाले अनेक निर्णय विभिन्न हितो (Different interests) के मध्य हुए समझौते (Compromise) पर आधारित होते है। समझौतो द्वारा किये गये निर्णय सदा ही विवेकपूर्ण नही होते। यह हो सकता है कि कोई समझौता सभी सदस्यों के स्वार्थपूर्ण हितो के बीच हुआ हो अथवा वह स्वार्थी विचारो का समझौता हो सकता है। और, किसी भी सगठन के कुशल सचालन के लिए यह स्थिति बहुत बुरी है।

४ मण्डलीय प्रणाली से काय मे देरी होने की सम्भावना रहती है।

५ मण्डलीय प्रणाली से कर्मचारियो म दलीय राजनीति को प्रोत्साहन मिल सकता है। सदस्यो के बीच मतभेद होने के कारण, यह हो सकता है कि कर्मचारी दलबन्दी शुरू कर दें।

६ विभागीय कार्यों के शीघ्र तथा सक्रिय प्रबन्ध के लिए आयोग प्रणाली उपयुक्त नही है।

७ मण्डल के सदस्यो मे वर्गीय भावना (Team spirit) का अभाव होने तथा अनेक मतभेद होने के कारण सगठन मे अनुशासनहीनता उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

८ प्रशासन करना एक व्यक्ति का कार्य है, अनेक व्यक्तियो का नही। अत एकल अध्यक्ष (Single head) की प्रणाली ही अपनाई जानी चाहिए।

'मण्डल बडी सभाओ की असुविधाओ के भागीदार बन जाते हैं। उनके निर्णय धीरे होते है उनमे शक्ति कम होती है, और उनका उत्तरदायित्व विकेन्द्रित होता है। उनमे वह ज्ञान और योग्यता नही पाई जाती जो कि एक ही व्यक्ति के द्वारा सचालित प्रशासन मे पाई जाती है। प्रथम कोटि के महत्वाकाक्षी व्यक्ति इनमे जल्दी नही आ पायेंगे क्योकि उन्हे मण्डल मे कम विशिष्टता तथा कम महत्ता प्राप्त होगी और स्वय को प्रसिद्ध करने का कम अवसर प्राप्त होगा। मण्डलो के सदस्य स्वय जानकारी प्राप्त करने तथा विशिष्ट स्थान पाने के बारे मे कम प्रयत्न करेंगे क्योकि उनमे ऐसा करने की कम प्रेरणाये (Motives) पाई जाती हैं।'[1]

अनेक अध्यक्ष प्रणाली किसी सेवा के दिन प्रतिदिन के कार्य सचालन के लिए अनुपयुक्त है। इन मामलो मे प्रशासन एक ही व्यक्ति का कार्य है अत आयोगो (Commissions) को कार्यपालक निर्देशको (Executive directors) का उपयोग करना चाहिए। आयोग के निर्णय एक ही उत्तरदायी कार्यपालक अधिकारी के द्वारा कार्यान्वित किये जाने चाहिएँ।

मन्डलों की सदस्यता

(Membership of the Boards)

मण्डल के सदस्य पूर्णकालिक (Full-time) अल्पकालिक (Part time) अथवा पदेन (*Ex-officio*) हो सकते हैं। पूर्ण समय देने वाला सदस्य (*Full-timer*) अपना

1 The Works of Alexander Hamilton (J C Hamilton ed) I, 154 5 *September* 3, 1780

कार्य का उसी प्रकार वेतन पाता है जिस प्रकार कि कोई अन्य सरकारी कर्मचारी अपनी सेवाओ के बदले मे वेतन प्राप्त करता है। आशिक रूप से समय देने वाले सदस्य (Part time member) को अपने कार्यों के लिए कोई प्रतिफल नही मिलता क्योकि मण्डल के कार्य के लिए वह अपने समय का केवल एक भाग ही देता है। मण्डल के पदेन सदस्य (Ex-officio members) भी हो सकते है। ये वे व्यक्ति होते हैं जो कि अन्य सरकारी पदो पर आसीन होते हैं और उन पदो के कारण ही वे मडल के सदस्य बन जाते हैं। यदि मण्डल का कार्य ऐसा है जिसमे अनुचित माँग किये जाने तथा अधिक समय लगने की सम्भावना है तो उसमे पूर्ण समय देने वाले वैतनिक सदस्यो की नियुक्ति की जानी चाहिये। पदेन अथवा आशिक समय देने वाले सदस्य चूँकि मण्डल के कार्य की देखभाल अपने गौण कार्य के रूप मे ही करते हैं अत वे इसकी ओर कम ध्यान देते हैं।

मंडलो अथवा आयोगो की किस्में
(Tpyes of Boards or Commission)

फिफनर (*Pfiffner*) ने मण्डलो अथवा आयोगो की निम्नलिखित किस्मो का उल्लेख किया है।

(१) प्रशासकीय मण्डल (Administrattve Board), (२) नियामक आयोग (Regulative Commission), (३) पदसोपान से सम्बद्ध मण्डल (Board Tited into Hierarchy), (४) स्थायी सलाहाकार मण्डल (Permanent Advisory Boards), (५) पदेन मण्डल (Ex-officio Boards), (६) द्विदलीय मण्डल (The Bipartisan Board)।'[1]

अब हम इनका क्रमश विवेचन करते हैं।

(१) प्रशासकीय मण्डल—यह मण्डल सगठन की इकाई का विभागीय अध्यक्ष होता है। नगरपालिका प्रशासन मे स्वास्थ्य, मनोरजन व पुस्तकालय आदि से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओ के लिए प्रशासकीय मण्डल बनाये जाते हैं। ये मण्डल उस इकाई (Unit) का प्रबन्ध तथा उस पर नियन्त्रण करते हैं जो कि उनके सुपुर्द की जाती है।

(२) नियामक आयोग—सयुक्त राज्य अमेरिका मे सार्वजनिक कल्याण के हित की दृष्टि से गैर-सरकारी व्यक्तियो तथा सम्पत्ति (Property) का नियमन व नियन्त्रण करने के लिए कुछ आयोगो का निर्माण किया गया है। ये आयोग अर्ध-विधायक (Quasi legislative) तथा अर्ध न्यायिक (Quasi-judicial) कार्य करते हैं।

1 John M Pfiffner Chapter VII, Proper use of Boards and Commissions *Public Administration*, pp 99 III

(३) **पदसोपान से सम्बद्ध मण्डल**—विभाग के कार्य का एक भाग मण्डल के सुपुर्द किया जा सकता है। यह मण्डल अपने आपको सौंप गये कार्य से सम्बन्धित अर्ध-विधायक तथा अर्ध-न्यायिक कार्यों को सम्पन्न करता है। प्रशासकीय पदसोपान (Administrative hierarchy) का एक पदाधिकारी मण्डल के कार्यों के शासन प्रबन्ध के लिए नियुक्त कर दिया जाता है। वह मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। ऐसे मण्डलो (Boards) के, जो कि विभागीय पदसोपान से सम्बद्ध रहते हैं सर्वोत्तम उदाहरण हैं भारत के विभिन्न राज्यों म पाये जाने वाले माध्यमिक शिक्षा मण्डल (Secondary Boards of Education)। ये मण्डल राज्य के शिक्षा निर्देशक (Director of Education) के माध्यम से शिक्षा विभाग (Education Department) से सम्बन्धित रहते हैं। शिक्षा निर्देशक शिक्षा-विभाग का विभागीय अध्यक्ष होता है तथा मण्डल (Board) का पदेन-चेयरमैन (Ex-officio Chairman) भी होता है।

(४) **स्थायी सलाहकार मण्डल**—महत्वपूर्ण नीति सम्बन्धी अथवा तकनीकी मामलो म विभागीय अध्यक्ष को परामर्श देने के लिए विभाग के पदसोपान से बाहर सलाहकार मण्डलो का निर्माण किया जाता है। विभाग का अध्यक्ष इनके परामर्श को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होता। ये मण्डल तकनीकी जानकारी (Technical knowledge) तथा सूचनाएँ विभागाध्यक्ष तक पहुँचाते हैं। प्रत्येक सरकारी विभाग इस प्रकार के सलाहकार मण्डलो से काम लेता है। भारत सरकार को आर्थिक तथा वित्तीय मामलो पर परामर्श देने के लिए भारत में एक योजना आयोग (Planning Commission) है। सरकार उसकी सलाह को माने, यह एक पृथक् बात है। चूंकि आजकल प्रशासन अधिकाधिक तकनीकी होता जा रहा है अत ऐसे सलाहकार मण्डलो की आवश्यकता बढती ही जा रही है। ये मण्डल अपने कार्यों में कहाँ तक सफल होते हैं यह इस बात पर निर्भर है कि उनके द्वारा दिया गया परामर्श किस कोटि (Quality) का है।

(५) **पदेन मण्डल**—विभागीय पदाधिकारी अपने पदो की स्थिति के कारण इन मण्डलों के सदस्य बन जाते है।

(६) **द्विदलीय मण्डल**—दलीय राजनीति (Party politics) को समाप्त करने के लिए *कभी-कभी ऐसे मण्डल बनाये जाते हैं जिनमे दो बडे दलो के प्रतिनिधि होते* हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका मे सिविल सेवा आयोग (Civil Service Commission), अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य आयोग (Inter State Commerce Commission), जहाजी मण्डल (Shipping Board), सघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission) तथा सघीय रक्षित मण्डल (Federal Reserve Board) मे दोनो ही दलो को प्रतिनिधित्व देने के इस प्रयोग से दलगत राजनीति समाप्त होने के बजाय और बढती है। इसके सदस्य अपने अपने निजी हितो म वृद्धि करने का प्रयत्न करते हैं।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि मण्डल अथवा आयोग प्रणाली की विभागाध्यक्षता का प्रयोग तभी करना चाहिये जब स्पष्ट रूप से उसकी आवश्यकता अनुभव की जाती हो। ये मण्डल अथवा आयोग अर्ध-विधायक तथा अर्ध-न्यायिक कार्यों के लिए तथा उस स्थिति के लिए सबसे अधिक उपयुक्त रहते हैं जहाँ कि प्रशासकीय अभिकरण को किसी भी प्रकार के दबाव डालने वाले समुदायो (Pressure groups) से बचाना होता है।

७

स्वतन्त्र नियामकीय आयोग
(Independent Regulatory Commissions)

देश का सम्पूर्ण प्रशासकीय ढांचा मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करता है। प्रशासन की सब इकाइयां (Units) विभागों (Departments) में बटी रहती हैं और वे सब मुख्य कार्यपालिका के निर्देशन पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण में कार्य करते हैं। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में, सन् १८८७ में अन्तर्राज्य वाणिज्य आयोग (Inter State Commerce Commission) का निर्माण करके एक नवीन प्रशासकीय प्रयोग (Experiment) किया गया। इस आयोग के दो विशिष्ट लक्षण ये थे कि (१) इसका निर्माण किसी भी नियमित निष्पादक विभाग के एक अंग के रूप में नहीं किया गया था। यह किसी भी नियमित निष्पादक विभाग Executive Department) से पूर्णतः स्वतन्त्र था। (२) इसका अध्यक्ष कोई एक व्यक्ति नहीं, अपितु मण्डल (Board) था। संयुक्त राज्य अमेरिका में, अनेक बार नये-नये कार्यों को सम्पन्न करने का दायित्व प्रचलित निष्पादक विभागों को नहीं, बल्कि ऐसे नये अभिकरणों (Agencies) को सौंपा गया जिन्हें स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) कहा जाता है। ये आयोग अमेरिकी प्रशासकीय व्यवस्था का एक विशिष्ट लक्षण है। ये आयोग इसलिये 'स्वतन्त्र' नहीं कहे जाते क्योंकि ये किसी भी प्रकार के विधायक (Legislative), निष्पादक (Executive) अथवा न्यायिक (Judicial) नियन्त्रण से स्वतन्त्र होते हैं, बल्कि इसलिये क्योंकि ये किसी भी नियमित निष्पादक विभाग की परिधि से बाहर होते हैं। उनको 'नियामकीय' इसलिये कहा जाता है क्योंकि वे अनुचित प्रतियोगिता की बुराइयों को रोकने के लिये नागरिकों की कुछ क्रियाओं अथवा उनके आचार-व्यवहार का नियमन करते हैं। वर्तमान युग में, सरकारें अनेक नियामकीय कार्यों को सम्पन्न कर रही हैं। सरकारें उचित प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न करने के लिये व्यक्तिगत आचार (Conduct) अथवा सम्पत्ति के हितों का नियन्त्रण करती हैं। ये आयोग चूंकि नियामकीय कार्यों को सम्पन्न करते हैं और व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के समुदायों के आचार की परिधि को निर्धारित व नियन्त्रित करते हैं, अतः इन्हें 'नियामकीय आयोग' कहा जाता है।

इन आयोगों को 'शासन की चतुर्थ शाखा' (Fourth branch of the government) कहा जाता है क्योंकि इनके कार्य मिश्रित प्रकृति Mixed character

के होते है, अर्थात् प्रशासनीय (Administrative), अर्ध-विधायक (Quasi-legislative) और अर्ध-न्यायिक (Quasi judicial)। अतः ये सरकार की तीन शाखाओ अर्थात् कार्यपालिका शाखा, व्यवस्थापिका शाखा और न्यायपालिका शाखा, मे से किसी एक मे भी ठीक नही बैठते। इन्हे 'शासन की शीर्षहीन शाखा' (Headless branch of the government) कहा जाता है क्योंकि ये मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका के अधीन नही होते। इन्हे 'काँग्रेस की भुजाओ' (Arms of the Congress) की सज्ञा दी जाती है क्योंकि ये सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते हैं। इन्हे 'स्वायत्तता के द्वीप' (Islands of autonomy) भी कहा जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे, सन् १८८७ से अनेक बार स्वतन्त्र नियामकीय आयोग स्थापित किये गये हैं। वे निम्न प्रकार के है —

(१) सन् १६४४ मे, अन्तर्राज्य व्यापार मे अनुचित प्रवृत्तियो" (Unfair practices) को रोकने के लिये सघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission) की नियुक्ति की गई थी।

(२) सन् १६२० मे, सघीय पावर आयोग (Federal Power Commission) की नियुक्ति की गई थी। इसका कार्य नौचालन के योग्य नदियो पर जल-विद्युत के विकास के लाइसेंस देना तथा भावी नीति का निर्माण करना था।

(३) सन् १६३४ मे, प्रतिभूति तथा विनिमय आयोग (Securities and exchange commission) की नियुक्ति की गई थी। इसका कार्य बिक्री के लिये प्रस्तुत की जाने वाली प्रतिभूतियो (Securities) के बारे मे प्रचार नियमो को लागू करके निवेश-कर्त्ताओ (Investors) को सरक्षण प्रदान करना था।

(४) सन् १६३४ मे, तार तथा टेलीफोन कम्पनियो के बीच अनुचित प्रतियोगिता को रोकने के लिये सघीय सचार आयोग (Federal Communications Commissions) की नियुक्ति की गई थी।

(५) सन् १६३५ मे, राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध बोर्ड की स्थापना की गई थी जोकि श्रम क्षेत्र में "सबसे पहला वास्तविक नियामकीय सस्थान" था। इसका काम श्रम सम्बन्धी अनुचित प्रवृत्तियो की रोकथाम करना था।

(६) सन् १६३६ मे, सयुक्त राज्य सामुद्रिक आयोग (U S Maritime Commissions) की स्थापना की गई थी। इसको जहाजी दरो पर नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त था। साथ ही, सयुक्त राज्यीय व्यापारिक जहाजो का विकास तथा रक्षा करना भी इसका कार्य था।

(७) सघीय रिजर्व व्यवस्था के गवर्नरो के बोर्ड (Board of Governors of the Federal Reserve System) की स्थापना सन् १६१३ मे की गई थी। यह सामान्य वित्तीय दशाओ, तथा उधार व उसके चालन की नीतियो को निर्धारित करता है, उधार की शर्तों का नियन्त्रण करता है (अर्थात् उसके अनुचित विस्तार

तथा संकुचन को रोकता है।) यह आयोग १२ संघीय रिजर्व बैंकों (Federal Reserve Banks) के कार्यों का निरीक्षण भी करता है।

(८) *सिविल एयरोनोटिक्स बोर्ड (Civil Aeronautics Board) (सत्ता)* (Authority) की स्थापना सन् १९३८ तथा १९४० में हुई थी। इसका कार्य वायु परिवहन सेवा (Air transport service) का विकास करना है। यह संयुक्त-राज्य वायु सेवा के आर्थिक पहलुओं (Economic aspects) का नियमन करता है, सुरक्षा के नियमों व स्तरों का निर्धारण करता है हवाई दुर्घटनाओं की जाच पडताल करता है और अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन के विकास में सहयोग तथा सहायता देता है।

राष्ट्रपति, कांग्रेस तथा न्यायपालिका के आयोगों का सम्बन्ध (Relations of the Commissions with the President, Congress and the Judiciary)

जब यह कहा जाता है कि नियामकीय आयोग स्वतन्त्र है तो इसका मतलब *यह नहीं होता कि वे किसी भी प्रकार के नियन्त्रण से पूर्णत मुक्त होते हैं। अब हम* इस बात पर विचार करते हैं कि शासन की अन्य तीनों शाखाओं के साथ उनका सम्बन्ध क्या है।

कांग्रेस और आयोग
(The Congress and Commissions).

आयोग का निर्माण कांग्रेस द्वारा किया जाता है। कांग्रेस द्वारा ही इनको सत्ता प्रदान की जाती है। कांग्रेस उनको समाप्त कर सकती है तथा उनकी शक्तियों म परिवर्तन कर सकती है। *कांग्रेस ही उनके खर्च के लिए वार्षिक निधियां (Annual* funds) स्वीकार करती है। कांग्रेस उसके वित्तीय साधनों में कमी-बेशी कर सकती है। आयोग अपने द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों के लिए सीधे कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

राष्ट्रपति और आयोग
(President and Commissions):

आयोग के सदस्य, जोकि संख्या में पाच, सात या ग्यारह हो सकते हैं, *राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं किन्तु नियुक्ति के पूर्व सीनेट (कांग्रेस का उच्च* सदन) की अनुमति लेनी आवश्यक होती है। राष्ट्रपति सदस्यों को केवल अकुशलता, कर्त्तव्य की उपेक्षा अथवा कार्यालय म दुर्व्यवहार के कारण पदच्युत कर सकता है परन्तु कांग्रेस राष्ट्रपति द्वारा पदच्युत किये जाने की शक्ति पर सर्वोच्च न्यायालय *(Supreme Court) द्वारा हम्फ्रे मुकदमे (Humphrey Case) के दिये गये निर्णय* के अनुसार, कुछ प्रतिबन्ध लगा सकती है। यद्यपि आयोग वित्त व बजट, लेखा परीक्षण (Audit) तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्बन्ध में बजट विभाग (Bureau of the Budget), सामान्य लेखाकन कार्यालय (General Accounting Office)

तथा सिविल सेवा आयोग (Civil Service Commission) द्वारा बनाये गये प्रशासकीय नियमो के अन्तर्गत कार्य करते हैं, किन्तु उनकी मुख्य उत्तरदायिता (Accountability) सीधी काग्रेस के प्रति ही होती है। आयोग राष्ट्रपति के नियन्त्रण से मुक्त होते हैं, विशेषत निम्नलिखित तीन कारणो से —

(१) जबकि राष्ट्रपति चार वर्ष के लिये चुना जाता है, आयोग के सदस्यो का कार्यालय पाच, छ या सात वर्ष होता है। अत राष्ट्रपति जब अपना पद ग्रहण करता है, उस समय वह नये सदस्यो को नियुक्त नही कर सकता क्योकि सदस्यो का कार्य-काल राष्ट्रपति के कार्य काल से अधिक लम्बा होता है। इस असमान कार्यकाल व्यवस्था' के कारण कोई भी राष्ट्रपति आयोग के सभी सदस्यो की नियुक्ति नही कर सकता। अत सदस्यो को नियुक्त करने का राष्ट्रपति का अधिकार सीमित ही होता है। '

(२) आयोग के सदस्यो को पदच्युत करने की राष्ट्रपति की शक्ति बहुत सीमित होती है। कांग्रेस ऐसी शर्तों का निर्धारण कर सकती है जिनके अन्तर्गत ही सदस्यो को हटाया जा सकता है। अत राष्ट्रपति की सदस्यो को पदच्युत करने की शक्ति भी प्रतिबन्धित ही रहती है।

(३) राष्ट्रपति को आयोग के निर्णयो को बदलने, वीटो करने (विशेषाधिकार द्वारा रद्द करने) तथा उनका पुनरवलोकन करने का अधिकार नही होता। आयोग के निर्णय राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत भी नही किये जाते। इस प्रकार जहाँ तक राष्ट्रपति के साथ इनके सम्बन्ध का मामला है परम्परा (Tradition) तथा कानून (Law), दोनो ही इन आयोगो को ठोस स्वतन्त्रता की वास्तविक स्थिति प्रदान करते है।

न्यायपालिका और आयोग
(Judiciary and Commissions)

पक्षो (Parties) के अनुरोध-पत्रो (Petitions) पर सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को आयोग के निर्णयो का पुनरवलोकन (Review) करने का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय आयोग के निर्णयो की पुष्टि कर सकता है, उनमें संशोधन कर सकता है अथवा उनको रद्द कर सकता है।

नियामकीय कार्य की प्रकृति तथा सचालन
(Nature and Conduct of Regulatory Business)

आयोग मिश्रित प्रकार (Mixed type) के कार्यों को सम्पन्न करते हैं। उनके कार्य प्रशासकीय, अर्ध-विधायक तथा अर्ध-न्यायिक प्रकृति के होते हैं। ये आयोग नियम बनाते है, यह इनका अर्ध-विधायक (Quasi legislative) कार्य है। ये इन नियमो को लागू करते हैं तथा कार्यवाइया करते है, ये इनके प्रशासकीय कार्य हैं। ये मुकदमो मे निर्णय देते हैं व अपीलें सुनते है आदि, ये इनके अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) कार्य हैं। लोगों के आचार का नियमन करने के लिये व्यवस्थापिका

(Legislature) कानून पास करती है, उदाहरण के लिये, यह कि रेल व सड़क परिवहन तथा बिजली की दरें "न्यायपूर्ण व उचित" (Just and reasonable) हों, भोजनालय (Restaurants) तथा दुग्धशालाएं (Dairies) 'साफ व स्वच्छ' (Sanitary) रहें, मालिक अथवा नियोक्ता (Employers) अपने कर्मचारियों के जीवन, स्वास्थ्य तथा उनकी सुरक्षा की उचित देखभाल करें, और यह कि वाणिज्यिक प्रवृत्तियां "अनुचित अथवा धोखेपूर्ण से पूर्ण" (Unfair or deceptive) न हों अथवा उनमें 'प्रतियोगिता के अनुचित तरीकों" का प्रयोग न किया जाये। अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि इस बात की व्याख्या कैसे की जाये कि क्या 'उचित' है, क्या 'अनुचित" है आदि। आयोगों से यह कहा जाता है कि वे इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम तथा विनियम (Rules and regulations) जारी करें। यह आयोगों का *अर्ध-विधायक कार्य है। आयोगों को नियमों के भंग करने वाले व्यक्तियों के मुकदमों* में निर्णय भी करने होते हैं। *यह उनका अर्ध-न्यायिक कार्य है।* इस प्रकार आयोग 'मिश्रित प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते हैं।' आयोगों को 'तथ्यों का अन्वेषण' करना होता है खोजबीन करनी होती है तथा नियामकीय कार्य के बारे में जनता का मत जानना होता है और फिर इन तथ्यों (Facts) के आधार पर ही उन्हें अपने *निर्णय देने होते हैं।*

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगों की स्थापना के कारण
(Reasons for the Establishment of Independent Regulatory Commissions).

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगों की स्थापना के निम्नलिखित कारण थे—

(१) नियामकीय कार्यों में अर्ध-न्यायिक तत्व पाया जाता है। यह सोचा गया कि अर्ध-न्यायिक कार्य एक निष्पादक विभाग (Executive department) की अपेक्षा एक स्वतन्त्र आयोग द्वारा अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न किये जा सकते हैं।

(२) यह विचार किया गया कि नियामकीय कार्य निर्दलीय (Non-partisan) आधार पर सम्पन्न किये जाने चाहियें। स्वतन्त्र आयोगों का निर्माण इसी आशा से किया गया था कि वे निर्दलीय आधार पर कार्य करेंगे।

(३) अनेक नियामकीय कार्य प्राविधिक अथवा तकनीकी (technical) प्रकृति के होते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की होती है कि ऐसे कार्यों को विशेषज्ञ अथवा जानकार लोग ही अपने हाथों में लें। इसी कारण नियमन करने का कार्य स्वतन्त्र विशेषज्ञों को सौंप दिया गया।

(४) कुछ स्वतन्त्र आयोगों का निर्माण इस कारण भी किया गया था क्योंकि कुछ प्रादेशिक मांगों की सन्तुष्टि के लिए ऐसा करना आवश्यक था।

(५) नियामकीय कार्यों के सम्बन्ध में अपनाई गई, सरकारी नीति एक प्रयोगात्मक अवस्था (Experimental stage) में थी। यह सोचा गया था कि

आचार-व्यवहार के नियम (Rules of conduct) व्याख्या करने का अधिकार एक ऐसे विशेषज्ञ आयोग को दिया जाये जो कि दलगत राजनीति (Party politics) के प्रभाव से बचा हुआ हो।

(६) नियामकीय कार्य अर्ध-विधायक (Quasi-legislative) होता है। अत यह अच्छा है कि यह अर्ध-विधायक कार्य एक विभागाध्यक्ष को देने की बजाय व्यक्तियों के एक वर्ग को दिया जाय।

(७) प्रथम नियामकीय आयोग अर्थात् अन्तर्राज्य वाणिज्य आयोग (Inter State Commerce Commission) को अपने कार्य मे भारी सफलता मिली और उसने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की। कांग्रेस उससे बहुत प्रभावित हुई और उसे इसी प्रकार के अन्य आयोगों की स्थापना करने की प्रेरणा मिली।

(८) कांग्रेस ने कुछ स्वतन्त्र आयोगो का निर्माण इसलिये किया था क्योंकि उसे यह ठीक प्रकार ज्ञान नहीं था कि नियामकीय कार्य किसके सुपुर्द किये जाय।

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगों की आलोचना
(Criticism of the Independent Regulatory Commissions)

संयुक्त राज्य अमेरिका मे स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो की कड़ी आलोचनाएं की गई हैं। ये आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं —

(१) आयोग प्रशासन के पृथक्करण को प्रोत्साहन देते हैं क्योंकि ये मुख्य निष्पादक (Chief Executive) के निरीक्षण एवं नियन्त्रण मे नहीं होते।

(२) चूंकि ये मुख्य निष्पादक के नियन्त्रण मे नहीं होते, और अपनी पृथक् नीतियाँ निर्धारित करते हैं, अत नीति के सम्बन्ध में अनेक विवाद तथा भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि राष्ट्रपति की प्रभावशीलता तथा जिम्मेदारी क्षीण हो जाती है।

(३) राष्ट्रपति का मुख्य उत्तरदायित्व है कि "वह यह देखे कि कानून निष्ठापूर्वक क्रियान्वित किये जा रहे है या नहीं।"[1] स्वतन्त्र नियामकीय आयोग उसके नियन्त्रण मे नहीं होते। वे तो सीधे कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं। राष्ट्रपति इस बात की देखभाल कैसे कर सकता है कि अन्तर्राज्य वाणिज्य अधिनियम (Inter State Commerce Act) अथवा संघीय व्यापार आयोग अधिनियम निष्ठापूर्वक लागू किये जा रहे हैं या नहीं ? इन अधिनियमो के क्रियान्वय के लिए उत्तरदायी अभिकरण (Agencies) उसके नियन्त्रण से बाहर होते है।

(४) स्वतन्त्र नियामकीय आयोग राष्ट्रीय प्रशासन की नीति मे समन्वय (Co-ordination) के अभाव की स्थिति उत्पन्न करते है। राष्ट्रीय नीति (National policy) के विपरीत वे स्वय अपनी ही नीतियो का अनुसरण करते है। इससे प्रशासन मे भ्रम तथा अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

---

1 Art II, sec 3, U S Constitution

(५) इन आयोगों से प्रशासकीय खर्चों में वृद्धि होती है। अनेक स्थितियों में ऐसा होता है कि अपने कार्यों को सम्पन्न करने के लिए वे विभागों (Departments) की सेवाओं का उपयोग नहीं करते, अपितु अपने निजी विशेष तथा पृथक अभिकरणों (*Agencies*) *का निर्माण करते हैं। इससे अनावश्यक रूप से दुगुना* स्टाफ रखना पड़ता है।

(६) आयोग मिश्रित प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते हैं। वे एक ही साथ विधि-निर्माता (Law-maker), कार्य-संचालन तथा न्यायाधीश होते हैं। वे "अनुचित प्रतियोगिता से पूर्ण व्यापारिक क्रियाओं" के स्तरों अथवा मानदण्डों" (Standards) का निर्धारण करते हैं। वे ही इन स्तरों अथवा मानदण्डों को लागू करते हैं तथा कानून भंग करने वालों पर अभियोग लगाते हैं। इस रीति से नागरिकों के अधिकार खतरे में पड़ जाते हैं। जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि "आयोग से यह कहा जाता है कि नीति के निर्धारण के कार्य के साथ ही साथ, जो कि अनेक बार तीव्र दलीय वाद विवाद अथवा आर्थिकवर्ग के विरोध का विषय बन जाता है, न्यायिक कार्य सम्पन्न करें। वस्तुतः यह वह वातावरण नहीं है जिसमें कि नागरिकों के अधिकारों के सम्बन्ध में निर्णय किए जायें। स्वतन्त्र आयोग व्यवस्था की यह एक अनिवार्य तथा अन्तर्निहित (Inherent) कमजोरी है।"[1]

(७) यह हो सकता है कि अभिकरण के कर्मचारी कानून को लागू करने में समर्थ तथा योग्य न हों।

(८) एक एकीकृत प्रशासकीय व्यवस्था में सत्ता की रेखा (Line of authority) मुख्य निष्पादक अथवा मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) से सभी विभागों तथा अभिकरणों तक जानी चाहिए और सभी अभिकरण तथा विभाग प्रत्यक्षरूप से नहीं बल्कि महाप्रबन्ध के रूप में मुख्य निष्पादक के माध्यम से व्यवस्थापिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी होने चाहियें। परन्तु नियामकीय आयोग व्यवस्था प्रशासकीय संगठन के इस मूलभूत सिद्धान्त का उल्लंघन करती है तथा प्रशासन में भ्रम उत्पन्न करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगों द्वारा उत्पन्न इस भ्रम (Dilemma) को राबर्ट ई० कुशमैन (Robert E Cushman) ने इन शब्दों में व्यक्त किया है

"स्वतन्त्र नियामकीय आयोग संघीय प्रशासन के पुनर्गठन की किसी भी योजना के लिये एक चुनौतीपूर्ण समस्या ला खड़ी करते हैं। वे वास्तविक तथा सम्भावित रूप में विकेन्द्रीकरण (Decentralization) का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि वे न्यायालयों के निरीक्षण से बचे नहीं रहते, तथापि राष्ट्रपति के नियन्त्रण से वे पूर्णतः मुक्त होते हैं। अनुभव के अनुसार तो ऐसा कोई व्यावहारिक उपाय नहीं

1 Robert E. Cushman, The Problem of Independent Regulatory Commissions, *in Report with Special Studies, President's Committee on Administrative* Management Washington, 1937

दिखाई देता जो उन्हे कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनता हो । वे तो राष्ट्रीय सरकार मे एक प्रकार के चतुर्थ विभाग" (Fourth department) के समान है ।"

" संघीय नियमन (Federal Regulation) के एक उपाय के रूप मे, अनुभव के आधार पर, स्वतन्त्र आयोगो के लिए अत्यधिक आदर की भावना पाई जाती है । इस बात की ओर भारी झुकाव पाया जाता है कि उत्पन्न होने वाले नये नये नियामकीय कार्यों का निपटारा इस रीति के प्रयोग द्वारा किया जाना चाहिये । किन्तु साथ ही इन स्वतन्त्र सस्थाओ की सख्या मे वृद्धि का आवश्यक रुझान प्रशासकीय व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण तथा अव्यवस्थित होने की ओर होते लगता है । ये अनुत्तरदायिता के क्षेत्र हैं । इनके अधिकार मे महत्वपूर्ण प्रशासकीय क्षेत्र हैं जो राष्ट्रपति के निर्देशन एव उत्तरदायित्व की पहुच के बाहर हैं' ।" आयोग ऐसा कार्य सम्पन्न करता है जिसके सम्बन्ध मे इसे, एक ही साथ, राजनैतिक दृष्टि से उत्तरदायी तथा न्यायिक दृष्टि से स्वतन्त्र रहना चाहिए । "यह स्थिति एक भ्रमजाल सी प्रतीत होती है । यदि नियामकीय आयोग वर्तमान और भावी, पूर्णतया स्वतन्त्र रखे जायें तब तो वे नीति-निर्धारण तथा प्रशासकीय कार्य जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण कृत्य को सम्पन्न करने के लिए पूर्णतया अनुत्तरदायी बन जाते हैं और दूसरी ओर, यदि आयोगो की स्वतन्त्रता की स्थिति का अपहरण कर लिया जाये तो यह उनके न्यायिक तथा अर्ध-न्यायिक कार्यों के निष्पक्ष सम्पादन के लिए एक गम्भीर धमकी बन जाती है ।"[1]

आयोग को राजनैतिक दृष्टि से उत्तरदायी तथा न्यायिक दृष्टि से निष्पक्ष एव स्वतन्त्र कैसे बनाया जाय, यह एक बडी दुविधा मे डालने वाली बात है । सघ सरकार मे प्रशासकीय प्रबन्ध-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए राष्ट्रपति रूजवैल्ट (President Roosevelt) ने जो प्रशासकीय प्रबन्ध समिति (Committee on Administrative Management) नियुक्त की थी उसने सन् १६३७ में अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया । स्वतन्त्र नियामकीय आयोगो के सम्बन्ध मे इस समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की । इसने सिफारिश की कि आयोगो का नियमित निष्पादक विभागो (Regular executive departments) मे एकीकरण कर दिया जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त, आयोगो को दो अनुभागो (Sections) मे बाँट दिया जाना चाहिये, अर्थात् न्यायिक अनुभाग (Judicial section) और प्रशासकीय अनुभाग (Administrative section) । प्रशासकीय अनुभागो को नीति निर्धारित करने तथा नियम बनाने के अधिकार दिये जायेंगे और इसको एक विभाग का ब्यूरो (Bureau) अथवा सम्भाग (Division) बना दिया जायेगा, फलत यह सचिव (Secretary) तथा राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होगा । न्यायिक अनुभाग, जिसको कि आयोगो के न्यायिक कार्य सम्पन्न करने पडेंगे, उन विभागो

1 Robert E Cushman, The Problem of the Independent Regulatory Commission, *op cit*,

(Departments) मे रहेगा जोकि 'प्रशासकीय गृह प्रबन्ध कार्यों' का करने के उद्देश्य से बनाये गये हो, परन्तु यह अनुभाग अन्य किसी भी बन्धन से पूर्णत स्वतन्त्र रहेगा। राष्ट्रपति द्वारा इसके निर्णयो का पुनरवलोकन नही किया जा सकेगा, अत यह स्वतन्त्र रूप मे तथा निष्पक्षता के साथ कार्य कर सकेगा। इस प्रकार आयोग के प्रशासकीय कार्यों का विभागों मे एकीकरण कर दिया जायगा तथा उनको उत्तरदायी बनाया जा सकेगा, और दूसरी ओर न्यायिक क्षेत्र मे उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी। कांग्रेस ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया।

हूवर आयोग (Hoover commission) १९४९ ने कई बड़े तर्कपूर्ण व उचित सुझाव दिये। इसने प्रचलित अभिकरणो (Agencies) का एकीकरण करने, चेयरमैन की शक्तियो मे वृद्धि करने, आयुक्तो (Commissioners) को अधिक वेतन देने तथा स्टाफ विशेषज्ञो (Staff experts) को अधिक सत्ता प्रदान किये जाने की सिफारिश की। परन्तु आयोग ने मूलभूत ढाचे के विरुद्ध एक प्रधान या अध्यक्ष, (Head) रखने की बात की सावधानी के साथ उपेक्षा कर दी। इस प्रकार, समस्या जहां की तहां रही।[1]

---

1 For details refer to the Problem of the Independent Regulatory Commissions, Robert E Cushman, adopted from the problem of the Independent Regulatory Commissions, in report with Special Studies President's Committee on *Administrative Management, Washington, 1937*

८

सरकारी उद्यमों[1] का प्रशासन

(Administration of State Enterprises)

सरकारी उद्यम (State enterprise), जिसका अर्थ है औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी, वित्तीय तथा वाणिज्यिक व्यवसायों का सरकारी स्वामित्व (State ownership) तथा सरकारी सचालन (State operation), आजकल लगभग एक सार्वदेशिक तथ्य बन गया है। अबन्धनीति (laissez faire) का प्राचीन सिद्धान्त अब पूर्णतया अव्यावहारिक हो गया है। सरकार के कार्य, उद्योग (Industry) तथा व्यापार (Trade), ये चीजें परस्पर इतनी सम्बद्ध एव सयुक्त हो गई हैं कि उनके पूर्ण पृथक्करण (Separation) का प्रश्न अधिक समय तक नहीं उठाया जा सकता। हमारे सामने ऐसे उदाहरण हैं कि ससार के लगभग सभी देशों में, चाहे वे उन्नत हों अथवा कम-उन्नत, सरकारी उद्यम चालू हैं। यहाँ तक कि सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश म भी, जहाँ कि सरकारी उद्यम को सदेह की दृष्टि से देखा जाता है और इसको व्यक्तिगत स्वाधीनता मे एक चुनौती माना जाता है, हम देखते हैं कि टेनेसी घाटी सत्ता (Tennesse Valley Authority) का सचालन किया जाता है जोकि सरकारी उद्यम का एक विशिष्ट उदाहरण है। सोवियत रूस (Soviet Russia) मे सरकारी क्षेत्र (State sector) पूर्णत व्यापक है और देश के लगभग सम्पूर्ण आर्थिक जीवन मे फैला हुआ है। रूस के सविधान मे स्पष्ट शब्दो मे यह कहा गया है कि "अर्थ-व्यवस्था (Economy) की समाजवादी पद्धति तथा उत्पादन के साधनो का समाजवादी स्वामित्व (Socialist ownership) ही सोवियत सघ (U S S R) की आर्थिक नीव का दृढ आधार है जिसकी स्थापना अर्थ व्यवस्था की पूँजीवादी पद्धति की समाप्ति, उत्पादन के साधनो के व्यक्तिगत स्वामित्व के उन्मूलन और मनुष्य द्वारा मनुष्य मे शोषण (Exploitation) की समाप्ति के परिणामस्वरूप की गई है।"[2]

इसी प्रकार फास की अर्थ-व्यवस्था (Economy) का एक बडा क्षेत्र सरकारी उद्यमो के अन्तर्गत है। सरकारी निगमो (Public Corporations) तथा राज्य द्वारा

1 सरकारी उद्यम की समस्याओं का विस्तृत विवेचन लेखक की 'भारत मे सरकारी उद्यम पर ससदीय नियन्त्रण' (Parliamentary Control over State Enterprise in India) नामक पुस्तक मे किया गया है। यह पुस्तक मैट्रोपोलिटन बुक क० फैज बाजार, देहली द्वारा प्रकाशित की गई है।

2 Russian Constitution 1936, Article IV

अधिकृत एवं सचालित कम्पनियों की एक लम्बी और विविध सूची है। इसमें विद्युत, गैस व कोयला निगम, रेलवे, राष्ट्रीय वायुमार्ग, दो बड़ी जहाजी कम्पनियां, पेरिस परिवहन व्यवस्था, एल्सेशन पोटाश खानें (Alsation Potash Mines), टोलूज़ निट्रेट्स प्लान्ट (Toulcuse nitrates plant), वायुयान निर्माण उद्योग का एक बड़ा भाग, रिनाल्ट मोटर वर्क्स (Renault Motor Works), चार बड़े जमा बैंक, देश का आधा बीमा व्यवसाय, फ्रांस की सीमाओं पर स्थित वाणिज्यिक रेडियो स्टेशन, फिल्म तथा सिनेमा कम्पनियां तथा इनके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र सम्मिलित हैं। ब्रिटेन में, सन् १९४५ व ५० के बीच में मजदूरदलीय सरकार ने कोयला, गैस, परिवहन (Transport) वायुमार्ग, बिजली तथा लोहा व इस्पात उद्योगों तथा बैंक ऑफ इंगलैंड का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इसी प्रकार, यदि हम श्रीलंका (Ceylon) पाकिस्तान, ब्रह्मा व टर्की आदि कम विकसित (Under developed) देशों की ओर देखें तो सरकारी उद्यम के अनेक उदाहरण हमारे सामने आते हैं। टर्की में कृषि बैंक (Agricultural Bank), मिट्टी द्वारा निर्मित पदार्थों का कार्यालय, कृषि सामान अभिकरण (Agricultural Equipment Agency) आदि सब पर राज्य का ही स्वामित्व है और ये अनेक प्रकार से कृषकों की सहायता करते हैं। 'उद्योग तथा दोनों ही क्षेत्रों में टर्की के आर्थिक विकास का इतिहास बहुत कुछ सरकारी उद्यम से ही सम्बन्धित रहा है।'[1] इस प्रकार उद्योग, कृषि तथा वाणिज्य के क्षेत्र में राज्य का प्रवेश अब लगभग सभी देशों में काफी महत्वपूर्ण हो गया है। इसकी उत्पत्ति अनेक प्रकार की प्रेरणाओं (Motives), दबावों (Pressures) तथा उद्देश्यों (Purposes) के कारण हुई जोकि देश-देश व सरकार-सरकार की भिन्नता के अनुसार भिन्न भिन्न है। किसी भी राष्ट्र की व्यावहारिक आवश्यकताएं, प्रतिरक्षा सम्बन्धी बातें, राजनैतिक विचारधारा, सामाजिक शासन, आर्थिक विकास की दशा—ये अनेक तत्व हैं जोकि किसी न किसी प्रकार से इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी देश के औद्योगिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्र में राज्य को कौनसा भाग अदा करना है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व, भारत की अर्थ-व्यवस्था (Economy) आयोजनाबद्ध (Planned) नहीं थी। उस समय तक भारत एक कृषिप्रधान देश था जोकि ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चा माल (Raw material) प्रदान करता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार का यह उत्तरदायित्व हो गया कि वह इस देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की निर्धनता दूर कर और रहन-सहन के स्तर में सुधार करे। अत अब भारत सरकार निर्धनता, पौष्टिक भोजन की कमी, बीमारी तथा अशिक्षा को दूर करने के लिए आर्थिक विकास की गति तीव्र करने के भगीरथ प्रयत्नों में लगी हुई है। इस कारण ही सरकार को आर्थिक उद्यमों के अनेक क्षेत्रों में हस्तक्षेप अथवा प्रवेश करने की प्रेरणा मिली है।

1 A H Hanson *Public Enterprise and Economic Development*, p 124

सरकारी उद्यमों के सम्बन्ध में जो प्रशासकीय समस्याएँ उत्पन्न होती है वे निम्न प्रकार है :—

(१) सरकारी उद्यमों का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता है ?

(२) ससद (Parliament) के प्रतिनिधि के रूप में, मन्त्री (Minister) भारत में सरकारी उद्यमों पर किस प्रकार नियन्त्रण रखते हैं ? क्या उसकी शक्तियां स्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त होती है ? क्या उसकी शक्तियों पर कोई रोक लगनी चाहिये ?

(३) सरकारी निगमों (Public Corporations) पर नियन्त्रण रखने के लिए ससद द्वारा क्या-क्या उपाय अपनाये जाते है ? किसी भी निगम के कार्यभारी (Incharge) मन्त्री से उस निगम के कार्यों तथा सचालन के बारे में कौन-कौन से प्रश्न पूछे जाने चाहिये ? निगमों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए ससद के सदस्यों को और कौन-कौन से साधन प्रदान किये जाने चाहियें ?

(४) ससद की सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) तथा प्राक्कलन समिति (Committee on Estimates) जैसी वित्तीय समितियों द्वारा निगमों पर क्या तथा किस प्रकार नियन्त्रण रखा जाना चाहिये।

(५) सरकारी निगमों पर जो ससदीय नियन्त्रण लागू किया जाता है, क्या वह पर्याप्त है ? यदि नहीं, तो क्या सरकारी उद्यमों से व्यवहार करने के लिए ससद की एक प्रवर समिति (Select committee) होनी चाहिए ? यदि नहीं, तो क्यों ?

(६) सरकारी उद्यमों से सरकार का वास्तविक सम्बन्ध क्या है ?

अब हम सरकारी उद्यमों के प्रबन्ध से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करते है।

सरकारी उद्यमों में प्रबन्ध के स्वरूप
(Patterns of Management in State Enterprises)

गत शताब्दी (Decade) में व्यावसायिक उद्यमों के सरकारी स्वामित्व एवं सचालन की सख्या में अधिक वृद्धि हो जाने से एक मूलभूत समस्या यह उत्पन्न हो गई है कि किसी भी उद्यम की सबसे अच्छी प्रबन्ध-व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है ? प्रबन्ध के किस स्वरूप को अपनाकर सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं ? ससार के भिन्न-भिन्न देशों में प्रबन्ध के विभिन्न रूपों के साथ अनेक प्रयोग किए गए है ?

सरकारी उद्यमों के प्रशासन के लिए अधिकतर सगठन के चार रूपों (Forms) का उपयोग किया जाता है जोकि निम्न प्रकार है —

(१) वे उद्यम जिनका सचालन अन्य सरकारी क्रियाओं के समान ही किया जाता है, अर्थात् विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management)।

(२) सरकारी निगम (Public Corporations)

(३) मिश्रित पूँजी कम्पनियाँ (Joint stock companies) जोकि या तो पूर्णतया सरकारी स्वामित्व के अन्तर्गत हो अथवा मिश्रित अर्थात् प्राइवेट संस्थाओं के साथ साझेदारी (Partnership) में हो।

(४) संचालन ठेका (Operating contract) एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत सरकार किसी भी प्राइवेट अथवा निजी संस्था के साथ सरकारी उद्यम के प्रबन्ध तथा संचालन का ठेका करती है।

सरकारी उद्यमों को कार्य-दक्षता एवं कुशलता के साथ चलाने के लिये यह आवश्यक है कि भिन्न भिन्न उद्यमों के लिये ठीक-ठीक प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्था का चुनाव किया जाय। अब हम सरकारी उद्यमों की ऊपर बताई गई इन विभिन्न प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्थाओं के सापेक्षिक गुणों की विवेचना करेंगे।

(१) विभागीय प्रबन्ध
(Departmental Management) :

विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था का उपयोग अनेक देशों में रेलों, संचार के साधनों, बन्दरगाहों, राजस्व-अर्जन की प्रकृति वाले वाणिज्यिक (Commercial) तथा औद्योगिक एकाधिकारों (Industrial monopolies), और यहाँ तक कि निर्माण उद्योगों के लिये भी किया जाता है। भारत में, रेलवे, जोकि सबसे बड़ा सरकारी उद्यम है, विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत है तथा अब चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स (Chittaranjan Locomotive Works), पेराम्बूर में इन्टीग्रल कोच फैक्टरी (Integral Coach Factory) तथा युद्ध-सामग्री का निर्माण करने वाली व विशिष्ट प्रतिरक्षा की सामग्री की पूर्ति करने वाली कुछ फैक्टरियों का संगठन व उनकी वित्तीय व्यवस्था तथा नियन्त्रण बहुत कुछ उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार कि केन्द्र सरकार के अन्य किसी विभाग का।

'शुद्ध' रूप में इसमें निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं —

(१) उद्यम की वित्तीय व्यवस्था राजकोष (Treasury) से लिये जाने वाले *वार्षिक विनियोजनों (Annual appropriations) द्वारा की जाती है* तथा इसकी आय का सम्पूर्ण अथवा एक बड़ा भाग राजकोष में दे दिया जाता है,

(२) उद्यम का नियन्त्रण बजट लेखांकन (Accounting) तथा लेखा-परीक्षण (Audit) व उन नियमों के द्वारा होता है जोकि अन्य सरकारी विभागों में लागू होते हैं,

(३) उद्यम के स्थायी कर्मचारी-वर्ग में सिविल सेवक (Civil servants) होते हैं। उन कर्मचारियों की भर्ती की रीतियाँ तथा सेवा की शर्तें आदि सामान्यतः वैसी ही होती है जैसी कि अन्य सिविल सेवकों के लिये होती हैं;

(४) उद्यम का संगठन साधारणतया सरकार के केन्द्रीय विभाग (Central department) के एक बड़े उपसभाग (sub division) के रूप में किया जाता है

और उद्यम विभागाध्यक्ष (Head of the department) के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है।

(५) जब कभी यह देश की कानूनी व्यवस्था (Legal system) में लागू होता है तो उद्यम को राज्य (State) के सर्वश्रेष्ठ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और सरकार की सहमति के बिना उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।'[1]

इस प्रकार, विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था वाले उद्यम का संगठन वस्तुतः पद-सोपान (Hierarchy) के आधार पर होता है जिसका प्रधान एक मन्त्री (Minister) होता है और जो अपने कार्यों के लिये मन्त्रिपरिषद् (Cabinet) तथा संसद के प्रति उत्तरदायी रहता है। उद्यम का प्रशासन ज्येष्ठ (Sector) सिविल सेवकों के हाथों में रहता है तथा वित्तीय नियन्त्रण राजकोष द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार के संगठन में राजनीतिक दृष्टि से उत्तरदायी मन्त्री के द्वारा अधिकतम मात्रा में नियन्त्रण रखा जाता है। सरकारी उत्तरदायिता (Public accountability) निश्चित हो जाती है। सरकारी ढांचे के अन्य भागों के साथ स्पष्ट सम्बन्ध होना इस प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्था का एक अन्य लाभ है। ये इसके निश्चित व ठोस लाभ हैं तथापि यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि विभागीय प्रबन्ध इन लाभों को प्राप्त करने की कोई अनिवार्य पूर्वशर्त (Pre condition) नहीं है।

संगठन के इस रूप की हानियाँ भी अनेक हैं और विशेषकर उस उद्यम के लिए जोकि स्पष्टतः औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति का हो। यह 'सरकार की शक्ति' को बढ़ाकर अधिकतम कर देता है और उद्यम की "प्रेरणा तथा लोचशीलता" को घटाकर न्यूनतम कर देता है। यह कुछ उन भेदकारक विशिष्टताओं को यथेष्ट रूप से दृष्टिगत रखने में असफल रहता है जोकि अधिकांश उद्यमों को सरकारी कार्यों के सामान्य संचालन से स्पष्टतः पृथक् रखती है अर्थात् यह कि

(१) सरकार जनता से एक सर्वोच्च सत्ता के रूप में व्यवहार नहीं करती बल्कि एक व्यवसायी (Businessman) के तरीके से व्यवहार करती है, (२) वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत की अदायगी सामान्य करदाता (General tax-payer) की बजाए व्यक्तिशः उपभोक्ताओं को करनी पड़ती है, (३) उद्यम के खर्चे अनिवार्यतः उपभोक्ता की माँग के साथ-साथ घटते-बढ़ते रहते हैं और उनका ठीक-ठीक प्रकार पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता अथवा उनको वास्तविक रूप में वार्षिक बजट की सीमाओं के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, और (४) ऐसे क्षेत्रों में कार्यों का संचालन किया जाता है जिनमें कि सुसस्थापित व्यापारिक क्रियाएं प्रचलित हैं। संगठन के इस रूप के अन्तर्गत, सरकारी उद्यम कभी-कभी लालफीताशाही (Red tapism) कार्य में देरी, अपर्याप्त सेवा तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के प्रति उपेक्षाभाव के शिकार बन जाते हैं।"[2]

1 United Nations Publication, p 6
2 United Nations Publication p 6

सरकारी उद्यमो मे पाये जाने वाले दृढ वित्तीय नियन्त्रण, तथा माल की खरीद व ठेरो (Contracts) आदि के लिये नियमो व विनियमो (Rules and regulations) की कठोरता का सामान्यत स्वीकृत वाणिज्यिक व व्यापारिक कार्यवाहियो मे विवाद हो सकता है और व्यक्तिगत निर्णय तथा प्रेरणा पर रोक लग सकती है जो कि एक उद्यम के सफल सचालन के लिये आवश्यक होते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि सरकारी उद्यमो के सचालन से सम्बन्धित विभागो के ढांचो तथा कार्य-विधियो मे मूलभूत सशोधन करके क्या हम इन कमियो को दूर नही कर सकते ? जैसा कि प्रो० डिमोक *(Dimock)* ने कहा है कि "यदि अधिक स्वायत्तता (Autonomy) तथा लचीलापन (Flexibility) लाने की दिशा मे विभागो (Departments) के अन्तर्गत काफी सुधार किये जा सकें तो सरकारी निगमो के लिये इसका औचित्य (Justification) या तो बिल्कुल नही होगा या बहुत थोडा होगा।"[1] व्यवहार मे, इस सम्बन्ध मे भिन्न भिन्न देशो मे समय-समय पर आवश्यक सुधार किये जाते रहे हैं। 'Revolving funds' की स्थापना की गई है, कठोर कानूनो एव नियमो के द्वारा सामान्य अथवा विशिष्ट छूटें प्रदान की गई हैं, वाणिज्यिक किस्म के लेखा-परीक्षणो (Audits) की व्यवस्था की गई है, तथा (स्वीकृतियाँ प्राप्त करने मे होने वाली देरियो को कम करने के लिये) अन्तर्मन्त्रीय (Inter-Ministerial) प्रतिनिधित्व से पूर्ण प्रबन्ध-मण्डलो (Managing Boards) की रचना की गई है। भारतीय रेलें वैसे विभागीय प्रबन्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत है किन्तु अनेक अधिकार रलवे प्रशासन को सौंप दिये गये हैं। भारतीय रेलवेज की अपनी निजी वित्तीय प्रशासकीय तथा नियुक्ति करने की कार्य-विधियाँ है उनके अपने लेखाकन (Accounting) तथा लेखा-परीक्षण (Auditing) विभाग हैं, यही नही वे विभिन्न क्षेत्रो म बटी हुई हैं और जहाँ तक कार्य-सचालन का सम्बन्ध है प्रत्येक क्षेत्रीय रेलवे म काफी मात्रा मे विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त, शीघ्र निर्णयो के लिये बोर्ड योजना अपनाई गई है। रेलवे बोर्ड (Railway Board) भारत सरकार के एक मन्त्रालय (Ministry) के सदृश कार्य करता है और रेलो के नियमन, निर्माण, देखभाल तथा सचालन के सम्बन्ध मे केन्द्र सरकार की सभी शक्तियो का प्रयोग करता है। रेलवे बोर्ड का सविधान, रेलवे नीति का निर्माण करन एव उसको क्रियान्वित करने के सम्बन्ध मे बोर्ड को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करता है। बोर्ड एक निगम निकाय (Corporate body) के रूप म कार्य करता है और इसके सदस्य कृत्यशील (Functional) प्रकृति के होते है। बोड म चेयरमैन वित्त आयुक्त *(Financial Commissioner)* तथा तीन सदस्य (Members) होत है जो कि कर्मचारी-वर्ग (Staff) सिविल इजिनियरिंग तथा परिवहन व्यवस्था के कार्यभार (Incharge) होते हैं। रेलवे मन्त्रालय मे भारत

1 M F Dimock Government Corporations A Focus of Policy and Administration in American Political Science Review Vol XLIII, p 1165.

सरकार का पदेन सचिव (Ex-officio secretary) इसका चेयरमैन होता है। इसका वित्त आयुक्त भी रेलवे मन्त्रालय में वित्तीय मामलों से सम्बन्धित भारत सरकार का पदेन सचिव होता है। डाक व तार विभाग के लिए भी एक ऐसा ही बोर्ड बनाने की योजना है।

परन्तु विभागीय ढाँचे में उन क्रियाओं को सम्मिलित करने के लिये हेर-फेर करना सामान्यतः एक बड़ा कठिन कार्य है जिनका सम्पादन करने के लिये इसकी रचना नहीं की गई थी। जब तक एक उद्यम को अन्य प्रकार की सरकारी क्रियाओं से पृथक् नहीं किया जायेगा तब तक उसको प्रमाणिक सरकारी विनियमों (Regulations) तथा कार्य-विधियों (Procedures) के अनुरूप बनाने के लिए भारी दबाव डाले जाते रहेंगे। चूंकि एकरूपता (Uniformity) पर जोर देना नौकरशाही प्रशासन (Bureaucratic administration) का एक सामान्य लक्षण है, अतः जब तक किसी विशेष उद्यम पर लागू करने के लिए विशिष्ट कानूनी व्यवस्थाओं (Legal provisions) का प्रबन्ध नहीं किया जाता तब तक उस उद्यम में भिन्न कार्य-विधि लागू करने का प्रयत्न प्रायः असफल ही रहता है। जैसा कि हन्सन (*Henson*) ने कहा है कि 'यहाँ तक कि एक विकसित देश में भी, जहाँ कि निपुण एवं अनुकूल सिविल सेवा वर्तमान हो, एक सरकारी उद्यम का सरकारी विभाग के रूप में सञ्चालित करने के कार्य को मामूली रूप में नहीं लिया जाना चाहिये, और कम विकसित देश में तो ऐसा करना प्रायः असम्भव होता है। आमतौर पर सगठन के विशिष्ट रूपों की आवश्यकता होती है।'[1] ए० डी० गोरवाला (*A. D Gorwala*) ने ठीक ही कहा है कि विभागीय प्रबन्ध (Departmental management) का उपयोग तो कभी-कभी ही किया जाना चाहिये, एक सामान्य नियम के रूप में नहीं। अनेक प्रकार से, स्वायत्तता (Autonomy) की आवश्यकताओं का यह एक प्रत्यक्ष नकारात्मक रूप है। यह पहल-कदमी (Initiative) तथा लचीलेपन (Flexibility) का विरोध करता है··· । तथापि कुछ किस्म के उद्यमों में विभागीय प्रबन्ध अनिवार्य होता है। ऐसे उद्यमों की स्पष्ट व्याख्या की जानी चाहिये, उनको पृथक् रखना चाहिए और उनकी संख्या न्यूनतम ही रखनी चाहिये।"[2]

सरकारी निगम
(The Public Corporation)

विभागीय व्यवस्था में पाये जाने वाले दोषों के कारण, पश्चिम में लोगों का मत इतना में सरकारी निगमों के पक्ष में हो गया है। इसका आधार यह है कि निगम में वाणिज्यिक स्वाधीनता (Commercial freedom) तथा सरकारी नियन्त्रण का उचित एवं न्यायपूर्ण सम्मिश्रण पाया जाता है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट (President

1 A H Hanson, *op cit.*, p 342.

2 A. D Gorwala, Report on the Efficient Conduct of state enterprize Delhi 1951, p 13-14

Roosevelt) के शब्दों मे, 'निगम सरकार की शक्ति का जामा पहने होता है परन्तु इसमे निजी उद्यम (Private enterprise) की भी प्रेरणा तथा लोचशीलता पाई जाती है।" इस प्रकार सरकारी निगम के आन्दोलन को गति देने की मौलिक प्रेरणा दो प्रकार की इच्छाओ के कारण मिली अर्थात् एक ओर तो उद्यम के प्रबन्ध पर किये जाने वाले संसदीय निरीक्षण से, और दूसरी ओर कर्मचारी-वर्ग तथा वित्त पर राजकोष (Treasury) के नियन्त्रण से मुक्त होने की इच्छा। यह सम्भावना व्यक्त की गई कि ये दोनो ही बातें औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति के उद्यमो मे दक्षता एवं स्वयं प्रेरणा को प्रतिबन्धित करती हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघीय अध्ययन के अनुसार, जिसका कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, सरकारी निगम की मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार हैं —

(१) इस पर सरकार का ही पूर्ण स्वामित्व होता है।

(२) इसका निर्माण सामान्यत एक विशेष कानून (Law) बनाकर किया जाता है जिसमे इसकी शक्तियो, कर्तव्यों व विशेषाधिकारो की व्याख्या की जाती है, इसके प्रबन्ध के रूप का निर्धारण तथा अन्य स्थापित विभागो एव मन्त्रालयो के साथ इसके सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है।

(३) *निगम निकाय के रूप मे, कानूनी कार्यों के लिए इसका पृथक् अस्तित्व* होता है और यह मुकदमा चल सकता है तथा इस पर मुकदमा चलाया जा सकता है यह ठेके (Contracts) कर सकता है तथा अपने नाम से सम्पत्ति (Property) प्राप्त कर सकता है। अपने ही नाम से अपना व्यवसाय करने वाले निगमो को, ठेके करने के सम्बन्ध मे तथा सम्पत्ति के क्रय-विक्रय के विषय मे साधारण सरकारी विभागो की अपेक्षा आमतौर पर अधिक स्वाधीनता प्रदान की जाती है।

(४) पूंजी का प्रबन्ध करने के लिए अथवा घाटो की पूर्ति के लिए किये जाने वाले विनियोजनो (Appropriations) के अतिरिक्त, एक सरकारी निगम की वित्तीय व्यवस्था आमतौर पर स्वतन्त्र रूप से की जाती है। यह राजकोष (Treasury) अथवा जनता से उधार लेकर तथा वस्तुओ व सेवाओ की बिक्री से होने वाली आय के द्वारा धन प्राप्त करता है। अपनी आमदनियो का प्रयोग तथा पुन प्रयोग करने का इसे अधिकार होता है।

(५) यह साधारणतया सरकारी निधियो के खर्च पर लागू होने वाली अधिकांश नियामकीय तथा प्रतिबन्धात्मक सविधियो (Statutes) से मुक्त रहता है।

(६) *यह सामान्यत निगमेतर अभिकरणो (Non-corporate agencies)* पर लागू होने वाले बजट लेखांकन (Accounting) तथा लेखा परीक्षण (Audit) सम्बन्धी कानूनो एव कार्यविधियो (*Procedures*) से नहीं बंधा होता।

(७) "अधिकांश स्थितियो मे, सरकारी निगम के कर्मचारी सिविल सेवक नही होते। उनकी भर्ती करने तथा पारिश्रमिक या वेतन देने का कार्य उन शर्तों व दशाओ

के अनुसार किया जाता है जिनका निर्धारण निगम स्वयं करता है।"[1] सरकारी निगमों के विषय में लिखते हुए सन् १९३३ में हरबर्ट मोरीसन (*Herbert Morison*) ने कहा कि "हम निगमों के रूप में सरकारी स्वामित्व, सरकारी उत्तरदायित्व (Accountability) और लोकहित के लिए किये जाने वाले व्यावसायिक प्रबन्ध (Business management) का एक सम्मिश्रण प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं।"[2]

भारत ने दामोदर घाटी (Damodar Valley) जैसे नदी घाटी प्रायोजनाओं (River valley projects) तथा वायु परिवहन व बीमे आदि के संचालन के लिये सरकारी निगमों का आश्रय लिया है, और इन सभी निगमों में वे सिद्धान्त स्थूल रूप से पाये जाते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रायोजनाओं की कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निगमों का निर्माण करने वाले अधिनियमों (Acts) में कुछ विशेष रद्दोबदल अथवा समायोजन (Adjustments) अवश्य किये गये थे। अब हम दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) के ढांचे का अध्ययन करते हैं। इसकी रचना सन् १९४८ में व्यवस्थापिका (Legislature) के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। इसके चेयरमैन तथा सदस्यों की नियुक्तियाँ (पश्चिमी बंगाल व बिहार, दोनों भागीदार सरकारों के परामर्श से) केन्द्र सरकार (Central Government) द्वारा की जाती है तथा व्यक्तिगत कमियों के कारण अथवा यदि वे अन्य किसी प्रकार से अनुपयुक्त (Unsuitable) हों तो केन्द्र सरकार द्वारा ही उन्हें अपने पदों से हटाया भी जा सकता है। इसके सचिव (Secretary) तथा वित्तीय सलाहकार (Financial Adviser) की नियुक्ति भी केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है। निगम स्वयं अपनी निधि (Fund) होती है जिसमें निगम की सभी प्राप्तियाँ (Receipts) ले जाई जाती हैं तथा जिसमें से निगम की सभी आमदनियाँ (Payments) की जाती हैं। प्रत्येक भागीदार सरकार निगम द्वारा निर्धारित तिथियों पर पूंजी का अपना भाग उसको देने की व्यवस्था करती है, और यदि कोई भी सरकार निर्धारित तिथियों पर पूंजी का अपना हिस्सा देने में असफल रहती है तो निगम को यह अधिकार होता है कि उस घाटे की पूर्ति के लिये वह सम्बन्धित सरकार के दायित्व पर ऋण ले सके। केन्द्र सरकार की स्वीकृति से निगम खुले बाजार (Open market) में भी धन उधार ले सकता है। यह आवश्यक है कि इसका बजट तथा वार्षिक प्रतिवेदन (Annual Reports) प्रत्येक वर्ष केन्द्र तथा राज्य सरकारों के सम्मुख प्रस्तुत किये जायें। निगम के लेखे (Accounts) रखने तथा लेखा परीक्षण (Auditing) करने का कार्य उस रीति के अनुसार किया जाता है जोकि महालेखा परीक्षक (Auditor General) के परामर्श से निर्धारित किया जाता है। अपने कार्यों के निष्पादन के समय नीति

---

1 United Nation's Publication, *op cit*, p 9

2 Herbert Morrison, Socialization and Transport 1933, p 149

सम्बन्धी प्रश्नो के सम्बन्ध म निगम का मार्ग दर्शन उन अनुदेशो (Instructions) के द्वारा किया जाता है जोकि केन्द्र सरकार द्वारा इसे दिये जाते है और केन्द्र *सरकार तथा निगम के बीच यदि इस सम्बन्ध मे कोई विवाद उठ खडा होता है कि* अमुक प्रश्न नीति सम्बन्धी प्रश्न है या नही, तो उसमे केन्द्र सरकार का निर्णय अन्तिम माना जाता है। किन्तु निगम तथा किसी भी भागीदार सरकार के बीच उत्पन्न होने वाला कोई भी विवाद अथवा झगडा भारत के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) द्वारा नियुक्त एक पच (Arbitrator) को सौंप दिया जाना चाहिये। अधिनियम की इन धाराओ (Provisions) म, नीति पर सरकारी नियन्त्रण रखने का तथा प्रबन्ध सम्बन्धी स्वायत्तता (Autonomy) निगम के ही हाथो म छोड देने का द्विमुखी उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है। विधेयक (Bill) पर वाद विवाद के समय इस सम्बन्ध मे सरकार ने आश्वासन भी दिय। इस सम्बन्ध म यहाँ विधेयक के तत्कालीन कार्य-भारी (Incharge) मन्त्री द्वारा दिय गय केवल एक ही आश्वासन का उल्लेख करना पर्याप्त होगा और वह यह कि, केन्द्र सरकार की यह बिल्कुल इच्छा नही है कि वह *निगम के दिन प्रतिदिन के प्रशासन म हस्तक्षेप करे, यदि सरकार की यही इच्छा* होती तो हम दा० घा० नि० (D V C) को तत्काल ही सरकार का एक विभाग (Department) बना सकत थ। हम दा० घा० निगम का एक कार्यभारी मन्त्री *नियुक्त कर सकते थे परन्तु ऐसा नही किया गया।*"[1]

परन्तु सरकारी निगम सफलतापूर्वक कार्य करने का एक बडा कठिन रास्ता है क्योकि इसम नियन्त्रण तथा स्वायत्तता के बीच सन्तुलन कायम रखा जाता है और यह एक बडा कठिन तथा टेढ़ा कार्य है। ब्रिटेन, फ्रास तथा सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पश्चिमी देश भी स्वय अभी किसी भी प्रकार इस बात से निश्चिन्त नही हो सके हैं कि स्वायत्तता तथा नियन्त्रण के बीच उन्होंने जो सन्तुलन स्थापित किया है वह सर्वोत्तम सम्भव है। यह अभी भी एक विवादग्रस्त समस्या है। इस बात से प्रत्येक सहमत है कि सरकारी निगमो पर नियन्त्रण होना चाहिय जिससे कि वे *राज्य के अन्दर ही एक राज्य* (State) *न बन जाए* अथवा वे सरकार की एक शीर्षहीन चतुर्थ शाखा (A headless fourth branch of government) न बन जायें। निगम का मिलन वाली स्वायत्तता (Autonomy) उन विशेषाधिकारो' (Immunities) पर निभर होगी जो उसका निर्माण करन वाले विशेष कानून ने उसको प्रदान किये है, तथा उस देशविशेष म प्रचलित रूढियो व रिवाजो पर निभर *होगी। एक निगम के लिये उस सरकार से अपनी स्वायत्तता की रक्षा करना तो* बडा कठिन होगा जिसन कि निगम को कठिनाइयो म डालन व दबाने का ही *निश्चय कर लिया हो—जब तक कि वह सरकार ही इतनी कमजोर,* असगठित तथा शक्तिहीन न हो कि वह स्वय अपनी बनाई हुई सस्थाओं पर अपनी सत्ता खो बैठी हो।

1 Constituent Assembly of India, Legislative Debates pp 757 758

दामोदर घाटी निगम के निर्माण के समय सर्वोत्तम शब्दावली प्रयोग किये जाने के बावजूद, निगम द्वारा वास्तव में उपभोग की जाने वाली व्यावसायिक स्वतन्त्रता की मात्रा अत्यधिक सीमित रही है। वित्त मन्त्रालय (Ministry of Finance) द्वारा इसका सूक्ष्म निरीक्षण किये जाने के कारण, इसको अपने अधिकांश सौदों अथवा व्यवहारों के लिये सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती है, तथा सरकार के उस वित्तीय सलाहकार की आलोचनात्मक तथा बहुधा असहमति-पूर्ण दृष्टि के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है जोकि अपनी असहमति प्रकट किये गये उसके निर्णयों को पुष्टि अथवा अस्वीकृति के लिये राजनैतिक अधिकारियों के पास भेज सकता है। यहाँ तक कि उन प्रायोजनाओं (Projects) को भी जोकि निगम के अत्यन्त सुयोग्य इन्जीनियरों द्वारा तैयार की जाती हैं, कार्यान्वित करने से पूर्व तीनों भागीदार सरकारों के इन्जीनियरिंग विभागों के लोह पंजों में से गुजरना होता है। किसी भी कार्य को करने से पहले ली जाने वाली स्वीकृतियों एवं अनुमोदनों की बहुतायत, अनुमानों की अत्यधिकता, विस्तृत छिन्न-भिन्न अनुमानों तथा पृथक् प्रायोजनाओं के लिये वित्तीय औचित्यों (Justifications) में ऐसा प्रतीत होता है कि स्वायत्तता के कार्य को सीमित बना दिया है।"[1] परिणामस्वरूप "निगम का इतिहास अरचनात्मक प्रसंगों की एक शृंखला के सदृश प्रतीत होता है जिसमें कि निगम को अपनी अधिकांश शक्ति अपनी स्वायत्तता को कायम रखने में ही लगानी पड़ी और उसमें भी उसे कम ही सफलता मिली।"[2] सब बातों को छोड़, यदि किसी ऐसे उदाहरण की आवश्यकता हो कि एक स्वायत्तशासन प्राप्त निगम के साथ किस प्रकार व्यवहार नहीं किया जाना चाहिये तो यह दृष्टान्त ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करता है।"[3]

वास्तव में, केवल उन स्थितियों को छोड़कर जहाँ कि स्पष्ट रूप से उनकी आवश्यकता सिद्ध होती हो, सरकारी निगमों की स्थापना नहीं की जानी चाहिये। उनके कार्यों की यथासंभव ठीक-ठाक व्याख्या की जानी चाहिये और जिन मन्त्रियों (Ministers) के क्षेत्र में वे स्थित हों उनके साथ निगमों के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण विशेष रूप से किया जाना चाहिये। नियन्त्रण को न्यूनतम मूल केन्द्रों पर केन्द्रित कर दिया जाना चाहिये परन्तु सफल सरकारी निगमों द्वारा 'आधिपत्य स्थापन' (Empire building) के विरुद्ध सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्थायें भी की जानी चाहियें। सरकार को नियत समयों पर सरकारी निगमों के स्वरूप का विस्तृत सिंहावलोकन करते रहना चाहिये जिससे कि इनको विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था वाले देश की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के विषय में आश्वस्त हुआ जा सके, अन्यथा तो, ये संस्थाएं गतिशील समाज की आवश्यकताओं के लिये अनुपयुक्त तथा गतिशून्य व स्थिर बन जायेंगी।

---

1 N C B R Chaudhry, Problems of D V C. In B B Majumdar, *Problems of Public Administration in India* Patna 1953, p 111

2 A D Gorwala *op cit* p 33

3 A D Gorwala, *Ibid*, p 34

(३) संयुक्त पूंजी कम्पनी
(Joint Stock Company)

भारत ने वाणिज्यिक उद्यमों (Commercial enterprises) के प्रबन्ध के लिए भारतीय कम्पनी विधि (Indian Company Law) के अन्तर्गत पंजीकृत (Registered) संयुक्त पूंजी कम्पनियों का विस्तृत उपयोग किया है, जैसे कि सिन्द्री फर्टीलाइजर्स एण्ड केमिकल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हैवी इलैक्ट्रोनिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, भारत इलैक्ट्रोनिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान केबिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, नेशनल इन्स्ट्रूमैंट्स (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान इन्सैक्टीसाइड्स (प्राइवेट) लिमिटेड, नहान फाउन्ड्री (प्राइवेट) लिमिटेड, हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री (प्राइवेट) लिमिटेड आदि।

संयुक्त पूंजी कम्पनी की सम्पूर्ण पूंजी भारत सरकार द्वारा प्रदान की जाती है और यह एक या दो पदाधिकारियों (Officials) के नाम में रखी जाती है क्योंकि एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी की स्थापना के लिये कम से कम *दो हिस्सेदारों (Share-holders)* की आवश्यकता होती है। इन कम्पनियों के विस्तृत संघ स्मृति-पत्र (Memoranda of Association) तथा संघ विधान-पत्र (Articles of Association) होते हैं जिनमें संयुक्त पूंजी लिमिटेड कम्पनी के हिस्सों (Shares) के अन्तरण (Transfer) की तथा साधारण सभाओं (General meetings) की व्यवस्थाएँ और अन्य सभी आवश्यक बातें दी होती हैं। इन कम्पनियों के निर्देशक मण्डल (Board of Directors) सरकार द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं और ये मण्डल एक सामान्य प्रतिरूप के होते हैं। एक चेयरमैन (Chairman) होता है जोकि आमतौर पर किसी विशिष्ट उद्योग के कार्यभारी (Incharge) मन्त्रालय (Ministry) का सचिव (Secretary) होता है। इसमें स्थायी रूप से एक अधिकारी (Officer) होता है *जोकि वित्त मन्त्रालय से लिया जाता है तथा संयुक्त सचिव* (Joint secretary) की श्रेणी का होता है। एक या दो ऐसे अन्य मन्त्रालयों के भी पदाधिकारी होते हैं जोकि किसी विशिष्ट उद्यम की कार्य प्रणाली से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं। ये सभी निर्देशक (Directors) पदेन (Ex-officio) होते हैं, अत इनकी नियुक्तियों में से किसी के भी स्थानान्तरण (बदली) का स्वत मतलब होता है निर्देशक मण्डल में परिवर्तन। *इन सभी मण्डलों (Boards) में कुछ गैर-सरकारी* व्यक्तियों (Non-officials) का भी लघुमिश्रण होता है जिनमें एक या दो व्यवसायी (Businessmen) होते हैं और कभी-कभी एक श्रमिक नेता (Labour leader)। परन्तु निर्देशक मण्डल में सरकारी अधिकारियों का ही आधिपत्य रहता है। हमारे सरकारी उद्यमों का यह एक गम्भीर दोष है। भारत इलैक्ट्रोनिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड में, एक पदाधिकारी चेयरमैन है, आठ निर्देशक हैं जिनमें से छः सरकारी

अधिकारी हैं तथा दो गैर-सरकारी व्यक्ति है। सरकारी स्वामित्व वाली सभी कम्पनियो मे यही स्थिति पाई जाती है।"[1]

जब किसी ऐसे युद्ध मे सरकारो उद्यम की स्थापना के लिये कम्पनी का उपयोग किया जाता है जोकि स्थायी रूप से सरकार द्वारा नियन्त्रित होता है तो यह मसला विवाद-ग्रस्त हो जाता है। रगून सैमिनार (Rangoon seminar) मे, "परामर्श-दाताओ की सर्वसम्मत राय यही थी''' कि जब कोई उद्यम पूर्णतया सरकारी स्वामित्व के अन्तर्गत हो तो उसकी रचना सरकारी निगम के रूप मे अथवा एक सरकारी विभाग के रूप मे की जानी चाहिये।

पूर्णतया सरकारी स्वामित्व एव नियन्त्रण के एक अभिकरण (Agency) के रूप मे कम्पनी के प्रति इस विरोध के जो दो मुख्य कारण दिये गये वे निम्न प्रकार है —

(१) 'कम्पनी के रूप मे सगठित उद्यम, लोकतन्त्रीय देश मे, सरकार तथा ससद (Parliament) के प्रति सवैधानिक उत्तरदायित्व (Constitutional responsibilities) से बच जाता है जबकि एक राज्य द्वारा नियन्त्रित उद्यम (State-controlled enterprise) इन उत्तरदायित्वो को वहन करती है।

(२) कम्पनी के रूप (Form) के तथा विधि (Law) द्वारा नियन्त्रित वाणिज्यिक कम्पनियो के उपयोग की बात आमतौर पर एक कल्पनामात्र बनकर रह जाती है क्योकि वे सब अथवा अधिकाश कार्य, जोकि सामान्यता हिस्सेदारो (Shareholders) तथा प्रबन्धो के अधिकार मे रहते हैं, कम्पनी की स्थापना करने वाली सविधि (Statute) के द्वारा सरकार के लिए सुरक्षित कर दिये जाते है।"[2]

ए० डी० गोरवाला *(A D. Gorwala)* ने इन तर्कों से असहमति प्रकट की। उनका विचार है कि 'ठोस रूप मे वाणिज्यिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिये कम्पनी अपने लचीलेपन (Flexibility) के कारण सरकारी निगम से श्रेष्ठ है। उनकी राय मे, निगम (Corporation) का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिये "जबकि उद्यम किसी ऐसे कार्य को सम्पन्न कर रहा हो जोकि वस्तुत सरकार के कार्यों का ही एक विस्तार हो, जैसे कि सिचाई तथा जलविद्युत प्रायोजना अथवा प्रसारण (Broadcasting) या परिवहन सेवा।"[3]

भारतीय सरकारी स्वामित्व-प्राप्त कम्पनियो के सम्बन्ध मे लोचशीलता' का जो तर्क दिया जाता है वह सन्देह से खाली नही है। निर्देशक मण्डल की सूचियो मे

---

१ देखिये भारत मे सरकारी उद्यमो तथा अन्य सस्थाओ की वर्गीकृत सूची, लोक सभा सचिवालय, १६५८ पृष्ठ ११–१३।

2 United Nations Publication, *op cit* p 13

3 A D. Gorwala, *op cit* pp 18-19

जो सरकारी पदाधिकारियों की प्रधानता बनी रहती है वह ही कम्पनियों में लोच-शीलता के अस्तित्व के बारे में सन्देह उत्पन्न करती है। जैसा कि लोकसभा (Lok sabha) की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने कहा है कि "वास्तविकता यह है कि भारतीय कम्पनियाँ न्यूनाधिक रूप में सरकारी विभागों का ही विस्तारमात्र है'''और इनका संचालन इधर-उधर कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ लगभग उन्हीं के स्वरूप के अनुसार किया जाता है।"[1] सिन्द्री कारखाने के भूतपूर्व मुख्य इन्जीनियर मि० बन्सन गिल्स *(Benson Gyles)* ने भी इस बात की पुष्टि की। जिन्होंने शिकायत की कि 'प्रबन्ध निर्देशक (Managing Directors) तथा मन्त्रालय के बीच प्रचलित कार्य का आदान-प्रदान किया जाता है, और यह कि वित्त (Finance) ज्येष्ठता (Seniority) तथा पदोन्नति (Promotion) से सम्बन्धित अनेक सरकारी नियम आपसे आप कम्पनी में लागू हो जाते हैं।'[2]

कम्पनी के आकार की प्रबन्ध-व्यवस्था की स्थापना करने का एक व्यावहारिक कारण यह है कि निगम के मुकाबले एक कम्पनी की स्थापना करना सरल है। एक कम्पनी की स्थापना करने के लिये तो भारतीय कम्पनी विधि (Indian Company Law) के अन्तर्गत उसका पञ्जीकृत (Registered) मात्र कराना होता है परन्तु एक निगम के निर्माण के लिए संसद को एक विशेष विधि का निर्माण करना होता है। इस प्रकार, निगम के निर्माण के लिए संसदीय विधानीकरण (Parliamentary enactment) की सम्पूर्ण कठिन कार्यविधि (Procedure) पूरी करनी होती है। सरकार की क्रियाओं के विस्तार के इस युग में यह बड़ा कठिन है कि प्रत्येक प्रकार के उद्योग (Industry) के लिए निगम का निर्माण करने के हेतु अधिनियम (Act) के बनाने की प्रतीक्षा की जाए।

परन्तु इस लाभ का यह अर्थ नहीं है कि किसी भी कम्पनी को संसदीय नियन्त्रण से मुक्त कर दिया जाय। इटली में यही हुआ, जहाँ कि, प्रोफेसर रोसी *(Rosi)* के अनुसार, लोकहित के संरक्षण के लिए आवश्यक सभी प्रकार के प्रभावशाली नियन्त्रण को खोकर कार्य की स्वाधीनता कायम की गई।[3]

इस प्रकार, सरकार को यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि एक सरकारी कम्पनी ठीक एक 'सामान्य कम्पनी' (Ordinary company) के सदृश नहीं होनी। सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्यवस्थापिका सभा (Legislature) तथा जनता को कम्पनी के कार्यों के बारे में, वार्षिक प्रतिवेदनों (Reports) के द्वारा, जानकारी मिलती रहनी चाहिये, इसके हिसाब किताब की

1 Estimates Committee Ninth Report 1953 54, Administratve, Financial and other Reforms, Lok Sabha, Secretariat New Delhi, p 16

2 T. Benson Gyles Organization and Management of Sindri Fertilizers Ltd , prepared for the Government of India, Technical Assistance Programme U N New York, 1955 (Mimeographed) pp 6 7

3 Einandi Bye and Rossi Nationalization in France and Italy, p 244.

जांच का कार्य सुयोग्य एव स्वतन्त्र व्यक्तियों के सुपुर्द किया जाना चाहिये, और हिस्सेदार (Shareholder) की क्षमता के रूप मे, मन्त्री (Minister) के उत्तरदायित्वो की सुस्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये। इस प्रकार, अनुत्तरदायी तथा शक्ति की भूखी नौकरशाही (Bureacracy) की कार्यवाहियो को सार्वजनिक प्रचार तथा न्यायोचित आलोचना से बचाने वाले एक आवरण (पर्दे) के रूप मे कम्पनी का उपयोग नही किया जाना चाहिए। सरकारी स्वामित्व प्राप्त कम्पनियो पर लागू किये जाने वाले ससदीय नियन्त्रण की उचित रूप से व्याख्या होनी चाहिए और इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कम्पनियाँ उस नियन्त्रण से बचें नही। जहां तक एक सरकारी निगम अथवा कम्पनी के तुलनात्मक महत्व का सम्बन्ध है "इस सम्बन्ध मे थोडा ही प्रमाण उपलब्ध है कि कम्पनी सरकारी निगम के मुकाबले स्पष्ट रूप से अच्छी है या स्पष्ट रूप से बुरी। दोनो के ही कुछ सैद्धान्तिक लाभ हैं जो कि व्यवहार मे प्राप्त किये भी जा सकते हैं अथवा नही भी, और दोनो ही कुछ दोषो व रोगो से भी ग्रसित है जो कि कम विकसित देशो म प्राय रोग-विषयक अनुपातो को ग्रहण कर लेत है। हमारे अब तक के अनुभव के अनुसार तो इन दोनो ही उपायो मे किसी को भी दूसरे से बढाकर कहना कठिनाई से ही न्यायपूर्ण कहा जा सकता है।"[1] सरकारी उद्यम की प्रबन्ध व्यवस्था के इन दोनो ही उपायो पर हम प्रयोग (Experiments) कर रहे हैं और यदि भविष्य मे अनुभव से यह सिद्ध हो जाये कि इनमे से कोई भी एक उपाय दूसरे से श्रेष्ठतर है तो उस निर्णय को स्वीकार करने के लिए देश को प्रस्तुत रहना चाहिए।

(४) मिश्रित सयुक्त पूजी कम्पनी (Mixed Joint Stock Company)

इससे हमारा तात्पर्य उन कम्पनियो से है जिनमे कि सरकारी तथा गैरसरकारी स्वामित्व एव नियन्त्रण का मिश्रण रहता है। कुछ पश्चिमी देशो मे मिश्रित पूजी वाली कम्पनियाँ काफी हैं। फ्रास मे, व्यापक क्रियाओं मे लगी हुई चालीस से अधिक कम्पनियो मे राज्य हिस्सा लेता है जैसे कि धातुए खोदना, फिल्म उत्पादन, समाचार अभिकरण (News agency), पैट्रोल का उत्पादन तथा वितरण, व्यापारिक समुद्रीय परिवहन औद्योगिक अनुसधान (Industrial research), नदी परिवहन और प्रसारण (Broadcasting)।

भारत मे 'मिश्रित कम्पनियो' के अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमे कि पूजी का अधिकाश भाग अथवा इतना भाग राज्य का होना है जिससे कि उन पर नियत्रण रखा जा सके और शेष पूजी निजी निवेशकर्त्ताओ (Investors) की होती है। इस प्रकार के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं अशोक होटल तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड। विशाखापट्टम बन्दरगाह पर स्थित हिन्दुस्तान शिपयार्ड मे केन्द्र सरकार तथा

1 A. H Hanson, *op cit*, p 356

सचिवा स्टीम नेवीगेशन कम्पनी लिमिटेड साझीदार (Partners) हैं। कम्पनी की अधिकृत पूंजी (Authorised Capital) १० करोड़ रुपये है। कम्पनी की कुल जारी पूंजी (Issued Capital) ४५२.७५ लाख ₹० बैठती है जिसमें कि भारत सरकार के ३४८६४ लाख रुपये के शेयर हैं। १०४.११ लाख रुपये के मूल्य के शेष शेयर सिन्धिया के हैं।

मिश्रित उद्यमों में सरकार उद्यम के नियन्त्रण तथा निरीक्षण के अधिकार सुरक्षित रखती है। ऐसी कम्पनियों पर नियन्त्रण रखने के लिए सरकार बहुधा निम्न उपायों का प्रयोग करती है। सरकार या तो बोर्ड के चेयरमैन की अथवा अधिकांश सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार स्वयं ले सकती है। हिन्दुस्तान शिपयार्ड (Hindustan shipyard) के मामले में, राष्ट्रपति को चेयरमैन, प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Director) तथा छ अन्य निर्देशकों की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त है। अन्य चार निर्देशक अर्थात् कुल संख्या के एक तिहाई सिन्धिया द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। सरकार शेयरों के हस्तान्तरण पर तथा कम्पनी के लाभों के वितरण पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। सरकार लेखा-परीक्षकों (Auditors) की नियुक्ति का अधिकार भी स्वयं ले सकती है। हिन्दुस्तान शिपयार्ड के मामले में उधार लेने, डिबेंचर (Debentures) जारी करने व कम्पनी के समापन (Winding up) आदि पर सरकार का ही नियन्त्रण रहता है।

"मिश्रित व्यवस्था के समर्थकों का यह कहना है कि यह व्यवस्था राज्य को इस योग्य बनाती है कि वह उन गैर-सरकारी व्यवसायियों के अनुभव का लाभ उठा सके जो कि मिश्रित निगमों के निर्देशक मण्डलों के सदस्य होते हैं, इससे कार्यों के प्रबन्ध में लचीलापन पाया जाता है जिसमें संचालन में सफलता की सम्भावना रहती है, और यह कि आवश्यक पूंजीगत निधियों की पूर्ति के लिए यह आंशिक रूप से गैर-सरकारी स्रोतों से धन प्राप्त करती है।"[1]

यह सत्य है कि, सम्पूर्ण रूप में, सिविल सेवकों के मुकाबले व्यवसायी (Businessmen) अधिक व्यावसायिक ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं—यद्यपि यह भी ठीक है कि राज्य के साथ किये जाने वाले अपने व्यवहारों में उन्होंने सदा ही सार्वजनिक उत्तरदायित्व की एक गम्भीर कमी का प्रदर्शन किया है,—और मिश्रित निगम निजी व्यावसायिक हितों तथा उन सरकारी प्रतिनिधियों को, जिनकी नियन्त्रणकारी आवाज होती है, एक साथ मिलाता है जिससे कि उद्योगों का प्रबन्ध व्यावसायिक निपुणता के साथ किया जा सके। इसके अतिरिक्त, एक मिश्रित कम्पनी अपनी पूंजीगत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार की निधियों (Funds) पर भरोसा कर सकती है।

इस सम्बन्ध में एक बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। निजी व्यवसाय का उद्देश्य होता है अधिकतम लाभ प्राप्त करना, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि

1 Mario Einaudi, Maurice Bye, Erneiso Rossi, Nationalization in France and Italy, pp 243-44

सरकारी उद्यम उद्देश्य भी वही हो। यह सम्भव हो सकता है कि एक मिश्रित उद्यम मे बजाए सबसे अच्छी के, दोनो ही पक्षो की सबसे खराब बातें आजायें, क्योकि लोक सेवा (Public service) तथा अधिकतम लाभ कमाने की प्रेरणाओ का परस्पर कोई मेल नही बैठता।

(५) सचालन ठेका (The Operating Contract)

सरकारी उद्यम को चलाने की अन्तिम विधि सचालन ठेके की है। इस सम्बन्ध मे रगून सेमिनार के लेख-पत्र मे कहा गया था कि "सरकारी उद्यमो के प्रशासन की एक अपेक्षाकृत नई विधि है सचालन ठेका। सरकारी उद्यम के प्रबन्ध के लिए सरकार किसी स्थापित प्राइवेट कम्पनी के साथ ठेका करती है और ठेकेदार (Contractor) द्वारा व्यय की जाने वाली समस्त लागत की अदायगी का वायदा करती है। ठेकेदार जो उसकी सेवाओ के लिए एक 'निश्चित शुल्क (Fixed fee) के रूप मे मुआवजा दिया जाता है। इस शुल्क का निर्धारण ठेके की शर्तों के अन्तर्गत बातचीत द्वारा किया जाता है। यह ठेका प्रबन्ध-ठेका (Management contract) कहलाता है और इसके अन्तर्गत प्रबन्ध करने वाली कम्पनी को उसके मुकाबले कम स्वाधीनता प्राप्त होती है जितनी उसे निजी अथवा गैर सरकारी रूप मे उद्यम का सचालन करने की स्थिति मे प्राप्त होती। ठेकेदार कम्पनी को इस बात का पूर्ण अधिकार दिया जाता है कि वह कर्मचारियो की नियुक्ति कर सके या उन्हे हटा सके, क्षतिपूर्ति (Compensation) की दरो का निर्धारण कर सके, सामग्री तथा साज-सामान खरीद सके, कार्य-सचालन की नीतियाँ निर्धारित कर सके आदि-आदि। सरकारी अभिकरणो पर लागू होने वाली सविधियाँ (Statutes) ठेकेदार कम्पनी पर लागू नही होती, उसके द्वारा रखे जाने वाले कर्मचारियो को सरकारी कर्मचारी नही माना जाता। इस प्रकार से, ठेकेदार उद्यम का सचालन बहुत हद तक उसी प्रकार करने मे समर्थ हो जाता है जिस प्रकार कि वह तब करता जबकि यह कम्पनी उसकी निजी कम्पनी की एक सहायक होती।"[1]

यदि अन्य बातो से ऊपर 'लोचशीलता' (Flexibility) ही वाछनीय है तो उसको प्राप्त करने का तरीका यही है। इससे प्रयत्नो मे, नियोजन मे तथा कर्मचारियो की नियुक्ति मे उससे भी अधिक मात्रा मे लोचशीलता आ जाती है। जितनी कि आमतौर पर एक सरकारी निगम मे पाई जाती है। परन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सरकार इस बात से कैसे आश्वस्त हो सकती है कि ठेकेदार जिसे कि 'लागत जमा' (Cost plus) के आधार पर अदायगी की जाती है यथेष्ट कुशलता तथा मितव्ययता से कार्य सम्पन्न कर रहा है? इस बात से निश्चिन्त होने के लिये, कि उद्यम को दिये गये सामान्य निर्देश सरकारी नीति की प्रचलित

1 United Nations Publications, *op cit*, p 15

विचारधाराओं के अनुरूप है, सरकार किस प्रकार उद्यम में हस्तक्षेप कर सकती है? इन प्रश्नों का कोई भी ऐसा उत्तर नहीं मिला है जिससे कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके।

ठेके के इस रूप से कितनी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं यह हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड के प्रारम्भिक इतिहास से प्रकट है। इनम से प्रथम उद्यम की स्थापना के लिये भारत सरकार ने मैसर्स ओरलिकन (Messrs Oerlikon) नामक स्वीडन की फर्म से एक करार (Agreement) किया अनेक कारणोंवश काम में देरियां हुईं और उद्यम म कुशलता तथा मितव्ययता की कमी के कारण कोलम्बो योजना के मशीन यन्त्र विशेषज्ञ को इसकी गम्भीर आलोचना करनी पड़ी। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स पर प्रकाशित अपने प्रतिवेदन (Report) म लोकसभा की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने यह कहा कि इस बात का निश्चय करने म ही कई माह की देर कर दी गई कि किस प्रकार के खराद (Lathes) का निर्माण होना चाहिये और "मैसर्स ओरलिकन द्वारा की जाने वाली यह एक ऐसी गम्भीर भूल थी जिसको समाप्त किया जा सकता था। समिति ने प्रारम्भिक ठेके की ही आलोचना की और कहा कि ठेका स्वीडन की फर्म के अधिक अनुकूल था क्योंकि फर्म की निर्दिष्ट कमियों के लिये आंशिक रूप से सरकार को भी उत्तरदायी बना दिया गया था।[1]

हिन्दुस्तान शिपयार्ड के मामले म, जिसने कि अत्यन्त धीमी गति से कुछ बहुल महंग जहाजों का निर्माण किया, समिति ने यह मत व्यक्त किया कि "French Societe Anonyme des Ateliers et Chantiers de la Loire नामक ठेकेदार फर्म ने इतने गलत रूप म काम किया कि उससे हानियों की वसूलयाबी करने के लिये सरकार को कार्यवाहियाँ करनी पड़ी।"[2]

एक कम विकसित देश को अपने विकास कार्यक्रमों के लिये विदेशी फर्मों के साथ ठेकेदार के करार (Agreements) तो करने ही चाहियें। परन्तु हिन्दुस्तान मशीन टूल्स तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड के इतिहास की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि ठेकेदार फर्म को उद्यम की केवल प्रबन्ध व्यवस्था ही नहीं करनी चाहिये अपितु उसमे ठोस मात्रा म पूंजी भी लगानी चाहिये। यदि उद्यम मे आंशिक रूप से ठेकेदार फर्म की पूंजी भी लगी है तो सचालन ठेके' की व्यवस्था सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है। सेमिनार मे ठीक ही कहा गया कि "सचालन ठेके की इस व्यवस्था के—जिसको कि सामान्यत एक अस्थायी हल के रूप मे निश्चित उद्देश्य के साथ चुना जाता है—लाभो, हानियों तथा उचित उपयोगों के बारे म और अधिक अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है।"[3]

---

1 14th Estimates Committee Report 1954-55, pp 6-7

2 *Ibid* 34

3 United Nations Publication, *op cit*, p 16

वास्तव में, संगठन की उन सभी किस्मों के बारे में 'अधिक अध्ययन' किया जाना चाहिए जिनकी इस अध्ययन में विवेचना की गई है। जैसा कि द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में कहा जा चुका है कि "संगठन के विभिन्न रूपों के सापेक्षिक (Relative) लाभों के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट मत प्रकट किये जाने से पूर्व अधिक अनुभव की आवश्यकता है।"[1]

यह बात अवश्य दृष्टिगत रखनी चाहिए कि सभी देशों और सभी परिस्थितियों के लिये सरकारी उद्यमों के प्रशासन के लिए संगठन का कोई भी एक स्वरूप सर्वोत्तम नहीं है। किसी भी विशिष्ट उद्यम के लिए संगठन के स्वरूप का चुनाव करते समय सभी तत्वों पर विचार किये जाने की आवश्यकता है, जैसे कि कार्य की प्रकृति, संचालन तथा वित्तीय आवश्यकतायें, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाला दबाव, क्रियाओं की किस्में, जनता का राजनैतिक दृष्टिकोण, और सुयोग्य कर्मचारी वर्ग की उपलब्धता। केवल सैद्धान्तिक अथवा अव्यावहारिक रूप में हम संगठन के किसी भी एक स्वरूप पर ही जमे नहीं रह सकते। अभी तो हम एक प्रयोगावस्था (Experimental stage) में हैं अतः हम अधिक कठोर अथवा दृढ़ नहीं बन सकते। इसके अतिरिक्त, विदेशों का अनुभव हमारे लिये अधिक सहायक नहीं हो सकता। संगठन का स्वरूप कोई ऐसी चीज नहीं है जिसका आयात किया जा सके। संगठन के किसी भी विशेष रूप (Form) की सफलता उस देश में पाई जाने वाली दशाओं पर निर्भर होगी। हमें इस मामले में अन्य देशों द्वारा प्राप्त किये गये अनुभव एवं ज्ञान की नकल करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। हम ऐसी किसी गलत धारणा को भी अपने मन से निकाल देना चाहिये जोकि विभिन्न व्यक्तियों के मन में सामान्यतः उत्पन्न हो जाया करती है। किसी भी उद्यम की सफलता अनिवार्य रूप से प्रबन्ध-व्यवस्था की किस्म पर ही निर्भर नहीं होती। यह हो सकता है कि एक सरकारी निगम अथवा कम्पनी उद्यम में अकुशलता, रिश्वतखोरी और भाई भतीजावाद (Nepotism) उत्पन्न कर दे। यदि किसी विशिष्ट उद्यम में कुछ गलत काम हुआ है तो निगम अथवा कम्पनी की किस्म की प्रबन्ध-व्यवस्था के बारे में निराश न होना चाहिये। उन कारणों की खोज करने का प्रयत्न करना चाहिये जो अकुशलता के लिये उत्तरदायी हों। एक ही तत्व पर आधारित व्याख्या से तो गलत निष्कर्ष निकलेंगे और भ्रामक निर्णय किये जायेंगे।

सरकारी उद्यम पर मन्त्रीय नियन्त्रण
(Ministerial Control over State Enterprise)

अब हम सरकारी निगमों के सम्बन्ध में मन्त्रियों (Ministers) की शक्तियों (Powers) की विवेचना करेंगे।

मन्त्रियों के हाथ में सरकारी उद्यमों पर नियन्त्रण की कुछ शक्तियाँ सौंप देने की आवश्यकता सभी जगह स्पष्ट रूप से अनुभव की गई है। केवल मन्त्रीय

1 Second Five Year Plan, p 138.

निर्देशो (Ministerial directives) के द्वारा ही उद्यमो को प्रचलित सरकारी नीति की आवश्यकताओ के अनुरूप बनाया जा सकता है और राष्ट्रीय योजना (National plan) के साथ उनका ताल-मेल बैठाया जा सकता है। यदि सरकारी उद्यमो पर मन्त्रियो द्वारा प्रभावशाली नियन्त्रण नही रखा जायेगा तो इनकी स्थापना के सभी सम्भावित लाभ प्राप्त नही हो सकेंगे, परिणामस्वरूप देश की अर्थ-व्यवस्था (Economy) के बारे मे भ्रम उत्पन्न होगा जिसके कारण कम विकसित तथा आर्थिक दृष्टि से पिछडे देश मे सामाजिक अराजकता (Anarchy) उत्पन्न हो सकती है। परन्तु निगमो की स्वायत्तता (Autonomy) की समुचित सुरक्षा के लिये यह आवश्यक है कि मन्त्रीय नियन्त्रण यथा सम्भव सीमित मात्रा मे लागू किया जाये। इस सम्बन्ध मे मूलभूत सिद्धान्त यह है कि कुछ उत्तरदायित्व अथवा नीति-निर्देशन का कार्य स्वय सगठन पर ही छोड दिया जाए। "निगम रूप म, य उद्यम तभी अधिक सफलता के साथ कार्य करते हैं जबकि मन्त्रीय नियन्त्रण सामान्य नीति (General policy) के मामलो तक ही सीमित रहता है।"[1]

निगमो द्वारा प्रबन्ध किये जाने वाले उद्यमो का मन्त्रियो के साथ जो सम्बन्ध होता है वह विभागीय प्रबन्ध वाले (Departmentally managed) सरकारी उद्यमो के सम्बन्ध से भिन्न होता है। निगमो को अपने आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप के विरुद्ध एक निश्चित मात्रा म स्वायत्तता प्राप्त होती है जबकि विभागो को ऐसी स्वायत्तता नही प्राप्त होती। विभाग (Department) एक अग के रूप मे पूर्णतया सरकार स साथ जुडा रहता है और वह कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त होकर किसी भी प्रकार की स्वायत्तता का कानूनी अधिकार के रूप मे दावा नही कर सकता। मन्त्री विभागीय प्रबन्ध वाले सरकारी उद्यम के लिये पूर्णतया उत्तरदायी होता है अत वह उन पर दिन प्रति-दिन का नियन्त्रण भी लगा सकता है। ऐसे उद्यमो के प्रशासन के सम्बन्ध मे मन्त्री से कोई भी प्रश्न पूछा जा सकता है, उदाहरणार्थ, रेलवे मन्त्री से रेलो के देर से चलने अथवा उनमे अत्यधिक भीड-भाड आदि के बारे मे प्रश्न पूछे जा सकते हैं। चूंकि मन्त्री को अपने विभाग पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है अत अपने विभाग से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य तथा किसी भी बात के लिये वह जवाबदेह होता है। परन्तु सरकारी निगमो की स्थिति मे, कार्यभारी मन्त्री (Miniser-in charge) को केवल सीमित अधिकार ही प्राप्त होते हैं और वह केवल उन्ही अधिकारो के सम्बन्ध म व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होता है।

अब हम सरकारी निगमो पर मन्त्रीय नियन्त्रण की मात्रा पर विचार करेंगे, चाहे व निगम विशिष्ट सविधियो (Special Statutes) द्वारा बनाये गये हो अथवा भारतीय कम्पनी विधि (India Company Law) के अन्तर्गत उनका निर्माण किया गया हो। सरकारी निगम पर मन्त्रीय नियन्त्रण की स्थापना निम्नलिखित

1 United Nations Publication, *op cit* p 24

उपायो मे से किसी एक अथवा सम्मिलित रूप से कई उपायो द्वारा की जा सकती है (१) किसी उद्यम के शासन मण्डल (Governing board) और व्यवस्थापको (Managers) की नियुक्ति करके; (२) सामान्य नीति सम्बन्धी निर्देश जारी करके, (३) विशिष्ट निर्देश (Directions) जारी करके, (४) कुछ विशेष श्रेणियो के कार्यों तथा नीतियो का अनुमोदन करके अथवा उनको रद्द करके, (५) अत्यावश्यक परिस्थितियो मे, शासन-मण्डल के एक सदस्य के रूप मे प्रबन्ध व्यवस्था मे भाग लेकर, (६) निगम द्वारा सूचनायें तथा प्रतिवेदन (Reports) प्राप्त करने का अधिकार लेकर। अब हम इन अधिकारो पर एक-एक करके विचार करते है।

सर्वप्रथम, यह कि कार्यभारी मन्त्री को निगमो के शासन-मण्डल के सदस्यो की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त होता है। सन् १९४८ के दामोदर घाटी निगम अधिनियम (D V. C. Act) की धारा ४ मे कहा गया है कि "निगम के चेयरमैन तथा दो अन्य सदस्यो की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जायेगी ......।" वायु निगम अधिनियम (Air Corporation Act) १९५३ की धारा ४ मे यह व्यवस्था है कि "प्रत्येक निगम मे केन्द्र सरकार (Central Government) द्वारा नियुक्त सदस्य होगे जिनकी सख्या पाच से कम और नौ से अधिक नही होगी तथा इन सदस्यो मे से एक को केन्द्र सरकार निगम का चेयरमैन नियुक्त करेगी।" निगमो का निर्माण करने वाले सभी अधिनियमो (Acts) तथा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियो के सघ विधान-पत्रो (Articles of Association) मे ऐसी धारायें पाई जाती है। राष्ट्रीय कोयला विकास निगम लिमिटेड (National Coal Development Corporation Ltd) के ७१ (१) सघ विधान-पत्र मे यह व्यवस्था दी गई है कि "निर्देशक (Directors) राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जायेंगे......।" हिन्दुस्तान शिपयार्ड मे यह व्यवस्था है कि "राष्ट्रपति को चेयरमैन, प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Director) तथा छ अन्य निर्देशको की नियुक्ति करने का अधिकार है।" अन्य चार निर्देशक अर्थात् कुल सख्या के एक तिहाई सिन्धिया कम्पनी द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं जो कि इस उद्यम म सरकार की साझीदार (Partner) हैं।

सरकार को मण्डल (Board) के सदस्यों (Members) की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त होता है किन्तु उनको कोई निश्चित योग्यतायें (Qualifications) नही दी हुई होती, हाँ सामान्यत कुछ अयोग्यताओ (Disqualifications) का उल्लेख अवश्य किया होता है, उदाहरण के लिये, सन् १९४८ के दा० घा० नि० अधिनियम (D. V. C Act) *की धारा ४ मे यह व्यवस्था है कि "निम्न दशाओ मे* किसी भी व्यक्ति को निगम का सदस्य नियुक्त करने अथवा सदस्यता जारी रखने के अयोग्य माना जायेगा—(क) यदि वह केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधान मण्डल का सदस्य हो अथवा (ख) यदि वह निगम के लिए किये जा रहे किसी भी ठेके अथवा कार्य मे, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, अपना निजी स्वार्थ रखता हो। वह किसी भी

कम्पनी का हिस्सेदार (Shareholder) रह सकता है, मगर इस स्थिति में उसे अपने उन शेयरों की प्रकृति तथा मात्रा का पूर्ण विवरण सरकार को देना होगा। वायु निगम अधिनियम की धारा ४ (२) में यह व्यवस्था है कि ऐसे किसी भी आर्थिक हित अथवा अन्य किसी प्रकार के हित (Interest) को सदस्यता के लिये अयोग्य माना जायेगा जो कि सदस्य के रूप में किये जाने वाले उसके कार्यों को पक्षपातपूर्ण रीति से प्रभावित करे।

नियुक्ति का अधिकार (Power of appointment) मन्त्रियों के हाथों में दिया गया एक बड़ा महत्वपूर्ण अधिकार होता है परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इन उच्च पदों पर नियुक्तियाँ करने में उन्हें खुली छूट प्राप्त होती है क्योंकि नियुक्त होने वाले प्रार्थियों के लिये कोई निश्चित योग्यतायें निर्धारित नहीं होतीं। यह हो सकता है कि इस अभाव के पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया जाये कि विधान मण्डल द्वारा बनाये गये अधिनियम में सदस्यों की योग्यताओं का उल्लेख करके सरकार के हाथ बाँध देना अनावश्यक और यहाँ तक कि, अवाछनीय भी है। यह काम मंत्री पर ही छोड़ देना चाहिये कि वह अच्छे-अच्छे व्यक्तियों की तलाश करके उनकी नियुक्तियाँ कर दे जिससे कि इन पदों की नियुक्तियाँ वह केवल पिछले अनुभव एवं ज्ञान के के आधार पर ही नहीं, अपितु भावी सम्भावनाओं को दृष्टिगत रख कर भी कर सकें।

परन्तु मन्त्रियों को दी जाने वाली इस 'खुली छूट' में निहित खतरों की भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। यह भय प्रकट करना उचित ही है कि निश्चित योग्यताओं के अभाव में, यह सम्भव है कि नियुक्तियाँ अन्य बातों के आधार पर, जैसे कि राजनैतिक संरक्षण (Political patronage) के आधार पर, की जायें। संरक्षण की बुराई, जिससे अब संसार के लगभग सभी सभ्य देश मुक्त हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि इस बड़े पैमाने के राष्ट्रीयकरण (Nationalization) से भारत में प्रवेश कर गई है। अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियों का उपहार मन्त्रियों के अपने अधिकार में होता है और नियुक्तार्थियों (Appointees) के चुनाव के विषय में वे किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं होते। इस बारे में संसद (Parliament) में वे जो कुछ कहते हैं वह यही कि उन्होंने ऐसे सर्वोत्तम सम्भव व्यक्ति को नियुक्त किया है जिसे कि वे प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त, प्रजातन्त्रीय सरकारें चूँकि उन मतों (Votes) की संख्या पर आधारित होती हैं जिन्हें कि वे निर्वाचनों (Elections) में प्राप्त कर सकती हैं अतः वे बहुधा अपने तात्कालिक अनुयायियों अथवा मतदाताओं (Voters) को पुरस्कृत करने के कार्य की ओर ध्यान देना अपना दायित्व समझती हैं, और इसमें खतरा यह है कि उनकी माँगों को अधिक से अधिक सन्तुष्ट करने की इच्छा में यह सम्भव हो सकता है कि उत्तरदायित्वपूर्ण ऊँचे पदों पर लोगों की नियुक्तियाँ करते समय उनकी योग्यताओं एवं अनुभव पर इतना ध्यान न दिया जाये जितना कि उनकी भूतकाल की राजनैतिक सेवाओं पर। इस प्रकार निगमों के कार्यालय "राजनैतिक पक्षपात" के

स्थान बन सकते है। पदाधिकारियो के उचित चुनाव के महत्व को अधिक बढा-चढा कर नही कहा जा सकता और कुछ ऐसी उपयुक्त रोके लगानी ही पडती है कि जिनसे नियुक्त करने वाले प्राधिकारी (Appointing authority) नियुक्ति के इस अधिकार का दुरुपयोग न कर सकें। भारत मे, जहाँ कि जातीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक उन्माद की बुराइयाँ पहले से ही वर्तमान है, यह सम्भव हो सकता है कि नियुक्ति करने वाले प्राधिकारियो मे य सामाजिक बुराइयां काफी मात्रा मे पाई जायें। पक्षपात के इस खतरे के विरुद्ध सुरक्षा की व्यवस्था तो करनी ही होती है।

मन्त्रियो को यह भी अधिकार प्राप्त होता है कि वे शासन-मण्डल (Governing board) के निर्देशको अथवा सदस्यो को, विभिन्न अधिनियमों (Acts) म उल्लिखित कारणो के आधार पर, उनके पदो से हटा सकें जैसे कि काम करने से, इन्कार करने के कारण, कार्यवाहन की असमर्थता के कारण, अपने पद का दुरुपयोग करने के कारण, किसी सामान्य अनुपयुक्तता[1] (Unsuitability) के कारण अथवा अन्य किसी ऐसे कारण से जो कि पर्याप्त " प्रतीत हो।[2] यह आशा की जाती है कि पदच्युति (Dismissal) के इस अधिकार का प्रयोग पूर्ण सावधानी के साथ किया जायेगा। यदि मनमानी पदच्युतियाँ की गईं तो उससे मण्डलो की कार्यकुशलता कम हो जायेगी। किसी भी कर्मचारी की कार्यकुशलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे समुचित मात्रा मे नौकरी की सुरक्षा प्रदान की जाये। इगलैंड मे मन्त्रियो को मण्डलो के सदस्यो के सम्बन्ध मे पदच्युति का यह अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार का प्रयोग यार्कशायर बिजली बोर्ड के चेयरमैन के मामल मे किया गया था जिस कि भवनो (Buildings) के लायसेंस लेने के नियमो को भग करने के कारण जेल भेज दिया गया था। यह ठीक है कि जिस प्रकार नियुक्तियां राजनैतिक कारणो के आधार पर नही की जानी चाहियें, उसी प्रकार पदच्युतियाँ भी राजनैतिक बातो के आधार पर नही की जानी चाहिये।

दूसरे, मन्त्रियो को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे सामान्य नीति (General policy) के मामलो पर निगमो को निर्देश जारी कर सकें। दा घा नि (D V C) के सम्बन्ध में यह प्रावधान है कि कार्यों के सम्पादन मे नीति के प्रश्नो पर निगम का मार्गदर्शन ऐसे अनुदेशो (Instructions) द्वारा किया जाना चाहिये जो कि उसे केन्द्र सरकार से प्राप्त हो।" यदि किसी प्रश्न के सम्बन्ध मे यह विवाद उत्पन्न हो जाये कि यह प्रश्न नीति का है या नही, तो उसमे केन्द्र सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।[3] इसी प्रकार "नीति के प्रश्नो पर औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) का मार्ग-दर्शन ऐसे अनुदेशो द्वारा किया जाना

१. दामोदर घाटी निगम अधिनियम, धारा ५१
२ पुनर्वास वित्त प्रशासन अधिनियम, धारा ८
३ दा घा. नि अधिनियम, धारा ४८

चाहिये जो कि उसे केन्द्र सरकार द्वारा प्राप्त हो।"[1] दोनों वायु निगमों (Air Corporations) के सम्बन्ध में "केन्द्र सरकार दोनों में से किसी भी निगम को, उनके कार्यों के सम्पादन के विषय में, निर्देश (Directions) दे सकती है और निगमों को उन निर्देशों का पालन करना ही होगा।"[2] मन्त्रियों को यह अधिकार होता है कि वे निगमों को निर्देश जारी कर सकें और निगम उन अनुदेशों का पालन करने को बाध्य होते हैं। यदि कोई नीति के प्रश्नों पर मन्त्रियों द्वारा दिये गये अनुदेशों का पालन करने में असफल रहते हैं तो मन्त्री को यह अधिकार होता है कि वह बोर्ड को कार्यच्युत अथवा मुअत्तिल (Supersede) कर दे, सदस्यों तथा चेयरमैन को हटा दे और एक नये बोर्ड की नियुक्ति कर दे।

मन्त्रियों को अनेक प्रकार की अनावश्यक विस्तृत बातों के सम्बन्ध में निर्देश नहीं जारी करने चाहियें, अन्यथा तो निगमों की स्वायत्तता (Autonomy) ही खतरे में पड़ जायगी। मन्त्रियों को अपने निर्देशों द्वारा निगमों के दिन प्रति-दिन के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वस्थ परम्पराओं व प्रथाओं का विकास करना होगा। अच्छा तो यह होगा कि अनुदेश जारी करने से पहिले मन्त्री बोर्ड के सदस्यों को अपने विश्वास में ले लें और उनसे परामर्श करने के पश्चात् ही निर्देश जारी करें। सन् १९५४ में अधिनियम की धारा ६ (३) के *अन्तर्गत औद्योगिक वित्त निगम को एक निर्देश जारी किया गया था "जिसमें इस बात का पूर्ण विवरण सहित प्रतिवेदन (Report) सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने को कहा गया था कि उसके द्वारा पृथक्-पृथक् व्यक्तियों को ५० लाख रु० से अधिक के* ऋण कब-कब दिये गए। सरकार इस प्रकार के और भी निर्देश निगम को जारी करने का विचार कर रही थी कि (१) निगम द्वारा किसी भी ऐसे पक्ष (Party) को ऋण की स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए जहाँ कि सम्बन्धित पक्ष पहले ही तीन अवसरों पर उससे ऋण प्राप्त कर चुका हो अथवा जहाँ किसी पक्ष को दिये गए ऋण की कुल मात्रा १ करोड़ रु० से अधिक हो चुकी हो किन्तु यदि इसके लिए सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त कर ली गई हो तो बात दूसरी है, (२) निगम सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना ऐसी किसी भी संस्था को कुल एक करोड़ रु० से अधिक का ऋण नहीं देगा जिसका स्वामित्व, प्रबन्ध अथवा नियन्त्रण उद्योगपतियों (Industrialists) के एक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित वर्ग (Group) के अधीन हो।"[3] औद्योगिक वित्त निगम को जारी किया गया निर्देश शक्ति का दुरुपयोग नहीं था। *यह देखना राष्ट्र के हित में ही था कि ऋणों का समुचित रूप से वितरण किया जा रहा है या नहीं, और कुछ थोड़े से उद्योगपतियों के एक वर्ग द्वारा उन पर कहीं*

1 औ वि नि अधिनियम, धारा ६

2 वायुनिगम अधिनियम, उपधारा ३४–१

3 Parliamentary Debates, House of People, Answer to Question on 1–9–56

एकाधिकार तो नहीं कर लिया गया है। इसके अतिरिक्त, यह निर्देश निगम के दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं था, अपितु एक सामान्य नीति सम्बन्धी अनुदेश था। इस निर्देश को जारी करने की आवश्यकता इसलिए थी क्योंकि औ० वि० नि० (I F C) की ऋण-नीति के विरोध में संसद (Parliament) में तथा अखबारों में सामान्य आलोचना की जा रही थी। यह कहा गया था कि ऋण बड़े बड़े एकाधिकारियों (Monopolists) को पक्षपात के आधार पर दिये गए हैं। इस बात को रोकने के लिए ही सरकार ने निर्देश जारी किया था। कठिनाई तो तब उत्पन्न होती है जबकि मंत्री विशिष्ट निर्देश (Specific directives) जारी नहीं करते और बोर्ड के निर्णयों को अन्य उपायों द्वारा प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। यदि कोई मंत्री निगम को कोई विशिष्ट निर्देश जारी करता है तो वह उसके परिणामों के लिए भी उत्तरदायी हो जाता है। अपने आपको जिम्मेवारी से बचाने के लिए वह अनौपचारिक परामर्शों एवं सम्मतियों के द्वारा बोर्ड के सदस्यों को प्रभावित करता है। यह बड़ी अवांछनीय सवैधानिक उत्पत्ति है। इगलैंड में भी इस तथ्य की तीव्र आलोचना की जाती है। भारत में, यह तथ्य जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation) के मामले में प्रकाश में आया। श्री एन० सी० छागला (M C Chagla) की जाच की कार्यवाहियों से यह प्रकट हुआ कि मूंदड़ा सन्धानों (Mundhra Concerns) में शेयर खरीदने के निगम के निर्णय को मंत्री महोदय ने प्रभावित किया था यद्यपि उन्होंने लिखित रूप में कोई भी निर्देश जारी नहीं किया था जैसा कि जीवन बीमा अधिनियम (Life Insurance Act) की धारा ११ के अन्तर्गत उनको करना चाहिये था। उन्होंने ऐसा तरीका अपनाया जो कि कानून के विरुद्ध था। दामोदर घाटी निगम जाच समिति (D V C. Enquiry Committee) ने भी कुछ इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया। बात यह है कि जब कभी भी मंत्री लोग निगमों को निर्देश जारी करने की आवश्यकता समझें तो उन्हें निर्देश लिखित रूप में देने चाहिये और जैसा कि इगलैंड में होता है ऐसे निर्देशों को निगमों की वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित किया जाना चाहिये अथवा उनको सदन (House) की मेज पर रखा जाना चाहिए। उद्देश्य यह है कि मंत्री जो निर्देश जारी करें उनके लिए उन्हें निश्चित रूप से उत्तरदायी बनाया जा सके। किसी भी पक्ष की ओर से बचने की बात नहीं होनी चाहिये।

कुछ मामलों में मंत्रियों को विस्तृत बातों के सम्बन्ध में भी निर्देश जारी करने का अधिकार दिया गया है। दोनों वायुनिगमों (Air Corporations) के मामले में मंत्री, उपयुक्तता तथा राष्ट्रीय हित की दृष्टि से तथा निगमों से परामर्श करके, उनमें से किसी को भी ऐसा निर्देश दे सकता है कि जिससे वह ऐसी किसी भी वायु परिवहन सेवा (Air Transport Service) अथवा अन्य क्रिया को सचालित कर सके जिसे कि उसे सचालित करने का अधिकार हो, ऐसी किसी भी सेवा अथवा क्रिया को छोड़ने या उसमें परिवर्तन करने अथवा ऐसी किसी भी क्रिया को

न करने का भी निर्देश दे सकता है जिसको कि उसने करने का प्रस्ताव किया हो।[1] सरकार किसी भी वायु सेवा अथवा सम्पत्ति (Property) को एक वायु निगम से दूसरे के पास को स्थानान्तरित करने का भी निर्देश दे सकती है।[2]

तीसरे कुछ निगमों द्वारा अपनी योजनाओं तथा कार्यक्रमों के लिये मन्त्री की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होता है। दोनों वायु निगमों के मामले में निम्नलिखित कार्यों के लिए सरकार की पूर्व स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है—"किसी भी *अचल सम्पत्ति (Immovable property) या विमान (Aircraft)* अथवा १५ लाख रु० से अधिक मूल्य की किसी भी वस्तु को खरीदने के लिए किये जाने वाले किसी भी पूंजीगत खर्च (Capital expenditure) के लिये, किसी भी अचल सम्पत्ति को ५ वर्ष से अधिक की अवधि के लिये पट्टे (Lease) पर देने के लिए, अथवा १० लाख रु० से अधिक किताबी मूल्य (Book value) के किसी भी विशेष अधिकार अथवा सम्पत्ति को समाप्त करने अथवा बेचने के लिये।[3] अपने वित्तीय वर्ष (Financial year) के प्रारम्भ होने से तीन माह पूर्व, इनमें से प्रत्येक निगम को केन्द्र सरकार के समक्ष "एक ऐसा विवरण-पत्र (Statement) प्रस्तुत करना होता है जिसमें कि उसके द्वारा सञ्चालित किये जाने वाले कार्य क्रम और वायु सेवाओं के विकास तथा उसकी अन्य क्रियाओं व उनसे सम्बन्धित वित्तीय अनुमानों का ब्यौरा दिया होता है और इस ब्यौरे में किसी भी प्रकार का पूंजी का निवेश *(Investment of Capital) तथा इसके कुल स्टाफ की मात्रा में वृद्धि का प्रस्ताव* भी सम्मिलित होता है।"[4] तथापि, लोचशीलता (Flexibility) लाने के लिये, यह *व्यवस्था की गई है कि* यदि निगमों के लिए किसी ऐसी क्रिया अथवा सेवा को अपने हाथ में लेना आवश्यक हो, जोकि उनके वार्षिक कार्य क्रम में सम्मिलित न हो, तो ऐसी क्रिया अथवा सेवा का सञ्चालन किया जा सकता है और उक्त दशा में एक अनुपूरक (Supplementary) कार्य-क्रम व तत्सम्बन्धी वित्तीय अनुमान सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिये। विशेष परिस्थितियों का सामना करने के लिए निगमों को यह अधिकार दिया गया है कि वे ऐसी किसी सेवा अथवा क्रिया का सञ्चालन कर सकें जोकि ऊपर के दोनों ही कार्य-क्रमों में से किसी में भी सम्मिलित न हो, और तत्पश्चात् निर्धारित रीति के अनुसार सरकार को उसके विषय में एक प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत कर दें।[5] हिन्दुस्तान स्टील (प्राइवेट) लिमिटेड के *मामले में, निम्नलिखित स्थितियों में सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक है: (अ)* पूंजी की वृद्धि करना, (आ) नये शेयर जारी करना, (इ) पूंजी में कमी करना; (ई) कम्पनी की शेयर पूंजी का एकीकरण, विभाजन तथा उप-विभाजन, (उ) ऋण

1 Air Corporation Act Sec, 34-2
2 Air Corporation Act, Sec, 39
3 *Ibid* S 35
4 *Ibid* S 36
5 *Ibid* S 35

उधार लेना, इसकी शर्तें एव दशायें, (ऊ) बाण्ड, डिबेंचर, डिबेंचर स्टाक अथवा अन्य प्रतिभूतियाँ (Securities) जारी करना (ए) ४० लाख रु० से अधिक के पूजीगत खर्च का कोई भी कार्य-क्रम, (ऐ) कम्पनी का समापन (Winding up), (ओ) किसी भी ऐसे अधिकारी की नियुक्ति करना जिसका न्यूनतम मासिक वेतन २००० रु० अथवा इससे अधिक हो, तथा कम्पनी के लेखा परीक्षको (Auditors) की नियुक्ति करना।

चौथे, निगम को पूजीगत निवेश (Capital investment) करने तथा उधार (Borrowing) लेने के लिए मन्त्री की स्वीकृति लेने की आवश्यकता होती है।[1] निगमो को अपने खाते (Accounts) उस रीति के अनुसार रखने पड़ते है जोकि सरकार अथवा महालेखा-परीक्षक (Auditor General) के परामर्श से निर्धारित की जाती है और उनके खातो का परीक्षण (Audit of accounts) भी आमतौर पर उन लेखा-परीक्षको (Auditors) द्वारा किया जाता है जोकि मन्त्री (Minister) अथवा स्वय महालेखा-परीक्षक द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। दामोदर घाटी निगम के मामले मे, 'निगम के खाते उस पद्धति के अनुसार रखे जायेगे जोकि भारत के महालेखा-परीक्षक के परामर्श से निर्धारित की जाए।'[2] पुनर्वास वित्त निगम (Rehabilitation Finance Coroparation) के खातो का परीक्षण 'उस एक अथवा एक से अधिक लेखा-परीक्षको द्वारा किया जायेगा जोकि सन् १६१३ के भारतीय कम्पनी अधिनियम (Indian Companies Act) की धारा १४४ के अन्तर्गत कम्पनियो के लेखा-परीक्षको के रूप मे कार्य करने के योग्य होगे और जिनकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे पारिश्रमिक (Remuneration) पर की जायेगी जोकि अधिनियम द्वारा निर्धारित किया जायेगा।'[3] दोनो वायु निगमो के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने समुचित खाते "'जिनमे कि लाभ हानि खाता (Profit and Loss account) तथा चिट्ठा अथवा तुलन-पत्र (Balance sheet) भी सम्मिलित है, ऐसी पद्धति के अनुसार रखे जोकि भारत के नियन्त्रक महा-लेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor-General of India) के परामर्श से भारत सरकार द्वारा निर्धारित की जाए।' इन दोनो निगमो के लेखो अथवा खातो का परीक्षण भारत के नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक द्वारा अथवा उनके ही द्वारा नियुक्त अन्य किसी व्यक्ति द्वारा किया जाता है।'[4] खाते अथवा लेखे (Accounts) तथा लेखा-परीक्षण (Audit) वाणिज्यिक किस्म के होते हैं और लेखा-परीक्षक के

1 दा. घा. नि अधिनियम १६४८, धारा ४२, वायु निगम अधिनियम, धारा १० (२) आदि।

2 दा घा. नि अधिनियम, धारा ४७.

3 पुनर्वास वित्त निगम अधिनियम, १६४८, धारा १६.

4 वायु निगम अधिनियम, धारा १५.

प्रतिवेदन (Auditor's report) में यह बात स्पष्ट की जाती है कि चिट्ठा अथवा तुलन-पत्र पूर्णतया ठीक तथा उचित हैं या नहीं, उसको उपयुक्त पद्धति के अनुसार बनाया गया या नहीं, जिससे निगम के कार्यों का ठीक-ठीक तथा वास्तविक रूप सामने आ सके।

अन्त में, मन्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे निगमों से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकें। निगमों से कहा जाता है कि वे नियत-कालिक विवरण-पत्र (Periodic statements), लेखे (Accounts), सूचना-पत्र, वार्षिक वित्तीय अनुमान (Annual financial estimates), कार्य-क्रम और अपने कार्यों एवं कार्य-संचालन का वार्षिक प्रतिवेदन मन्त्रियों के समक्ष प्रस्तुत करें।"[1]

मन्त्रियों के नियन्त्रण के अधिकार में, प्रशासकीय पक्ष में तो बोर्ड के सदस्यों की नियुक्ति (Appointment) तथा पदच्युति (Dismissal) और सामान्य नीति सम्बन्धी मामलों पर निगमों को निर्देश जारी करना सम्मिलित है और वित्तीय पक्ष में, निवेश (Investment) उधार (Borrowing) तथा लाभों के बटवारे से सम्बन्धित मामलों में उनकी आवाज अन्तिम व निर्णायक होती है।

किसी भी विशिष्ट उद्यम पर वास्तव में कितना मन्त्रीय नियन्त्रण लागू किया जायेगा, यह बात आंशिक रूप से उद्यम के उत्तरदायित्वों की मात्रा पर, उसकी कार्यवाइयों की राजनैतिक महत्ता पर, और सरकार के साथ उसके वित्तीय सम्बन्धों पर निर्भर होगी। चूंकि भिन्न-भिन्न उद्यमों के अन्तर्गत ये तीनों ही तत्व (Factors) भिन्न भिन्न रूप में पाये जाते हैं अतः उन्हीं के अनुसार मन्त्रीय दृष्टिकोण का भी निर्धारण होता है। स्वभावतः सम्भावना यही है कि अपेक्षाकृत एक छोटी फैक्टरी के लिये बनाये जाने वाले निगम की अपेक्षा, यदि अन्य बातें समान हों तो, एक ऐसे विकास निगम (Development Corporation) की ओर, जिसका कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत हो कि जिसमें सरकार की आर्थिक योजना का एक बड़ा क्षेत्र आ जाता हो, मन्त्रियों का अधिक ध्यान आकर्षित होगा। इसके अतिरिक्त, यह हो सकता है कि ऐसा निगम राजनैतिक विवाद का एक केन्द्र बिन्दु बन जाए और इस विवाद को दृष्टिगत रखते हुए मन्त्री उस उद्यम को केवल सीमित मात्रा में ही स्वाधीनता दें। फिर, विकास निगम अथवा एक नदी घाटी सत्ता (River valley authority) के अन्तर्गत, स्वभावतः ही ऐसी प्रायोजनाओं (Projects) में सरकारी धन लगाया जाता है जिनसे बहुत शीघ्र स्वावलम्बी बनने की आशा नहीं की जाती। यही कारण है कि लाभोपार्जन वाले अथवा सम-विभक्त (Even-breaking) उद्यम की अपेक्षा इनके वित्तीय मामलों में मन्त्रियों का हस्तक्षेप अधिक दृढ़ता के साथ होता है।

---

1 दा घा नि अधिनियम १६४८, धारा ४५, पुनर्वास वित्त निगम अधिनियम, धारा १८, वायु निगम अधिनियम, धारा ३६, औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम, धारा ३५ आदि।

मन्त्रियो पर कुछ ऐसी रोकथाम भी लगायी जानी चाहिये जिससे कि वे अपनी सत्ता का दुरुपयोग न कर सकें और ऐसी रोकथाम उन पर ससद (Parliament) द्वारा लगाई जाती है। मन्त्री को, जिसे कि सरकारी निगम को निर्देश जारी करने के निश्चित अधिकार प्रदान किये जाते हैं, ससद के प्रति भी जवाबदेह होना चाहिए। इस प्रकार ससदीय नियन्त्रण आप से आप लागू होना चाहिये, परन्तु यह लागू होगा या नही, यह सदस्यो (Members) द्वारा ससद म प्रश्न करने के अपने अधिकार पर जोर देन पर निर्भर करता है और इस बात पर निर्भर करता है कि सरकार वाद-विवाद (Debate) क लिये समय तथा अवसर देती है या नही। 'सरकारी निगम को मन्त्री रूपी पिता के ही हाथो मे नही फेक देना चाहिये जब तक कि पैतृक अनुशासन की अत्यधिक मात्रा को रोकने के लिए स्नेहमयी ससदीय मा (Parliamentary mother) उपलब्ध न हो।"[1]

परन्तु मन्त्रियो पर लगाया जाने वाला ससदीय नियन्त्रण इतना अधिक नही होना चाहिये जोकि उन्हे कठोर तथा सीमित नियन्त्रण लगाने को बाध्य करे तथा निगमो को अधिकार सौंपने से उन्हे रोके। भारत म, 'ससद सत्ता के हस्तातरण (Delegation of power) के विरोध का एक मुख्य दुर्ग है, जबकि ऐसे हस्तातरण की आवश्यकता है और भारतीय प्रशासन की यही सबसे गम्भीर बुराई है। अपनी सत्ता का विस्तार मे हस्तानरण करने की ससद की अनिच्छा से, जबकि ससदीय सत्ता को महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक बनाने के लिये ऐसा हस्तान्तरण अत्यन्त आवश्यक होता है, मन्त्री (Ministers) अपने अधिकारो को सौंपने के प्रति हतोत्साहित हो जाते हैं, सचिव (Secretaries) अपने अधिकारो को सौंपने के प्रति हतोत्साहित हो जाते हैं और फिर प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Directors) अपने अधिकारो को सौंपने के प्रति हतोत्साहित हो जाते है।'[2] यह एक विकृत चक्र है जिस पर रोकथाम लगाई जानी चाहिये। यह ठीक है कि मन्त्री सरकारी निगमो पर नियन्त्रण लगाये परन्तु उनका नियन्त्रण केवल सामान्य नीति सम्बन्धी मामलो तक ही सीमित रहना चाहिये। उनको निगमो के दिन प्रति-दिन के प्रशासन म, जिनमे कि उन्हे स्वाधीनता मिलनी चाहिए, हस्तक्षेप नही करना चाहिए। कुछ क्षेत्रो मे उद्यम की ऐसी योजनायें मन्त्रियो की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत की जानी चाहियें जिनमे कि 'लोकहित' के प्रश्न मुख्य रूप से उत्पन्न होते हैं। ऐसी योजनाओ मे अनुसधान (Research), शिक्षा (Education), प्रशिक्षण (Training), कल्याण तथा पूजी की वृद्धि व विकास के कार्यक्रम सम्मिलित किये जाते है। यद्यपि मन्त्रीय अधिकारो

1 Ernest Davies, The Development of the Public Corporations, London, 1946, P 81

2 Paul H Appleby, Re examination of India's Administrative system with special reference to Administration of Government's Industrial and commercial enterprises, p 55

के प्रयोग करने के बारे मे सामान्य मार्ग दर्शन सम्बन्धी बातें निगमो का निर्माण करने वाले विधान (Legislation) मे दी हुई होती है परन्तु स्वायत्तता (Autonomy) तथा नियन्त्रण मे बीच ठीक सन्तुलन कायम रखना केवल तभी सम्भव है जबकि उपयुक्त अभिसमयो (Conventions) तथा समझदारी के विकास की परम्परा डाली जाय। इसके अतिरिक्त, मन्त्रीय अधिकारो (Ministerial powers) के दुरुपयोग को रोकने के लिये, *ससद द्वारा मन्त्रियो पर नियन्त्रण लगाया जाना* चाहिये परन्तु मन्त्रियो पर लगाया जाने वाला ससदीय नियन्त्रण इतना अधिक नही होना चाहिये जोकि उनको निगमो के छोटे-छोटे प्रशासनिक कार्यो मे हस्तक्षेप करने के लिये बाध्य करे। मन्त्री को अपने अधिकारो की व्याख्या व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टि से ही करनी चाहिये तथा मण्डलो अथवा बोर्डों से परामर्श करने के पश्चात् ही उनका प्रयोग करना चाहिये। निगम के प्रति मन्त्री का रुख सहयोग का होना चाहिये, अनावश्यक आदेश होने का नही, और केवल मन्त्रियो के इस रुख पर ही इस देश म राष्ट्रीयकरण (Nationalization) के महान् प्रयोग (Experiment) की सफलता निर्भर है। अत आवश्यकता इस बात की है कि मन्त्री के महत्वपूर्ण तथा अमहत्वपूर्ण बातो मे भेद करने की सामर्थ्य हो और अमहत्वपूर्ण बातो को स्पष्ट रूप से समझने की मानसिक क्षमता हो।

ससदीय नियन्त्रण
(Parliamentary Control)

भारत मे सरकारी उद्यमो पर मन्त्रीय नियन्त्रण का विवेचन करने के पश्चात् अब हम उन तरीको का अध्ययन करेंगे जिनके द्वारा कि ससद मन्त्रियो पर अपना नियन्त्रण लागू करती है, क्योकि ससदीय पद्धति की सरकार मे मन्त्री ससद के प्रति उत्तरदायी होते हैं और यह ससद ही है जिसकी ओर कि हम सरकारी उद्यमो पर अन्तिम नियन्त्रण लागू करने के लिये दृष्टिपात करते हैं। सरकारी निगम, ऐसे मामलो पर, जिनके लिये कि मन्त्रियो की जिम्मेदारी होती है, मन्त्रियो के माध्यम से ससद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

सरकारी उद्यमो पर नियन्त्रण के लिये ससद द्वारा जो तरीके अपनाये जाते हैं वे वैसे ही होते है जैसे कि सरकार के किसी अन्य विभाग (Department) के लिये होते हैं। *ससद के सदस्यो (Members of the Parliament) को* सरकारी उद्यमो की समस्याओ पर वाद-विवाद करने के लिये सदन (House) के अन्दर निम्नलिखित अवसर उपलब्ध होते हैं —

(१) मन्त्रियो से प्रश्न पूछ कर।

(२) किसी भी उद्यम पर आध घण्टे के वाद विवाद की माग करके।

(३) सार्वजनिक महत्व के मामलों पर स्थगन प्रस्ताव (A motion for adjournment) प्रस्तुत करके।

(४) अत्यन्त आवश्यक सार्वजनिक महत्वो के मामलो पर अल्पकालीन वाद-विवाद की माग करके।

(५) अन्यन्त आवश्यक सार्वजनिक महत्व की घटनाओ पर सदन का ध्यान आकर्षित करके।

(६) किसी भी मामले पर प्रस्ताव पेश करके तथा उस पर वाद विवाद करके।

(७) राष्ट्रपति के भाषण पर बहस करके।

(८) जाच समिति (Enquiry Committee) के प्रतिवेदन (Report) पर बहस करके, यदि कोई हो तो।

(९) निगम के कार्य-सचालन पर बहस करने का अवसर सदस्यो को उस समय भी मिलता है जबकि किसी ऐसे कानून मे सशोधन किया जाता है जिसके द्वारा कि उस निगम का निर्माण किया गया था।

(१०) बजट पर होने वाली बहस के समय।

(११) निगमो के वार्षिक प्रतिवेदनो पर भी वाद-विवाद किया जा सकता है।[1]

सरकारी निगमों पर संसदीय नियन्त्रण, प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष में दी जाने वाली दलील की जाच

(Parliamentary control over Public Corporation, An examination of the plea for a Select Committee

'ससद के सदस्यो को सरकारी उद्यमो के कार्यों पर वाद-विवाद के इतने अधिक अवसर प्रदान किये जाने के बावजूद अनेक सदस्य अभी तक यही अनुभव करते है कि उन्हें निगमों के मामलों पर वाद-विवाद करने, उनके कार्यों का विश्लेषण (Analysis) तथा विवेचन करने के पर्याप्त अवसर नही मिलते। सदस्यो ने अपने इस असन्तोष को अनेक बार लोकसभा मे व्यक्त किया। सदस्य यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) तथा अनुमान समिति (Estimates Committee) जैसी ससदीय समितियो (Parliamentary Committee) को शक्ति से अधिक काम मिला हुआ है और चूंकि सरकारी उद्यगो (Public enterprises) की सख्या बढ गई है तथा तेजी से बढ रही है अत इन समितियो के लिये उद्यमो की ओर समुचित ध्यान देना अब अधिकाधिक कठिन ही होगा। ससद स्वय भी इस स्थिति मे नही होती कि प्रत्येक सस्था के, अपने समक्ष आने वाले, प्रतिवेदनो (Reports) तथा वार्षिक लेखो (Annual accounts) पर

1 'ससदीय नियन्त्रण' के विस्तृत अध्ययन के लिये लेखक की 'भारत मे सरकारी उद्यम पर ससदीय नियन्त्रण' नामक पुस्तक का चौथा अध्याय देखिये।

वाद-विवाद कर सकें। अतः कुछ सदस्यों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि सरकारी उद्यमों के लिए एक पृथक् प्रवर समिति (Select committee) होनी चाहिये।

१० व ११ दिसम्बर, सन् १९५३ को लोक-सभा में सरकारी उद्यमों पर लगाये जाने वाले ससदीय नियन्त्रण पर वाद-विवाद हुआ था। उसमें अनेक सदस्यों ने यह माग की थी कि ससद की एक प्रवर समिति की नियुक्ति की जाए जोकि सरकारी निगमों तथा उन कम्पनियों की वित्तीय कार्य-प्रणाली पर दृष्टि रखे जोकि सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगों (Industries) तथा उद्यमों का प्रबन्ध कर रही हैं। वाद-विवाद प्रारम्भ करते हुए, स्वतन्त्र सदस्य डा० लकासुन्दरम ने कहा कि "उनका उद्देश्य यह है कि मन्त्रियों (Ministers) के हाथ मजबूत किये जायें और इससे भी अधिक यह कि पिछले कुछ वर्षों में अस्तित्व में आने वाली सरकारी निगमों के कार्यों की जाँच पड़ताल करने की लोक-सभा की सामर्थ्य को सदेह की छाया से मुक्त कर दिया जाए ... एक बार यदि ये चीजें या तो देश के कानून में अथवा निष्पादकीय कार्रवाइयों (Executive actions) में सम्मिलित हो जाती है तो अधिकारी (Officers) पूर्णतया सरकारी नियन्त्रण तथा सार्वजनिक आलोचना की पहुँच से बाहर हो जाते हैं।" उन्होंने आगे कहा है कि "सार्वजनिक लेखा समिति मौजूद है परन्तु यह धन व्यय हो जाने के शायद एक या दो वर्ष बाद ही प्रकाश में आती है और जाँच पड़ताल करती है। वास्तव में, सार्वजनिक लेखा समिति अथवा अनुमान समिति के पास न तो समय हो है और न अवसर ही कि वह यहाँ उत्पन्न होने वाली समस्याओं का हल ढूंढ सकें। मूलभूत स्थिति यह है कि ये समितियाँ पहले से ही अत्यधिक काम के भार से लदी हुई हैं और न तो उनको अवसर ही मिलता है और न उनके पास समय ही होता है कि वे पूर्णतया इन प्रश्नों की गहराई में जाएँ······। अतः भारत में आजकल इन निगमों में से प्रत्येक ने प्रतियोगिता विहीन एकाधिकार प्राप्त कर लिया है। प्रत्येक निगम राज्यों के अन्तर्गत एक छोटा सा राज्य बन गया है जोकि पूर्णतया अधिकारी की अधिकार सम्पन्नता पर छोड़ दिया गया है जोकि उनका प्रबन्ध-निर्देशक (Managing Director) या अध्यक्ष (Chairman) बना होता है। परन्तु राष्ट्रीय हित की दृष्टि से इस सम्बन्ध में शीघ्र ही कुछ न कुछ किया ही जाना चाहिये जिससे कि (क) मन्त्री का नियन्त्रण प्रभावशाली हो जाए, और (ख) सदन (House) की सत्ता कायम रखी जाए।"

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, डा० लकासुन्दरम ने यह सुझाव दिया कि "सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के अलावा, आपके (अर्थात् लोक-सभा के अध्यक्ष के) निर्देशन में एक ससदीय समिति (Parliamentary Committee) का निर्माण किया जाए, जो कि पूरे वर्ष भर कार्य करे और जिसको विशेषकर इन विभिन्न प्रकार के निगमों तथा कम्पनियों के कार्यों की देखभाल का ही काम सौंपा जाए······। यह समिति मन्त्रियों के हाथ मजबूत करेगी, ससद की सत्ता

(Authority) को दृढ तथा क्रियान्वित करेगी और प्रत्येक चीज से बढकर यह कर-दाता (Tax-payer) को इस बात का आश्वासन देगी कि उसके धन का समुचित रूप से मितव्ययता के साथ उपयोग किया जा रहा है।"[1]

वित्त मन्त्री (Finance Minister) श्री डी० सी० देशमुख ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होने कहा कि वस्तुत निगमो के ऊपर ससद के नियन्त्रण का अर्थ है मन्त्री का नियन्त्रण, और यही अर्थ होना भी चाहिये तथा इस सम्बन्ध मे जो शक्तियां मन्त्रियो को प्राप्त है वे पर्याप्त है। वे निर्देशको को मनोनीत कर सकते हैं जिनमे कि आमतौर पर सचिव (Secretary) अथवा सयुक्त सचिव (Joint secretary) के स्तर का, भारत सरकार का एक वित्तीय प्रतिनिधि सम्मिलित किया जाता है, और वे (मन्त्री) निर्देश (Directives) जारी कर सकते हैं। फिर, एक विभाग (Department) तथा एक निगम के नियन्त्रण के बीच कुछ न कुछ तो अन्तर होना ही चाहिये। सार्वजनिक धन को अच्छी प्रकार से खर्च किया जा सकता है इस बात से निश्चित होने की वाञ्छनीयता (Desirability) तथा लाल फीताशाही (Red tapism) को समाप्त करने की वाञ्छनीयता के बीच एक सतुलन कायम रखा जाना चाहिये। उन्होने कहा कि जहाँ तक प्रवर समिति का सम्बन्ध है, "क्या ससद के लिये यह आवश्यक है कि दिन प्रति-दिन अथवा प्रत्येक अधिवेशन (Session) मे उसको इस बात से सूचित रखा जाए कि कोई विशिष्ट निगम किस प्रकार कार्य कर रही है? क्या यह अच्छा नही होगा कि मन्त्रि-मण्डल को इन निगमो का प्रबन्ध करने के योग्य बना दिया जाये और तब उससे (मन्त्रि-मण्डल से) निगमो की स्थिति के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की जाए और पूछा जाए कि क्या किया? यह एक विचारणीय बात है और इससे पहले कि इस सम्बन्ध मे कोई भी निर्णय किया जाय, ससद को यह बात दृष्टिगत रखनी होगी।"[2] उन्होने सदन से कहा कि वह प्रतीक्षा करे और देखें कि व्यवहार मे उनके सामने क्या-क्या कठिनाई आती है तथा यह चेतावनी दी कि यदि इस मामले मे बहुत जल्दबाजी की गई तो "उसमे सदा खतरा यही है कि हम कही नहाने के पानी के साथ बच्चे को भी न फेक दें।"

उन्होने ठीक ही कहा कि इन तथा इसी प्रकार के अन्य मामलो पर ससदीय नियन्त्रण का अर्थ अनिवार्यत कार्यपालिका (Executive) के नियन्त्रण से ही है और यह कार्यपालिका स्वय ससद द्वारा नियन्त्रित की जाती है। परन्तु सदस्यो ने यह विचार व्यक्त किया कि मन्त्री स्वय अपने नियन्त्रण के विषय तथा उसकी सीमाओ से परिचित नही होते और यह बात अनेक अवसरो पर सदन के सामने स्पष्ट हो चुकी है। एक सदस्य ने कहा कि "बहुधा हम मन्त्रियो को मण्डलो (Boards) के पक्ष का इसलिये समर्थन करते हुये देखते हैं क्योकि वे समझते है कि

1 Lok Sabha Debates, dated December 10, 1953 Columns 1905, 1918
2 Lok Sabha Debates, Dec 10, 1953, Column 1928

यह स्वयं उन्हीं की आलोचना की जा रही है, जबकि वस्तुस्थिति यह होती है कि संसद मण्डल अथवा बोर्ड की आलोचना करती है और वह इसलिये कि मण्डल समुचित रूप से अपने कार्यों को सम्पन्न नहीं कर रहा होता है। निश्चय ही, बड़े उद्योगों की प्रगति तथा कार्यकुशलता पर वाद-विवाद करने का यह सर्वश्रेष्ठ तरीका नहीं है।"[1]

अप्रैल १९५८ में, *कांग्रेस दल के नेता के रूप में, प्रधान मन्त्री* (Prime Minister) ने श्री कृष्णा मेनन की अध्यक्षता में कांग्रेस दल की एक उप-समिति (Sub-committee) की स्थापना की थी। इस उप-समिति का कार्य था कि यह कानून द्वारा निर्मित निगमों तथा सरकारी स्वामित्व वाले अन्य निकायों (Bodies) पर संसदीय पर्यवेक्षण (Parliamentary supervision) के प्रश्न का अध्ययन करे और अपना प्रतिवेदन दे। *इस उप-समिति ने यह प्रस्ताव किया कि सरकारी* उद्यमों पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए संसद की एक प्रवर-समिति की स्थापना की जाये। यह प्रवर-समिति सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति से उन कार्यों को ले लेगी, जिन्हें कि वे सरकारी उद्यमों के सम्बन्ध में अब सम्पन्न करती हैं।

इस प्रतिवेदन (Report) पर टीका-टिप्पणी करते हुए अंग्रेजी के प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र हिन्दुस्तान टाइम्स' (The Hindustan Times) ने यह मत प्रकट किया कि सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमों पर लागू होने वाले संसदीय नियन्त्रण की व्याख्या ही गलत ढंग से की गई है अथवा अस्पष्ट रूप से की गई है। सरकारी क्षेत्र (Public sector) के उद्यमों के प्रबन्ध पर होने वाले सभी वाद-विवादों में इस बात पर तो सभी एकमत रहे हैं कि संसद इन उद्यमों पर कुछ मात्रा में अन्तिम नियन्त्रण रखे, *यद्यपि यह हो सकता है कि उस नियन्त्रण की मात्रा उद्यम की प्रकृति के अनुसार* भिन्न हो तथापि समस्या यह है कि उस नियन्त्रण को किस प्रकार प्रभावशाली बनाया जाये जबकि संसद के पास समय का अभाव तो होता ही है, इसके अतिरिक्त एक असुविधा यह होती है कि इसके अधिकांश सदस्य (M P.) ग्रामीण निर्वाचन-क्षेत्रों (Rural constituencies) से चुनकर आते हैं अतः वे अधिक निपुण तथा विशेषज्ञ नहीं होते, और इस पर भी इनकी इच्छा पर विस्तृत एवं जटिल उद्यमों पर आवश्यकता चौकसी रखने की होती है। प्रस्तावित तृतीय समिति (अर्थात् प्रवर-समिति) इस समस्या को हल कर सकती है। इसके सदस्य इन उद्यमों की कार्यविधियों से समय-समय पर परिचित ही नहीं रहेंगे और संसद में इनके बारे में पूर्ण जानकारी *तथा अधिकार के साथ बोलने में ही समर्थ नहीं हो सकेंगे, बल्कि वे इस स्थिति में भी* होंगे कि छोटी-छोटी बातों से परेशान हुए बिना ही उद्यमों की निकटस्थ जांच पड़ताल कर सकें।"[2]

1 Dr Krishanaswami's speech, Lok Sabha Debate, Dec. 11, 1953 *Columns* 1959-1964

2 हिन्दुस्तान टाइम्स, जून १०, सन् १९५९।

सरकारी उद्यमों की देखभाल करने के लिए एक प्रवर समिति (Select Committee) की स्थापना का विचार इगलैंड मे भी लोकप्रिय हो गया है। इगलैंड मे एक समिति की नियुक्ति की गई थी जिसका कार्य ऐसे उपायो पर विचार करना कि जिनके द्वारा लोक-सदन (House of Commons) को राष्ट्रीयकरण किये हुए उद्योगो के कार्यों से परिचित रखा जा सके, तथा इस बारे मे अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करना था कि सम्बन्धित कानूनो मे ससद द्वारा की गई व्यवस्थाओ को देखते हुए, इन उपायो मे क्या-क्या परिवर्तन करन वान्छनीय हो सकते हैं। इस समिति का प्रतिवेदन २३ जुलाई सन् १६५३ को प्रकाशित किया गया था। इसन एक प्रवर-समिति की स्थापना की भी सिफारिश की। समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की —

"(अ) राष्ट्रीयकरण किये हुए उद्योगो (Nationalised industries) की जाच पडताल तथा समय-समय पर प्रतिवेदन देने के लिय, स्थायी आदेश (Standing order) द्वारा लोक-सदन की एक समिति की नियुक्ति की जानी चाहिये जिसको कि व्यक्तियो, कागजातो तथा अभिलेखो (Records) को मगाने तथा उप-समितियो (Sub committee) की स्थापना करने के अधिकार प्राप्त हो।

(आ) समिति को, सविधि (Statute) द्वारा स्थापित राष्ट्रीयकरण किय हुए ऐसे उद्योगो के प्रकाशित प्रतिवेदनो एव लेखो (Accounts) की ओर तथा उनकी सामान्य नीति व क्रियाओं के सम्बन्ध मे और सूचनाय प्राप्त करने की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिये, जिन उद्योगो के नियन्त्रण-मण्डल (Controlling Boards) पूर्णतया सरकार के मन्त्रियो द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं और जिनकी वार्षिक आय पूर्णरूप से ससद द्वारा प्रदत्त अथवा राजकोष (Exchequer) द्वारा प्रदान किये गये धन से ही नहीं प्राप्त की जाती।

(इ) समिति का कार्य निगमो (Corporations) के उद्देश्यो, क्रियाओ एव उनकी समस्याओ से ससद को सूचित रखना ही होना चाहिये, उनके कार्यों का नियन्त्रण करना नही।

(ई) समिति के स्टाफ अथवा कर्मचारी-वर्ग मे नियन्त्रक तथा महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) के स्तर का एव पदाधिकारी (Officer) होना चाहिये जोकि लोक-सदन का उच्च प्रशासकीय अनुभव वाला एक पदाधिकारी हो, कम से कम एक व्यावसायिक लेखाकार (Accountant) तथा अन्य ऐसे कर्मचारी होने चाहियें जिनकी आवश्यकता हो।

(उ) निगमो के परिनियत लेखा-परीक्षक (Statutory auditors) अपने वार्षिक प्रतिवेदनो मे, उन सूचनाओ के साथ-साथ जोकि वे अब देते है, एसी सूचनायें भी देंगे जोकि समिति के काम की हो और ससद के लिय लाभ की हो।

प्रवर समिति (Select committee) की स्थापना के पक्ष तथा विपक्ष म ससदीय समिति (Parliamentary Committee) के सम्मुख जो प्रमाण प्रस्तुत

किये गये थे बड़े काम के हैं। अब हम सबसे पहले उन तर्कों पर विचार करते हैं जो कि संसदीय समिति के सम्मुख प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष में प्रस्तुत किये गये।

समिति के पक्ष में तर्क :

(१) मि० मोल्सन (*Mr Molson*) ने, सरकारी रूप में नहीं, व्यक्तिगत रूप में बोलते हुए समिति के पक्ष में यह विचार प्रकट किया कि "भूतकाल में लोक-सदन को जब भी किसी विशेष समस्या का सामना करना पड़ा, तभी सदन ने हमेशा एक समिति की नियुक्ति को ही समस्या का सुविधाजनक हल समझा है। मेरे विचार से इसके तीन कारण हैं। प्रथम, तो इसलिए कि संसद के थोड़े से सदस्य समस्या का गहराई से अध्ययन कर सकते हैं, दूसरे, इसलिए कि गवाहों (Witnesses) से पूछताछ तथा कागजों व नक्शों की खोजबीन की जा सकती है; और तीसरे, इसलिए कि समिति के एकान्त कक्ष में राजनैतिक पक्षपात से अधिक मुक्त रहा जा सकता है··· । मेरे विचार से उस समिति को, जिसकी कि मैं वकालत कर रहा हूँ, उन समस्याओं पर प्रकाश डालना चाहिए जिन्हें कि नीति की गहन समस्यायें कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि यह तो महत्वपूर्ण है ही कि छोटी-छोटी विस्तृत बातों के सम्बन्ध में दिन-प्रतिदिन के हस्तक्षेप की उपेक्षा की जाये परन्तु मेरे विचार से इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि संसद को समय-समय पर स्थिति की जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिलते रहना चाहिए।

Lord Hurco (२) *mb* ने कहा कि "इन बड़े निगमों में से किसी भी एक के कार्यों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने की संसद की अत्यन्त न्यायोचित माँग वाद विवाद (Debate) की अपेक्षा इस प्रकार की समिति की स्थापना द्वारा अधिक सन्तुष्ट की जा सकेगी। ऐसी समिति बहुत कुछ एक स्थायी समिति (Standing committee) की प्रकृति की होगी जिससे कि कर्मचारी-वर्ग अर्थात् सदस्यों के उस वर्ग की निरन्तरता बनी रहे जो कि किसी खास क्रिया में लगातार विशिष्ट रुचि केवल इस कारण ही नहीं लेता क्योंकि उसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है बल्कि उससे भी अधिक इसलिए क्योंकि समिति को अपने कार्य में वास्तविक रुचि होती है।" उन्होंने आगे कहा कि "इस प्रकार की समिति की स्थापना का अर्थ होगा कि एक बड़ी संख्या में संसद के सदस्यों को ऐसा अवसर प्राप्त हो सकेगा जिससे कि वे स्वयं को सन्तुष्ट कर सकें और आलोचना व सार्वजनिक भाषण के द्वारा नहीं बल्कि संगठन (उद्यम) को सुझाव देकर ऐसे स्थलों की खोज कर सकें जहाँ कि उनके मतानुसार स्थिति गलत चल रही है और किसी भी मूल्य पर उसकी देखभाल की ही जानी चाहिये।

समिति के विपक्ष में तर्क :

संसदीय समिति के प्रतिवेदन में प्रवर समिति के विरुद्ध अग्रलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये—

(१) "यह बात हमारे सामने दृढतापूर्वक कही गई कि राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योगों की जाँच के लिए एक स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव केवल उन अधिनियमों (Acts) के उद्देश्य एवं भावना के ही विपरीत नहीं है जिनके द्वारा कि उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया था, अपितु ब्रिटिश संविधान (British Constitution) के सामान्य प्रतिरूप (Pattern) के भी विरुद्ध तथा उसके प्रस्थापित तरीकों में किया जाने वाला एक नवीन परिवर्तन है।

(२) श्री हरबर्ट मौरीसन ने भी इसी प्रकार का तर्क दिया। उन्होंने एक और अधिक मौलिक आपत्ति (Fundamental objection) उठाई। जब उनसे कहा गया कि वास्तव में प्रवर समिति (Select committee) के सम्बन्ध में आपकी आपत्ति इसकी सम्भावित प्रभावहीनता के बारे में नहीं है बल्कि इस सम्बन्ध में भी है कि संसद का यह कार्य ही नहीं है कि वह कुशलता के नाम पर उद्यम के दिन-प्रति दिन के मामलों में हस्तक्षेप करे? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं संसद के लिए अपने प्राण दे सकता हूँ—मेरे मन में इसके प्रति अगाध श्रद्धा व प्रेम है—परन्तु मैं नहीं समझता कि यह एक ऐसी संस्था है जिसे कि आप एक जटिल औद्योगिक संस्थान के वास्तविक प्रबन्ध में हेर-फेर करने का कार्य सौंप सकते हैं।

(३) "प्रस्ताव के विरोध में एक तर्क यह दिया गया था कि समिति की स्थापना से सरकारी निगमों की क्रियाओं के प्रबन्ध एवं निर्देशन की जिम्मेदारी का सम्पूर्ण प्रश्न ही उठ खड़ा होगा। यदि एक प्रवर समिति (Select committee) निरन्तर ही निगम की नीति तथा क्रियाओं की जाँच पड़ताल करती रही तो निश्चय ही उद्योग में इस बारे में अनिश्चितता उत्पन्न हो जायेगी कि अन्तिम निर्णय किसके द्वारा दिये जायें और इससे यह हो सकता है कि उत्तरदायिता (Accountability) अधिक नहीं, बल्कि और कम सुरक्षित हो जाय। जैसा कि लार्ड राथ ने उस समय कहा, जबकि प्रस्ताव उनके सामने रखा गया, कि "सरकारी निगम किसके लिये कार्य करेगा?" उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि एक प्रवर समिति, यह हो सकता है कि प्रारम्भ में एक सेवाकारी सन्देशवाहक संस्था के रूप में स्थापित की जाय, पर अन्त में यह एक जाँच पड़ताल तथा नियन्त्रण करने वाली संस्था बन सकती है।

(४) 'तथापि, प्रस्ताव के विरोध में जो प्रमुख तर्क प्रस्तुत किया गया, वह यह था कि समिति राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योगों के कार्य संचालन में बाधा उत्पन्न करेगी और उनकी प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) को ही नष्ट कर देगी। मि० हरबर्ट मौरीसन *(Herbert Morrison)* ने कहा कि "समिति की स्थापना से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिससे वे सामान्य व्यवसायी शक्तिहीन हो जायेंगे जो कि मुख्य सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगों में कार्य कर रहे हैं। यह उनको कमजोर तो बनायेगी ही, उनमें लाल फीताशाही तथा साहसहीनता उत्पन्न कर देगी और उनकी विचारधारा तथा कार्यप्रणाली को सिविल सेवा के परम्परागत ढाँचे के अनुरूप बना देगी जोकि सरकारी विभागों के लिए ठीक हो सकता है परन्तु

सरकारी निगमों के मामले में ऐसा होना ठीक नहीं है और यही कारण है कि संसद ने सरकारी निगमों पर आंशिक रूप से ही निर्णय किया।" लार्ड रीथ (*Lord Reith*) ने भी एक भयावह दृश्य के रूप में ही इस पर विचार प्रकट किया कि "जितना अधिक मैं यह अनुभव करूँगा कि कोई व्यक्ति हर समय मेरे कार्य पर निगाह रख रहा है और बाद में किसी भी समय इन कार्यों की जाँच-पड़ताल कर सकता है, तो उतना ही कम निर्णय करने को मैं उत्सुक होऊँगा तथा मैं उतना ही कम निर्णय करने वाला हो जाऊँगा और निश्चित रूप से उतने ही कम अच्छे परिणाम सामने आयेंगे।

इस बात का पता लगाना बड़ा कठिन है कि पूर्णतया सरकारी उद्यमों से ही व्यवहार करने वाली प्रवर समिति (Select committee) अथवा संसद की विभिन्न समितियों की नियुक्ति करना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा उचित होगी या नहीं। समस्त उपलब्ध प्रमाणों से यही प्रकट होता है कि इससे उद्यम की जोखिम (Risk) उठाने की प्रेरणा समाप्त हो जायेगी क्योंकि संसद की प्रवर समिति के सामने जाँच-पड़ताल किये जाने की सम्भावना मण्डल के सदस्यों को ऐसा बना देगी कि वह यही सोचते रहेंगे कि क्या मुझे यह कार्य करने का साहस करना चाहिये ?" और यही भावना सरकारी उद्यमों के कार्य-संचालन में बाधक होती है क्योंकि इससे समस्त प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) समाप्त हो जाती है। वास्तविक समस्या संसद के लिए अधिक जानकारी प्राप्त करने की नहीं है बल्कि इस बात का पता लगाने की है जो जानकारी पहले से ही उपलब्ध है संसद उसका अधिक अच्छा उपयोग किस प्रकार कर सकती है। यदि उन लोगों को, जोकि सरकारी उद्यमों का प्रबन्ध करते हैं, सापेक्षिक स्वतन्त्रता तथा पहल करने की क्षमता को बनाये रखना है, जैसा कि उनके सफल कार्य-संचालन के लिए होना आवश्यक भी है, तो संसद को नियन्त्रण के ऐसे नये-नये साधनों की योजना नहीं बनानी चाहिये जिनसे कि उनके मन में भय तथा अविश्वास उत्पन्न हो जाये। *संसदीय नियन्त्रण छिद्रान्वेषण* (Nagging) अथवा चेतावनियों के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता।

भारतीय संसद (Indian parliament) को वर्तमान में जो अवसर प्रदान किये जाते हैं वे सरकारी उद्यमों (State enterprises) पर नियन्त्रण रखने के लिये पर्याप्त है। संसद का कार्य है सामान्य नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण (Supervision) करना और वर्तमान में उसे जो अवसर प्रदान किये गये हैं उनमें इन कार्यों को सम्पन्न करने की पर्याप्त गुंजाइश है। ऐसे अनेक तरीके अपनाये जा सकते हैं जिनके द्वारा कि निगमों की प्रेरणा एवं स्वतन्त्रता को समाप्त किये बिना ही प्रभावशाली संसदीय नियन्त्रण कायम रखा जा सकता है। मन्त्रियों को चाहिये कि वे संसद के सदस्यों को अधिकाधिक अपने विश्वास में लें। जहाँ प्रश्न पूछने की आज्ञा न हो वहाँ निगमों के कार्यों के बारे में मन्त्रियों द्वारा वक्तव्य दिये जाने की व्यवस्था की जाने चाहिए। इस बात की भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि सम्बन्धित निगम उन

पृथक-पृथक पूछताछों एवं बातों (Enquiries) की ओर उचित ध्यान दें जो कि ससद के सदस्यों द्वारा उनको सम्बोधित करके कही जायें। निगमों के वार्षिक प्रतिवेदन पर्याप्त सूचनाएं प्रदान करने वाले तथा इस प्रकार लिखे होने चाहियें कि जो उनके कार्यों का एक सुग्राह्य चित्र प्रस्तुत करें। ये सब बातें संसदीय नियन्त्रण को अधिक प्रभावशाली बना देंगी किन्तु प्रवर समिति की स्थापना से हानिकारक परिणाम सामने आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीयकरण (Nationalization) अभी तक एक दलीय मामला है। अन्य अनेक दल इसका समर्थन नहीं करते। अत समिति के सदस्य, जोकि मण्डल (Board) के सदस्यों का निरीक्षण करेंगे, अपनी जाँच पड़ताल को राष्ट्रीयकरण की निन्दा अथवा प्रशसा का साधन बना सकते हैं।

ससद को सरकारी उद्यमों पर विस्तृत नियन्त्रण नहीं लागू करना है, अत प्रवर समिति की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसकी स्थापना से उद्यमों म सबसे पहले अपनी सुरक्षा की भावना का विकास होगा और उनकी पहल करने की क्षमता तथा जोखिम उठाने की इच्छा, जोकि निगम प्रकृति के संगठन के प्रमुख लाभ माने जाते है, समाप्त हो जायेगी। हरबर्ट मोरीसन *(Herbert Morrison)* ने ठीक ही कहा कि जो लोग विस्तृत ससदीय उत्तरदायिता (Parliamentary accountability) चाहते हैं उन्हे सरकारी विभागीय प्रबन्ध (Departmental Management) का ही विस्तार करना चाहिए और जो इस बात का समर्थन करते हैं कि सरकारी स्वामित्व वाला उद्योग सरकारी निगम के रूप मे कार्य करे, उन्ह उसके परिणामों का सामना करने को प्रस्तुत रहना चाहिए अर्थात् उन्ह विस्तृत ससदीय उत्तरदायिता को कुछ सीमाबद्ध करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

भारत मे राष्ट्रीयकरण अभी बाल्यावस्था मे ही है और सरकारी उद्यमों के लिये प्रवर समितियों का निर्माण करके बाल्यावस्था की सी गलती नहीं की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, भारतीय ससद अपने कर्त्तव्यों के बारे म अब तक यथेष्ट रूप मे सावधान तथा सजग रही है। जब दामोदर घाटी निगम (D V C) वर्षों तक मुख्य इंजीनियर के बिना कार्य करता रहा तो सदस्यों ने यह प्रश्न उठाया और सन् १९५३ में इसके कार्यों के सम्बन्ध म जाँच पड़ताल की गई। औद्योगिक वित्त निगम (I F C) के कार्यों के विषय मे जब व्यापक सदेह फैला हुआ था तो सदस्यों ने यह मामला ससद म उठाया और जाँच समिति की नियुक्ति की गई। जीवन बीमा निगम (L I C) के धन को जब अनुचित रूप से मूँदड़ा फर्मों मे निवेश (Invest) किया गया तो इस सम्बन्ध म ससद मे प्रश्न उठाये गय और एक व्यक्ति के जाँच आयोग (Inquiry Commission) की नियुक्ति की गई। ससद ने अभी तक किसी भी ऐसे बड़े मामले को जिसका कि सामना किया जाना चाहिये था, यू ही नहीं छोड़ा है और यही ससद का कर्तव्य भी है।

सार्वजनिक लेखा समिति (P A C) तथा अनुमान समिति के अत्यधिक कार्य भार से लदे रहने की कठिनाई को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है

कि उप-समितियों (Sub-committee) की स्थापना के तरीके को कार्यान्वित करना लाभदायक हो सकता है। जहाँ तक संसद के पास समय की कमी का प्रश्न है, सरकारी उद्यमों से सम्बन्धित मामलों पर संसद द्वारा विचार करने के लिए पृथक् दिन निर्धारित किये जा सकते हैं। इस प्रकार, सरकारी उद्यमों से व्यवहार करने के लिए एक पृथक प्रवर समिति की स्थापना के पक्ष में कहने को बहुत कम ही रह जाता है।

सरकारी निगमों के साथ सरकार का वास्तविक सम्बन्ध
(Actual relationship of Government with the Public Corporations):

इस तथ्य से तो इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक सरकारी निगम की सफलता के लिए स्वायत्तता (Autonomy) अनिवार्य होती है, परन्तु (जैसा कि अन्य स्थान पर किया गया है)[1], भारत में सरकारी निगमों को केवल नाम मात्र की ही स्वायत्तता प्राप्त है और असलियत यह है कि उनके साथ सरकारी विभागों (Government departments) जैसा कि व्यवहार किया जाता है। प्रबन्ध (Management) के निगम-स्वरूप को अपनाने का उद्देश्य यह था कि इन उद्यमों को कार्य-संचालन में लोचशीलता प्रदान की जाए और उनको उन नियमों तथा विनियमों (Rules and regulations) के लागू होने से मुक्त रखा जाए, जो कि प्रशासन की सामान्य क्रियाओं के लिए बनाये जाते हैं। यह उद्देश्य तब से तो बहुत कुछ नष्ट सा ही हो गया है जब से कि उद्यमों का नियन्त्रण उन स्थायी सिविल अधिकारियों के हाथों में दे दिया गया है जो कि निर्देशक-मण्डलों (Boards of Directors) के लिए मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं। प्रथम लोकसभा की अनुमान समिति (Estimates Committee) ने अपने सोलहवें प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया "......समिति ने यह देखा है कि जहाँ तक इन उद्यमों तथा मन्त्रालय (Ministry) के बीच सम्बन्धों की बात है, उद्यमों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार किया जाता है जिस प्रकार कि सरकार के विभागों (Departments) तथा कार्यालयों (Offices) के साथ। उनका नियन्त्रण तथा निरीक्षण सचिवालय (Secretariat) द्वारा किया जाता है। इस प्रकार सरकारी उद्यम मन्त्रालयों के उपांग (Adjuncts) मात्र हो गये हैं और उनके साथ न्यूनाधिक रूप में उसी प्रकार का व्यवहार किया जाता है जैसा कि किसी भी अधीनस्थ संगठन अथवा कार्यालय के साथ किया जाता है। समिति इस प्रवृत्ति पर दुख प्रकट करती है जिसके कारण कि उद्यमों की उत्पादन क्रिया पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है क्योंकि उद्यम उस सब सामान्य लालफीताशाही तथा कार्य-प्रणाली सम्बन्धी देरियों के शिकार हो गये जो कि एक सरकारी विभाग में आमतौर पर पाई जाती हैं और उत्पादन (Production) पर जिनका गम्भीर अनुवर्ती (Consequential) प्रभाव पड़ा है।"[2] इसी प्रकार की भाषा में द्वितीय लोकसभा की अनुमान

---

1 देखिये "प्रबन्धक के स्वरूप"।

2 अनुमान समिति, १६ वां प्रतिवेदन, १९५४–५५, पृष्ठ ५.

समिति ने जहाजी निगमों (Shipping corporations) के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये अपने अड़तीसवें प्रतिवेदन में यह मत व्यक्त किया कि "निगमों का प्रबन्ध करने के लिये सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों (Senior officers) की नियुक्ति होने के कारण, निगमों के साथ सरकारी विभागों के ही विस्तार एवं अंगों (Parts) के रूप में व्यवहार किया जाता था उन्हें वाणिज्यिक (Commercial) पद्धति के अनुसार कार्य करने की अनुमति नहीं थी समिति को यह भी पता चला कि सरकारी क्षेत्र (Public sector) के निगमों को कुछ ऐसे प्रतिबन्धों के अधीन कार्य करना पड़ता था जो कि गैर-सरकारी क्षेत्र (Private sector) के निगमों पर लागू नहीं होते थे।" एक ऐसा प्रतिबन्ध (Restriction), जिसका कि समिति को पता चला यह था कि निगमों को इस बात की स्वाधीनता नहीं थी कि वे अपने अभिकर्त्ताओं (Agents) पर निरीक्षण रखने के लिए तथा अपने व्यवसाय के पक्ष में प्रचार करने के लिए भारत से बाहर अपने पदाधिकारियों को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर सकें जबकि गैर-सरकारी क्षेत्र की कम्पनियों को यह स्वाधीनता प्राप्त थी। मन्त्रालय के प्रतिनिधियों द्वारा गवाही के मध्य यह कहा गया कि "एक निजी जहाजी कम्पनी (Private Shipping Company) आस्ट्रेलिया में एक अधिकारी को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करने में समर्थ थी उन्होंने जहाजी भाड़े (Cargo) के पक्ष में प्रचार करने के लिए एक आदमी को भेजा। सरकारी क्षेत्र की कम्पनी को आस्ट्रेलिया में अपना आदमी भेजने की अनुमति नहीं थी जबकि निजी अथवा गैर-सरकारी कम्पनी रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से विदेशी विनिमय (Foreign exchange) प्राप्त करके अपना आदमी प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर सकती थी, निगम को प्रशासकीय तथा वित्त मन्त्रालयों से इसकी पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती थी और उसकी यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी जाती थी।"[1]

निगम के आन्तरिक प्रबन्ध में मंत्रालय द्वारा हस्तक्षेप करने का एक और भी नया उदाहरण हमारे सामने है जो यह सिद्ध करता है कि हमारे देश में निगमों और कम्पनियों का केवल बाह्य ढांचा ही वर्तमान है, वस्तुतः तो उनका संचालन सरकार के विभागों (Departments) के समान ही किया जाता था। जीवन-बीमा निगम (Life Insurance Corporations) के निवेश (Investment) की कहानी जनता के मन में अभी ताजी ही बनी हुई है और उसके सम्बन्ध में छागला आयोग (Chhagla Commission's) का प्रतिवेदन (Report) आँखें खोलने वाला है। ७ जनवरी सन् १९५८ को भारत सरकार द्वारा एक व्यक्ति के जाँच आयोग (Inquiry Commission) के रूप में बम्बई उच्च न्यायालय (High Court) के मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice) श्री एम० सी० छागला की नियुक्ति की गई थी। उस

१ द्वितीय लोकसभा की अनुमान समिति के ३८वें प्रतिवेदन में, (१९५१-५९) पृष्ठ १२-१३.

आयोग का कार्य मूंदड़ा (Mundhra) द्वारा प्रबन्ध की जाने वाली कम्पनियों में जीवन बीमा निगम की १ करोड़ ३८ लाख रु० की धनराशि के निवेश की जाँच पड़ताल करना था। जीवन बीमा निगम अधिनियम की धारा २१ का उल्लेख करके, जिसके अन्तर्गत कि केन्द्र सरकार सार्वजनिक हित से सम्बन्धित नीति के मामलों में *लिखित निर्देश (Written directions) दे सकती थी, श्री छागला ने कहा कि* "अधिनियम (Act) की धारा २१ में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है कि एक विधि द्वारा निर्मित निगम की स्वायत्तता (Autonomy) तथा उस पर नियन्त्रण के बीच सामञ्जस्य की आदर्श स्थिति क्या होनी चाहिये और एक कल्याणकारी राज्य (Welfare state) को ऐसे किसी भी निगम के साथ व्यवहार करते समय उस आदर्श सामञ्जस्य का पालन करना चाहिए तथा अपने दिन प्रति दिन के प्रशासन की व्यवस्था करने के लिए निगम को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए, और जब निगम को पालिसी-होल्डरों के हितों के अनुसार अपने धन का निवेश करने को स्वतन्त्र छोड़ा जाये तो *सरकार निगम की निर्णय करने की इच्छा पर केवल तभी नियन्त्रण लगा सकती है* जबकि नीति का कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित हो जाय जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक हित (Public interest) से हो। सरकार निगम से यह नहीं कह सकती कि वह किसी विशेष शेयर में अपना धन लगाये अथवा न लगाये, वह निगम से यह नहीं कह सकती कि उसे किसी विशेष उद्योग की सहायता करनी चाहिये तथा किसी विशेष व्यक्ति की सहायता करने के लिए तो *और भी नहीं कहना चाहिए ; परन्तु वह निगम से* कह सकती है कि उसे अपना धन कुछ ऐसे विशिष्ट उद्योगों में लगाना चाहिये जो कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सफल संचालन के लिए आवश्यक हों अथवा जो सरकार द्वारा निर्धारित किसी विशिष्ट आर्थिक अथवा वित्तीय नीति को प्रभावित करते हों।" श्री छागला ने कहा कि "यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जीवन बीमा निगम के मामले में धारा (Section) २१ में उल्लिखित इस विवेकपूर्ण एवं ठोस सिद्धान्त का पालन नहीं किया गया। गवाहियों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry) में कुछ ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती थी कि वह निगम को अपना ही एक शाखा अथवा प्रशाखा समझता था और यह मान कर उसको आदेश जारी करता था कि निगम उन आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य है।" निगम द्वारा किये *गये सौदे* (Transaction) को प्रभावित करने वाली बातचीत व पत्र-व्यवहार का अध्ययन करने के पश्चात् श्री छागला इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "वास्तव में यह निगम द्वारा अपने वैधानिक कर्तव्य तथा एच्छिक निर्णय के रूप में किया जाने वाला सौदा नहीं था। प्रमाण स्पष्ट है और इसमें सन्देह की कोई गुन्जाइश नहीं है कि यह सौदा सरकार के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप ही सम्पन्न हुआ था और इस सौदे को सरकार द्वारा आदेशित सौदे का नाम दिया जा सकता है ...।" इस सौदे से यह तो स्पष्ट है कि सदा इस बात का खतरा बना रहता है कि "सरकार निगम को आदेश दे सकती है यद्यपि वह स्वांग यही रचाती है कि वह केवल परामर्श दे रही है।" निगम के

प्रबन्ध निर्देशक (Managing Director) ने आयोग के सामने जो कुछ कहा उससे यह स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने कहा कि "जब भी वित्त सचिव (Finance Secretary) उनसे कुछ काम करने को कहते थे, वह उसको सरकार द्वारा दिया जाने वाला निर्देश ही समझते थे ।" भारत के महान्यायवादी (Attorney General) श्री सीतलवाड ने आयोग के सम्मुख दिये गए अपने वक्तव्य (Statement) के अन्त मे कहा कि "यदि नियुक्त किया गया अधिकारी अपनी पदोन्नति (Promotion) तथा अन्य बातों के लिए स्वय सरकार पर ही निर्भर रहा तो उसके लिए यह सम्भव नही होगा कि वह निगम के मामलो से निबटने म ठीक वैसे ही स्वतत्र मस्तिष्क से कार्य कर सके जैसा कि समुचित रीति से नियुक्त किय गए एक प्रधान (Chief) को करना चाहिये। इसमे व्यक्तियो का इतना दोष नही है जितना कि परिस्थिति का है।"

चूंकि भारत सरकार की घोषित नीति सरकारी क्षत्र (Public sector) का विस्तार करने की है, अत स्वायत्तता प्राप्त सरकारी उद्यमो के कुशल सचालन के लिए श्री छागला द्वारा दी गई सिफारिशो पर ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। उन्होंने निम्न सिफारिशें की—

(१) सरकार को स्वायत्तता प्राप्त परिनियत निगमो (Autonomous statutory corporations) के कार्य सचालन म हस्तक्षेप नही करना चाहिय और यदि व हस्तक्षेप करना चाहे ही, तो उन्हे लिखित म निर्देश (Directions) देन की जिम्मेवारी से नहीं बचना चाहिये।

(२) जीवन बीमा निगम जैसे निगमो के अध्यक्ष (Chairman) जिसे कि बडे पैमाने पर निवेशो (Investment) से व्यवहार करना पड़ता है, कि नियुक्ति एसे व्यक्तियों मे से की जानी चाहिये जिन्हे कि व्यावसायिक तथा वित्तीय क्षेत्र का अनुभव हो और जो शेयर बाजार की रीतियो एव विधियो से परिचित हो।

(३) यदि निगम के कार्य-पालक अथवा निष्पादक अधिकारी (Executive officers) सिविल सेवाओ मे से नियुक्त किये जाने हो तो उन पर यह प्रभाव डाला जाना चाहिये कि वे अपने कर्तव्यपालन के लिए निगम के प्रति उत्तरदायी हैं तथा उसक प्रति ही वे अपनी निष्ठा (Loyalty) कायम रखें और यह कि उन्हे सरकार के वरिष्ठ अधिकारियो से प्रभावित नही होना चाहिए अथवा न उन्हे अपने निर्णय ही उन (अधिकारियो) को देने चाहियें। यदि वे यह अनुभव करें कि वे उन वरिष्ठ अधिकारियों के आदेशो का पालन करने को बाध्य हैं तो उन्हें इस बात पर जार दना चाहिये कि उन्हे वे आदेश लिखित रूप म ही दिये जायें।

(४) जीवन बीमा निगम की निधियों (Funds) का उपयोग केवल पालिसी होल्डरो के लाभ के लिये ही किया जाना चाहिये, अन्य किसी अतिरिक्त उद्देश्य के लिए नही। यदि उनका उपयोग अन्य किसी भी अतिरिक्त अथवा बाहरी उद्देश्य के लिये किया ही जाना हो तो वह उद्देश्य 'राष्ट्र का हित' ही होना चाहिय।

(५) संसदीय पद्धति की सरकार के अन्तर्गत, मन्त्रियों (Ministers) को चाहिये कि वे प्रारम्भ में ही संसद (Parliament) को अपने विश्वास में ले लें। साथ ही, उन्हें सभी सम्बन्धित तथ्य तथा सामग्री संसद के सम्मुख रख देनी चाहिए। इससे वे कठिनाइयाँ तथा व्याकुलतायें दूर हो जायेंगी जो बाद में उस समय उत्पन्न होती हैं जबकि संसद अन्य स्रोतों से आवश्यक सूचनायें प्राप्त करती है।"[1]

इस तथ्य के विषय में दो मत नहीं हो सकते कि सरकारी उद्यमों के संचालन में सरकार का हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिये और इसको केवल नीति-सम्बन्धी निर्देश जारी करने तक ही सीमित रखा जाना चाहिये। साथ ही, ये निर्देश लिखित में होना चाहियें जिससे कि सम्बन्धित मन्त्री पर निश्चित रूप से उसका उत्तरदायित्व डाला जा सके। विविन बोस जाँच मण्डल (Vivin Bose Inquiry Board), जिसकी स्थापना मूदड़ा-सौदे के सम्बन्ध में जीवन बीमा निगम के पदाधिकारियों के *आचरण (Conduct) की जाँच करने के लिए की गई थी, ने भी यही विचार व्यक्त* किया कि निगम को कम स्वायत्तता (Autonomy) प्राप्त थी। इसके उत्तर में सरकार ने यह कहा कि ' निगम के स्वायत्तता के साथ कार्य करने" का मतलब है कि वह चार्टर (Charter) की शर्तों के अन्तर्गत तथा सरकार की नीति एवं समय-समय पर उसके द्वारा किये जाने वाले मार्ग-दर्शन के अनुरूप स्वतन्त्रता के साथ कार्य करे। निगम के उचित कार्य-संचालन के विषय में आश्वस्त रहने के लिये उसके पर्यवेक्षण (Supervision), मार्ग-दर्शन एवं निर्देशन की जिम्मेवारी सरकार पर आती है जिसे कि इस कार्य का भार इसलिये अपने ऊपर लेना पड़ता है ताकि वह संसद के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने में समर्थ हो सके। यह सरकार की जिम्मेवारी है कि वह उपयुक्त प्रतिकारात्मक (Remedial) कार्यवाही करे यदि, अथवा जब भी, निगम के कार्य-संचालन के लिए ऐसा करना आवश्यक हो। सरकार तथा निगम के बीच के सम्बन्धों की अत्यधिक औपचारिकता (Excessive formalisation) अवाञ्छनीय तो है ही, कार्य को भी असम्भव बना देगी। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि निगम को निर्देश देने के अधिकार से सम्बन्धित कानूनी धाराओं (Legal Provisions) का विश्लेषण इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिये कि जो सरकार को बातचीत अथवा पत्र-व्यवहार के अन्य स्रोतों, "जैसे कि अनौपचारिक विचार-विमर्श अथवा सम्मेलनों" का आश्रय लेने से रोके। ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता कि सरकार निगम के साथ अपने सम्बन्ध को केवल वैधानिक निर्देश देने तक ही क्यों सीमित रखे।"[2]

सरकार के इस मत को उचित ठहराना कठिन है कि निगमों के कार्य सम्पादन के लिये निगम अधिकारियों के साथ अनौपचारिक विचार-विमर्श अथवा सम्मेलनों (Informal discussions or conferences) का उपयोग किया जा सकता है।

---

1 एम सी छागला, हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनांक १०–२–५८।

2 विविन बोस जाँच मण्डल को सरकार का उत्तर, मई ३१, सन् १९५९।

निगम के निर्णयों को प्रभावित करने के इस तरीके से, यह निश्चित है कि भ्रम उत्पन्न होगा और हानिकारक परिणाम सामने आयेंगे। ससद 'पर्दे के पीछे' के मन्त्रीय प्रभावो की प्रकृति तथा उसके परिणामो से अनभिज्ञ रहेगी अत वह मन्त्रीय कार्यवाहियो के सम्बन्ध मे कोई प्रश्न नही उठा सकती। मन्त्रियो को केवल उन्ही मामलो के लिय ही जवाबदेह ठहराया जा सकेगा जितने लिये कि वे प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेवार हो। मण्डल को निर्देश देने के अपने अधिकारो का उपयोग कम करने से तथा बातचीत, और वह भी बहुधा मौखिक बातचीत द्वारा उनको प्रभावित करने की विधि को प्रमुखता देने से, वे प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व से बच जाते हैं। इस स्थिति मे जब मन्त्री ससद मे आते हैं तो इस आधार पर प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर सकते हैं कि इसमे कतई उनकी जिम्मेवारी नही है। निर्देश (Direction) लिखित रूप मे ही जारी किये जाने चाहियें, अन्यथा मन्त्री अपने गलत कार्यो अथवा आदेश दिये हुये कार्यो के लिये उत्तरदायी नही ठहराये जा सकते। अनुत्तरदायी कार्यपालिका की उत्पत्ति ससदीय जनतन्त्र के लिए एक खतरा है।

निगमो मे गैर-सरकारी व्यक्तियो की नियुक्ति से सम्बन्धित श्री छागला की सिफारिश निश्चय ही प्रशसनीय है। परन्तु देश मे ऐसे योग्य गैरसरकारी व्यक्तियो का अभाव होने के कारण और कोई विकल्प ही नही रहता तथा निगमो का प्रबन्ध करन के लिए सिविल अधिकारी ही नियुक्त करने पडते हैं। अत इस खराब स्थिति को ही अच्छा बनान के लिए यह किया जाना चाहिये कि सरकारी उद्यमो के प्रबन्ध के लिये नियुक्त किये जाने वाले अधिकारी उन सेवाओ से त्याग-पत्र दे दें जिनसे कि वे सम्बन्धित हो और फिर औद्योगिक प्रबन्ध के क्षेत्र मे ही वे अपने जीवन-क्रम (Career) का निर्माण करें। सरकारी उद्यमो मे अब जो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं वे वहाँ केवल अस्थायी होते हैं अत वे केन्द्रीय मन्त्रालया के अपने उन वरिष्ठ अधिकारिया के प्रभाव मे रहते है जिन पर कि मुख्यत उनकी पदोन्नति निर्भर होती है। उन्हे ऐसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव की सीमा से बाहर ही रखा जाना चाहिये। ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जबकि वे अपनी पहली सेवाओ से मुक्त हो जायें और उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करलें। यदि इस सुझाव को प्रयोगात्मक रूप न दिया गया, तो निगम सरकारी विभागो के अधीनस्थ ही रहेंगे और जीवन बीमा निगम जैसी घटनायें बराबर घटित होती रहगी।

कुछ नवीनतम प्रवृत्तियाँ
(Some Recent Developments)

ब्रिटिश ससद तथा समाचार पत्रों मे लम्बे वाद-विवाद के बाद २० दिसम्बर १९५६ को "राष्ट्रीयकृत उद्योगो पर एक प्रवर समिति" (Select Committee on Nationalized Industries) की नियुक्ति की गई थी। यह समिति निगमो

(Corporations) के वार्षिक प्रतिवेदनों तथा हिसाब किताब का अध्ययन करती है।[1] ब्रिटेन में इस समिति के कार्यों से जनता को काफी सन्तोष प्राप्त हुआ है। कामन्स सभा के लिए भी इस प्रकार समिति के प्रतिवेदन बहुत मूल्यवान सिद्ध हुए हैं। किन्तु समिति के कार्यों की सफलता बहुत कुछ कार्यकुशल स्टाफ-सहायता पर निर्भर है। इस समिति के एक भूतपूर्व अध्यक्ष के अनुसार समिति को प्रतिवर्ष केवल एक उद्योग का आद्योपान्त अध्ययन करना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा है कि "जहाँ तक समिति के भविष्य के विषय में मेरे विचारों का प्रश्न है मेरा सुझाव यह है कि समिति को तथ्यों तथा बड़े बड़े प्रश्नों पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए तथा छोटी छोटी बातों पर समय नष्ट करने से बचना चाहिए।"[2]

भारत में भी कृष्ण मेनन समिति के सुझाव पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति, जो राजकीय उद्यमों के कार्यों की जाँच करे, की स्थापना का निश्चय काफी पहल कर लिया गया था। सुझाव यह था कि समिति सरकारी उद्यमों के वार्षिक प्रतिवेदनों व हिसाब-किताब की जांच करे तथा यह बताये कि वे श्रेष्ठ तथा स्वस्थ व्यावसायिक नियमों के अनुसार कार्य कर रहे हैं या नहीं। यह भी प्रस्तावित किया गया था कि अनुमान समिति (Estimates Committee) तथा सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) के कुछ कार्य १५ सदस्यों की इस संयुक्त समिति को सौंप दिये जायें।

२३ नवम्बर १९६१ को सरकार ने लोक सभा में यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति बनायी जाये जिसमें १० सदस्य लोक सभा के हों तथा ५ राज्य सभा के। लोक सभा के सदस्यों ने राज्य सभा को समिति पर प्रतिनिधित्व देने पर आपत्ति व्यक्त की। यह तर्क दिया गया कि क्योंकि प्रस्तावित समिति राजकीय उद्यमों के वित्तीय पहलुओं का निरीक्षण करेगी तथा अनुमान समिति व सार्वजनिक लेखा समिति के कुछ कार्यों को सम्पन्न करेगी इसलिए राज्य सभा के सदस्यों को, जिसके पास वित्तीय शक्तियाँ नहीं हैं, इसके साथ सम्बन्धित करना सर्वथा अनुचित होगा।[3]

सरकार ने अपना प्रस्ताव वापिस ले लिया तथा एक संशोधित प्रस्ताव रखा उसमें कहा गया कि राज्य सभा के ५ सदस्यों का दर्जा "सहायक" (Associate सदस्य का होगा। यह भी प्रस्तावित किया गया कि जब समिति वित्तीय प्रश्नों पर विचार कर रही हो तो राज्य सभा के सदस्य उसकी बैठकों में भाग नहीं ले सकेंगे।

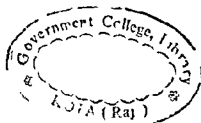
1 For details refer to William A Robson *Nationalized Industry and Public Ownership*, George Allen and Unwin Ltd, London, 1966, A H Hanson, '*Parliament and Public Ownership*', Published for the Hansard Society by London, 1961, pages 149—173

2 Sir Toby Low, 'The Select Committee on Nationalized Industries", Public Administration (London) *Spring 1962, Vol 40, page 14*

3 *For details refer to* House of People Debate, *November 23, 1961*

राज्य सभा के सदस्यों ने इस प्रस्ताव पर दोष व्यक्त किया तथा "सहायक सदस्य" वाले दर्जे को अपमानजनक बताया। उन्होंने कहा कि यह उच्च सदन के सम्मान पर एक आघात है और इसका अर्थ सम्पूर्ण सदन को एक निम्न दर्जा प्रदान करना है। दोनों सदनों मे इस विषय पर वाद-विवाद इतना कटु हो गया कि सरकार को यह प्रस्ताव भी वापिस लेना पड़ा।[1]

राष्ट्रीय उद्यमों पर एक संसदीय समिति की स्थापना को सभी आवश्यक समझते हैं। सरकार ने प्रस्तावित समिति को दिये जाने वाले कार्य भी तय कर रखे हैं। समिति का सरकार के व्यापक नीति विषयक प्रश्नों तथा राष्ट्रीय उद्यमों के दैनिक कार्यों से कोई सरोकार नहीं होगा। किन्तु समिति की रचना पर अभी तक कोई निश्चय नहीं हो पाया है। लोक-प्रशासन के विद्यार्थीगण राष्ट्रीय उद्यमों पर एक पृथक संसदीय समिति के प्रस्तावित परीक्षण (Experiment) की तीव्र उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं।



1 Refer to House of People Debate and Rajya Sabha Debate August 28th, 1962

९

प्रशासन के स्तर
(Levels of Administration)

भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच सम्बन्ध
(Relations between the Centre and the States in India) :

भारत के संविधान द्वारा देश के लिए संसदीय शासन व्यवस्था (Federal system of government) की स्थापना की गई है। संघीय शासन-व्यवस्था की मूलभूत बात है केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन। दोनों में से किसी भी एक का दूसरी सरकार की शक्ति एवं सत्ता अपने हाथों में ले लेने का अधिकार नहीं है। 'संघीय सिद्धान्त से तात्पर्य है कि किसी भी देश की राष्ट्रीय सरकार *(National government) तथा संघ में सम्मिलित होने वाली सरकारें* अपने अपने सम्बन्धित क्षेत्र में एक दूसरे से स्वतन्त्र रहेंगी, कोई भी एक दूसरे के अधीनस्थ (Subordinate) नहीं होगी, बल्कि परस्पर समवर्गीय होंगी।'

संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण
(The Distribution of powers between the Union and the States)

भारतीय संविधान (Indian constitution) के अनुसार तीन सूचियों (Lists) में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी सत्ता (Legislative authority) का विभाजन किया गया है—अर्थात् संघ-सूची (Union list), राज्य सूची (State List) और समवर्ती सूची (Concurrent list)। संघीय संसद को संघ सूची में उल्लिखित ९७ विषयों पर विधि (Laws) निर्माण की 'पूर्ण सत्ता' प्राप्त है।

इन विषयों में महत्वपूर्ण ये हैं विदेशी सम्बन्ध, युद्ध, शान्ति तथा सन्धियाँ, नागरिकता और विदेशियों का देशीयकरण, भारत में प्रवेश, और उनमें से प्रवासन व देशान्तरवास, प्रत्यर्पण (Extradition), रेलों और राष्ट्रीय महत्व के राज-पथों (Highways) सहित संचार के साधन, नौ-वहन (Shipping), नौ-परिवहन (Navigation) तथा वायु मार्ग (Airways), डाक और तार, टेलीफोन, बेतार (Wireless) तथा प्रसारण (Broadcasting), संघ का लोक-ऋण, मुद्रा-टंकण *(Coinage)*, विधिमान्य *(Legal tender)*, विदेशी और *अन्तर्राज्यीय व्यापार व* वाणिज्य, बैंकिंग, बीमा तथा वित्तीय निगम, एकस्व (Patents) और व्यापारिक

चिन्ह् (Trademarks) राष्ट्रीय महत्व के उद्योग , कुछ सीमाओं के अन्तर्गत खानो तथा खनिजो का विकास , मछली पालन व मीन-क्षेत्र , नमक, अफीम, प्रदर्शन के लिए चल-चित्रों की स्वीकृति, देहली, बनारस हिन्दू तथा अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय महत्व की वैज्ञानिक तथा शिल्पिक संस्थायें, ऐतिहासिक स्मारक (Historical monuments), जनगणना (Census) तथा भूमाप (Survey), संघ सेवायें, संघ तथा राज्यों के निर्वाचन (Elections), संघ तथा राज्यों के लेख (Accounts) तथा लेखा-परीक्षण (Audit), उच्चतम और उच्च न्यायालयो (Supreme and high courts) की रचना और संगठन कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर, सीमा शुल्क (Customs), मद्यसार सम्बन्ध पेय पदार्थों, अफीम, भाग तथा अन्य नशीले पदार्थों को छोड़कर अन्य सब वस्तुओं पर उत्पादन कर (Excise duties), निगम कर, कुछ अपवादो (Exceptions) के साथ परिसम्पत्तियो (Assets) के पूँजीगत मूल्य पर कर (कृषि भूमि को छोड़कर), आस्तिकर (Estate duties) तथा उत्तराधिकार कर (Succession duties), यात्रियो अथवा वस्तुओं पर सीमा कर (Terminal taxes), शेयर बाजार और वायदा बाजार के सौदो पर कर, विनिमय-पत्रो (Bills of exchange) व चैकों आदि पर मुद्रांक शुल्क (Stamp duty), समाचार-पत्रो के क्रय या विक्रय पर तथा उनमे प्रकाशित होने वाले विज्ञापनो पर कर, संघ सूची के विषयो के सम्बन्ध मे फीस, उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयो के इस सूची मे के विषयो मे से किसी के सम्बन्ध मे क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ (Jurisdiction and powers)।

राज्य सूची (State list) मे ऐसे ६६ विषय सम्मिलित किये गये हैं जिन पर कि सामान्यत राज्य कानून बना सकते हैं। ये विषय संघ सरकार के विधायी क्षेत्राधिकार (Legislative jurisdiction) से बाहर रखे गये हैं।

इन विषयो मे महत्वपूर्ण ये हैं सार्वजनिक व्यवस्था (Public order), पुलिस व न्याय प्रशासन, उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयो को छोड़कर अन्य न्यायालयो की रचना तथा संगठन, जेलें, स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य व स्वच्छता, चिकित्सालय व औषधालय, मादक पेय पदार्थ, शिक्षा (उसको छोड़कर जो कि संघ सरकार के आधीन है), सड़कें तथा जल-मार्ग (Waterways), कृषि सिचाई, कुछ प्रारक्षणो के अन्तर्गत भूमि पट्टा (Land tenure), वन, उद्योग तथा वाणिज्य, बाट और माप (Weights and measures), निगमन (Incorporation), नाट्यशालायें (Theatres), तथा चल-चित्र (Cinema), राज्य लोक सेवायें, राज्य का लोक ऋण (Public debts), मालगुजारी, कृषि-आय पर कर, कृषि-भूमि के उत्तराधिकारी के विषय में कर, कृषि-भूमि पर आस्ति कर (Estate duties), भूमि, भवनो तथा खनिज-अधिकारो (Mineral rights) पर कर, मादक पेय पदार्थों, अफीम, भाग तथा अन्य नशीली वस्तुओं पर उत्पादन कर (Excise duties), किसी स्थानीय क्षेत्र मे उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओं के प्रवेश पर कर,

बिजली के उपभोग या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर, पशुओं और गाड़ियों पर कर, व्यवसायों व व्यापारों पर कर, विलासिता की वस्तुओं (Luxuries) तथा मनोरंजन पर कर; बाजी लगाने (Betting) तथा जुआ खेलने पर कर, प्रति व्यक्ति कर (Capitation taxes), मुद्रांक शुल्क (Stamp duties), और किसी न्यायालय में लिए जाने वाले शुल्कों को छोड़कर इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में शुल्क।

सीमावर्ती सूची में जिन ४७ विषयों का उल्लेख किया गया है वे 'संघ तथा राज्य सरकारों दोनों ही के समवर्ती क्षेत्राधिकार में आते हैं।' आमतौर पर किसी समवर्ती विषय पर बनाये जाने वाले संघीय कानून का राज्य की विधि या कानून (State law) से मतभेद हो तो उस मतभेद की सीमा तक संघीय कानून ही उच्च माना जाता है परन्तु यदि किसी राज्य विधि को रक्षित करने के पश्चात् उस पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर ली गई हो तो उसको संघीय विधान की अपेक्षा *प्रमुख स्थान प्राप्त होता है।*

इनमें से अधिक महत्वपूर्ण विषय ये हैं दण्ड विधि (Criminal law) तथा दण्ड प्रक्रिया, निवारक निरोध (Preventive detention), विवाह और विवाह-विच्छेद (तलाक), इच्छापत्र हीनत्व (Intestacy), *दत्तकग्रहण (Adoption) तथा* उत्तराधिकार (Succession), कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों का हस्तान्तरण, पञ्जीकरण (Registration) संविदा (Contracts), दिवाला (Bankruptcy), न्यास (Trusts), गवाही और शपथें (Evidence and oaths), उन्माद (Lunacy), खाद्य पदार्थों और अन्य वस्तुओं में हीन मिलावट (Adulteration), औषधियाँ तथा अन्य वस्तुयें, औषधियाँ और विष, आर्थिक और सामाजिक नियोजन, मजदूर संघ (Trade unions) और श्रम-विवाद तथा कल्याण, विधि के अनुकूल वैद्यक तथा अन्य वृत्तियाँ (Professions), जीवनांक (Vital statistics), अन्तर्देशीय जल पथों (Inland waterways) पर यन्त्रचालित यानों (Mechanically propelled vessels) द्वारा नौवहन (Shipping) और नौ परिवहन (Navigation) उत्पादन पूर्ति (Supply) तथा औद्योगिक उपजों एवं खाद्य पदार्थों के वितरण पशुओं के चारे कपास, बिनौले और कच्चे जूट का नियन्त्रण,[1] जहाँ पर भी यह आवश्यक हो, मूल्य नियन्त्रण, समाचार-पत्र और मुद्रणालय (Press), निष्क्रान्त सम्पत्ति (Evacuee property), अधिगृहीत (Acquired) सम्पत्ति के लिए क्षतिपूर्ति (Compensation) का निर्धारण, न्यायिक मुद्रांकों (Judicial stamps) द्वारा संगृहीत शुल्कों अथवा फीसों को छोड़कर अन्य मुद्रांक शुल्क (Stamp duties) और इस सूची में के विषयों में से किसी के बारे में फीसें।

1 सन् १९५४ के संविधान संशोधन (तृतीय) अधिनियम द्वारा परिवर्धित।

अन्त मे, सभी अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary powers) अर्थात् वे विषय जिनका उल्लेख विशिष्ट रूप म (अथवा व्यावहारिक रूप म) तीनो सूचियो मे नही है, संघ सरकार के क्षेत्राधिकार मे रखी गई है।

शक्तिशाली केन्द्र (Strong centre)

भारतीय सविधान (Indian Constitution) के द्वारा एक अत्यन्त शक्तिशाली केन्द्र का निर्माण किया गया है। सविधान को अनेक बार अर्ध सघात्मक (Quasi-federal) कहा गया है। के० सी० वियर (*K C Wheare* के अनुसार "भारत सहायक एकात्मक लक्षणो (Subsidiary unitary features) से युक्त एक सघात्मक राज्य होने की अपेक्षा सहायक सघात्मक लक्षणो (Subsidiary federal features) से युक्त एक एकात्मक राज्य है।" 'भारतीय सविधान का रूप तो सघात्मक है किन्तु वास्तविक अर्थ मे वह एकात्मक ही है।' सघात्मक सरकार को राज्य के मामलो मे हस्तक्षेप करने की भारी शक्तिया प्राप्त है।

राज्य के विषयो पर विधि निर्माण करने की सघीय ससद की शक्ति

(The Power of the Union Parliament to legislate on the State subjects) :

कुछ परिस्थितियो के अन्तर्गत सघीय ससद शुद्ध रूप मे राज्य के विषयो पर भी विधि निर्माण कर सकती है।

सर्वप्रथम, सविधान ससद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह 'राष्ट्रीय हित' मे राज्य सूची मे आये हुए किसी भी विषय के सम्बन्ध मे कानून बना सकती है। यद्यपि राज्य विधान मण्डल को राज्य सूची के विषयो के सम्बन्ध मे विधि (Laws) बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है, किन्तु यदि राज्य परिषद् (Council of States) ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यो की दो तिहाई से अन्यून (Not less) सख्या द्वारा समर्थित प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित मे यह आवश्यक या इष्टकर है कि ससद राज्य सूची मे प्रगणित और इस प्रस्ताव मे उल्लिखित किसी विषय के बारे म विधि बनाये तो जब तक वह प्रस्ताव लागू है ससद के लिए उस विषय के बारे मे भारत मे सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए कानून बनाना विधि सगत (Lawful) होगा। राज्य परिषद् द्वारा पारित (Passed) ऐसा प्रस्ताव एक वर्ष मे अनधिक (Non Exceeding) ऐसी कालावधि के लिए लागू रहेगा जैसी कि उसमें उल्लिखित हो।[1]

दूसरे, ससद दो या अधिक राज्यो के लिए उनके विधान मण्डलो (Legislatures) द्वारा प्रस्ताव के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर राज्य विषयो पर विधि निर्माण कर सकती है। ऐसा सामान्य विधान, तत्पश्चात् अपने विधान-मण्डलो के प्रस्ताव द्वारा अन्य राज्यो द्वारा भी अगीकार किया जा सकता है। सविधान 'राज्यो की सम्मति से' उनके लिए विधि बनाने की शक्ति ससद को प्रदान करता है।[2]

1 अनुच्छेद २४६
2 अनुच्छेद २५२

तीसरे संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई किसी संधि (Treaty) करार (Agreement) या अभिसमय (Convention) अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (Conference), संघ या अन्य संस्था में किये गये किसी निश्चय के परिपालन के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिये कोई भी विधि (Law) बनाने की शक्ति प्राप्त है। संसद द्वारा पारित ऐसी विधियां युद्ध रूप से राज्य के विषयों पर लागू हो सकती हैं।[1]

चौथे जब राष्ट्रपति (President) द्वारा आपत्काल की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) कर दी जाती है तो उस आपत्कालीन अवधि के लिये संविधान (Constitution) वास्तविक रूप से एकात्मक (Unitary) हो जाता है। ऐसी स्थिति में संसद केवल संघ-सूची तथा समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि राज्य सूची के विषयों के सम्बन्ध में भी कानून बना सकती है। संसद को, जब तक आपत्काल की उद्घोषणा प्रवर्तन में (In-operation) है, भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये राज्य-सूची में प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि निर्माण करने की शक्ति प्राप्त है। संसद द्वारा निर्मित ऐसी कोई भी विधि, जिसे संसद आपत्काल की उद्घोषणा के अभाव में बनाने में समर्थ न होती, उद्घोषणा के प्रवर्तन की समाप्ति के पश्चात् ६ मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन सब बातों के अतिरिक्त प्रवर्तनहीन होगी जो उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई हैं।[2]

पाँचवें और अन्ततः किसी भी राज्य में संवैधानिक यन्त्रव्यवस्था के असफल हो जाने की स्थिति में, राष्ट्रपति उद्घोषणा के द्वारा संसद को उस राज्य के लिए राज्य-सूची से सम्बन्धित विषयों पर विधि बनाने का प्राधिकार प्रदान कर सकता है।[3]

केन्द्र को अन्य भी ऐसी शक्तियां प्राप्त हैं जो राज्यों की शक्तियों से उच्च होती हैं। राज्यों के क्षेत्रों में संघीय विधि (Union law) द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है। संसद विधि द्वारा वर्तमान राज्यों (States) में से किसी के भी क्षेत्र का पुनर्वितरण करके अथवा उनके क्षेत्रों का एकीकरण करके नये राज्य का निर्माण कर सकती है और यह किसी भी राज्य के नाम, उनकी सीमाओं (Boundaries) अथवा क्षेत्र में भी परिवर्तन कर सकती है। इसी प्रकार अनुपूरक (Supplemental), प्रासंगिक (Incidental) और आनुषङ्गिक (Consequential) परिवर्तन भी किये जा सकते हैं। ऐसी विधि (Law) बनाने के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश पर संसद में विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया जा सकता है और सिफारिश करने से पहले राष्ट्रपति के

---

1 अनुच्छेद २५३

2 अनु० २५०

3 अनु० ३५६ (१) (ख) अनु० ३५७ (१) और (२)

लिये यह आवश्यक है कि यह विधेयक के प्रस्तुत किए जाने के प्रस्ताव के सम्बन्ध में उस विधेयक के उपबन्धों के बारे में सम्बन्धित राज्य के विधान-मण्डल (Legislature) के विचार निश्चित रूप से जान लें।[1]

इन सब उपबन्धों (Provisions) से यह स्पष्ट है कि संघ सरकार राज्य सरकारों से अधिक शक्तिशाली है। संघ सरकार में सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीयकरण कर दिया गया है। केन्द्र एक ऐसी विशालकाय मूर्ति के सदृश देश पर शासन करता है जिसको कि ९७ अनन्य शक्तियां प्राप्त हैं जिनमें उसकी समवर्ती (Concurrent) किन्तु सर्वोच्च शक्तियां तथा साथ ही साथ विधान की वे अवशिष्ट शक्तियाँ (Residual powers) भी जोड़ दी जानी चाहियें जोकि उसमें निहित हैं। संघ को विस्तृत आपातकालीन शक्तियां भी प्रदान की गई हैं। सामान्य काल तथा आपत्काल, दोनों ही समयों में राज्यों पर संघ की सर्वोच्च स्थिति बनी रहती है।

केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासकीय सम्बन्ध
(Administrative Relations between the Centre and the States)

भारत में संघ-राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों का गठन इस प्रकार किया गया है जिससे कि संघ सरकार राज्यों की प्रशासनिक यन्त्र-व्यवस्था पर महत्वपूर्ण एवं ठोस निर्देशन तथा नियन्त्रण लागू करने में समर्थ हो सके। संघ-राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों का रूप-निर्धारण द्विमुखी उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से किया गया है प्रथम तो संघीय संसद के विधायी क्षेत्राधिकार (Legislative jurisdiction) के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर प्रभावशाली संघीय कार्यपालिका नियन्त्रण (Federal executive control) लागू करने के विषय में निश्चिन्त होने के लिये, और दूसरे संघ तथा राज्यों की प्रशासनिक यन्त्र-रचनाओं के बीच विवाद की सम्भावनाओं को न्यूनतम करने के लिये। इस व्यवस्था से राज्यों के सम्मुख केन्द्र की स्थिति अधिक शक्तिशाली एवं नियन्त्रणकारी बन गई है।

संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा कि जिससे संसद द्वारा निर्मित विधियों का पालन सुनिश्चित रहे और संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन या प्रतिकूल प्रभाव न हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघ राज्यों को आवश्यक निर्देश (Directions) दे सकता है। संघ ऐसे संचार के साधनों (Means of communication) का निर्माण करने और उन्हें बनाए रखने के लिए भी राज्यों को निर्देश दे सकता है जिन्हें कि निर्देश में राष्ट्रीय या सैनिक महत्व का घोषित कर दिया गया हो। संघ राज्यों की सीमाओं में रेलों की सुरक्षा के लिए भी राज्यों को निर्देश दे सकता है। ऐसे निर्देश के पालन में राज्यों द्वारा जो अतिरिक्त खर्च किया जायेगा, संघ उसका भुगतान राज्यों को करेगा।[2]

---

1 अनु० ३ और ४

2 अनुच्छेद २५६, २५७ (१), (२), (३) और (४)

यदि कोई राज्य संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल रहता है तो राष्ट्रपति संविधान (Constitutions) के अनुच्छेद (Article) ३५६ के अन्तर्गत राज्य में वैधानिक सरकार के भंग होने की उद्घोषणा कर सकता है और राज्यपाल (Governor) अथवा अन्य किसी राज्य प्राधिकारी की सब शक्तियां स्वयं अपने हाथों में लेने के लिए कार्यवाही कर सकता है। ऐसी उद्घोषणा (Proclamation) के अन्तर्गत, किसी विशिष्ट राज्य के सम्बन्ध में भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का संघीय आधार निलम्बित (Suspend) किया जा सकता है। आपत्काल की उद्घोषणा (Proclamation of emergency) के प्रवर्तन के काल में, संघ *सरकार सभी राज्यों की विधायी तथा प्रशासकीय शक्तियां अपने हाथों में ले सकती है* और इस प्रकार सम्पूर्ण देश के लिए संघीय राज्यशासन की कार्यप्रणाली को निलम्बित कर सकती है। राज्यों को अपनी कार्यपालिका सत्ता का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि जिससे संघीय विधियों का पालन सुनिश्चित रहे और संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन या प्रतिकूल प्रभाव न हो।

राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार की सम्मति से ऐसे किसी भी विषय से सम्बन्धित कार्य, जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, उस राज्य सरकार के पदाधिकारियों को सौंप सकता है। ऐसे विषय से, जोकि राज्य के विधायी क्षेत्राधिकार (Legislative jurisdiction) से बाहर का हो, सम्बद्ध होने पर भी संसद द्वारा निर्मित विधि, *जो किसी राज्य में लागू है, उस राज्य के पदाधिकारियों को शक्ति दे सकेगी और कर्तव्य आरोपित कर सकेगी। यह स्पष्ट है कि संघ* सरकार के निर्देशों पर संसद द्वारा निर्मित ऐसी विधियों के प्रयोग में राज्य प्रशासन को जो अतिरिक्त खर्चा करना पड़ेगा वह संघ द्वारा अदा किया जायेगा।[1]

संघ सरकार को बाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से राज्यों को संरक्षण प्रदान करना होता है और इस बात के विषय में आश्वस्त होना पड़ता है कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों (Provisions) के अनुसार चलाई जा रही है। अपने इन कर्तव्यों को पूरा करने के लिये संघ सरकार को राज्यों के *मामलों में हस्तक्षेप भी करना पड़ सकता है।*[2]

अनुच्छेद २६० *संघ सरकार को इस बात का अधिकार देता है कि वह अन्य सरकारों से करार (Agreement) करके भारत से बाहर के राज्य-क्षेत्रों (Terri*tories) के सम्बन्ध में अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार कर सके। अनुच्छेद २६१ में इस बात की व्यवस्था है कि भारत के राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र, संघ की और प्रत्येक राज्य की सार्वजनिक क्रियाओं, अभिलेखों (Records) और न्यायिक कार्यवाहियों (Judicial proceedings) को पूरा विश्वास तथा पूरी मान्यता प्रदान की जानी चाहिये।

1 अनु० २५८ (१), (२) और (३)

2 अनु० ३५५

अनुच्छेद २६२ संसद को यह अधिकार देता है कि वह अन्तराज्यीय नदियों अथवा नदी-घाटियों (River valleys) से सम्बन्धित विवादों के न्याय निर्णयन (Abjudication) के लिये विधियों का निर्माण कर सके। संसद विधि द्वारा यह भी उपलब्ध कर सकेगी कि उच्चतम न्यायालय अथवा कोई न्यायालय ऐसे किसी भी विवाद के सम्बन्ध मे अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग न कर सकेगा।

अनुच्छेद २६३ राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह राज्यों के बीच उत्पन्न विवादों के सम्बन्ध मे अथवा ऐसे मामलो के सम्बन्ध म, जो कुछ या सब राज्यो के अथवा संघ और एक या अधिक राज्यो के पारस्परिक हित से सम्बद्ध हो, जाच करने तथा सिफारिशे करने के लिए एक अन्तर्राज्य परिषद् (Inter-state council) की स्थापना कर सके।

संघ सरकार को, कतिपय ऐसे मामलो का नियमन करने के लिये जोकि राज्यो को भी प्रभावित करते हैं, कुछ शक्तिया प्राप्त है। इस प्रकार, संघ तथा राज्यो के सभी निर्वाचनो (Elections) का अधीक्षण (Superintendence), निर्देशन (Direction) तथा नियन्त्रण (Control) संघ के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये गये एक निर्वाचन आयोग (Election Commission) मे निहित होगा।[1] भारत के नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) को संघ तथा राज्य सरकारो, दोनो के ही लेखो अथवा खातो (Accounts) तथा लेखा परीक्षणो (Audit) का पर्यवेक्षण एव नियन्त्रण करना होता है।[2] राष्ट्रपति को कुछ परिस्थितियों मे राज्यों के लोक सेवा आयोगो (Public Service Commissions) के अध्यक्ष तथा सदस्यो को हटाने की शक्ति प्राप्त है।[3] अनुसूचित आदिम जातियों (Scheduled tribes) और पिछड़े हुए वर्गों (Backward classes) के कल्याण का कार्य राष्ट्रपति की विशिष्ट देख-रेख के अन्तर्गत रखा गया है जोकि उनकी दशा की जाच पड़ताल करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति कर सकता है और आयोग की सिफारिशो को दृष्टिगत रखते हुए, उनकी दशाओ को सुधारने के लिए राज्यो को निर्देश दे सकता है।[4] राज्यो के उच्च न्यायालयो (High Courts) का विधान तथा सगठन संघीय विषय (Union subject) है और उनके न्यायाधीश (Judges) राष्ट्रपति द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं, हटाये जाते हैं तथा स्थानान्तरित (Transfer) किये जाते है।[5] राज्य प्रशासन के उच्च पदाधिकारी अखिल भारतीय सेवाओ—भारतीय प्रशासन सेवा (I A S) तथा भारतीय पुलिस सेवा (I P S) आदि—से सम्बद्ध होते हैं। इसमे कोई सन्देह नही कि इन सेवाओ के पदाधिकारी

1 अनुच्छेद ३२४
2 अनु० १५० और १५१
3 अनु० ३१७
4 अनु० ३३६
5 अनुच्छेद २१७

राज्यों में कार्य करते हैं, परन्तु उनकी भर्ती (Recruitment) तथा सेवाओं की शर्तें आदि सब केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित की जाती हैं।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्ध
(Finance Relations between the Centre and the States) :

भारत संसदीय पद्धति की सरकार से युक्त एक संघ-राज्य है। संघ में वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने-अपने सम्बन्धित क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) में केन्द्र तथा राज्य सरकारों पर ही अवलम्बित रहता है।

संघीय पद्धति की मूलभूत बात है केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन, जिसमें अपने-अपने क्षेत्राधिकार में दोनों को ही सर्वोच्चता प्राप्त होती है। इस संघीय सिद्धान्त को समुचित रूप से कार्यरूप में परिणत करने के लिए यह आवश्यक है कि वित्तीय साधनों पर राष्ट्रीय सरकार तथा प्रत्येक राज्य सरकार (इकाई) का यथेष्ट मात्रा में स्वतंत्र नियंत्रण कायम रहे जिससे कि वे अपने अनन्य कार्यों को सम्पन्न कर सकें। संघीय वित्त (Federal finance) की एक आदर्श पद्धति के लिए यह जरूरी है कि संघ तथा राज्य सरकारों के बीच राजस्व के स्रोतों (Sources of revenue) का स्पष्ट विभाजन हो जिससे कि प्रत्येक पक्ष को परस्पर वित्तीय दृष्टि से स्वतंत्र बनाया जा सके। परन्तु यह पाया गया है कि संसार के किसी भी संघ-राज्य के लिए इस सिद्धांत का अनुसरण करना बड़ा कठिन रहा है। वित्तीय विभाजन के इस संघीय सिद्धांत के अनुसरण करने का निकटतम प्रयत्न संयुक्त राज्य अमेरिका में किया गया है, यद्यपि वहाँ भी अभी हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि राज्यों को संघीय सहायक अनुदान (Grants-in-aid) दिये जाने लगे हैं। अन्य संघ-राज्यों में या तो संघ सरकार राज्य सरकारों (इकाइयों) के साधनों में अपना अंशदान (Contribution) देती है जैसे कि कनाडा व आस्ट्रेलिया आदि में, अथवा राज्य संघीय राजकोष (Federal Exchequer) अंशदान देते हैं जैसे कि स्विट्जरलैंड में।

संयुक्त राज्य साधनों का विभाजन
(The Division of Resources in the United States)

अमेरिका संविधान के अनुच्छेद (Article) १ की धारा (Section) ८, ९ व १० के द्वारा वित्तीय साधनों को केन्द्र तथा राज्य के बीच बांटा गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद १ की ८वीं धारा में यह व्यवस्था दी गई है कि "कांग्रेस को करों, शुल्कों, महसूलों व उत्पादन करों के लगाने व उनका संग्रह करने की, ऋणों की अदायगियाँ करने की तथा संयुक्त राज्य की सामूहिक प्रतिरक्षा व सामान्य कल्याण के लिए व्यवस्था करने की शक्ति प्राप्त होगी, परन्तु समस्त संयुक्त राज्य (United States) में सम्पूर्ण करों, महसूलों तथा उत्पादन करों की एकरूपता बनी रहेगी।"

इस प्रकार, संयुक्त राज्य अमेरिका मे, संघीय राजस्व (Federal revenue) के प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं —

मद्य व तम्बाकू आदि के निर्माण, विक्रय व उपभोग पर लगाये जाने वाले सीमा कर तथा उत्पादन कर, व्यक्तियो, व्यावसायिक संगठनो (Business organisations) तथा निगमो (Corportions) पर लगाया जाने वाला आय कर (Income tax)। राज्यो की आय के प्रमुख स्रोत बिक्री कर (Sales tax) व व्यवसाय कर (Business tax) आदि हैं।

भारत मे संघ तथा राज्यो के बीच साधनो का विभाजन

(The Division of Resources between the Union and the States in India)

भारत मे, राजस्व के स्रोतो का निम्न प्रकार से विभाजन किया गया है। भारतीय संविधान की सप्तम अनुसूचि (Seventh schedule) मे शक्तियो (Powers) की जो तीन सूचियाँ (Lists) दी गई हैं वे संघ तथा राज्यो के बीच राजस्व के स्रोतो (Sources of revenue) का निम्न प्रकार विभाजन करती हैं —

(क) संघीय स्रोत

(The Unions sources)

(१) कृषि की आय के अतिरिक्त अन्य आमदनियो पर कर।

(२) सीमा कर (Customs duties) जिसमे निर्यात कर भी सम्मिलित है।

(३) मानव उपभोग के लिए काम आने वाली मदिरा को छोडकर तथा अफीम, भारतीय भाग और अन्य नशीली औषधियो एव नशीले पदार्थों को छोड कर भारत मे निर्मित व उत्पादित तम्बाकू और अन्य वस्तुओ पर उत्पादन कर (Excise duties)।

(४) निगम कर (Corporation tax)।

(५) व्यक्तियो तथा कम्पनियो की कृषि-भूमि सम्बन्धी परिसम्पति (Asset) को छोडकर अन्य परिसम्पत्तियो के पूंजीगत मूल्य पर कर तथा कम्पनियो की पूँजी पर कर।

(६) कृषि सम्बन्धी भूमि को छोड कर अन्य सम्पत्ति (Property) के सम्बन्ध मे आस्ति कर (Estate duty)।

(७) कृषि भूमि को छोड कर सम्पत्ति के उत्तराधिकारी (Succession) के सम्बन्ध में कर।

(८) रेल-मार्ग, समुद्र-मार्ग तथा वायु-मार्ग से आने जाने वाले माल तथा यात्रियो पर सीमान्त कर (Terminal taxes), रेल के किरायो तथा भाडो पर कर।

(९) मुद्रांक शुल्को (Stamp duties) को छोड कर शेयर बाजारो (Stock exchange) तथा वायदा बाजारो (Future market) के सौदो पर कर।

(१०) विनिमय-पत्रों (Bills of exchange) चैकों, प्रतिज्ञा-पत्रों (Promissory notes), वहन-पत्रों, (Bills of lading), प्रत्यय-पत्रों (Letters of Credit), बीमे की पालिसियों, शेयरों के हस्तान्तरण, डिबेन्चरों (Debentures) प्रतिहस्तक पत्रों (Proxies), तथा प्राप्ति-पत्रों (Receipts) के सम्बन्ध में मुद्रांक-शुल्क की दरें।

(११) समाचार-पत्रों के क्रय अथवा विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।

(१२) किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीसों को छोड़ कर संघ सूची के विषयों में से किसी के बारे में फीस।

अन्य स्रोत—संघ सरकार के राजस्व के तीन अन्य स्रोतों का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। वे इस प्रकार हैं (१) व्यावसायिक उद्यमों तथा सरकारी एकाधिकारों (Monopolies), जैसे कि रेलवे, डाक व तार, नमक उत्पादन, अफीम की खेती व उसके उत्पादन से होने वाली आय; (२) राज्य के सर्वोच्च अधिकारों और कार्यों से होने वाली आय, जैसे कि मुद्रा (Currency) तथा ढुलाई (Carriage) से होने वाली आय, राज्य की सम्पत्ति से होने वाली आय, सरकार द्वारा कब्जे से प्राप्त होने वाली आय अथवा सम्पत्ति आदि, (३) सरकार द्वारा इकट्ठी की जाने वाली धन-राशियाँ।

(ख) राजकीय स्रोत
(The State Sources) :

(१) मालगुजारी (Land revenue)।

(२) कृषि आय पर कर।

(३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में लगाये जाने वाले कर।

(४) कृषि-भूमि के सम्बन्ध में आस्ति कर (Estate duty)।

(५) भूमि तथा भवनों पर कर।

(६) खनिज सम्बन्धी अधिकारों पर कर, किन्तु खनिज विकास के सम्बन्ध में संसद द्वारा लगाई गई किसी भी शर्त के अन्तर्गत।

(७) मानव उपभोग के काम में लाई जाने वाली शराब पर तथा अफीम, भांग और अन्य नशीली औषधियों व नशीली वस्तुओं के उत्पादन पर लगाये जाने वाले कर।

(८) किसी भी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग अथवा बिक्री के लिए आने वाले माल के प्रवेश पर कर।

(९) समाचार-पत्रों को छोड़ कर अन्य वस्तुओं के विक्रय अथवा क्रय पर कर।

(१०) बिजली के उपभोग तथा विक्रय पर कर।

(११) समाचार-पत्रों में छपने वाले विज्ञापनों को छोड़ कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

(१२) सड़कों तथा आन्तरिक जल-मार्गों द्वारा ले जाये जाने वाले माल तथा यात्रियो पर कर।

(१३) सड़कों का उपभोग करने के लिए गाड़ियों पर लगाये जाने वाले कर।

(१४) पशुओं व नावों पर कर।

(१५) मार्ग कर (Toll tax)।

(१६) व्यवसायों, व्यापारी, धन्धों व रोजगार पर कर।

(१७) प्रति व्यक्ति कर (Capitation tax)।

(१८) विलासिता की वस्तुओं पर कर, मनोरंजन एवं मनोविनोद कर, बाजी कर (Betting tax) तथा जुआ कर।

(१९) मुद्राक शुल्क की दरों के सम्बन्ध मे सघ सूची मे उल्लिखित दस्तावेजों (Documents) को छोड कर अन्य दस्तावेजों के बारे मे मुद्राक शुल्क (Stamp duty) की दरें।

(२०) राज्य सूची के विषयो में से किसी के बारे म शुल्क।

अन्य स्रोत—राज्यों क लिए आय के तीन अन्य स्रोत भी हैं जो कि निम्न प्रकार हैं—

(१) व्यावसायिक उद्यम जैसे परिवहन (Transport), मत्स्यपालन आदि, (२) खानो से प्राप्त रायल्टी, जगलो से होने वाली आय, पृथ्वी मे गड़ा हुआ धन आदि, (३) सघ सरकार से प्राप्त होने वाले सहायक अनुदान (Grants in aid), (४) उधार लेना।

(ग) समवर्ती स्रोत
(Concurrent sources)

(१) न्यायिक मुद्राकों (Judicial stamps) द्वारा सगृहीत शुल्कों या फीसों को छोड़कर अन्य मुद्राक-शुल्क, किन्तु इसके अन्तर्गत मुद्राक शुल्क की दरें नही हैं।

(२) सघ तथा राज्यो के लिए निर्धारित समवर्ती स्रोतो के विषय म से किसी के भी बारे में फीसें।

करो की प्राप्तियों का वास्तविक बटवारा
(The actual allocation of Tax proceeds)

इस प्रकार भारतीय सविधान मे करों के शीर्षक (Heads) तथा करों द्वारा धन प्राप्त करने के सम्बन्ध म सघ और राज्यो की शक्तियाँ निर्धारित कर दी गई हैं। कर-प्राप्तियो के वास्तविक बटवारे के दृष्टिकोण से, करो के सघीय स्रोतो को पाच श्रेणियो मे रखा जाता है। सवप्रथम, वे कर जो कि सघ द्वारा लगाये जाते हैं तथा सघ द्वारा ही उनका सग्रह (Collection) किया जाना है और उनकी प्राप्तियाँ भी पूर्णत सघ को ही उपलब्ध होनी है। केवल उन करो को छोड कर, जिनके बारे मे सविधान म कुछ अन्य विशिष्ट उपबन्ध (Provisions) दिये गए हैं, सघ सूची म उल्लिखित शेष सभी कर इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

दूसरे, वे कर जो कि केन्द्र सरकार द्वारा लगाये जाते हैं परन्तु उनका संग्रह राज्यों द्वारा किया जाता है तथा वे पूर्णतया राज्यों को ही सौंप दिए जाते हैं। ऐसे मुद्रांक-शुल्क (Stamp duties) तथा औषधीय (Medicinal) व प्रसाधनीय सामग्री (Toilet preparations) पर लगाये जाने वाले उत्पादन-शुल्क (Excise duties) जो संघ सूची में वर्णित हैं, इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।[1]

तीसरी श्रेणी के वे कर तथा शुल्क होते हैं जो संघ द्वारा लगाये जाते हैं और संघ द्वारा ही उनका संग्रह किया जाता है परन्तु उनकी शुद्ध प्राप्तियाँ (Net proceeds) राज्यों को सौंप दी जाती हैं। इन करों में निम्नलिखित सम्मिलित किये जाते हैं (क) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति (Property) के उत्तराधिकार पर कर, (ख) कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में आस्ति कर (Estate duty), (ग) रेल, समुद्र अथवा वायुमार्ग से लाये जाने वाले पदार्थों अथवा यात्रियों पर सीमान्त कर (Terminal taxes), (घ) रेल किरायों तथा भाड़ों पर कर, (ङ) शेयर बाजारों तथा वायदा बाजारों के सौदों पर मुद्रांक-शुल्क को छोड़कर अन्य कर, और (च) समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।[2]

चौथे, कृषि आय को छोड़कर अन्य आमदनियों पर कर भारत सरकार द्वारा लगाये जायेंगे तथा उसके द्वारा ही उनका संग्रह किया जायेगा किन्तु उनकी प्राप्तियों को संघ तथा राज्यों के बीच वितरित कर दिया जायेगा।[3]

अन्त में, वे अधिभार (Surcharges) (अर्थात् करों की बढ़ाई हुई दरें) होते हैं जिन्हें वे संघ सरकार ऊपर उल्लिखित तृतीय व चतुर्थ श्रेणी से सम्बन्धित किसी भी कर तथा शुल्क पर लगा सकती है। यद्यपि वे कर, जिन पर कि ऐसे अधिभार लगाये जाते हैं या तो राज्यों को सौंप दिए जाते हैं अथवा संघ तथा राज्यों में वितरित कर दिए जाते हैं, किन्तु इन अधिभारों की प्राप्तियाँ पूर्णतया संघ को ही प्राप्त होती हैं।[4]

जहाँ तक आय कर (Income tax) का सम्बन्ध है, यह संघ सरकार द्वारा लगाया जाता है तथा उसके द्वारा ही इसका संग्रह किया जाता है परन्तु इसकी प्राप्तियाँ संघ तथा राज्यों के बीच वितरित कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त संघ की ओर से राज्यों को सहायक अनुदान (Grants in-aid) दिये जाने की भी व्यवस्था है।[5] राज्य केन्द्र से कर्ज भी माँग सकते हैं अथवा खुले बाजार (Open market) से उधार ले सकते हैं।

---

1 अनुच्छेद २६८
2 अनुच्छेद २६९
3 अनुच्छेद २७० (१), (२) और (३)
4 अनुच्छेद २७१
5 अनुच्छेद २७५

वित्त आयोग
(Finance Commission)

भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय साधनों के वितरण की योजना की विस्तृत रूप मे व्याख्या की गई है। परन्तु देश की बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए वित्तीय साधनों के वितरण की योजना में समय समय पर हेर-फेर करने पड़ते हैं। अत केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय साधनों का उचित समायोजन (Adjustment) करने के उद्देश्य से संविधान में एक वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रपति संविधान के लागू होने के दो वर्ष के भीतर और उसके पश्चात् प्रत्येक पाँचवें वर्ष की समाप्ति पर (अथवा यदि वे आवश्यक समझे तो पाच वर्ष से पहले भी) आदेश द्वारा एक वित्त आयोग की नियुक्ति करेंगे जिसका एक अध्यक्ष (Chairman) तथा चार अन्य सदस्य होंगे। आयोग का कार्य यह होगा कि वह निम्न मामलों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे —

"(क) संघ तथा राज्यों के बीच उन करों की शुद्ध प्राप्तियों (Net proceeds) के वितरण के बारे में, जोकि इस अध्याय (संघ तथा राज्यों के बीच राजस्वों का वितरण) के आधीन उनमें विभाजित होती है या होवें, तथा विभिन्न राज्यों के बीच ऐसी प्राप्तियों के तत्सम्बन्धी अंशों के बटवारे के बारे में,

(ख) उन सिद्धान्तों के बारे में, जिनके आधार पर भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) में से (अर्थात् भारत सरकार की आय में से राज्यों की सहायक अनुदान (Grants-in-aid) दिये जा सकें

(ग) अनुच्छेद २७८ के खण्ड (१) के अधीन या अनुच्छेद ३०६ के अधीन भारत सरकार और प्रथम अनुसूची (Schedule) के भाग (ख)[1] में उल्लिखित किसी राज्य की सरकार के बीच किये गये करार (Agreement) की शर्तों को जारी रखने अथवा उनमें संशोधन करने के बारे में,

(घ) अन्य किसी भी ऐसे मामले के बारे में, जो कि दृढ एवं सुस्थित वित्तीय व्यवस्था की दृष्टि से राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपा जाय।"[2]

संविधान के इन उपबन्धों (Provisions) के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रथम वित्त आयोग की नियुक्ति ३० नवम्बर सन् १९५१ को की गई थी जिसने ३१ दिसम्बर सन् १९५२ को अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया। श्री के० सी० नियोगी इस आयोग के अध्यक्ष (Chairman) थे। मई, सन् १९५६ में श्री के० सन्थानम् की अध्यक्षता में द्वितीय वित्त आयोग की नियुक्ति की गई थी जिसने अपना अन्तिम प्रतिवेदन सितम्बर, सन् १९५७ में प्रस्तुत किया। प्रथम वित्त आयोग

---

1 भाग 'क' और 'ख' राज्यों का भेद सन् १९५६ से समाप्त कर दिया गया है।

2 अनुच्छेद २८० (३)।

ने केन्द्र व राज्यों के बीच राजस्व वितरण के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये। वे सिद्धान्त इस प्रकार थे।

प्रथम केन्द्र के पास से साधनों का अनिश्चित स्थानान्तरण इस प्रकार होना चाहिये कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) की स्थिरता तथा देश की प्रतिरक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र के उत्तरदायित्व को देखते हुये स्थानान्तरण का इसके साधनों पर कोई अनुचित बोझ न पड़े तथा वह उस भार को सहन कर सकें।

दूसरे सहायक अनुदानों के वितरण के बारे में भाग 'क' तथा 'ख' के सभी राज्यों के सम्बन्ध में एक से ही सिद्धान्त अपनाये जाने चाहियें (सन् १९५६ में चूँकि राज्यों का पुनर्गठन हो गया है अतः 'क' और 'ख' राज्यों में बीच भेद समाप्त कर दिया गया है)।

तीसरे, वितरण की योजना का उद्देश्य यह होना चाहिये कि विभिन्न राज्यों के बीच की असमानतायें दूर हो जायें। वित्त आयोग ने यह विचार व्यक्त किया कि "राज्यों की सम्पन्नता निश्चित रूप से एक सुदृढ़ तथा वित्तीय दृष्टि से सुस्थिर केन्द्र *की ठोस नींव पर ही निर्भर होती है।*"[1] *आयोग ने यह सिफारिश की कि राज्यों को* बांटे जाने वाले आय-कर (Income tax) की शुद्ध प्राप्तियों (Net proceeds) का प्रतिशत ५०% से बढ़ाकर ५५% कर दिया जाना चाहिये। द्वितीय वित्त आयोग ने इस प्रतिशत को .५५ से बढ़ाकर ६० कर दिया। जहाँ तक विभिन्न राज्यों के बीच बटवारे का सम्बन्ध है, प्रथम, वित्त आयोग ने यह प्रस्ताव किया कि आय कर की प्राप्तियों का २० प्रतिशत भाग तो कर के सापेक्षिक संग्रहों (Relative collections) के आधार पर और ८० प्रतिशत भाग सन् १९५१ की जनगणना (Census) के अनुसार सापेक्षिक जनसंख्या (Population) के आधार पर विभाजित किया जाना चाहिये।[2]

इन परिस्थितियों में, भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय स्रोतों (Financial sources) का विभाजन सर्वोत्तम है। आय-कर ही सरकारी आय का एकमात्र सबसे बड़ा स्रोत है और केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच इसका बटवारा समुचित रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात् वित्त *आयोग की स्थापना के द्वारा वित्तीय स्रोतों के पुनर्वलोकन (Review) की जो* व्यवस्था की गई है वह भारतीय संघीय वित्तीय व्यवस्था (Indian Federal Financial System) का एक बड़ा अच्छा लक्षण है।

(२) राज्य-स्थानीय सम्बन्ध
(State Local Relations)

संघ राज्य सम्बन्धों का विवेचन करने के पश्चात्, अब हम प्रशासन के द्वितीय स्तर, *अर्थात् राज्य सरकार तथा स्थानीय प्रशासन (Local administrations)*

1 भारतीय वित्त आयोग का प्रतिवेदन, १९५२, पृष्ठ ७

2 भारतीय वित्त आयोग का प्रतिवेदन, १९५२, पृष्ठ ७६

के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे। किसी भी लोकतन्त्र (Democracy) को जब तक वास्तविक लोकतन्त्र नहीं कहा जा सकता तब तक कि उसमे स्थानीय स्वशासन (Local self government) की कोई व्यवस्था न हो। स्थानीय स्वशासन सस्थायें वे प्रशिक्षण स्कूल (Training school) हैं जिनमे कि देश के भावी प्रजातन्त्र के कर्णधार प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। ये स्थानीय सस्थाये (Local bodies) अपने क्षेत्र के लोगो को केवल लोकतन्त्र का प्रशिक्षण ही नही देती, अपितु वे कुछ ऐसे कार्य भी सम्पन्न करती हैं जोकि समाज के अस्तित्व के लिए अनिवार्य होते है। अग्रेज जनता के स्वास्थ्य, समृद्धि तथा कल्याण मे स्थानीय सस्थाओ के योग की चर्चा करते हुए 'म्युनिसिपल प्रगति की एक शताब्दी' (A Century of Municipal Progress) के सम्पादकों ने यह कहा कि "स्थानीय सरकार के गत सौ वर्षों मे मृत्यु दर (Death rate) आधी कर दी है और बाल मृत्यु सख्या की दर मे तीन चौथाई की कमी कर दी है। हैजा जोकि समयकालीन अवधियो पर धमकियो के रूप मे हमारे सामने आता था, उसके बारे मे स्थानीय सरकार ने हमे सिखाया है कि हम उसे एक पुरानी व नयी गुजरी चीज समझें।''' "अनेक अन्य सक्रामक रोग (Infectious diseases), जैसे कि क्षयरोग, जिस अनुपात मे अब कम हो गये हैं, एक शताब्दी पहले उसको पूर्णतः काल्पनिक समझा जाता था। ये वे तथ्य हैं जिन्हे आकडो द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोगो के सुख तथा सुविधाओ मे जो असाधारण वृद्धि हुई है उसको हम इस रीति से सिद्ध नहीं कर सकते।"[1] भारत मे महत्वपूर्ण स्थानीय सस्थायें ये हैं जिले के लिये जिलाबोर्ड, नगर के लिए नगरपालिका (Municipal Board) और गावो के लिए ग्राम पचायतें। बम्बई, मद्रास और देहली जैसे बडे नगरो मे तथा उत्तर प्रदेश मे कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, आगरा तथा लखनऊ (KABAL towns) मे नगर निगम (City corporations) हैं।

स्थानीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण
(State Control over Local Bodies) :

राज्य अनेक प्रकार से स्थानीय सस्थाओ पर नियन्त्रण लगाते है। स्थानीय सस्थाओं का निर्माण राज्य के विधान मण्डल (Legislature) की विधि (Law) द्वारा किया जाता है और इस विधि से ही उन्हे जीवन, शक्ति तथा दर्जा प्राप्त होता है। स्थानीय सस्थाओ के कार्य विशिष्ट रूप से सविधियों (Statutes) मे निर्धारित कर दिए जाते है। राज्य सरकारें स्थानीय प्रशासन के कार्य-सचालन के लिए विस्तृत नियम बनाती हैं। स्थानीय प्रशासन के महत्वपूर्ण मामले, जैसे कि बोर्डों की शक्ति, चुनावों का सचालन, करो का निर्धारण तथा सग्रह, स्थानीय बजटो को तैयार करना, ऋण लेने की शक्ति आदि सब, राज्य सरकारों द्वारा बनाए गए नियमो (Rules) के द्वारा ही व्यवस्थित एव नियमित किए जाते हैं। स्थानीय सस्थायें राज्य

1 पृष्ठ ११-१२

(घ) राज्य सरकार स्थानीय संस्था को कार्यच्युत करके स्वयं उसका स्थान ले सकती है।

(ङ) इस सम्बन्ध में राज्य सरकार की सबसे बड़ी तथा दृढ़ शक्ति यह है कि वह स्थानीय संस्था को भंग (Dissolve) कर सकती है। यदि राज्य सरकार यह समझती है कि स्थानीय संस्था अपना कार्य सम्पन्न नहीं कर रही है अथवा उसका दोषपूर्ण रीति से कार्य करना बराबर जारी है तो उसको भंग किया जा सकता है। ऐसा पग उठाने की धमकी इस कारण दी जाती है जिससे कि स्थानीय संस्था कुशलता के साथ अपना कार्य आरम्भ कर दे। उत्तर प्रदेश स्थानीय स्वायत्त-शासन समिति (U P Local Self Government Committee) ने यह प्रस्ताव किया है कि बोर्ड को कार्यच्युत करके उसका स्थान सरकार द्वारा स्वयं नहीं लिया जायेगा, बल्कि एक निश्चित कार्यविधि (Fixed procedure) के अनुसार उसको भंग किया जायेगा। सबसे पहले तो उससे लिखित स्पष्टीकरण (Explanation) माँगा जायगा। यदि वह सन्तोषजनक न हो, तो निश्चित शिकायतों तथा उनके सुधार के सुझावों के साथ उसको एक चेतावनी (Warning) दी जायेगी। और यदि बोर्ड उस चेतावनी की भी ६ माह तक कोई परवाह न करे, तो उसको भंग कर दिया जायेगा। तथापि, पहले बोर्ड की कालावधि के तीन माह के अन्दर नये चुनावों की व्यवस्था की जानी चाहिए। बोर्ड की एक कालावधि (Term) के अन्तर्गत बोर्ड को एक से अधिक बार भंग करने की आज्ञा नहीं होगी।

(६) राज्य सरकार स्थानीय संस्थाओं के बीच उत्पन्न हुए मतभेदों को तथा बोर्ड व उसकी समितियों और अधिकारियों के बीच उत्पन्न हुए क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों (Conflicts) को सुलझाती है।

(१०) राज्य अभिकरण (State agency) अर्थात्, (Examiner of Local Fund Accounts), बोर्ड के खातों (Accounts) का लेखा-परीक्षण (Audit) करता है और उसे अस्वीकृति (Disallowance) तथा अधिभार (Surcharge) का अधिकार प्राप्त होता है।

(११) न्यायालय (Courts) बोर्डों की किसी कार्यवाही को उसकी शक्ति से बाहर का घोषित कर सकते हैं।

राज्य का नियन्त्रण (State control) स्थानीय स्वशासन के राज्य विभाग तथा अन्य सम्बन्धित विभागों (Departments) द्वारा लागू किया जाता है। बोर्ड पर दिन-प्रतिदिन का नियन्त्रण जिलाधीश या कमिश्नर द्वारा लगाया जाता है। जिलाधीश बोर्डों के किसी भी अभिलेख (Record) की माँग कर सकता है और उनकी सम्पत्ति (Property) आदि का निरीक्षण कर सकता है।

भारत में स्थानीय संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण का आलोचनात्मक अध्ययन
(Critical Examination of the State Control Over Local Bodies in India)

स्थानीय संस्थाओं द्वारा अपने कार्य-सम्पादन समुचित रूप से किए जाने के विषय में निश्चिन्त होने के लिए राज्य सरकार को अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करना पड़ता है। यह राज्य सरकार का ही उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि स्थानीय संस्थायें अपने कार्य उपयुक्त रीति से सम्पन्न कर रही हैं और देश के निवासी में यथेष्ट रूप से भाग ले रही हैं या नहीं। इनकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी नियन्त्रण में निरन्तर देखभाल (Constant vigilance) तथा रचनात्मक मार्गदर्शन (Constructive guidance) का मिश्रण हो और ये दोनों चीजें स्थानीय समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन तथा उन समस्याओं के प्रति विवेकपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण रुचि पर आधारित हों। लोकतन्त्रीय व्यवस्थाओं में, कार्यपालिका सत्ता (Executive authority) का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण (Decentralization) करने तथा राज्य शक्ति के उच्च अंगों द्वारा अधिक कठोर नियन्त्रण एवं निरीक्षण लागू किए जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यदि स्थानीय संस्थाओं के नियन्त्रण को उनके कार्यों की अत्यधिक देखभाल करने तथा दोषी पाई जाने वाली संस्थाओं के विरुद्ध कठोर दण्डात्मक कार्यवाही करने तक ही सीमित रखा गया तो इन संस्थाओं के नियन्त्रण का कार्य नकारात्मक प्रकृति का ही अधिक हो जायेगा। पर्यवेक्षण (Supervision) के निश्चयात्मक पहलू (Positive aspect) को भी समान महत्व प्राप्त होना चाहिये।

भारत में, राज्य रचनात्मक व निश्चयात्मक (Constructive and positive) नियन्त्रण की अपेक्षा औपचारिक व नकारात्मक (Formal and negative) नियन्त्रण लागू कर रहे हैं। राज्य सरकार बोर्ड के उन कार्यों पर रोक लगाती है जिन्हें वह गलत समझती है। बड़े-बड़े शहरों में सड़कों की धूल व गन्दगी, सफाई की कमी तथा नालियों की खराब व्यवस्था के बारे में प्रत्येक नागरिक जानता है। स्थानीय सरकारों की स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी गतिविधियाँ अत्यन्त अपर्याप्त हैं। भारत में राज्य सरकारों का स्थानीय संस्थाओं पर नियन्त्रण की भारी वैधानिक शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु कठिनाई से ही शायद स्थानीय संस्थाओं के किसी कार्य का निरीक्षण किया जाता है। जब कोई मन्त्री (Minister) या उच्च पदाधिकारी किसी नगर का दौरा करता है तब वे नगर साफ सुथरे दिखाई देते हैं परन्तु स्थानीय संस्थाओं द्वारा स्थानीय व्यक्तियों के स्वास्थ्य, सफाई व शिक्षा आदि की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। उत्तर प्रदेश के स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित किए जाने वाले अनेक ऐसे अस्पताल हैं जो समुचित योग्यता प्राप्त डाक्टरों के बिना ही कार्य कर रहे हैं। कलक्टर या कमिश्नर, जोकि राज्य सरकार

के उत्तरदायित्व पर इन संस्थाओं पर नियन्त्रण लगाते है, बड़े कार्य-व्यस्त (Busy) पदाधिकारी हैं। वे स्थानीय संस्थाओं की देखभाल में अपना अधिक समय नहीं लगा सकते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थानीय संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण लगाने की मशीनरी तथा पद्धति अत्यधिक दोषपूर्ण हैं। राज्य सरकार अधिनियम (Act) की केवल कानूनी धाराओं की ओर ही ध्यान देती है, उसमें निहित भावना या आशय की ओर नहीं। यह राज्य सरकार का कर्तव्य है तथा उसकी ही महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि वह स्थानीय संस्थाओं का पथ-प्रदर्शन करे और उन्हें श्रेष्ठ प्रशासन की दशा में अग्रसर करे। अतः आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान में पाये जाने वाले औपचारिक, वैधानिक एवं नकारात्मक किस्म के नियन्त्रण के स्थान पर समुचित पथ-प्रदर्शन, प्रोत्साहन तथा स्वाभाविक प्रेरणा के रूप में नियन्त्रण के निश्चयात्मक एवं रचनात्मक पहलू की ओर ध्यान दिया जाये। इस समस्या के सम्बन्ध में अमेरिका में किये गये प्रयोग (Experiment) के बारे में लिखते हुए प्रोफेसर फिफनर ने यह विचार व्यक्त किया कि "राज्य का प्रशासकीय पर्यवेक्षण गहनता की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। इसका रूप केवल सूचना और परामर्श प्रदान करने मात्र से लेकर असफल स्थानीय सरकार के स्थान पर अपने प्रशासन को स्थानापन्न करने तक का हो सकता है। व्यवहार में राज्यों ने स्थानीय इकाइयों पर कठोर अनुशासनात्मक नियन्त्रण लागू नहीं किये हैं। जहाँ कहीं इन पर यदि प्रभाव डाला भी है तो सामान्यतः उनका रूप अनुचित जोर व दबाव का नहीं बल्कि अनुरोध व प्रोत्साहन का ही रहा है। दृढ़ स्थानीय परम्परा के कारण स्थानीय अधिकारियों को स्वेच्छा व विवेक से कार्य करने के विस्तृत अवसर मिले हैं और राज्य के प्रशासकीय नियन्त्रणों की वृद्धि में कमी हुई है। तथ्य यह है कि नगरपालिकाओं (Municipalities) के अधिकारियों में स्वायत्त शासन की भावना इतनी गहराई से घर कर गई है कि राज्य के पर्यवेक्षण को, यदि हो ही तो, अत्यन्त सावधानी के साथ लागू किया जाना चाहिए। जहाँ कहीं, कानूनी रूप से जोर दबाव डालना सम्भव भी हो, वहाँ भी दोनों के बीच कार्य का आधार सहयोग (Cooperation) ही होना चाहिए।"[1] भारत में राज्य सरकारों को स्थानीय संस्थाओं के साथ सहयोग करना चाहिये और स्थानीय दशाओं में सुधार करने के लिए उन्हें कार्यों की निश्चित तथा रचनात्मक रूप-रेखाओं के सुझाव देने चाहियें।

भारत में संघ तथा राज्यों के बीच सम्बन्ध
(Union-State Relation in India)
(विशेषकर आर्थिक नियोजन एवं सामुदायिक विकास के संदर्भ में)
(With special reference to Economic Planning and Community Development)

किसी भी देश के संविधान (Constitution) को ठीक प्रकार से समझने के

1 Pfiffner op cit, p 138

लिये वहाँ के सामाजिक व आर्थिक ढाचे, लोगों की आकांक्षाओं और उनकी विचारधारा सम्बन्धी स्थिरताओं का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। संविधान का प्रयोगात्मक रूप भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि उसका सैद्धान्तिक रूप। इसको प्रयोगात्मक रूप देना समाज की माँगों व दबावों पर निर्भर होता है। इस प्रकार भारतीय संघ (Indian federation) का अध्ययन 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) तथा 'आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन' (Economic and social planning) के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। भारत में सभी नागरिकों को 'सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय' प्रदान करने तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं महत्ता और राष्ट्र की एकता को कायम रखने का निश्चय किया गया है। भारत सरकार को 'राजनैतिक जनतन्त्र' के द्वारा एक ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करनी है जिसमे कि जनसाधारण के रहन-सहन के स्तरों में इतना सुधार किया जाए कि जिससे 'कानून की दृष्टि में समानता' (Equality before law) तथा अवसर की समानता (Equality of opportunity) जिनके विषय में कि प्रत्येक नागरिक के लिये संविधान के अन्तर्गत गारन्टी दी गई है, प्राप्त की जा सके। देश में 'आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति' करने के लिए जो विधि अपनाई गई है, वह है—आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन। आयोजन-रहित (Unplanned) प्रगति के मुकाबले एक आयोजनाबद्ध (Planned) विकास को सदा प्रमुखता दी जाती है।

निर्धनता, अशिक्षा, अज्ञानता, बीमारी व बेरोजगारी आदि, ये सभी समस्यायें है जो केवल कुछ राज्यों (States) तक ही सीमित नहीं है, अपितु सम्पूर्ण देश को ही उनका सामना करना पड़ रहा है। अन्न की कमी तथा महामारी के रूप में फैलने वाली बीमारियाँ राज्यों की सीमाओं का कोई ध्यान नहीं रखती, और न वे राज्यों की स्वायत्तता (Autonomy) की ही चिन्ता करती है। अतः जब समस्या राष्ट्रीय है तो उसका समाधान भी राष्ट्रीय पैमाने पर किये जाने वाले प्रयत्नों द्वारा ही हो सकता है। यही कारण है कि 'भारत में सम्पूर्ण नियोजन का केन्द्र बिन्दु केन्द्र (Centre) को ही बनाया गया है' यद्यपि संविधान निर्माताओं ने आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन को सम्मिलित सूची (Concurrent list) के विषयों में रखा था। इसके अतिरिक्त, नियोजन से आशय है कि देश में उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जाये। अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्राथमिकताओं (Priorities) के निर्धारण की समस्या भी नियोजन से सम्बद्ध है। नियोजन के ये उद्देश्य (अर्थात् सीमित साधनों का बटवारा और उसके परिणामस्वरूप प्राथमिकताओं का निर्धारण) तभी प्राप्त किये जा सकते है जबकि केन्द्र सरकार (अथवा कोई केन्द्रीय अभिकरण) इस कार्य को करे। यही नहीं, आयोजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) से सम्पूर्ण देश की आर्थिक क्रियाओं में 'समन्वय' (Coordination) की समस्या भी उत्पन्न होती है। अतः इन सब कारणों से यह स्पष्ट

है कि आर्थिक नियोजन का यदि प्रभावशाली तथा सफल बनाना है तो इसका दायित्व केन्द्र सरकार पर ही रहना चाहिये। नियोजन का अर्थशास्त्र केन्द्रीकरण (Centralization) को नियोजन से सम्बद्ध करता है।[1]

II

१५ मार्च, सन् १९५० के मन्त्रि परिषद् के प्रस्ताव में इस बात पर विशेष जोर दिया गया था कि "देश के साधनों को सावधानी के साथ किये गये मूल्यांकन तथा सभी सम्बद्ध आर्थिक तत्वों के उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण के आधार पर विस्तृत नियोजन की आवश्यकता अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।" इस प्रस्ताव द्वारा एक योजना आयोग (Planning commission) की स्थापना की गई जिससे कि देश के साधनों का सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सन्तुलित ढंग से उपयोग करने के लिए योजनायें बनाई जा सकें और उन योजनाओं को कार्यान्वित किया जा सके। पुनरावृत्ति का खतरा उठाकर भी यह उल्लेख कर देना उचित ही है कि इसके बावजूद कि भारत एक संघीय राज्य है, अनेक कारणों से योजना आयोग जैसे एक केन्द्रीय संगठन की स्थापना अनिवार्य ही थी। सर्वप्रथम तो इस कारण कि नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) के विभिन्न भागों एवं क्षेत्रों के बीच सन्तुलन कायम किया जाये और सन्तुलन कायम रखने के इस कार्य को एक केन्द्रीय अभिकरण (Central agency) ही अधिक अच्छी प्रकार से सम्पन्न कर सकता है। दूसरे, नियोजन एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया (Process) है। इसमें केवल कुशलतापूर्ण कार्यान्वय (Execution) की ही आवश्यकता नहीं होती, अपितु निरन्तर मूल्यांकन तथा दूरदर्शितापूर्ण सोच-विचार की भी आवश्यकता होती है। आने वाले २०-२५ वर्षों की आर्थिक समस्याओं पर विचार करना होता है और नियोजन के द्वारा उनको हल करना होता है। अतः दूरदर्शितापूर्ण एवं कुशल नियोजन तथा राष्ट्रीय पैमाने पर 'समन्वय' (Co-ordination) कायम करने की समस्या के हल के लिए यह आवश्यक है कि योजना आयोग जैसी एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना की जाए। तीसरे, आयोजना-बद्ध अर्थ-व्यवस्था में, तेजी के साथ आर्थिक विकास करना होता है। अतः यह कार्य तभी किया जा सकता है जबकि यह

1 Cf the observation of Dr Gadgil "The master plan of economic development must be country-wide In particular respects, the federating units might be left free to control the pace or direction of development and the plan itself would pay proper attention to all sided development of all regions At the same time, all federating units must accept over all direction imposed by the master plan The federal government must have adequate powers to evolve the general plan of economic development for the whole country and must have powers to carry out its essential features and to supervise and enforce its implementation by the federating units This is only inherent in economic planning" —D R Gadgil Federating India, Poona, Gokhale Institute of Politics and Economics, 1945 p 44

का निर्माण करना तथा योजना के विशिष्ट कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए विशिष्ट कार्यालयों तथा अभिकरणों की स्थापना करना और कुछ चुने हुए क्षेत्रों में प्राप्त सफलताओं का अनुमान लगाने के लिए मूल्यांकन इकाइयों (Evaluation units) की स्थापना करना।[1]

योजना आयोग एक परामर्शदात्री संस्था तथा एक स्टाफ अभिकरण (Staff agency) है। योजना आयोग की स्थापना के सम्बन्ध में १५ मार्च, १९५० को जो प्रस्ताव रखा गया था उसमें कहा गया था कि

(१) "आयोग अपनी सिफारिशों की रूपरेखा तैयार करते समय, केन्द्र सरकार के मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों के सम्पर्क में रहते हुए उनके परामर्श से कार्य करेगा।'

(२) "आयोग मन्त्रि परिषद् के समक्ष अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगा।"

(३) 'आयोग के निर्णयों को स्वीकार करने तथा उनको लागू करने का उत्तरदायित्व केन्द्र तथा राज्य सरकारों पर होगा।"

परन्तु योजना आयोग की गत बारह वर्षों की कार्य-प्रणाली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसने एक प्रकार की "आर्थिक मन्त्रिपरिषद्" (Economic cabinet) का ही रूप धारण कर लिया है अर्थात् एक ऐसी सत्ता जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि राज्यों की 'स्वायत्तता' (Autonomy) पर इस स्थिति का क्या प्रभाव पड़ा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, योजना आयोग योजना का निर्माण करता है और नीतियों, लक्ष्यों, वित्तीय साधनों व मुख्य प्रायोजनाओं (Projects) आदि का निर्धारण करता है। योजना के निर्माण की कार्य-पद्धति इस प्रकार है योजना आयोग पंचवर्षीय योजना का एक संक्षिप्त विवरण तैयार करता है और उसको केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् (National development council) (जो कि सभी राष्ट्रों के मुख्य मन्त्रियों से युक्त एक संगठन है), दोनों के ही समक्ष रखता है। जब ये दोनों निकाय (Bodies) योजना के संक्षिप्त विवरण को

1 *The Machinery of Planning is as follows In the Centre there is* planning Commission with its working groups, research bodies, programming units, evaluation agencies etc At the *State* level following kind of Machinery for planning has been developed (a) There is usually a committee of the State cabinet under the Chief Minister to provide over all guidance and direction (b) *For the coordination of the work of the various departments on the 'official* level' there is a State Development Committee which consists of Secretaries of the various Departments usually headed by the Chief Secreatary (c) A Planning Department or Development Commissiner for 'co ordination of Planning and implementing the district programmes (d) State Planning boards, a separate non-official advisory organ (e) The, D M the B D O, *the Village Panchayats,* the technical personnel at each level co operate in execution the Plan

स्वीकार कर लेते हैं तो योजना की प्रस्तावित रूपरेखा (Draft outline) तैयार की जाती है जिसमे योजना के उद्देश्यो व मुख्य लक्ष्यो आदि का उल्लेख किया जाता है। योजना की इस प्रस्तावित रूपरेखा पर समाचार पत्रो मे, ससद मे तथा जनता द्वारा वाद-विवाद किया जाता है। योजना आयोग राज्यो के साथ विस्तृत विचार-विमर्श एव वाद-विवाद की व्यवस्था करता है। योजना की प्रस्तावित रूपरेखा को दृष्टिगत रखते हुए राज्य अपनी निजी योजनायें तैयार करते है। तब योजना आयोग द्वारा उन योजनाओ मे काट-छाँट की जाती है सुधार किया जाता है और उनको अन्तिम रूप दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि एक बडी सीमा तक योजनाओ की रूपरेखा बनाने अथवा उनके निर्माण का कार्य योजना आयोग पर ही केन्द्रित रहता है।

योजना के सफल सचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि राज्यो के साथ सहयोग अथवा समन्वय कायम रखा जाय।[1] योजना आयोग द्वारा यह समन्वय निम्न प्रकार से प्राप्त किया जाता है।

(१) निरीक्षक मण्डलो तथा कार्यकारी वर्गों द्वारा प्रत्यक्ष सम्पर्क (Direct contacts through panels and working groups)—ये मण्डल तथा वर्ग विशेष रूप से तब नियुक्त किये जाते हैं जबकि राज्यो की पचवर्षीय तथा वार्षिक योजनायें तैयार की जाती हैं। राज्यो को प्रायोजनाओ के लिए वित्तीय अनुदान (Financial grants) देने के बारे मे जब इनसे परामर्श मांगा जाता है तो ये मन्त्रालयो से सम्पर्क स्थापित करते हैं।

(२) परामर्शदाता (कार्यक्रम प्रशासन) [Advisors (Programme Administration)]—योजना आयोग के साथ चार परामर्शदाता (सलाहकार) कार्य करते हैं। ये उच्च तथा ज्येष्ठ पदाधिकारी होते है। इनका मुख्य कार्य यह होता है कि ये योजना आयोग को निरीक्षण के विभिन्न पहलुओ की प्रगति से परिचित रखें तथा विभिन्न प्रायोजनाओ (Projects) के कार्यान्वय से सम्बन्धित मामलो पर राज्य सरकारो तथा केन्द्रीय मन्त्रालयो को अधिकतम सम्भव सहायता दें। ये निम्नलिखित बातो के सम्बन्ध मे राज्यो तथा योजना आयोग के बीच समन्वय (Co-ordination) कायम रखने मे सहायता करते है—(क) पचवर्षीय योजना को तैयार करने के सम्बन्ध मे, (ख) वार्षिक योजनायें तैयार करने के सम्बन्ध मे, (ग) योजना के

1 In this connection the Third Five Year Plan clearly mentions "The Plan has to be implemented at many levels national, state, district, block and village At each level, in relation to the tasks assigned, there has to be co-operation between different agencies and an understanding of the purposes of the Plan and the means through which they are to be secured In a vast and varied structure organised on a federal basis, a great deal depends on being able to communicate effectively between different levels, and at the same level between different agencies"—Third Five Year Plan, Government of India—Planning Commission 1961, p 276

हर-फेर की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में, और (घ) योजना की प्रगति का मूल्यांकन करने के बारे में तथा योजना को लागू करने से सम्बन्धित उन समस्याओं के हल के बारे में जो कि राज्यों में उनके निरीक्षण के मध्य सामने आती हैं।

(३) राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)—राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना इन उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर की गई थी : (क) "योजना को सफल बनाने के लिए राष्ट्र के प्रयत्नों तथा साधनों को शक्तिशाली तथा गतिशील करना (ख) सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में समान आर्थिक नीतियों का निर्माण करना, और (ग) देश के सभी भागों का सन्तुलित तथा शीघ्र विकास करना। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :"(अ) समय समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्य संचालन का निरीक्षण करना (आ) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक तथा आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना, और (इ) राष्ट्रीय योजना में निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपायों के सुझाव देना जिनमें कि जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने, प्रशासकीय सेवाओं की कार्य-कुशलता बढ़ाने, कम उन्नत क्षेत्रों तथा समाज के कम उन्नत वर्गों के पूर्ण विकास के विषय में आश्वस्त होने और सभी नागरिकों द्वारा किये जाने वाले समान त्याग के द्वारा राष्ट्रीय विकास के साधनों को दृढ़ करने के उपाय भी सम्मिलित हैं।"

परिषद् में मुख्य मन्त्रियों (Chief Ministers) का सम्मिलित किया जाना तथा उनके द्वारा योजना आयोग की योजनाओं का अनुमोदन करना—योजना में सम्मिलित कार्यक्रमों के बारे में राज्यों की एक प्रकार की सहमति ही है। राष्ट्रीय विकास परिषद् "उच्च मन्त्रि परिषद्" (Super cabinet) के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी रचना ही इस प्रकार की है कि केन्द्र तथा राज्यों की सरकारें इसकी सलाह को अत्यधिक महत्व प्रदान करती हैं। रा वि प ने वास्तव में योजना को राष्ट्रीय बना दिया है और उसके लिए किये जाने वाले प्रयत्नों में एकरूपता (Uniformity) तथा इसके कार्य-संचालन में सर्वसम्मति (Unanimity) उत्पन्न कर दी है।" रा वि प में वे नीति-निर्माता सम्मिलित है जिनके हाथ में शक्ति है अत योजना आयोग तथा मन्त्रि-परिषद् उनकी राय की उपेक्षा नहीं कर सकते। योजना के निर्माण व कार्यान्वय में तथा उनके वास्तविक कार्य-संचालन व कार्य-प्रणाली में केन्द्र व राज्यों के बीच समन्वय व सहयोग की स्थापना में राज्यों की तुलना में केन्द्र तथा योजना आयोग को अधिक सत्ता प्राप्त हो जाती है। भविष्य में केन्द्र तथा राज्यों के बीच सहयोग और अधिक बढ़ने की आशा है क्योंकि राज्य सरकारों से कहा गया है कि वे अपने अपने राज्य में दूरदर्शी तथा ठोस नियोजन का कार्य करें, और इस दूरदर्शी तथा ठोस नियोजन में राज्य सरकारों तथा योजना-आयोग के बीच और भी अधिक सहकार्यता (Collaboration) उत्पन्न होगी।[1]

1 In this connection, Third Five Year Plan mentions "During the next three years states will also participate in the drawing up of a long term plan of (See Next Page)

अब हम यहाँ, इस बात को दृष्टिगत रखते हुए कि भारत एक सघीय-राज्य है, नियोजन के कुछ तथ्यो एव पहलुओ पर कुछ विचार प्रकट करते है ।

(१) अनुरूप अनुदानो (Matching grants) की व्यवस्था के कारण भारत मे शीर्षरूप सघीयवाद[1] (Vertical federalism) पनप रहा है। अनुरूप अनुदान की इस व्यवस्था मे केन्द्र किसी भी प्रायोजना की कुल लागत के आधे भाग का भार उठाने को सहमत हो जाता है बशर्ते कि शेष आधे भाग का भार राज्य उठाने को तैयार हो। ये अनुदान योजना आयोग की सिफारिश पर सम्बन्धित केन्द्रीय मन्त्रालयों द्वारा दिये जाते है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सभी केन्द्रीय मन्त्रालय ऐसी स्थिति मे आते जा रहे हैं जिसमें कि वे समवर्ती राज्य मन्त्रालयो (Corresponding State Ministries) को आदेश दे सकते है ।

(२) वित्त (Finances) का वार्षिक एव नियतकालिक बटवारा (Periodical allotment) करने मे योजना आयोग एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। योजना के कार्यक्रमो के लिए राज्यो के प्रस्तावो के बारे में योजना आयोग राज्य सरकारो के साथ उसके बजट प्रस्तुत करने से कुछ माह पूर्व विचार-विमर्श करता है। उसम योजना की लागत की सीमा तथा छोट मोटे एव मुख्य शीर्षकों का उल्लेख किया जाता है। चालू वर्ष के योजना कार्य का निर्धारण करने के लिए तथा बाद के वर्षों के कार्यक्रमो की मोटी रूपरेखा का निर्माण करने के लिए राज्यो के साथ प्रतिवर्ष योजना सम्बन्धी विचार विमर्श एव वाद विवाद किया जाता है। राज्यो की वार्षिक योजनायें—योजना आयोग के परामर्श से तैयार की जाती हैं।

(३) विदेशी विनिमय की कठिनाइयो ने योजना आयोग के लिए यह अनिवार्य बना दिया है कि वह राज्य सरकारो द्वारा इन वार्षिक योजनाओ के बनाये जाने से स्वय को सम्बद्ध रखे।

---

development for the country This plan is intended to present the general design of development for the country as a whole over the next 15 years or so It will be based on a study of the resources and possibilities of different parts of the country and will seek to bring them together into a common frame This is a task of great complexity, as it is of great promise, and there will be need for close and continuous collaboration between various agencies at the centre and in the States, especially those responsible for Planning '—Vide Third Five Year Plan, Goverment of India—Planning Commission 1961 p 289

1 In other words a sort of vertical Federation has been set up under the Planning Commission The constitution set up a territorial Federation, it is a horizontal Federation that was set up by the Constituent Assembly The matching grants have set up a vertical Federation by which the Central Departments and the State Departments on the same subject as education' etc form a unit forthe purposes of programmes, projects and most important of all, for expenditure—Vide K Santhanam *Centre-State Relations in India* Asia Publishing House p 54.

(४) प्रनुमान समिति (Estimates Committee) ने अपने २१वें प्रतिवेदन (रिपोर्ट) १६५६ में यह व्यक्त किया था कि राज्य सरकारों में यह आम भावना पाई जाती है कि *योजना आयोग एक परामर्श देने वाली संस्था नहीं है,* अपितु इसे केन्द्र पर स्थित एक अतिरिक्त सत्ता (Additional authority) कहा जा सकता है। राज्य सरकारों ने अनेक अवसरों पर यह शिकायत की है कि उन्हें योजना के बटवारे की धनराशि का उचित भाग नहीं मिला, और यह कि उनके प्रस्तावों को आयोग तक पहुँचाने की जो व्यवस्था है उसमें ऐसी अनावश्यक देरी होती है जिसे दूर किया जा सकता है।[1]

(५) *धन के बटवारे के सम्बन्ध में एक राज्य सरकार को केवल योजना* आयोग को ही सन्तुष्ट नहीं करना पड़ता, बल्कि केन्द्र के प्रशासनिक मन्त्रालयों को भी सन्तुष्ट करना पड़ता है।[2]

(६) इसके अतिरिक्त चूंकि राज्य सरकार की आय के साधन लोचदार नहीं होते अत उसे उक्त साधनों के लिए आयोग पर निर्भर रहना होता है।[3]

1 *The Committee appreciate that Planning involves allocation of scarce resources, and consequently fixation of priorities* They also realise that in a federal constitution, it has special difficulties Also when it happens that the financial resources of the States are inelastic and they have to depend upon the Centre for financing a very large portion of their development programmes, very great importance is attached to the approval of the Planning Body as a pre requisite to the release of funds by the Centre The Committee would, however, suggest that *the entire procedure now adopted should be reviewed, so that if any practice has grown which lends support to this feeling it could be rectified*

Vide *Estimates Committee Report*, 1957-1958, p 5

2 The same opinion was expressed by the Estimates Committee of the Second Lok Sabha in its Twenty-first Report on Planning Commission The Committee suggested that for the purpose of getting schemes approved for *Central assistance*, the procedure should be so revised that *the State Governments should approach directly the Central Ministries concerned The* Ministries should take decisions on all *such matters in consultation* with the Planning Commission and the State Government concerned In case there is any difference of opinion between the Planning Commission and a Central Ministry the difference should be resolved by the Cabinet, and in case there is any difference between the Planning Commission and a State Government, it should be resolved by the National Development Council

—Vide *Estimates Commission Report*, 1957 58, pp 5 6

3 Third Plan total outlay is Rs 7500 crores, total state share is *Rs 3847 crores and Central Ministries Plan is Rs 3753 crores and as far as States* are concerned Central assistance is Rs. 2375 crores and States' own resources Rs 1462 crores

कुछ क्षेत्रों मे यह भावना उत्पन्न हो रही है कि भारत मे संघीयवाद (Federalism) कमजोर होता जा रहा है। भूमि की जोतों (Land holdings) आदि से सम्बन्धित भूमि-नीतियो (Land policies) का निर्माण एव प्रारम्भ तो केन्द्र द्वारा किया जाता है और उनका अनुपालन राज्यो द्वारा किया जाता है। इस नई भावना का एक अन्य पहलू यह है कि राज्यो का यह स्वभाव होता जा रहा है कि वे नीति सम्बन्धी किसी भी असफलता के लिए केन्द्र को ही दोषी ठहरा देते हैं। यह भावना उत्पन्न हो रही है कि योजना आयोग तथा केन्द्रीय मन्त्रालयों द्वारा आर्थिक नीतियों का व्यापक निर्देशन (Comprehensive direction) किये जाने से राज्यों की स्वायत्तता (Autonomy) केवल नाम मात्र की स्वायत्तता बनती जा रही है।[1]

प्रश्न यह है कि नियोजन के मामलो मे योजना आयोग अथवा केन्द्रीय मन्त्रि मण्डल जो कुछ भी कहते हैं क्या राज्य उन्हे स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं? सैद्धान्तिक रूप मे स्थिति यह है कि आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन से सम्बन्धित मामलो मे राज्य, योजना आयोग अथवा केन्द्र सरकार की सलाह को मानने से इन्कार कर सकते हैं। ऐसा करना किसी प्रकार भी असवैधानिक (Unconstitutional) नही होगा। परन्तु राज्य केवल तभी इन्कार कर सकते हैं जबकि वे विकास कार्यों के लिए केन्द्र सरकार से मिलने वाली धनराशि की बलि चढ़ाने को तैयार हों। प्रथम योजना मे नियोजन के कुल व्यय का लगभग ७०% और द्वितीय योजना मे लगभग ६५% भाग का सम्बन्ध एसे विषयो से था जो कि पूर्णतया राज्यो को सौप दिए गये हैं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, वन, कृषि, सिचाई, बिजली आदि। वास्तव मे, राज्यो पर केन्द्र का नियन्त्रण राज्यों की 'सहमति' से ही किया जाता है और आर्थिक नियोजन की अनिवार्यता' के कारण किया जाता है।[2]

III

अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र, जिसके सदर्भ मे केन्द्र व राज्यो के सम्बन्धो का अध्ययन किया जा सकता है **सामुदायिक विकास कार्यक्रम** (Community Development) है नियोजन को सफल बनाने के लिए, लोगो मे सामाजिकता की भावना जागृत करने के लिए और उनको राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य मे सक्रिय रूप से भाग लेने को प्रेरित करने के लिए ही सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया था। केन्द्र सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की रूप रेखा बनाई, इसके भारी वित्तीय उत्तरदायित्वो को स्वीकार किया और राज्य सरकारो का इस बात के

1 Cf K Santhanam *Planning and Plain Thinking* Higginbotham (Private) Ltd, Madras 2 1958 pp 138 39

2 Cf K Santhanam "What I want to suggest is that Planning for pur pose of economic development practically superseded the federal constitution so far as states were concerned but this supersession was not legal or constitu tional but was by agreement and consent Planning has been comprehensive It has covered all the spheres of activities of both the Centre and the States"
—Vide K. Santhanam op cit p 47

लिए सहमत किया कि वे इस कार्यक्रम को अपनायें और लागू करें। इसमे कोई सन्देह नही कि इस कार्यक्रम के सभी विषय, उदाहरणत कृषि, पशुपालन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि राज्य सूची के ही विषय हैं परन्तु इस कार्यक्रम से सम्बन्धित सभी मुख्य नीतिया, विकास की रीति तथा निर्देशन—सभी केन्द्र से ही प्राप्त होते हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रारम्भ होने से एक प्रशासनिक ढाचे का भी निर्माण किया गया जिसको सघीय सिद्धान्त के विरुद्ध कहा जा सकता है। सामुदायिक विकास प्रशासन की स्थापना ३१ मार्च १९५२ को सामुदायिक विकास प्रायोजनाओ को लागू करने के लिए की गई थी। यह एक 'प्रशासक' (Administrate) के अधीन एक स्वतन्त्र प्रशासकीय इकाई के रूप मे कार्य करता था, और यह प्रशासक योजना आयोग की केन्द्रीय समिति के सामान्य निरीक्षण के अन्तर्गत देश-भर मे सामुदायिक विकास प्रायोजनाओं (Community Development Projects) के नियोजन, निर्देशन (Direction) तथा समन्वय (Cordination) के लिए उत्तरदायी था। २८ सितम्बर सन् १९५६ से यह 'प्रशासन' सामुदायिक विकास मन्त्रालय म मिला दिया गया था। 'प्रशासक' राज्यो मे कार्यक्रमो पर विस्तृत नियन्त्रण रखता था। क्षेत्रीय विकास अधिकारियो (B D O's) तथा उनके चुनाव के सम्बन्ध मे सामुदायिक प्रायोजना प्रशासन का अनुमोदन प्राप्त करना होता था। क्षेत्रीय कार्य-क्रम (Block programmes) तथा प्रत्येक क्षेत्र (Block) से सम्बन्धित बजट तथा विस्तृत नियतकालीन प्रतिवेदन (Detailed periodical reports) इसके पास भेजे जाते थे। इसके अतिरिक्त प्रशासक तथा सामुदायिक प्रायोजना प्रशासन के अधिकारी विकास-क्षेत्रो के काफी दौरे करते थे। इसीलिए सन १९५७ के अन्त मे बलवन्त राय मेहता दल को यह सलाह देनी पडी कि केन्द्र को चाहिए कि वह किसी भी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे नीति निश्चित कर दे और उसकी मोटी रूप-रेखा का निर्धारण कर दे और फिर उस कार्यक्रम का भार राज्य सरकारो पर छोड दे जिससे कि वे अपने अपने ढगो तथा अपनी अपनी स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार ही उन कार्यों को सम्पन्न कर सकें, केन्द्र को तो केवल इस बात से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए कि कार्यक्रम के सामान्य उद्देश्यो का समुचित परिपालन किया जा रहा है।'[1]

---

1 In contrast to this view, B Mukerjee has observed. "The Ministry of Community Development can justly claim that it has kept with itself less control over details of the programme, having passed on much of it to the State Governments than what most other Ministries of the Central Govern ment have in respect of schemes sponsored and financed by them wholly or partly though executed by the State Government It should also be stated that the Ministry of Community Development has used its control over the programme to the best advantage of the programme, has provided to the State *Government dynamic leadership and much guidance*, based on the ministry's intimate touch with the field operation of the programme all over the country The Ministry has also been able to establish genuine partnership with the States

(Contd on next page)

प्रश्न यह है कि केन्द्र-स्तर पर सामुदायिक विकास मन्त्रालय की स्थापना होनी भी चाहिए या नही ? सामुदायिक विकास एक राज्य का विषय है। फिर केन्द्रीय स्तर पर मन्त्रालय की स्थापना क्यो हो ? और यदि ऐसे मन्त्रालय की स्थापना होती ही है, तो फिर उसका कार्य क्या होना चाहिए ? बी० मुकर्जी इस मन्त्रालय को "सामुदायिक विकास की विचारधारा के प्रचार तथा प्रसार का कार्य"[1] तथा "ग्रामीण विकास तथा ग्रामीण क्षेत्रो की समस्याओ पर ध्यान केन्द्रित करने का कार्य"[2] देना चाहते हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का राष्ट्रीय नियोजन के साथ राष्ट्रीय स्तर पर ही एकीकरण तथा समन्वय किया जाना चाहिए। अत सामुदायिक विकास मन्त्रालय को चाहिए कि वह राष्ट्रीय स्तर पर नीति का निर्धारण कर दे और फिर सभी स्तरो पर नियोजन तथा नीति के कार्य मे समन्वय स्थापित करे। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'राष्ट्रीय स्तर पर मार्ग-दर्शन' के कार्य के लिए ही सामुदायिक विकास मन्त्रालय की आवश्यकता है।

केन्द्र निम्नलिखित रीतियो के द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम को, जो कि पूर्णतया एक राज्यीय विषय है, प्रभावित करता है

(१) सर्वप्रथम रीति, जिसके द्वारा कि केन्द्र सामुदायिक विकास प्रायोजनाओ पर नियन्त्रण रखता है, है नीति का निर्धारण। मुख्य नीति का निर्माण तथा उसका प्रारम्भ केन्द्र द्वारा ही किया जाता है। केन्द्र सरकार राज्यो को नीति के सम्बन्ध मे मार्ग-दर्शन प्रदान करती है। नीति सम्बन्धी एक मोटी रूप-रेखा केन्द्र द्वारा निर्धारित की जाती है और राज्य उसको कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं।

(२) दूसरी रीति, जिसके द्वारा कि केन्द्र सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रभावित करता है, है प्रशिक्षण सस्थाओ (Training institutions) की स्थापना करना और राज्यो के अधिकारियो व कर्मचारियो को प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान करना। सामुदायिक विकास मत्रालय ने 'मूलभूत' (Basic) प्रशिक्षण अथवा पुनर्व्यवस्था पाठ्यक्रम (Orientation courses) का प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए एक अध्ययन तथा अनुसधान की केन्द्रीय सस्था (Central Institute of Study and Research) की स्थापना की है। परन्तु यह सस्था भी "सामुदायिक विकास का प्रशिक्षण देने वाली अन्य सस्थाओ मे नेतृत्व की स्थिति प्राप्त करती जा रही है।"[3] केन्द्रीय सस्था का प्रिंसिपल विभिन्न क्षेत्रो के विशेषज्ञो (Experts) के साथ प्रशिक्षण केन्द्रो का निरीक्षण करता है और उनके कार्य मे उनका मार्ग-दर्शन करता है। यह सुझाव दिया जाता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध मे जानकारी

holding itself jointly responsible with the latter for the successful operation of the Programme."

—Vide : B Mukerjee · *Community Development in India*, p 169.

1 B. Mukerjee : *op. cit*, p. 170.

2 *Ibid.*

3 B. Mukerjee : *op cit*, p. 170

प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सस्था (Central Institute) मे ही सम्बद्ध एक 'सूचना सदन' की स्थापना की जानी चाहिए ।

(३) केन्द्रीय मन्त्रालय से परामर्श प्राप्त करके राज्यो ने प्रशिक्षण के सम्पूर्ण क्षेत्र की देखभाल करने के लिए प्रशिक्षण समितिया बनाई हैं। "सामुदायिक विकास मन्त्रालय की ओर से तो राज्य सरकारो को इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया जाता है कि वे प्रशिक्षण के कार्य मे उसके साथ पूर्ण साभेदारी (Partnership) के रूप मे कार्य करें ।"[1]

(४) केन्द्र सरकार ऐसे 'सयुक्त कार्यक्रम' (Package programme) मे ठोस रूप म भाग लेती है जिसम कि सघीय सहायता के समान ही व्यय करने का राज्यो का भी दायित्व होता है ।

(५) केन्द्र सरकार समय-समय पर सम्मेलनो (Conferences), बैठको (Meetings) तथा विशेषाध्ययन वर्गों (Seminars) का आयोजन करके भी सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर भारी प्रभाव डालती है।

(६) केन्द्र सरकार साहित्य का निर्माण करके भी, जो कि कार्यकर्त्ताओ के पास भेजा जाता है राज्यो पर प्रभाव डालती है ।

(७) योजना आयोग के आधीन बनाये गये 'कार्यक्रम-मूल्याकन-सगठन' द्वारा सभी राज्यो मे सामुदायिक विकास क्षेत्रो के कार्यों का मूल्याकन किया जाता है। इस सगठन के वार्षिक प्रतिवेदनो (Annual reports) सामुदायिक विकास कार्यक्रम के राज्य प्रशासन पर भारी प्रभाव डालते हैं।

(८) ऋण (Loans), सहायक अनुदान (Grants in aid) तथा अनावर्ती व्यय (Non-recurring expenditure) के ७५ प्रतिशत भाग का भार केन्द्र सरकार द्वारा ही उठाया जाता है ।

इस प्रकार सामुदायिक विकास प्रशासन के क्षेत्र मे राज्यो पर केन्द्रीय प्रभुत्व ने अनेक रूप धारण किये हैं । सामुदायिक विकास प्रशासन को "एक सयुक्त प्रशासन" (A Coalition Administration) का नाम दिया गया है। सहायक अनुदानो के लिए (और अनेक अवसरो पर विशेष उद्देश्यो की सहायता के लिए) राज्य सरकारो की केन्द्र सरकार पर बढती हुई निर्भरता ने इस कार्यक्रम के सम्बन्ध मे राज्यो पर केन्द्रीय नियन्त्रण की मात्रा मे सदा वृद्धि की है । केन्द्र तथा राज्यो की इस साभेदारी का लाभ ग्राम्य-स्तर से उच्च स्तर तक कार्यक्रम की आकृति तथा नामावली की एक-रूपता के विकास के रूप मे हुआ है । केन्द्र सरकार अधिक योग्यता तथा क्षमता रखती है अत यही नेतृत्व प्रदान करती है। यद्यपि साधनो, सूचनाओ व जानकारियो तथा अधिकारियो व कर्मचारियो के एकत्रीकरण से सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शक्ति तथा प्रभाव मे वृद्धि हुई है । परन्तु ऐसे कार्यक्रम मे एक बुराई भी निहित होती है

1 *Ibid*, p 272

और वह है इसकी एकरूपता (Uniformity) तथा कठोरता अथवा दृढता (Rigidity)। जब भी कोई योजना ऊपर से अर्थात् केन्द्र से आती है तो उसका स्वाभाविक आशय यही होता है कि उसको सभी स्थानों पर समान रूप में ही लागू किया जाय। इस परिस्थिति मे यह हो सकता है कि योजना वहाँ लागू कर दी जाय जहाँ कि स्थिति बिल्कुल भिन्न हो। अन्य शब्दो में, एकरूपता की इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्थान-स्थान की विभिन्नताओं को उचित महत्व नहीं प्रदान किया जाता। परन्तु केन्द्रीय प्रभाव का विस्तार राज्य सरकारो की सहमति एव स्वीकृति मे ही होता है। यह केन्द्र पर राज्यो की वित्तीय निर्भरता के कारण भी होता है।

IV

उपर्युक्त तथ्यो से सघीय सिद्धान्तो का अत्यधिक ध्यान रखने वाले व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीय सघीयवाद (Indian Federalism) खतरे मे है। परन्तु ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व हमे देश म प्रचलित उन दशाओं का नहीं भूलना चाहिए जिन्होंने कि केन्द्र सरकार के सामने ऐसी 'अनिवार्य परिस्थिति' उत्पन्न कर दी है जिसमे कि उसे पहल करने तथा नेतृत्व करने के लिए आगे आना पडा है। परिस्थितियों की अनिवार्यता, आर्थिक व सामाजिक नियोजन तथा सामुदायिक विकास की आवश्यकता, कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना का निश्चय सविधान मे व्यक्त की गई यह इच्छा कि देश मे एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की जाय जिसमे कि सभी व्यक्तियो के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय की गारन्टी की जा सके, केन्द्र पर अधिक योग्यता एव क्षमता की उपलब्धता (Availability), सम्पूर्ण देश का स्तर ऊंचा करने की आवश्यकता तथा केन्द्र पर राज्यो की वित्तीय निर्भरता—इन सब दशाओं ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमे कि केन्द्र को ऐसे क्षेत्रों मे भी पहल एव नेतृत्व करने को आगे आना पडा है जिनके बारे मे कि सविधान द्वारा निषेध किया गया था। सविधान मे स्वय ही केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की बात व्यक्त की गई थी और अब समय एव परिस्थितियों की ललकार ने इसके महत्व को और भी दुगुना कर दिया है। इस केन्द्रीयकरण के अनेक ठोस लाभ होंगे और इसका परिणाम यह होगा कि देश का सन्तुलित विकास होगा तथा पिछडेपन से सम्बन्धित भारी क्षेत्रीय विषमताएं भी अन्तत समाप्त हो जायेगी। विकास-कार्य देशभर मे फैला होगा और यदि किसी भी राज्य मे साधनो आदि की कमी के कारण परिस्थितया उसके प्रतिकूल है तो भी उस राज्य की जनता विकास-कार्य के लाभो से वचित नहीं रहेगी। राष्ट्र की शक्ति तभी बढती है जबकि उसके सभी हिस्से शक्तिशाली हो और कोई भी भाग कमजोर न हो। यदि प्रेरणा (Initiative) और नेतृत्व (Leadership) तथा नीति (Policy) केन्द्र से प्राप्त होते हैं तो इसमे कोई बुराई की बात नहीं है, परन्तु यदि नीति का क्रियान्वय (Policy-implementation) एकरूपता तथा कठोरता के साथ किया जाता है तो उसका

प्रतिकूल प्रभाव होता है। नीति को क्रियान्वित करते समय अत्यधिक केन्द्रीयकरण पर जोर नही दिया जाना चाहिए। इस बुराई को प्रशासन की दूरदर्शिता से जागृत नेतृत्व से, और इसकी देखभाल के लिए बनाये कुछ संस्थागत उपकरणों से दूर किया जा सकता है। केन्द्र सरकार, योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् के साथ होने वाले वाद-विवादो, सम्मेलनो तथा बैठको म राज्य सरकारें अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकती हैं और अपनी कठिनाइयो के विकल्प (Alternative) का सुझाव दे सकती हैं। इस प्रकार नीति को लागू करने मे अत्यधिक केन्द्रीयकरण को रोका जा सकता है। यह बडी आश्चर्यजनक बात है कि वैसे राज्य सरकारें भूमि *की सीमा निर्धारित करने की नीति का अनुसरण कर रही हैं* परन्तु उन्होने योजना आयोग द्वारा निर्धारित की गई ३० एकड की सीमा को स्वीकार नही किया है। इस प्रकार प्रादेशिक मत-विभिन्नताओ का सम्मान किया गया है।

नई परिस्थितियो का सामना करने के कारण भारतीय *संघीयवाद (Indian* Federalism) विकास की एक नई स्थिति म प्रवेश कर रहा है। वे परिस्थितियाँ हैं भारतीय संघीयवाद के कुछ नये पहलू, जिनके अनुसार महत्वपूर्ण मामलो मे संघ तथा राज्यो के बीच सहयोग अथवा साझेदारी बढ रही है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि राज्य कमजोर साझीदार (Partner) है परन्तु इसके अतिरिक्त और चारा भी क्या है। यह बात संसार के अन्य संघ-देशो के विषय मे भी सत्य है। अनेक लेखकों के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया अथवा कनाडा जैसे संघीय देश 'अर्ध-संघीय[1] (Quasi-federal) बन गये हैं। सन् १६३० की आर्थिक मन्दी (Economic depression) से पूर्व तथा उसके बाद की, विशेष रूप से राष्ट्रपति रूजवेल्ट के 'न्यू डील प्रोग्राम' के अन्तर्गत, अमरिकन संघीय व्यवस्था मे काफी परिवर्तन हुआ। अमेरिका म न्यू डील प्रोग्राम (New Deal Programme) से जनता के प्रति संघीय सरकार के कर्तव्यो मे और अधिक वृद्धि हो गई। शासन से यह माँग की गई कि 'उचित मजदूरियों' तथा 'काम के न्यायोचित घण्टो' का निर्धारण करे, किसानो की उन्नति के लिए योजनायें तैयार करे और बेरोजगारी को दूर करे। इससे उद्योग-धन्धो, परिवहन (Transport) तथा अन्य लोकोपयोगी सेवाओ (Public utility services) के निरीक्षण की भी माग की गई। 'न्यू डील प्रोग्राम' ने दोहरे संघीयवाद को "प्रत्यक्ष रूप से मृत तथा पुनर्जीवन से दूर" करके कल्याणकारी राज्य के विचार

1 According to S P Ayer 'The qualifying prefix 'quasi' indicates mere appearance or something that is seemingly so and is in fact different from what it appears to be we must limit the term 'quasi federal to a constitution that maintains the constitutional autonomy only in name However religiously the federal principle is embodied in the constitution, it is possible that in course of time social and economic conditions become so complicated that the powers of the federal Government increase It has to assume spheres of authority which did not originally belong to it "

S P Ayer *Federalism and Social Change a Study in Quasi Federalism*, Asia Publishing House, 1951, p. 91

को दृढ़ बनाया ।[1] अमरिकी उच्चतम न्यायालय (American Supreme Court) ने संयुक्त राज्य बनाम डर्बी (१९४१) के मुकदमे में स्वायत्तता (Autonomy) के स्थान पर राष्ट्रीय सर्वोच्चता' (National supremacy) के सिद्धांत को प्रस्थापित किया और ऐसा करने में उसने अमेरिकन संवैधानिक कानून के विकास के सम्बन्ध में न्यू डील प्रोग्राम' का अधिक स्पष्टता के साथ उल्लेख एवं प्रकाशन किया ।[2]

५

प्रश्न यह है कि यदि केन्द्रीयकरण अनिवार्य है तो एकात्मक राज्य (Unitary State) की स्थापना ही क्यों न कर ली जाए ? संघीयवाद (Federalism) का लबादा ही क्यों पहना जाये ? कुछ ऐसे भी हैं जिनका विचार है कि एकात्मक व्यवस्था देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है ।[3] परन्तु भारत में संघीयवाद जिस मात्रा में वर्तमान है देश के जनतंत्रीय विकास के लिए वह अत्यन्त आवश्यक है। लोकतंत्र (Democracy) में सत्ता के भिन्न भिन्न केन्द्र होने चाहिये जहाँ कि लोग अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकें और जहाँ प्रादेशिक विभिन्नताओं को भी उचित महत्व प्रदान किया जाये। एक ऐसे देश में जहाँ कि रीति रिवाजों परम्पराओं और रहन-सहन के ढंगों में अन्तर पाया जाता है सम्पूर्ण विकास-कार्य पूर्णतया एक रूप में नहीं किया जा सकता। भारत में लोकतन्त्र केवल तभी सफल हो सकता है जबकि लोगों की भिन्न भिन्न आवश्यकताओं तथा उनके पृथक्-पृथक् महत्व को दृष्टिगत रखा जाय। यही वे कारण है जो कि संघीयवाद का पक्ष-पोषण करते हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कुछ अन्य शक्तियाँ (Forces) भी हैं जो केन्द्रीयकरण की दिशा में अग्रसर है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि दोनों विचारधाराओं के बीच उचित सन्तुलन कायम किया जाये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्थिक व सामाजिक नियोजन ने भारत की केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया है परन्तु फिर भी आर्थिक नियोजन के कारण उत्पन्न केन्द्रीयकरण संविधान की संघीय प्रकृति के कारण ही अपनी पूर्ण स्थिति को न प्राप्त कर सका। संघीयवाद तो आर्थिक नियोजन में निहित इस केन्द्रीयकरण पर एक अवरोध

1 Kelly and Harbinson The American Constitution. Its origin and Development (W. R. Norton & Co New York 19..) p 718

2 Swisher C. B American Constitutional Development Hongton Muffin p 967

3 Even Asoka Chanda maintains "It is becoming more and more evident that—'if India is to realise fully her declared objectives to secure to all its citizens, justice social economic and political fraternity assuring the dignity of the individual and the unity of the nation, the structure of her administration should be reorganised to conform more to the unitary pattern with a well developed system of local government."

—Vide Asoka, Chanda Indian Administration, George Allen and Unwin Ltd., London, 1958, p 30.

(Check) है। संघीयवाद अत्यधिक केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण के बीच मध्य-मार्ग के रूप में कार्य कर रहा है। भारत में अपने निजी अधिकारों से युक्त सोलह राज्यों का अस्तित्व ही अत्यधिक केन्द्रीयकरण (Excessive centralisation) पर एक अवरोधक प्रभाव के रूप में कार्य करता है[1] और प्रायः योजना के कार्यान्वय में प्रादेशिक विभिन्नताओं की मान्यता की गुंजाइश रखता है।

VI

कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि प्रशासन के दृष्टिकोण से केन्द्र सरकार बहुत कमजोर है और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय योजनाओं को लागू करने के बारे में राज्यों पर निर्भर रहती है। योजनाओं को लागू करना केन्द्र के प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा सरकारों का मुख्य उत्तरदायित्व है।[2]

आयोजना-बद्ध कार्यक्रमों तथा उनके क्रियान्वय (Implementation) में उचित समन्वय (Coordination) स्थापित करने के लिए अधिक मात्रा में 'अखिल भारतीय सेवाओं' की व्यवस्था की जानी चाहिए। ये सेवाएं केन्द्र पर तथा राज्यों में विकास सम्बन्धी प्रशासन की 'रीढ़ की हड्डी' बन जायेंगी। इस सुझाव के समर्थन में अनेक तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम, कार्यकुशलता का एक न्यूनतम स्तर निर्धारित किया जाना चाहिए, और आर्थिक सेवाओं में लगे हुए अधिकारी व कर्मचारी उस स्तर के अनुरूप होने चाहियें। परन्तु अब ऐसे कार्यों के लिए अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भर्ती राज्यों द्वारा की जाती है। परिणामस्वरूप, प्रत्याशियों (Candidates) का स्तर भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न होता है और उनकी कार्यक्षमताओं एवं कुशलताओं में भारी अन्तर पाया जाता है। दूसरे, अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी राज्यों में एक नया दृष्टिकोण लेकर आते हैं जबकि केवल राज्य में से ही भर्ती किए जाने वाले व्यक्ति समुचित दृष्टिकोण के हो सकते हैं। तीसरे, अखिल भारतीय सेवाएं देश के विभिन्न भागों को जोड़ने वाली एक कड़ी के

1 "A local executive fully responsible to a local legislature ensures a good deal of local internal sovereignty and sovereignty means a Statehood, limited as it may be by the distribution of powers Local States pursue local policies, sometimes in accordance with the policy of the Centre, sometimes not. This distinguishes them precisely from the position which prevails in administrative federations in which local units must toe the line and always follow the policy of the Centre India is undoubtedly a federation in which the attributes of statehood are shared between the Centre and local States " —Vide Alexandrowicz *Constitutional Development in India*, pp 168 9

2 As Appleby observes "The power that is exercised organically in New Delhi is the uncertain and discontinuous power of prestige It is influence rather than power Its method is making plans, issuing pronouncements, holding conferences Dependence for achievement, therefore, is in some crucial ways apart form the formal organs of governance, in forces which in the future may take quite different forms " —Paul H Appleby *Public Administration in India* Report of a survey, Government of India, 1953, p 97-22.

रूप मे कार्य करती हैं। अन्त मे, चूंकि इन सेवाओ के अधिकारियो पर नियन्त्रण रखने का कार्य पूर्णतया राज्य सरकारो पर नहीं छोडा जाता, अत अधिकारी बिना स्थानीय दबावो अथवा प्रभावो के अपना कर्तव्यपालन करते हैं। कल्याणकारी राज्य के प्रशासन के लिए अखिल भारतीय सेवाओ का सगठन करके देश प्रशासन तथा विकास के स्तर मे न्यूनतम एकरूपता लाई जाई जा सकती है।

परन्तु राज्यो ने निम्नलिखित कारणो से और अधिक मात्रा मे अखिल भारतीय सेवाओ की स्थापना का विरोध किया है (१) राज्यो की स्वायत्तता कम हो जाने के भय से, (२) राज्य के कोष पर अधिक भार पडने के भय से, (३) सेवाओ पर विभाजित नियन्त्रण किए जाने के कारण, (४) सेवाओ की 'अप्रतिनिधि रूप (Unrepresentative) प्रवृत्ति होने के कारण और (५) इस कारण कि राज्य के निवासियो को सेवाओ मे पर्याप्त अवसर नही प्राप्त होगे।

किन्तु इस विरोध के बावजूद, अखिल भारतीय सेवाओ म वृद्धि की जानी चाहिए और राज्य-सेवाओ की कोटि अथवा किस्म (Quality) को पर्याप्त महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। उनके प्रशिक्षण कार्यक्रमो, शिक्षा तथा भर्ती पर अधिकतम सम्भव ध्यान दिया जाना चाहिए।

———

१०

पंचायती राज
(Panchayati Raj)

पृष्ठभूमि (Background)

विषय की गहराई मे प्रवेश करने से पूर्व विषय की पृष्ठ-भूमि (Background) का अध्ययन करना बहुत जरूरी है। प्रत्येक राष्ट्र की कुछ परम्परायें कुछ सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थायें (Social and political institutions) तथा कुछ विचार एवं रहन सहन के तरीके होते हैं। इनके विकास का भविष्य बहुत हद तक इन परम्पराओ के चरित्र पर निर्भर रहता है और सामाजिक क्रांति भी इन परम्पराओ से पूरी तरह अपना दामन नही छुडा पाती। वस्तुत ये परम्परायें भूतकाल मे चलती आई प्रथाओ का विकसित एवं नूतन स्वरूप ही होती हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी सामाजिक अथवा राजनैतिक प्रणाली की सफलता लोगो के बुद्धि-कौशल Genius) पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से यह देखना अत्यावश्यक है कि क्या किसी प्रणाली विशेष की जडें भूतकाल की प्रथाओ मे भी हैं अथवा नही ? प्राय यह कहा जाता है कि पंचायती राज प्राचीन परम्पराओ का एक स्वाभाविक विकास ही है और वैदिक भारत मे हमे इसके दर्शन होते भी हैं। वेदो के अध्ययन से हमे ज्ञान होता है कि उस समय 'समिति' नाम की एक सार्वजनिक तथा सार्वभौम प्रतिनिध्यात्मक संस्था (Representative Institution) होती थी। यह उस समय के जनसाधारण जो अनेक वर्गों मे विभक्त रहता था और 'विश" कहलाता था कि एक राष्ट्रीय महासभा थी। यह संस्था राजा को चुनती थी। यदि किसी राजा को हटाना पडता था तो दुबारा यही राजा का चुनाव करके उस पद को भरती थी। *समिति के विषय मे वेदो मे अनेक मत्र आते हैं जिनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि* वैदिक युग मे शासन मे राजा का प्रमुख भाग होने पर भी वह स्वेच्छाचारी नही होता था, अपितु समिति जैसी महान् सार्वभौम संस्था (Sovereign Institution) स नियन्त्रित रहता था। ये समितियाँ राजा को सब प्रकार की सहायता देती थी और शासन को ठीक चलाने की व्यवस्था करती थी। ऋग्वेद मे जिस समिति का वर्णन आता है उसके साथ सभा नाम की एक संस्था और होती थी। ऐसा ज्ञान होता है कि समिति राष्ट्र की बडी संसद हुआ करती थी जिसमे राष्ट्र के सब लोगो का प्रतिनिधित्व होता था। सभा कुछ निर्वाचित नागरिको की संस्था थी जो सम्भवत समिति के आधीन या उससे अधिकार प्राप्त करके समिति क्षेत्र मे कार्य करती थी। *इस प्रकार वैदिक युग म राजा समिति एव सभा के बीच कार्य करता था।*

वेद कालीन भारत प्रमुखत कृषि प्रधान था और यही वजह है कि हमे वेद मन्त्रो मे गावो के विकास से सम्बन्धित ही स्वर सुनाई पडता है न कि कस्बो और शहरो के विकास की आवाज। इस तरह गावो का प्रशासन बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था मे विकसित हुआ। गाव के मुखिया और ग्राम सभाए प्रशासनिक ढाचे की प्रमुख अग रही। आदि कवि वाल्मीकि ने जनपद का उल्लेख किया है। महाभारत मे ग्राम-सघ (Village union) तथा जातक मे ग्राम-सभा (Village Assembly) का उल्लेख प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन *ग्रामीण संस्थाओ* की परम्परा भारत मे दीर्घकाल तक रही। परन्तु विषय के प्रतिपादन की दृष्टि से हमे यह नही भूलना चाहिये कि प्राचीन ग्राम सस्थाओ की परम्परा मे और आज के पचायती राज की प्रणाली मे एक बहुत बडा अन्तर है।

प्राचीन पचायतो का लोगो के साथ-साथ अपने आप विकास हुआ। पुराने जमाने की पचायतें किसी प्रकार के नियम अथवा विधान पर आधारित नही थीं। इनका आधार वर्णाश्रम धर्म था और ये आधुनिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली से पूर्णत *अनभिज्ञ थी। हमारे देश पर समय-समय पर हुए विदेशी आक्रमणो* का प्रभाव पचायतो की सार्वभौमिकता पर भी पडा। धीरे-धीरे शहर व्यापार एव राजनीति के केन्द्र बनने लगे और गावो के हाथ से सामाजिक एव राजनीतिक सत्ता प्राय छिन सी गई। मुगल शासको के समय मे गाव केवल लगान और कर वसूल करने की इकाई (Unit) मात्र ही रह गया। पचायतो के न्याय सम्बन्धी अधिकार भी कम कर दिये गये। धीरे-धीरे यह सस्था जागीरदारो के हाथ मे आई जो कि वश-परम्परा के आधार पर इसके मुखिया बनने लगे। इस प्रकार प्राचीन काल से चलती आई पचायतो की परम्परा जागीरदारो के जमाने मे एकदम कमजोर हो गई। अग्रेजो के भारत मे आगमन के समय पुरातन काल से चलती आई ग्राम प्रशासन की इकाई समझी जाने वाली यह पचायत प्राय मर सी गई थी। लार्ड हैले ने ह्यू टिंकर की पुस्तक के प्राक्कथन मे लिखा है, "अग्रेजो के शासन से पूर्व पचायत हर हालत मे *भारतवर्ष के बहुत से भागो मे काफी लम्बे अर्से तक काम करना बन्द कर चुकी थी।*' ("The Panchayat, had, in any case, ceased to be operative in most parts of India for a considerable period before the adrent or the British rule")[1]

स्वतन्त्रता और उसके बाद :

१५ अगस्त सन् १९४७ को जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब भारत की ग्राम-प्रशासन की प्रणाली बहुत कमजोर थी। उस समय तक न तो लोग पचायतो की कार्य प्रणाली मे दिलचस्पी ही लेते थे और न ही इनकी आर्थिक दशा भी सतोषजनक थी। परिणामस्वरूप इनका अस्तित्व पूर्णत. सरकार पर निर्भर था। यही वजह है

1 Lord Hailey in Foreword to Hugh Tinker's book '*Foundations of Local Self Government in India, Pakistan and Burma* (London, 1954), p 15

कि भारतीय संविधान की ४०वीं धारा ने विशेष तौर से यह प्रावधान रखा गया कि राज्य सरकारें ग्राम-पंचायतों के निर्माण एवं विकास पर स्वशासन की इकाइयों (Units of self-government) की तरह ध्यान दें। इस प्रकार भारत के नव-निर्माण में पंचायतों के योग, महत्व एवं मूल्य को एक बार फिर समझने का सफल प्रयास किया गया। भारत के समस्त राज्यों (States) तथा केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशों (Union territories) में तत्सम्बन्धी कानून बनाये गये और जगह-जगह पर तेजी के साथ पंचायतों का निर्माण किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक भारत में १,२३,६७० ग्राम-पंचायतें थीं। इन पंचायतों में भारत की कुल ग्राम संख्या के आधे से अधिक गाव थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारत के सम्पूर्ण गावों को लेने का निश्चय किया गया। इसके बावजूद भी इन ग्राम संस्थाओं की तस्वीर बहुत धुंधली थी। जिलाबोर्ड प्राय अकर्मण्य थे। गाव और जिले के प्रशासन में अन्तर था। आपस में सहयोग नहीं था और न ही कोई ऐसी संस्था थी जो इन दोनों के बीच में पुल का काम कर सके। स्पष्ट है कि विकास सम्बन्धी कार्यों में जन-सहयोग की भावना का निर्माण करने का जो भी प्रयास किया गया उस प्रयास को आशा के स्थान पर निराशा की शक्ल देनी पड़ी। पाच वर्षों के सामुदायिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रम (Community Development Programme) ने यह सिद्ध किया कि कहीं न कहीं कोई ऐसी गड़बड़ अवश्य है जिसे दूर करने के लिए आमूलचूल परिवर्तन करना शायद अनिवार्य है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए श्री बलवन्तराय मेहता की कुशल अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया गया। इस समिति ने अपनी सिफारिशों में लोकतान्त्रिक-विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) की जो रूप-रेखा रखी उस रूपरेखा ने ग्राम प्रशासन में वास्तव में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) का उद्देश्य जन-सहयोग के द्वारा गावों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना था। सरकार का काम केवल सलाह देने एवं मार्ग-दर्शन करने मात्र का ही था। किन्तु शीघ्र ही यह देखा गया कि लोगों को इस कार्यक्रम से अरुचि है और वे इसमें सतोषजनक रूप से भाग भी नहीं लेते हैं। खण्डों (Blocks) का निर्माण सामुदायिक विकास कार्यक्रम में एक नई कड़ी अवश्य थी, पर किसी प्रकार की प्रतिनिधि संस्था (Representative institution) इस स्तर पर भी नहीं थी। प्रत्येक खड (Block) पर एक सलाहकार समिति का गठन किया गया। यह समिति विशुद्ध रूप से एक सलाहकार समिति ही थी और इसके पास किसी प्रकार के प्रशासनिक कार्य नहीं थे। परिणामस्वरूप इस प्रकार की समितियाँ अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकीं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस बात पर जोर दिया गया कि ग्राम पंचायतें नियोजन (Planning) की प्रक्रिया को कार्यान्वित करने का कार्य करें पर ग्राम-पंचायतें इस प्रकार का बीड़ा उठाने में अपने आप में असमर्थ थीं। दूसरे

शब्दो मे वैधानिक ढाचे (Legislative framework) और वास्तविक कार्य प्रणाली मे एक ऐसी खाई थी जिस आसानी से नही पाटा जा सकता था। जैसे-जैसे योजना की प्रगति हुई यह महसूस किया गया कि जनता मे उत्साह पैदा करने के लिए जनता के प्रतिनिधियो का सलाहकारो के रूप मे काम करना ही काफी नही था। जब तक जनता पर स्वय अपने विकास की पूरी जिम्मेवारी नही हो वास्तविक प्रगति नही की जा सकती और न ही जनतत्र (Democracy) की नीव भी मजबूत की जा सकती है। जनतत्र की इसी नीव को मजबूत करने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के इतिहास मे जो नया अध्याय जोडा गया उस अध्याय की पक्तिया प्रारम्भ होती है—बलवन्तराय मेहता कमेटी की सिफारिशो के साथ।

मेहता कमेटी (Mehta Committee) -

ग्राम स्वराज्य हमारे राष्ट्रीय जीवन की रीढ है। आजादी हासिल करने के बाद भी यदि वह आजादी केवल दिल्ली की पार्लियामेंट के इर्द गिर्द ही घूमती रहे तो उसका कोई अर्थ नही जब तक कि हम उसे दिल्ली के गेट-वे ऑफ इन्डिया से भारत के बडे-बडे नगरो, कस्बो और छोटे से छोटे गावो तक नही ले जाते। भारत सरकार द्वारा ससद् सदस्य श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता मे नियुक्त की गई तीन अन्य सदस्यो की कमेटी का उद्देश्य यही था कि उन उपायो की खोज की जाय जिससे प्रत्येक ग्रामवासी आजादी के सही अर्थ को समझ सके, ग्रामीण जनता को अपना प्रबन्ध अपने आप करने का अवसर मिल सके, जिससे कि नियोजन मे लोगो का विश्वास बढे और उसमे वे सक्रिय योगदान दे सकें। २१ फरवरी से ४ अगस्त १९५७ तक इस मेहता कमेटी ने भारत के १३ राज्यो के चुने हुए ५८ खडो (Blocks) का निरीक्षण किया तथा विभिन्न प्रकार के उन व्यक्तियो से जो इन खडो से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित थे विचार-विमर्श एव बातचीत की। इसके बाद इस कमेटी ने अपने निरीक्षण एव अध्ययन के आधार पर तैयार की गई अपनी सिफारिशो तथा निर्णयो को विभिन्न राज्यो की सरकारो के पास भेजा। तत्पश्चात् सितम्बर तथा अक्टूबर सन् १९५७ के मध्य तक मेहता कमेटी ने राज्य सरकारो से विचार विमर्श किया और अन्त मे २४ नवम्बर सन् १९५७ को मेहता कमेटी ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। मेहता कमेटी की यह विस्तृत रिपोर्ट तीन भागो मे बटी हुई थी।

अपने गहन अध्ययन एव चिन्तन के बाद मेहता कमेटी ने यह सुझाव दिया कि देश मे चल रहे विकास कार्यो के लिए एक विकेन्द्रित योजना चलाई जावे और प्रशासनिक सत्ता का छोटे से छोटे स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया जावे जिससे जनसाधारण यह समझे कि देश मे जो कुछ भी किया जा रहा है वह उनका अपना काम है और जो कुछ वे कर रहे है अपने लिए ही कर रहे हैं। कोई भी देश अपने व्यक्तित्व का तब तक विकास नही कर सकता जब तक कि वह अपने भाग्य की रूपरेखा तैयार करने में स्वतन्त्र न हो। अतएव यदि हम चाहते हैं कि ग्रामवासियो के व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास हो तो यह अनिवार्य है कि हम उन्हे

समुचित अधिकार, साधन, आवश्यक प्रशिक्षण और प्रशिक्षित कर्मचारियों की सुविधायें प्रदान करें। *जनतन्त्र की परिकल्पना भी यही है* कि केवल ऊपर से ही शासन न चलाया जाय बल्कि देश के कण-कण में बिखरी हुई प्रतिभाओं का विकास किया जाय। यह तभी सम्भव है जबकि जनसाधारण सक्रिय सरकार में सीधा भाग ले सकें। *सक्रिय सरकार में सीधे भाग लेने की इस प्रक्रिया को ही कहते हैं,* लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज।

तीन-स्तरीय योजना
(Three tier system) :

मेहता रिपोर्ट में जो कतिपय सिफारिशें की गईं उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी सिफारिश तीन-स्तरीय योजना (Three tier system) की है। इस योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम जिला स्तर पर एक जिला परिषद् होगी जो पुराने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का स्थान ले लेगी। इसका कार्य पंचायत समितियों के बीच समन्वय स्थापित करना, उनके कार्यों की देख-रेख करना तथा उनके ऊपर नियन्त्रण रखना होगा। प्रत्येक खण्ड (Block) में एक पंचायत समिति स्थापित की जायेगी जो अपने क्षेत्र के कार्य के लिए योजना बनाएगी और अपने निरीक्षण में पंचायतों द्वारा उस कार्यान्वित करायेगी। तीसरी इकाई पंचायत होगी जिसका मुख्य कार्य पंचायत समिति द्वारा निर्धारित नीति को कार्यरूप में परिणित करना होगा। *पंचायतों के पंच और सरपंच का चुनाव ग्रामीण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के* आधार पर प्रत्यक्ष रूप म होगा। पंचायतों के सरपंचों से मिलकर पंचायत समिति बनेगी और पंचायत समितियों के प्रधान जिला परिषद् होंगे।

राजस्थान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को सर्वप्रथम लागू करने का श्रेय राजस्थान को प्राप्त है। भारत के इतिहास में २ अक्तूबर सन् १९५९ का दिन सदा *अविस्मरणीय रहेगा। यह वही दिन है जब राजस्थान ने राजस्थान पंचायत समिति* और जिला परिषद् अधिनियम (Rsjasthan Panchayat Samiti and Zila Parishad Act) के माध्यम से सत्ता के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण जैसी कठिन राह पर सबसे पहला कदम रखा। इसी दिन भारत के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने नागौर में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आयोजना का सबसे पहले उद्घाटन करके राष्ट्र अभिनव चेतना का प्रारम्भ किया। इसके अन्तर्गत प्रान्त की १३२ पंचायत समितियों और २६ जिला परिषदों ने अपना कार्य शुरू कर दिया है। प्रशासन सत्ता का यह विकेन्द्रीकरण उस प्रक्रिया का अन्तिम रूप है जिसका समारम्भ सामुदायिक विकास कार्यक्रम के साथ हुआ। तत्पश्चात् अन्य राज्यों के बीच भी इस योजना को लागू करने की, मानो होड़ सी लग गई है। १ नवम्बर सन् १९५९ में आन्ध्र राज्य तथा २ अक्तूबर सन् १९६० में मद्रास राज्य में यह योजना लागू की गई। सन् १९६२ के अन्त तक राजस्थान, आन्ध्र, मद्रास, आसाम, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब,

उत्तर प्रदेश एव महाराष्ट्र प्रभृति ९ राज्यो मे यह योजना लागू हो चुकी है। गुजरात, बिहार तथा मध्य प्रदेश मे तत्सम्बन्धी विधेयक स्वीकृत किये जा चुके है और योजना को लागू करने का कार्य प्रगति पर है। दो अन्य राज्यों बगाल तथा केरल मे विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विधेयको की रूप रेखा बनाई जा रही है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि जम्मू तथा काश्मीर राज्य म विकेन्द्रीकरण की योजना पर अभी तक कोई कार्यवाही नही हुई है। विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध मे हुई योजना की अब तक प्रगति वास्तव मे सराहनीय है। मार्च सन ६२ तक ६४% ग्राम पचायतो मे विकेन्द्रीकरण के सूर्य की किरणें पहुँच चुकी हैं। इस प्रकार भारतवर्ष मे पचायती राज न सिर्फ सत्ता के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया पर ही है अपितु वह भारतीय जीवन का तरीका (Way of life) बन गया है। अब हम यहाँ उदाहरण के रूप म राजस्थान मे पचायती राज का वर्णन करेंगे क्योकि जहाँ तक पचायती राज के प्रशासनिक ढाचे का प्रश्न है अन्य राज्यो और राजस्थान की व्यवस्था के बीच कोई मौलिक अन्तर नही है।

पचायती राज की सस्थाये

पंचायत (Panchayat) ·

पचायत—पचायत एक गाव या कुछ गावो के समूह को मिलाकर बनाई जाती है। पचायत की आबादी १५०० से २००० तक की होती है। यदि एक गाव की ही आबादी १५०० के लगभग हो तो एक पचायत बनाई जाती है। १५०० स कम आबादी होने पर पचायत गावो को मिलाकर बनाई जाती है। बडे गावों को एक ही पचायत बनती है चाहे इनकी आबादी २००० हजार से भी अधिक हो।

निर्वाचन—हर पचायत म ५ से १५ तक पच व एक सरपच होते हैं जिनका गुप्त मतदान प्रणाली से चुनाव होता है। सारे पचायत क्षेत्र को वार्डों मे बाट दिया जाता है तथा हर वार्ड से एक पच चुना जाता है। सरपच के चुनाव के लिये सारे क्षेत्र के मतदाता मत देते हैं। चुनाव लोकतन्त्रीय बहुमत स होता है। इन चुनावो की समाप्ति के बाद एक विशेष सभा बुलाकर निम्न सदस्यो का सहवरण (Co-operation) किया जाता है —

(१) दो महिलाएँ यदि कोई स्त्री नही चुनी गई हो, अथवा एक स्त्री यदि एक स्त्री पहले से सदस्य चुन ली गई हो,

(२) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति का यदि कोई ऐसा व्यक्ति नही चुना गया हो,

(३) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति से यदि उनमे से कोई व्यक्ति नही चुना गया हो, इन सब सहवृत सदस्यो के अधिकार निर्वाचित सदस्यो के समान होते है।

कार्य की अवधि—पचायतो की कार्य अवधि ३ साल निश्चित की गई है तथा राज्य सरकार उसे विशेष स्थिति मे एक साल और बढा सकती है।

पचायत के अधिकारी-वर्ग—पचायत का उच्चाधिकारी सरपंच होता है तथा प्रत्येक पचायत म एक सेक्रेटरी होता है जोकि बहुधा एक साथ दो-तीन पचायतो मे कार्य करता है। कुछ पचायतो मे ग्राम सेवक ही सचिव का कार्य करता है।

सरपंच के कार्य :

(१) *सभा की अध्यक्षता करना व कार्य-सचालन करना ;*

(२) *पचायत के रिकार्ड अपने पास रखना ,*

(३) *पचायत फण्ड का हिसाब रखना ,*

(४) *न्याय पचायत की सभा का इन्तजाम करना ,*

(५) *पचायत के सभी कार्यों का निरीक्षण ;*

(६) राज्य सरकार द्वारा मागे गये रिकार्ड हिसाब या अन्य विवरण देना।

पचायत का कार्य सभा मे होता है तथा १५ दिन मे एक बार उसकी सभा होना आवश्यक है। सभा मे सरपच सहित एक तिहाई पचो का होना अनिवार्य है।

सब पच आपस मे मिलकर उप-सरपच का निर्वाचन करते हैं जो सरपच की अनुपस्थिति म सभा की अध्यक्षता करता है। किसी भी पच के द्वारा प्रस्ताव रखने पर और यदि वह प्रस्ताव ⅔ के बहुमत से पारित हो जाय तो सरपच को अपना स्थान रिक्त करना पडता है। उप-सरपच को हटाने के लिए इस प्रकार का 'अविश्वास प्रस्ताव' केवल कुल सदस्यो के बहुमत से पारित हो जाना काफी है।

पंचायत के कार्य

पचायती राज के अन्तर्गत पचायत को ग्रामीण विकास की मुख्य इकाई मानकर उसे ग्राम विकास सम्बन्धी सभी कार्यों का भार सौंप दिया गया है। इसके निम्नलिखित मुख्य कार्य है .—

(१) स्वास्थ्य व सफाई, (२) सडकें व गली बनवाना व उनकी रक्षा करना, (३) शिक्षा व सास्कृतिक कार्य जैसे वाचनालय बनवाना, शिक्षा व प्रसार इत्यादि (४) ग्राम सुरक्षा, (५) प्रशासकीय तथा जनगणना, आकडे, मेले व यात्राओ की व्यवस्था इत्यादि, (६) जन हित हेतु कार्य जैसे भूमि-सुधार योजना को क्रियान्वित करना, सरकारी आन्दोलन को बढावा देना, परिवार-नियोजन को समझाना आदि, (७) कृषि व वन सरक्षण सम्बन्धी कार्य, (८) नस्ल सुधार सम्बन्धी कार्य, (९) ग्रामीण उद्योग धन्धो को चलाना तथा विविध कार्य जैसे कि अल्पबचत योजना मे योग देना व जीवन बीमा का प्रचार करना।

पचायतों की आय के साधन—पचायतो के बढते हुये निम्नलिखित आय के साधन दिये गये हैं —

(१) राज्य सरकार व अन्य स्रोतो से प्राप्त सहायता ;

(२) विभिन्न करो से आय।

पचायतें निम्न कर लगा सकती हैं .—

(अ) भवन कर ;

(ब) वाहन कर ;

(स) चुगी ;

(द) यात्रा कर तथा कोई अन्य कर ।

इन करो को राज्य सरकार की अनुमति प्राप्त करके ही लगाया जा सकता है ।

पचायत समिति

पचायत समिति की रचना—राजस्थान मे पचायत समिति का निर्माण 'विकास खण्ड' (Development Blocks) स्तर पर किया गया है तथा जहाँ पर अभी तक विकास खण्ड नही हैं वहाँ पर 'छाया खण्ड' (Shadow Blocks) खोलकर पचायत समिति का गठन किया गया है ।

पचायत समिति के सदस्य—(१) खण्ड की समस्त पचायतो के सरपच । इसके अलावा निम्न सदस्य सहवृत (Co-operation) किये जायेगे —

(१) कृषि पण्डित ,

(२) दो महिलायें ,

(३) एक व्यक्ति अनुसूचित जाति अथवा आदिम जाति का ,

(४) एक व्यक्ति सरकारी समितियो की प्रबन्धकारी समिति मे से ;

(५) जिले के रहने वाले दो ऐसे व्यक्ति जिनको प्रशासन, जन स्वास्थ्य अथवा ग्राम विकास का अनुभव हो ।

इनके अलावा राज्य विधान सभा का प्रत्येक सदस्य, जब तक कि वह ऐसा सदस्य बना रहे, प्रत्येक ऐसे खण्ड की पचायत समिति का सहयोगी सदस्य होगा जो पूर्णत अथवा अशत इस निर्वाचन क्षेत्र मे स्थित हो या शामिल हो या उसका भाग हो जिसम से कि वह सदस्य राज्य विधान सभा के लिए चुना गया हो ।

कार्य काल—पचायत समिति का कार्यकाल तीन वर्ष होता है । इसका अध्यक्ष प्रधान कहलाता है जिसका चुनाव पचायत समिति के सदस्य गुप्त मतदान प्रणाली से करते हैं ।

पचायत समिति के अधिकारी—प्रधान की अध्यक्षता मे एक विकास अधिकारी जो राज्य प्रशासकीय अधिकारी होता है तथा कुछ (Extension Officers) कार्य करते हैं । कार्य सुचारु रूप से करने के लिए हर पचायत समिति मे कुछ स्थायी समितियो का निर्माण किया जाता है तथा हर स्थायी समिति के निर्णय पचायत समिति के सामने रखे जाते हैं जिन्हे वह केवल दो तिहाई बहुमत से ही बदल सकती है ।

पचायत समिति के कार्य—पचायत समितियो के निम्नलिखित प्रमुख कार्य निर्धारित किये गये हैं —

(१) सामुदायिक विकास, (२) कृषि, (३) पशुपालन, (४) स्वास्थ्य तथा ग्राम सफाई, (५) शिक्षा, (६) समाज शिक्षा, (७) सचार साधन, (८) सहकारिता,

(६) कुटीर उद्योग (१०) पिछड़े वर्गों के लिये कार्य, (११) आपातिक सहायता, (१२) आंकड़ों का संग्रह, (१३) न्याय, (१४) वन, (१५) ग्राम भवन निर्माण, (१६) प्रचार, (१७) विविध।

पचायत समिति की आय के साधन :

(१) राज्य सरकार द्वारा पचायत समिति को हस्तान्तरित दायित्वों के लिए अनुदान।

(२) राज्य सरकार द्वारा प्रार्थित तदर्थ (ADHOC) अनुदान।

(३) ऋण (Loans)।

(४) खण्ड की जनसंख्या के प्रति व्यक्ति २५ नये पैसे की दर से आगणित भू राजस्व का अंश।

(५) पचायत समिति के करों व फीसों से प्राप्त आय।

(६) खण्ड म हाट्या के पट्टों से आय।

पचायत समिति की हर महीने एक सभा होती है जिसमें सभी सदस्य मिलकर विभिन्न समस्याओं पर विचार करते हैं तथा स्थायी समितियों की रिपोर्ट पर विचार-विमर्श करते हैं।

जिला परिषद

राजस्थान म हर जिले मे एक जिला परिषद् का निर्माण किया गया है जो House of elders की तरह कार्य करती है।

जिला परिषद् के निम्नलिखित सदस्य होते हैं —

(१) जिले की सभी पचायत समितियों के प्रधान।

इनके अलावा कुछ सहवृत सदस्य होते हैं जो इस प्रकार हैं :—

(१) एक महिला।

(२) *एक व्यक्ति अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित आदिम जाति का।*

उस जिले से निर्वाचित ससद सदस्य व राज्य विधान सभासद् जिला परिषद् के सहयोगी सदस्य होंगे तथा सहवृत सदस्यों व सहयोगी सदस्यों को साधारण सदस्यों की भाँति सभा म भाग लेने व मतदान देने के सभी अधिकार प्राप्त होंगे।

जिला परिषद् के कार्य :

(१) भिन्न-भिन्न पचायत समितियों के कार्य में समन्वय स्थापित करना।

(२) पचायतों व पचायत समितियों का निरीक्षण करना तथा पचायत समितियों के बजट की जाच करना।

(३) पचायतों व पचायत समितियों के बारे म सरकार को राय देना।

(४) जिले म सब विकास कार्यों का सम्पादन करना व राज्य सरकार को विकास कार्यों के बारे मे सलाह देना।

ग्राय के साधन—जिला परिषद् एक सलाहकार सभा है तथा इसके प्रशासकीय कार्य बहुत कम हैं अत. उसे केवल निम्नलिखित आय के साधन दिये गये हैं :—

(१) राज्य सरकार द्वारा अनुदान।

(२) जनता और पचायत समितियो द्वारा दी गई सहायता आदि।

ग्राम सभा

पचायती राज की स्थापना के बाद यह स्वीकार कर लिया गया है कि ग्राम सभा ही लोकतानिक विकेन्द्रीकरण की आधारभूत शिला है तथा उनको पुनजार्गृत करने का पूर्णरूप से प्रयास किया जा रहा है।

ग्राम के सभी बालिग निवासियो को मिलाकर एक सभा बुलाई जाती है जिसको ग्राम सभा कहते है तथा सरपच उसकी अध्यक्षता करता है। प्रत्येक वर्ष मे ग्राम सभा की दो सभायें बुलाया जाना अनिवार्य है तथा आवश्यकता पडने पर अधिक बार भी यह सभा बुलाई जा सकती है।

ग्राम सभा मे पचायत द्वारा किये गए कार्यों की प्रगति पर विचार-विमर्श किया जाता है तथा ग्रामवासियो के विचारो को लिखकर अगली पचायत की सभा मे विचारार्थ रखा जाता है।

न्याय पचायत

ग्राम पचायतो को न्याय सम्बन्धी कार्य भार से मुक्त करने के लिए तथा न्याय कार्य को ठीक प्रकार से सम्पादित करने के लिए राजस्थान मे न्याय पचायतो का गठन किया गया है।

एक न्याय पचायत का कार्यक्षेत्र ५ से ७ पचायतो तक सीमित होता है तथा इनकी सदस्य सख्या उतनी ही होती है जितनी उसमे पचायतें शामिल होती हैं तथा हर पचायत से एक सदस्य चुनकर न्याय पचायत मे भेजा जाता है।

न्याय पचायत फौजदारी व दीवानी दोनो प्रकार के मुकदमो का फैसला कर सकती है परन्तु राजस्थान पचायत अधिनिम मे दिये गये First Schedule मे लिखित मुकदमो तक ही इसका कार्यक्षेत्र सीमित है। न्याय पचायत कैद की सजा नही दे सकती। इसी प्रकार Civil cases मे यदि झगडा २५० रुपये से ज्यादा का है तो वह न्याय पचायत के क्षेत्र (Jurisdiction) से बाहर हो जाता है।

न्याय पचायत एक अदालत के ढग से कार्य करती है तथा इसके फैसलो की अपील उसी न्याय क्षेत्र के मुन्सिफ या किसी अन्य समान स्तरीय जज की अदालत मे की जा सकती है।

तुलना :

प्राय प्रत्येक राज्य मे पचायती राज की सस्थाओ को अलग-अलग नामो से पुकारा जाता है अतएव एक राज्य से दूसरे राज्य की तुलना करना अपने आप मे

असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। जहाँ तक ग्राम स्तर की संस्था का प्रश्न है इसे साधारणत गांव अथवा ग्राम पचायत ही कहा जाता है। किन्तु ग्राम पचायत और जिला परिषद् के बीच की कडी को अलग-अलग प्रान्तो मे अलग-अलग नामो से पुकारा जाता है। इस बीच की कडी को मेहता कमेटी ने पचायत समिति की सज्ञा दी थी और कुछ राज्यो मे इसे इसी नाम से पुकारा जाता है किन्तु कुछ ऐसे राज्य भी हैं जिनमे इसे दूसरे नाम से भी पुकारा जाता है। जैसे आसाम म इसे 'आचलिक पचायत', मध्य प्रदेश मे 'जनपद पचायत', मद्रास मे 'पचायत यूनियन कौंसिल' जम्मू और काश्मीर मे 'ब्लॉक पचायत बोर्ड' तथा उत्तर प्रदेश मे 'क्षेत्र समिति'। यही *पचायत समिति गुजरात मे 'तालुका पचायत' और मैसूर राज्य मे 'डेवलपमेंट बोर्ड'* के नाम से पुकारी जाती हैं।

जहाँ तक जिला परिषद् का प्रश्न है कई राज्यो मे यह इसी नाम से पुकारी जाती है किन्तु कुछ राज्यों मे इसके नाम मे भी परिवर्तन पाया जाता है। जैसे मद्रास और मैसूर मे डिस्ट्रिक्ट डेवलपमेंट कौंसिल, गुजरात मे डिस्ट्रिक्ट पचायत, मध्य प्रदेश म जिला पचायत तथा आसाम मे मोहकमा परिषद् (Mohkuma Parishad)।

विभिन्न राज्यों म पचायती राज की सस्थाओं के नामो मे तो अन्तर है ही पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण एव ध्यान देने की बात यह है कि अधिकारियो के नामो म भी अन्तर है। ग्राम पचायत के अध्यक्ष को तो प्राय सरपच अथवा मुखिया ही कहा जाता है पर पचायत समिति के अध्यक्ष को जो राजस्थान मे प्रधान कहलाता है वही प्रधान आन्ध्र प्रदेश, आसाम, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा मैसूर मे 'प्रेसीडेन्ट' तथा महाराष्ट्र, मद्रास, उडीसा तथा पजाब म 'चेयरमैन' कहलाता है। उत्तर प्रदेश म इसी अधिकारी को 'प्रमुख' के नाम से पुकारा जाता है जबकि राजस्थान मे जिला परिषद् के अध्यक्ष को प्रमुख कहते हैं। यह वास्तव मे एक बहुत बडी उलझन पैदा करने वाली बात है कि दो पडोसी राज्यो मे एक ही प्रकार के अधिकारी को दो विभिन्न नामो स पुकारा जाय।

आज पचायती राज भारतवर्ष के ग्राम-निवासियों की जीवन पद्धति बनता जा रहा है। धीरे-धीरे नई-नई एव महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ जनता के कन्धो पर डाली जा रही हैं। इसके बावजूद भी कभी-कभी पचायती राज्य के उद्देश्यो पर शका व्यक्त की जाती है क्योकि निर्धारित उद्देश्यो को प्राप्त करने के मार्ग मे निम्नलिखित प्रमुख कठिनाइयाँ हैं—

(१) अशिक्षित जनता।
(२) राजनैतिक चेतना की कमी।
(३) नि स्वार्थ सेवा करने की भावना का अभाव।
(४) जाति एव धर्म सम्बन्धी अन्धविश्वास।
(५) जडता का आलस्य।

(६) मामलों के प्रति अनावश्यक वफादारी।
(७) अ-लोक-तान्त्रिक, सामाजिक एवं पारिवारिक ढांचा।

कहने को तो यह कहा जाता है कि पचायती राज देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन की काया-पलट कर रहा है। नियोजन की प्रक्रिया नीचे से ऊपर की तरफ (Planning from below) है। आज बाने भारत के मन्त्री, प्रधान-मन्त्री एवं राष्ट्रपति गांवों म स्वशासन की शिक्षा ले रहे हैं इत्यादि न जाने क्या-क्या बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं लेकिन जब इस सस्था का प्रत्यक्ष अध्ययन किया जाता है तो कथनी और करनी म अन्तर नजर आता है। उदाहरणस्वरूप आप जिला स्तरीय अधिकारियों को ही ले लीजिए। जिला स्तरीय अधिकारियों से उपेक्षा यह की जाती है कि वे मित्र, दार्शनिक एव सलाहकार के रूप में ग्रामवासियों के साथ कार्य करें परन्तु वास्तविकता यह है कि य अधिकारीगण ग्रामवासियो पर अपनी राय थोपने की चेष्टा करते हैं। यदि यह स्थिति अधिक दिनों तक रही तो पचायती राज अपने उद्देश्यों म कभी सफल नहीं हो पायेगा। आवश्यकता इस बात की है कि लोगों को ठोकर खाकर सीखने का (Trial and error) अवसर देना चाहिए। जिला अधिकारियों के इस सम्बन्ध म कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं कि वे वहां मार्ग-दर्शन करें जहां उसकी आवश्यकता हो वहाँ उस चीज को समझावें जहाँ समझाना जरूरी हो। दूसरे शब्दों में उनका काम एक शिक्षक की भाँति होना चाहिए। यह काम अपने आप में कठिन है क्योंकि इस कार्य को सम्पादित करने में कुशलता, स्फूर्ति, समझौते की भावना, स्पष्ट दृष्टिकोण तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की नितान्त आवश्यकता है। यदि हम वास्तव म यह चाहते हैं कि नय नेताओं का विकास गांवों की मिट्टी पर हो तो अधिकारियों को भी अब नौकरशाही का पुराना चोला उतारना पड़ेगा। गांवों की मिट्टी के मनोविज्ञान को समझना पड़ेगा।

कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण से भारत के गांव गन्दी राजनीति के प्रचार केन्द्र बन गए हैं। आये दिन चुनाव सम्बन्धी मामलों को लेकर गाली-गलौच, गुटबाजी, मारपीट और कभी-कभी राजनैतिक कारणों से हत्या तक भी कर दी जाती है। ये आरोप कहाँ तक सही हैं यह तो एक-एक जिले का विस्तृत अध्ययन करने पर ही कहा जा सकता है फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि ऐसी कोई बात हो तो उसे मेल-मिलाप, सहकारिता, समझौते और स्वार्थ रहित सेवा की भावना से दूर किया जा सकता है।

समस्याएँ तथा सम्भावनाएँ
(Problems and Prospects)

भारत में पचायती राज के सगठनात्मक स्वरूप का अध्ययन के पश्चात् इसमें निहित मुख्य समस्याओं का ज्ञान भी आवश्यक है। पचायती राज में कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासकीय समस्यायें निहित हैं। इसके उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में आने वाली सामाजिक बाधायें अग्रलिखित हैं—

(अ) जनता में साक्षरता का अभाव।

(ब) राजनीतिक चेतना का अभाव।

(स) निःस्वार्थ नेतृत्व का अभाव।

(द) जनता का आलस्य तथा उसकी क्रियाहीनता।

(ट) जातीय धार्मिक तथा सामन्तवादी निष्ठायें (Loyalties)।

(ठ) भारत का अप्रजातन्त्रीय सामाजिक तथा पारिवारिक ढाँचा।

(थ) ग्राम समुदाय में शक्तिशाली वर्गों का कमजोर वर्गों (जैसे अनुसूचित जातियाँ) पर दृढ़ प्रभुत्व इत्यादि।

इन सामाजिक बाधाओं का उन्मूलन करने के लिए सतत प्रयास आवश्यक है। पंचायती राज आन्दोलन के फलस्वरूप बहुत सी प्रशासकीय समस्यायें भी पैदा हुई हैं। इनमें से कुछ ये हैं—

(अ) विकास सम्बन्धी गतिविधियों की आधारभूत इकाई क्या हो ? खण्ड (Block) या जिला (District) ?

(ब) पंचायती राज के कार्यों में अधिकारी वर्ग तथा गैर-अधिकारियों में परस्पर क्या सम्बन्ध हो ?

(स) विकास कार्यों में जिला अधिकारियों का क्या स्थान तथा दायित्व हो ?

(द) पंचायती राज संस्थाओं तथा राज्य सरकार में क्या-क्या सम्बन्ध हो ?

(ड) क्या पंचायती राज के कार्यों के मूल्यांकन के लिए कुछ विश्वसनीय कसौटियाँ हो सकती हैं ?

(ढ) पंचायती राज के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओं के पदाधिकारियों की नियुक्ति किस प्रकार की जाये ?

(ण) पंचायती राज सम्बन्धी चुनावों में राजनीतिक दलों का व्यवहार कैसा हो ?

लोक प्रशासन के विद्यार्थी के लिए इन सब समस्याओं का अध्ययन करना आवश्यक है। जिस समय बलवन्तराय मेहता अध्ययन समिति ने पंचायती राज की स्थापना का सुझाव दिया उस समय सामुदायिक विकास खण्ड पहले से मौजूद थे। समिति ने खण्ड को ही विकास की इकाई स्वीकार किया तथा पंचायती समिति को उसने विकास सम्बन्धी महत्वपूर्ण नियोजन व क्रियान्वन विषयक कार्य सौंपे। लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी महाराष्ट्रीय समिति ने मेहता समिति का सुझाव स्वीकार नहीं किया। उसने जिला स्तर पर जिला परिषद् को ही मुख्य विकास-कार्य सुपुर्द किये। भारत में परम्परा से जिला प्रशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई रहा है। भविष्य का अनुभव ही यह बतायगा कि पंचायती राज संस्थाओं की प्रमुख इकाई 'खण्ड' होना चाहिए या 'जिला'।[1]

---

1 Refer to 'The three tier system of Panchayati aj has almost universally been accepted in this country The Panchayat cannot be the basic unit The Zila Parishad or the District Council can probably be invested with (Contd)

पचायती राज सस्थाओ के प्रति राज्य सरकारो तथा जिला अधिकारियो का उदासीन होना इनके लिए घातक होगा । पचायती राज मे सस्थाओ के मार्ग-निर्देशन, देख-रेख तथा नियन्त्रण का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण होगा । राज्य सरकारो, उनके तकनीकी अभिकरणो तथा जिला अधिकारियो को पचायती राज सस्थाओ का मार्ग-निदर्शित करना तथा उन्हे प्रोत्साहित करना है । कम से कम प्रारम्भिक चरणो मे तो उनका परामर्श तथा निर्देशन अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जिला अधिकारियो को इन विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्रीय सस्थाओं के मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक बनना है । उनका कार्य बहुत सकारात्मक प्रकृति का है । जहाँ पथ-प्रदर्शन आवश्यक है, वहाँ उन्हें पथ-प्रदर्शन करना है, जहा समस्याओ की व्याख्या करना जरूरी है, वहाँ उन्हे व्याख्या करनी है । उन्हे जनता को अधिकतम पहल करने का मौका देने वाले शिक्षको का कार्य करना है । कुछ अधिकारियो की यह मनोवृत्ति बन गई है कि उनका पचायती राज से कोई सम्बन्ध नही है ।[1] यह गलत है । अधिकारीगण विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्र की गतिविधियो मे सक्रिय हिस्सेदारो के रूप मे सम्मुख आने चाहिये । इसके साथ ही उन्हे अहकार व वर्ग-उच्चता की खोखली धारणाओ को त्यागना होगा । नौकरशाही की पुरानी उच्चता वाली मनोवृत्ति से काम नही चलेगा । अधिकारियो को पचायती राज का लालन पालन बहुत सावधानी से करना है । जनता के सगठनो के प्रति उन्हे शिक्षण तथा समझाने बुझाने के तरीको का प्रयोग करना पड़ेगा ।[2] यही कारण है कि आज कलक्टर के बदलते हुए कार्यों, प्रशासक वर्ग

---

the functions of planning and execution But this institution at the district level will be at a distance from the people, which will not help in associating and enthusing them into active participation in the programmes of their economic and social uplift The institution at the block level is, therefore, the most convenient body to plan and execute programmes for the area" B Mehta The Panchayat Samiti at the Block Level as the Basic Unit of Panchayati Raj", The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Vol VIII No 4, Oct—Dec 1962, page 476

1 The Evaluation Report in Rajasthan gives statistical evidence to show that the District Level Officers (a) do not attend the meetings of the Panchayat Samitis regularly or frequently, (b) do not carry out the required number of tours and inspections *The Working of Panchayati Raj in Rajasthan* 1962, pages 86—87

2 Balwantrai Mehta rightly observes "But the conception of direction and control will have to change It is through persuasion and conversion of hearts, as well as through a process of securing willing consent that control in the present circumstances will have to be exercised Panchayati Raj in the country to-day is not only in its infancy but it is a tender plant which will require all the assistance we can give in order that it will grow and gather strength It may be necessary for this purpose to explore all possibilities of rendering guidance and assistance to the Panchayats for some time to come (I. J. P. A., New Delhi, *op cit*, page 457)

के नय दायित्वों तथा अधिकारियों की नई मनोवृत्तियों पर भारत में सर्वत्र विचार-विमर्श हो रहा है। अगर 'खण्ड-विकास अधिकारी' (B D O) 'बड़े साहब' वाला रुख अपनाने का प्रयास करेगा तो पंचायती राज आंदोलन को भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने ठीक ही कहा कि "कलक्टर का काय बदला है पर कम नहीं हुआ है, क्योंकि अब उसे लोकतन्त्रीय संस्थाओं का पथ-प्रदर्शन करना है। अक्सर अब उसे स्वयं को लोकतन्त्रीय संस्थाओं के विश्वास के योग्य ठहराना पड़ता है।'[1] श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने अपनी रिपोर्ट "भारतीय व राज्यीय प्रशासकीय सेवायें तथा जिला प्रशासन की समस्यायें" में इस तथ्य पर बल दिया है कि अधिकारियों का पंचायती राज के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सक्रिय सहयोग देना होगा। उनकी निम्नलिखित सिफारिशें महत्वपूर्ण हैं—

(अ) जिला स्तर के अधिकारियों, जिन्हें समूह भाव से काम करना चाहिए, का प्रमुख दायित्व जिला परिषद् पंचायती समितियों, खण्ड विकास अधिकारियों तथा विस्तार अधिकारियों (Extension officers) को सरकारी नीतियों तथा निर्देशों के अनुसार तकनीकी दृष्टि से सुव्यवस्थित योजनायें बनाने में मदद देना है, प्रशासनिक तथा तकनीकी दृष्टि से इन योजनाओं के क्रियान्वन की देख-रेख करना है तथा यह आश्वस्त करना है कि विकास योजनाओं के लिए मूल रूप में आवश्यक सेवायें तथा वस्तुयें समय पर तथा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकें। इसके साथ ही उन्हें जिले के अन्तर्गत विभिन्न खण्डों में कार्यों में समायोजन पैदा करना है।

(ब) विस्तार अधिकारियों को खण्ड विकास अधिकारी के सामान्य निर्देशन में एक समूह के रूप में कार्य करना चाहिये तथा उपक्रमों के क्रियान्वन में तकनीकी सुव्यवस्था का प्रबन्ध करके पंचायती समिति की सहायता करनी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें ग्राम स्तर के कर्मचारियों (Village level workers) तथा अन्य क्षेत्रीय कर्मचारियों के कार्य की देख-रेख करनी चाहिये।

(स) खण्ड स्तर पर विस्तार अधिकारियों तथा ग्राम स्तर के कर्मचारियों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये कि वे पंचायतों तथा सहकारी समितियों (Co-operatives) के साथ काम कर सकें तथा उन्हें रास्ता दिखा सकें।"[2]

पंचायती राज में अविरल मूल्यांकन तथा अध्ययन आवश्यक है। इसके कार्य का पूर्ण अध्ययन होना चाहिए जिससे इसकी त्रुटियों व कमियों को दूर किया जा सके। इसके कार्य का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित मापदण्ड उपयोगी सिद्ध

1 Also refer to B Sivaraman, 'The Collector and Panchayat Raj', pages 489–499, and M P Pai, 'The Emerging Role of the Collector', pages 478–488, I J P A, New Delhi Special Number

2 Refer to *Report on Indian and State Administrative Service and Problems of District Administration*, Government of India, Planning Commission, August 1962, Paras 5, 6, 7, page 63

होंगे। इन मापदण्डो का निर्धारण हैदराबाद मे 'सामुदायिक विकास तथा पचायती राज' पर हुए जुलाई १९६१ के वार्षिक सम्मेलन मे किया गया था। ये दस-सूत्री मापदण्ड हैं—

(१) तृतीय योजना मे कृषि-उत्पादन की वृद्धि सर्वोपरि राष्ट्रीय प्राथमिकता (Priority) के रूप मे।

(२) ग्रामीण उद्योगो का विकास।

(३) सहकारी सस्थाओ का विकास।

(४) स्थानीय स्रोतो (जनशक्ति सहित) का विकास।

(५) पचायती राज सस्थाओ द्वारा उपलब्ध स्रोतो जैसे धन, स्टाफ, तकनीकी सहायता तथा उच्च स्तरो से प्राप्त अन्य सुविधाओ का अधिकतम उपयोग।

(६) समुदाय के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों की सहायता।

(७) स्वय-सेवी सगठन पर विशेष बल देकर क्षितिजीय (Horizontal) तथा शिरोन्मुखी (*Vertical*) शक्ति एव पहल का प्रगतिशील प्रयोग।

(८) व्यापक प्रशिक्षण एव दायित्वो व कर्त्तव्यो के सुनिश्चित वितरण द्वारा *जनता के प्रतिनिधियो व जनता के सेवको (कर्मचारियो) मे सद्भाव तथा सहिष्णुता* की स्थापना।

(९) अधिकारियो तथा गैर-अधिकारियो मे निरन्तर योग्यता की वृद्धि।

(१०) समुदाय म मेलभाव तथा सहयोगिक आत्म सहायता का विकास।

ग्रामीण योजनाओ तथा कार्यक्रमो के मूल्याकन के लिए राजस्थान सरकार न एक अर्ध-स्वतन्त्र 'मूल्याकन सगठन' (Evaluation organization) की स्थापना की है। इसको राज्य ने पचायती राज सस्थानो की गतिविधियो की जाँच का अधिकार भी दिया गया है। पचायती राज की गतिविधियो के अधिकृत तथा गैर अधिकृत मूल्याकन के फलस्वरूप बहुत से रोचक तथ्य सामने आय हैं।[1]

बहुत से दोषो का उद्घाटन हुआ है। यह कहा गया है कि पचायती राज के फलस्वरूप गावो मे दलबन्दी तथा गुटबन्दी पर आधारित राजनीतिक गतिविधिया बढी है। पचायत चुनावो के कारण ग्राम समाज के विभिन्न वर्गों म एक प्रकार के 'शीत युद्ध' (Cold war) का वातावरण विकसित हुआ है। राजनीतिक वैमनस्य के फलस्वरूप ग्रामो मे हत्याओ की सख्या बढी है। यह सुभाव दिया गया है कि य सब दोष तब दूर हो सकते है जब राजनीतिक दल पचायती कार्यो मे हस्तक्षेप न करे तथा जब पचायतो के चुनाव सर्वसम्मति पर आधारित हो।[2] राजनीतिक दलो को पचायती गतिविधियो से दूर रहने की घोषणा करनी चाहिए।

1 Refer to (1) Evaluation Organisation (Government of Rajasthan) *A Report on the Panchayat Elections in Rajasthan*, 1960, August 1961, page 36, (2) Evaluation Organisation (Government of Rajasthan) *The Working of Panchayati Raj in Rajasthan (April 1961 to March 1962)—A Report*, June, page 92

2 Refer to Jaya Prakash *A Plea for Reconstruction of Indian Polity* Kashi, Akhil Bharat Sarva Sewa Sangh Prakashan, Rajaghat, 1959, *Swaraj*

कि तु यह तो एक कठिन समस्या का सरल बयान मात्र है। विभिन्न हितो पर आधारित तथा उनका प्रतिनिधित्व करने वाले दल लोकतन्त्र मे हमेशा बने रहेग। राजनीतिज्ञो के आचरण का सुधारने की बात तो जचती है किन्तु यह आशा करना व्यर्थ है कि राजनीतिक दल स्थानीय संस्थाओ के क्षेत्र मे हट जाएग। पचायती संस्थाओ मे राजनीतिक दलो का हटन के लिए कहना अवाछनीय भी है। उनके हटने से रिक्त स्थान की पूर्ति गावो के प्रभावशाली आर्थिक जातीय या धार्मिक वर्ग करेगे। सुसगठित राष्ट्रव्यापी राजनीतिक दल इन सामन्तवादी तथा प्रतिक्रियावादी वर्गो से कही अच्छे है। इसके अतिरिक्त अनेक बार बहुसख्यक वर्ग अल्पसख्यक वर्गो पर अपने निर्णय सर्वसम्मत निर्णय के रूप मे थोप देता है। अच्छा यह है कि लोकतन्त्रीय संस्थाओ को स्वतन्त्र रूप से काय करने दिया जाय। समय आने पर स्वस्थ परम्पराओ व परिपाटियो की नीव स्वयमेव पड जायगी तथा स्थिति सुधर जायगी।

पचायती राज के फलस्वरूप एक महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि ग्रामीणो के मस्तिष्क से अधिकारियो का भय जाता रहा है। अग्रेजी शासन के युग मे ग्रामीण जब नौकरशाही की शक्ति से आतंकित थे। गाव मे बडे बडे जमीदारो को छोड कर बाकी सबके लिए पटवारी (जो कि मालगुजारी एकत्रित करने वाले अधिकारियो मे सबसे नीचे होता है तथा जो एक गाव या कुछ गावो की जमीन का हिसाब किताब भी रखता है) दूरस्थ कलक्टर बल्कि गवनर से भी अधिक शक्तिशाली व्यक्ति था। साधारणतया उसी को खुश करना पर्याप्त था और यही बात वरन उन अन्य छोटे छोटे दफ्तरो मे भी थी जिनका ग्रामीण जनता से सीधा सम्पर्क था।[1]

अब ग्रामीण जन खण्ड विकास अधिकारी के पास आकर विश्वास के साथ उससे अपनी समस्याओ पर बातचीत कर सकते हैं। भारतीय सदर्भ मे पचायती राज से यह एक मूल्यवान लाभ प्राप्त हुआ है क्योकि यहा शताब्दियो से राजकीय शक्ति जन साधारण के लिए भय का विषय रही है। पचायती राज का प्रारम्भ जनता मे आत्म सहायता की भावना पैदा करने विकास कायक्रमो मे जनता को भाग लेने का अवसर प्रदान करने तथा उनमे लोकतन्त्रीय विचारो का प्रसार करने हेतु किया गया था। यदि पचायती राज के लाभो व हानियो की एक सूचि तैयार की जाये तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि इसका श्रेष्ठतम लाभ जनसाधारण मे आत्म सम्मान की अनुभूति को उत्पन्न करना रहा है।

---

for the people Varanasi Akhil Bharat Sarva Sewa Sangh Rajghat 1961
Also refer to Unhappy Utopia—J P in Wonderland by W H Morris Jones Economic Weekly, Bombay, Vol. XII, No. 26 June 25 1960.

1 Henry Maddick Panchayati Raj Rural Local Government in India Journal of Local Administration Overseas H M Stationery Office London Volume I No 4 October 1962 page 202

पचायती राज के परीक्षण की सफलता हमारी जागरूकता तथा समस्याओ का साहस व उत्साह से सामना करने की हमारी क्षमता पर निर्भर करेगी। प्रारम्भिक चरणो मे पचायती राज सस्थाओ को अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे अधिकारियो के महत्वपूर्ण परामर्श तथा निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है। अधिकारियो को ग्रामीण क्षेत्रो म हो रहे परिवतनो के अनुकूल स्वय को बदलना है।[1] किन्तु साथ ही हमे इन सस्थाओ को वे कार्य नही सौपने चाहिये जो वे नही कर सकती। उनको केवल वे ही दायित्व सौपे जाने चाहिय जिनको वे सफलता से निभा सके। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारो को इन सस्थाओ पर उचित नियन्त्रण रखना चाहिए। तथा उनकी देख रेख करनी चाहिए। किसी भी स्तर पर यह विचार नही आना चाहिये कि पचायती राज की स्थापना से सब समस्याय सुलझ गई है। भविष्य म आशा तथा ग्राम जनता की योग्यता म विश्वास इस परीक्षण को सफल बना सकत है। जैसा श्री बलवन्त राय मेहता न कहा है "ग्रामीण भारत की जनता अनपढ बशत्र हो, किन्तु वह एक महान् पैतृक सम्पत्ति तथा एक महान सस्कृति की स्वामी है तथा समय आने पर वह निश्चित रूप से अपने वास्तविक रूप मे आयगी। यदि हमम पचायती राज सस्थाओ, अपने ग्रामीण-जनो तथा उनके अपने छिपे हुये गुणो का उपयोग करन की क्षमता मे विश्वास है तो निश्चित रूप स सफलता उनके हाथ लगेगी। आज पचायती राज मे बहुत से दोष हो सकत है परन्तु यह भविष्य की एक महत्वपूर्ण शक्ति है।"[2]

---

1 S Dey rightly observes We invariably came back to the Block Development Officer He is a person who has no responsibilities other than development—development of himself and of the environment around Where he is of the right type, the whole area vibrates with a youthful exuberance Where he takes himself to be just another functionary of Government, we see only targets, we do not feel the human pulsation behind *Community Development—A Chronicle* 1954 1961 Publications Division, Government of India New Delhi 1962, page 55

2 *Kurukshetra* New Delhi Vol 11 No 6 March 1963 page 21 Also refer to The Indian Journal of Public Administration New Delhi Vol VIII No 4, October—December 1962 It is a special number devoted to the study of Panchayati Raj A detailed bibliography is provided at the end of Journal pages 698—709 A recent study by Henry Maddick—*Democracy Decentralisation and Development*, Asia Publishing House Bombay 1962 also provides a detailed bibliography on local bodies in Asia and African countries This bibliography will be helpful for comparative study of local institutions in developing countries Important evaluation reports by official and non official agencies also give an insight into the problem Refer to Congress party in Parliament Study Team's Report on Panchayati Raj in Rajasthan, October 1960, page 27 Congress Party in Parliament Study Team s Report

on Panchayati Raj in Andhra, December 1960 page 36, Association of Voluntary Agencies for Rural Development Report of a Study Team on Democratic Decentralization in Rajasthan February 1961, page 38, and also Panchayati Raj in Andhra Pradesh October 1961, page 48, Iqbal Narayan, Democratic Decentralisation The Idea, The Image, and The Reality', I J P A, New Delhi, January—March 1963 pages 1—26 This article is based on the field experiences of the author

Writing about the role of Collector in relation to Panchayati Raj, Henry Maddick observes 'The term Collector may go, for one so inappropriate to the task of executive officer or supervisor of the Panchayati Raj system could hardly be devisd This, however, does not and could not mean the elimination of the Indian Administrative Service from the rural field *Members of this service need the experience, not of revenue-collecting but of* local government, local administration and a local political society The programme of development and of democratic decentralization needs the support of their intelligence, education training, drive and enthusiasm" 'The Present and Future Role of Collector in India' Journal of Local Administration Overseas H M s Stationery Office London, Vol 11, No 2, April 1963, page 87

११

क्षेत्रीय संस्थाएं
(Field Establishments)

प्रधान कार्यालय और स्थानीय कार्यालयों के बीच सम्बन्ध
(Relations between Headquarters and Local Offices)

देश की राजधानियाँ (Capitals) ही केवल एक स्थान मे होती है जहाँ से सरकार के कार्य का सचालन किया जाता है। किन्तु वास्तव मे राष्ट्रीय अथवा राज्य सरकारें उन कार्यालयो (Offices) द्वारा अपने कार्य का सम्पादन करती हैं जोकि देश भर मे फैले होते हैं। यहाँ तक कि किसी देश की सरकार के कार्यालय ससार के अन्य देशो मे भी पाये जाते है। इस प्रकार सरकार के कार्य उन सैकडो तथा हजारो कार्यालयो द्वारा सम्पन्न किये जाते है। जोकि राजधानी से काफी दूर अर्थात् "क्षेत्र" (The field) मे स्थित होते हैं। इन क्षेत्रीय कार्यालयो अथवा क्षेत्रीय सस्थाओ के माध्यम से ही सरकार जनता तक पहुचती है। डाक के वितरण का कार्य केवल दिल्ली के स्थित डाकखाने (Post office) द्वारा ही सम्पन्न नही किया जाता बल्कि यह कार्य देश भर मे दूर-दूर तक फैले हुए हजारो डाकखानो द्वारा पूरा किया जाता है। इसी प्रकार करो का सग्रह केवल दिल्ली के कर सग्रह करने वाले कार्यालयो (Tax Collecting Offices) द्वारा ही नही किया जाता करो के सग्रह का कार्य देश भर मे बिखरे हुए हजारो कार्यालयो द्वारा सम्पन्न किया जाता है। जनोपयोगी सेवाएँ (Public utility services) केवल दिल्ली मे स्थिति कार्यालयो के कार्य द्वारा ही लोगो तक नही पहुचाई जाती। इन जनोपयोगी सेवाओ को सम्पन्न करने के लिये लाखो कर्मचारी काम मे लगे रहते हैं और ये कर्मचारी प्रधान कार्यालयो (Headquarters) से काफी दूर स्थित होते है। क्षेत्रीय सस्थायें अथवा क्षेत्रीय कार्यालय वे कार्यालय हैं जोकि प्रधान कार्यालयो से दूर क्षेत्र अथवा मुफस्सिल' (Field) मे कार्य करते है। क्षेत्रीय स्थल (Field stations) जैसे कि डाकखान, आय-कर सग्रह करने वाले कार्यालय आदि देश भर म फैले होते हैं। राजनयिक अधिकारी (Diplomatic officers) ससार भर मे नियुक्त किये जाते है। ये क्षेत्रीय सस्थाएं कुछ अपनी ही प्रशासकीय समस्यायें प्रस्तुत करती है जोकि बडी कठिन प्रकृति की होती हैं, और सम्पूर्ण देश की प्रशासकीय व्यवस्था की कुशलता एव दक्षता बडी मात्रा मे इन 'क्षेत्रीय सस्थाओ' से सम्बन्धित समस्याओ के हल पर ही निर्भर रहती है।

क्षेत्र-स्थलों की स्थापना के कारण
(Reasons for the establishment field stations)

क्षेत्र में कार्यालयों की स्थापना क्यों की जाती है ? इसके तीन प्रमुख कारण है जोकि निम्न प्रकार के हैं —

(१) यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार का कार्य केवल प्रधान कार्यालयों द्वारा ही सम्पन्न नहीं किया जा सकता। देश भर में डाक का वितरण करने के लिए कोई भी सरकार केवल एक ही राष्ट्रीय डाकखाने की स्थापना से काम नहीं चला सकती। केवल एक डाकखाना लाखों मील के क्षेत्र में फैली हुई भारत की ४४ करोड़ जनता की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता।

(२) राज्य के कार्य दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। राज्य द्वारा अनेक प्रकार की क्रियाओं की सम्पन्नता के लिए देश के सभी भागों में क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की आवश्यकता होती है। क्षेत्रीय सेवाओं (Field services) की वृद्धि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध राज्य के कार्यों के विस्तार से है। कल्याणकारी राज्य (Welfare state) को अपने सभी नागरिकों की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है और उसके लिए क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की जाती है।

(३) संचार के साधनों (*Means of communications*) के विकास ने क्षेत्रीय सेवाओं की स्थापना के कार्य को काफी सुविधाजनक बना दिया है। अब प्रधान कार्यालय (Head Office) देश के किसी भी भाग में स्थित किसी भी क्षेत्रीय कार्यालय से बड़ी आसानी के साथ पत्र व्यवहार कर सकता है तथा सम्बन्ध कायम रख सकता है। यातायात के संचार के आधुनिक साधनों, जैसे कि रेल मार्ग, वायु मार्ग, बेतार के तार (Wireless), टेलीफोन तथा तार (Telegraph) आदि के क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना में बड़ी सहायता पहुंचाई है। दिल्ली में स्थित किसी भी पदाधिकारी के लिए अब आसाम के दूर से दूर कोने में स्थित किसी भी अधिकारी के साथ पत्र व्यवहार करना तथा उससे सम्बन्ध रखना बड़ा आसान है।

क्षेत्रीय संस्थाओं से उत्पन्न होने वाली प्रशासकीय समस्यायें
(Administrative Problems Created by Field Establishments)

क्षेत्रीय कार्यालयों की अपनी निजी महत्वपूर्ण समस्याएँ होती हैं और प्रशासन की कोई सुस्थिर व्यवस्था उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। किसी भी बड़े संगठन में, सदर मुकाम अथवा प्रधान कार्यालय (Headquarter) तथा क्षेत्रीय कार्यालयों (Field office) के बीच संघर्ष (Friction) उत्पन्न हो जाना मामूली सी बात है। यह भी सम्भव है कि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच सम्पर्क ही टूट जाए और प्रधान कार्यालय के अधिकारी स्थानीय कठिनाइयों एवं समस्याओं को यथेष्ट रूप से समझने तथा उनका मान करने में समर्थ न हो सकें। क्षेत्रीय कार्यालय

द्वारा उत्पन्न होने वाली महत्वपूर्ण समस्या है **प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच सम्बन्ध की समस्या।** यह अत्यन्त आवश्यक है कि क्षेत्रीय सेवाओ पर प्रभावशाली नियन्त्रण लगाया जाय जिससे कि राष्ट्रीय नीति (National policy) मे एकरूपता (Uniformity) कायम रखी जा सके। साथ ही साथ, क्षेत्र स्थलो को अपने अपने क्षेत्र के लोगो की विशिष्ट आवश्यक्ताओ को पूरा करने के लिये पर्याप्त मात्रा मे प्रबन्ध सम्बन्धी स्वायत्तता (Managerial autonomy) भी प्रदान की जानी चाहिए। यही **'केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण'** (Centralization versus decentralization) की परम्परागत समस्या है, अर्थात् यह कि क्या प्रशासन के सम्बन्ध मे निर्णय करने की पूर्ण सत्ता (Authority) मुख्य कार्यालय केन्द्रित कर दी जाए, अथवा क्षेत्रो मे स्थित कार्यालयो के निर्णय करने के लिये आवश्यक सत्ता से सम्पन्न व्यक्तियो को नियुक्त कर लिया जाए तथा कार्य करने दिया जाय? **क्षेत्रीय सेवाओ की प्रमुख समस्या यह है कि प्रधान कार्यालय द्वारा उन पर कितना नियन्त्रण लागू किया जाए? क्षेत्र स्थलों (Field stations) को, अपने कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए, कितनी सत्ता सौंपी जाए?**

क्षेत्रीय सेवाओ (Field services) से सम्बन्धित दूसरी प्रशासकीय समस्या उसके निर्माण अथवा उसकी स्थापना से सम्बन्ध रखती है। क्या क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना करने की सत्ता महा-प्रबन्धक के रूप मे मुख्य कार्यपालिका (Chief executive as general manager) मे निहित की जाए अथवा विधान-मण्डल (Legislature) मे? क्या इस बात का निश्चय विधान-मण्डल को करना चाहिए कि कहाँ-कहाँ नये डाकखाने कायम किए जाए, अथवा उनकी स्थापना के बारे मे देश के प्रशासन के प्रधान के नाते मुख्य निष्पादक या मुख्य कार्य-पालिका (Chief Executive) को निश्चय करना चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर मे हम कह सकते हैं कि विधान-मण्डल का कार्य केवल सरकार द्वारा सम्पन्न की जाने वाली सेवा या क्रिया (Service or activity) को तय करना होता है। उस क्रिया को सम्पन्न करने के लिए स्थानीय कार्यालयो के निर्माण की जिम्मेदारी मुख्य कार्यपालिका की ही होती है।

केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण
(Centralization Versus Decentralization)

अब हम प्रधान कार्यालय (Headquarter) तथा क्षेत्रीय सेवाओ (Field services) के पारस्परिक सम्बन्धो की समस्या की विवेचना करते हैं।

अर्थ (Meaning)

यदि लगभग सभी महत्वपूर्ण मामलो का निर्णय करने वाली सत्ता (Authority) प्रधान कार्यालय पर केन्द्रित कर दी जाती है, यदि क्षेत्रीय सस्थायें केवल कार्यवाहक अभिकरणो (Executing agencies) के रूप मे कार्य करती है और

उन्हें अपनी प्रेरणा अथवा पहलकदमी पर कार्य करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती, यदि सभी मामलों में यहां तक कि आन्तरिक प्रबन्ध के मामलों में भी, क्षेत्रीय कार्यालयों को प्रधान कार्यालय की पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है, यदि क्षेत्रीय कार्यालयों को स्वयं अपने विवेक से कार्य करने की छूट नहीं होती, और यदि प्रत्येक निर्णय केन्द्रीय कार्यालय द्वारा ही किया जाता है तो उसे केन्द्रीकरण कहा जाता है। इसकी उल्टी स्थिति विकेन्द्रीकरण कहलाती है। यदि सत्ता विकेन्द्रित कर दी जाती है और क्षेत्रस्थलों के कर्मचारियों को इस बात की पर्याप्त सत्ता तथा छूट प्राप्त होती है कि वे प्रधान कार्यालय को सूचित किये बिना ही अपने अनेक प्रश्नों के बारे में स्वयं ही निश्चय कर सकें तो उस प्रशासन को विकेन्द्रित व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है।

विकेन्द्रित व्यवस्था की आवश्यक बातें
(Essentials of a Decentralized system) :

(१) प्रशासन की इस व्यवस्था में अधिकतर निर्णय (Decisions) क्षेत्र में ही लिये जाते हैं। इसमें सत्ता विकेन्द्रित रहती है।

(२) विकेन्द्रित व्यवस्था में स्थानीय कर्मचारियों में विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार व्यापक सामान्य राष्ट्रीय नीतियों को अपनाने के प्रति काफी स्वयं प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) पाई जाती है।

(३) प्रशासन की विकेन्द्रित व्यवस्था में स्थानीय लोगों के सक्रिय रूप से भाग लेने को प्रोत्साहन दिया जाता है।

(४) प्रशासन की इस पद्धति में प्रधान कार्यालय को तो केवल नेतृत्व प्रदान करना होता है, वास्तविक कार्य स्वयं स्थानीय कार्यालयों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है।

(५) क्षेत्रीय कार्यालय प्रधान कार्यालय के सन्देशवाहकों (Messangers) के रूप में कार्य नहीं करते। वे उन उत्तरदायी व्यक्तियों के रूप में कार्य करते हैं जिन्हें दूरगामी प्रभाव वाले अनेक महत्वपूर्ण निर्णय करने की शक्ति प्राप्त होती है।

इस सम्बन्ध में एक बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये और वह यह कि केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच किया जाने वाला भेद पूर्ण अथवा निरपेक्ष (Absolute) नहीं है। किसी भी प्रशासन को पूर्णतः केन्द्रित अथवा पूर्णतः विकेन्द्रित नहीं कहा जा सकता। अन्तर केवल मात्रा का होता है। यदि प्रधान कार्यालय में अधिक सत्ता केन्द्रित कर दी जाती है तो उसे प्रशासन की केन्द्रित व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है, और यदि क्षेत्रीय कार्यालयों को अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ दे दी जाती हैं तो उस पद्धति को विकेन्द्रित व्यवस्था का नाम दिया जाता है। अतः केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच का भेद सापेक्षिक (Relative) है।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के लिए उत्तरदायी तत्व
(Factors responsible for Centralization and Decentralization)

जेम्स डब्लू० फेसलर (James W Fesler) के मतानुसार, ऐसे चार तत्व अथवा कारण हैं जोकि सामान्यत उस मात्रा को नियन्त्रित करते है जिसके अनुसार कोई अभिकरण (Agency) अपनी सत्ता को केन्द्रित अथवा विकेन्द्रित करता है। वे तत्व इस प्रकार है (१) उत्तरदायित्व का तत्व (Factor of responsibility), (२) प्रशासकीय तत्व (Administrative factors), (३) कार्यात्मक तत्व (Functional factors), (४) बाह्य तत्व (External factors)।[1]

अब हम इन तत्वो म प्रत्येक की क्रमश विवेचना करते है।

(१) उत्तरदायित्व का तत्व—किसी विभाग से कार्यकरण (Functioning) म यदि कोई गलती हो जाती है तो उसके लिए विभागाध्यक्ष (Head of the Department) को उत्तरदायी ठहराया जाता है। यदि रेलवे प्रशासन मे कोई काम गलत हो जाता है तो ससद (Parliament) समाचार-पत्र तथा जनता रेल मन्त्री (Railway Minister) से स्पष्टीकरण मागते हैं। प्रधान कार्यालयो के अधिकारी क्षेत्रीय अधिकारियो को इस कारण सत्ता (Authoriey) नही सौंपते क्योकि क्षत्रीय अधिकारी दैनिक नियन्त्रण से बिल्कुल पृथक् होते है और उस विभाग के कुशल सचालन का उत्तरदायित्व प्रधान कार्यालय के अधिकारियो के कन्धो पर होता है।

(२) प्रशासकीय तत्व—विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण प्रशासकीय तत्व ये है अभिकरण (agency) का गत कार्यालय, उसकी नीतियो एव कार्यविधियो की स्थिरता, उसके क्षेत्रीय कर्मचारियो की योग्यता व क्षमता, कार्य की गति एव उसम मितव्ययता के लिए दबाव, और प्रशासकीय भ्रष्टाचार (Administrative sophistication)। यदि कोई अभिकरण पुराना है, उसकी सुनिर्धारित नीतिया हैं तथा उसके पास योग्य एव अनुभवी कर्मचारी है तो उस अभिकरण के मुकाबले, जिसके लिये कि वह कार्य नया है और जिसकी नीतिया (Policies) तथा तकनीकें (Techniques) अभी तक निश्चित नही हैं, वह आसानी के साथ अपने आपको विकेन्द्रित कर सकता है।

(३) कार्यात्मक तत्व—किसी अभिकरण द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्य भी केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण के निर्धारण मे मदद करते है। एक ही कार्य को करने वाले अभिकरण के मुकाबले एक बहुल प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने वाला अभिकरण विकेन्द्रीकरण के लिए अधिक प्रस्तुत रहता है। एक ही कार्य को सम्पन्न करने वाले अभिकरण को विकेन्द्रीकरण की बहुत कम आवश्यकता होती है। यदि अभिकरण द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों मे राष्ट्रीय एकरूपता (Uniformity) लाने की आवश्यकता है तो इससे केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलेगा और यदि

1 James W. Fesler in *Elements of Public Administration*, Ed by Morstein Marx, pp 270 276

अभिकरण द्वारा किये जाने वाले कार्यों में भिन्न भिन्न प्रदेशों के अन्दर बहुरूपता (Diversity) लानी आवश्यक है तो इससे विकेन्द्रीकरण की प्रेरणा मिलेगी।

(४) बाह्य तत्व—यदि किसी अभिकरण (Agency) को संगठन से बाहर के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता है, अथवा यदि उसे अपनी सफलता के लिए बड़ी संख्या में लोगों के सहयोग की आवश्यकता है, अथवा यदि किसी अभिकरण को अन्य अनेक अभिकरणों के साथ मिलकर काम करना पड़ता तो इन सब परिस्थितियों में विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे अभिकरण के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने क्षेत्रीय अधिकारियों को पर्याप्त सत्ता प्रदान करे जिससे कि भिन्न भिन्न अभिकरणों के दृष्टिकोणों को अपनाया जा सके।

इसके अतिरिक्त, केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व निम्न प्रकार हैं —

(१) यदि क्षेत्रीय अधिकारी योग्य तथा सक्षम (Competent) है और उनमें स्वय अपने लिए निर्णय करने की सामर्थ्य एव क्षमता है तो प्रधान कार्यालय उनको अनेक शक्तियाँ हस्तान्तरित कर देगा।

(२) क्षेत्रीय अधिकारियों में प्रधान कार्यालय के अधिकारियों का विश्वास होना विकेन्द्रीकरण की इच्छा की पूर्व शर्त है।

केन्द्रीकरण के दोष
(Defects of Centralization) :

(१) केन्द्रीकृत प्रशासन को स्थानीय परिस्थितियों के बारे में कम जानकारी होती है और वह एकरूपता पर काफी ज़ोर देता है, जोकि हानिकारक सिद्ध होता है और अकुशलता को प्रोत्साहन देता है।

(२) केन्द्रीकरण के कारण निर्णयों पर पहुँचने पर देरी होती है और इन देरियों के कारण अनेक प्रशासकीय कठिनाइयां व परेशानियां उत्पन्न हो जाती हैं।

(३) केन्द्रीकरण लोगों को प्रशासन के साथ सहयोग करने को प्रोत्साहित नहीं करता, जबकि जनता का सहयोग किसी भी प्रशासकीय योजना की सफलता के लिये आवश्यक होता है।

(४) प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था (Centralized system) में, अधिकारियों पर काम का इतना अधिक भार होता है कि वे उसे वहन नहीं कर सकते। जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि "......एक केन्द्रीकृत प्रशासन चूंकि असह्य मात्रा में उत्तरदायित्व अपने ऊपर लाद लेता है अतः समय-समय पर पड़ने वाले भार व दबाव के कारण वह शक्तिहीनता को आमन्त्रित करता है।"[1]

1 David B Truman, *Administrative Decentralization*, A study of the Chicago Field of Offices of the United States Department of Agriculture, a Chicago 1940 University of Ghicago Press

(५) केन्द्रीकरण से प्रशासन मे लचीलेपन (Flexibility) की कमी तथा कठोरता उत्पन्न हो जाती है।

(६) केन्द्रीय कार्यालय अनेक बार स्थानीय दशाओ की जानकारी के बिना ही कार्य करता है। स्थानीय दशाओ के बारे मे जानकारी के अभाव मे स्थानीय समस्याओ के सम्बन्ध मे गलत निश्चय तथा गलत अनुमानो पर आधारित निर्णय किये जा सकते हैं।

केन्द्रीयकरण के लाभ

(Advantages of Centralization) :

(१) प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था मे, प्रशासन के सभी अगो (Organs) पर प्रभावशाली एव सक्रिय नियत्रण रहता है।

(२) प्रशासन मे एकरूपता रहती है। कार्य का सम्पादन देश भर मे एक ही तरीके से एकसी ही सामान्य नीतियो व सिद्धातो के अनुसार किया जाता है।

(३) प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था मे, नियमो की एकरूपता (Uniformity) के कारण माल की खरीद तथा कर्मचारियो आदि के मामलो मे दुरुपयोग तथा अनियमिततायें नही हो सकती।

विकेन्द्रीयकरण के लाभ

(Advantages of Decentralization)

(१) सामान्य जनता द्वारा भाग लेना तथा लोकप्रिय नियत्रण (Popular control) प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था (Decentralized system of administration) मे ही सम्भव है। ऐसी व्यवस्था लोकतत्र (Democracy) को वास्तविक तथा व्यापक आधार वाला बनाती है।

(२) विकेन्द्रीकरण नियमो तथा विनियमो (Rules and regulations) के लागू करने मे लचीलेपन को प्रोत्साहन देता है।

(३) इस व्यवस्था मे, प्रशासन स्वय को विशिष्ट स्थानीय दशाओ के अनुकूल बना सकता है। उद्देश्यमूलक स्थानीय दशाओ तथा प्रशासकीय अधिकारियो के बीच घनिष्ठ सम्पर्क कायम रहता है। इस प्रकार, विकेन्द्रीकरण के द्वारा किसी विशिष्ट क्षेत्र की विशिष्ट समस्यायें अधिक अच्छी प्रकार समझायी जा सकती हैं।

(४) यदि सत्ता विकेन्द्रित है तो सगठन की विभिन्न सतहो पर प्रशासन मे
1 अनेक नये प्रयोग (Experiments) किये जा सकते है।

(५) प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था किसी भी सकट के दबावो एव खिचावो को अधिक अच्छी प्रकार सहन कर सकती है।

(६) यह व्यवस्था किसी भी आकस्मिक अथवा आपत्कालीन परिस्थिति का अधिक अच्छी तरह से सामना कर सकती है क्योकि इसके अधिकारियो को यह सत्ता प्राप्त होती है कि वे परिस्थितियों की मांग के अनुसार शीघ्र निर्णय कर सकें।

(७) इस पद्धति म, विभिन्न प्रकार की देरियाँ तथा लाल फीताशाही (Red tapism) समाप्त की जा सकती है। इसमें चूँकि केन्द्रीय कार्यालय को बारबार हवाले देने की आवश्यकता नही होती अत काम म देरी नही होती।

(८) इस व्यवस्था में, ऊपर के अधिकारी दिन-प्रतिदिन के छोटे-मोटे कामो से मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार वे नीति (Policy) तथा नियोजन (Planning) की बडी-बडी समस्याओ पर अपनी शक्तियो को केन्द्रित कर सकते हैं। उच्च अधिकारियो का समय अनावश्यक छोटे मोटे कामो म नष्ट होने से बच जाता है जिससे वे विभाग (Department) को प्रभावित करने वाली बडी समस्याओ के बारे में सोच विचार कर सकते हैं।

(९) विकेन्द्रीकरण क्षेत्रीय अधिकारियो को अपनी योग्यता तथा कार्यक्षमता दिखाने का अवसर प्रदान करता है। क्षेत्रीय अधिकारी अपना काम भारी उत्साह तथा लगन के साथ करते हैं।

(१०) विकेन्द्रीकरण का अर्थ है क्षेत्रीय अधिकारियो को बडी मात्रा मे विवेक तथा इच्छा से परिपूर्ण सत्ता का हस्तान्तरण। इससे क्षेत्रीय अधिकारियो मे यह भावना पैदा होती है कि प्रधान कार्यालय को उनकी क्षमता तथा योग्यता मे भारी विश्वास है। यह भावना क्षेत्रीय अधिकारियो को और अधिक उत्तरदायी (Responsible) तथा कर्तव्य परायण (Dutiful) बनाती है। वे अपनी पूर्ण शक्ति से यह दिखाने का प्रयत्न करते है कि वे वास्तव म उस विश्वास (Confidence) के पात्र हैं जो कि प्रधान कार्यालय ने उनमे प्रकट किया है।

विकेन्द्रीकरण के दोष
(Defects of Decentralization):

(१) प्रशासन की इस व्यवस्था मे एक समान राष्ट्रीय नीति को कायम रखना कठिन हो सकता है। यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रस्थल (Field stations) विभिन्न प्रकार की क्रियाविधियाँ (Courses of action) अपनायें।

(२) इस व्यवस्था से विभिन्न क्षेत्रस्थलो की नीतियो के बीच समुचित समन्वय (Co-ordination) का अभाव हो सकता है। यह हो सकता है कि एक क्षेत्रीय कार्यालय राष्ट्रीय नीति से पृथक् अपनी निजी नीति का अनुसरण करे।

(३) इस व्यवस्था से स्थानीय अधिकारियो मे राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण का लोप हो सकता है। स्थानीय अधिकारी स्थानीय समस्याओ मे इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि वे अदूरदर्शी (Short-sighted) तथा सकुचित विचार वाले (Narrow-minded) बन सकते है। उनका मानसिक दायरा सीमित हो जाता है और वे राष्ट्रीय समस्याओ के सदर्भ मे विचार करना ही छोड देते हैं।

(४) स्थानीय राजनीति (Local Politics) स्थानीय कार्यालय पर हावी हो सकती हैं और फिर उसका परिणाम क्षेत्रीय सेवाओ मे भ्रष्टाचार तथा अकुशलता के रूप मे ही सामने आता है। निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि "प्रशासकीय

विकेन्द्रीकरण की नीति के गुणों तथा दोषों के इस संक्षिप्त विवरण से यह प्रकट होता है कि इस व्यवस्था को अत्यन्त सावधानी के साथ अपनाये जाने की आवश्यकता है। इससे खतरे भी उतने ही बड़े हो सकते है जितने कि इसके विपरीत की प्रशासन-व्यवस्था में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहार में किसी भी प्रशासकीय संगठन में इन दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों (पद्धतियों) के कुछ न कुछ लक्षण अवश्य पाये जाते है। वस्तुतः इन दोनों ही प्रवृत्तियों को उद्देश्य (Ends) नहीं समझ लेना चाहिये बल्कि कुशल प्रशासन के उद्देश्य की प्राप्ति का साधन-मात्र (Means to the end of efficient administration) ही समझना चाहिये। किसी भी प्रशासकीय संगठन में ये दोनों ही प्रवृत्तियां ऐसे अनुपात में वर्तमान रहनी चाहिये जिससे कि न्यूनतम मात्रा में ही अकुशलता पाई जाय।"[1]

क्षेत्रीय संस्थाओं के संगठन का वर्तमान रुझान केन्द्रीकरण की ओर है। यातायात तथा संचार के शीघ्रगामी साधनों ने भौगोलिक दूरियां न्यूनतम कर दी हैं। डाक, तार तथा टेलीफोन के द्वारा देश के किसी भी भाग से सम्पर्क कायम किया जा सकता है। इस स्थिति में स्वभावतः ही केन्द्रीय नियन्त्रण में वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त, एकरूपता (Uniformity) पर जोर देना, स्थानीय अधिकारियों की क्षमता में अविश्वास, प्रशासन में विशेषज्ञों के वर्ग की उत्पत्ति, और प्रशासन की पेचीदगियां (*Compexities*)—*इन सभी तत्वों ने केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन दिया है।*

क्षेत्रीय सेवाओं का संगठन
(The Organization of Field Services)

बहुधा ऐसा होता है कि क्षेत्रस्थल (Field station) के अन्तर्गत अनेक इकाइयां (Units) अथवा सभाग (Divisions) होते हैं। भारत में रेलवे प्रशासन का ही उदाहरण लीजिये। भारत में रेल व्यवस्था के आठ क्षेत्र (Zones) हैं। प्रत्येक क्षेत्र एक जनरल मैनेजर के अधीन है। प्रत्येक क्षेत्र को आगे भी सभागों में उप-विभाजित किया गया है। यहाँ प्रत्येक रेलवे क्षेत्र (Railway zone) को एक क्षेत्रस्थल माना जा सकता है और इस प्रत्येक क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक सभाग हैं। प्रश्न यह है कि उस क्षेत्रीय कार्यालय का, जिसके अन्तर्गत अनेक इकाइयाँ अथवा सभाग काम कर रहे हो, संगठन किस प्रकार किया जाय? ऐसे बड़े-बड़े अनेकों डाकखाने हैं जिनको विभिन्न प्रकार की डाक (Mail) को संभालने की दृष्टि से सभागों में संगठित किया गया है। एक बड़े डाकखाने में भिन्न-भिन्न श्रेणियों की डाक को संभालने के लिए पृथक् सभाग (Separate divisions) हो सकते है, उदाहरण के लिए, समुद्रपार की डाक के लिये, अन्तर्देशीय डाक के लिए, डाक रजिस्ट्रेशन के लिये। प्रश्न यह है कि क्षेत्रीय कार्यालय की अधीनस्थ इकाइयों का पर्यवेक्षण (Supervision) तथा नियन्त्रण किस प्रकार किया जाये? इस समस्या के बारे में भिन्न-भिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये है। अब हम कुछ लेखकों के विचारों की विवेचना करेंगे।

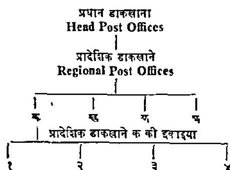
1 David B Truman *Administrative Decentralization* A study of the Chicago Field Offices to the United States Deptt of Agriculture, Chicago, 1944

विलोबी के विचार (Views of W F. Willoughby) : **उपरिनिर्देशन तथा नियन्त्रण की एकल बनाम बहुल पद्धति** (Unitary versus Multiple overhead Direction and Control)—एकल पद्धति (Unitary system) के अन्तर्गत, एक क्षेत्रस्थल (Field station) की इकाइयां अथवा सभाग क्षेत्रस्थल के ही अधिकारी के पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण मे रहते हैं और वह अधिकार बदले मे अपने क्षेत्रस्थल के सभी सभागो के कार्यों के लिए केन्द्रीय कार्यालय के प्रति उत्तरदायी होता है। इस व्यवस्था मे, क्षेत्रस्थल के प्रधान को उसके क्षेत्रस्थल की तथा उस क्षेत्रस्थल के सभागो (Divisions) की सभी क्रियाओं का पूर्ण कार्यभार सौंप दिया जाता है। सभागो के प्रधान अपने क्षेत्रस्थल के प्रधान के अधीन (Subordinate) तथा उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस व्यवस्था को 'एकल पद्धति' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसम आदेश की एक ही रेखा (Single line of command) होती है जोकि केन्द्रीय कार्यालय से प्रारम्भ होकर क्षेत्रस्थल के प्रधान (Head) तक जाती है और फिर उस प्रधान से सभागो के प्रधान (Division heads) अपने लिए आदेश प्राप्त करते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय नियन्त्रण के दृष्टिकोण से, क्षेत्रस्थल को एक इकाई माना जाता है और उस क्षेत्रस्थल का प्रधान अपने क्षेत्रीय कार्यालय की सभी विभिन्न इकाइयो पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है।

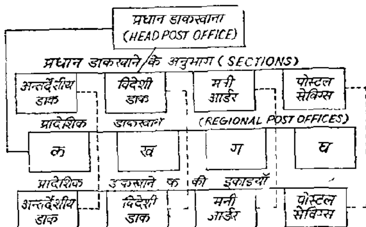
बहुल पद्धति (Multiple system) मे, क्षेत्रीय कार्यालय इकाइयो (Units) का एक ढीलाढाला जुटाव या सगठन सा प्रतीत होता है। इस व्यवस्था मे क्षेत्रस्थल की कार्यात्मक इकाइया (Functional units) केन्द्रीय कार्यालय के समवर्ती सभागो (Corresponding divisions) के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होती हैं और उनसे ही सम्बद्ध होती हैं। क्षेत्रस्थल (Filed station) की ये इकाइया उस क्षेत्रीय सगठन के नही बल्कि केन्द्रीय कार्यालय मे स्थित समवर्ती सभागो के उप-सभाग (Sub-division) माने जाते हैं।

इस सम्बन्ध मे हमे यह बात अवश्य दृष्टिगत रखनी चाहिये कि कोई भी विभाग (Department) उपरिनिर्देशन तथा नियन्त्रण की पूर्णतया एकल अथवा पूर्णतया बहुल पद्धति के उदाहरण के रूप मे कार्य नही करता। सर्वदा इन दोनो ही पद्धतियो का एक ऐसा सम्मिश्रण अपनाया जाता है जोकि सुविधाजनक हो।

एकल पद्धति (Unitary system) :



(एकल पद्धति के अन्तर्गत ये सभी इकाइया प्रादेशिक प्रधान (Regional head) के अधीन हैं जोकि अपने क्षेत्रीय कार्यालय (प्रादेशिक कार्यालय) तथा इन सब इकाइयो के कार्य सचालन के लिए प्रधान कार्यालय (Head Office) के प्रति उत्तरदायी होता है) ।



बहुल पद्धति (Multiple System)

(बहुल पद्धति के अन्तर्गत, क्षेत्रस्थल की कार्यात्मक इकाई (Functional unit) तथा केन्द्रीय कार्यालय मे स्थित उसके समवर्ती सभाग (Corresponding division) के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है । क्षेत्रीय कार्यालय की अन्तर्देशीय डाक की इकाई प्रधान कार्यालय की अन्तर्देशीय डाक की इकाई से प्रत्यक्ष रुप से सम्बद्ध होती है) ।

आर्थर मैकमोहन *(Arthur Mac Mohan)* के अनुसार विलोबी का यह वर्गीकरण असन्तोषजनक है । बहु उपरिनिर्देश (Multiple overhead direction) के लिये उन्होने "विशिष्टता के द्वारा विकेन्द्रीकरण" (Decentralisation by speciality) नामक शब्दो को प्रमुखता दी—अर्थात् ऐसी व्यवस्था जिसमे कि अनेक क्षेत्रीय कार्यालय भिन्न भिन्न सस्थाओ तथा ब्यूरो से निकल आते है । और "एकल उपरिनिर्देश" (Unitary overhead direction) के लिये उन्होने 'पद सोपान द्वारा विकेन्द्रीकरण' नामक शब्दो का प्रयोग किया, अर्थात् ऐसा सगठनात्मक ढाचा जोकि वाशिंगटन मे केन्द्रीय प्रशासक (Central administrator) से लेकर नीचे क्षेत्र (Field) मे प्रादेशिक प्रशासक (Regional administrator) तक आता है और उस प्रादेशिक प्रशासक को ठीक वैसे ही कार्य करने होते हैं जैसे कि उसके उच्च अधिकारी को, किन्तु उसके कार्य उसके विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित रहते हैं ।

क्षेत्रीय सेवाओं के सगठन के विषय में लूथर गुलिक के विचार
(Luther Gullick's views about the organisation of Field Services)

उपरि नियन्त्रण तथा निर्देशन की दृष्टि से लुथर गुलिक ने क्षेत्रीय सस्थाओं का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया है।

क्षेत्रीय सस्थाओं के उनके द्वारा किये गये तीन वर्गीकरण इस प्रकार है "सब उगलिया" (All Fingers) "छोटी भुजाए लम्बी उगलियाँ" (Short Arms Long Fingers) और 'लम्बी भुजाए छोटी उगलियाँ" (Long Arms, Short Fingers)। यहाँ भुजाए' शब्द से तात्पर्य 'प्रादेशिक अथवा भौगोलिक कार्यालयों से है और उगलियों से मतलब सवादवाहन की उन रेखाओं से है जो कि आदेश के सूत्र (Firing line) पर निम्नतम क्षेत्रीय इकाइयों तक पहुँचती हैं।[1]

(१) सब उगलियाँ" के सगठन से तात्पर्य है कि उस सगठन मे बहुत उगलिया है जो कि प्रधान कार्यालयो से सीधी क्षेत्र (Field) तक जाती हैं अर्थात् केन्द्रीय प्रधान कार्यालय बीच म कहीं भी किसी "भौगोलिक अथवा प्रादेशिक" उप सभाग (Sub division) के बिना ही क्षेत्रीय इकाइयो के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखता है।

(२) छोटी भुजाओ और लम्बी उगलियों" की व्यवस्था बिलोबी की एकल व्यवस्था (Unitary system) से केवल इन मानो म अन्तर रखती है कि इसमे (प्रथम म) प्रादेशिक प्रधान कार्यालय भौतिक रूप मे क्षेत्र (Field) की बजाय केन्द्रीय प्रधान कार्यालय मे ही स्थित होते है और इसी कारण इसको 'छोटी भुजाओ और लम्बी उगलियो के नाम से पुकारा जाता है। इस पद्धति मे भौगोलिक सभाग अथवा इकाइयाँ (Geographical division or units) तो होती हैं परन्तु वे सम्बन्धित प्रदेश अथवा क्षेत्र मे स्थित न होकर केन्द्रीय प्रधान कार्यालय मे ही स्थित होती हैं। केन्द्रीय प्रधान से क्षेत्रीय प्रधानो तक "छोटी भुजायें" होती है क्योंकि क्षेत्रीय प्रधान भौतिक रूप से उसी भवन (Building) मे स्थित होते हैं, अपने अपने क्षेत्रो मे नहीं। "लम्बी उगलियाँ इसलिए कहलाती हैं क्योकि क्षेत्रीय प्रधानो से आदेश की रेखा सभवत सैकडो हजारो मील दूर क्षेत्रीय इकाइयो तक जाती है।

(३) "लम्बी भुजाओ और छोटी उगलियो" वाली व्यवस्था में भौगोलिक सभाग प्रधान कार्यालयों से दूर स्वय अपने क्षेत्र मे ही स्थित होते हैं जैसे कि भारत

1 Arthur W Mac Mohan, John D Millet and Gladys Ogden The Administration of Federal Work Relief Chicago *Public Administration Service*, 1951, Chapter II

2 Gullick and Urwick, *op ci* pp 26-30

मे जिला कार्यालय (District office)। इस पद्धति मे प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय कार्यालय भौगोलिक दृष्टि से विकेन्द्रित रहते है।

जब एक जिले के सब चिकित्सा स्वास्थ्य अधिकारी (Medical Health) Officers) जिला स्वास्थ्य अधिकारी (District Health officer) के अधीन होते हैं और वह जिला स्वास्थ्य अधिकारी उस जन-स्वास्थ्य निर्देशक (Director of Public Health) के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है जिसका कि कार्यालय जिले अथवा क्षेत्र से दूर राज्य की राजधानी मे स्थित होता है तो उसे "लम्बी भुजाओ और छोटी उगलियो" वाली व्यवस्था कहा जाता है क्योकि इनमे जिला स्वास्थ्य अधिकारी राज्य की राजधानी से दूर अपने-अपने क्षेत्र मे स्थित होते हैं। परन्तु यदि जिला स्वास्थ्य अधिकारियो के कार्यालय जन-स्वास्थ्य निर्देशक के कार्यालय मे ही स्थित हो और जिले के सब स्वास्थ्य अधिकारियो द्वारा अपने जिला स्वास्थ्य अधिकारी के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी हो तो इस स्थिति म जिला स्वास्थ्य अधिकारी अपने जिले से दूर होता है परन्तु अपने उच्च अधिकारी के समीप होता है। अत यह व्यवस्था "छोटी भुजाओ व लम्बी उगलियो" वाली व्यवस्था कहलाती है क्योकि इसमे जिला स्वास्थ्य अधिकारी अपने जिले से दूर किन्तु अपने प्रधान के समीप होता है। और यदि जिला स्वास्थ्य अधिकारी बिल्कुल ही न हो, तथा जिले के प्रत्येक डाक्टर को अपने राज्य के प्रधान कार्यालय मे सीधे जन-स्वास्थ्य निर्देशक के समक्ष ही अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी हो, तो इसे "सब उगलियो" वाली व्यवस्था का नाम दिया जायेगा।[1]

क्षेत्रीय व प्रधान कार्यालयो के सम्बन्ध (Field-Headquarters Relations)

'केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण' की समस्या की विवेचना करते समय यह कहा गया था कि क्षेत्र स्थलो (Field stations) को काफी सत्ता Authority) सौंपी जानी चाहिए। उन्हे इतनी शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि अपने सामने आने वाली समस्याओ के सम्बन्ध मे निर्णय कर सके। परन्तु क्षेत्र स्थलो को सत्ता सौंपे जाने का अर्थ यह नही है कि वे प्रधान कार्यालय के किसी भी नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त होगे। प्रधान कार्यालय का नियन्त्रण अवश्य विद्यमान रहेगा परन्तु इस नियन्त्रण का यह आशय कदापि नही है कि क्षेत्र स्थलो के दिन प्रतिदिन के कार्यो मे हस्तक्षेप किया जाय। क्षेत्रीय सेवाओ पर प्रधान कार्यालय के नियन्त्रण की वास्तविक प्रकृति (Real nature) के बारे मे लिखते हुए डोनाल्ड सी० स्टोन (Donald C Stone) ने यह विचार व्यक्त किया—

"वाशिंगटन कार्यालय (प्रधान कार्यालय) का वास्तविक कार्य क्षेत्रीय कर्मचारी-वर्ग (Field staff) को उसके काम करने मे सहायता पहुँचाना था, क्षेत्रीय

1 Luther Gullick and L Urwick (Eds), op cit, pp 26 30

कार्य को स्वय अपने आप करना नही। इसका अर्थ है निर्देशन के मार्ग, प्रादेश की रेखा द्वारा निर्धारित मदो के बजटो (Line item budgets), सौदो के पुर्नावलोकन, मामला के पूवलग्ग परीक्षण की समाप्ति तथा सबसे खराब चीज अर्थात् अनावश्यक व शीघ्र की जाने वाली कार्यवाहियो को करने से पूर्व लम्बे चौडे पत्र व स्मृतिपत्र लिखने की प्रथा की समाप्ति। ये सब बातें क्षेत्रीय कर्मचारियो की स्वय प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता (Initiative) को नष्ट करती हैं। ये प्रशासन का दम घोटती हैं। ये सरकार के समक्ष गलत जानकारी एव गलत पक्ष प्रस्तुत करती हैं। सत्ता सौंपने का काय वास्तविक रूप म होना चाहिये, केवल कागजो पर नही। सत्ता सौपने के इस कार्य के सम्बन्ध म एक सघीय अभिकरण (Federal agency) के एक उच्च अधिकारी की भावना का अनुसरण किया जाना चाहिये जिसने कि अभी हाल म ही अपने क्षत्रीय प्रबन्धको (Field Managers) से यह कहा, कि जब भी उन्हे कोई कायवाही करने की आवश्यकता हो वे आगे बढ और करें, भले ही उन्ह इसके लिये विनियमो (Regulations) का उल्लघन करना पडे, बशर्ते कि ऐसा उल्लघन करना आवश्यक हो और ऐसी कायवाही करने के बाद वे अपने अभिकरण (Agency) को उसके बारे म सूचना दे द। केवल इस तरह के प्रशासन से ही हम यह आशा कर सकते हैं कि उसके द्वारा योग्य, उत्तरदायी व विस्तृत विचार वाले अधिकारियो को क्षत्रीय सेवाओ म ध्यान म लिये आकर्षित किया जा सकेगा।'[1] प्रधान कार्यालय के नियन्त्रण द्वारा क्षत्रीय सेवाओ के अधिकारियो की स्वय प्रेरणा अथवा पहल करने की क्षमता नष्ट नही होनी चाहिये।

क्षेत्रस्थलो पर प्रधान कार्यालय के नियन्त्रण की रीतियाँ
(Methods of Headquarter Control Over Field Stations)

(१) **काय करने से पूर्व विशिष्ट अधिकार प्राप्त करना** (Specific Authority in advance)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, क्षेत्रीय कार्यालयो के लिये यह आवश्यक होता है कि वे किसी भी कार्य को, जिस कि वे करना चाहते है, करने से पूर्व प्रधान कार्यालयो से अधिकार प्राप्त करें। इस प्रकार प्रधान कार्यालयो से प्राप्त होने वाली विशिष्ट सत्ता के बिना क्षेत्रस्थल कुछ नही कर सकते। यह व्यवस्था सत्ता सौंपने के सिद्धान्त का उल्लघन करती है।

(२) **कार्यवाहियों के पुर्नावलोकन द्वारा नियन्त्रण** (Control through Review of Actions)—इस व्यवस्था मे, क्षेत्रीय कार्यालयो को कोई भी कार्यवाही करने के लिये एक सामान्य शक्ति तथा सत्ता मिली होती है। परन्तु किसी भी कायवाही को करने के पश्चात् क्षेत्रीय कार्यालयो को प्रधान कार्यालय के समक्ष उसका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना पडता है और प्रधान कार्यालय स्थानीय कार्यालय की किसी भी कार्यवाही अथवा किसी भी निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है।

8 Lectures and Papers by Donald C Stone Washington—*Field Relationship in the Federal Service* Washington 1942

(३) **बजट द्वारा नियन्त्रण** (Control through Budget)—प्रधान कार्यालय बजट अनुदानो (Budget grants) के द्वारा क्षेत्र-स्थलो की क्रियाओ पर नियन्त्रण लगाता है । विस्तृत बजट अनुदान देने की रीति एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रधान कार्यालय क्षेत्रस्थलो की क्रियाओ पर विस्तृत नियन्त्रण लगाता है ।

(४) **विवरण प्राप्त करने की शक्ति द्वारा नियन्त्रण** (Control through the power to get Reports)—क्षेत्रस्थलो का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने द्वारा किये गये कार्य की मात्रा तथा अपने द्वारा नियुक्त किये गये कर्मचारियो के सम्बन्ध मे प्रधान कार्यालय को सूचना दें । क्षेत्रीय कार्यालयो द्वारा प्रधान कार्यालय को इस सम्बन्ध मे विवरण प्रस्तुत करना पड़ता है कि उन्होने कौन-कौन से कार्य अथवा क्रियायें सम्पन्न की । इन सूचनाओ तथा विवरणो के आधार पर, प्रधान कार्यालय क्षेत्रीय कार्यालयो द्वारा अपनायी गई । किन्ही भी क्रियाविधियो (Procedures) के बारे मे आपत्ति उठा सकते हैं और क्रियाविधि मे सशोधन के सुझाव दे सकते हैं ।

(५) **व्यक्तित्व निरीक्षणों द्वारा नियन्त्रण** (Control through Personal Inspections)—प्रधान कार्यालय के अधिकारी व्यक्तिगत रूप से क्षेत्रस्थल मे जाकर वहां के कार्यों का निरीक्षण कर सकते है । मौके पर जाकर किये जाने वाले निरीक्षणो से अनेक ऐसे तथ्यो के प्रकट होने की सभावना रहती है जो कि अन्य स्थिति मे, यह हो सकता है कि प्रकाश मे न आयें ।

(६) **जाच पड़ताल की शक्ति के द्वारा नियन्त्रण** (Control through the power of Investigation)—गैर-कानूनी कार्यवाहियो, जालसाजियो अथवा वेइमानी की चरम सीमा की स्थितियो मे प्रधान कार्यालय के अधिकारियो द्वारा जाच पड़ताल की जा सकती है और इस प्रकार क्षेत्रीय कार्यालयो पर नियन्त्रण लगाया जा सकता है ।

ये वे रीतिया हैं जो कि प्रधान कार्यालय द्वारा क्षेत्रीय सेवाओ पर नियन्त्रण लगाने के लिए काम मे लाई जाती हैं । परन्तु नियन्त्रण की समस्या एक बडी कठिन समस्या है । अत प्रत्येक प्रयत्न यही होना चाहिये कि स्थानीय कार्यालयों को पर्याप्त ऐच्छिक शक्तिया प्रदान की जायें , क्योंकि सर्वोत्तम निर्णय (Decision) वही होता है जो सत्ता की उस सतह पर किया जाता है जो कि उस निर्णय से प्रभावित होने वाली जनता का निकटतम प्रतिनिधित्व करती हो । इस प्रकार क्षेत्रस्थलो पर केन्द्रीय नियन्त्रण पद प्रदर्शन (Guidance), प्रोत्साहन तथा परामर्श के रूप मे होना चाहिये ।

प्रधान कार्यालयो तथा क्षेत्रस्थलो के बीच ऐक्य अथवा तालमेल उत्पन्न करने की रीतिया (Methods of Creating Harmony between the Headquarters and the Field Stations)

किसी भी बडे सगठन म, यह बिल्कुल मामूली सी बात है कि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रस्थलो क बीच सघर्ष उत्पन्न हो जाये। वे अधिकारी जो कि केन्द्र से दूर होते हैं यह मानने लगते हैं और कभी-कभी तो बहुत जल्दी ही, कि सगठन मे उच्च पदो पर स्थित अधिकारी स्थानीय कठिनाइयो पर पर्याप्त ध्यान नही देते। अत उनमे इस भावना के कारण प्रधान कार्यालय विरोधी" (Anti-Headquarter) यह दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है कि प्रधान कार्यालय के अधिकारी दिन-प्रति-दिन की उन क्षेत्रीय कठिनाइयो से दूर एक अलग ही दुनिया मे रहते हैं जो कि स्थानीय कार्यालयो म उनके सहयोगियो को परेशान करती हैं।

वे उपाय जो कि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रस्थलो के बीच एक्यपूर्ण सम्बन्ध (Harmonious relationship) उत्पन्न करने म मदद कर सकते हैं, निम्नलिखित है —

(१) केन्द्रीय कार्यालय के उच्च अधिकारियो द्वारा किये जाने वाले व्यक्तिगत निरीक्षणो अथवा दौरो (Visits) स क्षेत्रीय कर्मचारियो के मन मे किसी विशेष कार्यालय के प्रति नही बल्कि 'सेवा' (Service) के प्रति अपनत्व की भावना उत्पन्न होती है। इन व्यक्तिगत निरीक्षणो के द्वारा केन्द्रीय कार्यालय के अधिकारी क्षेत्रीय अधिकारी वर्ग की कठिनाइयो तथा समस्याओ के निकट सम्पर्क मे रहते हैं। इससे प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो का निर्माण करने मे भारी मदद मिलती है।

(२) क्षेत्रीय अधिकारियो के मन मे यह भावना रहनी चाहिए कि प्रधान कार्यालय के अधिकारी उनकी योग्यता एव क्षमता मे विश्वास रखते हैं। उनमे यह भावना रहनी चाहिये कि प्रधान कार्यालय उन पर विश्वास करता है और उनका उपयोग केवल सदेशवाहको (Massengers) के रूप मे नही करता।

(३) क्षेत्रीय अधिकारी वर्ग मे यह भावना रहनी चाहिये कि प्रधान कार्यालय उनकी आवाज सुनता है और उनके तर्कों को मानता है। यदि प्रधान कार्यालय स्थानीय अधिकारियो की राय तथा उनके विचारो को पर्याप्त महत्व प्रदान करता है तो 'प्रधान कार्यालय विरोधी' भावना उत्पन्न नही होती।

(४) प्रधान कार्यालय से क्षेत्रीय कार्यालयो को और क्षेत्रीय कार्यालयो से प्रधान-कार्यालय को कर्मचारियों की अदला-बदली होती रहनी चाहिये। दोनों के बीच ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो के विकास के लिये ऐसा होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे क्षेत्र तथा प्रधान कार्यालय दोनो के ही कर्मचारियो को एक दूसरे की समस्याओ की

वास्तविकताओं को समझने का अवसर मिलता है। अधिकारियो का एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरण (Transfer) किया जाना चाहिये। इससे एक दूसरे के प्रति उत्पन्न मिथ्या धारणाओं को दूर करने मे मदद मिलेगी। यदि ऐसी कोई धारणा उत्पन्न हो गई हों तो, और ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो की उत्पत्ति मे सहायता मिलेगी।

(५) क्षेत्र तथा प्रधान कार्यालय का सम्बन्ध बहुत कुछ पत्र-व्यवहार तथा सन्देशो के आदान प्रदान पर निर्भर रहता है। नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे तक सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। प्रशासन अपने जीवन-रक्त (Life-blood) के लिये पत्र व्यवहार तथा सदेशो के आदान-प्रदान की पर्याप्तता (Adequacy) पर निर्भर रहता है, चाहे वह आदान-प्रदान उच्च तथा अधीनस्थ अधिकारियो के बीच प्रत्यक्ष विचार-विमर्श के रूप मे हो अथवा सम्मेलनो (Conferences), टेलीफोन की बातचीतो, पत्रो, स्मृतिपत्रो आदेशो (Orders), परिपत्रों (Circulars) या सार-पुस्तिकाओं (Manuals) आदि के रूप मे हो। अत पत्र-व्यवहार बहुत ही सरल, सीधी सादी तथा आसानी से समझने योग्य भाषा मे होना चाहिए। भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मूल विचार को बिल्कुल स्पष्ट रूप से दूसरो तक पहुँचा दे। पत्र-व्यवहार इतना विस्तृत तथा लम्बा-चौडा नही होना चाहिए कि जिससे क्षेत्रीय अधिकारियो का समय नष्ट हो।

(६) प्रधान कार्यालय को अनावश्यक प्रमाणिकता (Standardization) अथवा एकरूपता (Uniformity) पर जोर नही देना चाहिए। उसका प्रयत्न यही होना चाहिए कि 'प्रत्येक स्थिति की अपनी अलग विशेषता होती है, अत उसी के अनुरूप उससे निपटना चाहिये।

(७) प्रधान कार्यालय पर स्थित तकनीकी विशेषज्ञ (Technical specialist) का क्षेत्रीय कार्यालय के साथ सम्बन्ध अधिकारी-वर्ग जैसा ही होना चाहिए। उसको चाहिए कि क्षेत्रीय स्टॉफ को अनावश्यक रूप मे आदेश न दे। उसे क्षेत्रीय कार्यालयो को प्रशिक्षण देना चाहिए, परामर्श देना चाहिए, उनका पथप्रदर्शन करना चाहिए, निरीक्षण करना चाहिए तथा उनको तकनीकी जानकारी प्रदान करनी चाहिए। तकनीकी विशेषज्ञ को चाहिए कि वह स्थानीय स्टॉफ पर अपने आपको लादे नही, बल्कि इसके बजाए उसे उनके लिए अपनी आवश्यकता उत्पन्न कर देनी चाहिए।

(८) सबसे महत्वपूर्ण तत्व जोकि प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालय के बीच ऐक्य उत्पन्न करने मे मदद करता है, प्रधान कार्यालय के अधिकारियो द्वारा इस तथ्य (Fact) का स्वीकार किया जाना है कि सम्पूर्ण सगठन का कुशल सचालन केवल प्रधान कार्यालय पर ही निर्भर नही होता है। कार्य कुशलता (Efficiency) तभी आएगी जब कि सगठन के सभी कार्यालय, जोकि देश की विशाल लम्बाई चौडाई मे दूर-दूर तक फैले हुये हैं, कुशलता के साथ कार्य करेंगे। प्रधान कार्यालय

के अधिकारियों को यह तथ्य अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण सगठन की कुशलता के लिए क्षेत्रीय कार्यालयों का सुयोग्य स्टॉफ से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार क्षेत्रीय स्टॉफ को भी यह बात जान लेनी चाहिए कि वे सगठन रूपी शरीर के अग मात्र हैं। यदि शारीरिक रचना को स्वस्थ्य एव सुचारु रूप से कायम रखना है तो यह आवश्यक है कि उसके अगों पर नियन्त्रण रखा जाय। अत 'प्रधान कार्यालय विरोधी' रुख अपनाने के बजाए उन्हे सहयोगी दृष्टि-कोण (Co-operative attitude) अपनाना चाहिए। इस प्रकार इन भावनाओं के आधार पर प्रधान कार्यालय तथा स्थानीय स्टाफ के बीच अपेक्षाकृत श्रेष्ठ तथा ऐक्यपूर्ण सम्बन्धो का विकास किया जा सकता है।

क्षेत्र मे समन्वय
(Co-ordination in the Field)

अधिकाश सरकार विभाग (Government department) क्षेत्रीय कार्यालयो का उपयोग करते हैं। किसी भी खास क्षेत्र म विभिन्न सरकारी विभागो के अनेक क्षेत्रीय कार्यालय स्थित हो सकते हैं। किसी विशिष्ट स्थान पर एक रेलवे स्टेशन, एक डाकखाना, एक अस्पताल, एक स्कूल, एक राजस्व कार्यालय (Revenue Office), आय-कर कार्यालय (Income tax office), एक बिक्री कर कार्यालय (Sales tax office), एक भवन निर्माण कार्यालय (Building construction office), एक सडक निर्माण कार्यालय आदि हो सकते हैं। ये सब विभिन्न विभागो के क्षेत्रीय कार्यालय हैं। इन क्षेत्र-स्थलों की स्थापना विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए की जाती है किन्तु फिर भी उनमे परस्पर समन्वय कायम होना चाहिये। चूंकि ये सब क्षेत्रीय कार्यालय एक ही विशिष्ट क्षेत्र मे स्थित होते हैं और उसी क्षेत्र मे उनकी क्रियाओ के बीच समन्वय कायम किया जाता है अत इसे 'क्षेत्र मे समन्वय' का नाम दिया जाता है। इनकी क्रियाओ के बीच समन्वय अथवा ताल-मेल रखने के लिए चार उपाय काम मे लाये जाते हैं। जो इस प्रकार हैं : (१) प्रादेशिक सीमाओं तथा क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना मे अधिकाधिक एकरूपता ; (२) सस्थागत सेवाओ मे मितव्ययता लाने के लिये सयुक्त कार्यवाही , (३) कार्यक्रमो के निष्पादन मे समन्वय , (४) कार्यक्रमो की योजना बनाने मे समन्वय। अब हम इस क्षेत्र मे समन्वय लाने वाले इन उपायो पर क्रमश विचार करते हैं।

(१) प्रादेशिक सीमाओं तथा क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थिति निर्धारण करने मे अधिकाधिक एकरूपता (Increased uniformity in the locaton of regional boundaries and field offices)—क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थिति के निर्धारण करने मे प्रादेशिक एकरूपता से उनके बीच अच्छा समन्वय उत्पन्न होता है। यदि महत्वपूर्ण क्षेत्र-स्थलो की स्थापना किसी एक ही सामान्य नगर मे की जाये तो उनके बीच बडी सुगमता के साथ समन्वय कायम किया जा सकता है। यही कारण है जिसकी वजह से भारत मे विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना करने के लिये

तहसील अथवा जिले का उपयोग किया जाता है। यदि महत्वपूर्ण क्षेत्रीय कार्यालय एक ही स्थान पर स्थापित किये जाये तो उनम सरलता के साथ समन्वय कायम किया जा सकता है।

(२) सस्थागत सेवाओ मे मितव्ययतायें लाने के लिए सयुक्त कार्यवाही (Joint action to effect economies in Institutional services)—विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालय माल की खरीद तथा कर्मचारियो की भर्ती आदि के लिए एक से ही सामान्य अभिकरणो (Agencies) का उपयोग कर सकते है। एक रोजगार का दफ्तर (Employment Exchange) प्रदेश (Region) के सभी क्षेत्रीय कार्यालयो की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। यदि क्षेत्रीय कार्यालय अनेक कार्यों को सयुक्त रूप से सम्पन्न करें और अपनी समान समस्याओ के हल के लिये एक ही सामान्य अभिकरण का उपयोग करें तो मितव्ययता लाई जा सकती है तथा उन क्षेत्रस्थलो की क्रियाओ मे ताल-मेल अथवा समन्वय कायम किया जा सकता है।

(३) प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ता (Regional Co ordinators)—क्षेत्र मे समन्वय कायम करने के लिय प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ताओ का उपयोग किया जा सकता है। भारत म जिलाधीश (District Magistrate) अपने जिले म स्थित अनेक क्षेत्रीय कार्यालयो का क्षेत्रीय समन्वयकत्ता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय समन्वयकर्त्ताओ से निम्न लिखित कार्यों को सम्पन्न करने की आशा की गई थी—

"(क) सघीय अभिकरणो (Federal agencies) तथा उनकी क्रियाओ एव गतिविधियो के सम्बन्ध मे सूचना विभाग (Bureau of information) का कार्य करना, (ख) सघीय अभिकरणो के बीच सहयोग उत्पन्न करना, (ग) सघीय अभि करणो तथा राज्य प्रशासन के बीच सम्पर्क अधिकारी (Liaison Officer) के रूप मे कार्य करना, (घ) प्रत्येक सघीय अभिकरण के कार्य की साधनाओ का आलोचनात्मक मूल्याकन करते हुये तथा आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सघीय कार्यक्रम की पर्याप्तता (Adequacy) का विश्लेषण करते हुए हर एक अभिकरण को पाक्षिक अथवा अर्धमासिक रिपोर्ट वाशिंगटन म प्रस्तुत करना।[1]

प्रशासकीय प्रबन्ध पर राष्ट्रपति की समिति (President's Committee on *Administrative Management*) *न प्रधान कार्यालयो* के इन प्रादेशिक प्रतिनिधियो के लिये तीन कार्यों का सुझाव दिया

(१) वे क्षेत्र मे अन्तर्राभिकरणीय (Inter agency) विवादो के सम्बन्ध म निष्पक्ष रूप से समझौता कराने वाले व्यक्तियो के रूप मे काय करग और ऐसे विवादो को जिन पर कि समझौता नही हो सका है, वाशिंगटन के समक्ष प्रस्तुत करेंगे, जहा कि अधिक प्रभावपूर्ण रीति से उनका हल खोजा जा सकेगा।

1 Morstein Marx (Eds) *op cit*, p 287 88

(२) वे क्षेत्रीय अधिकारियों में सभी अभिकरणों के क्षेत्रीय कार्यक्रमों के सम्बन्ध में पारस्परिक परिचय व जानकारी उत्पन्न करेंगे। इस कार्य को वे स्थानीय संघीय व्यवसायिक संघों के निर्माण के द्वारा तथा प्रत्येक राज्य से एक-सी ही पद-स्थिति (Rank) के संघीय अधिकारियों की राज्य-व्यापी बैठकों (Meetings) के द्वारा सम्पन्न करेंगे।

(३) वे विशिष्ट प्रशासकीय अध्ययन करेंगे और इसके लिए वे विशिष्ट अभिकरणों के क्षेत्रीय कार्यक्रमों की फल-साधनाओं का तथा एक निश्चित क्षेत्र में संघीय क्षेत्र क्रियाओं के सम्पूर्ण प्रतिरूप (Pattern) का परीक्षण करेंगे।

(४) प्रादेशिक योजना आयोग प्रादेशिक विकास सत्तायें (Regional Planning Commissions and Regional Development Authorities) :— ये प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय संस्थायें विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच अधिक अच्छा समन्वय कायम कर सकती हैं। ये संस्थायें क्षेत्र के विकास के लिए योजनायें (Plans) बनायगी और अपनी योजनायें विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के सम्मुख रखेंगी जोकि क्षेत्र के विकास के लिये उस योजना को क्रियान्वित करने के उद्देश्य के साथ मिलकर काम करेंगे। इस प्रकार ऊपर उल्लेख किये गये इन उपायों के द्वारा 'क्षेत्र म समन्वय' कायम किया जा सकता है।

निष्कर्ष
(Conclusion)

इस प्रकार, प्रधान कार्यालय तथा क्षेत्र के पारस्परिक सम्बन्ध में एक ऐसी कठिन व पेचीदा समस्या प्रस्तुत करते हैं जिसकी कोई भी प्रशासन उपेक्षा नहीं कर सकता। किसी भी प्रशासकीय व्यवस्था की कुशलता केवल प्रधान कार्यालय पर ही निर्भर नहीं हुआ करती। इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक कार्यालय तथा उस प्रशासन की प्रत्येक इकाई कुशलता के साथ कार्य करे। केवल तभी प्रशासन का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् उच्च तथा सुखी जीवन का विकास किया जा सकता है। फिर, एक बात यह है कि नागरिक प्रधान कार्यालय की अपेक्षा क्षेत्रस्थलों के अधिक सम्पर्क में आते हैं। अतः क्षेत्रस्थलों को कुशल बनाने तथा प्रधान कार्यालय के साथ उनके सम्बन्धों को मधुर तथा ऐक्यपूर्ण बनाने के लिये यथासंभव प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये। क्षेत्रस्थलों को प्रदान की जाने वाली शक्तियों की स्पष्ट रूप से व्याख्या की जानी चाहिये। स्थानीय समस्याओं से निपटने के लिये उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। क्षेत्रस्थलों में योग्य एवं अनुभवी कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति की जानी चाहिये और उन्हें प्रधान कार्यालय का विश्वास प्राप्त करना चाहिये। क्षेत्रस्थलों को स्थानीय लोगों के कल्याण तथा सुख में वृद्धि करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये, अन्यथा उनकी विद्यमानता का कोई महत्व नहीं रह जाता।

———

१२

प्रशासनिक सुधार
(Administrative Improvement)

किसी प्रशासनिक अभिकरण की स्थापना कुछ विशिष्ट हितो की सेवा, कुछ उद्देश्यो व लक्ष्यो की प्राप्ति तथा कुछ सेवाओ को सचालित करने के मन्तव्य से की जाती है। प्रत्येक प्रशासक को एक मुख्य चुनौती का अक्सर सामना करना पडता है क्या उसके अभिकरण का कार्य वर्तमान की अपेक्षा अधिक कार्य-कुशलता मे सम्पन्न किया जा सकता है? उद्देश्य सदा लागत मे कमी लाना, उत्पादन बढाना तथा अभिकरण के योगदान का विस्तार करना होता है। प्रत्येक देश के लोक-प्रशासन के सम्मुख आज यह एक महत्वपूर्ण चुनौती है कि सीमित स्रोतो से अधिकतम लाभ किस प्रकार उठाया जाये तथा लोक सेवाओ का उत्पादन व उनका जनहित मे योगदान कैसे बढाया जाये। १९३७ मे अमरीकी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति 'प्रशासनिक प्रबन्ध सम्बन्धी समिति' (Committee on Administrative Management) ने "प्रतिदिन, प्रति वर्ष तथा प्रत्येक परिस्थिति मे लागत कम करने, सेवाए सुधारने तथा कार्य का स्तर ऊँचा उठाने के लिए" केन्द्रीय कार्यपालिका निर्देशन पर बल दिया था।[1]

प्रशासनिक प्रबन्ध मे निरन्तर सुधार की आवश्यकता को सबने महसूस किया है। इस प्रकार का सुधार लाने के लिए प्रशासनिक सगठनो के कार्यों का मूल्याकन तथा उन पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। अक्सर प्रशासनिक अभिकरणो के स्वरूप मे सगठनात्मक परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हैं। कभी-कभी क्रिया प्रणालियो तथा प्रक्रियाओ मे सशोधन व ताल-मेल आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी कर्मचारी वर्ग को अधिक कार्य कुशल बनाने के लिए विशेष लाभकारी प्रेरणाए (In centives) देना भी अनिवार्य हो जाता है। प्रशासनिक सुधार के कार्य मे तीन ऐसे चरण है जो परस्पर सम्बद्ध हैं (अ) प्रशासनिक सगठन के स्वरूप सम्बन्धी सुधार (ब) क्रिया-प्रणालियो तथा प्रक्रियाओं मे सुधार, तथा (स) प्रशासनिक अभिकरणो मे काम कर रहे कर्मचारियो के उत्साह मे निरन्तर वृद्धि।

प्रशासनिक सुधार लाना असम्भव होगा यदि कर्मचारी-वर्ग अपने कार्य से असन्तुष्ट व अप्रसन्न होगा। ऐसी दशाए पैदा करनी आवश्यक हैं जो कर्मचारी वर्ग

1 President's Committee on Administrative Management, Report with General Studies, Washington Government Printing Office, 1937, page 45

को सन्तोष तथा प्रसन्नता प्रदान कर सकें जिससे वे अपने काम को तन-मन-धन से कर सकें। ऐसी दशाएं होने पर उनमें उत्तरदायित्व की भावना भी आयेगी। इस प्रकार प्रशासनिक सुधार का अभिप्राय कार्य प्रणालियों तथा संगठनात्मक स्वरूप में सुधार लाने मात्र से नहीं है। किसी भी देश के प्रशासनिक ढाँचे को सुधारने के लिए 'व्यक्ति' (Man), जोकि प्रशासन की प्रेरणा शक्ति है, पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

प्रशासनिक सुधार के लिए समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किए गये हैं। ये अध्ययन व्यक्तिगत रूप से विद्वानों या सरकार द्वारा किए गये हैं। हाल ही में इस प्रकार के अध्ययन सरकारी क्षेत्र की अपेक्षा निजी औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय हुए हैं। बहुत से देशों की सरकारें अपने-अपने प्रशासनिक ढाँचों के विश्लेषणात्मक निरीक्षण के महत्व को स्वीकार कर रही हैं तथा प्रशासन में कार्य कुशलता तथा उत्पादन की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए बहुत से अभिकरण स्थापित किए गये हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध
(Scientific Management)

प्रशासनिक सुधार के किसी भी अध्ययन में अमेरीका के फ्रेडरिक टेलर (Frederick W Taylor) का नाम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसने १६११ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त" में अपने विचारों का प्रतिपादन किया था। उसने अपना अध्ययन का प्रारम्भ एक छोटे कारखाने (Shop) की समस्याओं के निरीक्षण से किया। उसने अपव्यय, मालिक तथा कर्मचारियों के पारस्परिक संघर्ष उत्पादन के साधनों के अकार्यकुशल प्रयोग तथा नियोजन के अभाव के कारणों की जाँच की।[1] टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार सिद्धान्त प्रतिपादित किए

(अ) पुराने घिसे पिटे तरीकों के स्थान पर 'विज्ञान' का विकास;

(ब) कर्मचारियों का वैज्ञानिक चुनाव तथा उनका प्रगतिशील प्रशिक्षण एवं विकास,

(स) वैज्ञानिक तरीके से चुने हुए कर्मचारियों तथा 'विज्ञान' में निकटता लाना, तथा

(द) प्रबन्धकर्ताओं तथा कर्मचारियों में कार्य का लगभग समान विभाजन।[2]

---

1 For further studies on Taylor refer to H F Merrill (Ed), *Classes in Management*, N Y, American Management Association, 1960, A Lepawsky, *Administration*, N Y, A A Knopf, 1955 Harlow S. Person, "The Genius of Frederick W Taylor", Advanced Management, 1945, Vol, 10, Page 2

2 Merrill H F (Ed), *op cit*, page 94

सरकार में समय तथा क्रिया का अध्ययन
(Time and Motion Studies in Government)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के आन्दोलन ने समय व क्रिया अध्ययन' नामक एक अन्य आन्दोलन को जन्म दिया है। इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य वस्तुओं के उत्पादन में समय की लागत को कम करना है। समय अध्ययन का उद्देश्य एक वस्तु के उत्पादन या एक गति विधि के लिए एक अधिकतम समय-सीमा निश्चित करना है। क्रिया अध्ययन का उद्देश्य एक 'कार्य (Job) के लिए आवश्यक क्रियाओं की शृंखला का अध्ययन करके 'अलाभकारी' या 'गैर उत्पादक' क्रियाओं का उन्मूलन करना है।[1]

'समय तथा क्रिया' अध्ययन सरकारी विभागों में लोकप्रिय नहीं हो पाये हैं परन्तु इन्हीं से उपजी 'कार्य सरलीकरण' (Work simplification) की प्रक्रियायें अब सरकारी क्षेत्र में भी लोक-प्रिय हो रही है।[2]

प्रशासनिक कार्य-प्रणालियों में सुधार
(Improvement in Administrative Procedures)

प्रशासन में कार्य कुशलता की वृद्धि के लिए प्रशासनिक कार्य प्रणालियों में सुधार अत्यन्त आवश्यक है। बहुत सी कार्य प्रणालियां समयानुकूल न रहने के कारण अनुपयोगी साबित हो जाती हैं। किन्तु आदत के कारण प्रशासक-वर्ग उन्हें अक्सर नहीं त्यागता। इसके फलस्वरूप समय का अपव्यय, काम में विलम्ब तथा लालफीताशाही का जन्म होता है।[3] कार्य-प्रणालियों का अविरल निरीक्षण प्रशासनिक सुधार के लिये आवश्यक है। सरकारी कार्य-प्रणालियों में व्यर्थ की पुनरावृत्ति बहुत होती है; औपचारिकतायें भी उनमें बहुत होती हैं। इसलिए किसी भी लोक-सेवा के कार्य-

---

1 Refer to Allan H Mogensen, "Time and Motion Study", Advanced Management, VI (January—March 1941), page 28

2 For further attempts at such studies refer to the work of late Elton Mayo of Harvard University "Hawthorne Studies" are important in the field of administrative improvement For further details refer to Dwight Waldo (Ed), *Ideas and Issues in Public Administration*, pages 370—380

3 A writer has put it very well "Perhaps the strongest single impediment to management progress is the dead weight of tradition—the habit of doing things the way they have always been done Habits are powerful and the habitual method may survive simply because we are used to it, not because it is the best method The only way organizations can rid themselves of outmoded procedures, unnecessary operations and wasteful duplications of efforts is to subject every activity periodically to searching re-examination" F. M Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, page 428

स्तर मे सुधार तथा उसकी लागत मे कमी सरकारी विभागो की कार्य-प्रणालियो के सरलीकरण पर निर्भर करती है ।

किपलिंग के शब्दो मे कार्य प्रणालियों का विश्लेषण करने वाले व्यक्ति को छ प्रश्नो को अपने सम्मुख रखना पड़ता है क्या-क्या गतिविधियाँ सचालित हो रही हैं ? ये कदम क्यो वाछनीय हैं ? इस काम को कहाँ किया जाना चाहिए ? इसको कब प्रारम्भ करना चाहिए ? इसको किसे करना चाहिए ? इसको किस प्रकार करना चाहिए ?[1] इन प्रश्नो के उत्तर सर्वेक्षणो (Surveys), प्रश्नावलियो (Questionnaires) तथा व्यक्तिगत भेंटो (interviews) से प्राप्त किए जा सकते हैं। कार्य का सरलीकरण कर्मचारियो म कार्य के उचित विभाजन पर निर्भर करता है। अगर कार्य-विभाजन अनुचित तथा अवैज्ञानिक है और एक ही काम अनेक व्यक्तियो को करना पड रहा है तो इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियो द्वारा काम का एक दूसरे पर टालना बढ जायेगा तथा उनका उत्तरदायित्व निश्चित करना कठिन हो जायेगा। कार्य-कुशलता लाने के लिए निम्न बातो पर ध्यान देकर अध्ययन न करना आवश्यक है : (अ) प्रशासन म फाइलें कैसे एक स्थान स दूसरे स्थान पर पहुचती हैं ? (ब) देख-रेख (Supervision) की तकनीक तथा तरीका क्या है ¦ स) कार्य के प्रवाह (Flow) म कितने तथा कौन-कौन म चरण निहित हैं ? (द) कार्यालय में यन्त्र-उपकरण तथा अन्य सामान लगाने का नमूना क्या है ? क्या कर्मचारियो म उचित कार्य वितरण है ? इस प्रकार काय प्रणालियो का विश्लेषण करन वाले व्यक्ति को एक प्रशासनिक सगठन के काम करने के सम्पूर्ण ढग का विस्तार, गहनता तथा बारीकी से अध्ययन करना पड़ता है। तभी वह प्रशासनिक सुधार के लिये उपयोगी सुझाव दे सकता है।

अभीकरणो के प्रबन्ध म सुधार के लिए बहुत से तकनीकी तरीको का प्रयोग किया जाता है। इनमे महत्वपूर्ण हैं, (अ) सर्वेक्षण, (ब) कार्य वितरण चार्ट, (स) कार्य मापन (Work measurement), (द) प्रश्नावलियाँ, तथा (ढ) व्यक्तिगत भेंट।

एक प्रशासनिक सगठन के सर्वेक्षण मे सम्बन्धित समस्याओ के बारे मे सभी उपलब्ध तथ्य एकत्रित किय जाते हैं। य तथ्य भेंटो, पर्यवेक्षणो (Observations) या कार्यालयो की फाइलो, अधिकारी दायित्वो का वर्णन करने वाली विभागीय पुस्तिकाओ तथा अन्य लिखित प्रपत्रो के अध्ययन द्वारा इकट्ठे किये जा सकते है। ये तथ्य तब सकलित तथा वर्गीकृत किये जाते हैं तथा इस प्रकार प्राप्त होन वाली नई जानकारी, निष्कर्षों तथा सिफारिशो के विषय मे एक प्रतिवेदन तैयार किया जाता

1 Also refer to Marshall E Dimock, 'Administrative Standards for Improving Naturalization Procedure, 37 American Political Science Review 81 February 1943 Also refer to *Governmental Administration* by James C Charlesworth, N Y, Harper Brothers, 1951, Chapters XVIII and XIX, pages 409—436

है। तब वह सम्बन्धित अधिकारियो को समर्पित किया जाता है। इसके बाद सर्वेक्षण कार्य के क्रियान्वन की भी जांच की जाती है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि सर्वेक्षण की सिफारिशो पर क्या कदम उठाये गये हैं। कार्य-वितरण चार्ट का उद्देश्य एक प्रशासनिक इकाई के कर्मचारियो के सामूहिक तथा व्यक्तिगत कार्य का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना होता है। कार्य-विभाजन तथा कर्मचारियो के व्यक्तिगत योगदान का अध्ययन करने का उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि कार्य-वितरण मे कोई दोष तो नही है।

कार्य सुधार मे इस्तेमाल की जाने वाली एक अन्य तकनीकी विधि का उद्देश्य कार्य उत्पादन तथा प्रयुक्त जनशक्ति (Man-power) के मध्य कुछ मापदण्डो (Standards) को स्थापित करना होता है। इसी को कार्यमापन की विधि कहते हैं। प्रयुक्त जन-शक्ति को दृष्टिगत रखकर कार्य उत्पादन का मापन (Measurement) किया जाता है। प्रशासन मे कार्य-कुशलता के मापन की यह एक अच्छी तकनीक है।[1]

सारांश मे, पिछले कुछ वर्षों मे प्रशासनिक सुधार के कार्य मे सर्वत्र रुचि *जागृत हुई है। प्रशासनिक कार्य-प्रणालियो के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधियाँ* विकसित की जा रही हैं। किन्तु प्रशासनिक सुधार की एक तकनीक हर स्थिति मे *लाभप्रद सिद्ध नही होती। ऐसी विधियो के प्रयोग मे सावधानी आवश्यक है तथा* अध्ययन के परिणामो की परीक्षा तथा पुनर्परीक्षा जारी रहनी चाहिये।

सगठन तथा प्रणालिया
(Organisation and Methods)

किसी भी प्रशासकीय सगठन को, कुशल बनने के लिए, अपने सभी उपलब्ध साधनो का पूर्णरूप से उपयोग करना चाहिए और जहाँ तक भी सम्भव हो सके मानवीय प्रयत्न तथा शक्ति का किसी भी प्रकार का अपव्यय (Waste) तथा नुकसान नही होना चाहिए। सरकारी विभागो (Government Departments) के विरुद्ध की जाने वाली सामान्य आलोचनायें (Criticisms) ये हैं। लालफीताशाही (Red tapism) का प्रचलन, काम मे देरी व कार्य-कुशलता एव दक्षता का अभाव आदि। प्रशासन के अनेक कार्यक्रम तथा नीतियाँ विभागो के सचालन मे कार्य-विधि सम्बन्धी दोषो के कारण धरी की धरी रह जाती हैं। अतः विभागीय कामो के सचालन की

1 For further details refer to John D Millett; *Management in the Public Service*: Chapter XI, Management Improvement, pages 253—276, Louis A Allen. *Management and Organization* N Y., Mc Graw-Hill Book Co, 1958, Chapter 17, Changing the Organization Structure, pages 273—307, Morstein Marx (Ed.), *Elements of Public Administration*, Chapter 20, Administrative Self-improvement, pages 448—477, Dimock, Dimock and Koenig, *Public Administration*, Chapter 25, Administrative Control, pages 425—445

कार्य विधि (Procedure) में सुधार होना चाहिए जिससे कि प्रशासन के कार्यों में गति तथा कुशलता लाई जा सके।

संगठन तथा प्रणाली का कार्य (Organization and methods work) चालित सेवाओं की कार्य विधियों में सुधार का प्रयत्न करता है। संगठन तथा प्रणाली के कार्य को यह देखना होता है कि संगठन में मनुष्यों तथा सामग्रियों का समुचित उपयोग किया जा रहा है या नहीं। ओ० तथा एम० (O and M) प्रशासकीय ढाँचे का विश्लेषण करता है, कार्य विधि सम्बन्धी दोषों व त्रुटियों का पता लगाता है और उनको दूर करने के लिए उपायों अथवा साधनों का सुझाव देता है। ओ० तथा एम० कार्यकर्त्ता (O and M workers) प्रशासकीय विश्लेषक (Analysts) होते हैं जिनका कार्य संगठन का अध्ययन करना तथा देरी और उत्पादकता व कार्य-कुशलता की कमी के कारणों की ओर संकेत करना होता है। ओ० तथा एम० को उपलब्ध कार्मिक वर्ग (Personnel) के सर्वोत्तम उपयोग के लिए उपायों का सुझाव देना होता है। ओ० तथा एम० का सरकार की सामान्य नीतियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसका सम्बन्ध तो उन उपायों तथा साधनों से होता है जिनके द्वारा सरकारी काम-काज कम लागत तथा कम श्रम (Labour) लगाकर सम्पन्न हो सके। अनुमानों पर ब्रिटिश प्रवर समिति (१९४७) (British Select Committee on Estimates) के शब्दों में, 'सिविल सेवा में ओ० तथा एम० का उद्देश्य सरकार के शासन-तन्त्र के संचालन में अधिकतम दक्षता लाना तथा संगठन की वैज्ञानिक प्रणालियों के निपुण उपयोग के द्वारा लागत तथा श्रम (Cost and labour) में कमी करना है।" ओ० तथा एम० पूर्णतया परामर्शदात्री प्रकृति का होता है। विभागीय प्रमुख द्वारा इसकी सलाह स्वीकार की भी जा सकती है और नहीं भी।

भारत सरकार में संगठन तथा प्रणाली (ओ० तथा एम०)
(O & M in the Government of India):

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, भारत के प्रशासन-यन्त्र पर कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की पेचीदी समस्याओं से निपटने का भार आ पड़ा। भारत को अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के रहन-सहन के स्तर (Standard of living) में सुधार के विशाल कार्य में लगना पड़ा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासन स्वयं को आर्थिक नियोजन (Economic planning) के कारण उत्पन्न होने वाली नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप बना ले। प्रशासनिक कार्य-कुशलता अथवा दक्षता (Administrative efficiency) आज की सबसे बड़ी आवश्यक माँग है। सन् १९४९ में, श्री एन० गोपाल स्वामी आयंगर ने 'सरकार की मशीनरी के पुनर्गठन' (Reorganisation of the Machinery of Government) पर अपने प्रतिवेदन (Report) में केन्द्र (Centre) में 'संगठन तथा प्रणाली सभाग' (O and M Division) के निर्माण की दलील दी। उन्होंने लिखा कि "सरकार को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है वे स्थिर तथा अपरिवर्तनीय नहीं हैं। आगे तो

उनमे भूतकाल से भी अधिक तेजी से परिवर्तन होने की सम्भावनायें हैं, अत 'प्रशासन के सगठन तथा प्रणालियो मे भी तदनुकूल परिवर्तन करने ही पडेंगे ।" श्री ए० डी० गोरवाला और पाल एच० एपिलबी ने भी भारत मे सगठन तथा प्रणाली (O and M) के निर्माण का सुझाव दिया । प्रथम पचवर्षीय योजना मे इसको काफी महत्व दिया गया । प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह व्यवस्था की गई कि ओ० तथा एम० निम्नलिखित समस्याओ से अपना सम्बन्ध रखेगा—

(१) यह कार्यालयो की कार्यविधियो (Procedures) का अध्ययन करेगा और उनके सरलीकरण (Simplification) के लिए उपायो के सुझाव देगा । (२) यह कार्य होने वाली देरियो को दूर करने के लिए उपाय सुझायेगा । (३) यह अभिलेखो (Records) को सुरक्षित रखने की प्रणाली मे सुधार करने के लिए सुझाव देगा । (४) यह फाइलो के आवागमन की प्रणाली का अध्ययन करेगा । (५) यह उपयुक्त सतहो (Appropriate levels) पर अधिकाधिक सत्ता एव उत्तरदायित्व के हस्तान्तरण के लिये उपाय सुझायगा" ।[2]

कार्यक्रम की रूपरेखा[3]

(Outline of Programme)

सगठन तथा प्रणाली सभाग (O and M Division) के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) सरकार की सभी शाखाओ मे प्रशासनिक कार्य-क्षमता की वृद्धि करने के लिए सूत्रबद्ध प्रयत्न करना और उसे कायम रखना ।

(२) कार्य-क्षमता लाने के लिए अन्य किसी भी यन्त्र के ही समान, सरकारी शासनयन्त्र की ठीक प्रकार से रचना होनी चाहिए तथा उसे समुचित रीति से कार्य करना चाहिए । गतिशील तथा विकासोन्मुख परिस्थितियो मे कार्य-कुशलता कायम रखने के लिए आवश्यक है कि यन्त्र की बार-बार जाँच-पडताल की जाए, उसकी पूर्णत सफाई की जाए और यदि आवश्यक हो तो उसकी मरम्मत अथवा पुन. रचना भी की जाए । कल्याणकारी राज्य के विचार की दिशा मे आगे बढने की स्थिति मे तो ऐसी सावधानी तथा जागरूकता अत्यन्त आवश्यक है ।

(३) प्रशासनिक व्यवहार मे, यह सभाग किये जाने वाले कार्य की प्रवृति तथा मात्रा, कार्य की गति (Speed) तथा कोटि (Quality) की ओर तथा अनेक ऐसे तत्वो की ओर, जो कि इनको प्रभावित करते हैं, निरन्तर ध्यान दिये जाने की माँग करता है, जैसे कि निर्णय अथवा कार्य के लिए उत्तरदायी व्यक्तियो की सख्या, किस्म तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध, कार्य का प्रवाह, कार्य का भार, कार्यविधियो का सरलीकरण तथा वैज्ञानिकीकरण, समय व श्रम बचाने वाली तकनीके (Techniques) तथा सगठन आदि ।

1 P 35
2 प्रथम पचवर्षीय योजना, पृष्ठ १२२–१२३
3 Outline Programme and Circulars etc issued during 1954-55, pp c 1-2

(४) केन्द्र सरकार जैसे विशाल तथा विविध संगठन में, इस दिशा में मुख्य प्रयत्न संगठन के सभी अंगों का ही करना होगा। इष्टतम कार्य-कुशलता (Optimum efficiency) तब तक नहीं लाई जा सकती अथवा कायम नहीं रखी जा सकती जब तक कि प्रत्येक मन्त्रालय (Ministry), विभाग (Department) तथा चालित अभिकरण (Operating agency) अपनी निजी 'संगठन तथा प्रणाली की इकाई (O and M Unit) की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त रुचि तथा आन्तरिक क्षमता का निर्माण कर ले। 'केन्द्रीय संगठन तथा प्रणाली संभाग' का मुख्य काम तो यह होगा कि वह उन्हें नेतृत्व प्रदान करे, आगे बढ़ाय और सरकारी प्रयत्न द्वारा, ओ० तथा एम० कार्य में सूचना, अनुभव तथा क्षमता के एक सामान्य कोष का निर्माण करे।

(५) अतः प्रारम्भ में, प्रत्येक मन्त्रालय तथा विभाग से यह कहा जाएगा कि यह अपने निजी 'स्थापना व ओ० तथा एम० कार्य० (Establishment and O and M Work) का भार सभालने के लिए एक अधिकारी नियुक्त करे (जो कि अपन उपसचिव के स्तर का होना चाहिए)। ये अधिकारी परस्पर एक दूसरे के और संगठन तथा प्रणाली संभाग' के निर्देशक (Director) के निकट सम्पर्क में रखे जायेंगे। साथ ही साथ एक अध्ययन मण्डली (Study group) तथा प्रगतिशील एवं प्रायोजनाबद्ध क्रियाओं अथवा कार्यवाहियों को सम्पन्न करने के लिए एक कार्य साधक दल का निर्माण करेंगे। प्रत्येक क्रिया के निश्चित तथा सीमित उद्देश्य होंगे। इस प्रकार की जाने वाली क्रियाओं अथवा कार्यवाहियों की सम्पूर्ण शृंखला 'ओ० तथा एम० कार्य' में केवल प्रशिक्षण ही प्रदान नहीं करेगी अपितु उससे कार्य-कुशलता लाने की दिशा में ठोस प्रगति भी होगी।

(६) *प्रथम कार्यवाही के रूप में प्रत्येक 'ओ० तथा एम० अधिकारी' से कहा* जायगा कि वह अपने निजी मन्त्रालय/विभाग में अनुभाग (Section) छाँट ले और कार्य-सम्पादन की गति तथा कोटि (Quality) में दोषों की छानबीन करने के लिये उसका पूर्ण रूप से निरीक्षण करे। फिर प्रत्येक अधिकारी अपने-अपने निरीक्षण सम्बन्धी विचारों का विवरण सम्पूर्ण मण्डली के पास भेजेगा। इस प्रकार सूचनाओं के आदान-प्रदान के फलस्वरूप पहले निरीक्षण में निगाह में चूक जाने वाले दोष भी अच्छी प्रकार प्रकाश में आ जायेंगे।

(७) यह हो सकता है कि कार्य-सम्पादन तथा उसकी गति में पाये जाने वाले अनेक दोष प्रचलित संगठन तथा कार्यविधियों (Procedures) की कमियों के कारण न हों वरन् केवल सम्बन्धित कर्मचारियों की इस असफलता के कारण हों कि उन्होंने कार्य उस प्रकार नहीं किया जिस प्रकार कि वह होना चाहिए था। ओ० तथा एम० अधिकारी प्रचलित संगठन तथा कार्यविधि में कोई नाटकीय परिवर्तन किये बिना सर्वप्रथम कार्य-सम्पादन की गति में सुधार करने के लिये उपाय तथा साधनों के सुझाव देंगे। इन सुझावों पर मण्डली (Group) द्वारा भी विचार विमर्श

किया जायेगा। फिर जो सुझाव 'सगठन तथा प्रणाली सभाग' (O and M Division) द्वारा अनुमोदित कर दिये जायेंगे उन्हे उन अनुभागो (Sections) मे, जिनमे कि सर्वप्रथम दोष पाये गये थे, मार्गदर्शक प्रायोजनाओ (Pilot projects) के रूप मे लागू कर दिया जायेगा। बाद मे, उनके परिणामो पर फिर विचार किया जायेगा और फलीभूत सिद्ध होने वाले सुझावो को वैसे ही दोषो से युक्त अन्य अनुभागो तथा शाखाओ मे लागू कर दिया जायेगा।

(८) इस कार्यवाही के बीच प्रत्येक 'ओ० तथा एम० अधिकारी' (O and M Officer) आने तथा जाने वाली अन्तर्विभागीय निर्देशो अथवा हवालो (References) की गणना तथा सूक्ष्म-परीक्षण करेगा। इससे सभी सम्बन्धित अधिकारियो को उन देरियो का ज्ञान होगा जोकि वर्तमान मे आवश्यकता से अधिक तथा व्यर्थ के हवालो के आवागमन के कारण उत्पन्न होती हैं।

(९) पृथक्-पृथक् अनुभागो (Sections) की कार्य प्रणाली के अध्ययन से, ओ० तथा एम० अधिकारी को सम्पूर्ण रूप मे मन्त्रालय/विभाग की ही कार्य-प्रणाली का आलोचनात्मक परीक्षण करने का अवसर प्राप्त होगा। इससे कार्य-सम्पादन की गति तथा किस्म मे पाये जाने वाले वे दोष प्रकट हो सकते है जोकि सगठन तथा उसकी प्रणालियो की कमियो के कारण उत्पन्न हो जाते हैं और विशेषकर, पत्र-व्यवहार की व्यवस्था, फाईलिंग की पद्धति, तथा कागजो का आवागमन आदि के कारण। इससे यह बात भी प्रकाश मे आ सकती है कि एकरूपता (Uniformity) के लाभो की प्राप्ति के प्रयत्न मे हमने उन लाभो को भी खो दिया जो कि उस समय प्राप्त होते जबकि पृथक्-पृथक् मन्त्रालयो को यह अनुमति दे दी जाती है कि वे अपने-अपने सगठन तथा कार्यविधियो मे अपने निजी कार्यों तथा आवश्यकताओ के अनुरूप हेर-फेर कर सकते हैं। ओ० तथा एम० अधिकारियो से यह कहा जायेगा कि वे सुधारात्मक उपायो के सुझाव दें। बाद मे फिर मण्डली (Group) तथा ओ० तथा एम० सभाग द्वारा इन पर विचार-विमर्श किया जायेगा और उपयुक्त पाये जाने वाले मार्गदर्शक प्रयोगो को व्यवस्थित कर लिया जायेगा।

(१०) सरकार के सगठन तथा कार्यविधि (Organisation and Prcedure) को सम्पूर्ण रूप मे प्रभावित करने वाले बडे-बडे मसले, जैसे कि उत्तरदायित्व और सत्ता का विस्तार किये बिना समन्वय कायम करना, अन्तर्विभागीय विवादो का निबटारा, और प्रत्येक मन्त्रालय के अन्तर्गत वित्त (Finance), कार्मिक-वर्ग (Personnel) तथा पूर्ति (Supply) के मामलो मे आन्तरिक क्षमता तथा सत्ता वृद्धि करना आदि, केन्द्रीय ओ० तथा एम० सभाग (Central O and M Division) द्वारा साथ ही साथ अपने हाथ मे लिये जायेंगे।

(११) प्रत्येक स्तर पर ओ० तथा एम० अधिकारियो का सगठन तथा प्रणाली सभाग (O and M Division) के निर्देशक तथा स्टॉफ का पूर्ण सहयोग तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा और उनको अपने साथियो के साथ टिप्पणियो (Notes) का मिलान

करने के अनेक अवसर भी प्राप्त होंगे। इसके साथ ही साथ, उन्हें अपने निजी सचिवो (Secretaries) के पूर्ण सहयोग तथा विश्वास (Confidence) की भी आवश्यकता होगी। *अधिक कार्य-कुशलता प्राप्त करने का आन्दोलन केवल तभी सफल हो सकता है जबकि उसका सचालन सयुक्त एव सहकारितापूर्ण प्रयत्नो द्वारा किया* जायेगा और सभी मन्त्रालयो (Ministries) मे सभी पदक्रम के स्टॉफ को सुभाव देने के लिए प्रोत्साहन दिया जायेगा तथा उनको पर्याप्त महत्त्व भी प्रदान किया जायगा। जो अधिकारी विशिष्ट योग्यता का प्रदर्शन करेंगे उन्हें चुन लिया जायेगा और उनको ओ० तथा एम० कार्य मे और अधिक प्रशिक्षण देने के अवसर प्रदान किये जायेंगे जिससे कि इस क्षेत्र मे ज्ञान तथा अनुभव के भण्डार का निर्माण हो सके।

मन्त्रिपरिषद् सचिवालय (Cabinet Secretariat) में मार्च १९५४ मे केन्द्रीय सगठन तथा प्रणाली सभाग की स्थापना की गई थी, किन्तु प्रत्येक मन्त्रालय विभाग से यह आशा की गई थी, कि वह स्वय ही 'सगठन तथा प्रणाली कार्य' (O and M Work) मे आन्तरिक क्षमता का विकास करे। केन्द्रीय सगठन तथा प्रणाली सभाग का कार्य तो "इस दिशा मे नेतृत्व प्रदान करना, समन्वय कायम करना तथा ज्ञान एव अनुभव के एक सामान्य कोष का निर्माण करना था।"

'भारत मे 'संगठन तथा प्रणाली' संगठन'
(Organisation of O & M in India) :

सगठन तथा प्रणाली (ओ० तथा एम०) का एक निर्देशक (Director) होता है जो कि *भारत सरकार के स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) तथा* स्वराष्ट्र मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs) मे सयुक्त सचिव (Joint Secretary) के रूप मे भी कार्य करता है। निर्देशक की सहायता के लिए एक उप-निर्देशक (Deputy Director) तथा एक अन्य अधिकारी होता है जिसे "निर्देशक का सहायक" (Assistant to the Director) कहा जाता है। निर्देशक मन्त्रालयो के अनौपचारिक (Informal) दौरे करता है और उनमे अपनाई जाने वाली कार्य-विधि का अध्ययन करता है। वह छोटे-मोटे मामलो के सम्बन्ध मे तो मौके पर (On the spot) ही परामर्श दे *सकता है। सगठन तथा प्रणाली कार्य (O and M* Work) विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागो (Departments) मे स्थापित की गई सगठन तथा प्रणाली इकाइयो' (कोष्ठो) (O and M Units cells) द्वारा सचालित किया जाता है। 'सगठन तथा प्रणाली इकाई' उप-सचिव (Deputy Secretary) के पदक्रम के एक अधिकारी के कार्यभार के अन्तर्गत अपना काम करती है। यह अधिकारी अपने अन्य कर्तव्यो के साथ ही साथ ओ० तथा एम० अधिकारी के रूप मे भी कार्य करता है। सन् १९५७-५८ के अन्त तक ओ० तथा एम० कोष्ठो (O and M Cells) की सख्या बढकर ६० तक पहुँच गई थी। सन् १९५७ मे कुछ ऐसी विशिष्ट समस्याओ की जाच पडताल करने के लिए, जिनकी पेचीदगियो के कारण

उनके विस्तृत परीक्षण की आवश्यकता थी, एक विशेष कार्याधिकारी (Officer on special duty) की नियुक्ति की गई थी। सगठन तथा प्रणाली सभाग का निर्देशक समय-समय पर विभिन्न मन्त्रालयो अथवा विभागो के ओ० तथा एम० अधिकारियों की सयुक्त बैठको (Meetings) का आयोजन करके उनके साथ विचारो तथा अनुभवो का आदान-प्रदान करता है। ओ० तथा एम० सभाग का उपनिर्देशक विभिन्न मन्त्रालयो अथवा विभागो के अनौपचारिक दौरे करता है तथा इस बात का पता लगाने के लिए, कि निर्धारित कार्यविधियो का कहाँ तक पालन किया जा रहा है, जहाँ-तहाँ आकस्मिक देखभाल व जाच-पडताल करता है और ओ० तथा एम० कार्य से सम्बन्धित अनेक समस्याओ के बारे मे परामर्श देता है।

सगठन तथा प्रणाली सभाग ने सन १९५४-५५ के अपने प्रतिवेदन (Report) मे अपने कार्यों की योजना की रूपरेखा बनाई। इसके उद्देश्य ये हैं

(१) सभी सम्बन्धित विभागो, कार्यालयो तथा मन्त्रालयो को उनमे पाई जाने वाली अकुशलताओ तथा उनके सुधार की आवश्यकता एव क्षेत्र के बारे मे सचेत रखना।

(२) काम को निबटाने से सम्बन्धित तथ्यो (Facts) का पता लगाना तथा यह देखना है कि वास्तव मे गलती क्या है और कहाँ है, काम मे देरी होने के कारणो की छानबीन करना और यह देखना कि वे कौन से तत्व हैं जो कि काम मे कुशलता व दक्षता लाने मे बाधक बनते है।

(३) सुधार के लिए समुचित उपाय बताना तथा उन्हे क्रियान्वित करना।

ओ० तथा एम० द्वारा भारत सरकार के कार्यालयो के कार्यों की प्रणालियो का अध्ययन किये जाने से यह प्रकट हुआ कि भारतीय प्रशासन मे वास्तविक दोष सगठन के कारण नहीं है बल्कि प्रचलित रीतियो के अनुसार समुचित रूप से काम करने मे असफल रहने के कारण है। इसके प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन (Report) मे कहा गया कि "सम्पूर्ण रूप मे, असफलता प्रचलित सगठन तथा कार्यविधियो के कारण इतनी नही है बल्कि प्रचलित व्यवस्था के अनुसार जिस प्रकार कार्य होना चाहिये उस प्रकार से कार्य करने मे सभी के सफल न हो सकने के कारण है।" यह निष्कर्ष किसी एक मन्त्रालय का सम्पूर्ण रूप मे परीक्षण करने के उपरान्त नहीं निकाला गया है बल्कि पृथक्-पृथक् प्रत्येक अनुभाग (Section) के उस निरीक्षण द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है जो कि यह देखने के लिए किया गया था कि प्रचलित कार्यविधि (Existing procedure) का बुद्धिमत्ता तथा परिश्रम के साथ अनुसरण किया जा रहा है या नहीं और कार्य की गति तथा त्वरण मे पाये जाने वाले दोषो का मूल स्रोत कहाँ है।"[1]

---

१ प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन, १९५४-५५, पृष्ठ २

भो० तथा एम० के अध्ययनों में द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण दोष प्रकाश में आये हैं —

(१) निर्धारित कार्यविधि तथा अनुदेशों (Instructions) का पालन न होना।

(२) नियतकालीन निरीक्षणों का तथा उसके परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण नियन्त्रण का अभाव।

(३) टाइप करने में तथा केन्द्रीय रजिस्ट्रियों के प्रेषण में देरियाँ तथा पिछड़ा हुआ काम (Arrears)।

(४) मन्त्रालयों तथा सलग्न कार्यालयों (Attached offices) में टिप्पणी लेखन (Noting) की पुनरावृत्ति तथा कार्यालयों में देरियाँ (Delays)।

(५) समाप्त किये जाने योग्य अन्तर्विभागीय निर्देश अथवा हवाले।

(६) समय-सूचियों (Time-schedule) का पालन न होना, यहाँ तक कि बजट अनुमानों जैसे मामलों में भी।

(७) लेखा कार्यालयों (Accountant offices) में देरियाँ।

(८) चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों द्वारा कागजों के ले जाने में देरियाँ।

(९) चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के वेतन क्रम का परिपालन न होना।

(१०) आवश्यक सुविधाओं, समुचित स्थान तथा उपयुक्त कार्य की दशाओं का अभाव।

(११) टाइप राइटरों, स्टेशनरी और अन्य सामग्री का अभाव।

ओ० तथा एम० इन कमियों की ओर सम्बन्धित मन्त्रालयों अथवा विभागों का ध्यान दिलाता है और वे उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

विशिष्ट पुनर्गठन इकाई
(Special Re-organisation Unit) :

सन् १९५२ में एक 'विशिष्ट पुनर्गठन इकाई' की स्थापना की गई थी जिसका कार्य था मन्त्रालयों की कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकताओं पर पुनर्विचार करना तथा कार्यकुशलता व मितव्ययता लाने के लिए उनमें आवश्यक परिवर्तनों की सिफारिश करना। जाँच पड़ताल के लिए कार्य के अध्ययन की तकनीक अपनाई गई है जिसमें निम्न बातें सम्मिलित हैं—

(क) संगठनात्मक ढाँचे का, सत्ता के हस्तान्तरण व नियन्त्रण के क्षेत्र आदि का अध्ययन।

(ख) कार्यवाहियों का विश्लेषण (Analysis)।

(ग) जहाँ भी सम्भव हो, काम के सरलीकरण (Simplification) तथा प्रमाणीकरण (Standardization) का कार्यक्रम।

(घ) कार्य-सम्पादन के स्तरो का विकास और उसी के अनुसार कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकताओ मे वृद्धि। यह इकाई अपना एक अनुसधान विभाग भी रखती है और ओ० तथा एम० सभाग के घनिष्ठ सहयोग से काय करती है।

निष्कर्ष
(Conclusion) :

भारत मे ओ० तथा एम० अभी अपने शैशव मे है अत उसकी प्रभावपूर्णता के विषय म कुछ भी कहना अभी जल्दबाजी करना है। कुछ थोडे से वर्षो मे किसी भी प्रशासकीय यन्त्र का पूर्णत शुद्धीकरण तथा पुनर्गठन नही हो सकता। किन्तु एक तथ्य की ओर अवश्य सकेत किया जा सकता है कि भारत मे ओ० तथा एम० अपनी अधिकाश शक्तियो, कार्य की विधियो अथवा प्रणालियो पर ही केन्द्रित करता है और सगठन की ओर कम ध्यान देता है। इसको समस्या के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण अपनाना चाहिये और अपने आपको केवल कार्य की प्रणालियो (Methods of work) से ही नही बल्कि प्रशासकीय सगठन से भी सम्बन्धित रखना चाहिये। श्री एस० बी० बापत ने ओ० तथा एम० के कार्यों की इन शब्दो मे व्याख्या की है। "सामान्य भाषा मे इसका उद्देश्य है बुद्धिमत्तापूर्ण तथा आलोचनात्मक दृष्टि से केवल इस बात की ओर ही ध्यान नहीं देना कि क्या किया गया है बल्कि इस पर भी कि यह कैसे किया गया है और समय, श्रम व द्रव्य के रूप मे किस कीमत मे किया गया है ; प्रशासन यन्त्र की रचना तथा इसके कार्य-सचालन की प्रक्रियाओ (Working processes) की ओर भी ध्यान देना, केवल उसके परिणाम की ओर ही नही।"[1]

सबसे अधिक महत्वपूर्ण सगठनात्मक मामला, जिस पर भारत मे तत्काल ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, सत्ता के सौंपने की समस्या का है। भारतीय *प्रशासन ऊपर की ओर भारी है। कोई भी अधिकारी अपने अधीनस्थो (Subordinates)* को सत्ता सौंपना नही चाहता। अत यह समझना बडा कठिन है कि कोई भी प्रशासन विशेषकर भारतीय प्रशासन, सत्ता तथा उत्तरदायित्व के समुचित हस्तान्तरण अथवा प्रत्यायोजन (Delegation) के बिना कैसे कुशलतापूर्वक, कार्य कर सकता है। सगठन तथा प्रणाली सभाग को अपना अधिक से अधिक ध्यान सत्ता के सौंपने तथा लालफीताशाही के दोषो की ओर देना चाहिए जो कि भारत मे सबसे बडी सगठन तथा कार्यविधि सम्बन्धी बुराइया हैं।[2]

---

1 *S B Bapat First Director of the Central O & M Division, in Indian* Journal of *Public Administration* Delhi Vol 1, No 1 Jan—March 1955, page, 61

2 Also refer to S B Bapat 'O & M in the Government of India.' Indian Journal of Public Administration New Delhi Jan—March 1955, Annual Reports of O & M *Division*, *S P Aiyar O & M* in the Government of India, Indian Journal of Political Science Oct Dec, 1959, pp 358-70, A Avasthi 'A New Perspective for 'O & M' *The Indian Journal of Public Administration* Vol V, N 4 Oct—Dec 1959 pp 427-441

१३

भारत में नियोजन तथा योजना आयोग

(Planning and Planning Commission in India)

आज का युग नियोजन का युग है। नियोजन मनुष्य की सभी गतिविधियों, व्यक्तिगत व सामाजिक, की एक सर्वव्यापी विशेषता है। प्रश्न उठता है नियोजन क्या है ? साधारण भाषा में नियोजन का अर्थ है उचित रीति से, सोच विचार कर पग उठाना। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है यह तय करना कि क्या कार्य किया जाये और कैसे किया जाये। फेयल के अनुसार नियोजन का अर्थ है 'पूर्व दृष्टि' (Prevision), इस से अभिप्राय आगे की ओर देखना है जिससे यह स्पष्ट पता चल जाय कि क्या-क्या काम किया जाना है। प्रत्येक वह क्रिया नियोजित क्रिया (Planned activity) कहलाती है जो दूरदर्शिता, विचार-विमर्श तथा उद्देश्यों एवं उनकी प्राप्ति हेतु प्रयुक्त होने वाले साधनों की स्पष्टता पर आधारित हो। नियोजन से आशय किसी भी कार्य को करने से पूर्व निर्णय पर पहुँचना है, बजाय इसके कि काम हो चुकने के बाद पुनर्विचार तथा भूल-सुधार किया जाये।[1] किसी भी सामूहिक क्रिया (Group action) में नियोजन का अर्थ है व्यक्तिगत तथा संयुक्त प्रयत्नों का इस प्रकार बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से निर्देशन तथा नियमन (Regulation) कि जिससे प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण प्रतिफल पहले की अपेक्षा अधिक तथा श्रेष्ठ हो। नियोजन भावी कार्यों के लिये एक सुदृढ़ आधार बनाने की प्रक्रिया है। यह इस बात का एक सुव्यवस्थित अध्ययन है कि वर्तमान घटनाओं का भविष्य के लिये क्या महत्व है, भविष्य में किन-किन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी तथा वर्तमान समय में भविष्य की समस्याओं को सरल बनाने के लिये क्या-क्या प्रबन्ध किये जा सकते हैं। नियोजन में वर्तमान को दृष्टिगत रखते हुए भविष्य के विषय में सोचना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में नियोजन कदम उठाने के लिये आवश्यक तैयारी का नाम है।[2]

---

1 According to Urwick "Planning is fundamentally an intellectual process, a mental predisposition to do things in an orderly way, to think before acting, and to act in the light of facts rather than of guesses It is the antithesis of the gambling, the speculative tendency" L. Urwick, *The Elements of Administration*, Harper and Brothers, N Y, 1943, Page 33

2 M John D Millett observes "Planning is the process of determining the objectives of administrative effort and of devising the means calculated to achieve them , planning is preparation for action The word 'planning, in

(counted)

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जो नियोजन कार्य मे सलग्न है, बहुत से मोटे-मोटे काम करने पडते हैं। नियोजन मे प्रथम पग है लक्ष्यो व उद्देश्यो का निर्धारण। किसी अज्ञात वस्तु का नियोजन नहीं किया जा सकता। यदि उद्देश्य या ध्येय ही स्पष्ट नही है तो नियोजन किस बात का? इसलिये प्रथम चरण मे तो यह तय करना है कि किया क्या जाना है, अन्तिम उद्देश्य तथा लक्ष्य क्या है? जब यह निश्चित हो जाये तो दूसरा चरण आता है। वह यह तय करना है कि निर्धारित लक्ष्यो तथा उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये साधन कौन से प्रयुक्त किये जायें, कार्य किस प्रकार किया जाये। इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिये उपलब्ध साधनो तथा स्रोतो का मूल्यांकन करना पडता है। वित्त, मानवीय शक्ति (Man power) तथा निपुणता (Skill) के रूप मे उपलब्ध साधनो को दृष्टिगत रखकर काम को कर्मचारी-वर्ग मे बाटना होता है। वाछित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये कार्यविधियां तथा प्रक्रियाएं करनी पडती हैं।' कर्मचारियो के कर्त्तव्यो तथा दायित्वो की स्पष्ट परिभाषा करनी पडती है। नियोजन की प्रक्रिया लक्ष्यो तथा साधनो के निर्धारण के साथ ही समाप्त नही हो जाती। कार्य की प्रगति की जाच तथा उसका मूल्याकन करना भी आवश्यक है, यह देखने के लिये कि नियोजन से वाछित फल प्राप्त भी हो रहे हैं कि नही। अत प्राप्तियो को मापन के लिये माप करने वाले साधनो (Yard-sticks) का निर्माण तथा विकास करना होता है। इस प्रकार की मापन-क्रिया (Evoluation) नियोजन के दोषो, यदि कोई हैं, की ओर ध्यान आकर्षित करती है तथा गुणात्मक व मात्रात्मक (Qualitative and quantitative) श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिये सबको प्रेरित करती है। इसके अतिरिक्त नियोजन सुपरिवर्तनशील, प्रगतिशील तथा परिस्थितियो के अनुकूल ढलने योग्य होना चाहिये। अन्यथा नियोजन का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा। मूल्याकन या मापन-क्रिया भावी सशोधनो तथा परिवर्तनो की दिशा निर्धारित करने के लिये आवश्यक है। नियोजन मे नये नये अनुभवो के अनुसार परिवर्तन के लिये स्थान होना चाहिये। इसलिये मूल्याकन नियोजन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है। सेक्लर हडसन (Seckler Hudson) ने सुव्यवस्थित नियोजन के निम्न छ चरण बताये हैं—

(१) यथासम्भव समस्याओ की सोच-विचार कर व्याख्या तथा उनका क्षेत्र निर्धारण;

---

and of itself is 'neutral', it implies no particular set of goals and no one special type of procedure, dictatorial or otherwise Planning is simply the endeavour to apply foresight to human activity, planning anticipates desired results and prepares the steps necessary for their realization." *Management in the Public Service* page 55, also refer to his another volume, *The Process and Organization of Government Planning*, N. Y., Columbia University Press, 1947. F. W Taylor in *The Principles of Scientific Management* (N Y. Harper, 1916) refers to the importance of Planning in Management, page 26

युग मे सयुक्त राष्ट्र सघ (U N O) की बहुत सी सस्थायें तथा विशिष्ट अभिकरण (Agencies) अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन मे सलग्न हैं। नियोजन का दूसरा महत्वपूर्ण किन्तु विवादग्रस्त प्रकार आर्थिक नियोजन है। आर्थिक विकास के नियोजन से अभिप्राय है राज्य द्वारा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का निर्देशन तथा नियमन (Regulation)। उत्पादन की वृद्धि तथा उत्तम वितरण व्यवस्था की आवश्यकताओ को देखते हुये राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन आवश्यक हो गया है क्योकि अनेक क्षेत्रो मे द्रुत-गति से आर्थिक विकास तथा धन के श्रेष्ठतर वितरण के लिये राज्य का हस्तक्षेप अब उचित सिद्ध हो गया है। बहुत से राष्ट्र अपने सीमित तथा कठिनता से उपलब्ध होने वाले स्रोतो का अधिकाधिक लाभ उठाने के लिये अब आर्थिक नियोजन का आश्रय ले रहे हैं। एक तीसरे किस्म का नियोजन नगर नियोजन (City planning) कहलाता है। यह आजकल सर्वत्र लोकप्रिय हो रहा है। तीव्र विस्तार तथा बढती हुई जनसख्या को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि नगरो का सुरुचिपूर्ण तथा स्वस्थ नियोजन हो। इस प्रकार के नियोजन का उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय तथा मनोरजन की आवश्यकताओ के अनुकूल नगरो मे सडको, नालियो, चिकित्सालयो, दफ्तरो, मकानो तथा अन्य सार्वजनिक भवनो का निर्माण करना है।

नियोजन का चौथा प्रकार प्रशासनिक या प्रशासकीय नियोजन है। यह वह साधन है जिसका प्रयोग प्रशासक-वर्ग भावी कार्यक्रमो के निर्माण के लिए पिछले अनुभवो को दृष्टिगत रखते हुए करता है। प्रत्येक सरकारी सगठन मे क्रियाओ का समुचित रूप से नियोजन किया जाता है तथा सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए कार्यविधियो तथा कार्यपद्धतियो का निर्धारण किया जाता है। कोई प्रशासन उस समय तक कार्यकुशल नहीं हो सकता जब तक कि वह अपनी क्रियाओ एव गतिविधियो का नियोजन नही करता। प्रशासकीय नियोजन अनुसधान तथा तथ्यो की खोज पर आधारित होता है। तथ्यो एव आकडो के सग्रह के पश्चात् कार्यों की योजना तैयार की जाती है तथा उद्देश्यो की पूर्ति के लिये सर्वश्रेष्ठ विधियाँ अपनाई जाती हैं। रोबर्ट मोसेस (Robert Moses) के अनुसार, "किसी भी प्रशासक की परीक्षा इस बात से होती है कि वह अपने कार्यों के सभी परिणामो पर विचार करता है या नही।" नियोजन सभी परिणामो को स्पष्ट कर देता है। निर्धारित उद्देश्यो को दृष्टिगत रखते हुए उन परिणामो का मूल्याकन किया जा सकता है।

लोक प्रशासन मे 'नीति नियोजन' तथा कार्यक्रम नियोजन' मे भेद किया जाता है। नीति नियोजन (Policy Planning) मे प्रशासनिक गतिविधियो के लिए मोटे रूप मे कुछ सामान्य उद्देश्य तथा लक्ष्य निर्धारित कर दिये जाते है। लोक प्रशासन की गतिविधियो की विषय वस्तु तथा उनका क्षेत्र नीति नियोजन मे निर्धारित किया जाता है। नीति नियोजन का कार्य व्यवस्थापिका तथा मुख्य कार्यपालिका का होता है। निस्सन्देह प्रशासक-वर्ग की नीति निर्धारण मे हिस्सा लेता है किन्तु नीति की मोटी-मोटी रूपरेखा राजनीतिज्ञो द्वारा व्यवस्थापिका या कार्यपालिका मे निर्धारित

होती है। दूसरी ओर कार्यक्रम नियोजन का अर्थ है निर्धारित नीति के आधार पर क्रियाओं को तय करना। दूसरे शब्दों में कार्यक्रम का अर्थ इस प्रश्न पर ध्यान देना है सार्वजनिक नीति में निहित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कौन-कौन से विशिष्ट कदम उठाये जाने चाहिये ?[1] लोक नीति के श्रेष्ठतम क्रियान्वन के लिए प्रशासक-वर्ग को आवश्यक कदमों के विषय में सोचना तथा उनका नियोजन करना पड़ता है।

भारत में आर्थिक नियोजन
(Economic Planning in India)

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय सरकार का प्रथम कार्य देश से निर्धनता तथा विषमता की स्थिति दूर करना एवं उन करोड़ों व्यक्तियों का जीवन-स्तर सुधारने के लिए प्रयास करना रहा है जो असहाय जीवन व्यतीत करने के अभ्यस्त हो चुके थे। निर्धनता, बेरोजगारी तथा भुखमरी की समस्याओं का सामना करने के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया गया है। इससे पूर्व विश्व ने *आर्थिक नियोजन को सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) देशों की विशेषता के रूप में ही देखा था। साधारणतया लोगों का यह विश्वास था*—और यह दुर्भाग्य का विषय था— कि आर्थिक नियोजन में जनता के जीवन का सैनीकरण प्रशासनिक केन्द्रीयकरण तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता का अभाव अनिवार्य रूप से निहित है। यह धारणा बन गई थी कि जोर-दबाव तथा बलपूर्वक नियन्त्रण के बिना आर्थिक नियोजन किया ही नहीं जा सकता। लोकतन्त्र, इस धारणा के समर्थकों के अनुसार, इस कार्य के लिए अनुपयुक्त है क्योंकि यह सहमति पर आधारित होता है तथा इसमें तर्क-वितर्क एवं प्रोत्साहन का प्रयोग किया जाता है।

भारत ही विश्व का एक ऐसा महत्वपूर्ण देश है जिसने सर्वप्रथम लोकतन्त्र तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता युक्त नियोजन के आधार पर अपनी अर्थ-व्यवस्था के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया है। यह एक ऐसी चुनौती तथा ऐसा प्रयोग है कि इसकी सफलता-असफलता पर न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण एशिया तथा अफ्रीका में लोकतन्त्र का भविष्य टिका हुआ है। भारत इस समय लोकतन्त्रीय नियोजन में संलग्न है तथा इसके परिणामों पर ही भारत के आर्थिक सुधार तथा सामाजिक एवं भौतिक पुनर्निर्माण के लिए किये जा रहे प्रयासों की सफलता-असफलता निर्भर है। भारतीय राजनीति के एक विदेशी पर्यवेक्षक के अनुसार. "भारत सरकार की आर्थिक योजनाओं की सफलता-असफलता केवल ४० करोड़ व्यक्तियों के लिए ही जीवन-मरण का प्रश्न नहीं है बल्कि यह बात अर्ध-विकसित संसार के प्रत्येक भाग में लोगों के दिमागों में उत्पन्न होने वाले इस प्रश्न के निर्णायक उत्तर के रूप में व्यापक स्तर पर स्वीकार की जायेगी कि क्या तीव्र आर्थिक विकास के एक साधन के रूप में साम्यवाद का कोई व्यावहारिक विकल्प (Alternative) है ? भारत इस समय लोकतन्त्रीय

1 For its distinction refer to John D Millett, *op cit*, 56-59

नियोजन के एक ऐसे प्रयोग में सलग्न है जिसका व्यापक भावी महत्व है। अतः जो यह विश्वास करते हैं या भविष्य में जिनके ऐसा विश्वास करने की सम्भावना है कि साम्यवाद ही प्रगति का एकमात्र साधन नहीं है या जो ये सोचते है कि तीव्र आर्थिक विकास के लिए साम्यवाद जो कीमत माँगता है वह बहुत अधिक है वे सब भारत की पचवर्षीय योजनाओं की ओर उतनी ही आशाभरी दृष्टियों से देख रहे हैं जितनी आशा से उनमें से कुछ व्यक्ति युद्धोत्तरकाल की रूसी योजनाओं की ओर देखा करते थे।"[1]

भारत में लोकतन्त्र का भविष्य तभी उज्जवल होगा जब यहाँ से निर्धनता, बीमारी, अज्ञान तथा निरक्षरता जैसे काले धब्बे दूर होंगे। लोकतन्त्र को भारत में स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा भ्रातृत्व के आधार पर एक नये समाज का निर्माण करना है।

भारत में आर्थिक नियोजन के निम्न उद्देश्य है—

"मूल उद्देश्य लोकतन्त्रीय तथा कल्याणकारी कार्यविधियों द्वारा तीव्र गति से प्रगति करना है।" उपरोक्त मूल उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर निम्न मुख्य उद्देश्य निर्धारित किये गये—

(१) राष्ट्रीय आय में इतनी वृद्धि करना जिससे देश का जीवन-स्तर ऊँचा उठ सके।

(२) मूल तथा भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल देते हुए देश का तीव्र गति से औद्योगीकरण,

(३) रोजगार सम्बन्धी सुविधाओं एव सेवाओं का विस्तार, तथा

(४) आय और धन की विषमताओं का निराकरण तथा आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण।

ये सब उद्देश्य परस्पर सम्बद्ध है तथा इनकी प्राप्ति एक सन्तुलित ढग से ही की जा सकती है।

रहन-सहन का निम्न या स्थिर स्तर, बेरोजगारी तथा कम रोजगारी तथा कुछ सीमा तक औसत एव अधिकतम आमदनियों में अन्तर, ये सब एक कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था के आधारभूत अल्प-विकास के लक्षण है। तीव्र औद्योगीकरण तथा अर्थ-व्यवस्था को विविधपूर्ण बनाना (Diversification) ऐसी परिस्थितियों में विकास के प्रमुख ध्येय होने चाहियें।[2] तृतीय पचवर्षीय योजना इस तर्क पर बल देती है। इसके मुख्य उद्देश्य है (अ) नियोजित विकास, (ब) समाजवाद की दिशा में प्रगति,

1 A H Hanson, *Public Enterprise and Economic Development*, London, 1959, page 147.

2 Approach to the Second Five Year Plan Objects and Techniques, Second Five Year Plan, Government of India—Planning Commission, 1959, page 11.

(स) सबको समान अवसर प्रदान करने की व्यवस्था, (द) आर्थिक शक्ति का समान वितरण, (ढ) आमदनियो मे तीव्र विषमताओ का उन्मूलन तथा, (य) आर्थिक एव सामाजिक एकीकरण। योजना मे कहा गया है "इस प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के समय से ही भारत के आर्थिक विकास का मार्ग दो प्रमुख उद्देश्यो ने निर्देशित किया है—लोकतन्त्रीय साधनो द्वारा तीव्र गति से विस्तृत होने वाली एव वैज्ञानिक दृष्टि से प्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था का निर्माण तथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना जो सबके हित के लिए समान अवसरो के प्रबन्ध एव न्याय पर आधारित हो।"[1]

भारत मे आर्थिक नियोजन के उद्देश्यो के अध्ययन के पश्चात् अब योजना निर्माण, उसके क्रियान्वन तथा मूल्याकन की प्रक्रियाओ का विवेचन लाभप्रद होगा।

योजना निर्माण
(Plan Formulation)

भारत मे योजना आयोग
(Planning Commission in India)

१५ मार्च, १६५० को केन्द्रीय मन्त्री परिषद के एक प्रस्ताव मे कहा गया था "आवश्यक आर्थिक तत्वो के निष्पक्ष विश्लेषण तथा स्रोतो की सावधानीपूर्ण जाच पर आधारित व्यापक नियोजन अब अनिवार्य हो गया है।" इसी प्रस्ताव के अन्तर्गत भारत मे एक नियोजन आयोग की स्थापना की गई जिसे भारत के "स्रोतो का सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपयोग करने के लिए" योजना निर्माण तथा क्रियान्वन की देख रेख का दायित्व सौंपा गया। १९४६ मे नियोगी समिति ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि "एक ऐसे एकीकृत, शक्तिशाली तथा मन्त्रि परिषद के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी सगठन की केन्द्र मे स्थापना आवश्यक है जो भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर दत्तचित्त होकर स्थायी रूप से कार्य कर सके।"

आयोग ने २८ मार्च १९५० से कार्य करना प्रारम्भ किया। सौंपे गये दायित्व के अन्तर्गत भारत सरकार के योजना आयोग को निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करने हैं

(१) देश के भौतिक, पूजीगत तथा मानवीय (तकनीकी दृष्टि से कुशल कर्मचारियों सहित) साधनो का सर्वेक्षण करना और इस बात का पता लगाना कि देश की आवश्यकताओ को देखते हुए यदि इनमे से कुछ साधन कम हैं तो उनमे कैसे वृद्धि की जा सकती है,

(२) देश के समस्त साधनो का प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपयोग करने के लिए एक योजना का निर्माण करना,

---

1 Third Five Year Plan Government of India—Planning Commission, 1961, page 4 For details refer to Chapter I, Objectives of Planned Development, pages 1—19

(३) प्राथमिकताओ (Priorities) का निश्चय करने के पश्चात योजना के सचालन चरणो (Stages) का निर्धारण करना तथा प्रत्येक चरण के कार्य की पूर्ति के लिए साधनो के उचित बटवारे का सुझाव देना ,

(४) आर्थिक विकास मे बाधक बनने वाले कारणो व तत्वो को इगित करना तथा देश की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ऐसी दशाओ का निर्धारण करना जो योजना के सफल सचालन के लिए आवश्यक हो ,

(५) एक ऐसे प्रशासनिक यन्त्र की प्रकृति का निर्धारण करना जो योजना के सभी क्षेत्रो के प्रत्येक चरण के कार्यक्रमो को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए आवश्यक हो ,

(६) योजना के प्रत्येक चरण के सचालन काल मे समय-समय पर उसकी प्रगति का मूल्याकन करना और ऐसे उपायो एव नीति सम्बन्धी सशोधनो की सिफारिश करना जो ऐसे मूल्याकन के फलस्वरूप आवश्यक प्रतीत हुए हो , तथा

(७) ऐसी अन्तरिम अथवा सहायक सिफारिशें प्रस्तुत करना जो कि प्रचलित आर्थिक परिस्थितियो, चालू नीतियो, उपायो एव विकास कार्यक्रमो की दृष्टि से उपयुक्त हो , अथवा वे ऐसी विशिष्ट समस्याओ के सूक्ष्म विवेचन की दृष्टि से उपयुक्त हो, जोकि केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारो द्वारा परामर्श के लिए उसको इस लिए सौंपी गई हो कि जिससे वे अपने कर्त्तव्यो को सुविधा के साथ पूरा कर सके ।

योजना आयोग एक प्रकार की परामर्शदात्री समिति ही है । १५ मार्च १६५० का वह प्रस्ताव जिसके अन्तर्गत योजना आयोग की स्थापना की गई थी इस सगठन को मुख्यत परामर्श सम्बन्धी कार्य ही प्रदान करता है

(अ) अपनी सिफारिशो की रचना करते समय योजना आयोग केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के मन्त्रालयो से परामर्श तथा सहयोग करेगा ,

(ब) आयोग अपनी सिफारिशें मन्त्रि परिषद् को प्रस्तुत करेगा , तथा

(स) इन सिफारिशो पर निर्णय लेना तथा उन्हे क्रियान्वित करना केन्द्रीय एव राज्य सरकारो का दायित्व होगा ।"

योजना आयोग का स्वरूप तथा मन्त्रिपरिषद् से इसका सम्बन्ध (Composition of the Commission and its Relation to the Cabinet)

योजना आयोग की रचना करते समय इस उद्देश्य को सामने रखा गया था कि आयोग तथा मन्त्रिपरिषद मे निकटतम सम्बन्ध हो । प्रधान मन्त्री आयोग के अध्यक्ष हैं तथा केबिनेट स्तर के तीन अन्य मन्त्रीगण, अर्थात् प्रतिरक्षा मन्त्री, वित्त-मन्त्री तथा नियोजन मन्त्री इसके सदस्य हैं । योजना आयोग मे चार या पाँच सदस्य

एस होते हैं जो अपना सम्पूर्ण समय इसी के कार्यों में व्यतीत करते हैं। ये पूर्णकालीन (Whole time) सदस्य कहलाते हैं। पूर्णकालीन सदस्यों को आर्थिक मामलों या प्रशासन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट ख्याति के आधार पर नियुक्त किया जाता है या तो सदस्यों के लिए कोई औपचारिक योग्यताएं निर्धारित नहीं की गई हैं। उनकी नियुक्ति करते समय विभिन्न क्षेत्रों में उनके सार्वजनिक कार्यों तथा अनुभव पर विशेष बल दिया जाता है।

आयोग के सभी सदस्य एक निकाय (Body) के रूप में कार्य करते हैं किन्तु सुविधा के लिए प्रत्येक सदस्य को एक या एक से अधिक विषयों का कर्त्ताधर्त्ता बना दिया जाता है। वह अपने विषयों में समस्याओं के अध्ययन तथा अनुसंधान को निर्देशित करता है। पूर्णकालीन सदस्यों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विषय वितरित किए गये हैं

(अ) प्राकृतिक स्रोत (सिंचाई, विद्युत शक्ति, कोयला, तेल इत्यादि), (ब) कृषि तथा सामुदायिक विकास, (स) उद्योग, रेल सेवाएं, परिवहन तथा संचार। (द) सामाजिक सेवाएं—शिक्षा स्वास्थ्य, इत्यादि।

वित्तमन्त्री योजना आयोग के आर्थिक सभाग (Economic Division) से निकटतम सम्पर्क रखता है। वित्त मन्त्रालय तथा योजना आयोग का आर्थिक परामर्शदाता (Economic Advisor) एक ही व्यक्ति होता है। योजना आयोग के कार्यों के लिए नियोजन मन्त्री संसद तथा मन्त्रिपरिषद् के प्रति उत्तरदायी होता है।

क्या मन्त्रियों को योजना का सदस्य बनाना उचित है? इस प्रश्न पर काफी विवाद हो चुका है और मतभेद तीव्र हैं। कुछ व्यक्तियों के अनुसार योजना आयोग एक पूर्णतया स्वतन्त्र संगठन होना चाहिए। इसका कार्य देश की प्रमुख आर्थिक समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना है। इसलिए इसके सदस्य ख्याति प्राप्त व्यक्ति होने चाहियें तथा उन्हें स्वतन्त्र किन्तु संयुक्त रूप से कार्य करने का अधिकार मिलना चाहिए। प्रधानमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों को आयोग का सदस्य बनाना अवांछनीय है। जैसा प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल ने कहा है, "योजना आयोग द्वारा अपने प्रमुख कार्यों की उपेक्षा का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह एक विशाल शक्ति संगठन बन गया है तथा इसके सदस्यों में भी मन्त्रियों की भाँति शक्ति व संरक्षण का प्रयोग तथा प्रदर्शन करने की एक स्वाभाविक इच्छा है। इसी कारण आयोग गतिविधियों का अनेक असम्बद्ध क्षेत्रों तक अनावश्यक विस्तार कर दिया गया है। आयोग के अपने निर्धारित मार्ग से हटकर गलत मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति को इस तथ्य से और भी सहायता मिली है कि स्वयं प्रधानमन्त्री तथा वित्तमन्त्री इसके सदस्य हैं। योजना आयोग तथा उसके निर्णयों पर इस कारण एक अस्वाभाविक किस्म की प्रतिष्ठा एवं महत्व छा गया है। इस स्थिति में केवल तभी सुधार किया जा सकता है जब कि योजना आयोग को केवल वही कार्य सौंपे जायें जो प्रारम्भ में

उसके लिए नियत किये गये थे और आयोग को इस योग्य बनाया जाये कि वह उन्हें सम्पन्न कर सके।"[1]

संसद की अनुमान समिति (Estimates Committee) भी ऐसा ही मत व्यक्त कर चुकी है : 'जहाँ नियोजन आयोग के प्रारम्भिक चरणों में प्रधानमन्त्री का इसके साथ सम्बद्ध होना आवश्यक था तथा जहाँ यह सही है कि अब भी प्रधान मन्त्री को नियोजन को सफल बनाने के लिए आयोग का मार्ग निर्देशित करना होगा वहाँ यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या प्रधानमन्त्री के लिए आयोग के साथ अपना औपचारिक सम्बन्ध बनाये रखना नितान्त अनिवार्य है ? इसी प्रकार इस प्रश्न पर भी विचार करना होगा कि केन्द्रीय सरकार के वित्तमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों का आयोग के साथ निरन्तर औपचारिक सम्बन्ध बनाये रखना कहाँ तक उचित है। आयोग के साथ मन्त्रियों के समागम का मूल्यन इस आधार पर उचित ठहराया जाता है कि इससे मन्त्रालयों के साथ निकट सम्पर्क तथा ताल-मेल बनाये रखने एवं सलाह-मशविरा करने में सुविधा रहती है। किन्तु ऐसा तो इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा भी किया जा सकता है कि जब भी आयोग की बैठक में किसी मन्त्री से सम्बन्धित विषय पर विचार होना हो तो उस मन्त्री को बैठक में उपस्थित होने का निमन्त्रण दे दिया जाये। मन्त्रि-परिषद् के साथ सामञ्जस्य तथा ताल-मेल इस प्रकार भी कायम रखा जा सकता है कि जब भी मन्त्रि-परिषद् की बैठक में आयोग से सम्बन्धित कोई मामला विचाराधीन हो तो आयोग का एक प्रतिनिधि उस बैठक में उपस्थित हो।'[2]

यह शिकायत की जाती है कि योजना आयोग के साथ मन्त्रियों के औपचारिक सम्बन्धों ने इसको एक 'सर्वोपरि मन्त्रि-परिषद्' (Super-Cabinet) बना दिया है। किन्तु मन्त्रियों का आयोग के साथ सम्बन्धित होना मन्त्रि-मण्डल तथा आयोग के मध्य समायोजना या ताल-मेल के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मन्त्रि-मण्डल योजना के क्रियान्वन के लिए उत्तरदायी है। क्रियान्वन उसी स्थिति में अच्छा हो सकता है जब मन्त्रि-मण्डल के सदस्य भी आयोग के विचार-विवेचन तथा निर्णयों में भाग लें।[3]

1 D. R. Gadgil, *Indian Planning and the Planning Commission*, Harold Laski Institute of Political Science, Ahmedabad, India, 1958, pages 27—28. Also refer to P. P. Agarwal, 'The Planning Commission', Indian Journal of Public Administration, New Delhi, October—December 1957, pages 333—345.

2 Estimates Committee, 1957—59, Twentyfirst Report (Second Lok Sabha) Planning Commission, Para 21.

3 V. T. Krishnamachari rightly observes : "Experience in the last ten years has shown that the connection of the Prime Minister and the Finance Minister with the Commission is facilitating continuous contact between the Cabinet and the Commission on important matters of policy and smooth working with the Ministries. There is also no doubt about the need for a Minister to answer questions in Parliament on planning and to assist the Prime Minister in debates on subjects relating to planning." *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, New Delhi, 1962, page 57.

जहाँ तक आयोग की प्रक्रियाओं एवं कार्यविधियों का प्रश्न है, इसके सब सदस्य एक निकाय के रूप में कार्य करते हैं। सब नीति सम्बन्धी प्रश्न सम्पूर्ण आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। सम्पूर्ण आयोग के सम्मुख प्रस्तुत होने वाले मामलों में पंचवर्षीय योजनाओं का निर्धारण तथा उनकी प्रगति, वार्षिक योजनाओं का निर्धारण, योजनाओं में संशोधन तथा अनुकूलन एवं ऐसे प्रश्न सम्मिलित हैं जिनके फलस्वरूप योजना सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन आवश्यक हो जाय। किसी केन्द्रीय-मन्त्रालय या राज्य सरकार के साथ महत्वपूर्ण मतभेद के मामले आयोग के किन्हीं दो सदस्यों में मतभेद के मामले तथा वे सब प्रश्न जो आयोग के आन्तरिक संगठन या क्रिया-प्रणालियों में सम्बन्धित हों सम्पूर्ण आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) के सदस्य योजना आयोग की बैठकों में उपस्थित रहते हैं तथा आयोग के सदस्यों को मन्त्रि परिषद् की बैठकों में अपना मत व्यक्त करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। योजना आयोग, मन्त्रालयों, मन्त्रि-परिषद् तथा मन्त्रि-परिषद् की समितियों में परस्पर अविरल सम्पर्क बना रहता है। मन्त्रि-परिषद् का सचिव ही आयोग का सचिव होता है। आयोग पूर्ण गोपनीयता बरतता है तथा मन्त्रि परिषद् के साथ मतभेद उठने की दशा में उन्हें सार्वजनिक रूप से व्यक्त नहीं करता।

योजना आयोग के तीन प्रमुख सम्भाग (Divisions) हैं —कार्यक्रम परामर्शदातागण (Programme Advisors), सामान्य सचिवालय (General Secretariat) तथा तकनीकी सचिवालय (Technical Secretarial)। इसकी तीन महत्वपूर्ण समितियां भी हैं अनुसंधान कार्यक्रम समिति (Research Programme Committee), कार्यक्रम मूल्यांकन समिति (Programme Evaluation Committee) तथा योजना उपक्रम समिति (Committee on plan projects)। कार्यक्रम परामर्शदातागण क्षेत्र अध्ययन (Field study) तथा विभिन्न गतिविधियों एवं उपक्रमों के पर्यवेक्षण तथा उनके क्रियान्वन की प्रगति के विषय में योजना आयोग को सहायता देते हैं। सामान्य सचिवालय तथा तकनीकी सचिवालय आयोग की आन्तरिक संचालन क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। अनुसंधान कार्यक्रम समिति सामाजिक तथा आर्थिक विकास की समस्याओं पर शोध-कार्य संचालित करती है। कार्य-क्रम मूल्यांकन समिति सामुदायिक विकास आन्दोलन के अन्तर्गत किये जा रहे कार्य का मूल्यांकन करती है। योजना उपक्रम समिति महत्वपूर्ण योजना उपक्रमों के कार्य की जांच करती है जिसमें अधिकतम कार्यकुशलता एवं मितव्ययता की प्राप्ति की जा सके।[1] अब यहाँ भारतीय नियोजन की निर्धारण, क्रियान्वन तथा मूल्यांकन क्रियाओं का अध्ययन करना उपयुक्त होगा।

1 For further details refer to V T Krishnamachari *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, Delhi, 1962 especially Chapters III, pages 49—68, IV, V, VI, VII, pages 69—113 The Indian Journal of public Administration July—September 1961, Vol VII No 3, Special No—Planning in India 'Planning Machinery in India', S R. Sen, pages 215—235

योजना-निर्धारण
(Plan Formulation)

योजना आयोग का मुख्य दायित्व सम्पूर्ण देश के लिए योजनाओं का निर्धारण करना है। योजनाओं के क्रियान्वन का दायित्व मुख्यत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के प्रशासकीय मन्त्रालयों पर है। सरकार द्वारा विकास कार्यों का दायित्व सम्भालने तथा नियोजन का मार्ग अपनाने के फलस्वरूप विभागों तथा मन्त्रालयों में नियोजन कोषों (Planning cells), राज्यों में नियोजन विभागों तथा परामर्शदात्री संस्थाओं एवं केन्द्र में योजना आयोग तथा इसके विभिन्न निकायों (जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है) की स्थापना हुई है। भारत में नियोजन सम्बन्धी यन्त्र उपकरण निम्न लिखित हैं केन्द्र में योजना आयोग तथा इसके विभिन्न निकाय जिनका कार्य योजना सम्बन्धी अनुसंधान कार्य संचालित करना, उपक्रमों की प्रगति की देख-रेख करना तथा उनका मूल्यांकन करना इत्यादि है। राज्यों में नियोजन सम्बन्धी यन्त्र-उपकरण निम्नलिखित हैं —

(अ) साधारणतया मुख्य-मन्त्री के आधीन मन्त्री-परिषद की एक समिति होती है जिसका कार्य उच्चस्तरीय निर्देशन तथा मार्ग-प्रदर्शन करना होता है,

(ब) प्रशासकीय स्तर पर विभिन्न विभागों के कार्यों में समायोजन पैदा करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक विकास परिषद (State Development Council) होती है जिसमें सभी विभागों के सचिव सदस्य होते हैं तथा जिसका अध्यक्ष साधारणतया मुख्य सचिव होता है।

(स) एक योजना विभाग या विकास आयुक्त (Development Commissioner) होता है जिसका कार्य नियोजन में समन्वय स्थापित करना तथा जिला कार्यक्रमों के क्रियान्वन की देख-भाल करना होता है।

(द) राज्य में नियोजन बोर्डों (Planning Boards) की भी व्यवस्था है। ये बोर्ड गैर सरकारी (Non-official) परामर्शदाता निकाय का कार्य करते हैं।

(इ) जिलाधीश, खण्ड विकास अधिकारी (B D O), पंचायत समिति, ग्राम पंचायत तथा कुछ तकनीकी अधिकारी विभिन्न स्तरों पर योजना के क्रियान्वन में सहयोग देते हैं। हाल ही में एक सुझाव के अनुसार राज्यों में भी पृथक रूप से योजना आयोगों की स्थापना पर विचार हो रहा है।

इस समय योजना आयोग का मुख्य कार्य नीतियाँ निर्धारित करना, लक्ष्य निश्चित करना एवं वित्तीय स्रोतों तथा मुख्य उपक्रमों के विषय में निर्णय करना है। योजना निर्माण की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है योजना आयोग सर्वप्रथम पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी एक संक्षिप्त प्रपत्र (*Memorandum*) तैयार करता है तथा उसे केन्द्रीय सरकार एवं 'राष्ट्रीय विकास परिषद' (जिसके सब राज्यों के मुख्य मन्त्रीगण

सदस्य होते हैं) के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इन दो संस्थाओं द्वारा संक्षिप्त प्रारूप स्वीकृत हो जाने पर, आयोग योजना का एक प्रारूप (Draft) तैयार करता है जिसमें प्रस्तावित योजना के मुख्य उद्देश्यों, लक्ष्यों इत्यादि का उल्लेख किया जाता है। इस प्रारूप पर संसद, जनता तथा समाचार-पत्र इत्यादि विचार करते हैं। योजना आयोग राज्यों से प्रारूप पर विस्तृत विचार विमर्श करता है। राज्य सरकारें प्रारूप में उल्लिखित लक्ष्यों के अनुकूल अपनी-अपनी योजनायें तैयार करती हैं। इन योजनाओं में आवश्यक काट छाँट तथा संशोधन करके योजना आयोग उन्हें एक एकीकृत अन्तिम योजना का रूप देता है। परिणाम यह है कि काफी सीमा तक योजना निर्माण का कार्य केन्द्रीकृत (Centralized) हो गया है।

राष्ट्रीय विकास परिषद
(National Development Council)

योजना सम्बन्धी मामलों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य समायोजन (Coordination) की स्थापना के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद नामक एक महत्वपूर्ण संगठन की रचना की गई है। इसकी स्थापना के मुख्य उद्देश्य थे (अ) योजना की सहायता के लिए राष्ट्र के स्रोतों तथा परिश्रम का सुदृढ़ करना तथा उनका संचालन (Mobilazation) करना, (ब) सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में समरूप (Common) आर्थिक नीतियों के अपनाने को प्रोत्साहित करना, तथा (स) देश के सभी भागों के तीव्र तथा सन्तुलित विकास के लिए प्रयास करना। परिषद के मुख्य कार्य हैं (अ) राष्ट्रीय योजना की प्रगति पर समय समय पर विचार करना, (ब) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करना, तथा (स) राष्ट्रीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सुझाव देना। साथ ही परिषद का यह भी कार्य है कि वह योजना के क्रियान्वन में जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने, प्रशासकीय सेवाओं की कार्य कुशलता में वृद्धि करने, अल्पविकसित प्रदेशों एवं समाज के पिछड़े वर्गों की पूर्णतम प्रगति तथा राष्ट्रीय विकास के लिए सम्पूर्ण जनता के समान बलिदान द्वारा स्रोतों के निर्माण पर सुझाव दे।

राष्ट्रीय विकास परिषद में राज्यों के मुख्य मन्त्रियों की सदस्यता तथा योजना आयोग द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों पर उनकी स्वीकृति के कारण योजना को राज्यों की ओर से एक प्रकार की पूर्व स्वीकृति (Prior-sanction) प्राप्त हो जाती है। इस परिषद ने भी एक 'सर्वोपरि केबिनेट' *(Super Cabinet) की ख्याति प्राप्त कर ली* है। इसके उच्च स्वरूप के कारण इसके परामर्श को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें सर्वाधिक महत्व प्रदान करती है। परिषद ने योजनाओं को एक सच्चा राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया है तथा योजनाओं के निर्धारण में "दृष्टिकोण की एकरूपता एवं

सर्वसम्मति पैदा की है। परिषद के सदस्य सत्ताधारी नीति निर्माता हैं, उनके मत की योजना आयोग या केबिनेट किसी भी स्थिति मे अवहेलना नही कर सकते।[1]

योजना का क्रियान्वन तथा आर्थिक नियोजन के अन्तर्निहित परिणाम

(Implementation of Plan and Administrative Implications of Economic Planning)

योजना के निर्माण के बाद उसके क्रियान्वन की जिम्मेदारी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के प्रशासकीय विभागो पर आती है। सर्वश्रेष्ठ से सर्वश्रेष्ठ योजना भी निरर्थक है, यदि उसे उचित रूप से क्रियान्वित न किया जा सकता हो। "योजना मे सर्वाधिक बल क्रियान्वन, व्यावहारिक परिणाम प्राप्त करने मे गति एव पूर्णता तथा अधिकतम उत्पादन, रोजगार व मानवीय स्रोतो के विकास के लिए पर्याप्त परिस्थितियां पैदा करने पर होना चाहिये।'[2]

भारत मे योजना क्रियान्वन से सम्बन्धित प्रथम समस्या केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के बीच समायोजन स्थापित करने की है। इस सम्बन्ध म तृतीय पचवर्षीय योजना मे स्पष्ट रूप से कहा गया है "योजना को अनेक स्तरो पर क्रियान्वित किया जाना है—राष्ट्रीय, राज्य, जिला, खण्ड तथा ग्राम स्तर पर, पृथक् पृथक् रूप से। प्रत्येक स्तर पर, सम्बन्धित कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न प्रकार के अभिकरणो (Agencies) मे पारस्परिक सहयोग का होना आवश्यक है तथा उनमे योजना के एव उनकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होने वाले साधनो का भी ज्ञान होना चाहिये। सघीय आधार पर सगठित एव विशाल तथा विविधतापूर्ण ढाचे म बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न स्तरो मे परस्पर तथा किसी एक स्तर पर विभिन्न अभिकरणो म सचार *(Communications) की व्यवस्था कैसी है।*"[3]

आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप भारतीय प्रशासनिक यन्त्र को एक शक्तिशाली एव महत्वपूर्ण चुनौती मिली है। स्वतन्त्र भारत के लोकप्रशासन की गतिविधियो का क्षेत्र तथा उसके दायित्वो का बोझ प्रतिवर्ष तीव्र गति से बढ रहा है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे भारत के प्रशासनिक यन्त्र के नवीन दायित्वो पर विशेष बल दिया गया है।[4]

---

1 For further details refer to M Brecher, *Nehru A political Biography*, London, Oxford University Press, 1959, page 521 H M Patel Review Section of the I J P A, October, 1959 page 460, A P Jain, *Food Problem and the N D C Times of India*, May 6 1959

2 *Third Five Year Plan*, Government of India—Planning Commission 1961, page 14

3 *Ibid*, page 276

4 First five Year plan observed 'In all directions the pace of development will depend largely upon the quality of Public administration, the efficiency with which it work and the cooperation which it evokes, *First Five*

योजना के क्रियान्वन के सम्बन्ध मे अक्सर भारत में असन्तोष व्यक्त किया गया है। योजना के क्रियान्वन के दौरान उपस्थित होने वाली कठिनाइयों के लिये प्रशासनिक अक्षमता, विलम्ब, अकार्यकुशलता तथा दोषपूर्ण कार्य-प्रणालियाँ, इत्यादि कारण जिम्मेदार ठहराये गये हैं। मुख्यत दोष निम्नलिखित हैं (अ) क्रियान्वन की मन्द गति, (ब) समय सीमा Time (schedules) का उल्लंघन एवं खर्चे म वृद्धि, (स) उचित स्तर तथा अनुभव वाले प्रशिक्षित कर्मचारी-वर्ग का अभाव, (द) अर्थ-व्यवस्था के परस्पर सम्बद्ध क्षेत्रों (Sectors) में विस्तृत समायोजन का अभाव, तथा (इ) समाज के व्यापक समर्थन व सहयोग की प्राप्ति मे असफलता। इन दोषों पर विजय प्राप्त करने के लिए नई कार्य प्रणालियाँ तथा प्रक्रियायें बनानी आवश्यक है जिसमे देश का प्रशासनिक यन्त्र आर्थिक नियोजन की चुनौती का सामना कर सके।[1]

भारत की तीनो योजनाओं म लोक प्रशासन के सगठन तथा प्रबन्ध प्रक्रियाओं म सुधार के सुझाव दिये जा चुके हैं। इन योजनाओं मे प्रशासन की व्यवस्था तथा कार्य विधियों के निरन्तर अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। धारणा यह है कि यदि प्रशासन कार्य कुशल व तीव्र गति से कार्य करने वाला न हुआ तो योजनाओं म निहित लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है। "हमारी पुरानी कार्य-प्रणालियाँ अत्यधिक अवरोध एवं प्रत्यावरोध (Checks and counter-checks) पर आधारित हैं। प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य, कार्य प्रणालियों को सरल बनाना है जिससे आवश्यक जनशक्ति (Man power) तथा अन्य प्रकार की सामग्री प्राप्त

Year Plan, planning Commission page 117 Similarly the Second Plan *observed If the administrative machinery both at Centre and in the States* does it work with efficiency, integrity and with a sense of urgency and concern for the community the success of the Second Plan would be assured" *Second Five Year Plan Planning Commission 1956 page 126*, *Third Five Year Plan* refer to Chapter XVII, Administration and Plan Implemenattion pages 276—290

1 *Third Plan rightly* observes "*In the larger setting of the Third* Plan, these Problems are accentuated and gain greater urgency It is widely realised that the benefit that may accrue from the Third Plan will depend, in particular in its *early states, upon the manner in which these problems are* resolved As large burdens are thrown on the administrative structure, it grows in size, as its size increases, it becomes slower in its functioning Delays occur, and affect operations at every stage and the expected outputs are further deferred New tasks become difficult to accomplish if the management of those in hand is open to just criticism In these circumstances there is need for far reaching changes in procedures and approach and *for re examination* of prevalent methods and attitudes ' *Ibid*, page 277

करने के लिए शीघ्रता से निर्णय लिए जा सकें।"[1]

आर्थिक नियोजन तथा लोक कल्याणकारी राज्य की चुनौती का सामना करने के लिए निम्नलिखित प्रशासनिक सुधार आवश्यक प्रतीत होते हैं (अ) कार्य-प्रणालियों का सरलीकरण, (ब) विलम्ब की प्रवृत्ति का उन्मूलन, (स) व्यक्तिगत दायित्व का उचित स्पष्टीकरण, (द) काम के खर्चे मे कमी, (य) प्रशासनिक अनुसधान तथा मूल्याकन पर उचित बल, (र) वित्त मत्रालय की कार्य प्रणालियो मे क्रातिकारी परिवर्तन, (ल) मत्रालयो को वित्तीय शक्तियो का अधिक हस्तातरण, (व) बजट पूर्व निरीक्षण पर बल, (क) मत्रालयो का पुनर्गठन, (ख) भारत सरकार के मत्रालयो, विभागो म श्रेष्ठतर समायोजन, (ग) जन-सम्पर्क का विकास, (घ) निर्णय लेने की प्रक्रिया म गतिशीलता, (ड) सिविल अधिकारियो का उचित प्रशिक्षण (च) लोक-प्रशासन मे नेतृत्व के योगदान पर उचित बल, (छ) प्रत्येक स्तर पर कार्य की उचित तथा प्रभावशाली देख-रेख (ज) प्रशासन मे शीघ्रता की भावना पर बल, (झ) प्रशासन मे स्पष्ट सचार व्यवस्था के महत्व की अनुभूति, (ञ) लालफीताशाही मे कटौती के साधनो का विकास इत्यादि।

ये तथा अन्य प्रशासनिक सुधार योजना के क्रियान्वन को सफल बनाने मे सहायता देंगे।[2]

योजना का मूल्याकन
(Plan Evaluation)

योजना मे मूल्याकन का चरण बहुत महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य से योजना आयोग मे एक 'कार्यक्रम मूल्याकन सगठन' (Programme Evaluation Organization) की रचना की गई है। मार्च १९५२ मे स्थापित इस सगठन का कार्य ग्रामीण क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रभाव तथा परिणामो को आकना है। इसके कार्यों की इस प्रकार की व्याख्या की गई है —

"(अ) कार्यक्रम के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु की जा रही प्रगति से सब सम्बन्धित व्यक्तियो को परिचित कराना,

1 Inderjit Singh, 'Administration in the Third Five Year Plan', The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, July—September, 1961, Vol. VII No 3, page 247.

2 For further details refer to 'The Working Paper on the Administrative Implications of the Plan' Indian Institute of Public Administration, *New Delhi, 1960 Third Five Year Plan* Chapter XVII 'Administration and Plan Implementation', pages 276–290. Inderjit Singh 'Administration in The Third Five Year Plan,' I J P A, New Delhi, July—September, 1961, Vol VII, No 3, pages 247—255 V. T Krishnamachari, *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, New Delhi 1962, Chapter XVI, The Machinery of Government, pages *225—235* Writing about Administration and the (*Contd.*)

(ब) विस्तार (Extension) की प्रभावशाली तथा प्रभावहीन विधियों की ओर सकेत करना,

(स) यह समझाना कि अनुमोदित (Recommended) तरीको मे से ग्रामीणो ने कुछ को क्या चुनना पसन्द किया तथा कुछ को क्यो अस्वीकृत किया, तथा

(द) भारत की अर्थ व्यवस्था तथा सस्कृति पर सामुदायिक विकास कार्य-क्रम के प्रभाव का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना।'

कार्य-क्रम मूल्यांकन सगठन' (P E O) एक स्वायत्त निकाय है किन्तु यह कृषि मत्रालय तथा सामुदायिक विकास मन्त्रालय के साथ निकट सहयोग से कार्य करता है। यह सख्यात्मक (Statistical) तथा गुणात्मक (Qualitative) केस अध्ययन (Case studies) भी करता है। एक अन्य महत्वपूर्ण सगठन 'योजना उपक्रमो की समिति (Committee on plan projects) है। सितम्बर १९५६ मे स्थापित इस समिति के कार्य निम्नलिखित हैं —

(अ) केन्द्र तथा राज्यो म विशेष रूप स चुने हुए व्यक्तियो द्वारा महत्वपूर्ण उपक्रमो (Projects) का निरीक्षण करवाना,

(ब) उपक्रमो के कार्य-कुशल क्रियान्वन, अपव्यय को दूर करने तथा मित-व्ययता की प्राप्ति क लिए सगठन, कार्यविधियो, स्तरो तथा प्रणालियो के उचित रूप निर्धारित करना एव इस उद्देश्य से अध्ययन सचालित करना,

(स) प्रत्येक उपक्रम मे तथा उनको क्रियान्वित करन वाले अभिकरणो मे पृथक्-पृथक कार्य कुशलता प्रधान लेखा परीक्षण (Efficiency audit) के निरन्तर सचालन के लिए उचित सगठन के विकास को प्रोत्साहन देना,

(द) योजना उपक्रमो सम्बन्धी समिति (Committee on plan projects) को विभिन्न प्रतिवेदनो म समर्पित सुझावो को लागू करवाने का प्रयास करना तथा अध्ययनो व निरीक्षणो के परिणामो को सम्बन्धित व्यक्तियो व सस्थाओ के सम्मुख प्रस्तुत करना, तथा

Third Plan R K, Rangan observed 'The lesson drawn from the two earlier Plans indicate the spheres that would require pointed attention Most important of them are the pace of execution of projects in many fields problems involved in the Planning construction and preparation of larg project especially increase in cases and non adherence to time schedules, difficulties *in trainning men on a large enough scale and securing personnel with the* requisite cahbre and experience, achieving coordination *in detail in related sectors of economy and above all enlisting widespread support and cooperation* from the community as a whole' R K Rangan *India—Administration and the Third Plan* International Review of Administrative Science, Vol XXVIII 1962, No 1, International Institute of Administrative Sciences—Brussels 4 (Belgium), pages 31—32

(इ) द्वितीय पचवर्षीय योजना के क्रियान्वन मे कार्य-कुशलता व मितव्ययता लाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा सुपुर्द किये गये अन्य कार्यों को सम्पन्न करना।"

इस समिति ने विभिन्न उपक्रमो के अध्ययन के लिए बहुत से अध्ययन समूह नियुक्त किये जिनके प्रतिवेदनो का भविष्य के लिए भी काफी महत्व है।

निष्कर्ष
(Concluison)

भारतीय नियोजन का सचालन का कई कठिनाइयो का सामना कर रहा है कई प्रकार की प्रशासकीय समस्यायें योजनाओ के सफल क्रियान्वन के मार्ग मे भारी बाधाओ के रूप मे आ खडी हुई हैं। व्यापक स्तर पर आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप प्रशासको के कन्धो पर जो भारी दायित्व आ पडे हैं, उनको देखते हुए प्रशासनिक यन्त्र का पुनर्गठन आवश्यक है। एक लोक-कल्याणकारी राज्य के प्रशासनिक सगठन के सम्मुख तीव्रगति, पहल (Initiative) तथा निष्ठा के आदर्शों का होना आवश्यक है। लोक-कल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओ को देखते हुए पुराने पुलिस-राज्य के प्रशासनिक सगठन की उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई समस्याओ के प्रकाश म प्रशासनिक सगठन पर पुर्नविचार करने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति की स्थापना आवश्यक है। ए० डी० गोरवाला तथा पॉल एच० एपलबी के सक्षिप्त प्रतिवेदन तथा "सगठन व विधि सम्भाग" (O V M) का कार्य अपर्याप्त है। भारत मे आर्थिक नियोजन मे निहित प्रशासनिक समस्याओ के विषय मे अनुभूति तो है किन्तु उनके निराकरण के लिए निश्चय का अभाव है।[1]

———

1 For further details refer to V T Krishnamachari *Fundamentals of Planning in India*, Orient Longmans, New Delhi, 1962, I J P A, New Delhi, Special Issue on 'planning' July–September, 1961, Vol VII, No 3 Five Year Plans devote chapters on Administration, I J P A, New Delhi 'The Administrative Implications of the Third Plan', 1960 Measures for strengthening of Administration, Statement on "Administrative Procedure" laid before Parliament by the Prime Minister on August 10 1961

भाग २

कार्मिक-वर्ग प्रशासन

(PERSONNEL ADMINISTRATION)

१४

सिविल सेवा का योग तथा महत्व
(Role and Importance of Civil Service)

कार्मिक-वर्ग सरकारी यन्त्र का सचालन करता है। नीति, विधियो (Laws), नियमो (Rules) तथा विनियमो (Regulations) को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासन जो भी कार्यवाहिया करता है वे सब कर्मचारी-वर्ग द्वारा ही की जाती हैं। यदि उपलब्ध अधिकारी एव कर्मचारी-वर्ग कार्य करने के लिए योग्य व समर्थ नहीं होता तो अच्छी प्रकार सोच-विचार के पश्चात् निर्माण की जाने वाली नीतिया तथा योजनायें भी असफल हो जाती हैं और अच्छे से अच्छे सगठन भी, जोकि वैज्ञानिक सिद्धान्तो, नियमों एव विनियमो पर आधारित होते हैं, भग हो जाते हैं। एक दृष्टि-कोण से तो प्रशासन (Administration) तथा सगठन (Organisation) स्वय मानवीय समस्यायें ही हैं और उपलब्ध मानवो के गुण तथा योग्यता ही एक बड़ी मात्रा मे इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी भी देश का प्रशासन कितनी कुशलता के साथ कार्य कर सकेगा। लोक-प्रशासन की कोई भी क्रिया सुयोग्य एव समर्थ कार्मिक-वर्ग के बिना सम्पन्न नहीं की जा सकती।

राज्य के बढते हुए कार्यों के साथ ही साथ कार्मिक-वर्ग का योग एव महत्व भी बढता जा रहा है। पहले जबकि सरकारें अबन्ध नीति (Laissez-faire) में विश्वास करती थी और अपने कार्यों को केवल समाज में कानून व व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित रखती थीं, उस समय तो कर्मचारी-वर्ग के कार्य भी इन थोड़े से उद्देश्यों की पूर्ति तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के वर्तमान युग मे राज्य की क्रियाओ में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। आजकल तो राज्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानवीय कल्याण में वृद्धि करता है। राज्य की क्रियायें अत्यन्त विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गई हैं। प्रत्येक स्थान पर राज्य वर्तमान रहता है और कोई भी नागरिक राज्य के प्रभाव और उसकी शक्तियो से बच कर नहीं रह पाता। राज्य उन सिविल सेवको (Civil Servants) के माध्यम से नागरिको तक पहुचता है 'जोकि प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained), निपुण, स्थायी तथा व्यावसायिक रूप से कार्य करने वाले वैज्ञानिक अधिकारी (Officials) होते हैं।'

आधुनिक समाज की जटिल एव पेचीदा समस्याओं को ऐसे अधिकारियो की देख-रेख में नहीं छोड़ा जा सकता जोकि अप्रशिक्षित (Untrained), अवैतनिक, अशिक्षित (Illiterate) तथा अनिच्छुक हों। १७वीं तथा १८वी शताब्दी की वह

कार्मिक व्यवस्था (Personnel system), जिसमें कि अप्रशिक्षित तथा अवैतनिक वर्ग के सिविल कर्मचारी हुआ करते थे, वर्तमान समय के लिए अनुपयुक्त है। आधुनिक समय में तो कुशल, प्रशिक्षण प्राप्त तथा सुरक्षित व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जोकि राज्य की सेवा कर सके तथा उसकी योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लागू कर सके। कार्यों का विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन (Division of labour) वर्तमान वैज्ञानिक युग की विशेषता है। एक ही आदमी सभी कार्यों व उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। अतः प्रशासन के विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए तकनीकी योग्यता प्राप्त कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। आजकल तो हम देखते हैं, कि सिविल सेवकों के एक व्यावसायिक वर्ग (Professional class) के द्वारा शासन कार्य चलाया जाता है। ये कुशल प्रशासक तथ्य एवं आँकड़े इकट्ठे करते हैं, अनुसंधान (Research) करते हैं और जनता की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए योजनायें बनाते हैं। यह कहना ठीक है कि "लोक प्रशासन में कार्मिक-वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।"[1] आधुनिक राज्य के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए ऐसे योग्य एवं सभ्य व्यक्तियों की आवश्यकता है जो निष्पक्ष रूप से तथा केवल योग्यता के आधार पर ही चुने जायें।

आधुनिक सिविल सेवा की अनेक विशेषताओं में से निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

(१) सिविल सेवा ऐसे अधिकारियों का एक व्यावसायिक वर्ग है जोकि प्रशिक्षण प्राप्त, कुशल, स्थायी तथा वैतनिक होते हैं। उन अन्य व्यक्तियों के समान ही, जोकि भिन्न भिन्न व्यवसायों में व्यस्त रहते हैं, सिविल सेवकों का व्यवसाय भी प्रशासन का संचालन करना होता है। उन्हें इस कार्य के लिए वेतन दिया जाता है। प्रशासन का कार्य करना ही सिविल सेवकों का पूर्णकालिक व्यवसाय है।

(२) सिविल सेवकों का संगठन पद-सोपान (Hierarchy) के आधार पर किया जाता है जिसका अर्थ होता है उच्च (Superior) एवं अधीनस्थ (Subordinate) अधिकारियों की एक ऐसी सुदृढ़ एवं अनुशासित व्यवस्था, जिसमें उच्च अधिकारियों द्वारा निम्न अधिकारियों का पर्यवेक्षण (Supervision) किया जाता है। प्रत्येक अधिकारी को अपने उच्च अधिकारी की आज्ञाओं का पालन करना होता है।

(३) सिविल सेवकों को राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ (Natural) रहना होता है। वे प्रशासन के सेवक होते हैं किसी दल विशेष के नहीं। अतः उन्हें बिना इस बात का ध्यान किये, कि मन्त्रिमण्डल किस दल अथवा पार्टी का है, अपना कार्य करना होता है।

(४) सिविल सेवक जो भी कार्य करते हैं बिना अपने नाम के करते हैं। उन्हें अनाम ही रहना पड़ता है।

1 Hermen Finer op cit, p 722

(५) सिविल सेवकों को समाज में व्यक्तियों के किसी भी वर्ग के प्रति किसी भी बात का पक्षपात किये बिना राज्य के कानूनों को लागू करना होता है।

(६) देश के कानून द्वारा सिविल सेवकों के कर्तव्य की व्याख्या की जाती है। अत उन्हें सविधियों (Statutes) में उल्लिखित न्यूनतम तथा अधिकतम अनुज्ञाओं (Permissions) की सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करना होता है।

(७) सिविल सेवक सेवा की भावना से जनता की सेवा करते हैं। सिविल सेवकों को, जोकि राज्य के सेवक होते हैं, सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए कार्य करना होता है। उन्हें व्यक्तिगत लाभ से पहले सार्वजनिक हित को दृष्टिगत रखना होता है।

(८) सिविल सेवक जो भी कार्य करते हैं उसके लिए वे जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

ये सिविल सेवा के कुछ विशिष्ट लक्षण हैं। 'A Primer of Public Administration' नामक अपनी पुस्तक में इसके बारे में लिखते हुए एस० ई० फिनर (*S. E Finer*) ने कहा कि :

"सिविल सेवा" ' का अस्तित्व लाभोपार्जन के लिए नहीं होता। अत इसके सदस्यों की प्रेरणा, अन्तिम आश्रय के रूप में, वेतन प्राप्त करने की ही होती है, जोखिम उठाकर अधिक धन कमाने की नहीं। दूसरे, सिविल सेवा सार्वजनिक होती है। अत उसके कार्यों की दृढ एव सूक्ष्म जाच की जाती है और वे अस्वीकृत भी किये जा सकते हैं। इससे पुन उसकी लोचशीलता तथा तत्परता सीमित हो जाती है। तीसरे,''''''सिविल सेवकों तथा उनके मन्त्रियों (Ministers) को निरन्तर ससद (Parliament) की आलोचनाओं का सामना करना होता है। इससे उन्हें अवसरों के प्रति सतर्क एव सन्नद्ध रहने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। अन्तत इसकी सेवायें व्यापक होती हैं। यह स्थिति इसको इस बात के लिए बाध्य करती है कि यह अपने स्टाफ सम्बन्धों की ओर विशेष ध्यान दे और उनमें पारस्परिक प्रेम के अभाव अथवा विवाद को दूर करने के लिए, सेवा की कोटि (Quality) के सम्भावित व्यय पर व्यवहार की समानता उत्पन्न करे।"[1]

सिविल सेवा अथवा नौकरशाही
(Civil Service or Bureaucracy) :

गत पृष्ठों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक सभ्यता के लिए सिविल सेवकों के व्यावसायिक-वर्ग का होना अत्यन्त आवश्यक है, यद्यपि तोड मरोड कर तथा व्यगात्मक रूप में कभी-कभी सिविल सेवकों को 'नौकरशाही' पदाधिकारियों (Bureaucrats) का नाम दिया जाता है, नौकरशाही एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग अनादर अथवा तिरस्कार के साथ किया जाता है। यह एक प्रकार का दुरुपयोग है और यह दुरुपयोग

1 S E. Finer : *A Primer of Public Administration*, Frederick Muller, Ltd. London, 1950, p. 112

चुनाव (Election) अथवा अन्य किसी सार्वजनिक संकट-काल के समय विशेष रूप से किया जाता है। राजनीतिज्ञ, जनता तथा समाचार-पत्र जब भी व्यावसायिक सिविल सेवकों की आलोचना अथवा निन्दा करने की आवश्यकता समझते हैं तभी वे इनको 'नौकरशाही' पदाधिकारियों के नाम से सम्बोधित करते हैं।

यदि पारिभाषिक दृष्टि से नौकरशाही (Bureaucracy) की व्याख्या की जाए तो साधारणतया इसका अर्थ है "मेज प्रशासन" अर्थात् ब्यूरो अथवा कार्यालयों द्वारा प्रबन्ध। "कार्मिक वर्ग, (Personnel) उसके कार्य करने के साधनों तथा कार्य-विधियों (Procedures) के योग को नौकरशाही पद्धति कहा जाता है जिनके द्वारा कि एक संगठन अपने कार्यों का प्रबन्ध करता है तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है।" इस प्रकार नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र सभी बड़े पैमान के उद्यमों का एक विशिष्ट लक्षण है। किन्तु जब नौकरशाही शासन की आलोचना की जाती है तो इसके आलोचक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यह इसलिए दोषी है क्योंकि बजाए सार्वजनिक उद्देश्यों को पूरा करने के, जिसके लिए कि इसका निर्माण किया जाता है, यह अपने निजी उद्देश्यों को ही पूरा करने लगता है। 'नौकरशाही' शासन कभी-कभी लालफीताशाही (Red tapism) सैनिकीकरण, अनाधिकार हस्तक्षेप, अपव्ययता, भ्रष्टाचार (Corruption), कार्य के बेढंगेपन, अकुशलता तथा उदासीनता से सम्बद्ध हो जाता है।

नौकरशाही के विशिष्ट लक्षण
(Characteristics of Bureaucracy)

मैक्स वैबर (Max Weber) ने समाज शास्त्र के (Sociology) पर लिखे गये अपने निबन्धों में नौकरशाही के निम्नलिखित विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख किया है —[1]

(१) नौकरशाही पद्धति के प्रशासनिक ढांचे के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिन नियमित क्रियाओं की आवश्यकता होती है उनको एक निश्चित रीति से सरकारी कर्तव्यों के रूप में बांट दिया जाता है।

(२) इन कर्तव्यों को पूरा करने के लिए जिन आदेशों (Commands) की आवश्यकता होती है उनको जारी करने की सत्ता को एक स्थायी तरीके से विभाजित कर दिया जाता है और उसको दृढ़ता के साथ ऐसे नियमों (Rules) की सीमाओं में बाँध दिया जाता है जोकि बलपूर्वक लागू किये जाने वाले उन भौतिक अथवा अभौतिक साधनों से सम्बन्धित होते हैं जोकि अधिकारियों को सौंपे जा सकते हैं।

(३) इन कर्तव्यों की नियमित एवं निरन्तर पूर्ति के लिए तथा समवर्ती अधिकारों (Corresponding rights) के क्रियान्वय के लिए विधिपूर्वक व्यवस्था की जाती है, केवल उन्हीं व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना है जोकि सामान्य रूप से सेवा करने की निर्धारित योग्यतायें रखते हैं।

1 Max Weber, in Sociology, transmitted by H H Gerth and C Wright Mills 1946, Oxford University Press Inc, pp 197-98

वेबर के अनुसार ये तीनों तत्व 'लोक-प्रशासन में नौकरशाही सत्ता' की अथवा 'निजी उद्यम (Private enterprise) में नौकरशाही प्रबन्ध-व्यवस्था' की रचना करते हैं। उन्होंने आगे कहा कि सभी नौकरशाही व्यवस्थाओं में पद-सोपान का सिद्धान्त (Hierarchical principle) लागू होता है, लिखित दस्तावेजों (Documents), फाइलों, अभिलेखों (Records) तथा आधुनिक दफ्तरी प्रबन्ध के उपकरणों पर निर्भर रहा जाता है, कार्यालय के प्रबन्ध के लिये सामान्य नियमों अथवा व्यवहारों का निर्माण किया जाता है, और सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के प्रशासन के अधिकारी उन नियमों तथा तकनीकों में जिनमें कि उनके विशेषज्ञ एवं निपुण होने की आवश्यकता हो, प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained) होने चाहियें।

प्रो० फ्रेडरिच (Friedrich) ने 'नौकरशाही' के छः प्रारम्भिक सिद्धान्त बताये हैं। वे हैं कार्यों का विभिन्नीकरण, पद के लिए योग्यतायें, पदसोपान-क्रम का सगठन तथा अनुशासन, कार्य-रीति की उद्देश्य विषयता, नियमों, लालफीताशाही तथा अभिलेखों के रखने के सम्बन्ध में यथार्थता तथा दृढ़ता अथवा निरन्तरता, और अन्त में, विवेक (Discretion) का प्रयोग जिससे प्रशासन के कुछ पहलुओं के सम्बन्ध में गुप्तता रहे।[1] Simon ने नौकरशाही को 'बड़े पैमाने के सगठन, (Large scale organisation) का पर्यायवाची माना है।[2] डीन पाल एपिलबी (Dean Paul Appleby) का कहना है कि "इसको सामान्य तथा जटिल शर्तों के अन्तर्गत सयुक्त हुए अनेक व्यक्तियों के व्यवस्थित पारस्परिक कार्यों से पृथक् नहीं किया जा सकता।"[3]

नौकरशाही (Bureaucracy) प्रशासन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सिविल सेवकों का निपुण व्यावसायिक वर्ग निष्पक्ष रूप से शासन कार्य चलाता है। नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र उन तकनीकी दृष्टि से कुशल व्यक्तियों का एक व्यावसायिक वर्ग (Professional class) है जिनका पद सोपान के क्रम (Hierarchical way) में सगठन किया जाता है और जो निष्पक्ष रूप में राज्य का कार्य करते है। नौकरशाही सिविल सेवकों का एक प्रवीण व्यावसायिक वर्ग है। नौकरशाही शासन के पदाधिकारियों की भर्ती योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है और योग्यता के आधार पर ही उनकी पदोन्नति (Promotion) की जाती है। वे नियमों तथा विनियमों (Rules and regulations) के आधार पर शासन-कार्य का सचालन करते हैं, पक्षपात के आधार पर नहीं। समस्त जनता के साथ उनका व्यवहार एकरूप तथा एक समान होता है।

---

1 Friedrich, *Constitutional Government and Democracy*, 2nd Edition 1951 pp 57 58

2. Herbert A Simon, 'Staff and Management Controls in the Annals of *the American Academy of Political and Social Science* March 1954, p 95

3 Paul H. Appleby, *Bureaucracy and the Future*, p 118

नौकरशाही अथवा सेवक तन्त्र की बुराइयां
(Evils of Bureaucracy)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है नौकरशाही शब्द का प्रयोग अनादर अथवा तिरस्कार के साथ किया जाता है। जहाँ कहीं भी लोक कर्मचारी (Public servants) प्रभावशाली जन-नियन्त्रण की परिधि से बाहर रहने हैं, जहाँ वे अपने निजी लाभ के लिए कार्य करते हैं, जहाँ वे सार्वजनिक आलोचना के प्रति उत्तरदायी एवं जवाबदेह नहीं होते, जहाँ वे जनता अथवा संसद की आलोचना के किसी भी प्रकार के भय के बिना समाज में एक पृथक् वर्ग का रूप धारण कर लेते हैं—वहाँ उन्हें नौकरशाही अफसरों (Bureaucrats) की संज्ञा दी जाती है। अत. नौकरशाही की व्याख्या इस प्रकार की गई कि "यह वह शासन-प्रणाली है जिसका नियन्त्रण अधिकारियों के हाथ में इतनी अधिक मात्रा में रहता है कि उसमें सामान्य नागरिकों की स्वतन्त्रताएँ संकट में पड़ जाती हैं।"[1]

शुद्ध नौकरशाही व्यवस्था, जोकि अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी एवं जवाबदेह नहीं होती, राजाओं अथवा निरंकुश शासकों के शासन में वर्तमान थी और आजकल यह साम्यवादी (Communistic) तथा सामन्तवादी (Totalitarian) राज्यों में पाई जाती है।

प्रश्न यह है कि प्रजातन्त्र (Democracy) में 'नौकरशाही' की आलोचना क्यों की जाती है ?

लार्ड हीवर्ट (Lord Hewart) ने 'नई निरंकुशता' (The New Despotism) नामक अपनी पुस्तक में, जोकि सन् १९२९ में प्रकाशित हुई थी, सिविल-सेवकों की आलोचना की। इस पुस्तक का सार यह है कि कार्यपालिका (Executive) जिसमें कि सिविल सेवा भी सम्मिलित है, उस शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही है जिसका सम्बन्ध यथोचित दृष्टि से व्यवस्थापिका (Legislature) तथा न्यायपालिका (Judiciary) से है। इसी प्रकार, रैम्जे-म्योर (Ramsay Muir) ने 'ब्रिटेन किस प्रकार शासित किया जाता है' (How Britain is governed) नामक अपनी पुस्तक में, जोकि सन् १९३० में प्रकाशित हुई थी, कहा कि "नौकरशाही अथवा सेवकतन्त्र अग्नि के समान है जोकि एक सेवक के रूप में तो बहुमूल्य सिद्ध होती है परन्तु जब वह मालिक या स्वामी (Master) बन जाती है तो घातक सिद्ध होता है।" उन्होंने आगे कहा कि "नौकरशाही मन्त्रीय उत्तरदायित्व (Ministerial responsibility) के लबादे में पनपती तथा बढ़ती है।"[2] अमेरिकन राष्ट्रपति हूवर (Hoover) का कहना था कि "नौकरशाही में तीन प्रवृत्तियां पाई जाती हैं अर्थात् आत्म-स्थिरता (Self-perpetuation) आत्म-विस्तार तथा अधिक शक्ति की मांग।"

1 Prof Harold J Laski in the *Encyclopaedia of the Social Sciences*

2 Ramsay Muir *How Britain is governed*, Indian Ed, Allahabad, p 53

नौकरशाही के दोष
(Defects of Bureaucracy)

(१) लालफीताशाही (Red tape)—नौकरशाही की सबसे बडी आलोचना इसके कार्य की नैत्यक अथवा दैनिक प्रकृति (Routine nature) के कारण की जाती है। नौकरशाही अधिकारी औपचारिक (Formal) नियमो तथा विनियमो की बहुत अधिक चिन्ता करते हैं। ये नियम तथा विनियम (Rules and regulations) अनेक बार कार्य को आगे बढाने की बजाए उसमे बाधा डालते हैं। वाल्टर बेजहोट (Walter Bagehot) ने 'अंग्रेजी संविधान' (The English Constitutions 1867) नामक अपनी पुस्तक मे नौकरशाही के इस दोष के बारे मे लिखते हुए कहा कि "यह एक अनिवार्य दोष है कि नौकरशाही अधिकारी परिणाम (Result) की अपेक्षा दैनिकता (*Routine*) की अधिक परवाह करते हैं, अथवा जैसा कि बर्क (Burke) ने कहा कि "वे कार्य के रूप (Form) को उतना ही महत्व देने लगते हैं जितना कि कार्य की विषयवस्तु अथवा सार (Substance) को।" इस प्रकार सिविल सेवक नियमो तथा विनियमो मे प्रशिक्षण (Training) प्राप्त करते हैं और तब वे उनको लागू करते हैं। परिणाम यह होता है कि व 'अपने व्यवसाय के ऐसे दर्जी बन जाते हैं' जोकि कपडो का छांट (फिटिंग) तो करते हैं परन्तु उन्हे शरीर का पता नही होता।"[1]

(२) प्रशासकीय आत्मोन्नति (Administrative self promotion)—नौकरशाही अधिकारी जन कल्याण के लिय उत्साहित होने की बजाए उसके नाम पर ऐसे कार्य करना प्रारम्भ कर सकते है जिन्हे करने की उन्हे वैधानिक दृष्टि से आज्ञा नही होती।

(३) आत्म महत्व (Self importance)—अन्य मनुष्यो के समान ही सिविल सेवक भी अपनी सत्ता (Authority) तथा अपने महत्व का प्रदर्शन करना चाहते हैं, जैसा कि शेक्सपियर (Shakespeare) ने कहा है कि "प्रत्येक मनुष्य अपनी सत्ता के छोटे से छोटे क्षण को भी प्यार करता है।"

(४) वर्गीय चेतना (Classical consciousness)—नौकरशाही अफसर समाज मे एक पृथक-वर्ग का रूप धारण करने लगते हैं। उनका विचार होता है कि वे अन्य लोगो से श्रेष्ठ होते हैं और इस प्रकार वे शासक व शासित के बीच उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित रखने मे असफल रहते हैं जबकि ऐसा सम्बन्ध लोकतन्त्रीय प्रक्रिया (Democratic process) का एक आवश्यक अंग होता है।[2]

---

1 Walted Bagehot, *World classic* Edition, p 171

2 For details also refer to prof William A Robson's—*The Civil Service in Britain and France*, London 1956

निरकुशता का आरोप
(The Charge of Despotism)

एक ब्रिटिश विधिवेत्ता, लार्ड हीवर्ट (Lord Hewart) ने 'नई निरकुशता (New Despotism) नामक अपनी पुस्तक म यह विचार व्यक्त किया कि इस बढती हुई प्रशासकीय निरकुशता के भार के अन्तर्गत ब्रिटिश नागरिक अपनी स्वाधीनतायें खा देंगे। एक मामूली सी जाच इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होगी कि प्रशासनिक कार्य पर गत कुछ वर्षों से एक दृढ प्रभाव पडता रहा है तथा अब भी पड रहा है और नि सन्देह जिसका असर यह हुआ है कि विभागीय सत्ता तथा क्रियाओं का विशाल एव अधिकाधिक क्षेत्र सामान्य विधि (Law) की पहुच से बाहर हो गया है चाहे इस प्रभाव का पापण करने वाली प्रेरणायें व भावनायें कुछ भी क्यों न हो।'[1] लार्ड हीवर्ट का विश्वास था कि व्यक्तिगत स्वाधीनता खतरे में है। क्योंकि 'तीव्र नौकरशाही मनोवृत्ति' के अफ्सर 'कुछ ऐसे विश्वासों' के साथ काम करते हैं जैसे कि

(१) कार्यपालिका (Executive) का कार्य शासन करना है।
(२) शासन करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति केवल विशेषज्ञ (Experts) ही होते हैं।
(३) सरकारी कार्य के विशेषज्ञ स्थायी पदाधिकारी ही होते हैं।.
(४) उन विशेषज्ञो को प्रचलित परिस्थितियो मे व्यवहार करना होता है और वे जिन परिस्थितियों म भी होते हैं अपने को उसी के अनुसार सब से अधिक उपयुक्त बना लेते हैं।
(५) विशेषज्ञ के कार्य मे दो मुख्य बाधायें सामने आती हैं। एक तो ससद का प्रभुत्व (Sovereignty of Parliament) और दूसरी कानून का शासन (Rule of law)।
(६) अज्ञानी जनता में जो एक प्रकार की अध-श्रद्धा प्रचलित है वह इन दोनो बाधाओं को दूर करने म बाधक बनती है। अत विशेषज्ञ को दूसरी बाधा को निरर्थक करने के लिये प्रथम का उपयोग करना चाहिये।
(७) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, उसे ससदीय जामा पहन कर पहले मन-मानी शक्ति अपने हाथ म ले लेनी चाहिये और फिर कानूनी अदालतो का विरोध करना चाहिये।

(८) यह सब प्रक्रिया बहुत सरल सिद्ध होगी यदि वह (क) एक मोटी रूप-रेखा की शक्ल में पास किया हुआ विधान प्राप्त कर सकता है, (ख) उस विधान की खाइयो को स्वय अपने नियमो, विनियमों तथा आज्ञाओ से भर सकता है, (ग) ससद के लिये यह कठिन अथवा असम्भव बना सकता है कि वह इन नियमो, विनियमो

1 Hewart of Bury, *The New Despotism*, p 5

तथा आज्ञाओं पर रोक लगाये, (घ) उनके लिए कानून की शक्ति प्राप्त कर सकता है, (ङ) अपने निजी निर्णयों को अन्तिम बना सकता है, (च) इस बात की व्यवस्था कर सकता है कि उसके निर्णय के तथ्य ही उसकी वैधता (Legality) के अन्तिम प्रमाण होंगे, (छ) कानूनों की धाराओं में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त कर सकता है, (ज) न्यायालय में की जाने वाली किसी भी प्रकार की अपील को रोक सकता है अथवा उसकी उपेक्षा कर सकता है।

(६) यदि विशेषज्ञ लार्ड चान्सलर के पद को समाप्त कर सकता है, न्यायाधीशों की पद स्थिति को सिविल सेवा की एक शाखा के रूप में घटा सकता है, और मुकदमों में पहले ही अपनी राय प्रकट करने के लिये उन्हें बाध्य कर सकता है, और एक 'न्यायमन्त्री' (Minister of Justice) की मार्फत स्वयं उनकी नियुक्ति कर सकता है, तब तो सारी बाधाएं खत्म हो जायेंगी।'[1]

निरंकुशता के इस आरोप के मुख्य कारण का स्रोत 'हस्तान्तरित विधान' (Delegated legislation) है। विधानमण्डल (Legislature) एक कानून पास करता है और उस कानून से सम्बन्धित छोटी-छोटी बातों की पूर्ति का कार्य सिविल सेवकों पर छोड़ देता है। 'नौकरशाही' के आलोचकों का यह मत है कि इस प्रकार सिविल सेवक विधान के बारे में सत्ता हथियाने लगे हैं। इससे विधान-मण्डल की शक्तियां सीमित होती जा रही हैं। इस आरोप का उत्तर यह है कि जब तक संसद को सिविल सेवकों द्वारा किसी भी कानून के सम्बन्ध में बनाये गये नियमों एवं विनियमों पर पुनर्विचार करने की शक्ति प्राप्त है, तब तक हस्तान्तरित विधान को बुरा नहीं कहा जा सकता। यह तो एक आवश्यकता है और जब तक विधि अथवा कानून की बागडोर विधान-मण्डल के हाथों में है तब तक इस बात का खतरा नहीं है कि सिविल सेवक अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय निरंकुश बन जायेंगे।

निम्नलिखित उपाय 'नौकरशाही' को इसके अनेक दोषों से मुक्त कर सकते हैं —

इन दोषों को दूर करने के लिए सुझाव
(Suggestions for the Removal of these Defects):

(१) नौकरशाही (Bureaucracy) की शक्तियों को सीमाओं के अन्तर्गत रखने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation of authority) होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण 'नौकरशाही' अधिकारियों की बढ़ती हुई सत्ता पर लगाया जाने वाला सबसे अधिक शक्तिशाली अवरोध (Check) है। अत्यधिक केन्द्रीकरण (Centralisation) के कारण 'नौकरशाही' अधिकारियों में निम्नलिखित बुराइयां पनप जाती हैं "पृथकता, लोचहीनता, भावुकता का अभाव, स्थानीय दशाओं के विषय में अज्ञानता, कार्य में विलम्ब या टालमटोल करना, कार्य का बेढंगापन तथा आत्म-सन्तुष्टि।"[2]

---

1 Lord Heward, *New Despotism*, pp. 13-14

2 Prof William A. Robson, *The Civil Service in Britain and France*

(२) सिविल सेवकों पर संसद तथा मन्त्रि मण्डल का नियन्त्रण प्रभावशाली होना चाहिए।

(३) ऐसे प्रशासकीय न्यायाधिकरणों (Administrative tribunals) की स्थापना होनी चाहिए जिनके सम्मुख नागरिक सिविल सेवकों के विरुद्ध अपनी शिकायतें रख सकें और अपने दुखों को दूर करा सकें। बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक को यह अवसर प्राप्त होना चाहिए कि वह इनके द्वारा अपने दुखों व अपनी पीडाओं को दूर करा सके।

प्रोफेसर रोबसन (Robson) ने यह सुझाव दिया है कि

(१) सिविल सेवा पूर्णतया समाज में एकीकृत होने चाहियें। सिविल सेवा एक सामान्य नागरिक तक के प्रति भी जवाबदेह होनी चाहिए। ऐसा न हो कि सिविल सेवक स्वयं एक पृथक् वर्ग अथवा जाति का रूप धारण कर लें।

(२) सिविल सेवा मुख्यत विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक वर्गों की प्रतिनिधि (Representative) होनी चाहिए।

(३) शासकों (Governors) तथा शासितों (Governed) के बीच अर्थात् सरकारी विभागों (Government departments) तथा उन लोगों के बीच, जिनकी कि वे सेवा करते हैं, पत्र-व्यवहार अथवा सन्देशों के आदान प्रदान की एक प्रभावशाली तथा सतत् व्यवस्था होनी चाहिए।

(४) प्रशासन में सामान्य मनुष्यों अथवा गैर-सरकारी व्यक्तियों को सक्रिय रूप मे भाग लेना चाहिए। "एकीकरण (Integration), पत्र-व्यवहार अथवा सदेशों का आदान प्रदान (Communications) तथा प्रशासन में भाग लेना (Participation) ये शब्द उन लोगों को सदा दृष्टिगत रखने चाहियें जोकि यह चाहते हैं, कि प्रजातन्त्रीय सरकार की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के साथ लोकप्रशासन के सगठनात्मक सम्बन्ध कायम हों। इससे सुधार की ऐसी प्रवृत्तियाँ जागृत होती हैं जिनका यदि अनुसरण किया जाये तो ये सिविल सेवा को सर्वाधिक मात्रा में योग्य समर्थ जवाबदेह तथा उत्तरदायी बना देंगी।[1]

निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते हैं कि 'नौकरशाही' अधिकारी (Bureaucrats) राष्ट्र की सेवा करते हैं। अत उचित अवसर पर उनकी प्रशसा की जानी चाहिए और जब उनकी आलोचना की आवश्यकता हो, तो आलोचना भी की जानी चाहिए। नौकरशाही आधुनिक युग की एक अनिवार्य आवश्यकता है और इसको पूर्णत समाप्त करने की बात अविवेकपूर्ण तथा अवैधानिक है। होना यह चाहिए कि केवल अवरोध (Checks) ही इस प्रकार लगाये जायें कि जिससे 'नौकरशाही' अधिकारी जनता के वास्तविक सेवक बने रहें।

---

1 Prof William A Robson, *op cit*, pp 13 15

१५

सिविल अथवा असैनिक सेवा–इसके कार्य और विभिन्न पद्धतियां

(Civil Service—Its Functions And Various Systems)

सिविल सेवक (Civil servants) सरकार के वैतनिक कर्मचारी होते है। न्यायाधीश (Judges), सैनिक तथा अन्य अनेक व्यक्ति भी सरकारी कर्मचारी होते हैं परन्तु उन्हे सिविल सेवक नही माना जाता। ब्रिटिश राजकोष (British Treasury) द्वारा दी गई निम्नलिखित परिभाषा सिविल सेवा की व्याख्या के लिए एक सुविधाजनक मार्ग प्रस्तुत करती है

"मुख्य रूप मे सिविल सेवक की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि सम्राट् (Crown) का सेवक (जो कोई राजनीतिक अथवा न्यायिक पद नही रखता), जो सिविल स्थिति मे नियोजित होता है और जिसका पारिश्रमिक (Remuneration) पूर्णतया ससद द्वारा उपबन्धित धन मे से दिया जाता है।" सिविल सेवा की दो मुख्य श्रेणिया होती हैं निम्न लिपिक वर्ग तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारी वर्ग। उक्त प्रशासकीय अधिकारी विभाग (Department) के राजनैतिक प्रमुख से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं। वे नीतियो का निर्माण करने मे सरकार के मन्त्रियो (Ministers) की सहायता करते हैं और राज्य के बडे विभागो का नियन्त्रण एव निर्देशन करते है। इन उच्च पदाधिकारियो को कभी-कभी सिविल अथवा असैनिक सेवा का 'सार भूत वर्ग' (Elite class) कहा जाता है। सिविल सेवा मे प्रशासक (Administrators) तथा, साथ ही साथ, तकनीकज्ञ (Technicians) जैसे कि इजीनियर, डाक्टर और ड्राफ्ट्समैन (नक्शानवीस) सम्मिलित होते हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध मुख्यत उच्च प्रशासकीय वर्ग की समस्याओ से ही रहेगा। —

सिविल सेवको का मुख्य कार्य देश की विधि अथवा कानून (Law) का प्रबन्ध करना है। वे निष्ठा से, निष्पक्षता से तथा राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रह कर विधि को कार्यान्वित करते हैं। सिविल सेवा के उच्च पदाधिकारी नीति-निर्माण विधान (Legislations) तथा कराधान (Taxation) के मामलो मे अपने राजनैतिक प्रमुखो (Political heads) पर भारी प्रभाव डालते है। सिविल सेवक विशिष्ट परामर्श प्रदान करते हैं और तथ्य एव आंकडे (Facts and figures) प्रस्तुत करते है जिनके बिना आधुनिक युग मे विधि का निर्माण करना (Law-making) अव्यावहारिक एव दुष्कर है। कोई भी विधेयक (Bill) जोकि ससद के सामने प्रस्तुत किया जाता है उस महान् श्रम, तथा शक्ति का एक प्रमाण होता है जोकि सिविल सेवको द्वारा उसके

तैयार करने में लगाई जाती है। वित्तीय क्षेत्र में, सिविल सेवक केवल बजट ही तैयार नहीं करते अपितु एक बड़ी मात्रा में सरकार की कराधान तथा व्यय नीति (Taxation and expenditure policy) को भी प्रभावित करते हैं। सिविल सेवक विभागों का संचालन करते हैं और मन्त्रियो के, जिनके पास कि शायद ही कभी समय, ज्ञान तथा बिना सहायता के नीति-निर्माण करने की प्रवीणता होती है नीति सम्बन्धी निर्णयों पर भारी प्रभाव डालते हैं। प्रशासक विधान-मण्डल के कानूनों की व्याख्या एव विश्लेषण भी करते हैं और अनेक बार तो उनसे ससद के कानूनों के अन्तर्गत नियम तथा विनिमय बनाने को कहा जाता है (हस्तान्तरित विधान)। अपने राजनैतिक प्रधानों को वे परामर्श भी देते हैं। मन्त्री अपने वरिष्ठ अधिकारियों के परामर्श पर भरोसा करते हैं। रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) ने इस तथ्य को सुन्दर रूप में व्यक्त किया है यद्यपि उसमें काफी अतिशयोक्ति (Exaggeration) है। उन्होंने कहा कि "एक नवनियुक्त मन्त्री का विचार करो जिसे कि अपना पद सामान्य राजनीति के क्षेत्र में प्राप्त सफलताओं के प्रतिफल में मिला है। अधिकाश मामलों में यह देखा गया है कि जिस विभाग का उसे अध्यक्ष बनाया गया है उसके विशाल तथा जटिल कार्यों का उसे विशिष्ट ज्ञान नहीं होता ... । उसको ऐसे अधिकारियों के साथ कार्य करना पड़ता है जो विभाग की समस्याओं के अध्ययन में अपना पूरा समय लगाते हैं तथा जिनका विगत जीवन भी उन्हीं समस्याओं के अध्ययन में व्यतीत हुआ है जबकि वह (मन्त्री) ससार में अपनी प्रतिष्ठा कायम करने, अपनी स्थिति बनाने अथवा सार्वजनिक मचों पर धारा-प्रवाह भाषण देने में व्यस्त रहा करता था। वे उसके सामने सैकड़ों कठिन समस्याएं निर्णय के लिये लाते हैं, जिनमें से अधिकाश के विषय में वह कुछ नहीं जानता। वे उसके समक्ष सबसे अधिक निश्चयात्मक तर्कों एवं तथ्यों से युक्त अपने सुझाव रखते हैं। यह स्पष्ट है कि जब तक कि वह एक स्वाभिमानी गधा अथवा असाधारण समझ, शक्ति एव साहस वाला व्यक्ति हो न हो ९९ प्रतिशत मामलों में वह उनके विचारों में अपनी सहमति प्रकट करेगा और बिन्दुचिह्नित स्थान पर अपने हस्ताक्षर कर देगा ... । इस प्रकार लगभग सदैव कार्यालय की नीति ही विजयी होती है। इसकी शान्त दृढता व शान्त व्यवधान अथवा रुकावट की शक्ति तथा तथ्यों की पूर्ण जानकारी इसके ऐसे सबल अस्त्र हैं जिन पर एक असाधारण योग्यता का व्यक्ति ही विजय पा सकता है।"[1]

मन्त्रियों पर सिविल सेवा का प्रभाव निम्नलिखित तीन तत्वों पर निर्भर होता है

(१) सिविल सेवा का प्रभाव वरिष्ठ मन्त्रियों (Senior Ministers) की अपेक्षा उन मन्त्रियों पर अधिक होता है जिनके लिये कि अपना काम नया-नया होता है।

1 Ramsay Muir, *How Britain is government*, pp 42 43.

(२) यह तथ्यों एवं आंकडो के बारे मे उनके ज्ञान पर निर्भर होता है। यदि वे अपने कार्य तथा विभाग से सम्बन्धित तथ्यो एव आंकडो से अच्छी प्रकार परिचित है तो वे मन्त्रियो पर अधिक प्रभाव डाल सकेंगे।

(३) सरकार पर सिविल सेवा का प्रभाव इस बात पर निर्भर होता है कि सरकार उसका किस प्रकार उपयोग करती है। जब कोई ऐसा दल (Party) शासनारूढ होता है जोकि यथापूर्व स्थिति कायम रखने के लिए दृढप्रतिज्ञ होता है तो सिविल सेवा केवल नियामक कार्यों को ही सम्पन्न करती है और जब कोई ऐसा दल पदारूढ होता है जो सामाजिक परिवर्तनो से सयुक्त हो तो सिविल सेवा अधिक सक्रिय (Active) हो जाती है और इसका प्रभाव भी अधिक पडता है।"[1]

लूट-खसोट बनाम योग्यता प्रणाली
(Spoils *Versus* Merit system):

यह सर्वविदित है कि अमेरिकी कार्मिक व्यवस्था (American personnel system) 'लूट-खसोट प्रणाली' (Spoils system) पर आधारित थी अर्थात् विजेता राजनैतिक दल, इस सिद्धान्त के अनुसार कि 'उपलब्ध द्रव्य पर विजेताओ का ही अधिकार होता है', सभी सरकारी पदो पर अपने दल के आदमियो को पदारूढ करता था। सरकारी अथवा लोक-पदो (Public offices) को लूट का माल या द्रव्य (Spoils) समझा जाता था जिसका उपयोग चुनाव (Election) मे विजयी होने वाला राजनैतिक दल करता था।

ससार के लगभग सभी देशो मे कर्मचारी-वर्ग की नियुक्ति के आधार के रूप मे योग्यता सिद्धान्त (Merit principle) के प्रचलन से पूर्व सरक्षणता (Patronage) की पद्धति वर्तमान थी। फ्रास की कार्मिक व्यवस्था के इतिहास के बारे मे लिखते हुए प्रो॰ हरमन फिनर (*Hermen Finer*) ने कहा कि "फ्रास मे क्रान्ति (Revolution) होने तक राज्य भर मे दर्जन भर अथवा कुछ अत्यन्त ऊचे पदो को छोडकर लगभग प्रत्येक केन्द्रीय अथवा स्थानीय पद (Office) केवल व्यक्तिगत क्रय (Purchase), उपहार (Gift) अथवा उत्तराधिकार (Inheritance) के द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। सभी सरकारी पद व्यक्तिगत सम्पत्ति (Private property) की ही एक किस्म बन गये थे और एक विस्तृत व्यवहार-शास्त्र (Jurisprudence) के द्वारा इनके हस्तान्तरण की व्यवस्था की जाती थी। ये पद, जोकि बेचे जा सकते थे तथा वंश-परम्परा से प्राप्त किये जा सकते थे, द्विमुखी प्रकृति के थे: एक तो वे सम्पत्ति (Property) बने हुए थे और दूसरे उनका रूप सरकारी कार्य (Public function) का था। उन समय कोई भी व्यक्ति जो कि पद प्राप्त करना चाहता था, मालिक से उसे सम्पत्ति के रूप मे खरीद लेता था और फिर उस पद का कार्य चालू करा दिया करता था। क्रेता सम्राट को यह अवसर प्रदान करता

1 *Also refer to, The Civil Service To-day*, E H Dale, the Higher Civil Service of Great Britain, William A Robson, The Civil Service in England and France

था कि वह (सम्राट) उससे उस पद को सभालने की क्षमता की गारन्टी की माँग कर सकें, परन्तु वास्तव मे, सम्राट तथा उसके पदाधिकारी, जिनके रजिस्टरो मे इन हस्तान्तरणो तथा पदनियुक्तियो का लेखा लिखा जाता था, ऐसी गारन्टियो की माग ही नही करते थे। वे तो व्यक्तिगत रूप से मिलने वाली फीसों, रिश्वतो तथा ऐसी ही अन्य बातो से पूर्णतया सन्तुष्ट रहते थे। वैसे कोई भी व्यक्ति किसी पद की कीमत देकर कानूनी रूप से उसका अधिकारी नही बन सकता था लेकिन व्यवहार में, प्रत्येक व्यक्ति कीमत चुका कर पद प्राप्त कर लेता था। योग्यता (Ability) का यदि धन अथवा परिवार का समर्थन प्राप्त नही था तो वह सरकारी पदो से बिल्कुल बहिष्कृत ही थी। सक्षेप मे, व्यवस्था यह थी कि धन लेकर पदो की बिक्री की जाती थी और वह बिक्री पक्षपात से प्रभावित होती थी।"[1]

इगलैण्ड मे भी सरक्षणता की व्यवस्था वर्तमान थी। **एडवर्ड बर्क** (Edward Burke) ने ११ फरवरी १७८० को लोकसभा (House of Commons) मे दिये गये एक भाषण मे "ससद (Parliament) की स्वतन्त्रता की अधिक सुरक्षा की तथा सिविल सेवा व अन्य सस्थाओ मे अल्प-व्यय सम्बन्धी सुधार की एक योजना प्रस्तुत की" जिसमे उन्होने कार्मिक व्यवस्था (Personnel system) की आलोचना की और "उसके उस बडे मूलभूत दोष का उल्लेख किया कि न तो व्यवस्था उद्देश्य से मेल खाती है और न कर्मचारी कार्य से।"

लूट खसोट प्रणाली इस विश्वास के कारण अधिक प्रचलित हो गई थी कि दलीय राजनीति का सचालन सर्वोत्तम तरीके से उन्ही व्यक्तियों के द्वारा किया जा सकता है जोकि दल (Party) के सिद्धान्तो तथा उसकी विचारधाराओ मे विश्वास रखते हो। अत असैनिक अथवा सिविल सेवा मे केवल अपने दल के सदस्यो को ही नियुक्त किया जाना चाहिये। यह समझा जाता था कि दल के व्यक्ति के रूप मे प्रशिक्षण (Training) प्राप्त करना ही लोक-सेवक (Public servant) बनने के लिए पर्याप्त योग्यता है। विलियम टर्न (William Turn) ने सरक्षणता की प्रणाली (System of patronage) की पैरवी करते हुए आधुनिक सिविल सेवा के कर्मचारियो की आलोचना की है। उन्होने कहा कि —

"यह एक अनोखी पद्धति है जिसमे यह माना जाता है कि मनुष्य शारीरिक अवयवो के सरल मिश्रण (Simple organic compounds) हैं जोकि प्रयोगशाला की विधियो (Laboratory methods) के आधीन होते हैं। इनके नमूनो के परीक्षण किये जाते हैं और उनके परिणामो के आधार पर उनकी सूचियाँ बनाली जाती हैं तथा उनको उस समय तक फाइलो मे रखा जाता है जब तक कि उनकी आवश्यकता नही होती । उनका विश्वास है कि सिविल सेवक विचारशील नही होते ; सरक्षण प्राप्त कर्मचारियो (Patronage employees) के समान उनको प्रशासन मे कोई अभिरुचि या टेक (Stake) नही होती और वे काफी लम्बी अवधि तक अपने

1 Herman Finer, *op. cit*, pp 750-751

पदों पर बने रहते हैं, वे दैनिक कार्य के अभ्यासी व्यक्ति बन जाते हैं, उस घोड़े के समान, जिसकी दोनों आँखो की ओर को आड़ के लिए पट्टियाँ लगी रहती हैं, वे केवल एक ही दिशा की ओर को देखते हैं ।"[1]

कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये लूट प्रणाली के प्रचलन की अन्य प्रेरणायें इस कारण उत्पन्न होती थी कि विजयी दल अपने कार्यकर्ताओं अथवा मित्रो को सरकारी पद देकर उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता था। जब एक दल ऐसा करता था तो अन्य दल भी, जैसे ही वह शक्ति प्राप्त करता था, ऐसा ही करता था। एक दल जब अपने प्रतिद्वन्दियों का इस प्रकार बहिष्कार करता था तो दूसरा दल भी शासनारूढ होने पर इसका बदला लेता था। शासनारूढ दल के परिवर्तन के साथ ही सिविल सेवा के कर्मचारी भी बदल दिये जाते थे। संरक्षणता के पक्ष मे प्रस्तुत किया जाने वाला सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि सरकार उस समय तक अपनी नीतियों को अधिकतम प्रभावपूर्ण रीति से क्रियान्वित नहीं कर सकती जब तक कि उसके प्रमुख कर्मचारी उन उद्देश्यो के प्रति पूर्णतया सहानुभूति न रखें जिन्हें कि प्राप्त करने के लिये वह प्रयास कर रही है।

यह बात तो अब बिल्कुल स्पष्ट रूप से तथा बिना किसी संदेह के कही जा सकती है कि 'लूट प्रणाली' से प्रशासन (Administration) मे अनेक बुराइयाँ आ जाती हैं। प्रशासन भ्रष्टाचारी (Corrupt) तथा अकुशल हो जाता है। देश का राजनैतिक जीवन बड़ा गंदा हो जाता है क्योकि विभिन्न दलों का मुख्य ध्येय यही होता है कि विधान मण्डल (Legislature) मे अधिक से अधिक स्थान (Seates) प्राप्त किये जायें जिससे कि सरकारी पदों पर अपने कार्यकर्त्ताओं तथा समर्थकों को नियुक्त किया जा सके। दल के अयोग्य तथा भ्रष्टाचारी कार्यकर्त्ता उच्च प्रशासकीय पदों पर नियुक्त कर दिये जाते हैं। यह सम्पूर्ण व्यवस्था राजनीति (Politics) तथा प्रशासन के प्रति सार्वजनिक घृणा उत्पन्न करती है। जार्ज विलियम करटिस (George William Curtis) ने लूट प्रणाली के गंभीर दोषों के बारे मे लिखते हुए कहा कि

"लोक सेवा (Pubilc service) का दलीय आधार पर दुरुपयोग करना लोक-प्रिय सरकार के प्रति मौलिक विश्वासघात है क्योंकि इसके द्वारा सार्वजनिक कल्याण (Public welfare) की बजाय व्यक्तिगत स्वार्थ राजनैतिक कार्यों का प्रेरणा स्रोत बन जाता है……। लूट प्रणाली की प्रमुख बुराइयों मे से एक यह है कि संरक्षणता (Patronage) के प्रमादपूर्ण दुरुपयोग तथा अत्यधिक अपव्यय एवं भ्रष्टाचार ने दल को इतना अधिक निरंकुश तथा स्वच्छन्द बना दिया है कि देश का सद्विवेक तथा बुद्धि-मत्ता अधिकतर सिद्धांतहीन अज्ञानता और धृष्ठतापूर्ण चालाकी की दासता में दब गये हैं।"

---

1 William Turn In defence of Patronage,' in "Improved Personnel in Government Service"

योग्यता प्रणाली
(Merit System) :

लोग अब यह अनुभव करने लगे हैं कि पद (Office) 'योग्य' व्यक्ति को दिया जाना चाहिए, विजयी' (Victor) को नहीं । सभी लोकतंत्रीय देशों में 'सिविल सेवा योग्यता सिद्धान्त' (Merit principle) पर आधारित है । संयुक्त राज्य अमेरिका में, जो कि लूट-प्रणाली की कुख्यात भूमि रही है, पन्डलटन अधिनियम' (Pendleton Act) के पास होने के साथ ही, सन् १८८३ में सुधार आंदोलन प्रारम्भ हुआ था। एक संघीय सिविल सेवा आयोग (Federal Civil Service Commission) की स्थापना की गई थी । सिविल सेवा के पदों का क्रमानुसार वर्गीकरण कर दिया गया था और उनको नियुक्ति के नियमों के अधीन कर दिया गया था ।

'योग्यता प्रणाली' का अर्थ है—

(१) केवल योग्य एवं समर्थ व्यक्ति ही सिविल अथवा असैनिक पदों पर नियुक्त किये जायेंगे । प्रत्याशी अथवा उम्मीदवार (Candidates) की योग्यता अथवा क्षमता ही सिविल सेवा के चुनाव का आधार होगी ।

(२) प्रत्याशियों (Candidates) की क्षमता अथवा योग्यता का निर्णय एक निष्पक्ष तथा स्वतंत्र सेवा आयोग के द्वारा किया जायेगा ।

(३) भर्ती (Recruitment) खुली प्रतियोगिता के द्वारा होगी ।

(४) पदों (Posts) के लिए प्रतियोगिता करने वाले सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किये जायेंगे ।

(५) किसी भी दल से सम्बन्धित होने के आधार पर नागरिक-नागरिक में कोई भेद नहीं किया जायेगा । सभी नागरिकों के साथ न्याय किया जायेगा ।

(६) लोगों की नियुक्तियाँ दलीय आधार (Party basis) पर नहीं की जायेंगी । व्यक्तियों को पद के लिए उनकी योग्यता के आधार पर चुना जायेगा, राजनैतिक सेवाओं के पुरस्कार के आधार पर नहीं ।

(७) पद के कार्यकाल के विषय में स्थायित्व (Parmanence) रहेगा । सिविल सेवा का भाग्य राजनैतिक दल के भाग्य के साथ नहीं बंधा रहेगा ।

(८) सिविल सेवक राजनीति में तटस्थ (Neutral) रहेंगे ।

(९) पदोन्नतियाँ (Promotions) भी योग्यता के आधार पर ही किये जायेंगे ।

योग्यता प्रणाली सिविल सेवा में पद के लिए दलबन्दी के आधार पर की जाने वाली खींचतान के द्वारा उत्पन्न होने वाले अनैतिक प्रभाव को दूर करती है । योग्यता प्रणाली के अन्तर्गत सिविल सेवक किसी भी दल (Party) के बजाय सरकार के प्रति वफादार रहते हैं । योग्यता प्रणाली कर्मचारियों को पदावधि (Tenure) की सुरक्षा प्रदान करती है जिसके बिना कोई भी तकनीकी अथवा व्यावसायिक अधिकारी अपना कार्यालय का काम नहीं कर सकता । यह प्रणाली सिविल सेवा को एक

व्यवसाय (Profession) के रूप मे ऊपर उठाती है और इस प्रकार सेवा के अन्तर्गत उच्च कोटि के विशिष्टीकरण (Specialisation) को सम्भव बनाती है जो कि सरकार द्वारा उन अनेक तकनीकी (Technical) कार्यों की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है जिनका भार आजकल सरकार अपने ऊपर लेती है।

उचित पदो पर उचित एव योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जायेंगे और राज्य के किसी भी पद के लिए प्रतियोगिता के एक समान अवसर प्रदान करके सभी नागरिको के साथ पूर्ण न्याय किया जायेगा। सिविल सेवा की नियुक्तियो के समय योग्यता ही एकमात्र विचारणीय बात होगी।

आधुनिक सिविल सेवा विधियो (Laws) का इस प्रकार निर्माण किया गया है कि जिससे लोक कर्मचारियो के चुनाव की योग्यता प्रणाली को लागू किया जा सके

(१) राजनैतिक विचारो के आधार पर कर्मचारियो को पदो पर नियुक्त करना अथवा हटाना अब अवैधानिक (Illegal) कर दिया गया है।

(२) किसी भी दल के सगठन के लिए कर्मचारियो को अपनी सेवायें अथवा धन देने को बाध्य करना भी अवैधानिक है।

(३) भर्ती तथा पदोन्नति आदि के मामलो मे सिविल सेवा पर नियन्त्रण लागू करने के लिए एक स्वतत्र एव निष्पक्ष सिविल सेवा अभिकरण (Agency) की स्थापना की गई है।

(४) सिविल सेवा के पदो पर नियुक्तियाँ करने के लिए लिखित परीक्षाओ (Written examinations) तथा अन्य लघु परीक्षाओं अथवा जाचो पर आधारित कार्यविधियों (Procedures) की एक पद्धति का निर्माण किया है।

(५) राजनैतिक विचारो के आधार पर कर्मचारियो को अपने पदो से हटाये जाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी कार्यविधियो की एक पद्धति की स्थापना की गई।

प्रत्येक पद पर सबसे अधिक योग्य व्यक्ति की ही नियुक्ति की जानी चाहिये। "यह आदर्श अथवा लक्ष्य हमारे समाज मे व्यापक रूप से मान्य कुछ महत्ताओ का एक प्रतिबिम्ब (Reflection) है, अर्थात् यह कि . (१) प्रशासकीय क्षेत्र मे, कर्मचारियो का सम्बन्ध सरकारी सेवा की कुशलता (Efficiency) से होना चाहिये और यह कि कर्मचारियो की योग्यता एव क्षमता ही प्राप्त की जाने वाली कार्य-कुशलता के स्तर का मुख्य निर्धारक तत्व होनी चाहिए , (२) यह कि प्रशासकीय शाखा के कर्मचारी "नीति" (Policy) के मामलो— अर्थात् मूलभूत महत्व के प्रश्नो—से सम्बन्धित नही होते हैं अत सिविल सेवा राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रह सकती है। और रहनी भी चाहिए , और (३) यह कि सरकारी नौकरियो के आर्थिक अवसर सभी नागरिको के लिये बिना किसी पक्षपात के उपलब्ध होने चाहियें।"[1]

1 *Public Administration*, Herbert A Simon

योग्यता प्रणाली
(Merit System) :

लोग अब यह अनुभव करने लगे हैं कि पद (Office) 'योग्य' व्यक्ति को दिया जाना चाहिये, विजयी' (Victor) को नही। सभी लोकतन्त्रीय देशों में 'सिविल सेवा योग्यता सिद्धान्त' (Merit principle) पर आधारित है। संयुक्त राज्य अमेरिका मे, जो कि लूट-प्रणाली की कुख्यात भूमि रही है, पेन्डलटन अधिनियम' (Pendleton Act) के पास होने के साथ ही, सन् १८८३ मे सुधार आंदोलन प्रारम्भ हुआ था। एक संघीय सिविल सेवा आयोग (Federal Civil Service Commission) की स्थापना की गई थी। सिविल सेवा के पदों का क्रमानुसार वर्गीकरण कर दिया गया था और उनकी नियुक्ति के नियमों के अधीन कर दिया गया था।

'योग्यता प्रणाली' का अर्थ है—

(१) केवल योग्य एवं समर्थ व्यक्ति ही सिविल अथवा असैनिक पदों पर नियुक्त किये जायेंगे। प्रत्याशी अथवा उम्मीदवार (Candidates) की योग्यता अथवा क्षमता ही सिविल सेवा के चुनाव का आधार होगी।

(२) प्रत्याशियों (Candidates) की क्षमता अथवा योग्यता का निर्णय एक निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र सेवा आयोग के द्वारा किया जायेगा।

(३) भर्ती (Recruitment) खुली प्रतियोगिता के द्वारा होगी।

(४) पदों (Posts) के लिए प्रतियोगिता करने वाले सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किये जायेंगे।

(५) किसी भी दल से सम्बन्धित होने के आधार पर नागरिक-नागरिक में कोई भेद नही किया जायेगा। सभी नागरिकों के साथ न्याय किया जायेगा।

(६) लोगों की नियुक्तियाँ दलीय आधार (Party basis) पर नहीं की जायेंगी। व्यक्तियों को पद के लिए उनकी योग्यता के आधार पर चुना जायेगा, राजनैतिक सेवाओं के पुरस्कार के आधार पर नहीं।

(७) पद के कार्यकाल के विषय मे स्थायित्व (Parmanence) रहेगा। सिविल सेवा का भाग्य राजनैतिक दल के भाग्य के साथ नही बंधा रहेगा।

(८) सिविल सेवक राजनीति मे तटस्थ (Neutral) रहेंगे।

(९) पदोन्नतियाँ (Promotions) भी योग्यता के आधार पर ही किये जायेंगे।

योग्यता प्रणाली सिविल सेवा मे पद के लिए दलबन्दी के आधार पर की जाने वाली खींचतान के द्वारा उत्पन्न होने वाले अनैतिक प्रभाव को दूर करती है। योग्यता प्रणाली के अन्तर्गत सिविल सेवक किसी भी दल (Party) के बजाय सरकार के प्रति वफादार रहते हैं। योग्यता प्रणाली कर्मचारियों को पदावधि (Tenure) की सुरक्षा प्रदान करती है जिसके बिना कोई भी तकनीकी अथवा व्यावसायिक अधिकारी अपना कार्यालय का काम नही कर सकता। यह प्रणाली सिविल सेवा को एक

व्यवसाय (Profession) के रूप मे ऊपर उठाती है और इस प्रकार सेवा के अन्तर्गत उच्च कोटि के विशिष्टीकरण (Specialisation) को सम्भव बनाती है जो कि सरकार द्वारा उन अनेक तकनीकी (Technical) कार्यों की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है जिनका भार आजकल सरकार अपने ऊपर लेती है।

उचित पदो पर उचित एव योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जायेगे और राज्य के किसी भी पद के लिए प्रतियोगिता के एक समान अवसर प्रदान करके सभी नागरिको के साथ पूर्ण न्याय किया जायेगा। सिविल सेवा की नियुक्तियो के समय योग्यता ही एकमात्र विचारणीय बात होगी।

आधुनिक सिविल सेवा विधियो (Laws) का इस प्रकार निर्माण किया गया है कि जिससे लोक कर्मचारियो के चुनाव की योग्यता प्रणाली को लागू किया जा सके

(१) राजनैतिक विचारो के आधार पर कर्मचारियो को पदो पर नियुक्त करना अथवा हटाना अब अवैधानिक (Illegal) कर दिया गया है।

(२) किसी भी दल के सगठन के लिए कर्मचारियो को अपनी सेवायें अथवा धन देने को बाध्य करना भी अवैधानिक है।

(३) भर्ती तथा पदोन्नति आदि के मामलो मे सिविल सेवा पर नियन्त्रण लागू करने के लिए एक स्वतन्त्र एव निष्पक्ष सिविल सेवा अभिकरण (Agency) की स्थापना की गई है।

(४) सिविल सेवा मे पदो पर नियुक्तियाँ करने के लिए लिखित परीक्षाओ (Written examinations) तथा अन्य लघु परीक्षाओ अथवा जाचो पर आधारित कार्यविधियो (Procedures) की एक पद्धति का निर्माण किया है।

(५) राजनैतिक विचारो के आधार पर कर्मचारियो को अपने पदो से हटाये जाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी कार्यविधियो की एक पद्धति की स्थापना की गई।

प्रत्येक पद पर सबसे अधिक योग्य व्यक्ति की ही नियुक्ति की जानी चाहिये। "यह आदर्श अथवा लक्ष्य हमारे समाज मे व्यापक रूप से मान्य कुछ महत्ताओ का एक प्रतिबिम्ब (Reflection) है, अर्थात् यह कि (१) प्रशासकीय क्षेत्र में, कर्मचारियो का सम्बन्ध सरकारी सेवा की कुशलता (Efficiency) से होना चाहिये और यह कि कर्मचारियो की योग्यता एव क्षमता ही प्राप्त की जाने वाली कार्य-कुशलता के स्तर का मुख्य निर्धारक तत्व होनी चाहिए, (२) यह कि प्रशासकीय शाखा के कर्मचारी "नीति" (Policy) के मामलो—अर्थात् मूलभूत महत्व के प्रश्नो—से सम्बन्धित नही होते हैं अत सिविल सेवा राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रह सकती है। और रहनी भी चाहिए, और (३) यह कि सरकारी नौकरियो के आर्थिक अवसर सभी नागरिको के लिये बिना किसी पक्षपात के उपलब्ध होने चाहियें।'[1]

1 *Public Administration* Herbert A Simon

योग्यता प्रणाली के कारण विभिन्न राष्ट्रों के राजनैतिक जीवन में निखार आ गया है और कर्मचारियों के लिए, जो कि योग्यता के आधार पर चुने जाते हैं, यह सम्भव हो गया है कि वे सरकारी नौकरी को अपना स्थायी जीवन-क्रम बना सकें। अब कोई भी नागरिक राज्य के किसी भी पद को पाने की आशा कर सकता है। इस प्रकार योग्यता प्रणाली 'सभी के लिए समान अवसर तथा समान व्यवहार' के लोकतन्त्रीय सिद्धांत का ही एक विस्तार है। इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियों को दलीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने पदों की शक्तियों के दुरुपयोग करने का कोई प्रलोभन नहीं मिल सकता।

कुलीनतन्त्रीय तथा प्रजातन्त्रीय प्रणाली
(Aristocratic and Democracy System) :

प्राय दो अन्य प्रकार की कार्मिक-प्रणालियों (Personnel system) का उल्लेख भी किया जाता है। वे कुलीनतन्त्रीय और प्रजातन्त्रीय किस्म की कार्मिक प्रणालियाँ हैं। यदि कर्मचारियों के निर्देशक वर्ग की नियुक्ति, प्रतियोगिता के द्वारा नहीं बल्कि नियोक्ता प्राधिकारी (Appointing authority) के व्यक्तिगत विवेक के आधार पर समाज के केवल उच्च श्रेणी के लोगों में से ही की जाती है तो उसे कुलीनतन्त्रीय किस्म की कार्मिक प्रणाली की संज्ञा दी जाती है। इसमे सिविल सेवा के उच्च पदों पर समाज के केवल उच्च वर्ग के व्यक्तियों का ही एकाधिकार (Monopoly) होता है और देश की बहुसंख्यक जनता देश के प्रशासन में भाग लेने से वंचित हो जाती है। **विलोबी** *(Willoughby)* ने ब्रिटिश सिविल सेवा को कुलीनतन्त्रीय प्रणाली का नाम दिया है क्योंकि केवल आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के स्नातक (Graduates) ही इसमें सम्मिलित हो सकते हैं, और केवल धनिक व्यक्तियों के लडके तथा लडकियाँ ही आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की महंगी शिक्षा के व्यय का भार उठा सकते हैं।

प्रजातन्त्रीय प्रणाली में, सरकारी सेवा में, प्रवेश के लिए आयु की कोई सीमा नहीं होती और कर्मचारियों को यह अवसर प्राप्त होता है कि वे सिविल सेवा में ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंच सकें। कोई भी व्यक्ति सिविल अथवा असैनिक सेवा के सबसे नीचे के पद पर नियुक्त होकर क्रमश सबसे ऊपर के पद पर अर्थात् सीढी के ऊपर के डण्डे पर पहुंच सकता है। प्रजातन्त्रीय प्रणाली के तत्व योग्यता प्रणाली Merit system) में पाये जाते हैं जिसका पहले ही ऊपर विवेचन किया जा चुका है।

TEXT BOOK

१६

जीवनवृत्ति के रूप में सरकारी सेवा
(Government Service as a Career)

सरकारी सेवा अथवा सरकारी नौकरी (Government service) के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सिविल सेवको को उसके सम्बन्ध मे आकर्षण प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि वे सरकारी सेवा को एक स्थायी जीवनवृत्ति (Permanent career) के रूप मे अपना सकें। ऐसी दशायें उत्पन्न की जानी चाहियें कि जिनके द्वारा लोगो को उनके सम्पूर्ण जीवन के लिए सरकारी सेवा मे प्रवेश के लिये आकर्षित किया जा सके।

दिसम्बर १६३३ मे, अमेरिका की सामाजिक विज्ञान अनुसधान परिषद् (Social Science Research Council) ने लोक सेवाओ की जाँच के लिए एक आयोग (Commission) की नियुक्ति की, जिसने जीवनवृत्ति की दृष्टि से सरकारी सेवा की स्पष्ट रूप से परिभाषा की। आयोग के शब्दो मे - 'हम सिफारिश करते है, कि सरकार का दिन-प्रतिदिन का प्रशासनिक कार्य निश्चित रूप से जीवनवृत्ति सेवा (Career service) बन जाये। इससे हमारा अभिप्राय यह है कि ऐसे पग उठाये जायें कि सरकारी सेवा एक श्रेयस्कर जीवनचर्या बने; क्षमता, चरित्र तथा निष्ठा वाले युवक व युवतियो के प्रवेश के लिए सरकारी सेवा खुली रहे तथा आकर्षक बनी रहे; और विकास तथा सेवा के आधार पर विशिष्टता और सम्मान के पदो के लिए उन्नति के अवसर सुलभ हो।'[1]

इस प्रकार आयोग ने जीवनवृत्ति (Career) को इस तरह परिभाषित किया कि "यह एक सामान्य व्यवसाय है जिसे कि एक व्यक्ति सामान्यतया प्रगति की आशा से अपनी युवावस्था मे अपनाता है तथा जो निवृत्ति-काल (Retirement) तक रहता है।" आयोग ने सरकार मे जीवन-वृत्ति सेवा (Career *service*) की परिभाषा इस प्रकार की, कि "यह एक लोक-सेवा अथवा सरकारी सेवा (Public service) है *जिसका सगठन इस प्रकार किया जाता है कि जिससे जीवनवृत्तियो को प्रोत्साहन* मिले।[2]"

जीवनवृत्ति सेवा का उद्देश्य यह है कि सरकारी सेवाओ मे गुणो तथा अभिलाषाओ वाले युवक व युवतियो को आकर्षित किया जाये तथा रखा जाए। प्रगति

1 Better Government Personnel, 1935 p 3

2 Better Government Personnel, 1935 p 25

तथा पदोन्नति के ऐसे अवसर प्रदान किये जायें, कि जिससे लोगों को सरकारी सेवा को स्थायी जीवनवृत्ति के रूप में चुनने की प्रेरणा मिले। इस प्रकार सरकार को ऐसी दशायें उत्पन्न करनी चाहिए कि जिनमे सिविल सेवक सन्तोष अनुभव करें और अपने आपको सर्वोत्तम रूप मे सेवा में लगा सकें। एक जीवनवृत्ति सेवा अच्छे तथा कुशल प्रशासन का सर्वश्रेष्ठ बीमा (Insurance) है। लोग सरकारी सेवा को अपनी स्थायी जीवनवृत्ति के रूप में केवल तभी अपना सकते हैं जबकि योग्यता के अनुसार उन्नति करने के अवसर प्रदान किये जायें। यदि भावना यह है कि सरकारी सेवा में प्रवेश के पश्चात् प्रगति के समस्त अवसर नष्ट हो जाते हैं तो किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसा कोई आकर्षण नहीं रहेगा कि वह सरकारी सेवा को एक स्थायी जीवन-वृत्ति के रूप मे अपनाये।

जीवनवृत्ति के रूप मे सरकारी सेवा की स्थापना करने के लिए तथा सेवा में सर्वोत्तम गुणों वाले व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए कुछ अनिवार्यताओं का ध्यान रखना होता है। वे निम्नलिखित हैं

(१) सभी नागरिकों को सरकारी सेवा में प्रवेश के लिए 'समान अवसर' प्राप्त होने चाहियें।

(२) समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए।

(३) पदोन्नति (Promotion) तथा प्रगति के समान अवसर प्रदान किये जाने चाहियें। पदोन्नति योग्यता (Merit) के आधार पर होनी चाहिए, उच्च पदाधिकारियों के व्यक्तिगत पक्षपात के आधार पर नहीं। सरकारी सेवा में योग्य व्यक्तियों के लिए ऐसे अवसर उपलब्ध होने चाहिए कि वे ऊँचे से ऊँचे वेतन वाले पदों तक उन्नति कर सकें। यदि सरकारी सेवा में योग्य तथा गुणों वाले व्यक्तियों को रखना है तो उनकी श्रेष्ठ योग्यताओं के विकास का एक उपयुक्त द्वार अवश्य खुला रहना चाहिए।

(४) पद की सुरक्षा और स्थिरता होनी चाहिए। पद मालिक अथवा नियोक्ता (Employer) की सनक, तरंग अथवा कृपा पर निर्भर नहीं होना चाहिये। अयोग्य व्यक्तियों को पदच्युत (Dismiss) कर दिया जाना चाहिए किन्तु इससे पूर्व उन्हें अयोग्यता अथवा असमर्थता के आरोपों (Charges) का जवाब देने के लिए समुचित अवसर प्रदान किये जाने चाहिये।

जीवन-वृत्ति के सिद्धान्त के मार्ग मे आने वाली बाधायें
(Hindrances in the way of Career Principle)

ऐसे अनेक तत्व हैं जिनके कारण जीवन-वृत्ति सिद्धान्त के विकास में बाधा पड़ी है।

(१) जीवनवृत्ति के सिद्धान्त के विकास मे सबसे पहली बाधा यह है कि किसी भी विशिष्ट पद के लिए 'स्थानीय निवासियों' की माँग की जाती है। कुछ

पदो पर केवल स्थानीय व्यक्ति (Local people) ही नियुक्त किये जाते हैं। सघीय शासन-व्यवस्था वाले देश मे तो, राज्य के पद के लिए राज्य का ही निवासी होना अत्यन्त आवश्यक होता है। यह स्थिति उन्नति के अवसरो को प्रतिबन्धित करती है क्योकि यह हो सकता है कि गुणो से युक्त एक व्यक्ति स्थानीय निवासी' (Local rasident)) न हो।

(२) कभी-कभी कर्मचारियो की पदोन्नतियाँ (Promotions) केवल उसी विभाग (Department) मे की जाती हैं जिसमे कि वे कार्य कर रहे होते हैं, *उदाहरणार्थ, रेलवे कर्मचारियो की पदोन्नति केवल रेलवे विभाग मे ही की जा सकती* है। यह स्थिति लोक अधिकारियो की पदोन्नति के क्षेत्र को सीमित करती है।

(३) एक व्यापक भावना यह पाई जाती है कि सरकारी कर्मचारी तो 'लकीर के फकीर' हो जाते हैं और उनमे कुशलता के लिय कोई प्रेरणाये नही पाई जाती। इन तत्वो ने अनेक योग्य व गुणो से युक्त व्यक्तियो को सरकारी सेवा को जीवनवृत्ति के रूप मे अपनाने के प्रति हतोत्साहित किया है। *सरकारी सेवा को जीवनवृत्ति के* रूप मे अपनाये जाने के मार्ग मे आने वाली इन बाधाओ को दूर करने के लिये प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये।

पदोन्नति के लिए उपलब्ध अवसर
(Available opportunities for Promotion):

जीवनवृत्ति व्यवस्था (Career system) कर्मचारियो को उपलब्ध होने वाले पदोन्नति के अवसरों की सख्या पर निर्भर होती है। वे महत्वपूर्ण तत्व, जोकि पदोन्नति के अवसरो की सख्या का निर्धारण करते हैं, निम्नलिखित हैं

(१) "सगठन के बढने (अथवा घटने) की दर,

(२) जीवनवृत्ति-स्तूप (Career Pyramid) का आकार (विशेषकर, यह कि सेवा के प्रत्यक स्तर पर ऊपर की ओर को पदो की सख्या कितनी तेजी से घटती है);

(३) उन नियुक्तियो (Appointments) की सख्या जोकि अन्दर से पदोन्नति के रूप मे नही बल्कि बाहर से की जाती हैं, और

(४) कार्य-काल की औसत अवधि जब तक कि कर्मचारी किसी भी स्तर पर पदो पर कार्य करते हैं। यह चौथा तत्व निम्नलिखित बातो पर निर्भर होता है (क) सेवा के प्रत्येक स्तर पर नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियो की औसत आयु, और (ख) वह औसत आयु जिस पर कि कर्मचारी किसी भी स्तर पर या उससे ऊपर सेवानिवृत्ति (Retirement), त्याग-पत्र (Resignation) (जिसमे अन्य सगठनो के श्रेष्ठतर पदो के लिये की जाने वाली पदोन्नतियाँ भी सम्मिलित हैं), मृत्यु अथवा पदच्युति (Dismissal) के द्वारा सगठन से पृथक् किये जाते हैं।"[1]

---

1 Herbert A Simon and others, Public Administration, *op cit*, pp 344-45

इन तत्वो के आधार पर हम पता लगा सकते हैं, कि कर्मचारी किस सीमा तक निम्नस्तर से ऊपर की ओर को जा सकते हैं। यदि संगठन वृद्धि पर है तो कर्मचारियों की पदोन्नति के अवसर भी बढ जायेंगे। यदि बाहर से की जाने वाली नियुक्तियों की संख्या अधिक है तो अन्दर पदोन्नतियों की संख्या कम होगी। यदि कर्मचारी बाद की आयु मे उच्च पदो पर पहुँचते है और जल्दी सेवानिवृत्त (Retire) हो जाते हैं तो एक बडी संख्या में कर्मचारियो की पदोन्नति के अवसर उत्पन्न हो जायेंगे। जिन स्तरो पर पदो की संख्या अधिक होती है, कर्मचारियो को उन स्तरो तक पहुँचने का एक श्रेष्ठ अवसर प्राप्त होता है।

सरकार म कर्मचारियो की भिन्न भिन्न श्रेणियां होती हैं। अत. सभी श्रेणी के कर्मचारियो को समुचित प्रगति तथा पदोन्नति के अवसर प्रदान किये जाने चाहिये।

विशेषज्ञों के लिए जीवन वृत्ति
(Career for specialists)

सरकार आजकल विज्ञान, शिल्पकला (Technology), उद्योग, व्यापार एव वाणिज्य के विभिन्न क्षेत्रो म अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करती है। अत अनेक तकनीकी (Technical) तथा व्यावसायिक (Professional) वर्गों के व्यक्ति सरकारी नौकरियो म लिये जात हैं। सेवा के इस वर्ग को भी उन्नति के उपयुक्त अवसर प्रदान किये जाने चाहियें। इन तकनीकी कर्मचारियो को उन्नति की दृष्टि से पदो (Positions) के एक पद-सोपान (Hierarchy) के क्रम मे वर्गीकृत (Classified) किया जाना चाहिये।

लिपिक-वर्ग के कर्मचारियों के लिए जीवन-वृत्ति
(Career for Clerical Personnel)

सरकार को सार्वजनिक पत्रो व जाँचो आदि के उत्तर की प्रकृति के दैनिक अथवा नैत्यक कार्य (Routine work) भी सम्पन्न करने पडते हैं। ये नैत्यक कार्य *सरकार के लिपिक-वर्ग द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। अत इनकी पदोन्नति के नियम* भी स्पष्ट रूप से निर्धारित किये जाने चाहियें।

सामान्य प्रशासन मे जीवन-वृत्ति
(Career in General Administration)

उच्च सिविल सेवा मे आने वाले व्यक्तियों के लिये अधिकतम आकर्षण प्रदान किये जाने चाहियें जिससे कि वे सरकारी सेवा (Government service) को स्थायी जीवन-वृत्ति के रूप म चुन सकें। इस श्रेणी के कर्मचारियो के कन्धो पर वास्तव मे सरकार के संचालन का उत्तरदायित्व रहता है। उन्हे अनेक प्रकार की जटिल समस्याओ का सामना करना पडता है। इस श्रेणी के कर्मचारियो के लिये पदोन्नति की एक निश्चित नीति निर्धारित की जानी चाहिए।

प्रशासन म कार्य-कुशलता लाने के लिए जीवन-वृत्ति सेवा (Career service) अत्यन्त आवश्यक है। लोक सेवा के लिये सबसे अधिक योग्य तथा गुणो वाले

प्रत्याशियो (Candidates) को ग्राकर्षित करने का केवल यही प्रभावशाली तरीका है। भारत मे बेरोजगारी (Unemployment) के ऊचे प्रतिशत (Percentage) के कारण इस समस्या की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया है और दासता के दिनों से ही सरकारी पदो अथवा सरकारी नौकरियो को इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्रदान की जाती रही है कि सरकार अपने कार्य के लिए सबसे अधिक योग्य तथा गुणों वाले कर्मचारियो को प्राप्त कर सकती है।

१७

वर्गीकरण और प्रतिफल
(Classification and Compensation)

कार्मिक प्रशासन (Personnel administration) की मूलभूत समस्याओ मे से एक समस्या इसके वर्गीकरण की है। लोक-कर्मचारी अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते है। भिन्न भिन्न कार्यों की प्रकृति, तथा कर्मचारियो के उत्तरदायित्व एव प्राधिकार (Auhtority) मे अन्तर होता है। चपरासी (Peon), लिपिक (Clerk), अधीक्षक (Superintendent), विभागाध्यक्ष (Head of a Department), सचिव (Secretary)—ये सभी शासन-सेवाओ के सदस्य होते हैं किन्तु इनमे से प्रत्येक भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य सम्पन्न करता है। अत कार्यों की विभिन्नता के कारण और भिन्न भिन्न प्रकार अथवा पदक्रमो (Grades) के कार्यों के लिए भिन्न भिन्न किस्म की साज सज्जा की आवश्यकता होने के कारण सेवाओ का वर्गीकरण करना पडता है। चूंकि *श्रम विभाजन (Division of labour) किसी भी सहकारी प्रयत्न* (Co operative effort) का आधार होता है अत वर्गीकरण किसी भी सरकारी कार्मिक व्यवस्था का आधार होता है। यह वर्गीकरण १६वीं शताब्दी के मध्य मे सबसे पहले इगलैण्ड मे किया गया था।

अर्थ (Meaning)

जैसा कि हम हम बतला चुके है कि भिन्न-भिन्न कर्मचारी विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करते हैं। प्रत्येक कर्मचारी को सेवा मे एक 'पद' (Position) प्राप्त होता है। सेवा मे कर्मचारी की स्थिति उस पद के कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो पर निर्भर होती है जिसे कि कर्मचारी धारण करता है। व्यक्ति को सेवा मे कुछ ऐसे कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिये नियुक्त किया जाता है जोकि उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा उसको सौंपे जाते हैं। उन व्यक्तियो के समूह को, जोकि एक सी ही स्थिति रखते हैं तथा जिनके कर्तव्य एव उत्तरदायित्व एक सी ही प्रकृति के होते हैं, 'वर्ग' कहा जाता है। विभिन्न पदो के कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो और उनके ही अनुसार अपेक्षित योग्यताओ को उन सिद्धान्तो के रूप म स्वीकार किया जाता है जिनके द्वारा कि वर्गों अथवा श्रेणियो (Classes) का निर्धारण किया जाता है। 'पद वर्गीकरण' (Position Class fication) का अर्थ है कि उन सभी पदों को, जिनके कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व बहुत कुछ मिलते-जुलते तथा एक से होते हैं, भर्ती (Recruitment) प्रतिफल (Compensation) और अन्य कर्मचारी सम्बन्धी मामलों की दृष्टि से

'एक साथ वर्गीकृत' कर दिया जाना चाहिये। पदो को उन कर्तव्यों एव उत्तरदायित्वो के आधार पर, जोकि विभिन्न पदो से सलग्न होते हैं, श्रेणियो मे वर्गीकृत कर लिया जाता है। वर्गीकरण से तात्पर्य है पदो का, उनके कार्यों तथा अपेक्षिक योग्यताओं के आधार पर, वर्गों अथवा श्रेणियो मे सगठन करना। वर्ग कर्मचारियो के पदो का कुछ सामान्य विशिष्टताओ पर आधारित होना है, जैसे कि एक से ही प्रकार के कर्तव्यो तथा उत्तरदायित्वों को पूरा करना। सेवा (Service) मे पदो के वर्गीकरण से तात्पर्य है इस बात का पता लगाना कि ऐसे कौन-कौन से विभिन्न प्रकार अथवा विभिन्न श्रेणियो के पद सेवा मे वर्तमान हैं जो कर्मचारियो के क्रम मे विभिन्न प्रकार के व्यवहार की माग करते हैं, तथा इस प्रकार पता लगाई श्रेणियो का, और साथ ही साथ, प्रत्येक श्रेणी मे पाये जाने वाले विशिष्ट पदो का अभिलेख (Record) रखना।

जब दो पदो के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व बहुत कुछ एक से होते है तो वे एक ही वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं और इसके विपरीत स्थिति मे उनका सम्बन्ध भिन्न भिन्न वर्गों से होता है। कार्यों तथा उत्तरदायित्वो मे काफी समानताए होना ही पद वर्गीकरण का आधार है। प्रत्येक सरकारी विभाग (Department) मे कर्मचारियो के दो मुख्य वर्ग होते हैं (१) लिपिक वर्ग, और (२) प्रशासकीय वर्ग। इन वर्गों को फिर अनुभागो (Sections) अथवा पदक्रमो (Grades) मे विभाजित किया जा सकता है।

एक बात का प्रारम्भ मे ही स्पष्टीकरण कर देना उचित होगा। किसी भी पद का वर्गीकरण स्तर (Classification level) उसके कार्यो तथा उत्तरदायित्वो पर निर्भर होता है, किसी विशिष्ट पदधारी (Incumbent) की वैयक्तिक विशिष्टताओ अथवा योग्यताओ (Qualifications) पर नही। यह हो सकता है कि एक एम ए पास व्यक्ति एक लिपिक (Clerk) का कार्य कर रहा हो, इस स्थिति मे उसका एक लिपिक के पद मे ही वर्गीकरण किया जावेगा। एक से ही पदो पर आरूढ दो व्यक्तियो म एक पदधारी दूसरे से अच्छा तथा श्रेष्ठ काय कर सकता है, परन्तु उन दोनो को एक सा ही वेतन प्राप्त होगा। इस प्रकार पद-वर्गीकरण मे पदाधिकारियो के वैयक्तिक तत्वो को अधिक महत्व नही प्रदान किया जाता। पदधारी जो कुछ करते हैं उसी के आधार पर पद वर्गीकृत किये जाते हैं, इस आधार पर नही कि वे उसको कितनी अच्छी प्रकार से करते हैं। वर्गीकरण पद का होता है उस व्यक्ति का नही जो कि उस पद को उस समय धारण किये होता है। पद की कल्पना उन कर्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो के एक ढाचे के रूप मे की जाती है जोकि कार्य सम्पादक से दूर वर्तमान रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक कमरा वर्तमान रहता है चाहे उसम कोई बसा हुआ हो या नही। हरमन फिनर (Herman Finer) के अनुसार, वर्गीकरण की समस्या यह है कि 'सभी सेवको (Servants) को ऐसे काम पर लगाना जिसे सम्पन्न करना उनके लिये न तो बहुत कठिन हो और न बहुत सरल,

भौर फिर उन लोगो के साथ समान व्यवहार करना जोकि समान कार्य करते हैं, भौर जहाँ किये गये कार्य की मात्रा तथा कोटि (Quality) मे अन्तर हो वहाँ उस सेवा को उसी अनुपात से पुरस्कृत करना।"[1]

वर्गीकरण से तात्पर्य है कर्तव्यो एव अपेक्षित योग्यताओं की समानता के आधार पर पदो को वर्गबद्ध करना।"[2] वर्गीकरण की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि 'तुलनात्मक कठिनाइयो एव उत्तरदायित्वो के अनुसार पदसोपान (Hierarchy) के क्रम के पदो (Positions) को व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध तथा श्रेणीबद्ध करना ही वर्गीकरण है।'[3]

इस प्रकार लोक सेवाओं (Public Services) को विभिन्न वर्गों, श्रेणियो व पदक्रमो (Grades) आदि मे रखा जाता है। यह वर्गीकरण सरकार के सभी कर्मचारियो का किया जाता है। वर्गीकरण सरकार के किसी एक विभाग (Department) अथवा ब्यूरो तक ही सीमित नहीं रहता है। सभी एक पदो का, चाहे वे सेवा

---

1 Herman Finer. *The Theory and Public of Modern Government*, p 156

2 'By classification is meant the grouping of position on the basis of similarity of duties and qualification requirements" *Elements of Public Administration* Morstein Marx, p 553

3 'Classification may be defined as the systematic sorting and ranking of positions in a hierarchical sequence according to comparative difficulty." Dimock Dimock op cit, p 146

'The position-classification plan as a whole is the skeleton on which the personnel requirements of the service are built It is derived from a logical analysis of the various types of work and degrees of responsibility which are found within public employment It reduces what may be an exceedingly complicated mass of positions to an orderly in intelligent consideration of operating problems *It is essential to the development of a career service, because* it sets out the successive steps by which a beginner may advance to responsible Positions" L. D White op cit, p 375

The Position classification plan refers to the allocation of positions to classes and the basis of duties performed, the responsibilities involved, and the authority and supervisory functions concerned In other words, Positions with like functions and like responsibilities are grouped into a single class, without *regard to the department or service in which they are located*' (*Pfiffner, op cit*, p 284)

'The position classification plan is a device widely used in public civil service jurisdictions to simplify and standardize personnel procedures The position, the fundamental building block in such a classification, is a group of duties and responsibilities that are to be assigned to a single employee The basic idea in a position classification is that all these positions in an organization which involve closely similar duties and responsibilities *should be grouped* together for purposes of recruitment, compensation, other personnel matters' (Simon and other op cit, p 553)

मे कही भी हो, एक वर्ग बनता है। जब यह कहा जाता है कि लिपिकों (Clerks) का एक वर्ग है तो इसका अर्थ होता है सरकार के सभी विभागों के लिपिक, किसी एक विभाग अथवा ब्यूरो के नहीं। वर्गीकरण किसी भी विभागीय आधार पर कर्मचारियों का नहीं किया जाता, बल्कि यह तो सामान्य कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के आधार पर पदों (Positions) का किया जाता है। एक से ही कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को वहन करने वाले पद एक से ही वर्ग में रक्खे जाते हैं।

वर्गीकरण की रीति

(Methods of Classification)

प्रश्न यह है कि पदों को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाये ? रीति यह है कि प्रत्येक पृथक् पद से संलग्न कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में, और संगठन की उस इकाई में, जिसमें कि वह पद स्थित है, उसके स्थान के सम्बन्ध में तथ्यों (Facts) का संग्रह किया जाना चाहिये। इन तथ्यों का संग्रह करने के पश्चात् पृथक पृथक् पदों को ऐसी श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाना चाहिये जिनमें कि एक ही प्रकार के कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को सम्पन्न करने वाले पदधारी (Incumbents) सम्मिलित हों, जिससे उनको एकसा ही प्रतिफल (Compensation) दिया जा सके और उनके चुनाव (Selection) के लिए एक सी ही परीक्षाओं की पद्धति को अपनाया जा सके। प्रत्येक पद का पृथक् से अध्ययन किया जाना चाहिये और पदधारियों का ऐसे वर्गों में विभाजन तथा उप विभाजन किया जाना चाहिये जिनमें कि वे पद सम्मिलित किये जायें जो कि कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों तथा अपेक्षित योग्यताओं में लगभग समान हों। पद-वर्गीकरण के लिये जो सिद्धांत मार्ग दर्शन का कार्य करते हैं, वे निम्नलिखित हैं–

(क) एक सी ही व्यावसायिक प्रकृति वाले सभी पदों को एक सी ही श्रेणी में एक साथ वर्गीकृत कर लिया जाना चाहिये, ऐसा करते समय विभागीय स्थिति (Departmental location) पद के वर्तमान नाम अथवा प्रतिफल, या अन्य किसी ऐसे तत्व की परवाह नहीं की जानी चाहिये जो कि व्यवसाय की प्रकृति में न पाया जाता हो,

(ख) किसी भी पद में कार्य या व्यवसाय की प्रकृति का निर्धारण उस पद से सम्बद्ध कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों तथा उन योग्यताओं (Qualifications) के द्वारा किया जाना चाहिये जो कि एक नये नियुक्तार्थी (*Appointee*) को उस पद के कार्य-सम्पादन के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों,

(ग) किसी भी पद के वर्गीकरण में वर्तमान पदधारी की सेवा की श्रेष्ठता की मात्रा का या किसी ऐसी योग्यता का जिसे वह धारण करता हो या न करता हो, अथवा उसके व्यक्तित्व (Personality) पर आधारित अन्य किसी भी तथ्य का विचार नहीं किया जाना चाहिये।"

पदों के आधार पर वर्गों (Classes) की व्याख्या करने के पश्चात् एक विशिष्ट वर्ग के पदधारी के लिए न्यूनतम योग्यतायें निर्धारित कर दी जानी चाहियें। इस प्रकार सिविल अथवा असैनिक सेवा के सभी पदों का उपयुक्त श्रेणी तथा वर्ग में बटवारा कर लिया जाना चाहिये।

Position-Classification Individual Job Analysis Form :

POSITION DESCRIPTION

(1) Department (and field) Finance Deptt Revenue Division—Excise

(2) Official Headquarters Central Secretariat, New Delhi

(3) Reason *for submissing* —

(a) If this position replaces other, identify such position by title and position number

(b) Other (specify) New position

(4) Position No XY—12345

(5) Union Public Service Commission Certificate No. LM—301

Allocated by	*Class title of Position*	*Class*	*Initials*	*Date*
U P S C		Service Grade		
Deptt or Agency	Clerk Typist Gs—2	Gs—2		
Recommended by				
Initiating Officer	Clerk Typist			

(6) Date of certification 1 5 55

(7) Date received from U P S C. . 2.5 55

(8) Classification Action

(9) Name of employee (If vacant, write V—1) Ram Singh

(10) Organisatioal Title of Position (if any)

(11) Description of Duties and responsibilities of Position

(a) Under the general supervision of the Accounts Office or any of the sections of the Division to which assigned, performs the following clerical and typing duties

(b) Types from involved rough draft, including tabulated material textual material *of a technical nature stencils and master* ditto copies of reports, directives, etc as well as correspondence, memoranda, etc

(c) Unper direction of the administrative clerk, assists in the maintenance of alphabetical files of correspondence, reports, directions *publications*, etc

(d) Performs miscellaneous related duties of clerk

(12) This is a correct and accurate description of my position

Signature of the Employee

Date

(10) Certification by supervision

(14) Certification by Head of Division

(15) Certification by Head of Department

पद-वर्गीकरण के लाभ
(Advantages of Position-Classification)

पद-वर्गीकरण का आन्दोलन 'समान कार्य के लिए समान वेतन' (Equal pay for equal work) की मांग के साथ प्रारम्भ हुआ। एक ही प्रकार के कार्य सम्पन्न करने वाले और एक से ही प्रकार के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने वाले कर्मचारी प्रतिफल (Compensation) की एक सी ही दरों की माँग करते थे। पद-वर्गीकरण का उद्देश्य यह था कि सरकार के भिन्न-भिन्न अभिकरणों (Agencies) में एक से ही काम के लिए दिये जाने वाले प्रतिफल की भिन्न-भिन्न दरों के अन्याय को समाप्त किया जाये। पद वर्गीकरण को उचित तथा न्यायपूर्ण व्यवहार का प्रधान स्रोत (Source) समझा जाता था। यह पक्षपात के विरुद्ध सुरक्षा का एक अस्त्र था।

प्रारम्भ में समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त पर आधारित होकर, *अब इसने कार्मिक अथवा सेवी-वर्ग प्रशासन में एक केन्द्रीय स्थिति प्राप्त कर ली है।* बिना वर्गीकरण के किसी भी देश के कार्मिक प्रशासन में भ्रम तथा अव्यवस्था प्रणालियो, परीक्षाओ, वेतन सूचियो (Salary schedules) तथा पदोन्नतियो (Promotions) के लिये एक आधार (Basis) प्रस्तुत करता है। भर्ती की कुशलता, एक विवेकपूर्ण पदोन्नति व्यवस्था के निर्माण की सम्भावना, तथा विभिन्न विभागो में कार्य करने वाले व्यक्तियों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार की आशा समुचित वर्गीकरण पर ही निर्भर रहती है। पद-वर्गीकरण के कुछ अन्य लाभ निम्न प्रकार हैं

(१) **यह कर्मचारियों की भर्ती की समस्या को सुविधाजनक बनाता है।** विभिन्न विभाग (Departments) पहले इस बात का निश्चय करते हैं कि उन्हे एक विशिष्ट-वर्ग के कितने कर्मचारियों की आवश्यकता है और फिर भर्ती करने वाले अभिकरण (Recruitment agency) को उसकी सूचना दे देते हैं। भर्ती-अभिकरण एक विशिष्ट-*वर्ग के कर्मचारियों के लिये एक सी ही परीक्षाओ की व्यवस्था करता है।* इन परीक्षाओ के पश्चात् भर्ती अभिकरण 'पात्र व्यक्तियों' (Eligibles) की एक सूची तैयार करता है और फिर विभिन्न विभाग 'पात्र व्यक्तियों' की इस सूची में से नियुक्तियाँ करते हैं। निम्नलिखित उदाहरण इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देगा।

मान लीजिये भारत सरकार के पचास विभागो को आशुलिपिकों (Stenographers) की आवश्यकता है। यदि आशुलिपिकों की भर्ती के लिये प्रत्येक विभाग अपनी अपनी निजी परीक्षाओं की व्यवस्था करता है, तो इसमें दो बडे दोष उत्पन्न हो जाते हैं। प्रथम तो ऐसा करना बडा महगा पडेगा और उसमे समय काफी लगेगा, क्योंकि आशुलिपिकों की भर्ती के लिये पचास विभागो को पृथक्-पृथक् परीक्षाओं की व्यवस्था करनी होगी। दूसरे, यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न विभागो में परीक्षाओं (Tests) का स्तर पृथक् पृथक् हो, और ऐसा होना अनुचित तथा

अन्यायपूर्ण है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए, सिविल-सेवा आयोग द्वारा एक परीक्षा ली जाती है और उस सामान्य परीक्षा के आधार पर 'पदों के योग्य' आशुलिपिकों की एक सूची तैयार करली जाती है। फिर, किसी भी विभाग की आशुलिपिकों की माँग को इस सूची में से पूरा कर दिया जाता है। पद-वर्गीकरण की व्यवस्था से भर्ती का कार्य बड़ा सुविधाजनक तथा सुगम हो जाता है।

(२) पद-वर्गीकरण न्याय और समानता के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था को स्थापना करता है। कर्मचारियों को पदोन्नति (*Promotion*) के नियमों व मार्गों का पता रहता है। एक विशिष्ट वर्ग के कर्मचारी यह जानते हैं कि दूसरे विशिष्ट-वर्ग में उनकी पदोन्नति की जा सकती है। इसमें अधिक कठिनाइयों, अधिक उत्तरदायित्वों तथा अधिक सुविधाओं वाले पदों के लिये की जाने वाली पदोन्नतियों में व्यवहार की एकरूपता को प्रोत्साहन मिलता है।

(३) पद वर्गीकरण और प्रतिफल (Compensation) के बीच एक गहरा *सम्बन्ध पाया जाता है। वर्गीकरण 'समान कार्य के लिये समान वेतन' के सिद्धान्त* के आधार पर वेतनों के मानकीकरण (Standardization) को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार प्रतिफल पदाधिकारियों की मनचाही इच्छा पर निर्भर नहीं रहता। पद-वर्गीकरण पद के कार्यों, कठिनता की मात्रा, तथा उन कार्यों की जिम्मेदारियों के स्तर को निर्धारित करता है। कार्यों की प्रकृति का निर्धारण करने के पश्चात् *प्रत्येक वर्ग या श्रेणी के कर्मचारियों के लिये प्रतिफल की दरें निश्चित की जाती हैं।* कर्मचारी एक सी ही किस्म के कार्यों तथा उत्तरदायित्वों के लिए समान पारिश्रमिक (Remuneration) प्राप्त करते हैं। इससे एक उचित तथा व्यवसाय जैसी वेतन नीति और स्पर्धायुक्त सेवा को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार प्रतिफल की दर तथा किये हुए कार्य के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

(४) पद वर्गीकरण व्यवहार की समानता और प्रतिफल-दरों के मानकीकरण को प्रोत्साहन देता है। *यह सरकारी सेवा में अपने पद के प्रति सम्मान तथा सहयोग* की भावना को प्रोत्साहन देता है जोकि कुशलता के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ विशिष्ट कर्मचारी अपने वर्ग अथवा श्रेणी के प्रति रोष प्रकट करते हैं परन्तु राज्य एक इतना बड़ा नियोक्ता (Employer) होता है कि वह अपने सभी सेवकों से पृथक्-पृथक् व्यक्तिगत सौदे करने में असमर्थ होता है। पद-वर्गीकरण लोक-सेवा में सहयोग की भावना को प्रोत्साहन देता है।

(५) पद-वर्गीकरण बजट बनाने के कार्य को सुविधाजनक बनाता है। एक विशिष्ट-वर्ग के कर्मचारियों की संख्या के आधार पर वेतनों की गणनायें की जाती हैं। बजट-कार्यालय कर्मचारियों के पद की श्रेणी के आधार पर उनके वेतनों की गणना करता है।

(६) पद-वर्गीकरण भर्ती के लिए ली जाने वाली परीक्षाओं (Tests) के कार्य को सुविधाजनक बनाता है। परीक्षाओं के विषय अथवा परीक्षाओं की किस्में विशिष्ट

वर्गों के लिये आवश्यक न्यूनतम योग्यताओं से सम्बन्धित होती हैं। अपेक्षित योग्यताओं तथा ली जाने वाली परीक्षाओं के बीच एक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पद-वर्गीकरण भर्ती, प्रतिफल तथा पदोन्नति के कार्य को सुविधाजनक बनाता है और कर्मचारियों के लिये सरकारी सेवा को एक स्थायी जीवनवृत्ति बनाने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार वर्गीकरण के लाभों को संक्षेप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

(१) यह 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धान्त को लागू करके सेवाओं में नैतिकता की स्थापना को सम्भव बनाता है और इस प्रकार सेवाओं में अधिक अच्छे कार्य तथा अधिक प्रसन्न कर्मचारियों की उत्पत्ति करता है।

(२) चूंकि चुनाव (Selection) का आधार प्रतियोगात्मक होता है अत उचित एव न्यायपूर्ण पदोन्नति सम्भव हो जाती है।

(३) इसमें चूंकि प्रत्येक पद अथवा कार्य का विश्लेषण किया जाता है अत प्रत्येक पद के लिए कर्मचारियों का उचित चुनाव करना सम्भव हो जाता है।

(४) कर-दाता (Tax-payer) को निम्नतर लागत पर श्रेष्ठतर सेवा प्राप्त होती है।

(५) सेवाओं पर किये जाने वाले सरकारी खर्चों की जाँच-पड़ताल करना सम्भव हो जाता है, कर्मचारियों की बढ़ती हुई संख्या के सम्बन्ध में की जाने वाली गलतियों अथवा पक्षपात को रोका जा सकता है।"[1]

पद-वर्गीकरण कर्मचारियों, प्रबन्धकों, व्यवस्थापकों तथा कर-दाताओं के हितों में वृद्धि करता है। पद-वर्गीकरण के लाभों के विषय में लिखते हुए प्रो० हरमन फिनर (Herman Finer) ने कहा कि 'सभी देशों का अनुभव बतलाता है कि ऐसे वर्गीकरण की कितनी अधिक आवश्यकता होती है । बिना वर्गों अथवा श्रेणियों के गणना (Calculation), तुलना (Comparission) सापेक्षिक कर-निर्धारण (Assessments) तथा मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, और एक लोकप्रिय शासन वाले राज्य में, विशेषकर वहाँ जहाँ कि सार्वजनिक प्रचार के लिये तथा राजनैतिक अनिपुणों की सरकार के लिये आसानी से समझे जा सकने योग्य तथ्यों एव आकड़ों की आवश्यकता होती है, वर्गों अथवा श्रेणियों के अभाव में नियन्त्रण ढीला पड़ जाता है'''। सर्वश्रेष्ठ वर्गीकरण के द्वारा राज्य सेवा में बुराई की मात्रा न्यूनतम हो जाती है।"[2]

पद वर्गीकरण व्यवस्था की कुछ हानियाँ भी हैं जिन्हें दृष्टिगत रखा जाना चाहिये। वर्गीकरण हो जाने के पश्चात् कर्मचारियों के नियत कर्तव्यों में यदि

1 Article on salaries of state employees by King in Annals of the American Academy of *Political and Social Science*, May, 1924

2 Herman Finer, *op cit*, p 856.

अस्थायी हेर-फेर भी की जाती है तो वे उसका विरोध करते हैं। वे अपने कर्तव्य-वर्णनों को कानूनी प्राधिकार के रूप में प्रस्तुत करते हैं और केवल उन्हीं कार्यों को सम्पन्न करते हैं जिन्हें करने के लिए उनके वर्ग बनाये गये हैं इसके अतिरिक्त पद-वर्गीकरण व्यवस्था में मनुष्य के वैयक्तिक गुण अपुरस्कृत ही रह जाते हैं। इसमें मनुष्य के साथ वस्तुओं के सदृश व्यवहार किया जाता है। किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करते समय मनुष्यों के वैयक्तिक गुणों को पुरस्कृत नहीं किया जाता। इससे अच्छी प्रतिभा तथा बौद्धिक योग्यता वाले व्यक्तियों में निराशा की भावना पैदा होती है और प्रशासन में अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है।

यदि पद-वर्गीकरण को प्रभावशाली बनाना है तो समय-समय पर इस पर पुनर्विचार करते रहना चाहिए। वस्तुनिष्ठ आधार (Objective basis) पर पदों का वर्गीकरण करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये। कर्त्तव्यों, उत्तर-दायित्वों व विभाग के सगठन आदि की प्रकृति से सम्बन्धित तथ्य (Facts) प्रश्नावली रीतियों (Questionnaire Methods) द्वारा प्राप्त किये जाने चाहियें और फिर इन तथ्यों के आधार पर वर्गीकरण किया जाना चाहिये।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे पद-वर्गीकरण
(Position Classification in the United States of America) :

सयुक्त राज्य अमेरिका म पहले लोक-कर्मचारियो के सम्बन्ध मे बडा भ्रम तथा उनके वेतनो मे भारी असमानताए वर्तमान थीं। इस सम्बन्ध में इतना अधिक भ्रम पैदा हो गया था कि सन् १९२० मे पुनर्वर्गीकरण आयोग (Reclassification Commission) ने यह रिपोर्ट दी कि "कभी-कभी एक साथ तथा एक सा ही कार्य करने वाले कर्मचारियो को जिन दरो से वेतन दिया जाता है उनमे ५० प्रतिशत अथवा इसस भी अधिक अन्तर होता है। प्राय ऐसा होता है कि अपेक्षाकृत अधिक कुशल कर्मचारियो को निम्न दरो मे वेतन दिया जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जबकि किसी अनुभाग (Section) का कार्य-भारी लिपिक अथवा सगठन का अन्य कोई व्यक्ति उन कर्मचारियों से भी कम वेतन प्राप्त करता है जोकि उसके निर्देशन (Direction) मे कार्य कर रहे होते हैं। "प्रतिवेदन (रिपोर्ट) मे दृढतापूर्वक यह बात कही गई कि "अतिरिक्त उत्तरदायित्व के लिए उनको मिलने वाला प्रतिफल इस तथ्य म निहित होता है कि उसके अपेक्षाकृत उच्च वेतन प्राप्त अधीनस्थ कर्मचारियों मे से कोई यदि त्यागपत्र दे, तो उस रिक्त-स्थान को प्राप्त करने के सुअवसर उसे सुलभ हो जाते हैं।" आयोग के प्रतिवेदन से सन् १९२३ के वर्गीकरण अधिनियम (Classification Act) के बनाने की प्रेरणा मिली। इसके बाद समय-समय पर स्थिति पर पुनर्विचार किया गया और सन् १९४९ के वर्गीकरण अधिनियम द्वारा एक सामान्य अनुसूची (General schedule) (G. S) के लिए, जिसमे कि व्यावसायिक व वैज्ञानिक सेवा, लिपिक-वर्गीय, प्रशासकीय, राजकोषीय (Fiscal) तथा उप-व्यवसायिक सेवाए सम्मिलित है और एक शिल्पिक (Crafts),

रक्षक (Protective) तथा अभिरक्षक अनुसूची (Custodial schedule) (C P C) के लिये, जिसमे कि सन्देशवाहक लड़के व पारसलो की जाच करने वाले आदि की किस्म के कर्मचारी सम्मिलित हैं, प्रतिफल की दरें (Compensation rates) निश्चित की गई। इस प्रकार जो वर्गीकरण प्रचलित हुआ वह निम्न प्रकार है—

(१) व्यावसायिक और वैज्ञानिक (Professional and scientific), (२) उप-व्यावसायिक और उप-वैज्ञानिक, (३) लिपिकवर्गीय, प्रशासकीय और सामान्य कार्य सम्बन्धी, तथा (४) अभिरक्षित श्रम (Custodial labour) तथा यान्त्रिक (Mechanical)।

ब्रिटिश सिविल-सेवा के विभिन्न वर्ग

(The Various Classes of the British Civil Service)

ब्रिटिश सिविल सेवा के दो बड़े वर्ग हैं औद्योगिक (Industrial) तथा गैर-औद्योगिक कर्मचारी गैर औद्योगिक कर्मचारियो का (जिन्हे कि सिविल सेवा प्रमुख कहा जा सकता है) निम्नलिखित राजकोषीय वर्गीकरण किया जाता है

(१) प्रशासकीय (Administrative) वर्ग।
(२) निष्पादक अथवा कार्य-पालक (Executive) वर्ग।
(३) लिपिक तथा उप-लिपिक वर्ग।
(४) मुद्रलेखन (Typing) वर्ग।
(५) निरीक्षक सेवी-वर्ग।
(६) व्यावसायिक, वैज्ञानिक व तकनीकी-वर्ग।
(७) गौण तकनीकी (Ancillary-technical) वर्ग।
(८) तुच्छी तथा अभिसाधक-वर्ग (Minor and Manipulative)।
(९) सन्देश-वाहक व द्वारपाल आदि।

भारत में सेवाओ का वर्गीकरण

(Classification of Services in India)

भारत मे सेवाओ को निम्नलिखित वर्गों अथवा श्रेणियो मे रखा गया है

(१) अखिल भारतीय सेवायें (All India Services),
(२) केन्द्रीय (संघीय) सेवायें, प्रथम श्रेणी (Class I),
(३) केन्द्रीय (संघीय) सेवायें, प्रथम श्रेणी (Class II),
(४) प्रान्तीय (राज्य) सेवायें,
(५) विशेषज्ञ सेवायें (Specialist services),
(६) केन्द्रीय सेवायें, तृतीय श्रेणी और
(७) केन्द्रीय सेवायें, चतुर्थ श्रेणी,
(८) केन्द्रीय सचिवालय सेवा (Central secretariat service) प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी।

अखिल भारतीय सेवाओं में भारतीय प्रशासन सेवा (I A S.), भारतीय पुलिस सेवा (I. P. S) तथा भारतीय विदेश सेवा (I F. S) सम्मिलित हैं। यह भारतीय सिविल अथवा असैनिक सेवा का उच्च-वर्ग है। इसके अधिकारियों की भर्ती संघीय लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) द्वारा की जाती है और इनको भारत अथवा भारत से बाहर कहीं भी काम करने के लिये भेजा जा सकता है। होता यह है कि भारतीय प्रशासन तथा पुलिस सेवाओं के अधिकारी एक निर्धारित कोटे (Fixed quota) के आधार पर विभिन्न राज्यों में बाँट दिये जाते हैं।

केन्द्र सरकार (Central Government) के अन्तर्गत आने वाली सेवाओं तथा पदों को चार वर्गों अथवा श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ।

प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं के पदाधिकारी अपने-अपने क्रमिक विभाग (Department) में ज्येष्ठ पदों (Senior posts) पर रखे जाते हैं। वे भारत सरकार के अन्तर्गत केन्द्रीय सचिवालय के तथा अन्य प्रशासकीय पदों पर नियुक्त किये जाते हैं। इन सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती (Recruitment) एक ऐसी संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा (Combined Competitive Examination) के परिणाम के आधार पर की जाती है जो कि संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं तथा प्रथम व द्वितीय श्रेणियों की सेवा के लिये प्रत्याशियों (Candidates) का चयन (Selection) करने के लिये आयोजित की जाती है। निम्नलिखित सेवायें महत्वपूर्ण प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवायें (Class Central Services) हैं।

प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं की वर्तमान समय में संख्या २४ है, जिनके नाम इस प्रकार हैं (१) भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा (Indian Audit and Account Service), (२) भारतीय प्रतिरक्षा लेखा सेवा (Indian Defence Accounts Service), (३) केन्द्रीय इंजीनियरिंग सेवा, प्रथम श्रेणी (Central Engineering Service Class I), (४) भारतीय सीमा शुल्क सेवा (Indian Customs Service), (५) भारतीय डाक व तार विभाग की उच्चतर तार इंजीनियरिंग तथा बेतार के तार की शाखायें, (६) भारतीय डाक व तार यातायात सेवा प्रथम श्रेणी, (७) भारत का भू-गर्भ सर्वेक्षण (Geological Survey of India) प्रथम श्रेणी, (८) भारतीय अन्तरिक्ष-विज्ञान सेवा (Indian Meteorological Service) प्रथम श्रेणी, (९) पुरातत्व विभाग (Archaeological Department), (१०) खान विभाग (Mines Department) प्रथम श्रेणी, (११) भारत का जीव-विज्ञान सर्वेक्षण (Zoological Survey of India), (१२) भारतीय भू-माप (Survey of India) प्रथम श्रेणी, (१३) भारतीय गिरजा विभाग संस्थान (Indian Ecclesiastical Establishment), (१४) भारत सरकार का राजनैतिक विभाग (Political Department of Government of India), (१५) चिकित्सा

अनुसंधान विभाग (Medical Research Department) (भारतीय चिकित्सा सेवा (I. M. S.) के अधिकारियों को छोड़कर) (१६) अफीम विभाग, (१७) बंगाल विमानचालक सेवा (Bengal Pilot Service) (१८) आय-कर सेवा (Income Tax service) प्रथम श्रेणी (१९) सचिवालय सेवा (Secretariat Service) प्रथम श्रेणी, (२०) वणिक-पोतीय प्रशिक्षण जलयान सेवा (Mercantile Marine Trainingship Service) प्रथम श्रेणी (२१) केन्द्रीय राजस्व रासायनिक (Central Revenues Chemical) प्रथम श्रेणी (२२) रलवे निरीक्षक वर्ग सेवा (Railway Inspectorate Service) (२३) भारतीय डाक सेवा (Indian Postal Service) प्रथम श्रेणी, और (२४) सामान्य केन्द्रीय सेवा (General Central Service) प्रथम श्रेणी।

उपर्युक्त प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं म से प्रत्येक के (कुछ उनको छोड़ कर जोकि अब अप्रचलित हो चुकी हैं) समवर्ती (Corresponding) एक एक द्वितीय श्रेणी की सेवा भी होती है।

तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं म क्रमश पहली 'अधीनस्थ' (Subordinate) तथा 'अवर' (Inferior) सेवायें सम्मिलित की जाती है।

भारत सरकार ने अभी हाल म ही (१९५५) मे एक भारतीय सीमान्त प्रशासन सेवा' (Indian Frontier Administrative Service) तथा एक भारतीय वैज्ञानिक सेवा (Indian Scientific Service) की स्थापना की है। अन्य अनेक केन्द्रीय सेवाओ के गठन के प्रस्ताव विचाराधीन (Under Consideration) हैं। य सेवायें इस प्रकार हैं (१) केन्द्रीय वन सेवा (Central Forest Service), (२) केन्द्रीय कृषि तथा पशु पालन सेवा, (३) भारतीय राजस्व सेवा, (४) प्रतिरक्षा विज्ञान सेवा (Defence Science Service), (५) भारतीय इजीनियरिंग सेवा (६) पुस्तकालयाध्यक्षा की केन्द्रीय सेवा (Central Service of Librarians), (७) भारतीय सूचना सेवा (Indian Information Service) (८) औद्योगिक प्रबन्ध सेवा, (९) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा, और (१०) आर्थिक तथा सांख्यिकीय परामर्श सेवा (Economic and Statistical Advisory Service)।

प्रथम श्रेणी की प्रत्येक केन्द्रीय सेवा के समवर्ती एक-एक द्वितीय श्रेणी की सेवा भी होती है।

तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की केन्द्रीय सेवायें अधीनस्थ सेवायें है। इनम लिपिक-वर्गीय (Clerical) मन्त्रीय (Ministerial) निष्पादक (Executive) अथवा बाह्य कर्तव्यो (Outdoor duties) वाले पद सम्मिलित किये जाते है।

कुछ वर्षों पहले तक, विभिन्न श्रेणियो की सेवाओ के बीच सेवा की अनेक शर्तों व दशाओ के सम्बन्ध में भिन्नतायें पाई जाती थी और चतुर्थ श्रेणी (Class IV) तथा अन्य श्रेणियों के बीच तो विशेष रूप से निम्न बातो के सम्बन्ध मे भारी अन्तर पाया जाता था निवृत्ति-वेतन अथवा पेन्शन (Pension) और सेवोपहार

(Gratuity) की दरें, पेन्शन के लिए योग्य बनाने वाली सेवा (Qualifying service *for pension*), *चिकित्सा सम्बन्धी लाभ (Medical benefits) तथा अवकाश* (Leave) सम्बन्धी अधिकार। निम्न श्रेणी के कर्मचारियों की सेवा-शर्तों मे उत्तरोत्तर उदारता बनती जाने के साथ ही साथ अवकाश (Leave) व सेवा निवृत्ति लाभों (Retirements benefits) आदि के सम्बन्ध मे विभिन्नताए वास्तव मे कम हो गई हैं, और यदि कुछ छोटी-मोटी विभिन्नताए वर्तमान हैं भी, तो वे सब उच्च श्रेणियो के प्रतिकूल नहीं हैं उदाहरण के लिए, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो को अधिक उदार छुट्टिया तथा यात्रा सम्बन्धी छूटें (Concessions) प्राप्त हैं और उनमे से बहुसख्यक कर्मचारियो को प्रतिवयस्कता (Superannuation) की अपेक्षाकृत ऊची *आयु की सुविधा प्राप्त है। भर्ती तथा सेवा की कुछ अन्य शर्तों के सम्बन्ध मे अभी* भी भिन्नताए वर्तमान हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है

(१) जहां प्रथम श्रेणी की सेवाओं/पदों पर सम्पूर्ण प्रथम नियुक्तिया राष्ट्रपति (President) द्वारा की जाती हैं, वहां अन्य मामलो मे निम्न प्राधिकारियो (Lower authorities) को ऐसी नियुक्तियां करने के अधिकार दे दिये गये हैं

(२) प्रथम श्रेणी (Class I) के सभी पद और द्वितीय श्रेणी के बहुत से पद राजपत्रित (गजटेड) होते हैं किन्तु अन्य नही होते।

(३) राष्ट्रपति प्रथम श्रेणी के लिए तो अनुशासनिक प्राधिकारी (Disci*plinary authority) और द्वितीय श्रेणी के लिए अपील सुनने वाले प्राधिकारी* (Appellate authority) हैं किन्तु तृतीय और चतुर्थ श्रेणियो के लिए अनुशासनिक तथा अपील प्राधिकारी अधिकतर विभागाध्यक्ष (Head of Department) अथवा उनके अन्तर्गत काम करने वाले अधिकारी होते हैं।

(४) जबकि प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी सेवाओ/पदो की सीधी भर्ती सघीय लोक-सेवा आयोग के परामर्श मे की जाती है (बशर्ते कि किसी भी सेवा अथवा सेवाओ के इस प्रतिबन्ध म विशेष रूप से मुक्त कर दिया हो) किन्तु तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी की सेवाओ के सम्बन्ध मे ऐसा सामान्य नियम नही है।

वर्गीकरण का अन्य आधार राजपत्रित (Gazetted) तथा अराजपत्रित (Non-gazetted) श्रेणियो का है। उन सब पदो को राजपत्रित अथवा गजटेड कहा जाता है जिनके पदधारियो के नाम नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति तथा सेवा-निवृत्ति आदि के सम्बन्ध मे राजपत्र अथवा सरकारी गजट मे प्रकाशित किये जाते हैं। सामान्य तथा प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी राजपत्रित श्रेणी (Gazetted class) हैं। अराजपत्रित पद वे होते हैं जिनके पदधारियो के नाम इस प्रकार सरकारी गजट मे नहीं छपते। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी अराजपत्रित होते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण व्यवस्था की मुख्य आलोचना यह है कि यह वर्ग-भेद की भावना, उत्पन्न करती है और *यह एक प्रकार की जाति प्रथा है जोकि किसी विशिष्ट* वर्ग को अवश्य सन्तुष्ट कर सकती है किन्तु सिविल सेवको के सुगम व सहकारिता-

पूर्ण कार्य सचालन के लिए यह खतरनाक है। वेतन आयोग (Pay Commissions) ने वर्गीकरण की इस पद्धति के उन्मूलन की सिफारिश की। वेतन आयोग ने कहा कि

"एकत्रित साक्षिया इस वर्गीकरण के उन्मूलन के पक्ष मे हैं। इसके उन्मूलन के पक्ष मे मुख्य आधार यह प्रस्तुत किया जाता है कि इससे कोई ऐसा व्यावहारिक उद्देश्य पूरा नही होता जोकि इसके बिना पूरा न हो सकता हो और दूसरी ओर, इसका एक अस्वस्थ मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। हम (आयोग के सदस्य) इस विचार से सहमत हैं। हम तो महत्व इस बात को देते हैं कि सिविल-सेवको मे यह भावना पैदा की जाये कि वे सब एक सर्वमान्य लोक-सेवा से सम्बन्ध रखते हैं, और वर्गीकरण की कोई भी पद्धति या नाम-सूची (Nomenclature) अथवा लोक-कर्मचारी प्रशासन का कोई भी रूप या लक्षण, जिसके द्वारा कि ऐसी भावना के विकास मे बाधा पडने की सम्भावना हो—चाहे उस बाधा की मात्रा कितनी ही कम क्यों न हो—हमारे विचार से समाप्त कर दिया जाना चाहिए जब तक इससे कोई ऐसा व्यावहारिक उद्देश्य न पूरा होता हो जोकि इस व्यवस्था के अभाव मे पर्याप्त रूप मे पूरा न हो सकता हो। उन देशो सहित, जिनमे कि एक बडा तथा जटिल सिविल सेवा सगठन प्रचलित है, अन्य देशो ने भी यह आवश्यक नही समझा है कि वे अपने सिविल सेवा पद-क्रमो (Grades) तथा व्यावसायिक सगठनो पर हमारे जैसा एक विस्तृत वर्गीकरण लादें, और हम यह नही समझते कि यदि इस विचाराधीन वर्गीकरण को छोड दिया जाये तो भारत के लिए कोई गम्भीर कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी।[1]

वेतन आयोग का उपर्युक्त दृष्टिकोण सही नही है। कर्मचारियों के बीच अन्तर तो रखना ही पडता है। हम वर्गीकरण व्यवस्था को इस कारण नही छोड सकते क्योंकि कुछ कर्मचारी अपने मे हीनता की भावना (Inferiority complex) का अनुभव करते हैं। पद-वर्गीकरण के बिना प्रशासन की कोई भी वैज्ञानिक व्यवस्था कायम नही रह सकती।

भारतीय वर्गीकरण की एक अन्य महत्वपूर्ण आलोचना यह है कि प्रथम व द्वितीय श्रेणी के बीच का भेद मिटा दिया जाना चाहिए। द्वितीय श्रेणी की सेवाओ का प्रतिनिधित्व करने वाले सगठन आम तौर पर यह कहा करते हैं कि द्वितीय श्रेणी समाप्त कर देनी चाहिये और इस श्रेणी मे इस समय जो सेवाओ तथा पद हैं उनको सम्बन्धित प्रथम श्रेणी की सेवाओ के ढाचे मे ही सम्मिलित कर लेना चाहिये और उसी के अनुसार उनको पारिश्रमिक भी दिया जाना चाहिए। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के कर्मचारियो के बीच अन्तर की समाप्ति के सम्बन्ध मे मुख्य तर्क यह है कि द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियो को वही कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व सौंपे जाते

1 Commission of Enquiry of Emoluments and conditions of service of Central Government Employees 1957 59 Report, Govt of India p 562.

हैं जोकि प्रथम श्रेणी के पदाधिकारियों को कनिष्ट वेतनक्रम (Junior scale) में सौंपे जाते हैं। इस आलोचना के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यह भेद जारी रहना चाहिये क्योंकि द्वितीय श्रेणी की सेवाओं के बहुसंख्यक अधिकारियों की सीधी भर्ती (Direct recruitment) नहीं होती और द्वितीय श्रेणी के ऐसे सब रिक्त स्थान तृतीय श्रेणी के अधिकारियों की पदोन्नति के आधार पर भरे जाते हैं। इस प्रकार जहाँ द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियों के तथा प्रथम श्रेणी की कनिष्ट शाखा (Junior branch) के पदाधिकारियों के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व एक से हैं, वहाँ उनके पारिश्रमिक (Remuneration) तथा उनकी पदस्थिति (Status) में पाई जाने वाली विभिन्नता को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है कि प्रथम श्रेणी के पदाधिकारियों की भर्ती उच्चतर पदों के सभालने के लिए की जाती है, और इसी *श्रेणी के कनिष्ट वेतनक्रम वाले पदों (Junior scale posts) का उद्देश्य केवल यह होता है कि वे पदाधिकारियों के निज प्रशिक्षण के आधार के रूप में (As training* ground) काम करें और उनको उन उच्चतर उत्तरदायित्वों को वहन करने के योग्य बना दें जिनके लिये उनकी भर्ती की गई है। इसके विपरीत, द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियों की भर्ती चाहे वह पदोन्नति द्वारा की जाए अथवा सीधे ही, उस पदक्रम (Grade) के कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने के लिये की जाती है जिस पर कि उनकी नियुक्ति की जाती है।

वरादाचेरियर आयोग (Varadachariar Commission) ने इस प्रश्न की काफी गहराई के साथ जाच की। इस सम्बन्ध में आयोग के कुछ सदस्यों का जहाँ यह विचार था कि द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में उन सभी पदों का, जिनके कर्त्तव्यों तथा प्रथम श्रेणी के पदाधिकारियों के कर्त्तव्यों में कोई अन्तर न हो, प्रथम श्रेणी के कनिष्ट वेतनक्रम में विलय कर दिया जाना चाहिए, वहाँ अधिकांश सदस्यों का दृष्टिकोण आयोग के अपने ही शब्दों में, निम्नलिखित था

'तथापि अधिकांश सदस्यों का झुकाव इस ओर था कि दोनों श्रेणियों को कायम रखना वाञ्छनीय है, किन्तु उन विभागों (Department) में, जहाँ कि या तो भर्ती की रीति के कारण अथवा प्रथम और द्वितीय श्रेणी के पदाधिकारियों द्वारा क्रमिक रूप में सम्पन्न किये जाने वाले कर्त्तव्यों के महत्व के बीच अन्तर करने की कठिनाई के कारण दोनों श्रेणियों के बीच भेद करना आवश्यक न हो अथवा सम्भव न हो, वहाँ इस द्विमुखी वर्गीकरण को समाप्त किया जा सकता है और दोनों श्रेणियों के साथ एक राजपत्रित सेवा (Gazetted service) के रूप में व्यवहार किया जा सकता है।"

इस प्रकार, प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के बीच का भेद बराबर जारी रहना चाहिए।[1]

---

1 विस्तृत अध्ययन के लिये वेतन आयोग की १९५७-५९ की रिपोर्ट के अध्याय १३ तथा १४ में पृष्ठ १३६ से १४९ तक देखिये।

वेतन-क्रम का निश्चय आर्थिक तथा सामाजिक बातों के आधार पर किया जाना चाहिये।

(३) सेवा की शर्तों एवं लाभों के ढांचे का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि जिससे विभिन्न स्तरों पर आवश्यक अर्हताओं (Qualifications) तथा योग्यताओं (Ab lities) वाले व्यक्तियों की भर्ती के विषय में निश्चित किया जा सके और उनको कुशल बनाये रखा जा सके।

(४) सरकारी कर्मचारियों के वेतन क्रम ऐसे होने चाहियें कि बाहर के व्यवसायों में दिये जाने वाले पारिश्रमिक की दरों से उनकी स्पष्ट तुलना की जा सके।

(५) उपभोक्ता कीमतों का स्तर (Level of consumer prices) उन तत्वों में से एक है जो कि सरकारी कर्मचारियों के पारिश्रमिक की दरों के निर्धारण से सम्बन्ध रखते हैं।

(६) कार्य के निष्पादन में काम आने वाले अनुभव (Experiences), प्रवीणता, तथा उत्तरदायित्व की मात्राओं का ध्यान रख कर ही प्रतिफल (Compensation) में घट-बढ़ की जानी चाहिये। यदि कार्य अधिक जोखिमपूर्ण (Risky) है तो वेतन क्रम ऊंचा होना चाहिये।

(७) वेतन क्रमों के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण तत्व है समान कार्य के लिए *समान वेतन*। वेतन क्रम में पक्षपात के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच विविधतायें (Variations) नहीं होनी चाहिये। 'प्रतिफल या प्रतिकर पद के अनुसार मिलना चाहिये व्यक्ति के अनुसार नहीं।

(८) *निर्वाह खर्च (Cost of living)* एक ही देश के अन्तर्गत प्रदेश प्रदेश में भिन्न भिन्न होता है। अतः कर्मचारियों को प्रतिफल देते समय प्रादेशिक (Regional) तथा स्थानीय (Local) विविधताओं को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिये।

इस प्रकार वेतन क्रमों (*Pay scales*) का निर्धारण करने में अनेक विचारणीय बातों का ध्यान रखा जाता है। इसके निर्धारण में कोई भी एक तत्व निर्णायक (Decisive) भाग अदा नहीं कर सकता। उन सभी आयोगों तथा व्यक्तियों ने, जिन्होंने कि सरकारी कर्मचारियों की प्रतिफल की समस्या का अध्ययन किया है, इन तत्वों के सयुक्तिकरण पर ही जोर दिया है।

देश में, लगभग तीस वर्षों से वेतनों का जो आधारभूत ढांचा (Basic structure) प्रचलित है वह शाही आयोग (Royal Commission) द्वारा, जिसकी अध्यक्षता लार्ड इसलिंगटन (Lord Islington) ने की थी, भारत में लोक सेवाओं (१६१२-१५) पर दी गई सिफारिशों के ही अनुरूप है और उन सिफारिशों के प्रतिरूप (Pattern) में जो सिद्धान्त अन्तर्निहित हैं उनका वर्णन इसलिंगटन आयोग[1] ने निम्न प्रकार किया था

1 Para 49 of their Report

"इसका एकमात्र सुरक्षित सिद्धान्त यह है कि सरकार अपने कर्मचारियो को इतना, और केवल इतना ही, वेतन दे जितना कि उचित प्रकृति एव चरित्र वाले व्यक्तियो की भर्ती के लिए आवश्यक हो, और जिसके द्वारा वे सन्तुष्टि तथा प्रतिष्ठा की ऐसी मात्रा कायम रख सकें जोकि उनको प्रलोभनो से बचाये, तथा उन्हें सेवाकाल तक कुशल बनाये रखे। अत जब हमने कीमतो मे होने वाली वृद्धि का ध्यान किया है, हमने कोई भी सामान्य सिफारिश इसके आधार पर नही की है। जहाँ हमने वेतन के परिवर्तनो की सलाह दी है वह इस कारण कि पारिश्रमिक की असमानताओ को, जो कि कार्य-कुशलता के लिए हानिकारक होती है दूर किया जा सके, उन आशाओ को पूरा किया जा सके जो कि सरकार के द्वारा पहले की गई घोषणाओ पर न्यायोचित दृष्टि से आधारित हैं, और भर्ती मे सुधार किया जा सके, क्योकि भर्ती की वर्तमान शर्तें सन्तोषजनक कार्मिक-वर्ग को प्राप्त करने की दृष्टि से अपर्याप्त नही हैं।"

भारत मे उच्चतर सिविल सेवाओ (१९२३–२४) पर नियुक्त किये गये शाही आयोग ने भी, जो कि ली आयोग (Lee Commission) के नाम से विख्यात है, इस सिद्धान्त के साथ पूर्ण सहमति प्रकट की।

वरादाचेरियर आयोग (Varadachariar Commission १९४६-४७) ने वेतन निर्धारण के सिद्धान्तो की फिर से जाच की और (उनके प्रतिवेदन का अनुच्छेद ४४) वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा

"वे सामान्य शैक्षणिक योग्यतायें जिनकी प्रत्याशियो (Candidates) से आशा की जाती है तथा साथ ही वे विशिष्ट योग्यतायें व प्रशिक्षण (Training), जो विशेष पदाधारियो के लिए आवश्यक होते हैं, विचारणीय बातें अवश्य हैं। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात पद के कार्यों एव उत्तरदायित्वो की प्रकृति है। एक पदधारी (Holder of an office) को अपना स्तर तथा गौरव कायम रखने के योग्य बनाने की आवश्यकता पर अत्यधिक जोर दिया गया है। यद्यपि इस प्रजातन्त्रीय युग मे किसी जादू के डन्डे से ऐसा नही किया जा सकता, परन्तु इसकी पूर्णतया उपेक्षा भी नही की जा सकती। कुछ पदाधिकारियो ने लोक-कर्मचारियो को प्रलोभन से दूर रखने की आवश्यकता पर जोर दिया है, यह बात सत्य है, बशर्ते कि इसका अभिप्राय यथोचित रीति से उनको न्यूनता अथवा अभाव से ऊपर रखना हो। परन्तु इस बात को दृढता से स्वीकार करना तो बहुत अधिक होगा कि ऊचे वेतन ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध पूर्ण सुरक्षा के साधन हैं। जहाँ यह बात सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है कि बाजार मूल्य की कसौटी (Market value test) सदा ही उपलब्ध नही हो सकता और यदि यही कसौटी पूर्ण रूप से लागू की जाये तो उचित भी नही होगा—उचित एव तर्कपूर्ण बात केवल यही है कि जहाँ तक भी व्यावहारिक हो, सिविल सेवकों के कुछ वर्गों के वेतन की दरो तथा तुलनात्मक बाहरी दरो (Rates) के बीच एक "उचित सापेक्षिता" (Fair relativity) कायम रखी जानी चाहिये और समानता

(Parity) का निर्णय देश में प्रचलित वेतन-स्तरों की केवल दीर्घकालीन प्रवृत्तियों (Long term trends) को दृष्टिगत रख कर किया जाना चाहिये ।"

वरादावेरियर आयोग ने, इसलिंगटन आयोग के सिद्धान्त को ठीक मानते हुये यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि सामाजिक नीति के रूप में, पारिश्रमिक की निम्नतम दर "निर्वाह-मजदूरी" (Living wage) से कम नहीं होनी चाहिये और उच्चतम वतन भी, जहाँ तक सम्भव हो सके, इतने निम्न रखे जाने चाहियें कि वे भर्ती तथा कुशलता की अनिवार्य अपेक्षाओं (Essential requirements) के अनुरूप हों। न्यूनतम तथा अधिकतम वेतन इस प्रकार निर्धारित करने के बाद, मध्य के वेतनों का निश्चय अधिकतर एवं सेवा अथवा सेवाओं के पद-सोपान (Hierarchy) के अन्तर्गत मनोपजनक शीषरूप सापेक्षताओं (Vertical relativities) और सेवाओं के एक वर्ग तथा दूसरे वर्ग के बीच क्षैतिज सापेक्षताओं (Horizontal relativities) की स्थापना अथवा उनको कायम रखने की बातों के आधार पर किया जाना चाहिये।

सेवा की शर्तों एवं लाभों के ढांचे का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिये *कि जिससे विभिन्न स्तरों पर आवश्यक अर्हताओं (Qualifications) तथा योग्यताओं (Abilities) वाले व्यक्तियों की भर्ती के विषय में निश्चिन्त हुआ जा सके* और उनको कुशल बनाये रखा जा सके।

वेतन आयोग (Pay commission १९४७) ने निम्नलिखित बातों का पता लगाने के लिए कुछ प्रयोगसिद्धि परीक्षायें निर्धारित की, अर्थात् यह कि लाभों एवं वेतनों की वर्तमान दरों और सेवा की प्रचलित शर्तों पर सरकार को वान्छित स्तर के व्यक्ति भर्ती के लिए प्राप्त हो रहे हैं या नहीं, सरकारी कर्मचारी अपनी सेवा (Service) के द्वारा सामान्यतया अपनी कार्यकुशलता को बराबर कायम रख रहे हैं या नहीं, और वही कर्मचारी अन्य रोजगारों में जाने के लिए अनेक असामयिक सेवानिवृत्तियों (Pre-mature retirements) अथवा त्यागपत्रों (Resignations) *का सहारा तो नहीं ले रहे हैं।*[1]

इस प्रकार वेतन-क्रम (Pay scales) इतने पर्याप्त होने चाहिये कि जिससे कुशल कर्मचारियों की भर्ती की जा सके, उन्हें किसी भी प्रकार के प्रलोभन (Temptation) से दूर किया जा सके और उनकी भौतिक (Physical) तथा सामाजिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सके।

प्रतिफल योजना (Compensation plan) के बारे में समय-समय पर सदा पुनर्विचार करते रहना चाहिये क्योंकि लोगों का निर्वाह या रहन-सहन का खर्च (Cost of living) उनकी आर्थिक दशायें तथा सामाजिक महत्तायें परिवर्तित होती रहती हैं। यही वह कारण है जिसकी वजह से सरकारें प्रतिफल की समस्याओं का *अध्ययन करने के लिये प्रायः वेतन आयोगों की नियुक्तियाँ किया करती हैं।*

---

1 वेतन आयोग का प्रतिवेदन (Report) १९५७–५९ अनुच्छेद para 9)

१८

लोक-कर्मचारियों की भर्ती
(Recruitment of Public Servants)

सरकारी कर्मचारियो की एक महत्वपूर्ण समस्या उनकी भर्ती (Recruitment) की होती है। भर्ती से आशय है कि लोक सेवा (Public service) की नियुक्तियो के लिए प्रतियोगिता करने के हेतु उपयुक्त प्रत्याशियो (Candidates) को ढूढने तथा उन्हे प्रेरित करने के प्रयत्न किये जायें। भर्ती का उद्देश्य यह होता है कि किसी विशिष्ट पद के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति ढूढा जाये। भर्ती की एक गलत नीति से कार्मिक-वर्ग की नियुक्ति का सम्पूर्ण कार्यक्रम ही छिन्न-भिन्न हो सकता है। किसी भी देश के लिए, जो कि लोक सेवाओ के लिए कुशल अधिकारियो व कर्मचारियो को प्राप्त करना चाहता है यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह भर्ती की एक सुदृढ एवं युक्तिसगत नीति अपनाय।

निषेधात्मक और निश्चयात्मक भर्ती की विचारधारा
(The Concept of Negative and Positive Recruitment)

यदि भर्ती का उद्देश्य सेवा से राजनैतिक प्रभाव को समाप्त करना अथवा पक्षपात को रोकना या 'दुर्जनो को उससे दूर रखना' है, तो इसे भर्ती की निषेधात्मक विचारधारा का नाम दिया जायेगा। प्रारम्भ मे, जबकि योग्यता प्रणाली (Merit system) ने लूट-प्रणाली (Spoils system) का स्थान लिया था, तो सिविल सेवा आयोग को 'लूट की राजनीति' (Spoils politics) को समाप्त करने का एक अस्त्र समझा जाता था। भर्ती का मुख्य उद्देश्य सभी व्यक्तियों को लोक सेवा के लिए खुले बाजार मे प्रतियोगिता करने के लिए समान अवसर प्रदान करना था। भर्ती की रीतियो द्वारा इस बात का प्रयत्न नही किया जाता था कि लोक कर्मचारियो का एक सूक्ष्म व योग्य वर्ग प्राप्त हो सके अत प्रतियोगिता (Competition) की बजाय अधिकतर जोर इस बात पर दिया जाता था कि भर्ती 'खुले रूप में' (Open) हो। भर्ती के इस निषेधात्मक प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि लोक-सेवायें उदासीनता (Mediocrity) का आश्रयस्थल बन गईं। सिविल सेवा आयोग (Civil Service Commission) बडे समूहों मे से उच्च पद-क्रम के प्रत्याशियो को छाटने के लिए औसत के नियम (Law of averages) को लागू करने पर विश्वास करते थे। जैसा कि किगसले ने कहा कि इस प्रयत्न का परिणाम यह होता है कि "दुर्जनो (Rascals)

सवाओं से बाहर रखे जाते हैं परन्तु शायद इस प्रकार अनेक योग्य व बुद्धिमान व्यक्ति भी बाहर रह जाते हैं।'[1]

लूट प्रणाली द्वारा निर्माण किये गये वातावरण को शान्त करने के साथ ही साथ भर्ती के सम्बन्ध में फिर जोर इस बात पर दिया जाने लगा कि लोक सेवाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे योग्य व सूक्ष्म (Competent) व्यक्ति प्राप्त किये जायें। निश्चयात्मक भर्ती (Positive recruitment) से आशय है कि कार्मिक-वर्ग के चुनाव करने वाला अभिकरण (Agency) सक्रिय होकर सर्वोत्तम व्यक्तियों की खोज करेगा और वह इस बात का यथाशक्ति प्रयत्न करेगा कि लोक सेवाओं के लिए सबसे अधिक योग्य (Able) तथा सर्वोत्तम अर्हताओं वाले (Qualified) व्यक्तियों को आकर्षित किया जाये। निश्चयात्मक भर्ती में जोर इस बात पर दिया जाता है कि सर्वोत्तम अर्हताओं वाले प्रत्याशियों (Best qualified candidates) की तीव्रता से खोज की जाय और ऐसा करने के लिये कर्मचारियों की प्राप्ति के सबसे अधिक मुख्य व शक्तिशाली स्रोतों (Sources) की ओर ध्यान केन्द्रित किया जाए। सबसे अधिक ऊँची योग्यताओं व अर्हताओं वाले कार्मिक-वर्ग को आकर्षित करने के लिये नई-नई विधियाँ अपनानी पड़ती है। भर्ती के कार्यक्रम की योजना इस प्रकार बनानी होती है कि केवल योग्य व पात्र व्यक्तियों को ही प्रतियोगिता में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाय।

भर्ती की समस्याएं
(Problems of Recruitment)

लोक सेवाओं के लिए योग्य व सूक्ष्म व्यक्तियों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में अनेक समस्यायें उठ खड़ी होती है जोकि निम्नलिखित हैं

(१) सरकारी कर्मचारियों की भर्ती कहाँ से की जाय, अर्थात् क्या सभी भर्तियाँ बाहर (Outside) से की जायें अथवा विभाग (Department) के अन्दर से ही? समस्या सीधी भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती (*Direct Recruitment Versus Recruitment by Promotion*) की है।

(२) भिन्न भिन्न पदों के लिये विभिन्न कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यतायें अथवा अर्हताएं (Required Qualifications) क्या हों?

(३) प्रत्याशियों की योग्यताओं का निर्धारण किस प्रकार किया जाए? इसमें (क) परीक्षाओं (Examinations), (ख) मौखिक व लिखित परीक्षाएं (Oral and written tests) (ग) प्रत्याशियों के व्यक्तित्व (Personality) की जाँच के लिए साक्षात्कारों (Interviews) और, (घ) प्रत्याशियों की बुद्धि तथा दृष्टिकोण की जाँच करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं (Psychological tests) की समस्या उत्पन्न

1 J. Donald Kingsley, *Recruiting Applicants for the Public service* (Chicago 1942) A report submitted to the Civil Service Assembly by the Committee on Recruiting for the Public service

होती है। प्रश्न यह है कि ये परीक्षाए किसी विशिष्ट पद के लिए विशिष्ट प्रत्याशी की योग्यताम्रो के निर्धारण मे कहाँ तक सफल हो सकती हैं।

(४) इन योग्यताम्रों अथवा अर्हताम्रो का निर्धारण करने के लिए किस प्रकार के अभिकरण (Agency) की स्थापना की जाए और वह अभिकरण किस प्रकृति का होना चाहिए ?

ये भर्ती की अनेक महत्वपूर्ण समस्यायें हैं। अब हम एक-एक करके इनकी विवेचना करेंगे

(१) **भर्ती की रीतिया** (Methods of Recruitment)—सेवा के अन्दर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती बनाम सेवा के बाहर से अथवा सीधी भर्ती।

सरकारी कर्मचारी-वर्ग की भर्ती दो तरीको से की जाती है : एक तरीका है सीधे खुले बाजार से कर्मचारियो की भर्ती करना। इसे सीधी भर्ती (Direct Recruitment) कहा जाता है। दूसरा तरीका यह है कि कर्मचारियो की एक पद से दूसरे पद को पदोन्नति (Promotion) करदी जाती है। इसे सेवा के अन्दर से की जाने वाली भर्ती कहा जाता है क्योकि कर्मचारियो की एक पद से दूसरे पद को तरक्की करदी जाती है। लोक सेवा मे उच्चतर अधिकारियो के मामले मे अधिकतर भर्ती के इसी सिद्धान्त को लागू किया जाता है। लगभग सभी देश के लोक कर्मचारियों का चुनाव करने के लिए इन दोनो ही रीतियो का उपयोग करते हैं।

सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करने की अच्छाइयाँ
(Merits of Recruitment from within or by Promotion)

भर्ती की इस विधि मे, जिसमे कि कर्मचारी पहले से ही सेवा मे होते हैं और उच्चतर पदो पर उनकी पदोन्नति कर दी जाती है, अनेक अच्छाइयां पाई जाती हैं।

(१) कर्मचारी पहले से ही सरकारी काम का अनुभव प्राप्त किये होते हैं और यह पिछला अनुभव नये कर्तव्यो की पूर्ति मे उनकी सहायता करता है।

(२) भर्ती की यह रीति कर्मचारियो को उन्नति के प्रचुर अवसर प्रदान करती है। यह कर्मचारियो को और अधिक कुशलता के साथ कार्य करने की प्रेरणा देने वाली एक शक्ति होती है। इस प्रकार सेवा मे कार्य-कुशलता (Efficiency) बढती है।

(३) निष्ठा तथा उत्साहपूर्ण सेवा के लिये पुरस्कार के रूप मे पदोन्नति की जो आशा होती है वह सेवा मे कार्य-सचालन के स्तर को ऊंचा बनाये रखने के लिये अमूल्य सिद्ध होती है।

(४) यह कहा जाता है कि 'परीक्षा पद्धति' व्यक्तियो की कार्य करने की क्षमताम्रो (Capacities) का पता नही लगा सकती। परीक्षा पद्धति की यह कमी सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करके दूर करदी जाती है। चूंकि कर्मचारी पहले से ही एक पद पर काम कर रहा होता है अत उनकी कार्य करने की सामर्थ्य का अच्छी प्रकार पता रहता है।

(५) कर्मचारी के पिछले कार्यों के लेखे जोखे के आधार पर उसको सुरक्षा के साथ नया उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है।

(६) परीक्षा पद्धति तथा सीधी भर्ती की अपेक्षा इस रीति के द्वारा उच्चतर पदो के लिये कुशल कर्मचारियो की प्राप्ति की अधिक सम्भावना है।

(७) चूंकि कर्मचारी पहले से ही प्रशिक्षण-प्राप्त (Trained) होते हैं अत बिना किसी जोखिम अथवा कठिनाई के उनको नया कार्य सौंपा जा सकता है। इस प्रकार नई भर्ती किये गये कर्मचारियों को दिये जाने वाले प्रशिक्षण (Training) के व्यय की बचत होती है।

यदि भर्ती की इस पद्धति को अपनाया जाये तो सम्पूर्ण रूप मे सरकारी सेवा की कुशलता मे वृद्धि होती है। इससे कठिन श्रम करने की भारी प्रेरणा मिलती है जोकि कार्य-कुशलता के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है।

सेवा के भीतर से अथवा पदोन्नति द्वारा भर्ती करने के दोष
(Defects of Recruitment from within or by Promotion):

(१) इस पद्धति से कर्मचारियो के चुनाव का क्षेत्र सकुचित हो जाता है क्योकि भर्ती का कार्य केवल उन लोगो तक ही सीमित हो जाता है जोकि पहले से ही सेवा म लगे होते हैं। जब चुनाव की परिधि ही सीमित हो जाती है तो कम योग्य व्यक्तियो की भर्ती की ही सम्भावना रहती है।

(२) इससे गतिहीनता तथा रूढ़वादिता को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि सेवा म नये रक्त का इन्जेक्शन नही दिया जाता।

सीधी भर्ती (Direct recruitment) का लाभ यह है कि प्रार्थियो (Applicants) की एक बहुत बडी सख्या म से सर्वोत्तम गुणो वाले व्यक्तियो का चयन किया जा सकता है। कर्मचारियो के चुनाव की परिधि बहुत बडी होती है क्योंकि चुनाव व्यक्तियो की एक बहुत बडी सख्या मे से किया जाता है।

सीधी भर्ती की पद्धति के अन्तर्गत, सभी व्यक्तियो को पदो के लिए प्रतियोगिता करने का एक न्यायोचित अवसर प्रदान किया जाता है। सीधी भर्ती की पद्धति के द्वारा समान अवसर' के सिद्धान्त को सर्वोत्तम रीति से लागू किया जाता है।[1]

सभी प्रजातन्त्रीय देशो मे भर्ती की इन दोनो ही पद्धतियो का अनुसरण किया जाता है अर्थात खुली प्रतियोगिता (Open competition) की पद्धति का और साथ ही साथ पदोन्नति (Promotion) की पद्धति का। उच्चतर पर्यवेक्षकीय स्टाफ (Higher Supervisory Staff) के मामले म सामान्यत पदोन्नति द्वारा भर्ती की

1 The best amount of this problem is given by Lewis Mayers The Federal service A study of the system of Personnel Administration of the United States Government Institute for Government Research, studies in Administration 1921 Chapter on Selection by Promotion from within versus *Recruitment from without pp 215 17*

पद्धति का आश्रय लिया जाता है। भारत मे आय-कर विभाग (Income-tax Department) मे प्रथम श्रेणी (Class I) के २० प्रतिशत से अधिक स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के सम्बन्ध मे भारत मे जो स्थिति चल रही है उसका वर्णन केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा इस प्रकार किया गया है, "यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रथम श्रेणी के लिए भर्ती मुख्यत लोक-सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली एक प्रतियोगिता परीक्षा (Competitive Examination) के द्वारा की जाती है (और कभी-कभी उनके द्वारा चयन करके भी की जाती है) तथा द्वितीय श्रेणी मे से (लोक सेवा आयोग की सहमति से) कम मात्रा मे की जाती है। द्वितीय श्रेणी (Class II) की भर्ती भी अनेक मामलो मे लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली एक प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है (अथवा उनके द्वारा चयन करके)। तथापि, प्रथम श्रेणी के लिये की जाने वाली पदोन्नतियो के मुकाबले निम्न श्रेणियो मे से द्वितीय श्रेणी के लिये पदोन्नत किये जाने वाले व्यक्तियों का अनुपात अधिक होता है : कुछ विभागो (Departments) मे द्वितीय श्रेणी के पदो को पूर्णतया पदोन्नति द्वारा ही भरा जाता है।[1]

लोक-कर्मचारियो के लिए अपेक्षित योग्यतायें अथवा अर्हतायें (Qualifications required of the Public servants) :

प्रत्येक देश मे लोक-सेवा मे प्रवेश के लिये कुछ पूर्वापेक्षित (Pre-requisite) योग्यतायें निर्धारित की जाती हैं। वे व्यक्ति, जोकि समानता और मानवता के समर्थक हैं, यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को सिविल सेवा आयोगो मे अवसर प्रदान किया जाये। उनके अनुसार लोक-सेवाओ के लिये योग्यताओ अथवा अर्हताओ की कोई भी पूर्वशर्त समानता के सिद्धान्त (Principle of equality) के विरुद्ध है। शैक्षिणिक योग्यतायें (Educational qualifications) प्रतियोगिता के क्षेत्र को केवल उन्ही लोगो तक सीमित कर देती हैं जोकि उन योग्यताओं को पूरा कर सकते हैं, जबकि प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का एक अवसर दिया जाना चाहिये कि वह अपनी पसन्द की किसी भी सेवा के लिए प्रतियोगिता कर सके। वे व्यक्ति, जोकि इस बात के समर्थक हैं कि लोक-सेवा मे प्रवेश के लिए कुछ पूर्वापेक्षित योग्यतायें होनी चाहियें, यह दावा करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति हर एक पद के लिए उपयुक्त तथा योग्य नहीं होता। अत पदो के लिए प्रतियोगिता करने की अनुमति केवल उन्हीं प्रत्याशियो (Candidates) को दी जानी चाहिये जिनमे कि उसके लिए

1 Report of the Central Pay Commisson, 1950, pp 15-16.

Note—No Direct Recruitment of upper Division Clerks The Government of India has decided that there will be no *direct recruitment to the posts* of Upper Division Clerks in Central Government offices except the Audit and Accounts Departments. These posts will be filled exclusively by promotion of *lower division clerks.*

विशिष्ट क्षमता पाई जाये। इस प्रकार उन लोगों को सेवाओं से दूर रखने के लिये, जिनके कि सफल होने की सम्भावना नहीं है, यह आवश्यक है कि परीक्षाओं की पूर्वशर्तों के रूप में कुछ प्रतिबन्ध लगाये जायें।

लोक सेवा में प्रवेश के लिए सदा ही कुछ योग्यतायें अथवा अर्हतायें निर्धारित की जाती हैं जिससे कि किसी विशिष्ट-पद के लिए दो प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता होती है। (१) सामान्य (General) और विशिष्ट (Special)। प्रत्येक लोक-कर्मचारी के लिए जिन सामान्य योग्यताओं की आवश्यकता होती है वे हैं नागरिकता (Citizenship), अधिवास (Domicile) अथवा निवास (Residence) तथा लिंग (Sex)। विशिष्ट योग्यतायें आयु (Age), शिक्षा (Education) तथा अनुभव (Experience) से सम्बन्ध रखती हैं। शिक्षा सामान्य अथवा तकनीकी (*Technical*) *हो सकती है। अब हम इन योग्यताओं का एक-एक करके अध्ययन करेंगे।*

योग्यतायें अथवा अर्हतायें
(Qualifications)

(१) नागरिकता (Citizenship)—एक लोक-कर्मचारी के लिये प्रथम अपेक्षित योग्यता यह है कि उसे राज्य का नागरिक होना चाहिए। इस योग्यता का अस्तित्व *उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि पृथक्-पृथक् राष्ट्रीय-राज्य बने रहेंगे।*

(२) अधिवास अथवा निवास (Domicile or Residence)—कभी-कभी लोक-कर्मचारियों के लिये अधिवास योग्यताओं की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में केवल देश के किसी विशिष्ट राज्य अथवा भाग के निवासी ही कुछ सरकारी नियुक्तियों के लिए योग्य समझे जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि कम योग्य एवं कम सक्षम व्यक्तियों की नियुक्ति इसलिए हो सकती है क्योंकि वे निवास की योग्यता की शर्त को पूरा करते हैं और यह हो सकता है कि अनेक योग्य एवं सक्षम व्यक्तियों को प्रतियोगिता का अवसर केवल इसलिए न मिले क्योंकि वे उस विशिष्ट-क्षेत्र में नहीं रहते।

(३) लिंग (Sex)—कभी-कभी लिंग किसी एक विशिष्ट-पद के लिए योग्यता और अन्य पद के लिए अयोग्यता अथवा अनर्हता (Disqualification) बन जाता है। प्रजातन्त्रीय देशों में, अधिकांश सरकारी नियुक्तियों के सम्बन्ध में लिंग की समानता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है, यद्यपि कभी-कभी उच्च प्रशासकीय *पदों पर विवाहित स्त्रियों की नियुक्ति पर रोक लगा दी जाती है।* यह समझा जाता है कि उनके पारिवारिक उत्तरदायित्व उनके प्रशासकीय कर्त्तव्यों से टकरा सकते हैं।

(४) आयु (Age)—कुछ देश तो लोक-सेवाओं के लिए नवयुवकों (Young persons) को भर्ती करने की पद्धति का अनुसरण करते हैं, जबकि अन्य देश इस बात में विश्वास करते हैं कि अधिक आयु के परिपक्व एवं अनुभवी (Experienced)

व्यक्ति भर्ती किये जाने चाहिये। इगलैंड और भारत मे १६, १८, २२ अथवा २५ वर्ष के युवा व्यक्तियो को भर्ती करने की प्रथा है अर्थात ठीक उस समय के पश्चात् जबकि वे स्कूलो अथवा कालिजो से निकलते है। नवयुवको को भर्ती कर लिया जाता है और फिर जब वे सेवा मे होते है तो उच्चतर पदो के लिए उन्हे प्रशिक्षण (Training) दिया जाता है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे, प्रशिक्षण प्राप्त, अनुभवी तथा परिपक्व आयु वाले व्यक्तियो को भर्ती करने की प्रथा है। वहाँ वैज्ञानिक व व्यावसायिक पदो के लिए आयु की सीमा (Age-limit) ३५, ४५, तथा ५३ है। अमेरिका मे जोर इस बात पर दिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को, जब भी वह चाहे, लोक सेवा के लिये प्रतियोगिता करने का अवसर प्रदान किया जाए।' जो व्यक्ति इस बात मे विश्वास करते है कि लोक-सेवा को एक स्थायी जीवन-वृत्ति (Permanent career) बनाया जाय, उनकी राय यह है कि इसमे नवयुवको को भर्ती किया जाना चाहिए और बाद मे उच्चतर पदो के लिए उनकी पदोन्नति कर दी जानी चाहिए। यह कहा जाता है कि मध्यम-आयु के व्यक्ति, जो कि लोक सेवा मे प्रवेश करना चाहते है, अधिकतर वे होते हैं जोकि गैर सरकारी व्यवसाय मे असफलता के साथ अपना भाग्य आजमाते है और जो सरकारी नौकरी की सुरक्षा मे शान्ति के साथ रहना चाहते है।

आयु की समस्या के बारे मे लिखते हुए जे० डो० किंग्सले (J. D Kingsley) ने कहा कि "पहली (अर्थात् नवयुवको तथा नवयुवतियो की भर्ती) की प्रथा मे यह पहले से ही मान लिया जाता है कि सेवाओ मे जीवन-वृत्ति पद सोपानो (Career hierarchies) अथवा अपवर्ती सीढियो का एक क्रम वर्तमान रहता है जिन पर अधिक योग्य व प्रभावशाली अधिकारी अपने समस्त सेवा-काल मे आगे बढते रहते हैं। दूसरी (अर्थात् कार्य और अनुभव से सम्बन्धित व्यावहारिक परीक्षाओ के आधार पर परिपक्व आयु वाले पुरुषो व स्त्रियो की भर्ती की) प्रथा मे सिविल सेवा को न्यूनाधिक रूप मे पृथक-पृथक् पदो (Discrete positions) का एक समूह माना जाता है कि मुख्यत विशिष्ट पद के लिए आवश्यक विशिष्ट ज्ञान एव योग्यता के आधार पर भरा जाता है। पहली पद्धति पदोन्नति (Promotion) पर जोर देती है और सेवा को गतिशील बनाती है। दूसरी पद्धति प्रवेश के समय विशिष्ट एव तकनीकी ज्ञान पर जोर देती है और सेवा को और अधिक स्थिर अथवा गतिहीन बनाती है। पहली होनहार नवयुवको का पक्ष लेती है और दूसरी उदासीन प्रौढता (Mediocre maturity) का। पहली पद्धति सिविल सेवा को शिक्षा-प्रणाली के अनुकूल बनाती है और दूसरी इसको निजी उद्योग मे रोजगार की मात्रा की घट-बढ के अनुरूप बनाती है।"[1]

1 J Donald Kingsley 'Recruiting Applicants for the Public service (Chicago, 1942) A report submitted to the Civil Service Assembly the Committee on Recruiting for the Public service Civil service Assembly of the United States and Chanada

भर्ती आमतौर पर अपेक्षाकृत शुरू की आयु मे ही की जानी चाहिये और पदोन्नति के अवसरो म वृद्धि की जानी चाहिए जिससे कि लोक-सेवा कर्मचारियो की एक स्थायी जीवनवृत्ति बन सके ।

(५) शिक्षा (Education)—सरकार को केवल सामान्य प्रशासकों (General administrators) की आवश्यकता नही होती, अपितु शिल्पियो अथवा तकनीकज्ञों (Technicians), वैज्ञानिकों, डाक्टरो, इजीनियरों तथा अन्य विशिष्टीकृत व्यवसायों के व्यक्तियो की भी आवश्यकता होती है ।

शिक्षा की योग्यता दो प्रकार की होती है (१) सामान्य शिक्षा अर्थात् वह जोकि एक छात्र सामान्य शैक्षणिक सस्थाओ मे प्राप्त करता है और (२) विशिष्ट शिक्षा जो कि व्यावसायिक स्कूलों मे दी जाती है जैसे डाक्टरी अथवा इजीनियरिंग की शिक्षा । तकनीकी (Technical) और व्यावसायिक (Professional) पदो पर केवल उन्ही व्यक्तियो की भर्ती की जानी चाहिए जिन्होंने उस व्यवसाय मे तकनीकी शिक्षा प्राप्त की हो । डाक्टरो के रूप मे केवल उन्ही व्यक्तियो की भर्ती की जानी चाहिए जिन्होने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की हो ।

जहाँ तक अन्य सरकारी नौकरियो का सम्बन्ध है, कुछ देशो मे औपचारिक शिक्षा (Formal education) की आवश्यकता अनिवार्य है जबकि कुछ अन्य देश इसके पक्ष म नहीं हैं । अमेरिकन अप्रावैधिक अथवा अतकनीकी (Non-Technical) प्रकृति की सरकारी नौकरियो म प्रवेश के लिए औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता के विचार का विरोध करते है । उनका विश्वास है कि प्रत्येक अमरीकी नागरिक किसी भी लोक सेवा परीक्षा मे बैठने के लिए समान अवसर प्राप्त करने का अधिकारी है । सन् १९४४ म अमेरिकन काग्रेस ने वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक पदों को छोडकर अन्य सभी पदो के लिए किसी प्रकार की शैक्षणिक आवश्यकता का निषेध कर दिया था ।

भारत तथा इगलैंड म, औपचारिक शिक्षा सरकारी नौकरियो म प्रवेश की एक पूर्वशर्त है । ब्रिटेन में, लिपिक पदों के लिए हायर-सेकेण्डरी सार्टिफिकेट, निष्पादक (Executive) पदो के लिए बी० ए० की डिग्री और प्रशासकीय पदो के लिए आनर्स डिग्री आवश्यक योग्यता है । भारत मे, लिपिक पदो के लिये हाई स्कूल अथवा हायर सैकेण्डरी का प्रमाण पत्र, और उच्च पदो के लिए कला (Arts), विज्ञान, वाणिज्य (Commerce) या विधि (Law) म डिग्री आवश्यक योग्यता है । औपचारिक शिक्षा की आवश्यकताओ की इस व्यवस्था का लाभ यह है कि प्रतियोगिता परीक्षाओं मे बैठने की केवल उन्ही व्यक्तियो को अनुमति दी जाती है जिनकी कि प्रतियोगिता मे सफल होने की कोई सम्भावना हो । यदि औपचारिक शैक्षणिक योग्यतायें (Formal educational qualifications) प्रत्याशियो के लिए आवश्यक न हो तो कोई भी व्यक्ति प्रतियोगिता परीक्षाओ मे बैठ सकता है, और इस स्थिति मे सरकारी

धन का भारी अपव्यय होगा और लोक-सेवा आयोग अनावश्यक किस्म के कार्य के भार से लदा रहेगा।

(६) अनुभव (Experience)—कभी-कभी वह प्रशिक्षण अथवा अनुभव जोकि एक प्रत्याशी (Candidate) ने कार्य के वास्तविक सम्पादन के समय प्राप्त किया होता है, सरकारी नौकरियों के लिए एक आवश्यक योग्यता माना जाता है।

(७) वैयक्तिक गुण अथवा योग्यतायें (Personal Qualifications)—ईमानदारी (Honesty), चातुरी (Tact), प्रतिभाशाली अथवा सामयिक सूझ (Presence of mind), साधनपूर्णता (Resourcefulness), विश्वस्तता (Reliability) दृढ़ता (Persistence) तथा निर्देश देने व नियन्त्रण करने की सामर्थ्य—एक लोक कर्मचारी के लिए महत्वपूर्ण योग्यताएं तथा अर्हताएं मानी जाती हैं।

इन सभी योग्यताओं अथवा अर्हताओं का उद्देश्य यही है कि लोक सेवा के लिए सबसे अधिक योग्य एवं सक्षम (Competent) व्यक्ति प्राप्त हों।

६. कर्मचारियों की योग्यताओं की जाँच करने का ढंग
(The Method of Determining qualifications)

भर्ती से सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्रत्याशियों की योग्यताओं के निश्चय के लिए विधियों तथा उपायों की खोज की जाय। कर्मचारियों की योग्यताओं के निश्चय के लिए साधारणतः परीक्षा विधि (Examination device) का प्रयोग किया जाता है। परीक्षा के द्वारा प्रत्याशी की योग्यता की जाँच करली जाती है और अयोग्य अथवा अपात्र व्यक्तियों को छोड़ दिया जाता है।

कर्मचारियों की योग्यताओं की जाँच करने के लिए ली जाने वाली किसी भी परीक्षा में कम से कम दो विशिष्टतायें होनी चाहियें. (१) परीक्षा किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने की योग्यता का माप करने के लिए यथेष्ट रूप से मान्य होनी चाहिए। यदि परीक्षा प्रत्याशी की वास्तविक योग्यता का ठीक-ठीक पता नहीं लगा सकती तो वह व्यर्थ है। यदि वह व्यक्ति जिसने कि परीक्षा को पास कर लिया है, अपना कार्य नहीं कर सकता तो उस परीक्षा की कोई उपयोगिता नहीं।

(२) परीक्षा विश्वस्त और प्रामाणिक होनी चाहिए। कोई व्यक्ति यदि एक ही परीक्षा को दुबारा दे तो उसे लगभग एक से ही अंक अथवा स्थिति प्राप्त होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, परीक्षा ऐसी होनी चाहिये जो प्रत्याशियों को भी स्पष्ट रूप से इस सम्बन्ध में सन्तुष्टि प्रदान करे कि उनमें से किसी के साथ भी अन्याय नहीं किया गया है। वह व्यक्ति-निरपेक्ष (Objective) होनी चाहिए जिससे कि किसी भी प्रत्याशी के मन में यह भावना पैदा न हो कि कम योग्य व्यक्ति चुन लिए गये और अधिक योग्य छोड़ दिये गये।

भर्ती की परीक्षायें दो प्रकार की होती हैं (१) प्रतियोगिता (Competitive) और (२) अप्रतियोगी (Non Competitive)। प्रतियोगिता परीक्षा को दो बातों का

निर्णय करना पड़ता है (क) इसे इस बात का निर्णय करना होता है कि कौन-कौन से प्रत्याशी (Candidates) न्यूनतम स्तरों में आते हैं। (ख) इसे प्रार्थियों (Applicants) के क्रम का भी निर्णय करना होता है अर्थात् यह है कि कौनसा प्रार्थी सबसे अच्छा है और उसके बाद कौनसा अच्छा है, तथा इसी प्रकार आगे भी क्रम निर्धारण करना। इन परीक्षाओं को प्रत्याशियों की सापेक्षिक स्थितियों (Relative positions) का निर्धारण करना होता है। अप्रतियोगी परीक्षा को केवल उन न्यूनतम स्तरों (Minimum standards) का निर्धारण करना होता है जोकि प्रत्याशियों के लिए आवश्यक होते हैं। प्रत्याशियों की योग्यताओं अथवा अर्हताओं की जाच करने के लिए निम्न प्रकार की परीक्षाओं की व्यवस्था की जाती है

(क) लिखित परीक्षा (The Written Examination),

(ख) मौखिक परीक्षा (The Oral Examination),

(ग) कार्य-सम्पन्नता का प्रदर्शन (The performance demonstration),

(घ) शिक्षा व अनुभव का मूल्यांकन (Evaluation of education and experience),

(ङ) बुद्धि परीक्षा (Intelligence test) ।

अब हम इन परीक्षाओं में से एक-एक की विवेचना करेंगे —

(क) लिखित परीक्षा (Written Examination)

प्रत्याशियों की योग्यताओं की जाच करने के लिए सभी देशों द्वारा आमतौर पर लिखित परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है। प्रश्न यह है कि परीक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये ? क्या परीक्षा के द्वारा प्रत्याशियों के श्रेष्ठतर ज्ञान या सामान्य योग्यता और बौद्धिक बल का पता लगाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये अथवा इसके द्वारा उस विशेष जानकारी (Specific information) का पता लगाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये जोकि उस पद के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में प्रत्याशी में पाई जाये जिसके लिये कि वह प्रतियोगिता कर रहा है ? भारतवर्ष तथा इंगलैण्ड में इन परीक्षाओं का उद्देश्य यह है कि प्रत्याशियों की सामान्य बुद्धिमत्ता (General intelligence) अथवा श्रेष्ठतर ज्ञान (Superior mind) का पता लगाया जाए। परीक्षाओं उन विषयों में ली जाती हैं जोकि कालिजों तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं। इस प्रकार की परीक्षा के समर्थकों का यह विश्वास है कि श्रेष्ठतर बुद्धि तथा ज्ञान वाले व्यक्ति हर एक प्रकार का कार्य कर सकते हैं और अपने आपको सभी परिस्थितियों के अनुकूल बना सकते हैं।

मैकाले, जोकि इस विचार के सबसे बड़े नायक थे, ने यह तर्क दिया कि 'ऐसे व्यक्ति जोकि २१–२२ वर्ष तक ऐसे अध्ययनों (Studies) में व्यस्त रहे जिनका किसी भी प्रकार के व्यवसाय से कोई सम्बन्ध नहीं रहा और जिनके प्रभाव से उनका

मस्तिष्क खुला, ग्रहणशील तथा शक्तिशाली बना है, वे व्यवसाय के प्रत्येक कार्य मे उन व्यक्तियो से अधिक सफल सिद्ध होगे जिन्होने कि १८–१६ वर्ष तक अपने व्यवसायो के विशेष अध्ययन मे व्यतीत किये है।" यह विश्वास किया जाता है कि इतिहास, उच्च कोटि के साहित्य तथा उदार शिक्षा के अध्ययन से सर्वश्रेष्ठ प्रशासक पैदा होगे क्योकि वे अध्ययन व्यक्तियो मे सोचने-विचारने का एक ऐसा तरीका तथा बौद्धिक एव नैतिक अनुशासन उत्पन्न करते है जोकि कुशल तथा योग्य प्रशासको के लिये आवश्यक होता है। शिक्षा प्रत्याशियो मे एक सर्वोच्च कोटि की व्यावहारिक सूझ-बूझ उत्पन्न करती है। भारत मे उच्च सिविल सेवा के लिये प्रतियोगिता करने वाले प्रत्याशियो का उन विषयो मे परीक्षाये देनी होती है जोकि विश्वविद्यालयो मे पढाये जाते हैं। इन परीक्षाओ का उद्देश्य प्रत्याशियो की सामान्य बुद्धिमत्ता का पता लगाना होता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे सिविल सेवको की परीक्षाओ की एक पृथक् ही योजना है। अमेरिकन सिविल सेवा परीक्षाओ का उद्देश्य उस विशिष्ट ज्ञान (Specific Knowledge) का पता लगाना है जोकि प्रत्याशी मे उन कर्त्तव्यो (Duties) के सम्बन्ध मे पाया जाता है जो उसे सम्पन्न करने होते हैं। परीक्षा का उद्देश्य यह है कि किसी भी विशिष्ट क्षेत्र मे प्रत्याशी के उस ज्ञान का पता लगाया जाए जोकि उसने प्रशिक्षण (Training) अथवा अनुभव (Experience) द्वारा प्राप्त किया हो। एक ऐसे पद के लिए अर्थशास्त्र (Economics) मे परीक्षा ली जाती है जिसमे कि अर्थशास्त्र के बारे मे ज्ञान होना आवश्यक होता है। जिस पद मे कानूनी ज्ञान की आवश्यकता होती है उसके लिये कानून (Law) मे परीक्षा ली जाती है। इस पद्धति का लाभ यह है कि कर्मचारी कार्यालय मे अपना कार्य तुरन्त ही प्रारम्भ कर देता है।

लिखित परीक्षा की किस्में (Types of Written Test)

(अ) निबन्ध परीक्षा (Essay Type Test)—इस परीक्षा के अन्तर्गत, प्रत्याशी से किसी विशिष्ट समस्या पर एक लम्बा निबन्ध लिखने को कहा जाता है। इस परीक्षा का उद्देश्य तथ्यो (Facts) के बारे मे प्रत्याशी के ज्ञान तथा एक समस्या के बारे मे तर्क एव प्रमाण प्रस्तुत करने की उसकी सामर्थ्य का पता लगाना है। इस विधि से तर्क प्रस्तुत करने के उसके ढग, उसकी वर्णन शैली तथा भाषा शैली की भी जाच हो जाती है। भारत मे अखिल भारतीय सेवाओ के लिए अनिवार्य 'निबन्ध' की परीक्षा होती है। इस पद्धति के निम्नलिखित दोष हैं (१) यह पद्धति खर्चीली है क्योकि इसमे योग्य परीक्षको (Examiners) को पारिश्रमिक देना पडता है। (२) पृथक्-पृथक् परीक्षको के मूल्याकन-स्तर भिन्न-भिन्न होते हैं अत परीक्षा प्रणाली मे भावनात्मक तत्व (Subjective elements) उत्पन्न हो जाता है। इस पद्धति मे मूल्याकन मे एकरूपता (Uniformity) नही लाई जा सकती।

(ग) लघु उत्तर परीक्षायें (Short answer tests)—प्रत्याशी को एक ऐसी परीक्षा देनी होती है जिसमें सौ या दो सौ प्रश्न दिये होते हैं जिनका उसे हाँ या और प्रत्याशी को केवल ना में उत्तर देना होता है। इसमें ऐसे बहुत से प्रश्न पूछे जाते हैं यह बताना होता है कि प्रश्नों में पूछी गई बात ठीक है या नहीं। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक प्रश्न दिया होता है और उसके बहुत से उत्तर दिये होते हैं जिनमें से प्रत्याशी को सही उत्तर छाँटना होता है। इसे 'बहु विकल्पी लघु परीक्षा' (Multiple choice short test) कहा जाता है। कभी कभी प्रत्याशी को रिक्त स्थानों (Blanks) अथवा छूटे हुए शब्दों की पूर्ति करनी होती है। इस परीक्षा के निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) यह परीक्षा इन मानों में व्यक्तिनिरपेक्ष (Objective) होती है कि इसमें एक प्रश्न का एक ही उत्तर होता है, अतः परीक्षक का भावनात्मक तत्व स्वतः भी प्रकाश में नहीं आता। उत्तर या तो सही होता है या गलत, बीच का कोई रास्ता नहीं होता और परीक्षक के किसी भी प्रकार के स्व विवेक (Discretion) का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता।

(२) चूँकि परीक्षा 'छोटे प्रश्नों' के रूप में होती है अतः थोड़े से समय में ही प्रत्याशी के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

(३) ये परीक्षायें निबन्ध परीक्षाओं के मुकाबले अधिक विश्वस्त एवं प्रमाणित होती हैं।

(४) इनके प्रबन्ध करने में भी कम व्यय होता है क्योंकि एक ही समय में हजारों प्रत्याशियों की परीक्षा ले ली जाती है। इनका परीक्षा फल बिजली के द्वारा गणना करने वाली मशीनों से तैयार किया जाता है अतः कार्य बहुत शीघ्र निबट जाता है।

परन्तु इन परीक्षाओं के द्वारा प्रत्याशी (Candidate) की वर्णनशैली अथवा भाषा की जाँच नहीं की जा सकती। इनके द्वारा जटिल समस्याओं के विश्लेषण की उसकी योग्यता का पता नहीं लगाया जा सकता। इस रीति के द्वारा प्रत्याशी के अनेक मानसिक गुणों की जाँच नहीं की जा सकती। कभी-कभी यह भी आरोप लगाया जाता है कि ये परीक्षायें प्रत्याशी के केवल तथ्य सम्बन्धी ज्ञान (Factual knowledge) की जाँच कर सकती हैं। कुछ अमरीकी लेखकों का यह विश्वास है कि यदि इन परीक्षाओं के प्रश्नों को सावधानी के साथ तैयार किया जाये तो ये निबन्ध परीक्षा अथवा अन्य किसी प्रकार की परीक्षा के मुकाबले अधिक यथार्थ रूप में तथा अल्प-व्यय के साथ प्रत्याशी का निर्णय, तर्क तथा विश्लेषण करने की योग्यता का माप कर सकती है।[1] 'लघु उत्तर' परीक्षाओं के बारे में लिखते हुए प्रो० विलियम ए० रोबसन (William A Robson) ने कहा कि "···· लिपिक सहायकों का चयन ऐसी लघु परीक्षाओं के द्वारा किया जाता है जिनमें कि गणित, अक्षर विन्यास

1 Marx Morstein (Ed), op cit, p 563

(Spelling) तथा शब्दो के अर्थ आदि से सम्बन्धित सरल 'सही व गलत' प्रश्न दिये होते है। इन परीक्षाओ का गम्भीर दोष यह है कि इनमे ठोस योग्यता के लिए कोई गुंजाइश नही होती जैसी कि स्पष्ट वर्णनशैली मे होती है, परन्तु इनमे यह लाभ अवश्य है कि कार्य शीघ्र गति से हो जाता है।"[1]

(ख) मौखिक परीक्षा (Oral Test)

केवल लिखित परीक्षा के द्वारा प्रत्याशी के व्यक्तित्व (Personality) की विशेषताओ का मूल्याकन नही किया जा सकता। अत उसकी वैयक्तिक विशेषताओ का माप करने के लिए मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार (Interview) का सहारा लिया जाता है। साक्षात्कार विधि (Interview device) का प्रयोग सन् १९०६ मे सर्वप्रथम इगलैंड मे नये श्रम कार्यालयो के प्रबन्धको (Managers) का चुनाव करने के लिए किया गया था। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इगलैंड मे, सदस्य अथवा साक्षात्कार *अशासकीय वर्ग के लिए किये जाने वाले चयन* (Selection) की प्रक्रिया का एक अग ही बन गया। बाद मे इसका विस्तार अन्य वर्गो मे भी कर दिया गया। भारत मे, भारतीय प्रशासन सेवा (I A S) और भारतीय विदेश सेवा (I F S) के लिए ४०० अको (Marks) की अन्य केन्द्रीय सेवाओ के लिए ३०० अको की एक *व्यक्तित्व परीक्षा' (Personality test) होती है। मौखिक परीक्षा प्रत्याशी की* क्षिप्रग्राहिता Sharpness), सतर्कता (Alertness), बुद्धिमत्ता (Intelligence) तथा शीघ्र निर्णय करने की क्षमता (Quick mindedness) की जाच करने के लिए ली जाती है। यह हो सकता है कि प्रत्याशी को तुरन्त ही सुलझाने के लिए एक समस्या *(Problem) दे दी जाय। समस्या को सुलझाने के उसके ढग से सकटकाल का* मुकाबला करने की उसकी क्षमता का पता चलता है। मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार के द्वारा प्रत्याशी मौखिक वर्णनशैली, समस्याओ के निपटने के ढग तथा दूसरो को सन्तुष्ट करने की उसकी सामर्थ्य का पता लगाया जा सकता है। इसका मुख्य *उद्देश्य प्रत्याशी की वैयक्तिक विशिष्टताओ की जाच करना होना है।* उसके नेतृत्व के सम्भावित गुणो, उसके उत्साह तथा चरित्र बल का मूल्याकन परीक्षा की इसी पद्धति के द्वारा हो सकता है।

मौखिक परीक्षा अथवा साक्षात्कार प्रणाली मे सामान्यतया दो दोष पाये जाते हैं। प्रथम तो यह कि इस प्रणाली की प्रकृति प्रभावात्मक तथा अत्यधिक भावनात्मक अथवा व्यक्तिसापेक्ष (Largely subjective) है। व्यक्तित्व (Per*sonality) के बारे मे भिन्न-भिन्न लोगो के विभिन्न विचार होते हैं।* चूंकि इस रीति की प्रकृति अत्यधिक व्यक्तिसापेक्ष अथवा भावनात्मक है अत प्रत्याशियो की जाच करने की यह एक अविश्वस्त (Unreliable) रीति है। दूसरे परेशानी तथा भय के वातावरण मे अनेक प्रत्याशी घबरा जाते हैं और अपनी बात को पूर्णतया

1 William A Robson, (Ed), *The Civil Service in Britain and France*, p 37

अच्छी प्रकार से स्पष्ट नहीं कर पाते। साक्षात्कार-कक्ष (Interview room) प्रत्याशी के लिये एक ऐसी कृत्रिम स्थिति उत्पन्न कर देता है जिसमे कि वह उत्तेजित हो सकता है तथा घबरा सकता है। अत सदर्शन अथवा साक्षात्कार व्यक्ति के लिये ज्ञान की परीक्षा नहीं है। इसकी उपयोगिता केवल यह है कि प्रत्याशी के व्यक्तित्व के कुछ बाह्य पहलुओं, जैसे भाषण, सामान्य मानसिक योग्यता व उसके बाह्य रूप आदि, के विषय म जानकारी मिल जाती है।

मौखिक साक्षात्कारो (Oral interviews) मे 'सामूहिक वाद-विवाद' (Group discussion) की रीति भी काम मे लाई जाती है। अनेक प्रत्याशी एक मेज के चारो ओर बैठे जाते हैं और एक विषय पर वाद-विवाद करते हैं। साक्षात्कार मण्डल (Interview Board) के सदस्य उनका निरीक्षण करते हैं परन्तु वे वाद विवाद म भाग नहीं लेते। इस रीति के द्वारा प्रत्याशी की तर्क एव वाद-विवाद करने की क्षमता की जाच की जा सकती है। सन् १९१७ मे इगलैंड मे प्रथम श्रेणी की परीक्षा (Class I examination) के सबन्ध मे एक समिति की नियुक्ति की गई थी। यह समिति मौखिक साक्षात्कार अथवा मौखिक परीक्षा (Viva voce test) के अत्यधिक पक्ष मे थी। समिति का कहना था कि .

'हमारा विश्वास है कि मौखिक परीक्षा (Viva voce examination) म प्रत्याशी के कुछ ऐसे गुण प्रकाश मे आते हैं जिनकी कि लिखित परीक्षा के द्वारा जाच नहीं की जा सकती और यह कि वे गुण लोक सेवको के लिये बडे उपयोगी होते हैं। कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि एक सब प्रकार से सुयोग्य प्रत्याशी मौखिक परीक्षा मे घबरा सकता है और इस प्रकार न्यायप्राप्ति से वचित रह सकता है। किन्तु हमारा विचार है कि इस प्रकार घबरा जाना तथा धैर्य खो देना क्या स्वय ही एक गम्भीर कमी नहीं है, अथवा प्रतिभाशक्ति या सामयिक सूझ-बूझ (Presence of mind) तथा मानसिक सन्तुलन, जोकि ऐसी दशाओ मे प्रत्याशी को उसके सभी साधनो का समुचित उपयोग करने के योग्य बनाते हैं, क्या बहुमूल्य गुण नहीं है . । हमारे विचार से मौखिक साक्षात्कार को प्रत्याशी की सतर्कता, बुद्धिमत्ता तथा उसके मानसिक दृष्टिकोण की जाच करने की एक परीक्षा बनाया जा सकता है और इस प्रकार यह अन्य किसी भी परीक्षा से श्रेष्ठतर है । हमारा विचार है कि मौखिक परीक्षा शैक्षणिक अध्ययन के विषयो मे नहीं बल्कि सामान्य अभिरुचि (General interest) के ऐसे विषयो के सम्बन्ध मे होनी चाहिये जिन पर कि प्रत्येक नवयुवक को कुछ न कुछ कहना ही पड़े।"

परन्तु मौखिक परीक्षाओ से सम्बधित इस चित्र का दूसरा पहलू भी है। इस सम्बन्ध मे परीक्षाओ की जाच की अन्तर्राष्ट्रीय सस्था (International Institute of Examination Enquiry) द्वारा एक अनुसधान किया गया। इस सस्था ने सिविल सेवा की मौखिक परीक्षा के प्रतिरूप (Replica) की स्थापना की और

यह पता लगाया कि भिन्न-भिन्न साक्षात्कार मण्डलों (Interview boards) द्वारा एक से ही प्रत्याशियों को दिये गये अंकों में ६२ तथा ७० तक का अन्तर देखा गया और उनके अंकों का औसत अन्तर (Average difference) ३७ था। जान मण्डल ने यह कहा कि "१०० में २० से लेकर ३० अंकों तक के ये तीव्र अन्तर……और १०० में लगभग १२ अंकों का औसत अन्तर साक्षात्कार परीक्षा (Interview test) की अविश्वस्तता तथा अप्रमाणिकता की ओर संकेत करते हैं और इस बात को प्रकट करते हैं कि यह परीक्षा (Test) प्रत्याशी को सिविल सेवा परीक्षा में निर्णायक स्थान पर रखने में कितना अधिक प्रभाव डालती है……।'

इस प्रकार यदि एक ही प्रत्याशी दो भिन्न भिन्न साक्षात्कारों में सम्मिलित होता है तो भिन्न-भिन्न साक्षात्कार मण्डल उसको पृथक् पृथक् अंक देते हैं। अंकों का यह अन्तर इतना अधिक होता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भिन्न-भिन्न प्रत्याशियों का साक्षात्कार (Interview) किया गया है। सदर्शन अथवा साक्षात्कार अविश्वस्त, अप्रमाणिक तथा भावनात्मक (Subject) होता है। प्रो० फिनर ने साक्षात्कार के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों के अपनाने का सुझाव दिया है—

(१) साक्षात्कार की अवधि आधा घण्टा होनी चाहिए।

(२) साक्षात्कार के समय पूर्णतया प्रत्याशी की शैक्षणिक रुचि के ऐसे विषयों पर वाद-विवाद होना चाहिए जो कि उसके परीक्षा पाठ्यक्रम में उल्लिखित हों।

(३) साक्षात्कार को एक अनुपूरक परीक्षा (Supplimentary test) बनाया जाना चाहिए, चुनाव करने की एक निर्णायक (Decisive) परीक्षा नहीं।

(४) साक्षात्कार मण्डल में एक व्यावसायिक प्रशासक तथा एक विश्वविद्यालय का प्रशासक होना चाहिए।

(५) सदर्शन अथवा साक्षात्कार लिखित परीक्षा से पहले नहीं बल्कि बाद में होना चाहिए।

(६) जब तक कि साक्षात्कार का निर्णय न हो जाए तथा अंक न दिये जायें तब तक विश्वविद्यालय के शिक्षकों की रिपोर्ट पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

(७) चूंकि साक्षात्कारों में अभी तक स्वेच्छाचारिता पाई जाती है अतः इसको सीमित करने के लिए साक्षात्कार के अंकों की संख्या ३०० से घटा कर १५० कर देना चाहिए।[1]

भारत में इस बात की तीव्र आलोचना की जाती है कि मौखिक साक्षात्कार के ४०० अंक पूर्णतया चुनाव मण्डल (Selection Board) की भावनाओं, तरंगों एवं रुचियों पर निर्भर होते हैं। सेवा आयोग के सदस्य इस दृष्टिकोण को सामने रखकर

1 Herman Finer, *The Theory and Practice of Modern Government*, p 779

सा ाकार म बठते हैं कि प्रत्याशियो का एक बडी सख्या का छटाव करना है अत साक्षात्कार म मनमाने प्रश्न देते हैं । इसके अतिरिक्त उनका व्यवहार भी कभी कभी बड़ा उत्तजनात्मक तथा आपत्तिजनक होता है। यह प्रत्याशी को प्रोत्साहित करने के बजाय और हतोत्साहित कर देता है यदि य बातें सत्य हैं (क्योकि लेखक तथा अनुवादक ने किसी भी प्रकार के साक्षात्कार के लिए स्वय को कभी भी सिविल सेवा आयोग क सम्मुख उपस्थित नही किया है) तो इसम मौलिक परिवतन करने की आवश्यकता है साक्षात्कार के अग किसी भी दशा म २०० स अधिक नहीं होने च हिये

(ग) काय सम्पन्नता की परीक्षा (The Performance Test)

तकनीकी कार्यों अथवा व्यवसायों के लिए कमचारियो की भर्ती करत समय काय सम्पन्नता की परीक्षा विधि का उपयोग किया जाता है । मुद्र लेखकों (Typists) या आशुलिपिको (Stenographers अथवा परिचारिकाओ (Nurses) की भर्ती तब की जाती है जब कि व उस विशिष्ट अथवा तकनीकी काय को करने की अपनी प्रवीणता एव कुशलता का प्रदशन कर देते है जिसके लिए कि उनकी भर्ती की जानी है । इस परीक्षा के द्वारा सफलता क साथ इस बात का पता लगाया जा सकता है कि किसी व्यक्ति म एक विशिष्ट काय को सम्पन्न करने की कितनी सामर्थ्य है कि भर्ती किए जान वाल इन कमचारियो को यह दिखाना होता है कि व निर्धारित काय को सम्पन्न कर सकते हैं इसी कारण इस काय सम्पन्नता की परीक्षा (Performance Test) कहा जाता है । एक मुद्रलेखक को यह दिखाना पड़ता है कि वह टाइप कर सकता है एक बिजलिक (Electrician) को यह सिद्ध करना होता है कि वह समुचित रीति स तार आदि लगाकर एक भवन का विद्युतीकरण कर सकता है और केवल तभी उनको काम पर लगाया जाता है । ऐस व्यवसायो क लिए जिनम कि प्रवीणता की जरूरत होती है यह परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

(घ) शिक्षा अनुभव तथा शारीरिक जाच का मूल्य (Evaluation of Education Experience and Physical Test)

प्रत्याशी के चुनाव के लिए उसकी शक्षणिक योग्यताओ एव अनुभव का भी मूल्याकन किया जाता है । एक प्रत्याशी उस काय को करने के लिए शारीरिक दृष्टि स ठीक होना चाहिए जाकि उसे सौंपा जाना है । यह आशा की जाती है कि कर्मचारी अपनी आँखों तथा श्रवण क्षमता (Hearing capacity) क सम्बन्ध म एक न्यूनतम स्तर को अवश्य बनाये रखगा । वह किसी भी छूत की बीमारी अथवा किसी भी प्रकार की शारीरिक अयोग्यता स ग्रसित नही होगा ।

(ङ) बुद्धिपरीक्षा (Intelligence Test)

बुद्धि परीक्षाए प्रत्याशी की मानसिक परिपक्वता (Mental maturity) का पता लगाने क लिए ली जाती है । बुद्धि भागफल (Intelligence Quotient)

जिसे कि आमतौर "I Q" कहा जाता है व्यक्ति की मानसिक आयु (Mental age का सूचक होता है। I Q का निर्णय मानसिक आयु की काल-क्रमानुसार आयु (Chronological age) से तुलना करके उसके आधार पर किया जाता है। इस प्रकार, यदि एक बच्चे की कालक्रमानुसार आयु ८ है और मानसिक आयु १० है तो इसका I Q १२५ होगा, क्योंकि दस आठ का १२५ प्रतिशत है। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई एक राय नहीं है कि मानसिक विकास की दृष्टि से I Q का अर्थ क्या है इस विषय में सामान्य मत यह है कि ८६ तथा इससे कम अंक दुर्बल अथवा चचल मस्तिष्क के सूचक हैं, ९० से ११० तक के अंक सामान्य मस्तिष्क के और २३० से अधिक अंक अत्यन्त श्रेष्ठ मस्तिष्क के सूचक है। यह भी विश्वास किया जाता है कि मानसिक परिपक्वता १४ से १६ तक के वर्षों के बीच में प्राप्त कर ली जाती है।

कार्य-कौशल परीक्षायें (Aptitude Tests) प्रत्याशी के जन्मजात सामान्य मानसिक गुणों की जाच करने के बजाय इस बात का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं कि व्यक्ति में किसी विशेष कार्य को सीखने की कितनी योग्यता अथवा क्षमता है

ये मनोवैज्ञानिक परीक्षायें प्रत्याशी के व्यक्तित्व के कुछ गुणों का निर्धारण कर सकती हैं। भारत में सैनिक प्रतियोगिता परीक्षाओं (Military Competitive Tests) में इनका उपयोग किया जाता है।

सभी प्रकार की परीक्षायें प्रत्याशियों की क्षमता एवं योग्यता का पता लगाने के लिए की जाती हैं। प्रयत्न यह होना चाहिए कि इन परीक्षाओं में से भावनात्मक तत्व (Subjective elements) को समाप्त किया जा सके। ऐसे प्रत्येक उपाय को अपना लेना चाहिए जो कि व्यक्तिनिरपेक्ष भाव से प्रत्याशियों की योग्यताओं का निर्धारण कर सके। जब भी कोई दोष प्रकाश में आये तभी इन परीक्षाओं पर पुनः विचार किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, किसी भी एक परीक्षा को निर्णायक नहीं माना जाना चाहिये, क्योंकि कोई भी एक परीक्षा पूर्णतया वैज्ञानिक, विश्वस्त प्रामाणिक तथा मूर्ख-प्रूफ (Fool proof) नहीं होती।

(४) योग्यताओं के निर्धारण के लिए प्रशासकीय यन्त्र
(Administrative Machinery for the Determination of Qualification)

प्रश्न यह है कि प्रत्याशियों की उन परीक्षाओं की व्यवस्था करने के लिए कौन से प्रशासकीय यन्त्र का उपयोग किया जाए। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि इन परीक्षाओं का आयोजन स्वतंत्र तथा निष्पक्ष व्यक्तियों के एक निकाय (Body द्वारा किया जाना चाहिए और विभिन्न लोक सेवाओं के लिए प्रत्याशियों (Candidates) का चुनाव करना चाहिये। योग्यताओं का निर्धारण ऐसे व्यक्तियों के एक निकाय द्वारा किया जाना चाहिये जो कि राजनैतिक दलबन्दी का शिकार न हो सके। चुनाव मण्डल (Selection board) के सदस्य व्यक्तियों तथा उनकी योग्यताओं की जाच के क्षेत्र के विशेषज्ञ (Experts) भी होने चाहियें।

लोकतन्त्रीय दशा मे, प्रत्याशियो की भर्ती करने का यह कठिन कार्य स्वतंत्र सिविल सेवा आयोगो को सौंपा जाता है। सिविल सेवा आयोग का कार्य यह होता है कि मक्कारो व दुर्जनो (Rascals) को सेवाओ से बाहर रखा जाय और सर्वोत्तम व्यक्तियो को सेवा मे लेने का प्रयत्न किया जाए।

भारत मे लोक सेवा आयोग
(The Public Service Commission in India).

भारत मे लोक सेवा आयोग की स्थापना के विचार का उल्लेख ५ मार्च सन् १९१९ को भारतीय सवैधानिक सुधार (Indian Constitutional Reforms) पर दिय गए एक आवश्यक प्रपत्र मे किया गया था। उसमे कहा गया था कि :

'अधिकाश अधिराज्यो (Dominions) मे, जहां कि उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो गई है, इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है कि कुछ स्थायी कार्यालया की स्थापना करके राजनैतिक प्रभाव से लोक सेवाओ को सुरक्षित बनाया जाए, इन कार्यालयो का मुख्य कार्य सेवा के मामलो मे विनिमय बनाना हो। वर्तमान समय म अभी हम इस स्थिति मे तो नही है कि भारत मे एक लोक सेवा आयोग की स्थापना के मामले को पूर्णतया आग बढायें परन्तु हम यह अनुभव करते हैं कि यह सम्भावना अथवा आशा हा, कि सेवायें अधिकाधिक मत्रीय नियन्त्रण (Ministerial Control) मे आ सकती हैं एक ऐसे निकाय (Body) की स्थापना का दृढ आधार प्रस्तुत करती है।' सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act) मे एक लोक सवा आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गई थी यद्यपि अधिनियम के लागू होने के एकदम बाद ही इसका निर्माण नही किया गया।

भारत मे उच्च सिविल सेवा के सम्बन्ध मे नियुक्त शाही आयोग (Royal Commission) ने, जिसके अध्यक्ष फर्नहम के विस्काउन्ट ली (Viscount Lea) थे, अपने प्रतिवेदन (Report) मे, एक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष सिविल सेवा आयोग की आवश्यकता के बारे मे सन् १९२४ मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये—

'जहाँ कही भी लोकतन्त्रीय सरकारें वर्तमान हैं, अनुभव से यही पता चला है कि कुशल सिविल सेवा की प्राप्ति के लिये यह अत्यावश्यक है कि जहाँ तक भी सभव हो सके उसको (सिविल सेवा को) राजनैतिक अथवा वैयक्तिक प्रभावो से बचाये रखा जाय और उसे स्थिरता तथा सुरक्षा की वह स्थिति प्रदान की जाए जो कि ऐसे निष्पक्ष तथा कुशल साधन के रूप मे इसके सफल कार्य सचालन के लिए अनिवार्य होती है जिसके द्वारा कि सरकारें चाहे वे कैसी भी राजनैतिक विचारधारा की क्यो न हो, अपनी नीतियो को क्रियान्वित करती है। उन देशो म जहाँ कि इस सिद्धात की उपक्षा कर दी गई है और जहां इसके स्थान पर 'लूट खसोट प्रणाली' (Spoils system) लागू है, इसका अनिवार्य परिणाम एक अकुशल तथा असगठित सिविल

सेवा के रूप मे सामने आया है और भ्रष्टाचार (Corruption) अनियन्त्रित रूप मे बढा है। अमेरिका मे, सेवाओ मे भर्ती पर नियन्त्रण लागू करने के लिए एक सिविल सेवा आयोग का गठन किया गया है। भारत के लिए, ब्रिटिश साम्राज्य के अधिराज्यो से शायद अधिक उपयुक्त एव लाभदायक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका मे अब सरकारी सिविल सेवा अधिनियम (Public Civil Service Act) बने हुए हैं जो कि लोक सेवाओ की स्थिति तथा नियन्त्रण का नियमन करते हैं और उन सबका एक सामान्य लक्षण है एक लोक सेवा आयोग का गठन, जिसे कि अधिनियमो के प्रबन्ध का कार्य सौंपा गया है। सन् १६१६ के भारत सरकार अधिनियम का निर्माण करने वालो ने एक लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए जब अधिनियम मे धारा ६६ (स) की व्यवस्था की तो इसी उपरोक्त *आवश्यकता को दृष्टिगत रखा था , इस लोक सेवा आयोग को निम्न कार्य सम्पन्न* करने थे "भारत मे लोक सेवाओ की भर्ती तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित ऐसे कार्य जो परिषद् (Council) मे राजमन्त्री (Secretary of State) द्वारा बनाये गए नियमो *के द्वारा उसे सौंपे जायें।"*[1] *भारत मे सन् १६२६ मे अखिल भारतीय तथा उच्च* सेवाओ के लिए एक केन्द्रीय लोक सेवा आयोग, जिसे कि "लोक सेवा आयोग, भारत" *कहा जाता है, स्थापित किया गया था।*

आयोग का गठन तथा कार्य
(Constitution and Functions of the Commission)

भारतीय सविधान (Indian Constitution) मे एक राष्ट्रीय लोक सेवा आयोग (U P S C) की व्यवस्था की गई है। निम्नलिखित सवैधानिक उपबन्धो की व्यवस्था इसलिए की गई है कि जिससे आयोग को किसी भी प्रकार के बाहरी प्रभाव से मुक्त देखा जा सके।

(१) लोक सेवा आयोग के सदस्य, अपने पद-ग्रहण की तारीख से ६ वर्ष की अवधि तक, अथवा पैंसठ वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक, जो भी इनमे से पहले हो, नियुक्त किये जायेंगे।[2]

(२) आयोग के सदस्य की सेवा की शर्तों मे, उसकी नियुक्ति के पश्चात् ऐसा परिवर्तन न किया जा सकेगा जो उसके लिए अलाभकारी हो।[3]

(३) आयोग के सदस्य का कुछ विशिष्ट बातो के आधार पर उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के परामर्श से राष्ट्रपति (President) की आज्ञा द्वारा हटाया जा सकता है। ये आधार अग्रलिखित हैं।[4]

1 See Commission Report Para 24
2 Art 316 (2)
3 Art 318
4 Art 317 (1) (2) (3) (4)

लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का हटाया जाना या निलम्बित किया जाना

(Removal and Suspension of a member of a Public Service Commission) :

(i) खंड (३) के उपबन्धों (Provisions) के अधीन रहते हुए लोक सेवा आयोग का सभापति (Chairman) या अन्य कोई सदस्य अपने पद से केवल राष्ट्रपति द्वारा कदाचार (Misbehaviour) के आधार पर दिये गए उस आदेश पर ही हटाया जायेगा जो कि उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति द्वारा पृच्छा (Refer) किये जाने पर उस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद (Article) १४५ के अन्तर्गत निर्धारित कार्य-विधि के अनुसार की गई जाच पर, उस न्यायालय द्वारा किये गए इस प्रतिवेदन के पश्चात् कि यथास्थिति सभापति अथवा ऐसे अन्य किसी सदस्य को ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाय, दिया गया है।

(ii) संघीय आयोग (Union Commission) अथवा संयुक्त आयोग (Joint Commission) की स्थिति में राष्ट्रपति और राज्य-आयोग (State Commission) की स्थिति में राज्यपाल (Governor) अथवा राजप्रमुख आयोग के सभापति या अन्य किसी सदस्य को, जिसके सम्बन्ध में खण्ड (१) के आधीन उच्चतम न्यायालय से पृच्छा की गई है उसके पद से तब तक के लिए निलम्बित (Suspend) कर सकेगा जब तक कि ऐसी पृच्छा की गई बात पर उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति अपना आदेश न दे दे।

(iii) खण्ड (१) में किसी बात के होते हुए भी यथास्थिति (As the case may be) लोक सेवा आयोग का सभापति या कोई दूसरा सदस्य यदि—

(क) न्याय-निर्णीत दिवालिया (Insolvent) हो जाता है ; अथवा

(ख) अपनी पदावधि में अपने पद के कर्त्तव्यों से बाहर कोई वैतनिक नौकरी करता है, अथवा

(ग) राष्ट्रपति की राय में मानसिक या शारीरिक दौर्बल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य है,

तो ऐसे सभापति या अन्य सदस्य को राष्ट्रपति आदेश द्वारा उसके पद से हटा सकेगा।

(iv) यदि लोक सेवा आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य भारत सरकार या राज्य की सरकार के द्वारा, या उसकी ओर से, किये गए किसी ठेके (Contract) या करार (Agreement) में, निगमित (Incorporated) कम्पनी के सदस्य के नाते या उसके अन्य सदस्यों के साथ साथ के सिवाय, किसी प्रकार से भी संपृक्त या हित-सम्बद्ध (Interested) है या हो जाता है अथवा किसी प्रकार से उसके लाभ में अथवा तदुत्पन्न किसी फायदे या परिलाभ (Benefit or emolument) में भाग लेता है तो वह खंड (१) के प्रयोजनों के लिए कदाचार का अपराधी समझा जायगा।

(४) ग्रायोग के व्यय भारत की सचित निधि (Consolidated fund of India) से लिये जायेंगे ।[1]

(५) सरकार द्वारा जारी किये जाने वाले ऐसे सभी विनियम (Regulations) जो कि यह प्रकट करते हो कि ये मामले ग्रायोग की अधिकार सीमा मे नही है, ऐसे सशोधन (Modifications) के लिए, जोकि आवश्यक समझा जाये, ससद या राज्य विधान मण्डल के सम्मुख रखे जायेंगे ।

(६) सदस्य के अपने पद पर न रहने पर अन्य नौकरी प्राप्त करने के सम्बन्ध मे प्रतिबन्ध लगाए गये हैं जो कि निम्न प्रकार हैं ।[2]

(क) सघीय लोक सेवा ग्रायोग (U P S C) का सभापति भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के ग्रधीन किसी भी ग्रौर नौकरी के लिए अपात्र होगा ।

(ख) राज्य के लोक सेवा ग्रायोग का सभापति सघीय लोक सेवा ग्रायोग के सभापति या सदस्य के रूप मे अथवा अन्य किसी राज्य के लोक सेवा ग्रायोग (P. S. C.) के सभापति के रूप मे नियुक्त किया जा सकता है ।

(ग) सघीय लोक सेवा ग्रायोग का कोई भी सदस्य (सभापति को छोडकर) सघीय लोक सेवा ग्रायोग के सभापति के रूप म अथवा किसी भी राज्य के लोक सेवा ग्रायोग के सभापति के रूप मे नियुक्त किया जा सकता है ।

(घ) किसी राज्य के लोक सेवा ग्रायोग का सदस्य (सभापति को छोडकर) सघीय लोक सेवा ग्रायोग के सभापति या सदस्य के रूप मे अथवा उसी, या किसी अन्य, राज्य-लोक सेवा-ग्रायोग के सभापति के रूप मे नियुक्त किया जा सकता है ।

ग्रायोग के कार्य

(Functions of the Commission)

(१) भर्ती के तरीकों तथा सिविल अथवा असैनिक सेवाग्रो तथा असैनिक पदो पर सीधी अथवा पदोन्नति (Promotion) द्वारा नियुक्ति करने मे अपनाये जाने वाले सिद्धान्तों से सम्बन्धित सभी मामलो पर सरकार को परामर्श देना ।

(२) नियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण आदि के लिए प्रत्याशियो की उपयुक्तता (Suitability) के सम्बन्ध मे परामर्श देना ।

(३) सेवाग्रो पर नियुक्ति करने के लिए परीक्षाग्रो का सचालन करना ।

(४) लोक सेवकों को प्रभावित करने वाले अनुशासनात्मक मामलो के सम्बन्ध मे परामर्श देना ।

(५) लोक सेवा के किसी व्यक्ति द्वारा अपने कर्त्तव्य पालन किये गये कार्यों के सम्बन्ध मे उसके विरुद्ध की गई किन्ही कानूनी कार्यवाहियो मे जो खर्चा उसे अपनी प्रतिरक्षा मे करना पडा है उसके दावे के सम्बन्ध मे, तथा किसी लोक सेवक द्वारा निवृति-वेतन अथवा पेन्शन के लिए किये जाने वाले उस दावे के सम्बन्ध मे परामर्श

1 Art. 322.

2 Art 319 (a), (b), (c), (d)

देना जो कि वह अपने उत्तरदायित्वों का पालन करते समय चोट खाने की स्थिति में करता है।

(६) अन्य कोई ऐसा मामला जो कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा विशेष रूप से उनको सौंपा जाए।[1]

इस बात की भी व्यवस्था है कि संसद द्वारा अथवा राज्य विधान-मण्डल द्वारा केवल सरकारी सेवाओं के ही सम्बन्ध में नहीं, बल्कि उन सेवाओं के सम्बन्ध में भी जो कि स्थानीय प्राधिकारियों (Local Authorities), निगमों (Corporations) अथवा सार्वजनिक संस्थाओं के अधीन हों, आयोग के कार्यों का विस्तार किया जा सकेगा।[2]

लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन[3]

(Reports of Public Service Commission) :

(१) संघीय आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को अपने द्वारा किये गये काम के बारे में, प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे, तथा ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति उन मामलों के बारे में, यदि कोई हो, जिनमें कि आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया, ऐसी अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(२) राज्य आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राज्य के राजपाल या राजप्रमुख को अपने द्वारा किये गये काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा संयुक्त आयोग (Joint Commission) का कर्त्तव्य होगा कि ऐसे राज्यों में से प्रत्येक के, जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति संयुक्त आयोग द्वारा की जाती है, राज्यपाल या राजप्रमुख को उस राज्य के सम्बन्ध में अपने द्वारा किये गये काम के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा इनमें से प्रत्येक अवस्था में ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर यथास्थिति राज्यपाल या राजप्रमुख उन मामलों के बारे में, यदि कोई हो, जिनमें कि आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया है, ऐसी अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन के सहित उस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

लोक सेवा आयोग एक परामर्शदात्री संस्था (Advisory body) है। भारत के राजमन्त्री (Secretary of State for India) Sir Samoel Hoare ने सन् १९३५ के भारत सरकार विधेयक (Government of India Bill) के पास होते समय ब्रिटिश संसद में यह बात कही

"संयुक्त प्रवर समिति (Joint Select Committee) का यह निश्चित मत था और यहाँ तथा भारत में मेरे सलाहकारों का भी यही निश्चित मत है कि लोक सेवा आयोग (P. S C) परामर्शदाता के रूप में ही अधिक अच्छी प्रकार कार्य कर

1 Art 320 (1), (2), (3), (a), (b), (c), (d), (e)
2 Art 321
3 Art. 323 (1), (2)

सकता है। अनुभव से यह पता चला है कि यदि आयोग को परामर्शदाता के रूप में रखा जाए तभी उसका अधिक प्रभाव पड़ने की सम्भावना है, बजाए इसके कि यदि उन्हें आदेशात्मक शक्तियाँ (Mandatory powers) दी जायें। खतरा यह है कि यदि हम उन्हें आदेशात्मक शक्तियाँ दे दें तब हम एक प्रान्त (Province) में दो सरकारें तथा केन्द्र में दो सरकारें स्थापित कर देंगे और फिर इस प्रकार की कार्यविधि (Procedure) के विरोध में बहुत कुछ कहा जा सकता है। अनेक दृष्टिकोणों से अधिक अच्छी तरह बात यही है कि वे परामर्शदाता हों।"

सरकार को इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि वह आयोग द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार अथवा अस्वीकार करे, परन्तु एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अनुसार सरकार से यह माँग की जाती है कि वह, आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करते समय, उन कारणों का भी स्पष्टीकरण करे कि कुछ विशिष्ट मामलों के सम्बन्ध में आयोग की सलाह क्यों न स्वीकार की जा सकी। आयोग की सलाह की उपेक्षा करके सरकार द्वारा की जाने वाली मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध यह एक सुरक्षा है।

आयोग का निर्माण संविधान (Constitution) के द्वारा किया गया था। इस बात के लिए सभी उचित सुरक्षाओं की व्यवस्था की गई थी कि इसको सभी प्रकार के अनुचित प्रभावों से बचाये रखा जा सके और उनको इस योग्य बनाया जा सके कि जिससे वे अपने निर्धारित कर्त्तव्यों को निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा (Integrity) तथा बिना भय या पक्षपात के स्वतन्त्रता के साथ पूरा कर सकें।[1]

इंगलैंड में सन् १८५५ से ही सपरिषद् महाराज्ञी (Queen-in-Council) अथवा सपरिषद् सम्राट (King-in-Council) सिविल सेवा में नियुक्ति के हेतु प्रत्याशियों की परीक्षा तथा चुनाव करने के लिए आयुक्तों (Commissioners) की नियुक्ति करते हैं। "प्रत्येक स्थिति में आयुक्तों की स्वतन्त्रता की स्थिति का वास्तविक आधार यह है कि राजनैतिक दलों में यह मौन तथा अलिखित पक्का समझौता है, जिसको संसदीय तथा जनता का सबल मत भी प्राप्त है, कि आयुक्त अपने कार्यों को पूर्णतया स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष रीति से सम्पन्न करें।"[2]

इंगलैंड में नियुक्तियों के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशों का अनुपालन किया जाता है। आयुक्तों ने अपने प्रथम प्रतिवेदन (१८५६) में कहा कि "जहाँ तक हमारे अधीन व्यक्तिगत मामलों की परीक्षाओं का प्रश्न है किसी भी प्रकार का वाह्य हस्तक्षेप नहीं हुआ है और आपकी (महाराज्ञी की) सरकार द्वारा हमारे कार्यों के न्यायिक स्वभाव को पूर्ण मान्यता दी गई है।" सौभाग्यवश वह परम्परा बराबर जारी है।

1 *The Public Service Commission in India* Sukumar Basu, I. C. S., pp. 81-84.

2 *What are Public Service Commissions for?* by A. P. Sinker.

इस प्रकार भारतीय सविधान लोक सेवा आयोग की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता के लिए सभी सुरक्षाओं की व्यवस्था करता है, परन्तु एक ऐसे स्वस्थ अभिसमय (Convention) के विकास की आवश्यकता है कि कोई भी शासनारूढ दल आयोग के कार्यों म हस्तक्षेप नहीं करेगा और जो भी सरकार वर्तमान होगी वह लोक सेवाओं की नियुक्तियो के सम्बन्ध मे आयोग की सभी सिफारिशो को स्वीकार करेगी।

भारत के कुछ राज्यो म, सघ आयोगों को उतना महत्व नहीं प्रदान किया गया है जितने के वे अधिकारी हैं। बहुत सी राज्य सरकारो ने अनेक पदो को आयोग के अधिकार-क्षेत्र स बाहर रखने का प्रयोग आरम्भ किया है। अनेक बार उन्होने नियुक्तियो के मामलो मे आयोग की सलाह को स्वीकार नही किया है। यह क बडी अनुचित प्रवृत्ति है। पजाब राज्य के लोक सेवा-आयोग के १६५६–६० प्रतिवदन के उद्धरण से हम इस बात को स्पष्ट करते हैं।

सरकार और लोक सेवा-आयोग के बीच मतभेद :

सरकार की कार्यवाहियाँ प्रकट रूप मे भी होनी चाहियें जिससे कि लोगों मे विश्वास उत्पन्न हो सके। केवल यह ही आवश्यकता नही है कि न्याय (Justice) किया जाए बल्कि यह भी आवश्यक है न्याय किए जाने के कार्य को प्रकट भी किया जाय जिसस कि ऐसा प्रतीत हो कि न्याय किया गया है, और सेवाओं मे भर्ती किये जाने की स्थिति म तो विशेष रूप से ऐसा होना आवश्यक है।

सविधान के अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी पद को आयोग की अधिकार-सीमा मे बाहर रख सकती है परन्तु इस अधिकार का उपयोग केवल अपवाद-भूत मामलों (Exceptional cases) मे ही होना चाहिए अर्थात जब-जब कि वह पद राजनैतिक अथवा अत्यावश्यक या सकटकालीन प्रकृति का हो या लोक-हित की दृष्टि से सरकार द्वारा हो उस पद के भरे जाने की आवश्यकता हो। निश्चय ही, कुछ व्यक्तियो को सेवाओ म खपाने के लिये अथवा सेवा म किसी विशिष्ट वर्ग के कुछ प्रतिशत पदो को आयोग के दायरे से बाहर रखने मात्र के लिय इस प्रतिबन्धात्मक अधिकार का विस्तार नही किया जा सकता। जैसा कि आयोग के प्रतिवेदन म कहा गया है कि "इससे तो राज्य सेवाओं मे भर्ती के लिये एक ऐसे वैधानिक निकाय (Body) की स्थापना का वह उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है कि जिसके द्वारा ही केवल यह आशा की जाती थी कि वह न्यायसगत तरीके स जनता म विश्वास उत्पन्न कर सकेगा।"

विवादपूर्ण विचारो का आदान-प्रदान :

प्रतिवेदन स यह भी प्रकट होता है कि इस उपरोक्त उपलब्ध (Provision) का अमल म लाने के प्रश्न पर सरकार तथा आयोग क बीच विवादपूर्ण विचारो का आदान-प्रदान हुआ। एक विशेष घटना से इस मामले पर बडा अच्छा प्रकाश पडता है जिसमे कि तत्कालीन फरीदकोट रियासत के टीका साहब के एक शिक्षक का

गवर्नमेंट कालिज का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया था। प्रतिवेदन मे इस प्रसग का वर्णन इस प्रकार किया गया है : 'यह सज्जन १ अक्तूबर, १९४४ से भूतपूर्व फरीदकोट रियासत की सेवा मे थे जहाँ कि इन्हो ने अनेक पदो पर कार्य किया जैसे कि राजेन्द्र कालिज फरीदकोट मे प्रवक्ता (Lecturer) के रूप मे, साहित्यादि शाखा के अध्यक्ष (Dean of the Arts Faculty) के रूप मे तथा बाद मे टीका साहब मे शिक्षक के रूप मे। जब पेप्सू (PEPSU) का निर्माण हुआ, उस समय वह टीका साहब के एक शिक्षक के रूप मे कार्य कर रहे थे और चूँकि यह एक सिविल सूची (Civil List) की नियुक्ति थी, राज्य सरकार के अधीन एक सेवा नही थी, अत पेप्सू के शिक्षा विभाग (Education Department) मे उसका एकीकरण नही किया गया। पेप्सू की रियासतो तथा पजाब का विलय होने पर फरीदकोट के राजा साहब ने सरकार से उन महोदय को किसी उपयुक्त पद पर नियुक्त पद पर नियुक्त करने के लिये कहा। बाद मे सरकार ने यह निश्चय किया कि उनको राज्य शिक्षा सेवा (P E S) मे प्रथम श्रेणी (Class I) का एक पद दिया जाय।"

कम सम्मान
(Scant Respect)

"आयोग यह अनुभव करता है कि इस नियुक्ति का चाहे कुछ भी आधार क्यो न हो अथवा चाहे कुछ भी कारण क्यो न रहे हो, इस घटना से दो तथ्य तो बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं। प्रथम तो यह कि किसी भी पद को आयोग की अधिकार-सीमा से बाहर रखने से पहले आयोग के साथ पूर्व-परामर्श करने के सम्बन्ध मे जो अभिसमय (Convention) स्वय सरकार द्वारा स्थापित किया गया था अब सरकार उसको कम सम्मान प्रदान कर रही है। दूसरे, पद ऐसी परिस्थितियो मे आयोग की अधिकार सीमा से बाहर ले जा रहे है जोकि स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण हैं। इस उपर्युक्त मामले मे सरकार की कार्यवाही स्पष्टत इस इच्छा से प्रेरित थी कि एक विशिष्ट व्यक्ति को सेवा मे खपाना है, सामान्य सिद्धान्त का तो इसमे कोई प्रश्न ही नही था।"

इसके अतिरिक्त, सरकार को एक अधिकार यह प्राप्त है कि वह आकस्मिक रूप से रिक्त होने वाले स्थानो को तीन माह के लिये भर सकती है यदि इस बात की सम्भावना हो कि आयोग को इस कार्य मे अधिक समय लगेगा। किन्तु अब इस अधिकार का दुरुपयोग करने की अधिकाधिक प्रवृत्ति पाई जा रही है। यदि सरकार इस उपबन्ध (Provision) के शब्दो या इसकी भावना का अनुसरण करने लगे तब सारी स्थिति ही बदल जाती है। सरकार इस सम्बन्ध मे किसी को अनावश्यक सन्देह करने का मौका नही देना चाहती, यह तो इस तथ्य से ही स्पष्ट है कि सरकार ने तीन माह की अवधि को एक वर्ष तक कर देने के प्रस्ताव को छोड दिया (यद्यपि, यह अवधि छ माह तक के लिये बढा दी गई है)। तथापि, बार-बार इस उपाय का आश्रय लेने से इसका वास्तविक आशय ही समाप्त हो जाता है और जब इस पद को

स्थायी व्यवस्था करने के लिये चुनाव होता है तो खुली प्रतियोगिता करने वाले प्रत्याशियों के प्रति अन्याय होता है। आयोग का मत है कि इस उपाय का प्रयोग तो अपवादरूप मे ही करना चाहिए। 'ऐसा प्रतीत होता है कि विभागों (Departments) ने इस उपबन्ध का दुरुपयोग ही करना शुरू कर दिया है क्योंकि वे लगभग प्रत्येक मामले के लिए एक सामान्य आदत के रूप मे तीन माह के लिए भर्ती करने के इस उपलब्ध का आश्रय लेते हैं और फिर ऐसी अनियमित नियुक्तियों की कालावधि मे वृद्धि करने के लिये आयोग की अनुमति मागी जाती है। इस कार्यविधि से निश्चय ही उस प्रणाली को बड़ा अनुचित लाभ प्राप्त होता है जो कि उस पद पर स्थायी रूप से वर्तमान होना है क्योंकि वह इस बात का दावा करता है कि उसे एक निश्चित अवधि तक उस पद पर कार्य करने का अनुभव प्राप्त है।"

भर्ती की महत्वपूर्ण समस्याओ का विवेचन करने के पश्चात् एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भर्ती की किसी भी पद्धति की सफलता की अन्तिम कसौटी क्या है? भर्ती की किसी भी प्रणाली को अपने उद्देश्य मे सफल हुआ तभी माना जायेगा जबकि उसके द्वारा की गई भर्ती मे उचित किस्म के काफी व्यक्ति प्राप्त हो। इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य का अध्ययन करने के पश्चात् ही दिया जा सकता है कि जिन व्यक्तियो की भर्ती की गई है उनका चयन किस सीमा तक न्यायोचित रहा है।

प्रमाणन
(Certification)

सिविल सेवा आयोग परीक्षाय लेने के पश्चात् पात्र व्यक्तियो (Eligibles) की एक सूची तैयार करते हैं और फिर वे नियुक्ति प्राधिकारियों (Appointing authorities) के पास उन नामो की सिफारिश करते हैं। 'प्रमाण' से आशय है कि नियुक्ति के लिए विचाराधीन प्रत्याशियो के नाम नियुक्ति-कार्यालयो के सम्मुख प्रस्तुत करना। सयुक्त राज्य अमरिका म आयोग तीन नामो की सिफारिश करता है और नियुक्त अधिकारी रजिस्टर मे लिखे हुए तीन सर्वोच्च नामो मे से एक का चुनाव कर लेता है। भारत मे सिविल सेवा आयोग योग्यता के आधार पर प्रत्याशियों की एक सूची तैयार करता है और सम्बन्धित विभाग फिर योग्यता के क्रम से उस सूची मे से नियुक्तियां कर लेते हैं। योग्यता के इस क्रम मे की जाने वाली कोई भी घट-बढ़ जनता द्वारा सहन नही की जाती। सयुक्त राज्य अमेरिका मे 'तीन के नियम' की आलोचना इसलिए की जाती है क्योंकि इससे पक्षपात तथा दलीय आधार पर चयन करने की सम्भावना हो सकती है।

नियुक्ति और परिवीक्षा
(Appointment and Probation):

नामो की वह सूची जब नियोक्ता प्राधिकारी के पास पहुचती है तो वह निर्णय सिविल सेवा आयोग के पास भेजता है और प्रत्याशी (Candidate) के लिए नियुक्ति पत्र (Appointment letter) जारी करता है। नियुक्ति-पत्र प्रत्याशी के

लिये एक प्रस्ताव होता है यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो वह अपना पद ग्रहण कर लेता है और इसका अर्थ होता है कि उसकी नियुक्ति हो गई।

नये नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियो को हमेशा 'परीक्षण-आधार' (Trial basis) पर रखा जाता है। इस बीच मे उसे अपनी योग्यताओ का प्रदर्शन करना होता है कि जिस कार्य के लिये उसकी नियुक्ति हुई है उसे यह सम्पन्न कर सकता है। अत प्रत्येक नियुक्ति अस्थायी अर्थात् छ माह या एक वर्ष की परिवीक्षा (Probation) के आधार पर होती है। यह काल नियोक्ता प्राधिकारी के लिए चुनाव की क्रिया को पूर्ण करने का अवसर माना जाता है। इस कालावधि मे प्रत्याशी का सूक्ष्म रूप से पर्यवेक्षण (Supervision) कर लिया जाता है।

जब नियोक्ता प्राधिकारी इस सम्बन्ध मे एक लिखित प्रतिवेदन दे देता है कि प्रत्याशी का कार्य सन्तोषजनक रहा है, तब ही उसको अपने पद पर स्थायी किया जाता है।

१६
प्रशिक्षण
(Training)

कर्मचारी को उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है जिसके लिये कि उसकी भर्ती की गई है। उसे कार्य की प्रवीणता तथा विधि के सम्बन्ध म परिचित कराया जाना होता है। कर्मचारियों के समुचित प्रशिक्षण के बिना कार्य को कुशलता के साथ सम्पन्न नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि प्रशिक्षण को स्टाफ की कार्य-कुशलता की कुंजी' समझा जाता है।

प्रशिक्षण का उद्देश्य (Object of Training):

प्रशिक्षण लोक कर्मचारी की कार्य कुशलता के लिये ही आवश्यक नहीं है अपितु उसके दृष्टिकोण को विस्तृत बनाने के लिये भी आवश्यक है। कर्मचारी को यथार्थता (Precision) का पाठ पढ़ाने, आत्म निर्भर तथा स्वतन्त्र बनाने, और उसमें *निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रशिक्षण बड़ा महत्वपूर्ण होता है।* प्रशिक्षण कर्मचारियों म एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न करने में सहायता करता है जिसकी कि लोक-सेवकों को नितान्त आवश्यकता होती है। इसी कारण शिक्षा के सदृश्य प्रशिक्षण भी एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जोकि कभी भी समाप्त नहीं होती क्योंकि इसकी आवश्यकता सदा बनी ही रहती है। प्रशिक्षण से व्यक्ति की शक्ति प्रवीणता तथा कुशलता म वृद्धि होती है। प्रशिक्षण कर्मचारी में एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करता है जिसके द्वारा वह स्वयं *को नई परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता* है। प्रशिक्षण कर्मचारी को इस योग्य बनाता है कि जिसम वह अपने सगठन को, जिसम कि उसे काम करना होता है, भली प्रकार समझ सके तथा उसकी महत्ताओं व लक्ष्यों को स्वीकार कर सके। यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियों म स्वतन्त्र निर्णय करने की योग्यता उत्पन्न की जाए, क्योंकि यदि कर्मचारी पद पर अनुदेशों (Instructions) पर ही निर्भर रहे तो कोई भी सगठन सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकता।

'सिविल-सेवकों के प्रशिक्षण' (१६४४), (ग्रेट ब्रिटेन) पर नियुक्त की गई समिति ने प्रशिक्षण के कुछ उद्देश्य तथा सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये। समिति ने कहा कि

'सबसे पहले हम स्वय से ही यह प्रश्न पूछें कि प्रशिक्षण का उद्देश्य क्या है? यदि इसका उत्तर यह है कि प्रशिक्षण का उद्देश्य सर्वाधिक सभव मात्रा म

कार्य-कुशलता प्राप्त करना है, तो आवश्यकता इस बात की है कि कार्य-कुशलता (Efficiency) शब्द की कुछ सूक्ष्म रूप से व्याख्या की जाए। किसी भी बडे पैमाने के सगठन मे कार्य-कुशलता दो तत्वो पर निर्भर होती है एक तो, व्यक्ति को सौंपे गये किसी विशिष्ट कार्य को कर सकने की उसकी तकनीकी (Technical) कुशलता पर और दूसरे, निगम निकाय (Corporate body) के रूप मे सगठन की उस कम स्पष्ट कुशलता पर जोकि उन व्यक्तियो की सामूहिक भावना तथा दृष्टिकोण से प्राप्त होती है जिससे कि इस निकाय अथवा सगठन की रचना की जाती है। प्रशिक्षण में इन दोनों ही तत्वों का ध्यान रखा जाना चाहिय —

प्रशिक्षण के पाँच मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं —

प्रथम, प्रशिक्षण के द्वारा ऐसे सिविल-सेवक उत्पन्न करने का प्रयास किया जाना चाहिए जिनकी कार्य-निष्पादन की यथार्थता एव शुद्धता को सत्य रूप मे स्वीकार किया जा सके।

दूसरे, सिविल सेवक को उन कार्यों की दृष्टि से उपयुक्त बनाया जाना चाहिए जिन्हे कि परिवर्तनशील परिस्थितियो मे सम्पन्न करने के लिए उससे कहा जायेगा। सिविल-सेवक को चाहिए कि वह अपने दृष्टिकोण तथा अपनी कार्यविधियो को सतत रूप मे तथा साहस के साथ नये-नये विषयो की नई आवश्यकताओ के अनुरूप बना ले।

तीसरे, आवश्यकता इस बात की है कि सिविल-सेवक यन्त्रवत् बन जाने के खतरे को रोका जाय। जब हम यह कहते है कि हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि कुशलता का उच्चतम सम्भव स्तर प्राप्त किया जाए, तो इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि एक यन्त्र-मानव के समान यान्त्रिक साज-सज्जो से युक्त सिविल सेवा का निर्माण किया जाए। भर्ती किय जाने वाले कर्मचारी को प्रारम्भ से ही इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि उसके विभाग (Department) द्वारा समाज के लिये सम्पादित की जाने वाली सेवा से उसके कार्य का क्या सम्बन्ध है? वह अपने विस्तृत सगठन मे क्या कार्य सम्पन्न कर रहा है? इस बात को समझने की उसकी क्षमता केवल उसके कार्य को विभाग के लिए मूल्यवान ही नही बनायेगी, अपितु वह स्वय उसके लिये भी अत्यधिक प्रेरणादायक होगी। अत उसके दिन-प्रति-दिन के समुचित सम्पादन के लिये आवश्यक शुद्ध व्यावसायिक प्रशिक्षण (Vocational training) के साथ ही साथ, उसको अपने निजी शैक्षणिक विकास के हेतु निरन्तर प्रयास करने के लिये व्यापक आधार पर अनुदेश (Instruction) तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

चौथे, व्यावसायिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे भी, केवल यह ही पर्याप्त नही है कि कर्मचारी को पूर्णतया केवल उसी कार्य के लिये प्रशिक्षित किया जाए जोकि उस समय वह कर रहा हो। व्यक्ति को केवल इस योग्य बनाने के लिये ही प्रशिक्षण नही दिया जाना चाहिये कि जिससे वह अपने वर्तमान कार्य को अधिक कुशलता के साथ

कर सके, बल्कि उसको अन्य कार्यों के लिये उपयुक्त बनाने के लिये, तथा जहाँ उचित हो, उसमें उच्चतर कार्य और उच्चतर उत्तरदायित्वों को सभालने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए भी दिया जाना चाहिये।

पाचवे, ये उद्देश्य भी पर्याप्त नहीं है। लोगों की एक बड़ी संख्या को अपने कार्यकारी जीवन का अधिकांश भाग अनिवार्य रूप से नैत्यक प्रकृति (Routine character) के कार्यों में ही व्यय करना पड़ता है। इस मानवीय समस्या की दृष्टि से, प्रशिक्षण योजनाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी-वर्ग के मनोबल (Morale) की ओर गम्भीरता के साथ ध्यान दिया जाये।[1]

इस प्रकार संक्षिप्त रूप में प्रशिक्षण के पाँच मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) कार्य के निष्पादन में यथार्थता एवं शुद्धता लाना।

(२) कर्मचारियों के दृष्टिकोण तथा कार्यविधियों को परिवर्तित समय की नई-नई आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना।

(३) यन्त्र मानव जैसी कार्य-पद्धति की प्रवृत्ति को रोकने के सम्बन्ध में व्यापक विचार।

(४) व्यावसायिक प्रशिक्षण—व्यक्ति को केवल उसके वर्तमान कार्य की दृष्टि से ही उपयुक्त बनाने के लिये नहीं, अपितु उसके बढ़ते हुए कार्यों यथा उच्चतर क्षमता का भार वहन कर सकने की दृष्टि से भी।

(५) नैत्यक प्रकृति के कार्य अनुपक्षणीय होते हुए भी, कर्मचारियों के मनोबल (Morale) की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना।

कार्य के निष्पादन में यथार्थता तथा शुद्धता और कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रशिक्षण द्वारा सिविल सेवक को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाये कि वह अपने कार्य को अधिक से अधिक व्यापक संदर्भ (Context) की दृष्टि से देखे। यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण उसको अपेक्षाकृत ऊँचा कार्य तथा बड़ा उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये तैयार करदे।

इस प्रकार के विविध उद्देश्य किसी भी एक प्रकार के प्रशिक्षण द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। सिविल सेवकों के लिए अनेक प्रकार के प्रशिक्षणों की व्यवस्था करनी होती है जिसमें कि वे अपने कार्य को सर्वश्रेष्ठ रीति से सम्पन्न करने के योग्य बन सकें।

प्रशिक्षण के प्रकार (Kinds of Training):

प्रशिक्षण की मुख्य श्रेणियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रशिक्षण (Formal and Informal Training)—कर्मचारी को विभागाध्यक्षों (Departmental heads) द्वारा दिये जाने वाले उपदेशों (Lectures) अथवा अनुदेशों (instruction) द्वारा उस कार्य के सम्बन्ध में औपचारिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है जोकि उसे करना होता है। इस

1 Para 15 and 16

प्रकार का प्रशिक्षण प्रशासकीय स्कूलो अथवा विद्यापीठो (Academies) मे दिया जा सकता है। यह औपचारिक प्रशिक्षण कुछ प्रवीणताओ अथवा कार्यविधियो से सम्बन्धित वास्तविक अनुदेशो के रूप मे हो सकता है। कर्मचारी को विभाग की कार्य-प्रणाली, उसके कार्यों की प्रकृति तथा उस आचार-संहिता (Code of conduct) के बारे मे अनुदेश दिये जा सकते है जिसका कि उसे कार्यालय मे पालन करना होता है।

परन्तु स्कूलो तथा विद्यापीठो मे और उच्च अधिकारियो के भाषणो के रूप मे दिया जाने वाला औपचारिक प्रशिक्षण उस समय तक अधूरा ही रहता है जब तक कि कर्मचारी वास्तविक रूप मे अपने विभाग मे कार्य नही करता। वह दिन प्रतिदिन जो वास्तविक कार्य सम्पन्न करता है उससे बहुत कुछ सीखता है। एक कर्मचारी व्यावहारिक रूप से जब फाइलो, कागजातो तथा अधिकारियो के सम्पर्क मे आता है तब उसे **अनौपचारिक प्रशिक्षण** मिलता है। जब वह वास्तव मे अपना कार्य सम्पन्न करता है तो उसे उसके बारे मे अनेक बातो की जानकारी प्राप्त होती है। वह जब अपना कार्य सम्पादित करता है तो उसे अपने उच्च अधिकारियो से अनेक सुझाव प्राप्त होते हैं जिनसे उसका अनुभव (Experience) बढता है। 'आत्म-शिक्षा (Self-Education) ही सर्वोत्तम शिक्षा है।' वास्तविक कार्य-सम्पादन का अनुभव कर्मचारी को कार्य करने की कला का ज्ञान कराता है। यदि उचित समयान्तरो पर एक कर्मचारी का एक शाखा से दूसरी शाखा को स्थानान्तरण कर दिया जाये तो इससे उसके अनुभव की परिधि बढाई जा सकती है। ऐसी व्यवस्था से उसे सम्पूर्ण सगठन की कार्य-प्रणाली का ज्ञान हो जायेगा।

परन्तु यदि पर्यवेक्षक अधिकारी (Supervising officer) नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारी मे गहरी रुचि नही लेता है तो अनौपचारिक प्रशिक्षण सफल नही होगा। विभागीय अध्यक्षो को कर्मचारी के कार्य के सम्बन्ध मे सुझाव देने होते है तथा आलोचनाये करनी होती हैं। उन्हे कर्मचारी के कार्य मे पाये जाने वाले दोषो को बतलाना होता है और उन दोषो को दूर करने के लिए सुझाव भी देने होते है। इस प्रकार अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता उस रुचि (Interest) पर निर्भर होती है जोकि पर्यवेक्षक अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारी के कार्य के प्रति दिखाता है। जिले के युवा अधिकारी कलक्टर से बहुत कुछ सीखते हैं। एक अच्छे कलक्टर का घर एक युवा सहायक कलक्टर के लिए प्राय एक दूसरा घर बन जाता है। उसे कलक्टर के घर शाम व्यतीत करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। शायद ही कोई कलक्टर इतना व्यस्त रहता हो कि इन युवा अधिकारियो के साथ बातचीत करने का समय न निकाल सके। बल्कि इसके अतिरिक्त, वह इन नये युवा अधिकारियो से चाय पर आने तथा सप्ताह मे एक शाम अपने यहाँ बिताने को कहता है। फिर वहाँ बैठकर यह युवा सहायक कलक्टर अपनी जटिल समस्याओ पर विचार-विमर्श करता है और उससे बहुत कुछ सीखता है।

इस प्रकार प्रशासक मे मनोबल का निर्माण किया जाता है । पर इस अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता उस रुचि पर निर्भर होती है जोकि पर्यवेक्षक अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले अधिकारी के कार्य के प्रति दिखाता है । साधारणत ऐसा होता है कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी को उसके कार्य के बारे मे समझाने के बजाय यही सरल समझता है कि जहाँ भी आवश्यक हो उसके कार्य को स्वय ही कर दिया जाय । ऐसी परिस्थितियो मे, नया प्रविष्ट होने वाला अधिकारी बहुत कम सीख सकेगा और उसका उत्साह भी नष्ट हो सकता है । नये भर्ती किये गये कर्मचारी को इस प्रकार का प्रशिक्षण अन्य लोगो के कार्य का निरीक्षण करने से प्राप्त होता है । अत जब तक कि नये कर्मचारी को विभाग के पुराने तथा अनुभवी कर्मचारियो की सहायता न प्राप्त हो तब तक वह कुछ नही सीख सकता । यदि अनौपचारिक प्रशिक्षण को सफल बनाना है तो यह आवश्यक है कि उच्चतर अधिकारी नये प्रविष्ट होने वाले कर्मचारियो के काय म गहरी रुचि लें ।

इस तथ्य के बावजूद भी कि अनौपचारिक प्रशिक्षण से अनेक बडे लाभ होते है, औपचारिक प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है । एक सुविचारपूर्ण प्रशिक्षण योजना के द्वारा ही कर्मचारियो म सन्तुलित निर्णय करने की शक्ति का विकास किया जा सकता है । अत औपचारिक प्रशिक्षण के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकती । **औपचारिक प्रशिक्षण तीन प्रकार का होता है**— (१) पूर्व प्रवेश प्रशिक्षण, (२) सेवाकालीन प्रशिक्षण, और (३) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण । अब हम इनकी क्रमश विवेचना करते हैं ।

(१) पूर्व-प्रवेश प्रशिक्षण (Pre-entry Training)— यह प्रशिक्षण कर्मचारी को इसलिए दिया जाता है कि जिससे वह लोक-सेवा मे प्रवेश की प्रतियोगिता परीक्षा के लिए तैयार हो सके । यह उसके कार्यालय मे प्रवेश पाने का प्रशिक्षण होता है । इससे उसे कार्य के बारे मे जानकारी मिलती है जोकि उसे कार्यालय मे करना होता है । इस प्रशिक्षण के द्वारा उस उस सगठन से परिचित कराया जाता है जिसम कि उस कार्य करना होता है, और उस विशिष्ट कार्य का ज्ञान कराया जाता है जोकि उससे सम्पन्न करने की आशा की जाती है । यह प्रशिक्षण कर्मचारी को उन कार्यों का भार उठाने के लिये तैयार करता है जोकि उस सम्भालने होते हैं ।

(२) सेवाकालीन प्रशिक्षण (In-service Training)—यह प्रशिक्षण उस कर्मचारी को दिया जाता है जोकि पहले स ही सेवा मे लगा होता है । सेवाकालीन प्रशिक्षण उन लोगो के लिए होता है जोकि वस्तुत अपने पद पर बने होते है । उनको यह प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता है जिससे कि वे अपना कार्य समुचित रूप से सम्पन्न कर सकें । सेवाकालीन प्रशिक्षण के दो उद्देश्य होते हैं--

(क) यह प्रशिक्षण कार्य के श्रेष्ठतर निष्पादन के लिये अनिवार्य होता है ।

(ख) ऐसा प्रशिक्षण पदोन्नति (Promotion) के लिए भी लाभदायक होता है । सेवाकालीन प्रशिक्षण सभी कर्मचारियो को तब दिया जाता है जबकि वे नौकरी

मे प्रवेश पा लेते हैं। यह प्रशिक्षण कर्मचारियो मे विचार व कार्य, प्रवीणता, ज्ञान तथा दृष्टिकोण सम्बन्धी उपयुक्त आदतो का विकास करके उनके वर्तमान अथवा भावी कार्य के सम्बन्ध मे सक्रियता उत्पन्न करने मे उनकी सहायता करता है।

इस प्रकार का प्रशिक्षण अपने कार्य के बारे मे नई-नई तकनीकें (Techniques) सीखने मे कर्मचारी की सहायता करता है। इससे उसका ज्ञान नवीनतम हो जाता है। यह प्रशिक्षण कार्य की नई तकनीको की दौड मे कर्मचारियो को पीछे न रहने देने के लिये आवश्यक होता है। यह कर्मचारी को प्रगति के लिए तैयार करने का प्रशिक्षण होता है। उसे प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता है जिससे कि वह नये उत्तरदायित्वो को सम्भालने के योग्य बन सके। प्रशिक्षण को केवल सेवा के आरम्भ तक के लिए ही सीमित नही किया जा सकता। प्राथमिक प्रशिक्षण (Initial training) के साथ ही साथ ऐसे विशिष्ट पाठ्यक्रमो तथा नवीनीकरण पाठ्यक्रमो (Refresher courses) की पद्धति भी अपनायी जानी चाहिए जोकि एक बार मे एक माह अथवा उससे अधिक अवधि मे समाप्त हो और सम्पूर्ण सेवा तक विस्तृत हो।

(२) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post-entry Training)—कर्मचारी नई-नई बातें सीखने का इच्छुक होता है। वह जिस कार्य मे लगा होता है उसके बारे मे अपने ज्ञान की वृद्धि करना चाहता है। कर्मचारी अपनी योग्यताओ मे भी वृद्धि करना चाहते है जिससे कि उनकी पदोन्नति हो सके। सरकार को चाहिए कि वह उन कर्मचारियो को, जोकि अपनी योग्यताओ मे वृद्धि करना चाहते हैं, अवकाश तथा छात्रवृत्ति (Scholarship) के रूप मे सम्पूर्ण सुविधायें प्रदान करे। उन कर्मचारियो को, जोकि अपने निजी प्रयत्नो से ऊपर उठना चाहते हैं, सभी प्रकार का सम्भव प्रोत्साहन किया जाना चाहिये।

प्रशिक्षण के प्रकार (Types of Training)

कर्मचारियों को कई प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, उदाहरणार्थ, मूलभूत लिपिक तकनीको (Clerical techniques) का विभाग की विशिष्ट तकनीको का तथा लोक प्रशासन के सिद्धान्त एव प्रयोग का प्रशिक्षण। प्रशिक्षण की किस्म पर जोर देने की बात विभिन्न सेवाओ के कार्यो की प्रकृति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। उदाहरणार्थ, प्रशासकीय वर्ग को पर्यवेक्षण (Supervision) के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, जबकि मुद्रलेखक (Typist) अथवा लिपिक-वर्ग के लिए ऐसा प्रशिक्षण आवश्यक अथवा महत्वपूर्ण नही होता।

'सिविल-सेवको के प्रशिक्षण' पर नियुक्त समिति, १९६४ ने चार प्रकार के प्रशिक्षण का सुझाव दिया—(१) व्यावसायिक प्रशिक्षण, (२) पृष्ठप्रदेशीय प्रशिक्षण, (३) आगामी या अतिरिक्त शिक्षा और (४) केन्द्रीकृत प्रशिक्षण। इन प्रशिक्षणो के उद्देश्य के अनुसार विभिन्न श्रेणियो मे इनका फिर उप-विभाजन किया जाता है—(क) प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक प्रशिक्षण, (ख) गतिशीलता के लिये प्रशिक्षण,

(ग) पर्यवेक्षण के लिये प्रशिक्षण, (घ) उच्चतर प्रशासन के लिये प्रशिक्षण। अब हम इनकी क्रमश विवेचना करते हैं।

(१) व्यावसायिक प्रशिक्षण (Vocational Training)—कर्मचारी को इस विशिष्ट तकनीक मे प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है जोकि उसके व्यवसाय के लिये आवश्यक होती है। दस्तकारी का प्रशिक्षण व्यावसायिक प्रशिक्षण है।

(२) पृष्ठ प्रदेशीय प्रशिक्षण (Background Training)—पृष्ठ-प्रदेशीय प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारी को किसी तकनीक अथवा प्रवीणता मे विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित करना नहो है। इसका उद्देश्य तो साधारणत कर्मचारियो के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना है। कर्मचारियो को राजनीति, अर्थशास्त्र (Economics), समाज शास्त्र (Sociology) आदि, जैसे सामान्य विषयों म प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे कि वे समाज की आर्थिक एव सामाजिक समस्याओ को समझने के योग्य बन सक। इस प्रकार का प्रशिक्षण साप्ताहिक वाद-विवाद-वर्गों, प्रबन्धको द्वारा की जाने वाली बातचीतो तथा नीति के नियतकालीन विवरणपत्रो (Periodical statements) के द्वारा दिया जा सकता है। विभागीय-पत्रिका, मासिक पत्रिका, पुस्तकालय फिल्मो का प्रदर्शन, अन्य शाखाओं तथा विभागो मे भ्रमण—ये सब आयोजन कर्मचारियो के दृष्टिकोण एव मस्तिष्क को व्यापक बनाने मे सहायक सिद्ध होगे।

(३) अतिरिक्त शिक्षा (Further education)—विभागो (Departments) द्वारा अपने सदस्यो को इस बात की सुविधायें प्रदान की जानी चाहियें कि वे व्यावसायिक महत्व के अतिरिक्त शिक्षा प्राप्त कर सकें, उदाहरणार्थ, लेखाकारो (Accountants) तथा अकशास्त्रियो (Statisticians) को उनके धन्धो के अतिरिक्त शिक्षा दी जानी चाहिये। गैर-व्यावसायिक अतिरिक्त शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

(४) केन्द्रीकृत प्रशिक्षण (Centralised Training)—प्रशासकीय अधिकारियो के प्रशिक्षण के लिए तो एक केन्द्रीय सगठन होना चाहिए और शेष कर्मचारियो के लिये सम्बन्धित विभागो के अपने निजी प्रशिक्षण केन्द्र होने चाहिए।

(५) प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक प्रशिक्षण (Initial Training)—सम्बन्धित विभागो को इस बात के लिये उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए कि वे अपने कर्मचारियो को प्रारम्भिक प्रशिक्षण दें। भर्ती किये गये नये कार्मचारियो को सरकारी कार्यालय की कार्यप्रणाली के बारे मे सामान्य जानकारी दी जानी चाहिये, उसके विशिष्ट विभाग के सगठन तथा कर्त्तव्यो के बारे मे उसको सामान्य ज्ञान कराया जाना चाहिए और गुप्तता (Secrecy), कार्यालय के अनुशासन आदि की दृष्टि से सरकारी कार्य के निष्पादन के लिए सामान्य पृष्ठभूमि का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्थाओ मे, नये भर्ती किये गये कर्मचारी को अनुभवी व उपयुक्त व्यक्तियो के आधीन काम करना चाहिए।

(६) **गतिशीलता के लिए प्रशिक्षण** (Training for Mobility)—कर्मचारी को केवल एक कार्य का ही नहीं, अपितु अन्य तथा भिन्न प्रकार के कार्य का भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षणार्थियों (Trainees) का एक पद से दूसरे पद पर को तथा एक प्रकार के कार्य से दूसरे प्रकार के कार्य पर को स्थानान्तरण किया जाना चाहिये। विभाग तथा सेवा के अन्दर ही अन्दर होने वाली इस गतिशीलता से सम्पूर्ण रूप में कर्मचारी की वैयक्तिक क्षमता का विकास होता है।

(७) **पर्यवेक्षण के लिए प्रशिक्षण** (Training for Supervision)—जिन लोगों को पर्यवेक्षण का कार्य सौंपा जाना हो, उन्हें अधीनस्थ कर्मचारियों (Subordinates) से व्यवहार करने की कला का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। इससे पूर्व एक अधिकारी की किसी पर्यवेक्षणिक पद (Supervisory post) पर पदोन्नति की जाए उस पद पर कार्य करने की उसकी क्षमता की परख कर लेनी चाहिए।

(८) **उच्चतर प्रशासन के लिए प्रशिक्षण** (Training for Higher Administration)—प्रशासकीय वर्ग के व्यक्तियों को सबसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं अतः उनके प्रशिक्षण पर विशिष्ट ध्यान दिया जाना चाहिये। इस वर्ग के कर्त्तव्यों का सम्बन्ध नीति के निर्माण से, सरकारी यन्त्र के सुधार व समन्वय से तथा लोक-सेवा के विभागों के सामान्य प्रशासन एवं नियन्त्रण से होता है। प्रशासकीय पदों पर भर्ती किये जाने वाले व्यक्तियों को आर्थिक तथा राजनैतिक नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हें लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि उन्हें यह बात ध्यान रहे कि उन्हें जनता के सेवक के रूप में कार्य करना है। उन्हें सरकारी विभागों के संगठन तथा प्रशासन की समस्याओं से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये कि वे अपने स्टाफ, उच्च अधिकारियों तथा सामान्य जनता का सहयोग प्राप्त करने में समर्थ हो सकें। इस प्रकार प्रशासनिक वर्ग के अधिकारियों का प्रशिक्षण इस प्रकार होना चाहिये जोकि उनके दृष्टिकोण को विस्तृत करे, उनको स्वतन्त्र निर्णय कर सकने के योग्य बनाये और जो देश की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं से उन्हें पूर्ण अवगत रखे। उनको प्रशासन तथा प्रशासन के सिद्धान्त की कला में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशासनिक वर्ग को केवल वर्गीकरण, परीक्षण, बजट-निर्माण, कार्य-विधि के विश्लेषण, लोक-कल्याण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, सड़कों तथा राज-पथों (Highways) से सम्बन्धित प्राथमिक सिद्धान्तों का ही प्रशिक्षण नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि राजवित्त (Public finance), अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनैतिक संस्थाओं के इतिहास का भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। इस प्रकार उन्हें दोनों ही प्रकार के विषय में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और केवल तभी वे उच्च कोटि के पदाधिकारी बन सकते हैं। एक अनुभवी प्रशासक श्री ए० डी० गोरवाला ने ठीक ही सुझाव दिया है कि सामान्य प्रशासक (General administrator) को व्यावहारिक अर्थशास्त्र (Practical economics) का ठोस ज्ञान होना चाहिए। उसमे यह समझने

है। सरकारी सेवाओं में कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने का ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post entry training) दिया जाता है क्योंकि उन सेवाओं में मितव्ययता तथा कार्य-कुशलता बनाये रखने के लिए ऐसा प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक होता है। अत कर्मचारियों के लिये बहुमूल्य एवं मार्ग-दर्शन व्याख्यानों का आयोजन किया जाता है। ब्रूकिंग्स संस्था (Brooking Institution) जोकि सन् १९३७ में वाशिंगटन में स्थापित की गई थी, संघीय सेवा के कर्मचारियों के प्रशिक्षण में बहुत सहायता देती है। यह संस्था केवल प्रशासकीय कार्य-विधियों (Procedures) की शिक्षा मात्र ही नहीं देती बल्कि इससे भी आगे बढ़कर यह कर्मचारियों में ऐसी दूरदर्शिता तथा विवेक-शक्ति का विकास करती है जोकि व्यापक निर्णयों तथा विस्तृत कार्यवाहियों की दृष्टि से आवश्यक होती है। ऐसे अध्ययनों की व्यवस्था "वाशिंगटन से बाहर की जाती है और इसमें भाग लेने वाले व्यक्ति एक साथ रहते तथा एक साथ कार्य करते हैं।' इस प्रकार संयुक्तराज्य अमेरिका में विश्वविद्यालय लोक कर्मचारियों के प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक बड़ा महत्वपूर्ण तथा मार्गदर्शक कार्य सम्पन्न कर रहे हैं।[1]

यूनाइटेड किंगडम
(United Kingdom)

मुख्य रूप से कहा जाए तो ब्रिटेन में लोक कर्मचारी-वर्ग प्रशिक्षण के लिए *ब्रिटिश राजकोष (British Treasury)* ही उत्तरदायी है। सन् १९४४ की असेटन समिति (जिसका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है) के प्रतिवेदन के पश्चात राजकोष ने प्रशिक्षण की एक योजना का निर्माण किया। इसके संचालन के लिए एक शिक्षा तथा प्रशिक्षण निर्देशक (Director of Education and Training) नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक विभाग (Department) में प्रशिक्षण अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जोकि ह्विटले परिषदों (Whitley councils) के सहयोग से इस योजना का संचालन करते हैं। नव प्रविष्टों (Entrants) को विभाग के स्थान, उसकी सेवा के सम्बन्धों तथा समाज के लिए उसकी उपादेयता के बारे में परिचय कराया जाता है। उनको नीतिशास्त्र (Ethics) तथा सेवा के आचार व्यवहार सम्बन्धी नियमों की शिक्षा दी जाती है। इसके पश्चात् कार्य अथवा पद का वास्तविक प्रशिक्षण दिया जाता है। कार्यालय समय के बाहर व्यावसायिक (Vocational) *तथा सामान्य ज्ञान की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाता है। अनेक नव प्रविष्ट व्यक्ति* स्वयं अपने अनुभव से प्रयोगात्मक रूप में अपने कार्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं। वरिष्ठ स्तर (Senior level) के पदाधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए एक प्रशासकीय स्टाफ

---

1 Also refer to W B Graves *Public Administration in a Democratic Society* (1950) p 7 24. W E Mosher and J D Kingsley *Public Personnel Administration* (1941) Ed, L. D White Introduction to the Study of *Public Administration (1948 ed) Chs XXII XXXI and Cluadius O Johnson* American Government New York 1923 Chapter XVI

कालिज है। यह कालिज सिंडीकेट प्रणाली का उपयोग करता है जिसके अनुसार कि छात्र एक जाँच समिति (Committee of Enquiry) की विधि द्वारा अपने लिए विषय की खोज करते हैं। 'इस कालिज ने उद्योग तथा बैंकिंग के उच्च प्रशिक्षण पर ह्वाइट हाल की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभाव डाला है।' लन्दन विश्व विद्यालय लोक-प्रशासन मे डिप्लोमा प्रदान करके तथा ब्रामशिल (Bramshill) का पुलिस कॉलिज, पुलिस अधिकारियो को प्रशिक्षण देकर, कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधाए प्रदान करते हैं। इस सब प्रशिक्षण का उद्देश्य "विभाग के कार्य मे अधिक परिशुद्धता उत्पन्न करना, अधिकारियो को परिवर्तनीय आवश्यकताओ के अनुरूप बनाना और नैत्यक कार्य का अभ्यासी बनने से रोकना, विशेषकर यान्त्रिक कार्यपद्धति के प्रभाव को रोकना, उनको अधिक महत्वपूर्ण भावी उत्तरदायित्वो के लिए तैयार करना तथा कर्मचारी वर्ग के मनोबल (Morale) को पुष्ट करना है।"[1]

भारत मे लोक कर्मचारी-वर्ग का प्रशिक्षण

(Training of the Public Personnel in India).

भारत मे मान्यता प्राप्त विद्यालयो के स्नातक (Graduates) अखिल भारतीय सेवाओ के लिए—उदाहरणार्थ, भारतीय प्रशासन सेवा (I. A. S), भारतीय पुलिस सेवा (I. P S) और केन्द्रीय सरकार की अन्य सेवाओ जैसे कि लेखा-परीक्षण सेवा (Audit), आय-कर (Income-Tax) तथा रेलवे सेवा के लिए —प्रतियोगिता कर सकते हैं। प्रत्याशियो (Condidates) की सामान्य बौद्धिक क्षमता की जाच करने के लिए सघीय-लोक सेवा आयोग (U P S C) भर्ती-परीक्षा की व्यवस्था करता है। यह परीक्षा इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, विधि (Law), गणित तथा रसायनशास्त्र (Chemistry) जैसे विषयो मे ली जाती है। इन विषयो का उस कार्य से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता जोकि प्रत्याशियो को सरकारी सेवा मे नियुक्ति के पश्चात् करना पडता है। अत प्रत्याशियो के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होती है जिससे कि वे अपने कार्य के सम्बन्ध मे आवश्यक ज्ञान तथा ऐसी प्रवीणता प्राप्त करने मे समर्थ हो सके जिसके बिना वे सेवा मे कोई भी प्रभावशाली कार्य सम्पन्न नही कर सकते। अब हम भारत सरकार की विभिन्न सेवाओ के प्रशिक्षण-कार्य-क्रम का अध्ययन करेंगे।

(१) भारतीय प्रशासन सेवाओं के लिए प्रशिक्षण (Training for Indian Administrative Services)—मार्च सन् १९४७ मे दिल्ली मे भारतीय प्रशासन सेवा के परिवीक्षाधीनो (I A S Probationers) के लिए एक प्रशिक्षण सस्था की स्थापना की गई थी। अब इसको समाप्त कर दिया गया है और इसका स्थान प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी (National Academy of Administration) ने

---

1 Herman Finer, Governments of greater European Powers, P 208 Also refer to Public Service Training in the Past Decade, F J Tickner, *Public Administration vol* XXXIV p p 27 38

ल लिया है। भा० प्र० से० (I A S) के परिवीक्षाधीनों का एक वर्ष के लिए दिल्ली की प्रशिक्षण संस्था में भेज दिया जाता था। इसके पाठ्यक्रम में ये विषय सम्मिलित थे भारत का संविधान तथा पंचवर्षीय योजनायें, देश की दण्ड विधि (Criminal law) अर्थात भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code), दण्ड प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम (Indian Evidence Act), भारतीय इतिहास व इसके सामाजिक एवं राजनीतिक पहलू, अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त, लोक प्रशासन व सरकारी संस्थाओं का संगठन, हिन्दी और एक प्रादेशिक भाषा। प्रत्याशियों को इन विषयों में एक परीक्षा पास करनी पड़ती थी जिसकी व्यवस्था संघीय लोक-सेवा आयोग द्वारा की जाती थी। यदि वे इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेते थे तो सेवा में उनका स्थिरीकरण (Confirmation) कर दिया जाता था। भा० प्र० सेवा प्रशिक्षण संस्था में प्रशिक्षण की इस एक वर्ष की अवधि के बीच प्रत्याशियों को देश के विभिन्न भागों का भ्रमण करने के लिये भेजा जाता था जिससे कि वे देश की समस्याओं को समस्त रूप में (As a whole) समझ सकें। परन्तु यह एक वर्ष का प्रशिक्षण प्रत्याशियों को कलक्टर जैसे पद अथवा ऐसे ही अन्य किसी उच्च पद के लिए उपयुक्त बनाने की दृष्टि से अपर्याप्त है। भा० प्र० सेवा का एक पदाधिकारी सेवा के छठवें वर्ष में कलक्टर के पद का कार्य-भार सम्भालने के योग्य हो जाता है। उसे एक वर्ष या उससे अधिक तक अतिरिक्त 'काम पर प्रशिक्षण' (On the job training) दिया जाता है। उसे जिला कार्यालयों से संलग्न कर दिया जाता है जिससे कि वह अनुभव प्राप्त कर सके। उसको और अनुभव प्रदान करने के लिए, प्रारम्भिक अवस्थाओं में उसका विभिन्न जिलों में स्थानान्तरण किया जाता है। उसे लगभग अठारह माह के लिये अवर सचिव (Under-secretary) का कार्य करने के लिये सचिवालय (Secretariat) में भी भेजा जाता है। यह सब प्रशिक्षण इसलिये दिया जाता है, जिससे भा० प्र० सेवा के पदाधिकारी जिले में अथवा किसी सरकारी विभाग में कोई भी उत्तरदायित्व का पद सम्भालने के योग्य हो जायें। मुख्य जोर 'काम पर प्रशिक्षण' पर दिया जाता है यद्यपि इसके अनुपूरक के रूप में भा० प्र० सेवा प्रशिक्षण संस्था में एक वर्ष का औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

(२) भारतीय विदेश सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training for the Indian Foreign Service)—इस सेवा के प्रत्याशियों की प्रशिक्षणावधि तीन वर्ष की होती है। इस अवधि में प्रत्याशी एक जिले से संलग्न कर दिये जाते हैं जहाँ कि वे प्रयोगात्मक कार्य के बारे में शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात सचिवालय प्रशिक्षण (Secretariat training) दिया जाता है।

इस सेवा के प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाषाओं (हिन्दी तथा एक विदेशी भाषा) के तथा उन विषयों के अध्ययन पर जोर दिया जाता है जिनका ज्ञान इस सेवा के

एक पदाधिकारी के लिये मावश्यक होता है जैसे कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि (International law) राजनय (Diplomacy) तथा भूगोल आदि विषयो की शिक्षा। इनको सस्थागत प्रशिक्षण (Institutional training) भा० प्र० सेवा के परिवीक्षाधीना (I. A S Probationers) के साथ ही दिया जाता है।

(३) भारतीय पुलिस सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training for the Indian Police Service)—भारतीय पुलिस सेवा के लिए, सितम्बर १९४८ मे माऊन्ट आबू मे एक केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कालिज (Central Police Training College) की स्थापना की गई थी। इस सेवा के प्रत्याशियो के लिये अध्ययन के विषय हैं—दण्ड विधि, दण्ड प्रक्रिया, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, भारतीय सविधान आदि, परन्तु विशेष जोर शारीरिक प्रशिक्षण (Drill) तथा अस्त्र-शस्त्र चलाने के प्रशिक्षण पर दिया जाता है। अस्त्र शस्त्र चलाने के प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए उन्हे सैनिक इकाइयो (Military Units) मे भी भेजा जाता है। एक वर्ष के प्रशिक्षण के पश्चात् उन्हे जिलो मे भेजा जाता है और वहां के 'काम पर प्रशिक्षण' प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षणार्थी वरिष्ठ जिला पुलिस अधिकारियो के मार्ग-दर्शन म अनेक अधीनस्थ अधिकारियो का कार्य करके अपने काम की शिक्षा प्राप्त करता है। लगभग एक वर्ष तक इस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त, एक भा० प्र० सेवा से अधिकारी को सहायक पुलिस अधीक्षक (Assistant Superintendent of Police) के रूप मे नियुक्त कर दिया जाता है।

भारत सरकार ने भारतीय पुलिस सेवा के परिवीक्षाधीनो के सस्थागत प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम मे सशोधन किया है। इसके अनुसार सिन्डीकेट कार्य तथा वर्गीय वाद-विवादो (Group discussions) पर अधिक जोर दिया गया है तथा पाठ्यक्रम मे कुछ ऐसे विषयो की शिक्षा को सम्मिलित किया गया है जैसे कि अपराध (Crime) तथा इस सम्बन्ध मे कार्य करने का ढग, अपराधी (Criminals), अपराधियो के गिरोह, तथा औपराधिक मनोविज्ञान (Criminals Psychology), पुलिस तथा लोक-प्रशासन आदि। पाठ्यक्रम की नई विशेषता है निम्न कार्यों का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण (Practical training) भीड को तितर बितर करना, यातायात का नियमन करना, भ्रष्टाचार को रोकना, अग्निसेवा, सकटकालीन सहायता, नागरिक प्रतिरक्षा परिवीक्षा तथा मुक्त किये गये बन्दियो (कैदियो) की बाद की देखभाल।

(४) भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training for the Indian Audit and Accounts Service)—भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा सेवा मे भर्ती होने वाले अधिकारियो को 'विभागीय प्रशिक्षण स्कूल' शिमला मे एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। परिवीक्षाधीनो को यह प्रशिक्षण केवल उन्ही विषयो मे दिया जाता है जिनका उनके काम से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसके पाठ्यक्रम मे ये विषय सम्मिलित किये जाते हैं लेखा परीक्षण

(Audit), लेखाकन (Accounts), दण्ड तथा स्थानीय विधियाँ, भारतीय सविधान, ससदीय वित्तीय नियन्त्रण, वाणिज्यिक बहीखाता (Commercial book-keeping), लेखा सहितायें (Account codes), आधार-भूत नियम (Fundamental rules), प्रादेशिक भाषा आदि। प्रशिक्षण-काल मे, प्रशिक्षणार्थी (Trainee) को कार्य का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण देने के लिये अनेक लेखा-कार्यालयों तथा जिला राजकोषों से सलग्न कर दिया जाता है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रत्याशी को लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण पद्धति की समस्याओ तथा कार्यविधियो से पूर्ण परिचित करना है। इस सेवा के प्रत्याशी (Candidates) को उन विषयो मे सुनियोजित एव व्यवस्थित प्रशिक्षण दिया जाता है जोकि उसके भावी कर्तव्यों की दृष्टि से अत्यावश्यक होता है। उसे काम पर 'प्रशिक्षण' भी दिया जाता है। स्कूल से उत्तीर्ण होने के पश्चात् उसको सहायक लेखा अधिकार (Assistant Accunts Officer) के पद पर नियुक्ति कर दी जाती है।

(५) आय-कर सेवा के परिवीक्षाधीनो (Income tax probationers) को कलकत्ता के प्रशिक्षण स्कूल में १८ मास का प्रशिक्षण दिया जाता है। रेलवे बोर्ड बडौदा म एक स्टाफ कॉलिज का सचालन करता है। यह यातायात, परिवहन व वाणिज्यिक विभाग मे तथा रेलवे लेखा सेवा (Railway Accounts Service) मे भर्ती होने वाले अधिकारियो को प्रशिक्षण देता है। इन स्कूलो मे प्रशिक्षण के सभी विषय एक दम प्रयोगात्मक होते है और उनका इन अधिकारियो के कार्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। उन्हे उनके ऐसे भावी तकनीकी एव प्रवीण कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता है जो कि उनके लिये नवीन होते हैं।

(६) केन्द्रीय सचिवालय सेवा (Central Secretariat Service)—इस सेवा मे भर्ती होने वाले प्रत्याशियो को सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल में प्रशिक्षा दी जाती है। इस प्रशिक्षण सस्था की स्थापना मई १६४८ मे नई दिल्ली मे हुई थी। प्रशिक्षणार्थियो को सगठन तथा प्रणालियो (O and M), कार्यालय की कार्यविधियो, वित्तीय नियमो का विनियमो आदि मे प्रशिक्षण दिया जाता है। सस्थागत प्रशिक्षण अधिकारीयो के कार्य के सम्बन्धित होता है। प्रशिक्षण पूरा करने के उपरान्त, इससे पूर्व कि प्रत्याशियो को अनुभाग अधिकारी (Section officers) बनाया जाए, उन्हे कुछ समय के लिए सहायको (Assistants) के रूप मे कार्य करना होता है। वस्तुस्थिति यह है कि जोर अधिकतर उस प्रयोगात्मक कार्य पर दिया जाता है जो कि अधिकारी को भविष्य मे कार्यालय मे करना होता है।

भारत मे विभिन्न सेवाओ के व्यक्तियो को केन्द्रीय सस्थाओ मे प्रशिक्षण दिया जाता है। उनको विधियो (Laws), नियमो (Rules) विनियमो (Regulations), कार्यविधियों (Procedures) तथा सारपुस्तिकाओ (Manuals) से सम्बन्धित औपचारिक शिक्षा दी जाती है। परन्तु यह अनुभव किया जाता है कि सस्थागत प्रशिक्षण पर्याप्त नही है, अत प्रशिक्षण का एक अन्य अग है 'काम पर

प्रशिक्षण' (On the job training)। नये भर्ती किये गये अधिकारियो के लिए 'काम पर प्रयोगात्मक प्रशिक्षण' अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय प्रशासन सेवा के परिवीक्षाधीनो की वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्थाओ की कुछ आलोचना भी की जाती है। यह कहा जाता है कि सैद्धान्तिक तथा कक्षा मे पढाये जाने वाले विषयो पर अधिक जोर दिया गया है। भा० प्र० सेवा के एक परिवीक्षाधीन (Probationer) को प्रशिक्षण सस्था मे पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रशिक्षण नही दिया जाता। अध्ययनात्मक पर्यटनो (Study tours) पर तथा न्यायालयो, जिलो, परगनो, तहसीलो के प्रधान कार्यालयो के निरीक्षणो अथवा भ्रमणो (Visits) पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये।

वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था का एक अन्य दोष यह है कि पृथक्-पृथक् व्यक्तियो की उन न्यूनताओ को दूर करने का बहुत कम प्रयत्न किया जाता है जो उनके द्वारा विश्वविद्यालयो मे कुछ विषयो (Subjects) के न पढने के कारण उत्पन्न होती है। सामाजिक विज्ञान (Social science) के एक स्नातक (Graduate) को भौतिक विज्ञानो (Physical science) के बारे मे कुछ ज्ञान नही होता। विज्ञान तथा शिल्पकला के इस युग मे यह एक बडा भारी दोष है। शुद्ध विज्ञान (Pure-science) का एक स्नातक राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के मूलभूत सिद्धान्तो के बारे मे कुछ नही जानता। परन्तु इस युग मे कोई भी प्रशासक इन विषयो के समुचित ज्ञान बिना अपने कार्यों को कुशलता के साथ सम्पन्न नही कर सकता। जब सिविल सेवक को 'व्यावहारिक जीवन मे सामाजिक वैज्ञानिक' की सज्ञा दी जाती है। शिल्पकला विज्ञान (Technology) के इस युग की मागो का महान् सामाजिक उत्कर्ष की आवश्यकताओ के साथ ताल-मेल बिठाना पडता है। अत पाठयक्रम का विस्तार किया जाना चाहिए, प्रशिक्षण की अवधि बढायी जानी चाहिए, और भा० प्र० सेवा के युवा परिवीक्षाधीनो को इस विस्तृत पाठयक्रम के विषयो का यथेष्ट ज्ञान कराया जाना चाहिए। प्रत्याशियो के दृष्टिकोण एव ज्ञान को व्यापक बनाने के लिये इस प्रकार का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारत मे युवक अपनी स्नातकीय परीक्षा मे जिन विषयों को लेते हैं उनके अतिरिक्त अन्य विषयो का स्थूल ज्ञान तक प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नही करते। अत भा० प्र० सेवा की प्रशिक्षणशालाओ मे जो प्रशिक्षण दिया जाए उसमे भौतिक तथा सामाजिक, दोनो विज्ञानो का समावेश होना चाहिए जिससे कि प्रशिक्षार्थियो की पहली कमिया दूर की जा सकें और उनके ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार किया जा सके। प्रशिक्षण सस्थाओ मे दी जाने वाली प्रशिक्षा से प्रशिक्षणार्थियो का मानसिक दृष्टिकोण पुनर्व्यवस्थित होना चाहिये अन्यथा तो विश्वविद्यालय के एक युवा स्नातक, जिसने कि अपना अध्ययन अभी ही समाप्त किया हो, तथा एक भा० प्र० सेवा (I A S) के

अधिकारी के बीच जाकि बडे प्रशासकीय उत्तरदायित्वों का भार अपने कन्धों पर उठाने जा रहा है, कोई अन्तर ही नहीं रह जायगा।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है प्रत्याशी को एक तो प्रशिक्षण तब दिया जाता है जबकि वह सरकारी सेवा में प्रवेश करता है। यह प्रशिक्षण उसको ऐसे ज्ञान से सुसज्जित करता है जो उस पद के कर्तव्यों को सम्पन्न करने की दृष्टि से आवश्यक होता है जिस पर कि उसकी नियुक्ति की जाती है। इसके पश्चात भी समय समय पर उसको प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य उसके ज्ञान को फिर से तरो-ताजा करना, उसका नये-नये विकासों के सम्पर्क में लाना तथा उसके मस्तिष्क को सक्रिय (Active) रखना है। इस प्रवेशोत्तर (*Post-entry*) प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त व्यवस्थाएं की जानी चाहिए। पदाधिकारियों के लिए समय-समय पर नवीनीकरण पाठ्यक्रमों (Refresher courses) की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि वे प्रशासन तथा आयोजन (Planning) की नवीनतम विधियों एवं तकनीकों से परिचित हो सकें।

भारत में प्रशिक्षण कार्यक्रम में कुछ नवीन परिवर्तन[1] (Recent Developments in Training Programme in India)

अगस्त १६५६ में दिल्ली के मेटकॉफ हाउस में स्थित आई० ए० एस० प्रशिक्षण विद्यालय को उन्मूलित कर दिया गया तथा मसूरी में प्रशासन की एक राष्ट्रीय अकादमी (National Academy Administration) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य निम्न प्रकार के प्रशिक्षण संचालित करना निश्चित किया गया

(अ) अखिल भारतीय तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं के लिए पाँच महीने का एक समान आधारभूत पाठ्यक्रम',

(ब) आई० ए० एस० के प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये प्रशिक्षार्थियों के लिए सात महीने का 'व्यावसायिक प्रशिक्षण' (Professional Training),

(स) तीन-तीन महीने की अवधि के दो 'रिफ्रेशर रिओरिएण्टेशन कोर्स" उन प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये आई० ए० एस० अधिकारियों के लिए जिन्हें ६ से १० साल का सेवा अनुभव हो तो उन आई० ए० एस० अधिकारियों के लिए जिन्हें राज्यीय सेवाओं (State services) से उन्नत (Promote) किया गया हो, तथा

(द) वरिष्ठ (Senior) अधिकारियों के लिए अल्पावधि के कोर्स, विचार-गोष्ठियाँ (*Seminars*) तथा सम्मेलन।

अखिल भारतीय तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं (गैर प्राविधिक (Non technical) जैसे पोस्टल सेवा, इन्कम टैक्स सेवा, ऑडिट एण्ड एकाउन्टस

1 For National Academy of Administration also refer to The Indian Journal of Public Administration New Delhi Vol V No 4 October—December, 1959 and Vol VI No 1 January—March, 1960

सेवा, कस्टम्स सेवा, एक्साइज सेवा, डिफेन्स तथा रेलवे सेवाओं के लिए एक समान आधारभूत पाठ्यक्रम द्वारा प्रशिक्षण का उद्देश्य उपरोक्त विभिन्न सेवाओं के नवीन सदस्यों में यह भावना पैदा करना है कि वे अन्तिम रूप से एक ही सार्वजनिक सेवा के सदस्य हैं तथा उनमें एक व्यापक, समान दृष्टिकोण को जन्म देना है। इस कोर्स के फलस्वरूप अकादमी छोड़ने के बाद भी प्रशिक्षणार्थियों में पारस्परिक सद्भावना बनी रहती है। इस कोर्स में प्रशिक्षणार्थियों को राज्य के सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन एवं विकासोन्मुख प्रशासन की समस्याओं से अवगत कराया जाता है। इस प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि में यह विचार काम कर रहा है कि भारत की सभी उच्च सिविल सेवाओं के सदस्यों को उस सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक ढांचे से परिचित होना चाहिए जिसके दायरे में उन्हें काम करना है।

पांच मास की अवधि के इस आधारभूत पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद आई० ए० एस० को छोड़कर बाकी सभी सेवाओं के सदस्य अपनी अपनी सेवा के प्रशिक्षण विद्यालयों में जाते हैं। आई० ए० एस० के प्रशिक्षणार्थी अकादमी में सात महीने और रहकर अपने प्रशिक्षण का 'व्यावसायिक' भाग खत्म करते हैं। इस अवधि में व लोक प्रशासन, जिला प्रशासन तथा फौजदारी कानून इत्यादि का विस्तृत अध्ययन करते हैं। इन प्रशिक्षणार्थियों को ३–४ सप्ताह के लिए सैनिक केन्द्रीय घुड़सवारी तथा शस्त्रास्त्र प्रयोग की साधारण ट्रेनिंग भी दी जाती है।

संघीय लोक सेवा आयोग (U P S C) इन प्रशिक्षणार्थियों की एक अन्तिम परीक्षा लेता है। यह परीक्षा प्रशिक्षणार्थियों के अकादमी प्रवास के अन्तिम दिनों में ली जाती है। प्रशिक्षणार्थी का अन्तिम स्थान प्रतियोगी परीक्षा के फल, अकादमी में उसके कार्य तथा अन्तिम परीक्षा के फल के आधार पर निश्चित किया जाता है। आई० ए० एस० प्रशिक्षणार्थियों की "प्रोबेशन" अवधि दो वर्ष होती है। अपने राज्य में एक वर्ष काम कर चुकने तथा इसी प्रकार अन्य व्यावहारिक कार्यों में उसकी योग्यता परखने के बाद उसकी नियुक्ति 'पक्की' (Confirmed) की जाती है।

एक आई० ए० एस० प्रशिक्षणार्थी को १० से २० मास का 'काम पर' (On the Job) प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण में निम्न विशेषताएं सम्मिलित होती है

(अ) राज्य के सचिवालय में एक अल्पावधि के लिए कार्य,

(ब) कलक्टरों के दफ्तर में कार्य,

(स) कोष (Treasury) तथा लेखों (Accounts) सम्बन्धी कार्य,

(द) 'सेटिलमेण्ट' तथा भूमि सम्बन्धी कागजात की जानकारी,

(ड) पुलिस स्टेशनों का निरीक्षण तथा पुलिस कार्यालयों में कार्य,

(ढ) कृषि, सहकारिता, पंचायती राज, सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विस्तार, सेवा तथा सिंचाई जैसे विकास सम्बन्धी विभागों में कार्य।

(ग) किसी सब-डिविजनल कार्यालय मे कार्य , तथा

(घ) न्यायाधिकारी का तथा इसी प्रकार का अन्य न्यायिक कार्य ।

व्यावहारिक प्रशिक्षण पूरा करने के बाद प्रशिक्षणार्थी की राज्य, जिला या सब-डिवीजन स्तर पर कई छोटे-छोटे पदो पर नियुक्ति की जाती है । लम्बे अनुभव के बाद उसे किसी जिले का स्वतन्त्र नियन्त्रण सौंपा जाता है । इन प्रशिक्षणार्थियो के प्रशिक्षण कार्यक्रम का विवरण नीचे प्रस्तुत है ।

प्रशासन की राष्ट्रीय अकादमी मे तथा तदोपरान्त (At the National Academy of Administration and After)

(अ) आधारभूत पाठ्यक्रम (Foundational Course) —५ मास ।

(ब) सैनिक प्रशिक्षण (Army Attachment) —१ मास ।

(स) सैनिक प्रशिक्षण (Cross country visits or Bharat Darshan) —१½ मास ।

(द) दिल्ली यात्रा (महत्वपूर्ण व्यक्तियो से भेंट के लिए) तथा केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय की यात्रा —१५ दिवस ।

(ड) अकादमी मे अध्ययन —४ मास ।

(ढ) व्यावहारिक प्रशिक्षण —१८ मास ।

(क) किसी सब डिवीजन का कार्यभार —१८–२४ मास ।

(ख) राज्य सरकार का अवर सचिव तथा किसी विभागाध्यक्ष का सहायक (Under Secretary to the State Government and deputy to a head of Department)—१८–२४ मास ।

(ग) किसी जिले का कार्यभार-- सेवा के छटे वर्ष के अन्तिम दिनो मे या सातवें वर्ष के प्रारम्भ मे ।

आई० ए० एस० के प्रशिक्षणार्थियो के राज्यो मे प्रशिक्षण कार्यक्रम मे श्री बी० टी० कृष्णमाचारी ने निम्न परिवर्तन करने के सुझाव दिये हैं ।

(अ) प्रशिक्षण की अवधि १८ मास निश्चित करदी जानी चाहिए जिससे सब विषय पूरे किये जा सकें ।

(ब) कार्य की उन शाखाओं (अ) जिनके विषय मे ज्ञान सम्बन्धित पदो पर रहकर तथा वास्तविक रूप से कार्य करके प्राप्त किया जा सकता है तथा (ब) जिनके विषय मे ज्ञान वरिष्ठ अधिकारियो के साथ रहकर प्राप्त किया जा सकता है, मे स्पष्ट भिन्नता की जानी चाहिए । इन भिन्न कार्य-शाखाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षणार्थी को पर्याप्त समय तक सम्बन्धित कार्यालयो मे रहने देना चाहिए । दूसरे प्रकार के कार्य का ज्ञान वरिष्ठ अधिकारियों की देख-रेख मे तथा उनके साथ कार्य करके सरलता से प्राप्त किया जा सकता है ।

(स) आई० ए० एस० के प्रशिक्षणार्थियो को प्रशिक्षण के दौरान 'केस कार्य' (Case work) भी सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार का कार्य करके प्रशिक्षणार्थी कानून, शान्ति व व्यवस्था विषयक समस्याओं से अच्छी प्रकार परिचित हो सकता है।

(द) विभागीय परीक्षाओ का ढांचा उचित रूप से परिवर्तित करना चाहिए—प्रशासन मे हाल ही मे हुए परिवर्तनो विशेषकर सामुदायिक विकास आन्दोलन के विस्तार के प्रकाश मे।

(ह) सावधानी से चुने हुए जिलाधीशो की देख-रेख मे ही प्रशिक्षणार्थियो को व्यावहारिक प्रशिक्षण देना चाहिए तथा जिलाधीशो को उनके कार्य एव उनकी सामान्य योग्यता के विषय मे समय-समय पर गोपनीय प्रतिवेदन ऊपर भेजने चाहिये।[1]



1 V T Krishnamachari *Report on Indian and State Administration*, Government of India, Planning Commission, New Delhi, August, 1962, pages 17—18 Also refer to Leo M Snowiss 'The Education and Role of the Superior Civil Service in India' The Indian Journal of Public Administration, New Delhi, Jonuary—March, 1961, Vol VII, No 1, pages 6—25, A. J Platt Some Problems of Training in the British Civil Service, I J. P A, New Delhi, April—June, 1959, Vol V, No 2, pages 174—185, I J P A, New Delhi, October—December, 1959, Vol V, No 4, pages 447—48, Gopeshwar Nath, The Secretarial Training School, I J P A, New Delhi, April—June 1961, Vol VII, No 2, pages 170—180, N K Bhojwani, Training of Public Servants in a Developing Economy, I J P A, New Delhi, October—December, 1961, Vol VII No 4, pages 447—473. O G Stahl, *op, cit*, Chapter 14 Staff Development and Training, pages 335—380, Felix A Nigro, *op cit*, Chapters 7, 8, pages 226—293, Peter du Sautoy, *op cit*, Chapter 4, pages 45 54 E N Gladden, *op cit*, Chapter, Fitting the Official to the Job, pages 83—95

२०
पदोन्नति
(Promotion)

कोई भी सरकारी कार्मिक व्यवस्था (Public personnel system) उस समय तक कार्यकुशल नहीं रह सकती जब तक कि वह कर्मचारियों को अधिकाधिक ऊंचा उठने के यथेष्ट अवसर न प्रदान कर। कर्मचारियों को कुशल (Efficient) बनाये रखने के लिए कुछ प्रेरणाओं (Incentives) की आवश्यकता होती है और एक कर्मचारी के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा एक पद से दूसरे उच्च पद पर उसकी पदोन्नति होना है। कर्मचारियों को तथा साथ ही साथ, सम्पूर्ण संगठन को कुशल बनाये रखने के लिये एक सामान्य पदोन्नति नीति का होना आवश्यक है।

पदोन्नति का अर्थ व महत्व
(Meaning and Importance of Promotion) :

यह बात अच्छी प्रकार समझ लेनी चाहिए कि पदोन्नति से तात्पर्य कर्मचारी के वेतन की वार्षिक वृद्धि से नहीं है। प्रत्येक कर्मचारी मूल वेतन (Basic salary) पर नियुक्त किया जाता है, और जब तक कि वह अपने वेतन-क्रम (Pay scale) की सर्वोच्च सीमा पर नहीं पहुंच जाता जब तक उसे वार्षिक वेतनवृद्धि (Annual increment) मिलती रहती है। यह वार्षिक वेतन वृद्धि या तो स्वयं चालित (Automatic) हो सकती है अथवा सप्रतिबन्ध (Conditional), परन्तु किसी भी दशा में इसे पदोन्नति नहीं कहा जा सकता। वास्तविक पदोन्नति से तात्पर्य है, उच्चतर पदक्रम (Higher grade) पर पहुंचना। **'कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों में परिवर्तन होना पदोन्नति प्रक्रिया का एक अनिवार्य लक्षण है।'** पदोन्नति से तात्पर्य है एक निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी के पद पर उन्नति होना और उसके साथ ही साथ कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों में भी परिवर्तन होना। यदि एक प्रवक्ता (Lecturer) को किसी कालिज में विभागाध्यक्ष (Head of the Department) नियुक्त किया जाता है तो इसे पदोन्नति कहा जायगा क्योंकि एक प्रवक्ता उच्चतर श्रेणी के पद पर पहुँच गया और साथ ही साथ, उसके कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों में भी परिवर्तन हो गया। यदि एक विभागाध्यक्ष को कालिज के प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त किया जाय तो इसे पदोन्नति कहा जायगा। जब एक कर्मचारी एक श्रेणी से दूसरी उच्चतर श्रेणी के पद पर पहुचता है और साथ ही साथ उसके कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों में भी परिवर्तन होता है तब इसे पदोन्नति कहा जाता है। जब एक कर्मचारी की

पदोन्नति होती है तो उसके परिणामस्वरूप उसके वेतन मे भी वृद्धि होनी है। परन्तु केवल वेतन मे वृद्धि होना ही पदोन्नति नही है। वेतन मे वृद्धि होना तो पदोन्नति का एक सहायक अग है, पदोन्नति का वास्तविक अथवा मुख्य अग (Real part) है कर्मचारी की पदस्थिति (Class status) जिसके कारण कि उसके कर्त्तव्यो व उत्तरदायित्वो मे परिवर्तन होता है।

कर्मचारियो की कुशलता के लिए एक सुविकसित पदोन्नति नीति का होना अत्यन्त आवश्यक है। पदोन्नति एक ऐसी सतत प्रेरणा है जो कि कर्मचारी को सदा कार्य-कुशल बनाये रखती है। पदोन्नति की आशा व्यक्ति की अपने कार्य मे रुचि बनाये रखने के लिए पर्याप्त है। पदोन्नति नीति के लाभ इस प्रकार हैं —

(१) यह कर्मचारी-वर्ग को कुशल बनाये रखती है।

(२) *यह कुशल सेवा के लिये पुरस्कार की गारन्टी करती है।*

(३) भर्ती के समय योग्य व्यक्ति सेवा की ओर आकर्षित होते हैं क्योकि वे जानते है कि सेवा मे उन्नति करने के अवसर वर्तमान हैं।

(४) नियोक्ता (Employer) के दृष्टिकोण से भी पदोन्नति की नीति अत्यन्त लाभदायक होती है। वह ऊचे तथा उत्तरदायित्व वाले पदो को उन योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो से भर देता है जो कि पहले से ही सेवा मे वर्तमान होते हैं। इस प्रकार नियोक्ता अपने कर्मचारियो के अनुभव का पूरा पूरा लाभ उठाता है।

पदोन्नति के अभाव मे, महत्वकाक्षी, बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति अपने पद पर बने नही रहते। अनेको योग्य व्यक्ति त्याग-पत्र (Resignations) दे देते है जिसके परिणामस्वरूप विभाग (Department) मे अकुशल तथा अनैतिकता उत्पन्न हो जाती है। कर्मचारी असन्तुष्ट रहते हैं जिससे उनके मनोबल (Morale) मे सामान्य कमी हो जाती है। पदोन्नति के अभाव मे महत्वाकाक्षी तथा योग्य व्यक्ति लोक सेवा मे प्रवेश नही करते। एक सुविकसित पदोन्नति योजना के अभाव मे उच्च स्तर की व्यक्तिगत तथा वर्गीय कार्य-कुशलता बनाये रखना बड़ा कठिन है। कर्मचारियो को सन्तुष्ट, अनुशासित (Disciplined) तथा कुशल बनाये रखने के लिए पदोन्नति अत्यन्त आवश्यक है। पदोन्नति एक ऐसी प्रेरणा है जो कि सभी के लिए मूल्यवान है और इसका उपयोग करके असाधारण तथा अद्वितीय शक्तियां जाग्रत की जाती है और उनको सभी कर्मचारियो के लिए लाभदायक बनाया जाता है।[1]

सरकारी कर्मचारियों की कुशलता के लिए पदोन्नति अत्यन्त आवश्यक है परन्तु केवल योग्य तथा उपयुक्त व्यक्तियो की ही पदोन्नति की जानी चाहिए। पदोन्नति की एक गलत पद्धति सम्पूर्ण सगठन को ही आचार-भ्रष्ट कर देती है। समता, न्याय तथा सबके साथ समान व्यवहार किसी पदोन्नति व्यवस्था के सिद्धान्त होने चाहिए। पदोन्नति नीति का मार्ग-दर्शन पृथक्-पृथक् कर्मचारियो के विशिष्ट

1 Also refer to—Promotion Principles and practices, Civil Service Assembly Chicago, P 10 Mr Mayers, *The Federal Service*, P 137, Arthur W Proctor, *Principles of Personnel Administration*, P 175

स्वार्थों की दृष्टि से नहीं किया जाना चाहिए। पदोन्नति की नीति का मार्ग-दर्शन तो सदा ही लोक-सेवाओं के सर्वोच्च हितों को सामने रखकर किया जाना चाहिए।

पदोन्नति के लिए पात्रता का क्षेत्र
(Area of Eligibility for Promotion)

पदोन्नति से सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न इस बात का निर्धारण करता है कि पदोन्नति के लिए कर्मचारी की पात्रता का क्षेत्र क्या हो? पदोन्नति के लिए पात्रता के क्षेत्र का निर्धारण किस प्रकार किया जाए? (१) क्या पदोन्नति केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहनी चाहिए जो कि उस सेवा मे, जिसमे कि भरे जाने वाले उस पद का वर्गीकरण किया गया है, उस पद के नीचे के दूसरे पद-स्थिति (Rank) के पदों पर आसीन हो? (२) क्या पदोन्नति की पात्रता केवल उन कर्मचारियों तक ही सीमित रहनी चाहिए जो कि उस सेवा मे निम्नतर पदों (Lower positions) पर स्थित हों? (३) क्या यह उस सगठनात्मक इकाई (Organisational of unit) के कर्मचारियों तक ही सीमित रहनी चाहिए जिसमे कि वह स्थान रिक्त हुआ हो? (४) क्या इसको उस ब्यूरो (Bureau) के कर्मचारियों तक सीमित रखा जाना चाहिए जिसका कि वह सगठनात्मक इकाई एक अग है? (५) क्या उसको केवल उस विभाग (Department) के कर्मचारियों तक सीमित रखा जाना चाहिए जिसमें कि वह ब्यूरो स्थित है अथवा इसकी पात्रता का विस्तार सम्पूर्ण सरकारी सेवा के कर्मचारियों तक कर दिया जाना चाहिये?

पदोन्नति के पात्रता के क्षेत्र पर एक सगठनात्मक प्रतिबन्ध लगाया जाता है। पदोन्नतियाँ साधारणतया एक ही ब्यूरो अथवा विभाग के अन्तर्गत की जाती हैं। अन्त-विभागीय पदोन्नतियों का समर्थन नहीं किया जाता। पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र को *सकुचित तथा सीमित कर देने का लाभ यह है कि पदोन्नति की रेखायें (Lines)* स्थिर तथा निश्चित हो जाती हैं। परन्तु इससे हानि यह होती है कि प्रतियोगिता की सीमित प्रकृति के कारण योग्य तथा सक्षम व्यक्ति, यह हो सकता है कि सेवा मे न आ पायें। अत पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए। विभागीय प्रतिबन्धों को दूर करके पात्रता के क्षेत्र को विस्तृत बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को यह आज्ञा होनी चाहिए कि वह पदोन्नति वाले पदों के लिए प्रतियोगिता कर सके। इसका परिणाम यह होगा कि सबसे अधिक योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति की ही पदोन्नति होगी।

पदोन्नति की समस्यायें
(Problems of Promotion)

पदोन्नति के प्रश्न के साथ ही कुछ कठिन समस्यायें उत्पन्न हो जाती है जो कि निम्नलिखित हैं

(१) पदोन्नति के सिद्धात अर्थात् ज्येष्ठता बनाम योग्यता।

(२) योग्यता को आँकने की विधियाँ—

(क) पदोन्नति परीक्षा खुली प्रतियोगिता परीक्षा (Open Competitive Examination) सीमित प्रतियोगिता परीक्षा और उत्तीर्णता परीक्षा (Pass exam)

(ख) सेवा अभिलेख (Service records) अथवा कार्य-कुशलता माप (Efficiency ratings),

(ग) विभागीय अध्यक्ष का वैयक्तिक निर्णय (Personal judgment of the Departmental Head)।

पदोन्नति के सिद्धान्त : ज्येष्ठता बनाम योग्यता

(Principles of Promotion Seniority *Versus* Merit)

पदोन्नति के सम्बन्ध मे सबसे पहला प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पदोन्नति की व्यवस्था किन-किन सिद्धातो पर आधारित होनी चाहिए ? पदोन्नति के सिद्धातो को निर्धारण करने की आवश्यकता दो कारणो से होती है। प्रथम तो, चूंकि पदोन्नति के स्थान सीमित होते हैं अत सेवा मे वर्तमान प्रत्येक व्यक्ति की पदोन्नति नही की जा सकती। दूसरे पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर होनी चाहिए। कर्मचारियो की पदोन्नति करने से किसी भी प्रकार का पक्षपात नही होना चाहिए। मनमाने ढग से की जाने वाली पदोन्नतियो मे सगठन के सुगम कार्य सचालन को बडी भारी ठेस पहुँचती है। इससे कर्मचारियो मे ईर्ष्या, मतभेद व विवाद उत्पन्न होते हैं। पदोन्नति का एकमात्र आधार योग्यता ही होनी चाहिए और योग्यता को आँकने के लिए जो परीक्षायें ली जायें वे इतनी व्यक्ति निरपेक्ष (Objective) होनी चाहियें कि जिससे पदोन्नतियाँ करने मे किसी भी प्रकार का पक्षपात न किया जा सके।

ज्येष्ठता का सिद्धान्त

(Principle of seniority)

कर्मचारी पदोन्नति के आधार के रूप मे सदा ज्येष्ठता के सिद्धात का ही समर्थन करते है। किसी विशिष्ट पद-क्रम (Grade) मे, जिसमे से पदोन्नतियाँ की जानी है कर्मचारी की ज्येष्ठता अथवा सेवा की अवधि पदोन्नति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। इस सिद्धात से आशय यह है कि उच्चतर पद-क्रम पर किसी भी कर्मचारी की पदोन्नति इसलिए की जानी चाहिए क्योकि उसकी सेवा की अवधि अन्य कर्मचारियो की अपेक्षा अधिक है। कर्मचारियो ने किसी भी प्रकार के अन्य अथवा पक्षपात के विरुद्ध सुरक्षा के रूप मे सदा ज्येष्ठता के नियम का ही समर्थन किया है। सबसे अधिक ज्येष्ठ कर्मचारी को ही पदोन्नति का लाभ प्राप्त होना चाहिए। ज्येष्ठता के सिद्धात के समर्थन मे जो कारण प्रस्तुत किये जाते हैं वे निम्नलिखित है

(१) यह सिद्धात व्यक्तिनिरपेक्ष है। ज्येष्ठता एक वास्तविकता होती है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

(२) ज्येष्ठ (Senior) व्यक्ति अधिक अनुभवी होता है। अधिक अनुभव ही पदोन्नति के लिए एक बडी योग्यता अथवा अर्हता (Qualification) है।

(३) इस सिद्धात के अनुसार क्रमिक रूप मे प्रत्येक व्यक्ति को पदोन्नति का अवसर प्राप्त होता है। अत यह पदोन्नति का एक उचित एव न्यायपूर्ण आधार है।

(४) यदि ज्येष्ठता ही पदान्नति का सिद्धात है तो कर्मचारियो की पदोन्नति म राजनीतिज्ञो द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नही किया जा सकता।

(५) इस सिद्धात के अनुसार चूंकि पदोन्नतिया एक न्यायोचित सिद्धात के आधार पर की जाती हैं अत कर्मचारियो का मनोबल (Morale) ऊँचा होना है।

(६) ज्यष्ठता का सिद्धात कर्मचारियो को पदोन्नति की निश्चितता प्रदान करता है अत अधिक अच्छे व्यक्ति सरकारी नौकरियो की ओर आकर्षित होते हैं।

(७) ज्येष्ठता का सिद्धान्त स्वय-चालित पदोन्नति का नेतृत्व करता है।

(८) कमचारी इस सिद्धात का समर्थन इसलिए करते हैं क्योकि यह पदोन्नति को स्वय चालित बनाता है और साथ ही, इसमें कम आयु वाले व्यक्तियो को अधिक आयु वाले व्यक्तिया के ऊपर नही रखा जाता।

ज्यष्ठता के सिद्धात का एक बडा लाभ यह है कि यह पदोन्नतियो को किसी भी प्रकार के पक्षपात अथवा राजनैतिक हस्तक्षेप के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है।

ज्येष्ठता के सिद्धान्त के दोष
(Defects of the Principle of seniority)

(१) इस सिद्धात मे इस बात की कोई गारन्टी नही होती कि एक ज्येष्ठ कर्मचारी ही अधिक योग्य अथवा सक्षम होगा। पदोन्नतिया तो केवल योग्यता के आधार पर ही की जानी चाहिए।

(२) केवल ज्येष्ठता को ही पदोन्नति का आधार मानने से कर्मचारियो मे प्रतिस्पर्धा की भावना समाप्त हो जाती है अतः वे कार्य को अधिक उत्साह तथा बुद्धिमत्ता के साथ सम्पन्न नही करते।

(३) यदि पदोन्नति का आधार केवल ज्येष्ठता ही होता है तो कर्मचारी आत्मोन्नति के लिए कोई प्रयत्न नही करते।

(४) ज्येष्ठता के सिद्धात को अपनाने से अनिवार्य रूप से सर्वाधिक योग्य व्यक्तियो का ही चयन हो जाता हो, ऐसी बात नही है।

(५) मध्यम श्रेणी के उदासीन तथा कम बुद्धिमान व्यक्ति ही, जो कि युवा, योग्य तथा बुद्धिमान व्यक्तियो से प्रतियोग्यता नही कर सकते, ज्येष्ठता के सिद्धात के सबसे बडे समर्थक है। पुराने तथा ज्येष्ठ कर्मचारियो के लिए तो यह सिद्धात न्यायपूर्ण तथा अविघ्नकारक है, किन्तु सम्पूर्ण रूप मे सगठन के लिए यह खतरनाक होता है क्योकि यह हो सकता है कि ज्येष्ठ कर्मचारी कुशल तथा बुद्धिमान न हो। यदि कोई व्यक्ति सौभाग्यवश अन्य व्यक्तियो के मुकाबले ससार मे पहले आ गया है। तो इसका अर्थ यह तो नही है कि वह अपने साथ योग्यता तथा बुद्धिमत्ता भी लाया है। केवल ज्येष्ठता ही पदोन्नति का एक खतरनाक सिद्धात है।

फिफनर ने इस सम्बन्ध मे ठीक कहा है कि केवल ज्येष्ठता को ही पदोन्नति का आधार बनाने का परिणाम यह होगा कि उच्च पद अयोग्य तथा असमर्थ व्यक्तियो से भरने लगेंगे। इससे कर्मचारियो की महत्वाकाक्षा नष्ट हो जायेगी और वे प्रेरणा यें समाप्त हो जायेंगी जिनके द्वारा कर्मचारियो मे व्यक्तित्व, साहस, आत्म-निर्भरता तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास होता है। इससे कर्मचारियो मे आत्म-सतुष्टि तथा उदासीनता के साथ कार्य को सम्पन्न करने की भावना उत्पन्न हो जायेगी।

कर्मचारियो का बहुमत, जो कि योग्यतानुसार चयन के लिए कभी भी उत्सुक नही होता, ज्येष्ठता के सिद्धात को अपना उत्साहपूर्ण समर्थन प्रदान करता है क्योकि यह सिद्धात सभी व्यक्तियो के साथ समानता का व्यवहार करता प्रतीत होता है। ई० एन० ग्लेडन का कहना है कि ज्येष्ठता का सिद्धान्त निम्नलिखित गलत मान्यताओ (Assumptions) पर आधारित है —

(१) इसमे यह माना जाता है कि एक पद-क्रम (Grade) के सभी सदस्य पदोन्नति के लिए उपयुक्त होते हैं।

(२) इसमे यह माना जाता है कि ज्येष्ठता सूची न्यूनाधिक रूप मे कर्मचारी-वर्ग की आयु के अनुसार ही इस प्रकार क्रमबद्ध की जाती है जिससे कि क्रमानुसार प्रत्येक व्यक्ति उस उच्च पद पर सेवा करने का अवसर प्राप्त कर सकेगा। (यह माना जाता है कि ज्येष्ठता सूची सभी को अवसर प्रदान करेगी। परन्तु ऐसा होता नही)।

(३) इसमे यह मान लिया जाता है कि निम्न पदो की अपेक्षा उच्च पदो का प्रतिदान ऊचा होता है अत प्रत्येक का सेवा का अवसर प्राप्त होगा।

(४) इसमे यह मान लिया जाता है कि रिक्त स्थान काफी अधिक मात्रा मे उत्पन्न होते है।

"व्यवहार मे ऐसी आदर्श दशाओ का पाया जाना पूर्णतया एक अनहोनी सी बात होती है। एक पदक्रम के सभी व्यक्ति पदोन्नति के लिए उपयुक्त नही होते, पदोन्नतियाँ सामान्यत थोडी होती हैं ।"[1]

इस वाद विवाद के निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि पदोन्नति से तात्पर्य कर्तव्यो एव उत्तरदायित्वो के परिवर्तन से है। पदोन्नति ऐसे अपेक्षाकृत बडे उत्तरदायित्वो से सम्बद्ध होती है जो कि किसी भी व्यक्ति को केवल इस कारण *ही नही सौपे जा सकते क्योकि वह ज्येष्ठ (Senior) है। उच्चतर प्रशासकीय पदो पर* पदोन्नति के लिए एकमात्र ज्येष्ठता के सिद्धात को स्वीकार नही किया जाता। उच्च पदो के लिए योग्यता (Merit) ही एकमात्र विचारणीय विषय होना चाहिए।

निम्न श्रेणियो के कुछ नैत्यक किस्म के पदो के लिए, पदोन्नति के आधार के रूप मे ज्येष्ठता को स्वीकार किया जा सकता है। उच्चतर प्रशासकीय पदो के

1 Dr E N Gladden *The Civil Service, its Problems and Future*, P 88

लिये तो योग्यता व गुणो को ही एकमात्र सिद्धात माना जाना चाहिए। जब ज्येष्ठता को पदोन्नति का एकमात्र आधार बनाया जाता है तो इससे योग्यता व गुणो से युक्त युवा पुरुषो म असन्तोष उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप सगठन को हानि पहुँचती है। परन्तु आयु तथा ज्येष्ठता की परम्परागत मान्यता का अभी भी बराबर सम्मान किया जाता है और व्यवहार म कठिनाई से ही ज्येष्ठता की उपेक्षा की जाती है। इसी कारण टौमलिन आयोग (Tomlin Commission) को यह कहना पडा कि 'सेवा के सम्बन्ध म सामान्यत ज्येष्ठता के तत्व के कम मूल्यावन की सम्भावना नही है ''।'[1]

योग्यता का सिद्धान्त
(Principle of Merit)

पदोन्नति के लिए योग्यता को जाँचने की रीतियाँ
(Methods of testing merit for Promotion)

यदि योग्यता के सिद्धान्त को पदोन्नति का आधार बनाया जाता है तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि योग्यता तथा गुणों की जाँच किस प्रकार की जाये ? योग्यता की जाँच करने के लिए कुछ व्यक्ति-निरपेक्ष अथवा वस्तुनिष्ठ परीक्षाओ (Objective tests) की व्यवस्था होनी चाहिए।

(१) प्रत्याशी (Candidate) की योग्यता की जाँच करने की प्रथम व्यक्ति-निरपेक्ष रीति है पदोन्नति परीक्षायें (Promotional examinations)। पदोन्नति परीक्षा खुली प्रतियोगिता, सीमित प्रतियोगिता अथवा केवल उत्तीर्णता परीक्षा हो सकती है। यह परीक्षा साक्षात्कार अथवा सदर्शन (Interview) से युक्त भी हो सकती है और उससे रहित भी।

(२) योग्यता की जाँच की दूसरी रीति सेवा अभिलेखो (Service records) अथवा कार्य-कुशलता मापो (Efficiency ratings) की है।

(३) पदोन्नति के लिए प्रत्याशी की योग्यता को जाँचने की तीसरी रीति है विभागाध्यक्ष अथवा पदोन्नति मण्डल (Promotion board) का निर्णय।

इस प्रकार, पदोन्नति परीक्षाओ के सम्बन्ध मे भारी विवाद पाया जाता है। प्रश्न यह है कि क्या पदोन्नति का आधार प्रतियोगिता परीक्षाओ को बनाया जाए ? यदि ऐसा है तो इन परीक्षाओ को लेने का कार्य किसे सौंपा जाए ? क्या पदोन्नति के लिए चुनाव करने का कार्य पूर्णतया विभागीय अध्यक्षो (Departmental heads) पर नही छोडा जा सकता ? सेवा अथवा कार्य-कुशलता-मापो के द्वारा ही कर्मचारी की प्रगति का अकन क्या न कर लिया जाए ? अब हम प्रत्याशियो की योग्यता को जाँचने की इन रीतियो पर क्रमश विचार करते है।

(१) पदोन्नति के लिए परीक्षाएं (Examinations for Promotion)

योग्यता को जाँचने की प्रथम व्यक्ति-निरपेक्ष रीति पदोन्नति परीक्षा की है। पदोन्नति परीक्षाए तीन प्रकार की होती है।

(क) खुली प्रतियोगिता परीक्षा (Open Competitive Examination)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, पदोन्नति के रिक्त-स्थान के लिए कोई भी व्यक्ति, चाहे वह सेवा मे है या नही, प्रतियोगिता कर सकता है। इस स्थिति मे सेवा से बाहर के व्यक्ति भी पदोन्नति के रिक्त-स्थानो के लिए प्रतियोगिता कर सकते है। बाहर के व्यक्तियो को रिक्त-पद के लिए प्रतियोगिता करने की खुली छूट देने की पद्धति के प्रति वे व्यक्ति असन्तोष प्रकट करते है जोकि पहले से ही सेवा मे वर्तमान होते हैं। तर्क यह दिया जाता है कि पदोन्नति का रिक्त-स्थान केवल उन्ही के लिए होता है जोकि पहले से ही सेवा मे होते हैं। अत केवल उनको ही उस पद के लिए प्रतियोगिता करने की आज्ञा दी जानी चाहिए।

(ख) सीमित प्रतियोगिता परीक्षा (Limited Competitive Examination)—पदोन्नति परीक्षा की दूसरी किस्म सीमित प्रतियोगिता की है। यह प्रतियोगिता उन व्यक्तियो की होती है जोकि पहले से सेवा मे वर्तमान होते हैं। 'खुली पद्धति' (Open system) के विपरीत, जिसमे कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगिता कर सकता है, इससे *'बन्द अथवा सकुचित पद्धति' (Closed system) कहा जाता है।*

(ग) उत्तीर्णता परीक्षा (Pass Examination)—इस व्यवस्था के अन्तर्गत, *प्रत्याशी को परीक्षा केवल उत्तीर्णमात्र करनी होती है और उसके द्वारा अपनी न्यूनतम* योग्यताओ का प्रमाण देना होता है। भारत सरकार मे, प्रतिवर्ष ऐसी अनेक पदोन्नति परीक्षायें आयोजित की जाती हैं। इनके द्वारा योग्य प्रत्याशियो की एक सूची तैयार कर ली जाती है और फिर स्थान रिक्त होने पर इस सूची के आधार पर उनकी पदोन्नति कर दी जाती है।

परीक्षा पद्धति की आलोचना

(Criticism of Examination Method)

यह समझा जाता है कि परीक्षा पक्षपात (Favouritism) भ्रष्टाचार (Corruption) तथा मनमानी पदोन्नतियो को समाप्त करती है। यह ज्येष्ठता के सिद्धात के भी विरुद्ध पड़ती है। परन्तु लिखित परीक्षा के द्वारा कर्मचारी के व्यक्तित्व (Personality) की जाँच नही की जा सकती। यह हो सकता है कि एक बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ व्यक्ति मे विभाग का प्रबन्ध अथवा पर्यवेक्षण करने की योग्यता न हो। *परीक्षा तो कुछ तथ्यो (Facts) को याद करके तथा रट करके भी पास की जा सकती है* परन्तु उच्च प्रशासकीय पदो के लिए नेतृत्व के अनक ऐसे गुणो की *तथा* पहल-कदमी (Initiative) की आवश्यकता होती है जिनकी जाँच लिखित परीक्षा के द्वारा नही की जा सकती। इस पद्धति के कुछ आलोचकों के अनुसार, लिखित परीक्षा प्रत्याशी के व्यक्तित्व की जाँच नहीं कर सकती। अत इस बात की क्या गारन्टी है कि उपयुक्त तथा योग्यता व गुणो से सम्पन्न व्यक्तियो की ही पदोन्नति की जायेगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ संघीय विभागों (Federal Departments) में पदोन्नति परीक्षाओं की व्यवस्था की जाती है परन्तु योग्यता की जाँच करने की यह रीति संसार के अन्य देशों में प्रचलित नहीं हुई है। इंगलैंड में, (सीमा शुल्क सेवा को छोड़कर) अधिकारीगत इन पदोन्नति परीक्षाओं को कर्मचारी के सामान्य सरकारी कार्य में एक हस्तक्षेप समझा जाता है। फिर, यदि प्रारम्भिक अथवा मौलिक परीक्षा कठिन होती है तो एक अनुपूरक (Supplementary) परीक्षा की आवश्यकता तो एक अनावश्यक भार के ही सदृश होती है। फ्रांस में पदोन्नति के लिए परीक्षाओं की रीति को अनुपयुक्त समझा जाता है क्योंकि विचार यह है कि सरकारी पदाधिकारियों के लिए पहल-कदमी, विवेचन-शक्ति (Judgement) तथा चातुर्य (Tact) की अपेक्षा विस्तृत सैद्धान्तिक ज्ञान की कम आवश्यकता होती है और इसी के आधार पर बड़ी आयु के कर्मचारियों की परीक्षा न लेने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

परीक्षा पद्धति में पाये जाने वाले इन दोषों के कारण ही योग्यता के निर्धारण की वैकल्पिक रीतियों की खोज की गई। अतः सामान्य प्रवृत्ति 'औपचारिक विवरण रखने की पद्धति' को ही अपनाने की ओर है जिसके द्वारा कि प्रत्येक पात्र-अधिकारी (Eligible officer) के गुणों का एक प्रमाणिक आधार पर नियमित मूल्यांकन कर लिया जाता है।

(२) सेवा अभिलेख अथवा कार्य-कुशलता माप

(Service records or Efficiency Ratings) :

इस रीति के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का एक अभिलेख अथवा विवरण रखा जाता है और वरिष्ठ अधिकारियों (Superiors) द्वारा इस सेवा-अभिलेख अथवा सेवा-विवरण के आधार पर कर्मचारी की कार्य सम्पन्न करने की क्षमता का मूल्यांकन कर लिया जाता है। इन सेवा अभिलेखों के आधार पर कर्मचारियों की सापेक्षिक योग्यता (Relative merit) का निर्धारण कर लिया जाता है। ब्रिटेन में, सन् १६२१ से ७०० पौंड वार्षिक से कम वेतन पाने वाले प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का वार्षिक विवरण रखा जाता है। इस विवरण में मानवीय गुणों से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया जाता है : शाखा (Branch) तथा विभाग (Department) का ज्ञान, व्यक्तित्व एवं चरित्रबल (Personality and force of character), विवेचन शक्ति (Judgment), उत्तरदायित्व ग्रहण करने की क्षमता, स्वयं-प्रेरणा अथवा पहल कदमी (Initiative), परिशुद्धता (Accuracy) बातचीत का ढंग तथा व्यवहार कौशल, कर्मचारियों का पर्यवेक्षण (Supervision) करने की क्षमता, उत्साह (Zeal) तथा पदीय आचरण (Official conduct) सम्बद्ध अधिकारी कर्मचारियों के इन गुणों की जाँच करता है और अपने निर्णय को सेवा विवरण में तीन श्रेणियों के अन्तर्गत लिखता है अर्थात् वह कर्मचारी पद-क्रम (Grade) के औसत से ऊपर है, औसत से नीचे है अथवा औसत (Average) पर

है। कर्मचारी के असाधारण सद्गुण अथवा दुर्गुण, सभी उस विवरण में सम्मिलित किये जाते हैं। सन् १९३८ तक, इस सम्बन्ध में निर्णय किया जाता था कि क्या कोई अधिकारी (क) विशिष्ट रूप से शीघ्र पदोन्नति करने के लिए अत्यधिक उपयुक्त है या (ख) पदोन्नति के लिए उपयुक्त है तो परन्तु असाधारण अथवा अद्वितीय रूप में उपयुक्त नहीं है, अथवा (ग) वर्तमान में पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं है। यदि किसी अधिकारी को पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता था तो इसे इस तथ्य की सूचना दे दी जाती थी। सन् १९३८ से, अनेक वर्षों का अनुभव प्राप्त करने के पश्चात्, यह कोटिकरण (Grading) इस प्रकार कर दिया गया असाधारण रूप से सुयोग्य (Exceptionally well qualified), उच्च रूप से योग्य (Highly qualified), योग्य (Qualified), अभी तक योग्य नहीं (Not yet qualified)। कर्मचारियों के विभिन्न गुणों का कोटिकरण—औसत से ऊपर, औसत से नीचे अथवा औसत से बढ़ाकर इस प्रकार कर दिया गया उत्कृष्ट (Outstanding), बहुत श्रेष्ठ (Very good), सन्तोषजनक (Satisfactory), उदासीन (Indifferent), और निकृष्ट (Poor), जो कर्मचारी 'असाधारण रूप से सुयोग्य' अथवा 'अभी तक योग्य नहीं' की कोटियों में आते थे, उन्हें इन कोटियों में रखे जाने के कारण बतलाये जाते थे क्योंकि उनको औसत कोटि से बहुत ऊपर का अथवा नीचे का समझा जाता था।

अमरीकियों ने कार्य-कुशलता माप को एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र का कार्य बना दिया है। उन्होंने कर्मचारी की कार्य-कुशलता का निर्धारण करने के लिए इसको गणनीय, स्वयचालित, विशुद्ध तथा अत्यन्त वस्तुनिष्ठ मार्ग-दर्शक (Guide) बनाने का प्रयत्न किया है। कार्य-कुशलता मापों के प्रमुख भेद इस प्रकार हैं (१) उत्पादन अभिलेख (Production records), (२) बिन्दु रेखीय दर मापमान (The graphic rating scale) तथा (३) व्यक्तिगत तालिका (Personality Inventory)।

(१) उत्पादन अभिलेख (Production records)—उत्पादन अभिलेख अथवा उत्पादन विवरण के आधार पर कर्मचारी की कार्य क्षमता का निर्धारण किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग केवल उन्हीं कर्मचारियों के कार्य के लिए किया जाता है जिनके कार्य के परिणाम को उत्पादन के आधार पर तुलना की जा सकती हो। मुद्रलेखक (Typist) आशुलिपिक (Stenographer), फाइल क्लर्क अथवा एक यन्त्रचालक (Machine operator) के कार्य के सम्बन्ध में उत्पादन अभिलेख रखा जा सकता है। इन कर्मचारियों का काम पुनरावृत्ति प्रकृति का होता है और उनके किये हुए कार्य अथवा उत्पादन को मापा जा सकता है। उत्पादन अभिलेख को कर्मचारियों के अन्य अनेक गुणों के साथ संयुक्त किया जा सकता है जैसे कि समयनिष्ठता (Punctuality), परिश्रमशीलता तथा उपस्थिति। इन अभिलेखों की सहायता से कर्मचारी की क्षमता के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि इस पद्धति का प्रयोग उन

पदाधिकारियो पर नही रखा जा सकता जोकि प्रशासकीय (Administrative) अथवा पर्यवेक्षणिक (Supervision) कार्य सम्पन्न करते हैं।

(२) बिन्दुरेखीय दर मापमान पद्धति (The Graphic Rating Scale System)—इस पद्धति मे एक प्रपत्र (Form) का प्रयोग होता है जिसमे कुछ सेवा सम्बन्धी तत्वो का उल्लेख किया रहता है। मापक अधिकारी उन तत्वों पर निशान लगाता है जोकि उसकी सम्मत्ति में कर्मचारी मे पाये जाते हैं और फिर उनके आधार पर कर्मचारी मे पाये जाने वाले गुणो का अकन किया जाता है। बिन्दुरेखीय दर मापमान के प्रपत्र पर निम्नलिखित सेवा सम्बन्धी तत्व होते हैं: (क) परिशुद्धता; (ख) पराश्रयता (Dependability), (ग) कार्य की स्वच्छता तथा क्रमबद्धता; (घ) कार्य सम्पादन की गति, (ङ) परिश्रमशीलता, शक्ति सम्पन्नता तथा कर्तव्य-निष्ठता, (च) कार्य का ज्ञान, (छ) विवेकशक्ति, सामान्य ज्ञान तथा अनुभव से लाभ उठाने की इच्छा, (ज) व्यक्तित्व द्वारा विश्वास तथा सम्मान प्राप्त करने में सफलता, विनयशीलता, व्यवहार-कुशलता, आवेगो अथवा भावनाओं का नियन्त्रण तथा सतुलन, (झ) नये विचारो तथा नई रीतियो का परीक्षण करने के लिए प्रस्तुत रहना तथा उसके लिए सहयोग प्राप्त करना, प्रबन्धको की आज्ञाकारिता, (ञ) पहल-कदमी (Initiative), साधनपूर्णता (Resourcefulness), कल्पनाशक्ति (inventiveness), (ट) कार्य का निष्पादन, (ठ) सगठन करने की योग्यता, सत्ता का हस्तान्तरण करने की योग्यता तथा कार्य की योजनाए बनाने की योग्यता; (ड) नेतृत्व करने की क्षमता, अधीनस्थ कर्मचारियो का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता निर्णय करने की क्षमता, आत्मा, नियन्त्रण, व्यवहार-कुशलता, साहस, दूसरो के साथ व्यवहार मे निष्पक्षता (ढ) कर्मचारियो को सूचनाए देकर उनका सुधार तथा विकास करने, मे उनम गुणो की वृद्धि करने मे तथा उनमे महत्वाकाक्षा जाग्रत करने मे सफलता, (ण) कार्य की कोटि (Quality) (इसका प्रयोग केवल तभी किया जाता है जबकि ठीक-ठीक तथा पर्याप्त उत्पादन अभिलेख रखे जाते है)। इस प्रकार इन तत्वो पर दिय जाने वाले अको के आधार पर कर्मचारी के गुणो का मूल्याकन किया जाता है। यदि निर्णय उसके पक्ष मे होता है तो उनकी पदोन्नति कर दी जाती है।

(३) व्यक्तित्व तालिका पद्धति (Personality Inventory system)—कार्य कुशलता को मापने के लिए एक तीसरी पद्धति भी काम मे लाई जाती है जिसे व्यक्तित्व तालिका का नाम दिया गया है। इसका स्पष्टीकरण सेंट पाल सिविल सेवा ब्यूरो के भूतपूर्व मुख्य परीक्षक Mr J B Probst द्वारा आविष्कृत तथा विकसित Probst Rating scale के द्वारा किया जाता है। इस पद्धति के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं

(क) इस पद्धति मे सेवा से सम्बन्धित मानवीय स्वभाव के तत्वो की एक व्यापक सूची बनाई जाती है। (ख) मापक अधिकारी (Rating officer) इस सूची म स दस स पच्चीस तक ऐसे तत्वो को छाँट लेता है जिनसे किसी कर्मचारी का

Graphic Rating Scale

REPORT OF EFFICIENCY RATING

As of BASED ON PERFORMANCE

during period from to,

(name of employee) (title of position service grade)

organisation

On lines below mark employee √ if adequate − if weak + if outstanding	1 Underline the elements which are important in the position 2 Rate only on elements pertinent to the position (a) For administrative supervisory and planning positions rate on elements given in italics (b) For other positions rate on element not given in italics

1 Maintenance of equipment tools and instruments
2 Mechanical skill
3 Skill in the application of techniques and procedures
4 Presentability of work
5 Attention to broad phases of assignments
6 Accuracy of operation results and judgments
7 Effectiveness in presenting ideas
8 Industry
9 Amount of work produced
10 Ability to organise work
11 Effectiveness in meeting and dealing with others
12 Co operativeness
13 Initiative
14 Dependability
15 Physical fitness

1 *Effectiveness in planning broad programme*
2 *Effectiveness in adapting the work programme to broader and related programmes*
3 *Effectiveness in devising procedures*
4 *Effectiveness in laying out work and establishing standards*
5 *Effectiveness in directing reviewing and checking the work of subordinates*
6 *Effectiveness in instructing training developing subordinates*
7 *Effectiveness in promoting high working moral*
8 *Effectiveness in determining space personnel and equipments needs*
9 *Effectiveness in setting and obtaining adherence to time limits and deadliness*
10 *Effectiveness in delegating clearly defined authority to act*

State any other element considered

(a)
(b)
(c)

Standard	Adjective Rating	*Adjective Rating*
1 Plus marks on all elements considered	Excellent	Rating officer
2 Plus marks on at least half the elements but no minus	very good	Revising officer
3 Check marks on a majority of elements any minus marks over compensated by plus marks	Good	
4 Check marks on a majority and minus marks not compensated	Fair	
5 Minus marks on at least half the elements	Unsatisfactory	Signature

स्वभाव अच्छी प्रकार से व्यक्त हो जाये। (ग) यद्यपि सूची अत्यन्त व्यापक तथा विवरणात्मक (Descriptive) होती है किन्तु फिर भी विभिन्न प्रकार के कर्मचारियों के लिए विशेष प्रपत्र (Special forms) रखने की रीति अपनाई जाती है।

J B Probst ने अपने Rating Scale में कर्मचारी के अनेक गुणों तथा अवगुणों का उल्लेख किया है जो कि निम्न प्रकार है —

(१) आलसी, (२) धीरे कार्य करने वाला, (३) तेज तथा सक्रिय, (४) कार्य के लिए अधिक आयु वाला, (५) छोटे-मोटे शारीरिक दोष वाला, (६) गम्भीर शारीरिक दोष वाला, (७) उदासीन, रुचि न लेने वाला, (८) अत्यधिक बात करने वाला (९) अधिक स्पष्टवादी, (१०) स्वयं को ही अधिक महत्त्व देने वाला, (११) वर्ग के रूप में अच्छा कार्य करने वाला, (१२) वर्ग के रूप में अच्छा कार्य न करने वाला (१३) आलोचनाओं अथवा सुझावों से क्रोधित होने वाला, (१४) अन्य लोगों से व्यवहार करते समय विरोध करने वाला, (१५) प्राय अधिक विचारशील रहने वाला (१६) सामान्यत प्रसन्न रहने वाला, (१७) असामान्य रूप से विनयशील, (१८) क्रुद्ध स्वभाव वाला, (१९) प्राय असन्तुष्ट रहने वाला, (२०) प्राय शिकायत करने वाला, (२१) गलत निर्णय करने वाला, (२२) अच्छे निर्णय करने वाला आदि आदि। इन गुणों व अवगुणों के आधार पर कर्मचारी के कार्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिये और कार्य-कुशलता दर-माप का निर्माण करना चाहिए।

पदोन्नति के आधार के रूप में कार्य-क्षमता मापों की पद्धति की विवेचना करने के पश्चात् प्रश्न यह होता है कि उनकी उपयोगिता क्या है? यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक कार्य-कुशलता माप, चाहे वह कितना ही विस्तृत क्यों न हो, व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होता है। एक कर्मचारी को किन-किन गुणों की आवश्यकता होती है, इस बारे में भी मत विभिन्नता पाई जाती है। इस विषय पर लोगों में काफी मतभेद है कि एक कर्मचारी को किन-किन गुणों से युक्त होना चाहिये। सेवा अभिलेखों (Service records) पर उच्च अधिकारियों की व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं का प्रभाव पड़ता है।[1]

कार्य-कुशलता मापों की पद्धति को उपयोगी बनाने के लिए मापक अधिकारियों का प्रशिक्षण तथा पर्यवेक्षण नितान्त आवश्यक है। मापक अधिकारियों को कर्मचारियों के गुणों का मूल्यांकन करने की कला में पूर्णरूप से प्रशिक्षित (Trained) किया जाना चाहिए। यदि कर्मचारी यह अनुभव करें कि कार्य-कुशलता मापों द्वारा उनके गुणों का मूल्यांकन ठीक नहीं हुआ है तो उन्हें सिविल सेवा आयोग के सम्मुख अपील करने का अधिकार भी दिया जाना चाहिये। सेवा-माप को पदोन्नति के लिए

1 "But a judgement ratings are subjective and not cured of the inevitable variability of human opinion by being spread out on a graphic rating scale or in an slaborate personality inventory"

अथवा किसी भी प्रकार के दण्ड के लिए एक स्वयचालित मार्ग-दर्शक (Automatic guide) नही बना लेना चाहिये। इसका प्रयोग पदोन्नति के लिए एक यान्त्रिक निर्धारक (Mechanical determinant) के सदृश नही किया जाना चाहिये। यदि कार्य-कुशलता अभिलेख को पूर्णत कर्मचारी का भाग्य-निर्णायक बना दिया गया तो लोक-सेवा के लिए उसका परिणाम बडा हानिकारक होगा। कार्य कुशलता अभिलेखो के आधार पर, कर्मचारियो का ध्यान उनकी कमजोरियो की ओर तो आकर्षित किया जाना चाहिय, परन्तु इन अभिलेखो को पदोन्नति करने अथवा दण्ड (Punishment) देने का स्वयचालित आधार नही बनाना चाहिये।

(३) विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय

(The Personal Judgment of the Head of the Department) :

पदोन्नति के सम्बन्ध मे सबसे महत्वपूर्ण तत्व सम्बद्ध विभाग के उच्च पदाधिकारियो का व्यक्तिगत मत तथा निर्णय होता है और होना भी चाहिए। एक अधिकारी उस कर्मचारी के गुणो के बारे मे अच्छी प्रकार जानकारी प्राप्त कर सकता है जिसने कि उसके साथ अनेक वर्षों तक काम किया है। व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित निर्णय कर्मचारी के गुणो का अकन करने वाली अन्य किसी भी पद्धति से अधिक मूल्यवान होता है। परन्तु विभागाध्यक्ष के वैयक्तिक निर्णय की महत्ता तथा उपयोगिता तीन तत्वो पर निर्भर होगी—अर्थात् श्रेष्ठ निर्णय करने की क्षमता, विभाग मे उसको कार्य करने के लिए मिलने वाली स्वतन्त्रता, और उसकी श्रेष्ठ भावना। उच्च अधिकारी की श्रेष्ठ भावना वैयक्तिक, राजनैतिक तथा विरोधी विचारो से प्रभावित हो जाती है। कर्मचारी पदोन्नति की इस प्रणाली (अर्थात् विभागाध्यक्ष के वैक्तिक निर्णय पर आधारित पदोन्नति की प्रणाली) का इसलिये विरोध करते हैं क्योकि उन्हे पदोन्नतियो मे अन्याय तथा भ्रष्टाचार का भय रहता है। उनका विचार है कि इस पद्धति मे पदोन्नतियो पक्षपात पर आधारित होती हैं। इसमे चापलूस, खुशामदी तथा हाँ मे हाँ मिलाने वाले व्यक्ति तो लाभ म रहते हैं। और स्वतन्त्र विचार वाले गुणवान व्यक्तियो को हानि उठानी पडती है।

विभागीय पदोन्नति मण्डलो (Departmental Promotion Boards) की स्थापना करके ऊपर बताए गये दोषो को दूर किया जा सकता है। य मण्डल विभाग के प्रमुख कर्मचारियो व अधिकारियो को मिलाकर बनाए जाने चाहियें और ज्येष्ठता तथा सेवा अभिलेखो आदि के आधार पर इन्हे पदोन्नतियो की सिफारिशे करनी चाहिए। यदि कोई कर्मचारी यह समझता है कि पदोन्नति के सम्बन्ध मे कोई बात गलत हुई है तो वह कर्मचारियो के सगठन के द्वारा विभागाध्यक्ष अथवा पदोन्नति मण्डल से उसकी अपील कर सकता है। सगठन की सामान्य कार्य-कुशलता को देखकर ही पदोन्नति मण्डलो की समर्थता एव योग्यता का पता चलेगा। सन् १९२२ के आस्ट्रेलियन लाक-सेवा अधिनियम (Australian Public Service Act) म यह

व्यवस्था की गई थी कि सभी पदोन्नतियों को अस्थायी रूप से ही राजपत्रित (Gazetted) किया जाना चाहिये और उन पदोन्नतियों का स्थिरीकरण (Confirmation) करने से पूर्व अधिकारियों को उनके विरुद्ध अपील करने की छूट होनी चाहिये। इन अपीलों पर लोक-सेवा मण्डल (Public Service Board) द्वारा विचार किया जाता है जोकि सूक्ष्म जाँच पड़ताल करने के पश्चात् ही अपना निर्णय देता है।

इन सभी परीक्षाओं एवं जाचों की व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे कि पदोन्नति की एक सुदृढ़ एवं ठोस नीति का निर्माण किया जा सके। पदोन्नति नीति की सफलता की कसौटी है—कर्मचारियों में पाया जाने वाला सामान्य संतोष, उच्च मनोबल (High morale) तथा सहयोग, सेवा तथा कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना।

संयुक्त राज्य अमेरिका में पदोन्नतियां
(Promotions in the United States of America)

संयुक्त राज्य अमेरिका में, उच्च प्रशासकीय अधिकारी तथा विभागीय अध्यक्ष ज्येष्ठता (Seniority), परीक्षाओं तथा कार्यकुशलता अभिलेखों (Efficiency records) के आधार पर पदोन्नतियां करते हैं। यह देखा जाता है कि अमरीकियों ने कार्य-कुशलता मापों का विस्तृत उपयोग किया है। परन्तु वे 'कार्य-कुशलता माप की पद्धति' से सन्तुष्ट नहीं हैं। हूवर आयोग (Hoover Commission) का विचार था कि कार्य-कुशलता माप की पद्धति अत्यधिक उलझनपूर्ण व जटिल है। आयोग ने कर्मचारियों को पुरस्कृत करने तथा दण्ड देने—इन दोनों के ही आधार के रूप में इसका उपयोग किये जाने की आलोचना की। आयोग ने कार्य-कुशलता माप (Efficiency rating) के स्थान पर 'योग्यता तथा सेवा अभिलेख माप' (Ability and service record ratings) का प्रस्ताव किया जो कि कार्य कुशलता माप का ही सुधरा रूप है। अमेरिका में सन् १६३८ के कार्यपालिका आदेश (Executive order) के अन्तर्गत, सिविल सेवा आयोग द्वारा एक पदोन्नति योजना का निर्माण किया गया। इस योजना के अन्तर्गत, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, पदोन्नति की प्रतियोगिता परीक्षाओं व उनकी कार्यविधियों (Procedures) के विकास तथा प्रबंध का उत्तरदायित्व विभागों को ही सौंप दिया गया है –

(१) प्रतियोगिता की घोषणा, विस्तार तथा विज्ञप्ति (Notice), (२) परीक्षाओं की प्रकृति, और (३) बिना प्रतियोगिता वाली पदोन्नति की शर्तें। आयोग केवल सामान्य स्तरों का निर्धारण करता है और निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत उनकी बारीकियों (Details) से निबटने की समस्या विभागों पर ही छोड़ देता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की डाक सेवा (Postal service) की पदोन्नति पद्धति निःसंदेह स्पर्धा करने योग्य है। वाशिंगटन में डाक विभाग के प्रमुख अधिकारियों तथा प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी के पोस्टमास्टरों को छोड़ कर सम्पूर्ण ५०,००० डाक कर्मचारियों ने लिपिकों (Clerks) अथवा डाक से जाने वाले हलकारों (Carriers) के रूप में सेवा में प्रवेश किया था। आवश्यक योग्यताओं वाले एक लिपिक अथवा

हलकारे को क्रमिक अवस्थाओं (Stages) द्वारा उस समय तक पदोन्नत किया जा सकता है जब तक कि वह किसी बड़े नगर का पोस्ट या रेलवे मेल का प्रादेशिक अधीक्षक (Divisional superintendent) न हो जाए अथवा अन्य कोई उत्तरदायित्व का पद न प्राप्त कर ले। सन् १९४७ में एक व्यक्ति (Jesse M Donaldson) को पोस्ट मास्टर जनरल नियुक्त किया गया था, उसने सेवा की सबसे नीचे की सीढ़ी से अपना कार्य करना प्रारम्भ किया था।

इंगलैंड में पदोन्नति की प्रणाली
(The System of Promotion in England)

इंगलैंड में पर्यवेक्षक अधिकारियों द्वारा रखे जाने वाले वार्षिक विवरणों के आधार पर पदोन्नतियाँ की जाती हैं। प्रत्येक विभाग में पदोन्नति मण्डल बने होते हैं। इन मण्डलों में विभाग (Department) के प्रमुख अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं। पदोन्नति मण्डल वार्षिक विवरणों एवं अन्य उपलब्ध सूचनाओं पर सावधानी के साथ विचार करता है और उसके आधार पर यह पात्र अधिकारियों (Eligible officers) के गुणों का मूल्यांकन करता है। मण्डल पदोन्नति के लिए प्रस्तावित प्रत्याशियों का सदर्शन अथवा साक्षात्कार (Interview) भी कर सकता है। सेवा विवरणों (Service reports) के आधार पर यह विभागाध्यक्ष के सम्मुख प्रत्याशियों के नामों की सिफारिश करता है और फिर विभागाध्यक्ष अन्तिम आदेश जारी करता है। केवल ज्येष्ठता में ही पदोन्नतियों का निर्धारण नहीं किया जाता। किसी भी असन्तुष्ट अथवा पीड़ित कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह पदोन्नति मण्डल (Promotion Board) के निर्णय के विरुद्ध अपील कर सके। इस प्रकार इंगलैंड में पदोन्नति किसी एक व्यक्ति की इच्छा अथवा उसके निर्णय पर नहीं होती, अपितु एक मण्डल पर निर्भर होती है और यहाँ तक कि मण्डल के निर्णय की भी अपील की जा सकती है।

सन् १९२१ की पदोन्नति समिति (Committee on promotions) के प्रतिवेदन में विभागीय पदोन्नतियों (Departmental promotions) की जिन रीतियों की सिफारिश की गई थी वे ज्यों की त्यों नीचे दी जाती हैं।

"(१) यदि किसी विभाग का स्टाफ इतना बड़ा हो कि उसका अध्यक्ष विभाग के प्रत्येक सदस्य के गुणों से परिचित नहीं हो सकता, तो इस स्थिति में हमारे विचार से सामान्यतः आवश्यकता इस बात की होगी कि विभागाध्यक्ष द्वारा सिफारिश करने वाले एक निकाय (Body) अथवा निकायों के रूप में एक पदोन्नति मण्डल (Promotion Board) अथवा मण्डलों की स्थापना की जाय। और ऐसी किसी भी स्थिति में, जबकि विभागाध्यक्ष द्वारा ऐसे पदोन्नति मण्डल (अथवा मण्डलों) की स्थापना करना उस विभाग की परिस्थितियों की दृष्टि से अनुपयुक्त समझा जाय तो उपयुक्त ह्विटले निकाय (Whiteley Body) को उस मामले पर पूर्ण वाद-विवाद करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। ६०० पौंड वार्षिक से अधिक वेतन

वाले स्थानों की पदोन्नतियाँ उस निकाय के कार्यक्षेत्र की परिधि से बाहर समझी जानी चाहिए जिसकी हमने सिफारिश की है।

(२) एक विभागीय पदोन्नति मण्डल में साधारणतया मुख्य स्थापना अधिकारी (Principal Establishment Officer) अथवा उसका सहायक, उस उप-विभाग का आधार प्रमुख जिसमें कि स्थान रिक्त हुआ है, तथा विभागाध्यक्ष द्वारा अनुभव व सेवा पर मनोनीत किये गये एक अथवा एक से अधिक विभागीय अधिकारी होने चाहिए।

(३) मण्डल ऐसी किसी भी जानकारी व गवाही की माँग कर सकेगा जिससे कि उसे अपने कार्य में सहायता मिले।

(४) किसी भी ऐसी सूचना पर, जोकि स्टाफ के अधिकार में हो, अथवा ऐसे किसी भी आवेदन या प्रतिनिधित्व पर, जिसे कि स्टाफ प्रस्तुत करना चाहे, उचित ध्यान देने की दृष्टि से पदोन्नति मण्डल को एक, अथवा विशेष मामलों में एक से अधिक ऐसे प्रतिनिधि की गवाही लेनी चाहिये जिसका नाम निर्देशन (Nomination) इसी कार्य के लिए विभागीय ह्विटले परिषद् के स्टाफ पक्ष की ओर से अथवा जिला या कार्यालय समिति के स्टाफ पक्ष की ओर से, किसी विशिष्ट मामले में जो भी उपयुक्त रहे किया गया हो। पदोन्नति मण्डल का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि स्टाफ के ऐसे प्रतिनिधि अथवा प्रतिनिधियों को इस बात का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाए कि वह ऐसी कोई भी सूचना दे सके जोकि स्टाफ के अधिकार में हो अथवा पदोन्नति मण्डल के सम्मुख उस मामले से सम्बन्धित किसी भी प्रकार का आवेदन या प्रतिनिधित्व कर सकें, और पदोन्नति मण्डल द्वारा ऐसी किसी भी सूचना अथवा प्रतिनिधित्व पर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए। यह आशा की जाती है कि पदोन्नति मण्डल स्टाफ पक्ष के प्रतिनिधि को फिर से भी बुला सकेगा, यदि मण्डल यह समझता है कि अपने निर्णय पर पहुँचने से पूर्व उस उस पक्ष की ओर गवाही सुनने की आवश्यकता है।

(५) पदोन्नति मण्डल की सिफारिशें लिखित रूप में ही होनी चाहियें।

(६) भिन्न भिन्न विभागों की परिस्थितियों के अनुसार पदोन्नति करने की कौन सी पद्धति को अपनाया जाए—यह एक ऐसा मामला है जिसे निपटाने का कार्य विभागों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिये, परन्तु विभाग जिस पद्धति को भी अपनाये उसको विभाग में सेवा करने वाले सभी व्यक्तियों की जानकारी के लिए स्पष्ट रूप से लिखित सरकारी कागजात के रूप में रखा जाना चाहिये।

(७) जिस विभाग में पदोन्नति मण्डल की स्थापना न की जाये उसमें स्टाफ का प्रतिनिधित्व (Representation) करने अथवा वह सूचना प्रदान करने के, जोकि उसके अधिकार में हो, समान अवसर दिये जाने चाहियें।

(८) हम यह स्वीकार करते हैं कि कुछ अपवादभूत मामलों (*Exceptional* cases) में, जिनमें कि लोक-हित की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक हो, विभागाध्यक्ष

को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह सामान्य कार्यविधि का पालन किये बिना ही कोई पदोन्नति कर सके।

(९) विभागीय ह्निटले परिषदों (Department Whiteley Councils) के आदर्श सविधान (Constitution) में व्यवस्था दी गई है कि "यह बात परिषद् की सामर्थ्य के अन्तर्गत होगी कि वह ऐसी किसी भी पदोन्नति के सम्बन्ध में विचार कर सके जिसके बारे में कि स्टाफ पक्ष की ओर से यह आवेदन किया गया हो कि इसमें राष्ट्रीय परिषद् (National Council) द्वारा स्वीकृत अथवा अनुमोदित पदोन्नति के सिद्धान्तों का उल्लघन किया गया है।" इसके साथ ही साथ हम यह सिफारिश करते है कि किसी भी अधिकार अथवा अधिकारियों को यह छूट होनी चाहिये कि वे ऐसी किसी भी पदोन्नति के सम्बन्ध में विभागाध्यक्ष के सम्मुख आवेदन कर सकें जिसका कि उन पर प्रभाव पड़ता हो। ऐसे आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व (Representation) पदोन्नति की घोषणा होने के पश्चात् एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत किये जाने चाहियें। ऐसी अवधि का निर्धारण विभागीय आधार पर किया जाना चाहिये। इस प्रकार के आवेदनों अथवा प्रतिनिधित्वों पर विभागाध्यक्ष द्वारा विचार किया जाना चाहिये जो मामले को (क) असेसरों (Assessors) की सहायता से अथवा उनके बिना स्वयं ही निपटायेगा, (ख) फिर से सुनवाई के लिये मामले को पदोन्नति मण्डल को सौंप देगा, अथवा (ग) विचार के लिये अन्य किसी परामर्शदात्री निकाय (Advisory Body) के पास भेज देगा।

जहाँ ऐसे आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व नये प्रमाण (New evidence) प्रस्तुत करने पर आधारित हो वहाँ सामान्य कार्यविधि यह होगी कि मामला पदोन्नति मण्डल को सौंप दिया जायेगा। भिन्न-भिन्न मामलों में परिस्थितियों के अनुसार इनमें से एक विकल्प (Alternative) अन्य विकल्पों से अधिक उपयुक्त हो सकता है।

(१०) पदोन्नति मण्डल को ऐसे आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व पर विचार करने वाले निकाय (Body) के प्रतिवेदन (Report) पर उस समय विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये जबकि वह उस जैसे ही किसी अन्य रिक्त-स्थान (Vacancy) पर पदोन्नति की सिफारिश करे। उन स्थितियों में जब कि पदोन्नतियां समूहों (Batches) में की जाए, कुछ रिक्त स्थानों को उस समय तक नहीं भरा जाना चाहिये जब तक कि आवेदन अथवा प्रतिनिधित्व करने की अवधि वर्तमान रहे।

(११) ऐसे आवेदन करने वाले अधिकारी को इस बात की आज्ञा मिलनी चाहिये कि वह उपयुक्त ह्निटले निकाय का स्टाफ पक्ष (Staff side) के एक प्रतिनिधि को अथवा स्टाफ के अन्य किसी सदस्य को अपने साथ ले सके। उसकी अपनी ही प्रार्थना पर प्रतिनिधित्व करने के लिये उपस्थित होने की स्थिति में उसे अपने पास से ही व्यय करना चाहिये।

(१२) जो भी नियुक्तियां की जाए उन सभी के सम्बन्ध में सम्बन्धित कर्मचारी-वर्ग को शीघ्र सूचना दी जानी चाहिये ।"[1]

भारत में पदोन्नति की प्रणाली
(The system of *Promotion in* India)

(१) भारत में पदोन्नति के अवसर
(Promotion Opportunities in India) :

भारत मे, कुछ अपवादों (Exceptions) को छोड़कर, विभिन्न सेवाओं मे रिक्त होने वाले स्थानों की एक निश्चित संख्या उन व्यक्तियों की पदोन्नति द्वारा भरी जाती है जोकि निम्न पदक्रम (Grade) अथवा निम्न सेवा मे पहले से ही काम कर रहे होते हैं । इस संख्या का अनुपात सेवाओं की विभिन्न श्रेणियों से भिन्न-भिन्न होता है । नीचे हम सिविल-सेवा की विभिन्न श्रेणियों से भरे जाने वाले पदों के अनुपात की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते है ।

प्रथम श्रेणी (Class I) म लगभग ५५ प्रतिशत पद उन व्यक्तियों द्वारा भरे जाते हैं जिनकी इस श्रेणी मे सीधी भर्ती की जाती है और शेष स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं । पदोन्नति स भरे जाने वाल पदों का ठीक-ठीक अनुपात सेवा म भिन्न-भिन्न होता है । भारतीय विदेश सेवा (*Indian Foreign Service*) की 'ए' शाखा मे यह अनुपात निम्नतम है जहाँ कि उच्च कर्तव्यों वाले पदों के केवल १० प्रतिशत स्थान 'बी' शाखा वाले अधिकारियों के लिये खुले हैं , केन्द्रीय सचिवालय (Central secretariat) तथा अन्य एक दो सेवाओं मे यह अनुपात उच्चतम है जहाँ कि प्रथम श्रेणी के स्तर पर सीधी भर्ती (Direct recruitment) होती ही नही । ७५ प्रतिशत स लेकर ३३⅓ प्रतिशत तक पदों की अथवा एक वर्ष मे उत्पन्न होने वाले रिक्त स्थानों की पूर्ति पदोन्नति द्वारा होना एक सामान्य बात है ।

द्वितीय श्रेणी की (राजपत्रित) सेवाओं एवं पदों मे सीधी भर्ती अपेक्षाकृत कम ही होती है , इस श्रेणी के लगभग ६५ प्रतिशत पदों की भर्ती तृतीय श्रेणी के स्टाफ के लिये सुरक्षित रहती है । इस श्रेणी मे सीधी भर्ती तो साधारणतया वैज्ञानिक (Scientific), चिकित्सा (Medical) तथा कुछ कम मात्रा मे, इंजीनियरिंग सेवाओं तक ही सीमित रहती है , द्वितीय श्रेणी की विभिन्न राजपत्रित सचिवालय सेवाओं (Gazetted Secretariat Services) म ५० प्रतिशत रिक्त स्थानों की पूर्ति भी सीधी भर्ती द्वारा ही की जाती है । अन्य सेवाओं म अधिकतर भर्ती पदोन्नति द्वारा ही की जाती है ।

तथापि, द्वितीय श्रेणी के ७८ प्रतिशत अराजपत्रित (Non-gazetted) पदों के लिये सीधी भर्ती की जाती है । ऐसे पद अधिकांशतः केन्द्रीय सचिवालय (Central Secretariat) म (सहायक तथा आशुलिपिक) और वैज्ञानिक संस्थानों (*Scientific establishments*) म हैं ।

1 पदोन्नति समिति का प्रतिवेदन, १९२१

द्वितीय श्रेणी की अपेक्षा तृतीय श्रेणी (Class III) के स्टाफ की भर्ती मे *श्रेणी के अन्तर्गत ही पदोन्नतियो का सामान्यत अधिक महत्व है।* द्वितीय श्रेणी मे केवल जहाँ कुल लगभग २०,००० पद है, तृतीय श्रेणी से लगभग ५·५३ लाख कर्मचारी हैं जोकि अधिकाश सेवाग्रो मे दो अथवा दो से अधिक पद-क्रमो (Grades) मे विभाजित हैं, इनमे उच्चतर पद क्रमो के स्थान अधिकाशत पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। तृतीय श्रेणी मे लगभग ४७,००० पदो (अधिकतर पोस्टमैन तथा लाइनमैन) को छोडकर, जोकि चतुर्थ श्रेणी के आदर्श वेतन-क्रमो (Typical class IV scales) मे हैं, तृतीय श्रेणी की अधिकाश सीधी भर्ती रु० ६०–१३०, रु० ६०–१५०, और रु० ६०–१७० के वेतन-क्रमो मे होती है। इन तीनो वेतनक्रमो मे पदो की कुल सख्या लगभग २ ३७ लाख है। इस स्तर से ऊपर कुल सीधी भर्ती लगभग ७०,००० पदो के लिये की जाती है। इनमे से लगभग २६,००० पद उच्च सभाग लिपिको (Upper Division Clerks) के हैं जिनमे कि सीधी भर्ती नही होती। लगभग १०,००० पद वैज्ञानिक तथा इजीनियरिंग सेवाग्रो मे हैं। तृतीय श्रेणी मे उच्च वेतनक्रम के अन्य सभी स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।

रेलवे मे *तृतीय श्रेणी स्टाफ के पद-क्रम की अपनी एक पृथक् विशेषता है।* रेलवे की तृतीय श्रेणी की अधिकाश सेवाग्रो म ५ से लेकर ७ तक पद-क्रम (Grades) हैं और प्रत्येक पद-क्रम मे पदो का बटवारा (Allocation) सेवा के पदो की कुल सख्या के एक निर्धारित प्रतिशत के रूप मे किया जाता है। यह बटवारा भिन्न भिन्न पद-क्रमो मे पदो से सम्बद्ध उत्तरदायित्व की मात्रा को प्रकट करता है परन्तु यह बटवारा इस दृष्टि से भी किया गया है कि जिसमे सम्बन्धित स्टाफ को 'पदोन्नति के उपयुक्त एव न्यायपूर्ण अवसर' प्राप्त हो सकें।

चतुर्थ श्रेणी (Class IV) के कर्मचारियो की तृतीय श्रेणी की बहुत कम पदोन्नति की जाती हैं। रेलवे तथा डाक व तार विभागो को छोडकर, अन्य विभागो (Departments) मे, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो की अगली श्रेणी मे को नियमित पदोन्नति की सामान्यत कोई व्यवस्था नही है। इन कर्मचारियो मे से उनको, जोकि शैक्षणिक दृष्टि से अथवा अन्य प्रकार से योग्यता प्राप्त होते हैं, आयु सम्बन्धी कुछ छूट दे दी जाती हैं जिससे कि वे बाहर के प्रत्याशियो (Candidates) के साथ प्रति-योगिता मे बैठ सकें। *तथापि ऊपर बताये गये दोनो विभागो मे, चतुर्थ श्रेणी के* कर्मचारियो के लिये पदोन्नति के नियमित मार्ग हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि *डाक व तार विभाग मे तृतीय श्रेणी के लगभग ४० प्रतिशत पद पदोन्नति द्वारा भरे* जाते हैं, परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि पोस्टमैन तथा लाइनमैन *जिनकी कि कुल सख्या लगभग ४५,००० है,* तृतीय श्रेणी मे ही है यद्यपि उनका वेतनक्रम केवल रु० ३५ ५० होता है। इसी प्रकार से रेलवे के सभी विभागो मे तृतीय श्रेणी के निम्नतम पद-क्रम के कम से कम १० प्रतिशत पद चतुर्थ श्रेणी के उपयुक्त कर्मचारियो की पदोन्नति के द्वारा भरे जाने आवश्यक होते हैं, कुछ विभागो

में यह अनुपात अपेक्षाकृत ऊंचा है। रेलवे ने अनेक मामलों में पदोन्नति के इन निर्धारित भागों (Quotas) में अभी हाल में ही वृद्धि की है।

जहाँ तक चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत पदोन्नति के अवसरों का प्रश्न है, उपलब्ध सर्वोत्तम अनुमानों से यह प्रकट होता है कि रु० ३०—½—३५ के निम्नतम वेतनक्रम के लगभग ५,२४,००० कर्मचारी पदोन्नति के कुल लगभग एक लाख पदों के पाने की आशा कर सकते हैं। इस अनुमान में उन परिवर्तनों का ध्यान नहीं रखा गया है जोकि अभी हाल में ही किये गये हैं।

(२) पदोन्नति की रीतियाँ तथा सिद्धान्त
(Methods and Principles of Promotion)

संविधान (Constitution) में यह व्यवस्था है कि एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नतियां करने तथा ऐसी पदोन्नतियों के लिये प्रत्याशियों की उपयुक्तता (Suitability) के सम्बन्ध में, अपनाये जाने वाले सिद्धान्तों के विषय में संघीय लोक सेवा आयोग (U. P. S. C.) से परामर्श किया जायेगा। तथापि, व्यवहार में, जब तक कि सम्बन्धित भर्ती-नियमों के विपरीत कोई विशेष उपबन्ध (Special provision) न हो, संविधान के अनुच्छेद ३२० के खण्ड (३) के अन्तर्गत बनाये गये विनियमों के द्वारा तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के अन्दर तथा इनमें से ऊपर को की जाने वाली पदोन्नतियों को आयोग के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है। विभिन्न विभागों ने पदोन्नति के नियम बना लिए हैं अथवा अपनी अधीनस्थ सेवाओं के लिये आदेश जारी कर दिए हैं। विभिन्न विभागों ने पदोन्नति के जो नियम निर्धारित किये हैं उनमें परस्पर काफी अन्तर पाया जाता है। वे सामान्यतः निम्न प्रकार से पदोन्नतियाँ करते हैं —

(क) योग्यता (Merit) के आधार पर पदोन्नति, या (ख) योग्यता व ज्येष्ठता (Merit cum seniority) अथवा ज्येष्ठता व योग्यता (Seniority cum merit) के आधार पर पदोन्नति, (ग) ज्येष्ठता के आधार पर पदोन्नति, बशर्ते कि ज्येष्ठ अधिकारी को अयोग्य घोषित न कर दिया गया हो।

सम्पूर्ण रूप में सिविल-सेवा के लिए, पदोन्नतियां करने में अनुसरण किये जाने वाले सिद्धान्तों के सम्बन्ध में केवल वे ही आज्ञायें (Orders) लागू होती हैं जोकि स्वराष्ट्र मन्त्रालय द्वारा मई १९५७ में जारी की गई थीं। परन्तु वे आज्ञायें केवल चुनाव-पदों[1] (Selection grades) के ही सम्बन्ध में हैं। उन आज्ञाओं के अनुसार

(१) चुनाव-पदों तथा चुनाव-पदक्रमों (Selection grades) के लिये नियुक्तियां योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, ऐसा करते समय ज्येष्ठता का ध्यान केवल निम्न सीमा तक ही रखा जाना चाहिए।

---

1 "Selection posts' are those which a Ministry declares to be so This means that the Ministry may classify their posts into 'Selection Posts" and others, according to their judgment

(२) विभागीय पदोन्नति समिति (Departmental Promotion Committee) अथवा चुनाव करने वाली सत्ता (Selecting authority) को सर्वप्रथम चयन-क्षेत्र (Field of choice) का निश्चय करना चाहिए, अर्थात् पदोन्नति की प्रतीक्षा करने वाले ऐसे पात्र एकाधिकारियो (Eligible officers) की सख्या जिनको कि "चुनाव-सूची" (Select list) मे सम्मिलित किया जा सके, तथापि शर्त यह है कि असाधारण योग्यता वाला एक अधिकारी यदि सामान्य चयन-क्षेत्र की परिधि से बाहर भी हो, तो भी उसे पात्र अधिकारियो की सूची मे सम्मिलित कर लिया जाए।

(टिप्पणी—जहाँ भी सम्भव हो सके, चयन-क्षेत्र का विस्तार उन रिक्त स्थानो (Vacancies) की सख्या के पाच या छ गुने तक होना चाहिए जितने स्थान एक वर्ष की अवधि मे रिक्त होने की आशा हो।)

(३) ऐसे अधिकारियो मे उन व्यक्तियो को छोड दिया जाना चाहिए जिन्हे कि पदोन्नति के लिए अनुपयुक्त समझा जाए।

(४) शेष अधिकारियो को उस योग्यता के आधार पर, जोकि उनके अपने-अपने सेवा अभिलेखो (Service records) द्वारा निश्चित की जाए, 'उत्कृष्ट' (Outstanding), 'बहुत श्रेष्ठ' (Very good), 'श्रेष्ठ' (Good) के रूप मे वर्गीकृत कर लिया जाना चाहिए। फिर अधिकारियो के नाम इन तीन वर्गों अथवा श्रेणियो के क्रम मे रख कर "चुनाव सूची" तैयार कर लेनी चाहिए और ऐसा करते समय प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत जितने भी अधिकारियो के नाम हो उनमे परस्पर ज्येष्ठता का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(५) पदोन्नतिया सामान्यतया "चुनाव सूची" मे से उस क्रम के अनुसार की जानी चाहिये जिस क्रम मे अन्तिम रूप से नाम व्यवस्थित किए गये हो।

(६) निश्चित अवधियो के पश्चात् "चुनाव सूची" का पुनरावलोकन किया जाना चाहिए। सूची से उन अधिकारियो के नाम हटा दिए जाने चाहिये जोकि (स्थानीय अथवा अस्थायी आधार को छोडकर अन्य प्रकार से) पहले ही पदोन्नति कर दिये गये हो और उस पद पर अब भी बराबर कार्य कर रहे हो। बाद की अवधि के लिए, इन शेष नामो को तथा उन नामो को, जिन्हें कि अब चयन-क्षेत्र मे सम्मिलित किया जाये, "चुनाव-सूची" (Select list) के लिए विचारार्थ लिया जाना चाहिए।

जहाँ तक कि (चुनाव पदो के अतिरिक्त) अन्य पदो का सम्बन्ध है, इसके विषय मे विभिन्न विभाग अपने-अपने निजी नियमो का अनुसरण करते हैं और जैसा कि कहा जा चुका है वे नियम विभिन्नता रखते हैं। किन्तु मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि ये नियम उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदो के लिए तो योग्यता (Merit) पर जोर देते हैं और निम्न स्तर के पदो के लिए 'ज्येष्ठता व उपयुक्तता (Seniority cum fitness) पर। कुछ स्थितियो मे, उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदो के लिए भी 'योग्यता व ज्येष्ठता' अथवा 'ज्येष्ठता व योग्यता' के सिद्धान्त का

अनुसरण किया जाता है। तथापि, इन सिद्धान्तो के वास्तविक अनुसरण के सम्बन्ध म विभागो अथवा सेवाओ के बीच एकरूपता (Uniformity) नहीं पाई जाती। कुछ समय पूर्व स्वराष्ट्र मन्त्रालय (Ministry of Home Affairs) मे एक अध्ययन किया गया था जिससे यह प्रकट हुआ कि वहां भी जहां कि पदोन्नति के सिद्धान्त एक से थे, उनको समान रूप से क्रियान्वित नही किया गया। कुछ मामलो मे, जहां कि निर्धारित सिद्धान्त योग्यता पर ही सम्पूर्ण जोर देता था, व्यवहार मे ज्येष्ठता को ही अधिक महत्व प्रदान किया गया। इस तथ्य की पुष्टि सघीय लोक सेवा आयोग के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने भी की थी जिन्होने कि वेतन आयोग (Pay commission) के समक्ष मौखिक गवाही देते हुए कहा कि जबकि काफी समय पूर्व मे प्रचलित सिद्धान्त यह था कि पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, किन्तु "इस ठोस सिद्धान्त का सम्मान इसका अनुसरण करने की अपेक्षा इसको भग करने के रूप म अधिक किया जाता है।"

पदोन्नतियां करने मे साधारणत निम्नलिखित रीतियो मे से किसी एक का उपयोग किया जाता है। अभिलेख (Record) के आधार पर उपयुक्तता (Suitability) का निर्धारण करके, प्रतियोगिता परीक्षा के परिणाम के आधार पर चुनाव करके, और समर्थता परीक्षाओ (Competence tests) का उपयोग करके। अन्तिम रीति का उपयोग मुख्यत औद्योगिक कर्मचारियो के मामलो मे किया जाता है, जिन की कि उच्चतर पद क्रमो म उन्नति के लिये उपयुक्तता की जाच समुचित व्यापारिक परीक्षाओ द्वारा की जाती है।

केन्द्रीय सचिवालय सेवा के तृतीय पद क्रम (Grade III) मे एक निश्चित अनुपात मे पदो के भरने के अतिरिक्त, प्रतियोगिता परीक्षा की रीति का अधिक उपयोग नही किया जाता। इस प्रकार प्रथम रीति (Method) ही ऐसी है जिसका सबसे अधिक व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। नियमानुसार, कर्मचारी की उपयुक्तता का निश्चय किसी एक व्यक्ति द्वारा नही किया जाता, अपितु विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा किया जाता है। प्रत्येक विभाग ने, अपनी-अपनी आवश्यकताओ के अनुसार एक या एक से अधिक ऐसी समितियो की स्थापना कर ली है। जो समितियाँ पदोन्नति के ऐसे मामलो से सम्बन्धित होती है जिनमे कि आयोग के परामर्श की आवश्यकता होती है, उनकी बैठको की अध्यक्षता सघीय लोक सेवा आयोग का एक सदस्य करता है।

विभागीय नियम (Departmental rules) उच्चतर तथा मध्यम स्तर के पदों के लिये तो अधिकाशत योग्यता पर जोर देते हैं और निम्नतर स्तरो के पदो क लिये 'ज्येष्ठता व उपयुक्तता' (Seniority cum fitness) पर। पदोन्नति के सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे विभागो अथवा सेवाओ के बीच कोई एकरूपता नही पाई जाती। निर्धारित सिद्धान्त यद्यपि योग्यता (Merit) पर अधिक जोर देता है किन्तु भारत मे ज्येष्ठता को ही अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। सघीय लोक-सेवा

आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष ने केन्द्रीय वेतन आयोग के समक्ष गवाही देते समय यह कहा कि जबकि काफी समय पूर्व से प्रचलित सिद्धान्त यह था कि पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए, किन्तु "इस ठोस सिद्धान्त का सम्मान इसका अनुसरण करने की अपेक्षा इसको भग करने के रूप मे अधिक किया जाता है।[1]

पदोन्नतियों के सम्बन्ध में वेतन आयोग की सिफारिशें
(Recommendations of the Pay Commission Concerning Promotions)

भारत मे पदोन्नतियो के सम्बन्ध मे वेतन आयोग ने अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिशें की। ये सिफारिशें निम्नलिखित हैं

(१) उच्चतर स्तरो (Higher levels) पर पदोन्नतियाँ करने के सिद्धान्त के रूप मे योग्यता को ही आधार बनाए रखना चाहिए और निम्न स्तरो के पदा के लिए 'ज्येष्ठता व उपयुक्तता' का सिद्धान्त ठीक है।[2]

(२) ऐसे पद-क्रमो (Grades) मे, जिसमे कि विशिष्टीकृत ज्ञान (Specialised knowledge) की आवश्यकता होती है, पदोन्नतियाँ करने के लिए ऐसी योग्यता-प्रमापी परीक्षायें (Qualifying examinations) लाभदायक हो सकती हैं जिनमे कि कर्मचारियो की कार्य करने की (शैक्षणिक नही) क्षमता की जाच हो सके। परन्तु इस अपवाद को छोडकर, परीक्षाओ का उपयोग पदोन्नति के लिए चयन करने की एक सामान्य रीति के रूप मे नहीं किया जाना चाहिए।[3]

(३) पदोन्नति की एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिनमे कि एक विशिष्ट सीमित प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा द्वितीय श्रेणी (Class II) तथा तृतीय श्रेणी (Class III) की सेवाओ के युवा पदाधिकारियो को प्रथम श्रेणी अथवा श्रेणी की उन सेवाओ मे प्रवेश का एक अतिरिक्त अवसर मिल सके जिनमे कि द्वितीय प्रतियोगिता परीक्षा (*Competitive examination*) के द्वारा सीधी भर्ती (*Direct recruitment*) की जाती है।[4]

(४) वह फार्म जिनमे कि गोपनीय विवरण (Confidential reports) रखे जायें, कर्मचारियो के विशिष्ट-वर्ग के कार्य की प्रकृति से सम्बन्धित होना चाहिये परन्तु अन्य प्रकार से उसमे यथासम्भव एकरूपता होनी चाहिए और उसका प्रतिरूप (Design) इस प्रकार का होना चाहिए कि जिससे अनेक विशिष्ट शीर्षको (Headings) के अन्तर्गत, जिसमे कि ऊचे उत्तरदायित्वो को निबाहने की कर्मचारियो की क्षमता तथा साथ ही साथ उनके सामान्य गुण भी सम्मिलित हैं, उनकी योग्यता का निर्धारण किया जा सके।[5]

---

1 Commission of Enquiry on Emoluments and conditions of service of Central Government Employees 1957-59, Report, Government of India, p 503

2 *Ibid* Para, 15, Chap XLV

3 *Ibid* Para, 17.

4 *Ibid* Para, 19.

5 *Ibid* Para, 23

(५) कर्मचारियों का सामान्य कोटिकरण (General grading) प्रथम प्रतिवेदन अधिकारी (First reporting officer) द्वारा नहीं किया जाना चाहिए; ऐसा कोटिकरण उच्च सतह पर किया जाना चाहिए, और अधिमानतः (Preferably) ऐसी सतह पर जहां पर कि सम्पूर्ण ढांचा पदोन्नति आदि के मामलो से ही व्यवहार करता हो।[1]

(६) गोपनीय विवरण जैसे ही प्राप्त हो, प्रत्येक उच्चतर स्तर पर उसका सूक्ष्म परीक्षण किया जाना चाहिए जिससे कि इस विषय में निश्चित हुआ जा सके कि वे विवरण सम्बन्धित अनुदेशो (Instructions) के अनुसार ही तैयार किये गये हैं, और जहां भी आवश्यक हो उनको संशोधन के लिए वापिस लौटा दिया जाना चाहिए।[2]

(७) किसी उपचार-योग्य तथा उपचार के अयोग्य दोष की ज्यो की त्यों सूचना कर्मचारी को दी जानी चाहिए जब तक कि वह प्रस्ताव ही न किया गया हो कि उस दोष को कर्मचारी की चरित्र-पुस्तिका (Character-roll) मे दर्ज न किया जाए।[3]

(८) तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate superior) द्वारा गोपनीय विवरण लिखने की वर्तमान व्यवस्था जारी रखी जाए परन्तु उससे ऊपर के उच्च अधिकारी को प्रतिवेदन अधिकारी (Reporting officer) की टिप्पणियो पर अपना ठोस व स्वतन्त्र निर्णय देना चाहिये और अपनी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की स्पष्ट रूप से व्याख्या करनी चाहिए और विशेष रूप से ऐसी टिप्पणियो के सम्बन्ध से जबकि वे प्रतिकूल हो।[4]

(Efficiency Rating Form (U S A)

सयुक्त राज्य अमेरिका की सिविल-सेवा मे काम आने वाले कार्यकुशलता मापक प्रतिवेदन के फार्म का नमूना एव उसका सम्बन्धित विवरण ज्यो का त्यो आगे दिया जा रहा है।

---

1 Ibid Para, 23
2 Ibid para, 24
3 Ibid para, 24
4 Ibid Para, 25

Interpretation of Efficiency Rating :

Your efficiency rating is an official record of the way you are doing the work of your job

Excellent (E) means the performance in every important phase of the work was outstanding and there was no weakness in performance in any respect

Very Good (V G) means that performance in at least half of the important phases of the work was outstanding and there was no weakness in performance in any respect

Good (G) means that performance met requirements from an over-all point of view

Fair (F) means that performance did not equit measure up to requirements from an over-all point of view

Unsatisfactory (U) means that performance in a majority of important phases of the work did not meet job requirements

Inspection :

You are entitled to inspect the final ratings (not the rating forms) of all employees in your office or station

Significance of Efficiency Rating :

An efficiency rating of "Good", 'Very Good", or "Excellent" is necessary in order to receive a, periodic within-grade salary advancement

An efficiency rating of "Fair" requires a one step salary reduction if an employee's pay rate is above the middle rate for his grade (the fourth step in six-rate grades) An efficiency rating of "Unsatisfactory" requires that the employee be dismissed or reassigned to other work in which he could be reasonably expected to render satisfactory service

Efficiency ratings are a factor in determining the order in which employees are affected by reduction in force

Appeals

If you believe your rating is wrong you should first discuss it with your supervisor or personnel officer You have the right, if your position is subject to the Classification Act, to appeal your rating within certain time limits to a board of review established for your agency Appeals or requests for additional information concerning appeals should be addressed to the Chairman, *Board of* Review, care of Civil Service Commission, *Washington* 25 D C

Appendix A

Standard Form No 51
August 1946
U S CIVIL SERVICE COMMISSION

REPORT OF EFFICIENCY RATING

Administrative Unofficial
Official
Regular ( ) Special ( )
Probational ( )

As of

Based on Performance during period from to

(Name of employee)

(Title of position service and grade)

(Organisation—Indicate bureau division section unit field station)

On Line Below Mark Employee		Check One
√ if adequate − if weak + if outstanding	1 Study the instructions in the Rating Official s Guide C S C From No 3823 A 2 Underline the elements which are especially important in the position 3 Rate on element pertinent to the position (a) Do not rate on element in *italics* except for employees in administrative supervisory or planning position (b) Rate administrative supervisory and planning functions on element in *italics*	Administrative, supervisory, or planning All others

1 Maintenance of equipment tools instruments
2 Mechanical skill
3 Skill in the application of techniques and *procedures*
4 Presentability of work (appropriateness of arrangement and appearance of work)
5 Attention to broad phases of assignment
6 Attention to pertinent detail
7 Accuracy of operations
8 Accuracy of final results
9 Accuracy of judgment or decisions

21 *Effectiveness in planning broad programme*
22 *Effectiveness in adapting the work programme to broader or related programmes*
23 *Effectiveness in devising procedures*
24 *Effectiveness in laying out work and establishing standard to performance for subordinates*
25 *Effectiveness in directing reviewing and checking the work of subordinates*
26 *Effectiveness in instructing, training and developing subordinates in the work.*

10 Effectiveness in presenting ideas or facts
11 Industry
12 Rate of progress on or completion of assignments
13 Amount of acceptable work produced (Is mark based on production records?) (Yes or no)
14 Ability to organize his work
15 Effectiveness in meeting and dealing with others
16 Co operativeness
17 Initiative
18 Resourcefulness
19 Dependability
20 Physical fitness for the work

27 Effectiveness in promoting high working moral
28 Effectiveness in determining space personnel and equipment needs
29 Effectiveness in setting and obtaining adherence to time limits and deadliness
30 Ability to make decisions
31 Effectiveness in delegating clearly defined authority to act

STATE ANY OTHER ELEMENTS CONSIDERED

(A)
(B)
(C)

STANDARD

Deviations must be explained on reverse side of this form

	Adjective Rating
Plus marks on all underlined elements, and check marks or better on all other elements rated	Excellent
Check marks or better on all elements rated, and plus marks on at least half of the underlined elements	very Good
Check mark or better on a majority of underlined elements and all weak performance overcompensated by outstanding performance	Good
Check marks or better on a majority of underlined elements and all weak performance not overcompensated by outstanding performance	Fair
Minus marks on at least half of the underlined elements	Unsatisfactory

	Adjective Rating
Rating Official	
Reviewing Official	

Rated by (Signature of rating official) (Title) (Date)

Reviewed by (Signature of reviewing official) (Title) (Date)

Rating approved by efficiency rating committee (Date) Report to employee (Adjective rating)

२१

अनुशासन, पदावनति, पदच्युति और सेवा-निवृत्ति

(Discipline, Demotion, Dismissal And Retirement)

कर्मचारियों के आचरण (Conduct) का निर्धारण करने के लिए प्रत्येक सगठन की अपनी विधियाँ (Laws) नियम (Rules) तथा विनियम (Regulations) होते हैं। कर्मचारी अनेक बार इन नियमों का उल्लघन करते हैं। अत उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाती है। कर्मचारियों द्वारा जिन परिस्थितियों में अनुशासन भग किया जाता है वे निम्न प्रकार है —

(१) कर्त्तव्यों के प्रति असावधानी—दीर्घसूत्रता (Tardiness) आलस्य, लापरवाही, सम्पत्ति की तोड-फोड अथवा हानि आदि, (२) अदक्षता (Inefficiency), (३) अवज्ञा (Insubordination), नियमों अथवा विनियमों का उल्लघन, राजद्रोह, (४) मदिरापान, (५) अनैतिकता, (६) निष्ठा का अभाव, जिसमे स्वीकृत नैतिक सहिता (Code of ethics) का उल्लघन, ऋण अदा न कर सकना, रिश्वत लेना या देना अथवा जान बूझकर किसी विधि के प्रवर्तन (Enforcement) की उपेक्षा करना भी सम्मिलित है।[1]

उपरोक्त कारणों की वजह से अनुशासन भग करने की स्थिति मे कर्मचारियों को जो दण्ड दिया जाता है वह भी परिस्थिति के अनुसार ही भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। दण्ड निम्न प्रकार हो सकता है (१) अनौपचारिक सूचना (Informal notice) एव चेतावनी (Warning), (२) अभिलेख म पूर्ति तथा भर्त्सना (Reprimand) अथवा केवल भर्त्सना, (३) अतिरिक्त समय की अपेक्षा (Requirement of over time), (४) ज्येष्ठता के अधिकारों (Seniority rights) की समाप्ति अथवा वेतन वृद्धि (Increment) मे विलम्ब, (५) निलम्बन (Suspension), (६) पदावनति (Demotion), (७) पद से हटाया जाना या अपसारण (Removal), (८) न्यायिक अभियोग लगाना (Judicial Prosecution)।[2]

अनुशासन भग करने के दण्ड कठोर हो सकते हैं जैसे कि निलम्बन, पदावनति, ज्येष्ठता के अधिकारों की समाप्ति अथवा सेवा से पदच्युति। जो कर्मचारी मामूली

1 Also refer to L- D White, Introduction to the study of *Public Administration*, P 423 and F, Alexander "*Principles of Disciplining* , Personnel, November 1945, pp 161 170

2 Also refer to L D White, *op cit*, P 423

अपराधो के दोषी पाये जाये उनके अभिलेख (Record) मे प्रविष्ट (Entry) करके अथवा उसके बिना ही उनकी भर्त्सना की जा सकती है और उस अपराध की पुनरावृत्ति न करने के सम्बन्ध मे उन्हे चेतावनी (Warning) दी जा सकती है। ऐसे मामलो से निबटने के अन्य उपायो मे प्रत्याशित पदोन्नति अथवा वृद्धि को रोक देना, अवकाश सम्बन्धी विशेषाधिकारो का निलम्बन अथवा अवकाश (Leave) की समाप्ति सम्मिलित हैं।

कर्मचारी को उसके कृत्य तथा आचरण के विषय मे पूर्णतया स्पष्टीकरण करने का अवसर प्रदान किये बिना दण्ड नही दिया जाना चाहिए। सेवा के सर्वोत्तम हितो की दृष्टि स यह आवश्यक है कि अपराध की पूर्णतः छानबीन तथा पुष्टि किये बिना कोई भी दण्ड न दिया जाय। दण्ड ऐसा होना चाहिए जो कि अपराधो की दृष्टि से उपयुक्त हो, और दण्डित कर्मचारी को यह अवसर प्राप्त होना चाहिए कि वह अन्याय अथवा भूल को ठीक करा सके। उसे यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह दण्ड की आज्ञा के विरुद्ध उच्च प्राधिकारी अथवा अपील मण्डल से अपील कर सके। अन्तिम आश्रय के रूप मे, कर्मचारी को यह भी अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह देश के विधि न्यायालय के समक्ष अपील कर सके। उच्च अधिकारियो की सनक तथा पक्षपात के विरुद्ध निर्दोष कर्मचारियो को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ये सब बचाव (Safe guards) अत्यन्त आवश्यक है।

पार्थक्य तथा सेवा-निवृत्ति
(Separation and Retirement)

लोक सेवा की एक अन्य समस्या कर्मचारी के पार्थक्य (Separation) अर्थात् सेवा से पृथक् होने की है। लेकिन लोक सेवा से कर्मचारियो का पृथक् होना निम्नलिखित कारणो से हो सकता है —

(१) मृत्यु,

(२) त्याग-पत्र (Resignation), ऐच्छिक अथवा अनैच्छिक,

(२) पदच्युति—छटनी के कारण।

(४) सेवा के हित की दृष्टि से अपसारण अथवा हटाया जाना, या तो अकुशलता के कारण अथवा अनुशासन सम्बन्धी कारण से,

(५) अथवा सेवा निवृत्ति, जो कि एक निश्चित आयु को पूरा होने पर सेवा काल (Length of service) पर अथवा असमर्थता (Disability) के कारण हो सकती है।[1] कर्मचारी या तो स्वेच्छा से त्याग-पत्र देकर लोक-सेवा से मुक्त हो सकते हैं अथवा उनकी छटनी (Retrenchment) की जा सकती है या उनको पदच्युत (Dismiss) किया जा सकता है। किसी भी कर्मचारी को निम्नलिखित दो मुख्य कारणो मे से किसी एक के आधार पर पदच्युत किया जाता है (१) अयोग्यता

1 Also refer to W Brooke Graves, *Public Administration in a democratic Society*, P. 225

अथवा असामर्थ्य और अकुशलता के कारण, (२) अन्य कारण से, जो कि वास्तव में अनुशासनिक कारणों के आधार पर पदच्युत का ही सूचक है।

सेवा निवृत्ति योजनाओं के उद्देश्य
(Purposes of Retirement Plans)

सेवा-निवृत्ति की एक सुदृढ प्रणाली कर्मचारियों तथा सरकार दोनों के लिए ही हितकर है। सेवा निवृत्ति प्रणाली के अन्तर्गत कर्मचारियों को अतिवयस्कता के लाभ (Superannuation benefits) प्रदान किये जाते हैं जिससे कि वे वृद्धावस्था में निवृत्ति वेतन या पन्शन (*Pension*) अथवा भविष्य निधि (*Provident Fund*) आदि के रूप में सरकार की ओर से मिलने वाले जीविकोपार्जन के साधनों के बारे में निश्चिन्त होकर आराम से अपना जीवन बिता सकें। सेवा निवृत्ति की एक सुदृढ प्रणाली के द्वारा सरकार को कुशल व्यक्तियों की सेवा में रखने में समर्थ हो जाती है। सेवा निवृत्ति योजनाओं के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

(१) उन अतिवयस्क कर्मचारियों के लिए निर्वाह के साधन प्रदान करना जोकि यथोचित कार्य-कुशलता के साथ और अधिक समय तक कार्य नहीं कर सकते, (२) कार्य करने में असमर्थ कर्मचारियों की देखभाल करना, चाहे उनकी असमर्थता व्यावसायिक कारणों से हो अथवा गैर-व्यावसायिक कारणों से, (३) कर्मचारियों के आश्रितों (Dependents) के लिए कुछ वित्तीय सहायता की व्यवस्था करना जिनकी मृत्यु व्यावसायिक दुर्घटनाओं अथवा अन्य कारणों से हो गई हो। सम्पूर्ण रूप से लोक-सेवा में मनोबल (*Morale*) तथा कार्य-कुशलता (*Efficiency*) बनाये रखने के लिए निवृत्ति प्रणाली का होना अत्यन्त आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की होती है कि वृद्ध कर्मचारियों को, जिनकी कार्य-क्षमता दिन प्रतिदिन क्षीण होती जाती है, आराम दिया जाय तथा वृद्धावस्था में शान्ति के साथ जीवन निर्वाह करने के लिए उनको धन दिया जाए। पेंशनों अथवा दावों की अदायगी के लिए निधियों (Funds) की व्यवस्था केवल सरकार की ओर से हो सकती है, केवल कर्मचारियों की ओर से हो सकती है अथवा दोनों के ही अशदानों (*Contributions*) द्वारा हो सकती है। इसी आधार पर सेवा-निवृत्ति प्रणालियों का वर्गीकरण साधारणत इस प्रकार किया जाता है

(१) **अशदायी** (Non Contributory)—इस प्रणाली के अन्तर्गत, सेवा-निवृत्ति काल की सम्पूर्ण धनराशि का प्रबन्ध सरकार ही करती है। चूंकि इस प्रणाली के कर्मचारियों को निवृत्ति-निधि (Retirement fund) के लिए अशदान नहीं करना पड़ता, अत इस प्रणाली को अशदायी कहा जाता है।

(२) **आंशिक अशदायी** (Partly Contributory)—इस प्रणाली में, निवृत्ति निधि का आंशिक भार तो सरकार द्वारा वहन किया जाता है और आंशिक भार कर्मचारियों द्वारा निवृत्ति-निधि के लिए सरकार तो अशदान स्वय देती है और कर्मचारियों का अशदान अनिवार्य रूप से उनके वेतनों में से काट लिया जाता है।

(३) पूर्ण अंशदायी (Wholly Contributory)—इस प्रणाली में, निवृत्ति-निधि के लिए सम्पूर्ण अंशदान कर्मचारियों द्वारा ही किया जाता है और सम्पूर्ण अंशदान कर्मचारियों के वेतन में से काट लिया जाता है।

भारत में लोक-सेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन के नियम (Code of Conduct and Discipline Rules for Public Servants in India)

भारत में लोक कर्मचारियों की आचार-संहिता (Code of conduct) का उद्देश्य—

(१) सेवा के प्रति निष्ठा (Integrity),

(२) सेवा में रहते हुए राजनीति के प्रति तटस्थता (Neutrality) तथा

(३) सेवा में अनुशासन बनाए रखना है। किसी भी सुसंगठित तथा कुशल सरकारी कार्मिक व्यवस्था के लिए इन तीनों ही बातों का होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत में लोक-कर्मचारियों के लिये आचार-व्यवहार के ये नियम निम्न प्रकार हैं—

I. सरकारी कार्मिक-वर्ग की निष्ठा (Integrity of Public Personnel)

भारत में सेवा के प्रति सरकारी कर्मचारियों की निष्ठा बनाये रखने के लिए कुछ नियम निर्धारित किये गये हैं। यह व्यवस्था की गई है कि—

(१) सेवा का प्रत्येक सदस्य हर समय अपने कर्त्तव्यों के प्रति पूर्ण निष्ठा तथा भक्ति रखेगा।[1]

(२) सरकारी संरक्षण प्राप्त फर्मों के निकट सम्बन्धियों की नियुक्तियाँ नहीं की जा सकेंगी। उपबन्ध यह है कि (क) सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना सेवा का कोई भी सदस्य अपने पुत्र, पुत्री अथवा आश्रित को इस बात की आज्ञा नहीं देगा कि वह ऐसी गैर-सरकारी फर्मों के साथ, जिनसे कि उसे सरकारी व्यवहार (Official dealings) करना पड़ता हो, अथवा ऐसी अन्य फर्मों के साथ, जिनका सरकार के साथ लेन-देन होता हो, व्यापारिक सम्बन्ध रख सके अथवा उनमें नौकरी कर सके।[2] (ख) यदि कोई ऐसा प्रस्ताव सामने आता है जिसमें कि किसी ऐसी फर्म को ठेका देने अथवा संरक्षण प्रदान करने का प्रश्न विचाराधीन हो जिसमें कि सेवा के सदस्य का पुत्र, पुत्री अथवा कोई आश्रित नियुक्त हो, तो उस सम्बन्धित सदस्य को सरकार के समक्ष इस तथ्य को प्रकट करना होगा और तत्पश्चात् उस मामले का निश्चय उससे ही समान अथवा उच्च-स्तर के अन्य किसी पदाधिकारी द्वारा किया जायेगा।[3]

(३) सरकारी कर्मचारियों के लिए किसी भी प्रकार का चन्दा या भेंट अथवा उपहार लेना मना है। सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सेवा का कोई भी

1 The All India Services (Conduct) Rules, 1958, Rule 3

2 Ibid 4—A (1)

3 Ibid 4—A (2)

सदस्य किसी भी व्यक्ति स किसी प्रकार की भेंट नही लेगा, अथवा किसी भी प्रकार का चन्दा न तो मागगा और न स्वीकार करेगा, अथवा न अपनी पत्नी या परिवार क किसी सदस्य को ही ऐसा करने की आज्ञा दगा, अथवा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति क लिए धन एकत्रित करने के काय म अन्य किसी रूप म भी, अपने आपको सम्बद्ध नही रखेगा।[1]

(४) सरकारी कर्मचारियो के लिए कुछ स्थितियो म निजी व्यापार करना अथवा कोई अन्य नौकरी करना धन का निवेश (Investment) करना, उधार देना तथा उधार लेना मना है। उपबन्ध यह है कि (क) कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकार की पूर्व अनुमति क बिना, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, कोई भी निजी व्यापार अथवा व्यवसाय नही कर सकेगा अथवा कोई दूसरी नौकरी नही कर सकेगा। (ख) कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी भी व्यवसाय म लाभ की आशा म धन नही लगा सकेगा। (ग) सेवा का कोई भी सदस्य अथवा सरकारी कर्मचारी एस काम म धन का निवेश (Investment) नही कर सकेगा, अथवा न अपनी पत्नी या परिवार के किसी सदस्य को ही एसा करन की आज्ञा देगा, जिसस उनके प्रशासकीय कार्यों के निष्पादन म बाधा पडने की सम्भावना हो। (घ) सेवा का एक सदस्य अपने व्यक्तिगत मामलो की व्यवस्था इस प्रकार करेगा कि जिसस वह ऋणग्रस्तता (Indebtedness) अथवा दिवालियेपन (Insolvency) से बचा रह सके। (ङ) कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकार को पूर्व सूचना दिय बिना, किसी भी अचल सम्पत्ति को पटटे (Lease), गिरवी अथवा बन्धक (Mortage), क्रय-विक्रय भेंट (Gift) अथवा अन्य किसी रूप म, अपने नाम म अथवा अपने परिवार के किसी सदस्य के नाम म, ले अथवा दे नही सकेगा। (च) यदि कोई सरकारी कर्मचारी एक हजार रुपय से अधिक मूल्य की किसी चल सम्पत्ति (Movable property) के बारे म कोई सौदा करता है चाहे वह सौदा उस सम्पत्ति के क्रय या विक्रय के सम्बन्ध म हो अथवा अन्य किसी सम्बन्ध म, उसे उस सौदे की सूचना सरकार को देनी होगी। चल सम्पत्ति म अन्य वस्तुओ के साथ साथ निम्न सम्पत्ति भी सम्मिलित हैं (१) जवाहरात बीमा पालिसी, शेयर, प्रतिभूतियाँ (Securities) तथा ऋण पत्र (Debentures), (२) ऐस सरकारी कर्मचारी द्वारा दिये गय कर्ज (Loans) चाहे वे सुरक्षित (Secured) हो या नही, (३) मोटर कारें, मोटर साइकिलें घोडे अथवा वाहन का अन्य कोई साधन, और (४) रेफ्रिजरेटर, रेडियो तथा रेडियोग्राम। (छ) सेवा का प्रत्येक सदस्य सेवा म प्रथम नियुक्ति क समय तथा उसके पश्चात् प्रत्येक बारह माह के अन्तर पर अपने द्वारा अधिकृत समस्त तथा अचल सम्पत्ति के सम्बन्ध मे सरकार के समक्ष एक विवरण पत्र प्रस्तुत करेगा।[2]

1 *Ibid* 9 10

2 The All India Services (conduct) Rules 1954 *Summary of Rules* 9 15

II. राजनीति के सम्बन्ध में तटस्थ रहने के नियम
(Rules for Securing Neutrality in politics)

लोक सेवकों को सरकार की सेवा करनी चाहिए, किसी दल विशेष की नहीं। सिविल-सेवकों का भाग्य देश की राजनीति के भाग्य से सम्बन्द्ध नहीं होना चाहिए। प्रशासन मे सत्यनिष्ठा एव कार्य-कुशलता लाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सिविल-सेवक देश की राजनीति के प्रति तटस्थ रहे। इस सम्बन्ध मे भारत मे जो नियम हैं उनमे से उपबन्ध है कि : (क) सेवा का कोई भी सदस्य किसी भी राजनैतिक दल का अथवा किसी भी ऐसे सगठन का, जोकि राजनीति मे भाग लेता हो, न तो सदस्य बनेगा अथवा न अन्य किसी प्रकार से इससे सम्बन्ध रखेगा, और न ही वह किसी राजनैतिक आन्दोलन या राजनैतिक क्रिया म भाग लेगा या उसकी सहायता के लिए चन्दा देगा अथवा न अन्य किसी प्रकार से उसकी सहायता करेगा। (ख) प्रत्येक सरकारी कर्मचारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस बात का प्रयास करे कि उसके परिवार का कोई भी सदस्य ऐसे किसी भी आन्दोलन अथवा कार्यवाही मे, जोकि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विधि (Law) द्वारा स्थापित सरकार के विरुद्ध हो, न तो भाग ले, न उसकी सहायता के लिये चन्दा दे अथवा न अन्य किसी भी प्रकार से उसकी सहायता करे, यदि कोई कर्मचारी अपने परिवार के किसी सदस्य को ऐसे किसी आन्दोलन अथवा कार्यवाही म भाग लेने से, या उसकी सहायतार्थ चन्दा देने से अथवा अन्य किसी प्रकार से उनकी सहायता करने मे रोकने मे असमर्थ हो तो उसे इस स्थिति की सूचना सरकार को देनी होगी। (ग) कोई भी सरकारी कर्मचारी विधान-मण्डल अथवा स्थानीय सत्ता के किसी भी निर्वाचन (Election) मे न तो भाग लेगा, न उसके पक्ष मे प्रचार करेगा न अन्य किसी प्रकार से उसमे हस्तक्षेप करेगा अथवा न उसके सम्बन्ध मे अपने किसी प्रभाव का ही उपयोग करेगा। (घ) यदि किसी सरकारी कर्मचारी को निर्वाचनो मे मत (वोट) देने का अधिकार प्राप्त है तो वह इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है, परन्तु ऐसा करते समय वह इस प्रकार का कोई सकेत नही देगा कि वह किसे वोट देना चाहता है अथवा उसने किसे या किस प्रकार वोट दिया है। (ङ) कोई भी सरकारी कर्मचारी रेडियो के किसी प्रसारण (ब्रॉडकास्ट) मे, अथवा सुगमता से या अपने नाम से या अन्य किसी व्यक्ति के नाम से प्रकाशित किसी लेख मे, अथवा समाचार-पत्र या प्रेस को दिये गये किसी वक्तव्य या पत्र मे, अथवा किसी भी सार्वजनिक वक्तव्य अथवा प्रकाशन मे अपना ऐसा कोई विचार या मत अथवा तथ्य प्रकट नहो करेगा—

(१) जिससे केन्द्र सरकार अथवा किसी राज्य सरकार की किसी प्रचलित (Current) अथवा अभिनव (Recent) नीति अथवा कार्यवाही की विपरीत आलोचना करने का अवसर मिले, अथवा

(२) जिससे केन्द्र सरकार और किसी भी राज्य सरकार के पारस्परिक सम्बन्धो के विषय मे भ्रम उत्पन्न हो, अथवा

(३) जिससे केन्द्र सरकार और किसी विदेशी सरकार के बीच में सम्बन्धों के विषय में भ्रम उत्पन्न हो।[1]

III. भारत में अनुशासन तथा अपील के नियम
(Discipline and Appeal Rules in India)

संगठन की कुशलता तथा सुचारु सचालन के लिए सेवा में अनुशासन बने रहना अत्यन्त आवश्यक है।

दण्ड (Penalties)—उचित तथा पर्याप्त कारणों के आधार पर, और जैसा कि आगे व्यवस्था दी गई है, सेवा के एक सदस्य को निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते हैं

(१) निन्दा अथवा भर्त्सना,

(२) वेतन वृद्धि (Increment) अथवा पदोन्नति को रोक देना,

(३) पद स्थिति (Rank) में कमी, जिसमें कालक्रम (Time-scale) अथवा पद का कम किया जाना (Reduction to a lower post) अथवा एक कालक्रम में निम्न दर्जा दिया जाना सम्मिलित है,

(४) सरकारी आदेशों की उपेक्षा अथवा उल्लंघन से सरकार को जो आर्थिक हानि हुई हो, उस समस्त हानि अथवा उसके एक भाग की पूर्ति उसके वेतन में से करना

(५) आनुपातिक पेन्शन पर अनिवार्य सेवा-निवृत्ति,

(६) सेवा से हटाया जाना (Removal) जिसके कारण वह भविष्य में नौकरी के लिए अयोग्य अथवा अनर्ह Disqualified) नहीं होगा,

(७) सेवा से पदच्युति (Dismissal), जिसके कारण वह साधारणतया भविष्य में नौकरी के लिए अयोग्य हो जायेगा।

सेवा के किसी भी सदस्य को केन्द्र सरकार की आज्ञा के बिना पदच्युति, पविच्युत करने अथवा अनिवार्य सेवा निवृत्ति को दण्ड नहीं दिये जा सकेंगे।

दंड देने की विधि अथवा प्रक्रिया
(Procedure for Imposing Penalties)

(१) लोक सेवक जाँच अधिनियम, १८५० (Public Servants Inquiry Act, 1850) के उपबन्धों पर कोई भी विपरीत प्रभाव डाले बिना यह व्यवस्था है कि सेवा के किसी भी सदस्य पर नियम ३ में उल्लिखित कोई भी दण्ड देने का आदेश तब तक जारी नहीं किया जायगा जब तक कि उस सदस्य को उन कारणों की लिखित सूचना न दे दी गई हो, जिनके आधार पर कि दण्ड की कार्यवाही का प्रस्ताव किया गया है, और उसे अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर न प्रदान किया गया हो।

(२) उन कारणों को जिनके आधार पर किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाही करने का प्रस्ताव किया जाए, एक निश्चित अभियोग (Charge) अथवा

1 *Ibid* Rules 4 (1), (2) (3), (4) i ii iii

अभियोगों का रूप दिया जायेगा और उस अभियोग की सूचना सेवा के उस सदस्य को दे दी जायेगी जिसके विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, साथ ही उसको उन सब आरोपों (Allegations) का, जिन पर कि प्रत्येक *अभियोग आधारित है, तथा ऐसी* अन्य सब बातों एवं स्थितियों का, जिन पर कि उस मामले के सम्बन्ध मे आदेश जारी करते समय विचार किया गया हो, एक विवरण-पत्र (Statement) भी दिया जायेगा।

(३) उस सरकारी कर्मचारी से यह अपेक्षा की जायेगी कि वह ऐसी अवधि के अन्तर्गत, जोकि उस मामले की परिस्थितियों को देखते हुए सरकार द्वारा युक्तियुक्त रूप मे (Reasonable) पर्याप्त समझी जाए, अपने बचाव के सम्बन्ध मे एक लिखित वक्तव्य देगा और यह स्पष्ट करेगा कि क्या वह स्वयं सुनवाई के लिए उपस्थित होना चाहता है।

(४) सम्बन्धित सरकारी कर्मचारी सरकार से यह प्रार्थना कर सकता है कि वह लिखित वक्तव्य अथवा विवरण-पत्र तैयार करने के सम्बन्ध में उसको आवश्यक *सरकारी कागजातों अथवा अभिलेखों (Official records) तक पहुँचने की आज्ञा* प्रदान करे। परन्तु यदि सरकार की राय मे ऐसे अभिलेख उस मामले से बिल्कुल भी *सम्बद्ध नहीं हैं, अथवा यदि लोक-हित की दृष्टि से ऐसी पहुँच की आज्ञा देना वाछनीय* नहीं है तो वह यथेष्ट कारणों के आधार पर, जिन्हे कि लिखित रूप मे रखा जाना चाहिये, उसको ऐसी पहुँच (Access) की आज्ञा देने से इन्कार कर सकती है।

(५) उप-नियम (३) के अनुसार उस कर्मचारी से लिखित वक्तव्य प्राप्त होने के पश्चात, अथवा यदि निर्धारित अवधि के अन्तर्गत ऐसा कोई लिखित वक्तव्य प्राप्त न हो तब सरकार, यदि आवश्यक समझे तो उस कर्मचारी के विरुद्ध लगाये आरोपो की जाँच के लिए एक जाँच मण्डल (Board of Inquiry) अथवा जाँच अधिकारी (Inquiry officer) की नियुक्ति कर सकती है। इस प्रकार वह उपनियम (६) के उपबन्ध के अनुसार आरोपो की जांच कर लेगी। यदि सरकार ऐसे जांच मण्डल अथवा जाँच अधिकारी की नियुक्ति की आवश्यकता नही समझती, तो वह आरोपो अथवा अभियोगो की जाँच ऐसी रीति से करेगी जो उसे उपयुक्त प्रतीत हो।

(६) यदि सम्बद्ध सरकारी कर्मचारी स्वयं व्यक्तिश सुनवाई के लिए उपस्थित होना चाहता है तो उसे ऐसा करने दिया जायेगा। यदि वह कहता है कि मामले की मौखिक जाँच (Oral inquiry) की जाए अथवा यदि सरकार ऐसा करने का आदेश दे, तो यथास्थिति (As the case may be) जाँच-मण्डल अथवा जाँच अधिकारी द्वारा मौखिक जाँच की जायेगी। ऐसी जाँच के समय उन आरोपो के सम्बन्ध मे, जिन्हे कि सम्बद्ध कर्मचारी ने स्वीकार नही किया है, गवाहियाँ ली जायेंगी और उस कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि ऐसे गवाहो (*Witnesses*) *से जिरह (Cross* examination) कर सके, व्यक्तिश स्वयं गवाही दे सके तथा इच्छानुसार गवाहो को बुला सके।

किन्तु यथास्थिति जांच मण्डल अथवा जांच अधिकारी ऐसे गवाह को बुलाने की आज्ञा देने से इन्कार कर सकता है, पर इन्कार के ऐसे कारणों को लेखबद्ध किया जाना चाहिए।

(७) *जहाँ जांच-मण्डल की नियुक्ति की जायेगी तो उसमें दो से कम वरिष्ठ* अधिकारी (Senior officers) नहीं होंगे किन्तु ऐसे मण्डल का कम से कम एक सदस्य उस सेवा का पदाधिकारी होगा जिसमे कि वह सरकारी कर्मचारी सम्बन्धित है।

(८) इस नियम के उपबन्धो (Provisions) के अन्तर्गत सेवा के एक सदस्य के विरुद्ध जाच मे जो कार्यवाहिया (Proceedings) सचालित की जायेंगी उनमे गवाही का पर्याप्त विवरण, निर्णयो का एक प्रतिवेदन (Report) तथा वे कारण सम्मिलित होगे जिन पर कि वे निर्णय आधारित हो, परन्तु इन कार्यवाहियों मे कर्मचारी को दिये जाने वाले दण्ड के सम्बन्ध मे तब तक कोई भी सिफारिश नही होगी जब तक कि *सरकार ऐसी सिफारिश करने को विशेष रूप से न कहे।*

(६) सेवा के सदस्य (सरकारी कर्मचारी) के विरुद्ध जाच पूर्ण हो जाने के पश्चात और दण्ड देने वाली सत्ता द्वारा दिये जाने वाले दण्ड के सम्बन्ध मे सामयिक अथवा अस्थायी निर्णय करने के पश्चात्, यदि प्रस्तावित दण्ड पदच्युति (Dismissal), पद से हटाये जाने (Removal), अनिवार्य सेवा-निवृत्ति (Compulsory retirement) अथवा पंक्तिच्युति करने (Reduction in rank) का है तो, दोषारोपित सरकारी कर्मचारी को जाच के प्रतिवेदन की एक प्रतिलिपि दी जायेगी और उसको कारण बतलाने (To show case) का एक और अवसर प्रदान किया जायेगा कि प्रस्तावित दण्ड उस पर क्यो न लागू कर दिया जाये।

आयोग से परामर्श (Consultation with the Commission)—सरकारी कर्मचारी को नियम ३ मे उल्लिखित कोई भी दण्ड दिये जाने का आदेश सरकार द्वारा आयोग से परामर्श किये बिना जारी नही किया जायेगा।

किन्तु ऐसे मामलो मे, जिनके बारे मे कि राज्य सरकार तथा आयोग के बीच मतभेद हो सम्पूर्ण विषय केन्द्र सरकार को सौंप दिया जायेगा और उसके बारे म उसका निर्णय *अन्तिम होगा।*

अनुशासनिक कार्यवाहियों के समय निलम्बन (Suspension during Disciplinary Proceedings) —(१) किसी भी मामले मे लगाये गये अभियोगो (Charges) तथा तत्सम्बन्धी परिस्थितियो को देखते हुए यदि वह सरकार, जोकि अनुशासनिक कार्यवाही कर रही है, उस सरकारी कर्मचारी का निलम्बित अथवा मुअत्तल करना आवश्यक अथवा वाछनीय समझती है जिसके विरुद्ध कि ऐसी अनुशासनिक कार्यवाहियां प्रारम्भ की जा रही हैं तो वह सरकार—

(क) यदि वह सरकारी कर्मचारी उसके अधीन सेवा कर रहा है तो उसको निलम्बित अथवा मुअत्तल (Suspend) करने का आदेश जारी कर सकती है, अथवा

(ख) यदि वह सरकारी कर्मचारी अन्य सरकार क अधीन सेवा कर रहा है तो वह उस सरकार से प्रार्थना कर सकती है कि उस कर्मचारी के मामले की जाच का निर्णय होने तक तथा उस सम्बन्ध म अन्तिम आदेश जारी होने तक वह उसको निलम्बन के अन्तर्गत रखे।

किन्तु ऐसे मामलो मे, जिनके बारे मे कि दो राज्य सरकारो (State Governments) के बीच मतभेद हो, सम्पूर्ण विषय केन्द्र सरकार को सौंप दिया जायेगा और इस सम्बन्ध मे उसका निर्णय अन्तिम होगा।

(२) एक सरकारी कर्मचारी को, जिसे कि दण्डापराध (Criminal charge) अथवा अन्य किसी अपराध के कारण अडतालीस घण्टे से अधिक की अवधि के लिए सरकारी सरक्षण मे नजरबन्द (Detained) रखा गया हो, सम्बन्धित सरकार द्वारा इस नियम के अन्तर्गत निलम्बित (मुअत्तल) हुआ ही माना जायेगा।

(३) उस सरकारी कर्मचारी को, जिसके विरुद्ध कि दण्डापराध का मामला विचाराधीन हो, उस सरकार की इच्छा पर जिसके अन्तर्गत वह सेवा कर रहा है, अनुशासनिक कार्यवाहियो की अवधि की समाप्ति तक निलम्बित किया जा सकता है, यदि उसका अपराध सरकारी सेवक के रूप मे उसके पद से सम्बन्धित हो अथवा उससे उसके कर्तव्यों के निष्पादन मे परेशानी उत्पन्न होने की अथवा नैतिक पतन की सम्भावना हो।

अपील का अधिकार (Right of Appeal)—(१) प्रत्यक सरकारी कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह नियम ३ के खण्ड (१), (२) (३) व (४) मे उल्लिखित दण्डो मे से कोई दण्ड उसको दिये जाने के सम्बन्ध मे राज्य सरकार द्वारा पास किये गये आदेश के विरुद्ध, जैसी कि आगे व्यवस्था दी गई है, केन्द्र सरकार से अपील कर सके।

(२) सरकारी कर्मचारी को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह नियम ६ के उप नियम २ (ख) तथा ३ (ख) के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा पास किये गए किसी भी आदेश के विरुद्ध केन्द्र सरकार से अपील कर सके, ऐसी अपील राज्य सरकार द्वारा पास किये गए किसी ऐसे आदेश (Order) के विरुद्ध भी की जा सकेगी जोकि—

(अ) उसके पद पर लागू होने वाले नियमों (Rules) के द्वारा सचालित उसकी सेवा की दशाओ, वेतन, भत्तो अथवा पेन्शन मे ऐसा परिवर्तन कर दे जो उसके लिए हानिकर हो, अथवा

(आ) कर्मचारी की सेवा की दशाओ, वेतन, भत्ते अथवा पेन्शन का नियमन करने वाले नियमों मे से किसी भी नियम के उपबन्धो (Provisions) की ऐसी व्याख्या करे जो कि उसके लिए हानिकर हो, या

(इ) अपने प्रभाव से कनिष्ठ वेतन क्रम से ज्येष्ठ वेतन-क्रम मे उसकी पदोन्नति (Promotion) का उल्लघन करे, अथवा

(ई) अपने प्रभाव से दक्षता अवरोध (Efficiency bar) उसकी वेतन-वृद्धि रोक दे।

वे परिस्थितियां जिनमे अपील करने का अधिकार नहीं होता
(Cases Where There is no Right of Appeal)

(१) किसी भी सरकारी कर्मचारी को केन्द्र सरकार द्वारा पास किये गए आदेश के सम्बन्ध मे अपील करने का अधिकार नही होगा।

(२) नियम १८ के अन्तर्गत अपील पर प्रतिबन्ध लगाने वाले समर्थ प्राधिकारी (Competent authority) के आदेश के विरुद्ध भी अपील नही की जा सकेगी।

(३) यह माना जायेगा कि उपनियम (१) अथवा उप-नियम (२) मे ऐसी कोई बात नही है जो कि नियम २० के उपबन्धो के अन्तर्गत तथा उनके ही अनुसार राष्ट्रपति (President) के समक्ष एक विनति पत्र (Memorial) प्रस्तुत करने के सरकारी कर्मचारी के अधिकार को प्रभावित करे अथवा उसमे कटौती करे।

अपील सुनने वाली सत्ता द्वारा अपीलो पर विचार
(Consideration of Appeals by Appellate Authority)

(१) नियम ३ के खण्ड (१), (२), (३) व (४) मे उल्लिखित कोई भी दण्ड दिये जाने के आदेश के विरुद्ध अपील किये जाने की स्थिति मे केन्द्र सरकार (Central Government) इस बात पर विचार करेगी कि

(क) क्या वे तथ्य, जिन पर कि आदेश आधारित है, प्रस्थापित किये गये हैं,

(ख) क्या प्रस्थापित तथ्य ((Established facts) अनुशासनिक कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार प्रस्तुत करते हैं ; तथा

(ग) क्या दिया गया दण्ड अत्यधिक है, पर्याप्त है अथवा अपर्याप्त है और यह विचार करने के पश्चात्, आयोग के परामर्श से, ऐसा आदेश जारी करेगी जोकि वह उचित समझे।

(२) नियम १० के उप नियम (२) के अन्तर्गत दायर की गई अपील के मुकदमे मे केन्द्र सरकार, उस मामले की सम्पूर्ण परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए, ऐसा आदेश जारी करेगी जोकि उसे उचित तथा न्यायसगत प्रतीत हो।

(३) उप नियम (१) अथवा उप-नियम (२) के अन्तर्गत दायर की गई अपील म केन्द्र सरकार द्वारा दिया गया प्रत्येक आदेश अन्तिम होगा तथा सम्बन्धित राज्य सरकार ऐसे आदेश को तुरन्त ही कार्यान्वित करेगी।

अपील दायर करने की प्रक्रिया व रूप
(Form and Procedure for Submission of Appeals)

(१) अपील दायर करने वाला प्रत्येक सरकारी कर्मचारी पृथक् पृथक तथा स्वय अपने नाम से ऐसा कर सकेगा।

(२) इन नियमों के अन्तर्गत दायर की जाने वाली प्रत्येक अपील स्वराष्ट्र मन्त्रालय मे भारत सरकार के सचिव को सम्बोधित की जायेगी और उसके सम्बन्ध मे निम्न बातों का ध्यान रखा जायेगा ।

(क) उस अपील में ऐसी सम्पूर्ण सामग्री, विवरण-पत्र तथा दलीलें सम्मिलित हो जिन पर कि अपील करने वाला कर्मचारी निर्भर हो ,

(ख) उसमे अपमानजनक अथवा अनुचित भाषा का प्रयोग न किया जाये, और (ग) अपील प्रत्येक पहलू से पूर्ण हो ।

(३) ऐसी प्रत्येक अपील उस कार्यालय के द्वारा, जिसके अधीन की अपील करने वाला कर्मचारी उस समय कार्य कर रहा हो, तथा उस सरकार के द्वारा, जिस के आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई हो, प्रस्तुत की जायेगी ।

इन नियमों के निर्माण से पूर्व दायर की गई अपीलें
(Appeals preferred prior to Commencement of these Rules)

इन नियमो मे ऐसी कोई बात नही है जोकि किसी कर्मचारी को अपील करने के किसी ऐसे अधिकार से वंचित करे जोकि उसे इन नियमो के बनाने तथा लागू होने से पूर्व जारी किये गये किसी आदेश की स्थिति मे प्राप्त होता । इन नियमो के लागू होने के समय रुकी पडी हुई अथवा उसके बाद दायर की गई किसी भी अपील को इन नियमो के अन्तर्गत दायर की गई अपील के सदृश ही माना जायेगा और उसका निपटारा भी इसी प्रकार किया जायेगा कि मानो यह एक ऐसे आदेश (Order) के विरुद्ध प्रेषित की गई अपील है जिसके विरुद्ध कि इन नियमो के अन्तर्गत अपील दायर की जा सकती थी ।

पुनर्विचार अथवा संशोधन :

इन नियमो मे उल्लिखित किसी बात के होते हुए भी, किन्तु सदा नियम ४ के उप-नियम (१) तथा नियम ६ के उपबन्धो के अधीन, यथास्थित (As the case may be) केन्द्र सरकार अथवा सम्बन्धित राज्य सरकार, नियम १२ के अन्तर्गत जारी किये गए आदेश को छोड कर, अन्य किसी भी ऐसे आदेश के सम्बन्ध मे पुनर्विचार (Review) तथा उसमे पुन संशोधन (Revision) कर सकती है जोकि इन नियमो के द्वारा मिली हुई शक्तियो को क्रियान्वित करने के लिए उनके द्वारा जारी किया गया हो, किन्तु ऐसा संशोधन, अपील दायर होने की स्थिति मे तो आदेश जारी होने की तिथि से ६ मास की अवधि के अन्तर्गत, और यदि ऐसी अपील न की गई हो तो उस स्थिति मे, प्रारम्भिक आदेश जारी होने के बाद एक वर्ष की अवधि के अन्तर्गत ही किया जा सकेगा

किन्तु शर्त यह है कि जहाँ ऐसे किसी आदेश द्वारा किये जाने वाले दण्ड मे वृद्धि करने का प्रस्ताव किया गया हो, तो सम्बन्धित सरकारी कर्मचारी को उस प्रस्तावित वृद्धि के विरुद्ध कारण दिखलाने का अवसर प्रदान किया जायेगा ।

एक और शर्त यह भी है कि जहाँ प्रारम्भिक आदेश, यथास्थिति, केन्द्र सरकार अथवा सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा आयोग से परामर्श करने के पश्चात् जारी किया गया हो तो आयोग से परामर्श किए बिना उसमें कोई संशोधन नहीं किया जायेगा।

विनति-पत्र (Memorials)

(१) सेवा के एक सदस्य (A member of the service) को यह अधिकार होगा कि वह केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के ऐसे किसी भी आदेश के विरुद्ध जिसके द्वारा कि वह पीड़ित हुआ है राष्ट्रपति के समक्ष एक विनति-पत्र प्रस्तुत कर सके, किन्तु ऐसा विनति-पत्र उक्त आदेश के जारी होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किया जायगा।

(२) प्रत्येक विनति पत्र विनतिकर्त्ता (Memorialist) के हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणित हो और विनतिकर्त्ता द्वारा ही अपने उत्तरदायित्व पर प्रस्तुत किया जायेगा।

(३) इन नियमों के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये प्रत्येक विनति-पत्र में निम्न बातों का ध्यान रखा जायगा —

(क) उनमें ऐसी सम्पूर्ण सामग्री, विवरण-पत्र तथा दलीलें सम्मिलित हों जिन पर कि विनतिकर्त्ता निर्भर हो,

(ख) उसमें अपमानजनक अथवा अनुचित भाषा का प्रयोग न हो,

(ग) विनति-पत्र स्वयं में प्रत्येक पहलू से पूर्ण हो, तथा

(घ) उसके अन्त में एक विशिष्ट प्रार्थना अथवा प्रतिवेदन किया जाए।

(४) यदि विनति-पत्र राज्य सरकार के आदेशों के विरुद्ध है, तो उसे सम्बन्धित राज्य सरकार के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए, और यदि विनति पत्र केन्द्र सरकार के आदेशों के विरुद्ध है, तो वह केन्द्र सरकार से उस मन्त्रालय (Ministry) अथवा उपयुक्त प्राधिकारी के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा जिसके अन्तर्गत कि वह सरकारी कर्मचारी उस समय कार्य कर रहा हो।

(५) उप-नियम (४) के अन्तर्गत प्रेषित विनति-पत्र के साथ सम्बन्धित सामग्री एवं तथ्यों (Facts) का एक संक्षिप्त विवरण-पत्र संलग्न होगा, और जब तक कि ऐसा न करने के विशिष्ट कारण वर्तमान न हों, विनति-पत्र उस विषय के सम्बन्ध में, यथास्थिति—

(क) सम्बन्धित राज्य सरकार की, या

(ख) केन्द्र सरकार के उस मन्त्रालय अथवा उपयुक्त प्राधिकारी की, जिसके अन्तर्गत कि वह सरकारी कर्मचारी उस समय काम कर रहा हो, अथवा

(ग) सम्बन्धित राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार, दोनों की ही सम्मति अंकित होगी।

(६) वह सत्ता (Authority), जिसके आदेशों के विरुद्ध इस नियम के अन्तर्गत एक विनति-पत्र प्रस्तुत किया गया है, उस सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा दिए गये किसी भी आदेश को कार्यान्वित करेगी।

IV. भारत में लोक-सेवकों के लिए निवृत्ति लाभ

(Retirement benefits to Public Servants in India)

केन्द्र सरकार के कर्मचारियो के लिए निवृत्ति लाभो की दो मुख्य प्रणालियाँ प्रचलित हैं अर्थात् पेन्शन तथा अंशदायी भविष्य निधि (Contributory provident fund) प्रचलित पेन्शन प्रणाली के अन्तर्गत कर्मचारी सेवा-निवृत्त होने पर जीवन भर के लिए आवर्ती *(Recurring)* मासिक धन तथा सेवोपहार *(Gratuity)* के रूप मे एक मुश्त रकम (A lump sum) प्राप्त करता है, इन दोनो का ही निर्धारण कर्मचारी की सेवा की अवधि को दृष्टिगत रख कर किया जाता है। उसकी मृत्यु होन की दशा मे, कुछ शर्तो के अन्तर्गत, उसके परिवार को एक सीमित अवधि के लिए मासिक धनराशि प्राप्त होती है। भविष्य निधि प्रणाली के अन्तर्गत कर्मचारी को एक मुश्त रकम मिलती है जिसमे कि उसका अपना व सरकार का अंशदान तथा उस पर मिलने वाल ब्याज सम्मिलित होता है।

कर्मचारियो को वैधानिक रूप से पेन्शन का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता, ऐसी बात नही है कि जिस दिन कोई कर्मचारी सेवा-निवृत्त *(Retire)* होता है उसी दिन से पेन्शन आप से आप ही देय (वाजिब) हो जाती हो। इसके लिए तो प्रार्थना पत्र देना होता है; और इसकी अनुमति केवल तभी दी जाती है जबकि उपयुक्त प्राधिकारी इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि कुछ निश्चित दशाए एव शर्तें पूर्ण कर दी गई हैं तथापि, इसका अर्थ यह नही है कि पेन्शन को पेन्शन वाली नौकरी से प्राप्त होने वाले सामान्य लाभो का एक भाग नहीं माना जाता। यह एक ऐसा तत्व है जिसे कि वेतन की दरो का निर्धारण करते समय दृष्टिगत रखा जाता है, और वास्तव मे इसे कर्मचारी की उस सामान्य आशा का ही एक भाग समझा जाता है जिस पर कि वह यथार्थता एव निश्चितता के साथ भरोसा कर सकता है। वस्तु-स्थिति यह है कि यहाँ तक कि कर्मचारियो की ओर से भी पेन्शनों की बार-बार अथवा अनुचित अस्वीकृति की या पेन्शनो मे कमी करने अथवा उनको जब्त करने की कोई शिकायत नही की गई। इस प्रकार इसका व्यावहारिक रूप विवादास्पद नही है बल्कि सैद्धान्तिक रूप ही विवादास्पद है। यह आरोप लगाया जाता है कि कर्मचारी को मिलने वाली पेन्शन के साथ सन्तोषजनक सेवा तथा इससे भी अधिक भविष्य मे अच्छा आचरण करने की जो शर्त लगाई गई है वह कर्मचारी को हर समय भयभीत रखती है और बहुधा उसको अपने मन की राजनैतिक एव श्रमिक सघ की कार्यवाहियो मे भाग लेने मे रोकती है।

सामान्य शर्तें

(General Conditions)

(१) प्रत्येक पेन्शन की स्वीकृति तथा उसके जारी रहने की एक अन्तर्निहित शर्त यह होती है कि पेन्शन प्राप्त करने वाले व्यक्ति का आचरण भविष्य मे अच्छा रहना चाहिए।

(२) यदि केन्द्र सरकार को सम्बन्धित राज्य सरकार से ऐसी सूचना प्राप्त हो कि सेवा-निवृत्त होने के पश्चात् पेन्शन प्राप्त करने वाला कोई व्यक्ति किसी गंभीर अपराध (Crime) अथवा दुर्व्यवहार या दुराचरण (Misconduct) का दोषी ठहराया गया है तो केन्द्र सरकार एक निश्चित अवधि के लिए अथवा अनिश्चित काल के लिए, ऐसी किसी भी पेन्शन अथवा उसके अंश को रोक सकती है अथवा वापिस ले सकती है।

(३) उप-नियम (२) के अन्तर्गत किसी भी सम्पूर्ण पेन्शन अथवा उसके अंश की अदायगी रोकने अथवा उसको वापिस लेने के किसी भी प्रश्न पर केन्द्र सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।

सीमा (Limitation)—कोई भी कर्मचारी एक ही कार्यालय में एक ही समय में अथवा *एक ही सतत सेवा से दो पेन्शनें नहीं प्राप्त कर सकता।*

सेवा से हटाया जाना, पदच्युति अथवा त्यागपत्र (Remsoval, Dismissal or Resignation from Service)—(१) ऐसे किसी भी व्यक्ति को निवृत्ति लाभों की स्वीकृति नहीं दी जा सकती जिसको पदच्युत किया गया हो, या सेवा में हटाया गया हो अथवा जिसने सेवा से त्याग पत्र दिया हो।

किन्तु, यदि किसी विशिष्ट मामले की परिस्थितियों की दृष्टि से ऐसा करना अनावश्यक एवं उचित हो तो राज्य सरकार उस व्यक्ति के लिए, जिसे कि पदच्युत किया गया हो अथवा सेवा से हटाया गया हो, अनुकम्पा भत्ते (Compansionate allowances) की स्वीकृति दे सकती है जोकि उस निवृत्ति लाभ के दो तिहाई से अधिक नहीं होना चाहिए जितना कि उसे उस स्थिति में प्राप्त होता जब कि वह असमर्थ हो गया होता और पदच्युत न किया गया होता अथवा सेवा से न हटाया गया होता।

(२) जब *किसी सरकारी कर्मचारी से, एक वैधानिक अथवा अन्य निकाय* (Body) के अन्तर्गत उसकी नियुक्ति की एक शर्त के रूप में, सेवा निवृत्त होने अथवा सेवा से त्याग-पत्र (Resignation) देने की माग की जाए, तो उसे उतने निवृत्ति लाभों की स्वीकृति दी जायगी जितने का कि वह उस समय अधिकारी (हकदार) होता जबकि वह अशक्त अथवा असमर्थ हो गया होता और सेवा से त्याग-पत्र न देता अथवा सेवा निवृत्त न होता।

पेन्शन से प्रतिलब्धि अथवा वसूली
(Recovery from Pension)

केन्द्र सरकार अपना यह अधिकार सुरक्षित रखती है कि यदि पेन्शन प्राप्त करने वाला कोई व्यक्ति अपने सेवा-काल में, जिसमें कि सेवा-निवृत्त (Retire) हो जाने के पश्चात् पुन नौकरी पर लगने के समय की सेवा भी सम्मिलित है, विभागीय अथवा न्यायिक कार्यवाहियों से गम्भीर दुर्व्यवहार अथवा दुराचार (Misconduct) का दोषी पाया जाए अथवा उसके दुराचरण *अथवा उपेक्षा (Negligence) से केन्द्र*

या राज्य सरकार को कोई आर्थिक हानि हुई हो तो वह (केन्द्र सरकार), स्थायी रूप से अथवा एक निश्चित अवधि के लिए उनकी सम्पूर्ण पेन्शन या उसके अश की अदायगी पर रोक लगा सके अथवा उसको वापिस ले सके तथा केन्द्र अथवा राज्य सरकार को जो आर्थिक हानि हुई हो, वह सम्पूर्ण या उसका भाग उसकी पेन्शन से वसूल करने का आदेश दे सके।

सेवा-निवृत्ति पेन्शन

(Retirement Pension) :

(१) सेवा का कोई भी सदस्य, जिसने सेवा के ३० वर्ष पूरे कर लिए हो, राज्य सरकार को लिखित मे कम से कम तीन माह की पूर्व सूचना (Previous notice) देकर सेवा से निवृत्त हो सकता है।

(२) राज्य सरकार, केन्द्र सरकार की अनुमति लेकर तथा सेवा के उस सदस्य को जिसने कि सेवा के ३० वर्ष पूरे कर लिए हो, लिखित मे कम से कम तीन माह की पूर्व सूचना देकर उससे सेवा-निवृत्त होने की माग कर सकती है।

(३) सेवा के उस सदस्य को, जोकि उपनियम (१) अथवा (२) के अन्तर्गत, सेवा निवृत्त हुआ हो, सेवा-निवृत्ति पेन्शन तथा 'मृत्यु व निवृत्ति सेवोपहार' (Death Com retirement gratuity) की स्वीकृति दी जायेगी।

निवृत्ति लाभो की स्वीकृति की शर्तें

(Conditions for grant of Retirement Benefits)

(१) इन नियमो के अन्तर्गत मिलने वाले सम्पूर्ण निवृत्ति-लाभ एक स्वाभाविक घटना-क्रम के रूप मे अथवा उस समय तक नही प्रदान किए जायेंगे जब तक कि उनकी सेवा पूर्णतया सन्तोषजनक न रही हो।

(२) यदि कर्मचारी की सेवा पूर्णतया सन्तोषजनक नही रही है तो केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार की सिफारिश पर उक्त नियमो के अन्तर्गत मिलने वाले निवृत्ति लाभो की राशि मे उस सीमा तक कमी की जा सकती है जितनी कि वह केन्द्र सरकार) उचित तथा उपयुक्त समझे।

किन्तु यदि एक बार निवृत्ति लाभो की स्वीकृति प्रदान कर दी जाए तो फिर इस आधार पर उनमे कमी नही की जा सकती कि सेवा के पूर्णतया असन्तोषजनक रहने का प्रमाण निवृत्ति-लाभो की स्वीकृति देने के पश्चात् उपलब्ध हुआ।

(३) किसी भी मामले पर, जिसमे कि निवृत्ति-लाभो अथवा अनुकम्पा, भत्ते (Compassionate allowance) की स्वीकृति दी जा चुकी हो, उस समय तक, जब तक कि ऐसा करने के विशिष्ट कारण न वर्तमान हो, इस आधार पर पुनर्विचार नही किया जायेगा कि स्वीकृत धनराशि इन नियमो के अन्तर्गत मिलने वाली अधिकतम राशि से कम है।

परिवार पेन्शन
(Family Pension)

(१) नियमानुकूल सेवा (Qualifying service) के २० वर्ष पूर्ण हो जाने के पश्चात् किसी सरकारी कर्मचारी की मृत्यु हो जाने की स्थिति मे उसके परिवार को परिवार पेन्शन की स्वीकृति दी जा सकती है परन्तु यह पेन्शन उप-नियम (३) मे उल्लिखित धनराशि से अधिक नही होनी चाहिए।

किन्तु अपवाद भूत परिस्थितियो म, उस सरकारी कर्मचारी के परिवार को भी परिवार पेन्शन की स्वीकृति दी जा सकती है जिसकी मृत्यु नियमानुकूल सेवा मे २० वर्ष से कम अवधि पूर्ण करने के पश्चात् हुई हो, किन्तु १० वर्ष से कम अवधि नही।

ऐसा परिवार-पेन्शन का भुगतान कुल १० वर्ष की अवधि तक किया जा सकेगा।

वेतन आयोग (Pay Commission) ने निम्नलिखित निवृत्ति-लाभों की सिफारिश की थी—

(१) किसी भी सम्पूर्ण पेन्शन अथवा उसके एक भाग को वापिस लेने का अधिकार कुछ अत्यन्त अपवादभूत (Exceptional) तथा विशिष्ट आकस्मिक अवसरो तक ही सीमित रहना चाहिए, और इस पर भी इस अधिकार का प्रयोग तथा जहाँ प्रारम्भिक आदेश अधीनस्थ सत्ता (Subordinate authority) द्वारा किया गया हो वहाँ उसके विरुद्ध अपील का निश्चय केवल सघीय लोक-सेवा आयोग के परामर्श से ही किया जाना चाहिए।[1]

(२) सेवोपहार (Gratuity) की दर मे परिवर्तन किया जाना चाहिए जिससे कि नियमानुकूल सेवा के तीस वर्ष पूर्ण हो जाने पर अधिकतम धनराशि उपलब्ध की जा सके।[2]

(३) यदि अस्थायी सेवा पर कार्य करने वाला कोई कर्मचारी अपने उसी अथवा अन्य किसी पद पर स्थायी हो जाए, तो पेंशन की दृष्टि से उसकी इस अस्थायी सेवा को भी पूर्ण सेवा म ही गिना जाना चाहिए। प्रतिरक्षा सस्थानो (Defence establishments) म कुछ कर्मचारियो की असाधारण सेवा (Extraordinary service) की गणना अर्धरूप (Half) म की जानी चाहिए, एक चौथाई रूप म नही जैसा कि आजकल होता है।[3]

(४) पेंशन की दृष्टि स भारत से बाहर लिए जाने वाले अवकाश (Leave) को उसी सीमा तक गिना जाना चाहिए जैसे कि भारत मे लिए जाने वाले अवकाश को।[4]

1 *Ibid* Paragraph 9
2 *Ibid* Paragraph 12
3 Ibid Paragraphs 13 18
4 Ibid Paragraph 15

(५) जब नियमानुकूल सेवा की कुल अवधि, उस अवधि से भी छः माह से अधिक हो जाए जितनी कि पेंशन प्राप्त करने के लिए आवश्यक होती है, तो पेंशन की मात्रा का निर्धारण करते समय आधे वर्ष की पेंशन के अतिरिक्त-लाभ की आज्ञा प्रदान कर दी जानी चाहिए ।[1]

(६) उन मामलों में स्थानापन्न (Officiating), विशिष्ट (Special) तथा वैयक्तिक (Personal) वेतन के पूरे भाग की गणना करते रहना चाहिए जिनमें कि वर्तमान समय में ऐसा किया जाता है, परन्तु अन्य मामलों में, विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार, सेवा के गत तीन वर्षों के ऐसे वेतन के पूरे अथवा आधे भाग को विचारार्थ लिया जाना चाहिए ।[2]

(७) पेंशन के लिए डाक्टरों के अनभ्यास भत्ते (Non-practising allowance) की भी गणना की जानी चाहिए ।

(८) जब निर्वाह-खर्च (Cost of living) में वृद्धि हो जाए तो सरकार उन व्यक्तियों को कुछ सहायता देने के प्रश्न पर विचार कर सकती है जिनकी पेंशन २०० रु० मासिक से अधिक न हो ।[3]

(९) जिस स्थायी कर्मचारी की मृत्यु नियमानुकूल सेवा के पाँच वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही हो जाए, उसके परिवार को दिये जाने वाले न्यूनतम अथवा सेवोपहार (Gratuity) की मात्रा छः माह के परिलाभों (Emoluments) के तुल्य होनी चाहिए, परन्तु यदि कर्मचारी की मृत्यु सेवा के प्रथम वर्ष में ही हो जाए तो ऐसी परिस्थितियों में सेवोपहार की न्यूनतम मात्रा दो माह के सेवोपहार के तुल्य होनी चाहिए ।[4]

(१०) जो सरकारी कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि (Contributary provident fund) में अंशदान देता हो उसके परिवार को दिये जाने वाले सेवोपहार की मात्रा उस अन्तर (Difference) के तुल्य होनी चाहिए जोकि उस धनराशि के बीच, जोकि उसे उस समय प्राप्त होती जबकि वह पेंशन वाले संस्थान (Establishment) में सेवा कर रहा होता, तथा उसकी भविष्य निधि में दिये जाने वाले सरकारी अंशदान (उस पर प्रतिशत ब्याज सहित) के बीच पाया जाए । यदि ऐसे कर्मचारी की मृत्यु अंशदायी भविष्य निधि में उसके प्रवेश का पात्र बनने से पूर्व ही हो जाए, तो उसको मिलने वाले सेवोपहार की मात्रा वही होनी चाहिए जो कि शुद्ध रूप से अस्थायी कर्मचारियों के लिए होती है ।[5]

---

1 *Ibid* Paragraph 23
2 *Ibid* Paragraph 24
3 *Ibid* Paragraph 29
4 *Ibid* Paragraph 32
5 *Ibid* Paragraph 34

(११) विधवा तथा बच्चों की पेन्शन लाभ योजना, जो कि अंशदान पर आधारित होती है, के स्थान पर वर्तमान परिवार पेंशन योजना का प्रचलन होना चाहिए।

(१२) जिन अर्ध-सरकारी संस्थाओं का वित्तीय पोषण उपकरों (Cesses) अथवा सरकारी अनुदानों (Grants) के द्वारा किया जाता हो, उनके वैज्ञानिक कर्मचारियों की नियुक्ति जब स्थायी सरकारी सेवा में हो जाए तो पेंशन की दृष्टि से उन संस्थाओं की उनकी सम्पूर्ण सेवा की गणना नियमानुकूल सेवा (Qualifying service) में ही की जानी चाहिए, बशर्ते कि उनके पूर्व नियोक्ता (Previous employers) अंशदायी भविष्य निधि में कर्मचारी की अपने यहाँ की अवधि के अपने अंशदान के बदले में सरकार को उसी अवधि का पेंशन का अंशदान अदा करने को प्रस्तुत हो जायें।[1]

(१३) सरकार तथा विश्वविद्यालयों के बीच वैज्ञानिकों एवं शिल्पकलाविदों (Technologists) की पारस्परिक अदला-बदली को सुविधाजनक बनाने के लिए, उस पेंशन अंशदान (Pensionary contribution) को, जोकि विश्वविद्यालयों को उस समय देना पड़ता है जबकि वे किसी सरकारी सेवक की सेवा प्राप्त करते हैं, उस दर तक सीमित कर दिया जाना चाहिए जिस दर से कि विश्वविद्यालय अपने अन्य कर्मचारियों की भविष्य निधि में अपना अंशदान देते हैं।[2]

निष्कर्ष
(Conclusion)

कर्मचारियों के उत्साह तथा अनुशासन का महत्व (Importance of Employee Morale and Discipline)

सेवा की उपरोक्त दशायें कर्मचारियों के अनुशासन तथा उत्साह को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। कर्मचारियों का उच्चतम उत्साह प्रशासन के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। कर्मचारियों से रचनात्मक तथा ठोस कार्य की आशा तभी *की जा सकती है जब उनका उत्साह तथा अपने कार्य से लगाव खूब ऊंचा* हो और वे प्रशासनिक संगठन व संस्थात्मक चिंतन में एक सच्ची हिस्सेदारी महसूस करते हों। सारांश में "उत्साह एक स्वस्थ रोजगार व्यवस्था का मापदण्ड भी है तथा एक कार्य-कुशल संगठन के निर्माण का उपयोगी साधन भी है। यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक, एक ऐसी मानसिक दशा को प्रतिबिम्बित करता है जिसमें पुरुष तथा स्त्रियां स्वेच्छा से ही अपनी योग्यता का विकास करने का प्रयास करते हैं और विकसित योग्यता का अपने कार्य में श्रेष्ठतम प्रयोग करते हैं। इसका कारण वह बौद्धिक या नैतिक सन्तोष है, जो उन्हें आत्मानुभूति (Self-relization), अपने चुने हुए क्षेत्र में किये गये विशिष्ट

1 Ibid Paragraph 40
2 Ibid Paragraph 41

कार्यों तथा अपनी सेवा पर गर्व से प्राप्त होता है।"[1] सगठन तथा कर्मचारियो के मध्य एक समरूप दृष्टिकोण का विकास करने के लिए उत्साहवर्द्धक प्रेरणाओ (Incentives) का होना जरूरी है। अपने कार्य को करते समय कर्मचारियो को आत्मानुभूति प्राप्त होनी चाहिए। ऐसी दशायें बनानी चाहिये जिनमे प्रत्येक कर्मचारी अपने को प्रशासनिक सगठन का एक महत्वपूर्ण तथा अभिन्न अग महसूस करे। प्रशासनिक सगठन यदि प्रशासन के मानवीय पहलू पर पर्याप्त तथा उचित ध्यान दे तो वह कर्मचारियो मे एकत्व व समूह भाव को सरलता से पैदा कर सकता है तथा अपने उद्देश्यो की प्राप्ति भी उतनी ही सरलता से कर सकता है। "उच्चतम उत्साह मे बौद्धिक तथा भावात्मक, दोनो गुण होते हैं। इसका बौद्धिक गुण ज्ञान, सूझ-बूझ तथा पारस्परिक विचार-विमर्श पर बल से उपजता है और ये तीनो विशेषतायें सस्थात्मक चिन्तन, नियोजन व मूल्याकन क्रियाओ मे कर्मचारियो के सच्चे दिल से भाग लेने पर निर्भर करती है। ये उत्साह को गतिशीलता प्रदान करती है।"[2] सगठन मे अनुशासन का उचित वातावरण बनाये रखना कर्मचारियो के उत्साह को बढाने का एक तरीका है। अनुशासन का केवलमात्र दण्डात्मक कार्य नही है। इसका अर्थ केवल दण्ड या डाँट-डपट नही है। अनुशासन का अर्थ कर्मचारीगण को उचित-अनुचित का ज्ञान कराने वाली शिक्षात्मक प्रक्रिया भी है। प्रशासन मे लोकतन्त्रीय नेतृत्व प्रदान करने वाले अधिकारियो को चाहिए कि वे कर्मचारियो को केवल दण्ड ही न दे, अपितु उन्हे शिक्षित भी करें, उन्हे समझाये तथा उनसे तर्क-वितर्क करें।[3] कर्मचारियो का उत्साह निम्नलिखित परिस्थितियो पर निर्भर करता है—

(क) कार्य की प्रकृति। यदि कार्य रोचक है या उसका कोई सामाजिक दृष्टि से उपयोगी उद्देश्य है तो कर्मचारीगण उसमे अधिकतम रुचि लेंगे।

(ख) सगठन की नीतियो व कार्यक्रमो की सुस्पष्टता, सचार की उचित व्यवस्था तथा प्रभावशाली नेतृत्व कर्मचारियो के उच्चतम उत्साह के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(ग) कार्य की अच्छी दशाए, उच्चाधिकारियो का निर्मल तथा न्यायपूर्ण चरित्र, मानवीय व्यवहार तथा उत्पादन पक्षीय नीतियो की अपेक्षा कर्मचारी पक्षीय नीतियाँ भी कर्मचारियो के उत्साह की वृद्धि मे योगदान देती है।[4] काफी सीमा तक

---

1 L D White, 'Public Administration' *Encyclopaedia of the Social Science*, Vol 1, page 446, N Y, Macmillan 1930

2 Morstein Marx (Ed) *Elements of Public Administration*, (U S A. 1949), Chapter 21 Morale and Discipline, page 479

3 For further details refer to Morstein Marx (Ed), *op cit*, Chapter 21 Morale and Discipline pages 478–497

4 Also refer to Elton Mayo *The Human Problems of the Industrial Civilization*, (N Y 1933), Dimock, Dimock and Koenig *op cit*, (N Y, 1960), Chapter 27, Motivation and Morale, pages 467–482. Ordway Tead *The Art*

कर्मचारियो का उत्साह सगठन के उच्च प्रबन्ध ग्रधिकारियो की योग्यताग्रो पर निर्भर करता है। कर्मचारियो के प्रति उनकी मनोवृत्ति तथा उनका व्यवहार बहुत कुछ सगठन मे उत्साह को प्रभावित करता है।

सगठन के ग्रध्यक्ष तथा ग्रधीनस्थ कर्मचारियो के पारस्परिक सम्बन्ध एव ऐसा ग्रकेला तत्व है जो सगठन मे उत्साह वर्द्धक क्रिया मे सबसे ग्रधिक योगदान देता है। ग्रध्यक्ष को परिश्रम से उन तत्वो को दूर करने के लिए कदम उठाने चाहिए जो उत्साह निर्माण मे बाधक हैं।' एक "वास्तविक ग्रध्यक्ष" उत्साह ला सकता है किन्तु एक "ग्रध्यक्ष" नही ला सकता। ग्रनुशासन तथा उत्साह की दृष्टि से एक "वास्तविक ग्रध्यक्ष" तथा एक "ग्रध्यक्ष" मे निम्न ग्रन्तर महत्वपूर्ण हैं—

एक ग्रध्यक्ष ग्रधीनस्थ कर्मचारियो को ग्रादेश देता है,
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष उनका पथ-प्रदर्शन करता है।
एक ग्रध्यक्ष ग्रपने ग्रधिकार का ग्राश्रय लेता है,
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष सबकी सद्भावना प्राप्त करता है।
एक ग्रध्यक्ष ग्रपने कर्मचारियो को धमकाता तथा परेशान करता है,
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष उनम लगाव तथा जोश पैदा करता है।
एक ग्रध्यक्ष कहता है "मैं,"
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष कहता है "हम सब"।
एक ग्रध्यक्ष ग्रादेश देता है: "समय पर ग्राग्रो",
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष ग्रपने कर्मचारियो मे समय से पूर्व पहुँचने की इच्छा जागृत करता है।
एक ग्रध्यक्ष ग्राराम के समय से घृणा करता है,
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष ऐसे ग्रवकाश के समय को सयोजित करता है।
एक ग्रध्यक्ष यह जानता है कि काम कैसे किया जाता है,
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष केवल सकेत करता है कि काम कैसे किया जा सकता है।
एक ग्रध्यक्ष कार्य को एक भारी बोझ बना देता है,
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष कार्य को ग्रानन्द में परिणित कर देता है।
एक ग्रयध्क्ष कहता है: "जाग्रो",
एक वास्तविक ग्रध्यक्ष कहता है "ग्राइए चलें"।[1]

---

of Administration, (N Y 1951), 'Collective Bargaining in the Public Service A Symposium', Public Administration Review, American Society of Public Administration, Winter 1962 Vol XXII No I

1 Reproduced Public Administration Review (U S A), Winter 1962, Vol XXII, No I, page 29

संगठन के कर्मचारियों मे उत्साहवर्द्धन के लिए "वास्तविक अध्यक्ष" वाले गुण चाहिए तथा "अध्यक्ष" वाली मनोवृत्ति का उन्मूलन आवश्यक है। वास्तविक अध्यक्ष समूह-भाव सरलता से जागृत कर सकता है और यह समूह-भाव सेवाओं मे उच्च उत्साह का आधार होता है क्योंकि उत्साह (Morale) वास्तव मे "एक व्यक्ति समूह की एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर निरन्तर मिलकर कार्य करने की क्षमता का नाम है।"[3]

1 Alexander H Leighten "Improving Human Relations, Applied Science of Human Relation, Personnel Administration Vol IX, No 6 (July, 1947), P S Also refer to Felix A Nigro, *op cit*, Chapter 12, Morale and Discipline pages 383—411

२२

कर्मचारियों के संगठन अथवा संघ

(Employees Organizations or Associations)

सरकारी कर्मचारियों के अपने निजी सगठन अथवा सघ होते हैं। कर्मचारी-संघवाद (Employee unionism) सरकारी कार्मिक अथवा सेवी-वर्ग प्रशासन (Public personnel administration) का एक महत्वपूर्ण तथ्य बन गया है। वास्तव मे देखा जाए तो कर्मचारियो म सगठनो का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कर्मचारी सामूहिक रूप से अपनी एक सगठित आवाज नही बनाते हैं तो यह बात निश्चित है कि उन्हें निम्न वेतन तथा निकृष्ट कार्य-परिस्थितियो (Poor working conditions) के अन्तर्गत ही कार्य करना होगा। सामूहिक सौदाकारी अथवा मोल-तोल (Collective bargaining) के द्वारा, ये सघ (Unions) कर्मचारियो के लिय सेवा की श्रेष्ठतर शर्तों एव दशाओ की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। उनकी सामान्य मागें होनी हैं उच्चतर वेतन, कार्य के अपेक्षाकृत कम घण्टे, रहने की श्रेष्ठ दशायें, छुट्टिया, भविष्य निधि (Provident Fund) तथा बीमारी, वृद्धावस्था अथवा दुर्घटना के विरुद्ध बीमा। कर्मचारियो की स्थिति मे सुधार का अधिकाधिक प्रयत्न करना ही इन सघो का मुख्य उद्देश्य होता है। कर्मचारियो के सगठनो के अन्य महत्वपूर्ण काय हैं—कर्मचारियो की व्यवस्थाओ (Grievances) अथवा शिकायतो को, यदि कोई हो तो उच्च अधिकारियो के सम्मुख रखना। यदि कर्मचारी यह समझते हैं कि कोई बात अनुचित की गई है तो वे सामूहिक रूप से उसके विरोध मे आवाज उठा सकते हैं। कमचारी सगठन निर्देशन सेवी-वग द्वारा किये जाने वाले अधिकारो के दुरुपयोग की ओर भी ध्यान दिलाते हैं। सरकार के दृष्टिकोण से यह एक ऐसा ठोस लाभ है जिसका उसके लिय अत्यधिक महत्व है। यदि किसी उच्च सरकारी अधिकारी द्वारा कोई अनुचित कार्य किया जाता है तो इन सगठनो के द्वारा वह सरकार की जानकारी म आ जाता है। कमचारियो के सगठन प्रशासकीय अधिकारियो असैनिक अथवा सिविल-सेवा आयोगो तथा विधान-मण्डल के सम्पर्क मे रहते है, और कर्मचारी-वग से सम्बन्धित मामलो एव नीतियो के सम्बन्ध मे बहुधा उनकी राय मागी जाती है। कमचारियो के सगठन, प्रशासन के दोषो की ओर ध्यान दिलाकर तथा उनके सुधार के लिय सुझाव देकर, शासन प्रबन्ध के कार्य-सचालन मे सुधार लाने की दिशा मे सरकार की ठोस सहायता करते है। यही कारण है कि जिसकी वजह से लोकतन्त्रीय देशों मे प्रबन्ध सम्बन्धी योजनाओ मे कर्मचारियो के भाग लेने को अत्यन्त वाछनीय

समझा जाता है। कार्य-कुशलता की दृष्टि से, यह आवश्यक समझा जाता है कि विभागों (Departments) के कार्य-संचालन में कर्मचारियों को गहन रूप में (Intensively), एवं विस्तृत रूप में (Extensively), दोनों ही प्रकार से भाग लेना चाहिये। इस व्यवस्था का लाभ यह होता है कि सेवा-नियोजक (Employer) कर्मचारियों की समस्यायों, कठिनाइयों तथा उनके दृष्टिकोणों से परिचित हो जाते हैं क्योंकि इसके समुचित हल पर ही विभाग की कार्य-कुशलता तथा उनका सुचारु संचालन निर्भर होता है। प्रबन्ध (Management) में भाग लेने (To participate) की इस व्यवस्था से कर्मचारियों को भी यह अवसर मिलता है कि वे सेवा नियोजन की कठिनाइयों एवं समस्याओं को समझ सकें तथा अनुभव कर सकें। इसका परिणाम यह होता है कि कर्मचारियों का दृष्टिकोण उस संगठन के प्रति, जिसमें कि वे सेवा कर रहे होते हैं, सहानुभूतिपूर्ण तथा अनुकूल हो जाता है।

कर्मचारियों के ये संघ (Unions) अपने प्रयत्नों में कहाँ तक रचनात्मक (Constructive) होंगे—यह बात दो तत्वों पर निर्भर होती है। पहला तत्व (Factor) है कर्मचारियों के संगठनों के प्रति उच्च अथवा प्रवर अधिकारियों (Superior officers) का रुख (Attitude)। यदि उच्च पदाधिकारी कर्मचारियों के संघों को अपने विश्वास में ले लें, धैर्यपूर्वक उनकी बातें सुनें, उनका विश्वास करें तो कर्मचारियों के ये संघ अपने प्रयत्नों में रचनात्मक बने रहेंगे। यदि उच्च अथवा प्रवर अधिकारी अपने अवर अथवा निम्न सेवकों (Inferiors) से बात करने में अपनी मानहानि समझते हैं, यदि वे उनके साथ अहंकारपूर्ण तरीके से व्यवहार करते हैं तो कर्मचारियों के ये संघ अपने प्रयत्नों में अरचनात्मक अथवा ध्वंसात्मक (Destructive), झगड़ालू तथा लड़ाकू बन जायेंगे। दूसरा तत्व है कर्मचारियों का राष्ट्रीय एवं सामाजिक दृष्टिकोण। यदि किसी विशिष्ट विभाग के कर्मचारी, देश के सामान्य सर्वांगीण कल्याण की चिन्ता किये बिना, केवल अपने निजी कल्याण में ही रुचि रखते है तो इस दिशा में उनका प्रयत्न स्वार्थपूर्ण अविवेकपूर्ण तथा विनाशात्मक होगा। यदि कर्मचारी व्यापक सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों को दृष्टिगत रखते हैं और राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था (National economy) के सन्दर्भ में ही अपनी मांगें प्रस्तुत करते है तो उनके प्रयत्न अधिक युक्तिसंगत (Reasonable), समझौता-पूर्ण (Accomodating) तथा रचनात्मक होंगे।

इस तथ्य को तो सभी स्वीकार करते हैं कि कर्मचारियों के संगठन १६वीं शताब्दी के अन्त से ही कर्मचारियों की कार्य-परिस्थितियों (Working conditions) में सुधार के लिये उत्तरदायी रहे हैं। इनका अस्तित्व (Existence) सरकारी पदाधिकारियों को सावधान एवं सतर्क बनाये रखता है, इसका परिणाम यह होता है कि वे सरकारी सत्ता का दुरुपयोग नहीं कर सकते।

कर्मचारियों की मांगें पूरी करने के उपाय
(Methods of getting employees' demands fulfilled) :

एक बात, जिसके सम्बन्ध में आज भी भारी विवाद पाया जाता है, यह है कि क्या सरकारी कर्मचारियों को इस बात की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए कि अपनी सेवा की शर्तों से सम्बन्धित मामलों के विषय में वे प्रदर्शनों (Demonstrations) में भाग ले सकें अथवा हड़ताल (Strike) का सहारा ले सकें ? क्या सरकारी कर्मचारियों को, जबकि उनकी कुछ व्यथायें एवं शिकायतें हों तब काम बन्द कर देने की आज्ञा होनी चाहिए ? अनेक सरकारें अपने कर्मचारियों को हड़ताल करने का अधिकार नहीं देतीं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, संघीय कर्मचारियों (Federal employees) को अपने संघ बनाने का अधिकार प्राप्त है। संयुक्त राज्य की सरकार सिविल-सेवा कर्मचारियों को हड़ताल करने, अथवा यहाँ तक कि संयुक्त राज्य के विरुद्ध हड़तालों का आयोजन करने वाले संगठनों से सम्बन्ध रखने तक का भी अधिकार नहीं देती। सन् १९५५[1] में निर्मित एक कानून में यह उपबन्ध (Provision) है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति, संयुक्त राज्य (United States) की सरकार में अथवा उसके किसी अभिकरण (Agency) में, जिसमें कि पूर्ण स्वामित्व प्राप्त सरकारी निगमें (Government corporations) भी सम्मिलित हैं, कोई नौकरी या पद स्वीकार अथवा धारण नहीं कर सकेगा, जोकि किसी भी हड़ताल में भाग लेता हो अथवा संयुक्त राज्य की सरकार अथवा उसके किसी अभिकरण के विरुद्ध हड़ताल करना अपना अधिकार समझता हो, अथवा जो सरकारी कर्मचारियों के ऐसे संगठन का सदस्य हो जोकि हड़ताल करना अपना अधिकार मानता हो। इस उपबन्ध का उल्लंघन एक 'गम्भीर अपराध' माना जाता है जिसका दण्ड जुर्माना (Fine) अथवा कारावास (Imprisonment) है। हड़ताल में भाग लेना तो इससे पूर्व भी (सन् १९४७ के Taft Hartley Act के अन्तर्गत) अवैध (Unlawful) था परन्तु उसका दण्ड था केवल सेवोन्मुक्त (Discharge) कर देना, सिविल-सेवा की पदवी को जब्त कर लेना तथा तीन वर्ष के लिए पुनः नौकरी के लिए अपात्र (Ineligible) बना देना। आस्ट्रेलिया, जापान तथा स्विटजरलैंड में भी सरकारी कर्मचारियों का हड़ताल में भाग लेना अवैधानिक है; आस्ट्रेलिया में इस नियम के उल्लंघन का दण्ड है सरकारी कार्यवाही द्वारा सेवा से पदच्युति (Summary dismissal from service)। इंगलैंड में, हड़तालों पर तो रोक नहीं है परन्तु एक सिविल कर्मचारी यदि हड़ताल करता है तो इसका अर्थ है कि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करने से इन्कार करता है, फलतः इस स्थिति में उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। इस नियमोल्लंघन के लिए दिये जाने वाले दण्डों में भर्त्सना (Reprimand) से लेकर पेंशन की समाप्ति सहित पदच्युति (Dismissal) तक के दण्ड सम्मिलित हैं। भारत में, सरकारी कर्मचारियों

1 Public Law 330, 84th Congress.

द्वारा हड़ताल करने पर कानून द्वारा कोई रोक तो नही है पर यदि कर्मचारी ऐसा करते हैं तो अनुशासन भग माना जाता है।[1]

प्रश्न यह है कि सरकारें जब गैर-सरकारी उद्योगो मे श्रमिको के हड़ताल करने के अधिकार को स्वीकार करती हैं तो वे स्वय अपने कर्मचारियो को हड़ताल करने के अधिकार क्यो नही देती ? इस प्रश्न के उत्तर म जो कारण प्रस्तुत किया जाता है वह यह है कि सरकार अनेक ऐसे कार्य सम्पन्न करती है जोकि सामूहिक रूप मे समाज के अस्तित्व (Existence) एव भलाई के लिए अनिवार्य होते है। यातायात, खाद्य ऐसे ही अन्य उपयोगी उद्यमो मे यदि हडताले होती है तो उससे सम्पूर्ण समाज के जीवन म ही पक्षाघात (लकवे) जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फलत सरकारी कर्मचारियो द्वारा की जाने वाली हडताल से सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र को हानि पहुँचती है। अत सरकारी कर्मचारियो को हडताल करने का अधिकार नही दिया जाना चाहिए। यही तर्क राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा सन् १९३७ म सघीय कर्मचारियो की 'राष्ट्रीय सस्था' (National Federation of Federal Employees) के अध्यक्ष को लिखे गय एक पत्र मे दिया गया था।

"मेरा यह विश्वास है और मैं विशेष रूप से उस पर जोर देना चाहता हूँ कि सरकारी कर्मचारियो के किसी भी सगठन के कार्यों मे ध्वसात्मक युक्तियो का कोई स्थान नही है। सघीय सेवा के अन्तर्गत जो कर्मचारी कार्य करते है उन पर सम्पूर्ण जनता की सेवा करने का दायित्व (Obligation) होता है और जनता के हितो एव कल्याण की देख-रेख के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी क्रियाओ के सचालन मे व्यवस्था (Orderliness) तथा निरन्तरता (Continuity) बनी रहे। उनका यह दायित्व सर्वोपरि है। चूकि उनकी सेवायें सरकार की कार्य-पद्धति से सम्बन्धित होती हैं अतः सरकारी कर्मचारियो द्वारा हडताल करने का स्पष्टत यही अर्थ होता है कि वे सरकार की क्रियाओ को उस समय तक रोकना या उनमे बाधा डालना चाहते है जब तक कि उनकी मागे पूरी न हो जायें। ऐसी कार्यवाही, जिसमे कि वे ही व्यक्ति सरकार को शक्तिहीन करने की सोचते हैं जोकि उसकी सहायता तथा समर्थन करने की शपथ ले चुके हैं, पूर्णत अविचारणीय एव असहनीय है। अत 'सघीय कर्मचारियो की राष्ट्रीय सस्था' के सविधान मे मैंने इस उपबन्ध (Provision) को बडे सन्तोष के साथ देखा है कि "किन्ही भी परिस्थितियो मे यह सस्था सयुक्त राज्य की सरकार के विरुद्ध हडताल नही करेगी और न उनका समर्थन ही करेगी।"

यह कहा जा सकता है कि प्रतिबन्ध लगा कर हडतालो को समाप्त नही किया जा सकता। हडताल देश मे प्रचलित सामाजिक एव आर्थिक दशाओ पर निर्भर होती है। हडताल का सहारा यूही अचानक ले लिया जाता हो, ऐसी बात नही है, यह

---

1 अब भारत मे, सरकारी कर्मचारियो का हडताल मे भाग लेना अवैध (Illegal) घोषित कर दिया गया है।

तो कर्मचारियो की सामाजिक स्थिति तथा आर्थिक दशाओं पर निर्भर होती है। सिविल सेवा मे नौकरी की दशायें जितनी अधिक खराब होगी, इन सगठनो की सख्या भी उतनी ही अधिक होगी तथा उतनी ही अधिक कठोरता उनके व्यवहार मे होगी।

फिर, यदि कर्मचारियो को उनकी व्यवस्थाओ की सुनवाई के लिए अन्य सवैधानिक अवसर प्रदान किये जाये तो हडतालें होगी ही नही। सरकारी कर्मचारियो को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि वे उच्च पदाधिकारियो के समक्ष अपनी व्यथायें (Grievances) रख सकें। सरकार के साथ विवाद की स्थिति मे पचनिर्णय (Arbitration) की व्यवस्था होनी चाहिये। यदि कर्मचारियो को इस बात का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाये कि वे अपने विचारो का प्रतिनिधित्व कर सकें, और यदि वे इस विषय मे आश्वस्त रहें कि उनकी बातें समुचित रूप से सुनी जायेंगी तो हडतालें लोकप्रिय नही होगी।

प्रो० हरमन फिनर ने हडताल के मसले का सर्वेक्षीकरण तीन प्रस्तावो के रूप मे किया है। उनका कहना है

(१) "यदि राज्य अपनी विधियो एव परम्पराओ के द्वारा सिविल सेवको को कुछ लाभ प्रदान करने के कार्य मे स्वय को लगाये रखता है, तो एक न्यायपूर्ण सौदे के रूप मे वह उनसे इस समवर्ती (Corresponding) गारन्टी की भी माग कर सकता है कि उनकी ओर से, कम से कम, हडताल की असुविधा उसके सम्मुख उत्पन्न न की जाए।

(२) अपनी सेवाओ के सतत सचालन मे राज्य (State) जिन हितो (Interests) को अपने सम्मुख रखता है वे अत्यावश्यक तथा जीवन मरण की प्रकृति के होते है और उनके सम्पादन मे कोई अवरोध नही पडना चाहिए अन्यथा उसको भारी विपत्ति का सामना करना पड सकता है।

(३) यदि सिविल-सेवको द्वारा अपनी मागें (Demands) प्रस्तुत करने के लिए ऐसे अनेक सवैधानिक मार्गों की व्यवस्था की जाये कि जिनके द्वारा उनकी मागो पर विचार किया जा सके, और यदि वे न्यायोचित हो तो सन्तुष्ट की जा सकें, तो यह आवश्यक है कि सरकार को झुकने के लिए बाध्य करने वाले एक साधन के रूप मे हडताल का उपयोग निश्चय ही नही किया जाना चाहिए।"[1]

भारत मे कर्मचारियो के संघ
(Employee's Association in India)

भारत मे सरकारी कर्मचारी अपने निजी सघ बना सकते हैं परन्तु वे सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होने चाहियें। जहाँ तक हडतालो का सम्बन्ध है, यदि कर्मचारी हडताल का आश्रय लेते हैं तो उन्हे सरकार द्वारा की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पडता है।

1 Herman Finer, *Theory and Practice of Modern Government*, p 897

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि संगठन अथवा संघ बनाने तथा सेवा की शर्तों से सम्बन्धित मामलों के बारे में प्रदर्शनों व हड़तालों का सहारा लेने के कर्मचारियों के अधिकार के सम्बन्ध में भारत सरकार के नियम (Rules) क्या है।

केन्द्र सरकार के कर्मचारी, कुछ छोटे-मोटे अपवादों को छोड़कर, तीन मुख्य वर्गों में बांटे जाते हैं

(i) अनौद्योगिक (Non-industrial) कर्मचारी-वर्ग जिसमे कि डाक व तार तथा नागरिक उड्डयन विभागों (Civil Aviation Departments) में काम करने वाले कर्मचारी और औद्योगिक संस्थानों (Industrial establishments) में ५०० रु० या इससे अधिक वेतन पाने वाले राजपत्रित (Gazetted) अथवा अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं।

(ii) औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग (Industrial staffs), रेलवे के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियों को छोड़कर, और

(iii) औद्योगिक तथा अनौद्योगिक रेलवे कर्मचारी-वर्ग।

(१) प्रथम वर्ग (i) में जो कर्मचारी-वर्ग सम्मिलित है उस पर केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम, १९५५ (Central Civil Service Conduct Rules 1955) के निम्नलिखित उपबन्ध (Provisions) लागू होते हैं—

४ (अ) कोई भी सरकारी कर्मचारी अपनी शर्तों से सम्बन्धित किसी भी मामले के बारे में न तो किसी प्रदर्शन में भाग लेगा अथवा न किसी भी प्रकार की हड़ताल का आश्रय लेगा।

४ (ब) कोई भी सरकारी कर्मचारी सरकारी कर्मचारियों के किसी भी ऐसे संघ का सदस्य नहीं बनेगा अथवा न उसकी सदस्यता जारी रखेगा—,

(क) जिसके लिए कि उसके निर्माण से छः माह की अवधि के अन्तर्गत, निर्धारित नियमों के अनुसार सरकार से स्वीकृति अथवा मान्यता न प्राप्त कर ली गई हो, या

(ख) जिसको, निर्धारित नियमों के अनुसार, सरकार द्वारा मान्यता (Recognition) देने से इन्कार कर दिया गया हो अथवा जिसकी मान्यता वापिस ले ली गई हो।

६ कोई भी सरकारी कर्मचारी रेडियो के किसी प्रसारण (ब्राडकास्ट) में, अथवा गुमनाम से या अपने नाम से या अन्य किसी व्यक्ति के नाम से प्रकाशित किसी लेख में, अथवा समाचार-पत्र या प्रेस को दिये गए किसी वक्तव्य या पत्र में, अथवा किसी सार्वजनिक वक्तव्य या प्रकाशन में अपना ऐसा कोई विचार या मत अथवा तथ्य प्रकट नहीं कर सकेगा—

(i) जिससे केन्द्र सरकार अथवा किसी राज्य की किसी प्रचलित (Current) अथवा अभिनव (Recent) नीति या कार्यवाही की विपरीत आलोचना करने पर अवसर मिले ····।

६ कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकार की अथवा अन्य किसी ऐसी सत्ता (Authority) की पूर्व अनुमति लिए बिना जिसे कि सरकार ने अपने उत्तरदायित्व पर यह अधिकार प्रदान कर रखा हो, किसी भी प्रकार का चन्दा न तो मांगेगा, और न स्वीकार करेगा, अथवा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन एकत्रित करने के कार्य से अन्य किसी रूप में भी, अपने आपको सम्बद्ध नहीं रखेगा।

१० कोई भी सरकारी कर्मचारी सरकार के अन्तर्गत अपनी सेवा से सम्बन्धित किसी मामले के बारे में अपने हितों की पूर्ति के लिए किसी भी उच्च प्राधिकारी पर किसी प्रकार का राजनैतिक अथवा अन्य बाह्य प्रभाव नहीं डालेगा अथवा डालने का प्रयास नहीं करेगा।

(२) द्वितीय वर्ग (ii) में जो कर्मचारी-वर्ग सम्मिलित है (अर्थात् औद्योगिक कर्मचारी वर्ग) उस पर अभी हाल में ही की गई व्यवस्था के अनुसार ऊपर उल्लेख किये गए उपबन्ध (Provisions) तथा 'केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम, १९५५' के कुछ अन्य उपबन्ध लागू नहीं होते और नियम ६ (i) भी केवल इस प्रतिबन्धात्मक वाक्य खण्ड (Proviso) के साथ लागू होता है कि इस धारा की कोई भी बात कर्मचारी द्वारा, श्रमिक संघ (Trade union) के एक पदाधिकारी के रूप में, ऐसे विश्वसनीय एवं यथार्थ विचारों की अभिव्यक्ति (Expression of views) पर लागू न होगी जो कि उन कर्मचारियों की सेवा की शर्तों में सुधार करने अथवा उन्हें सुरक्षित बनाने के उद्देश्य से प्रकट किए गए हों जो उस श्रमिक संघ के सदस्य हों।

(३) तृतीय वर्ग (iii) के कर्मचारी-वर्ग (अर्थात् रेलवे कर्मचारी-वर्ग) का नियमन 'रेलवे सेवा (आचार) नियम १९५६' (Railway Service (Conduct) Rules 1956) के द्वारा किया जाता है, जिसमें उपबन्ध ४ (अ) तथा ४ (ब) के समवर्ती (Corresponding) उपबन्ध तो नहीं हैं, परन्तु केन्द्रीय असैनिक सेवा (आचार) नियम, १९५५ के नियम ६ (i), तथा १० के समवर्ती उपबन्ध हैं। इस प्रकार स्थिति यह है कि रेलवे कर्मचारी-वर्ग जहाँ प्रमाण्यता प्राप्त संघों की सदस्यता तथा प्रदर्शनों एवं हड़तालों का आश्रय लेने के मामलों में औद्योगिक कर्मचारी-वर्ग (Industrial staffs) जैसी ही स्थिति में है वहाँ श्रमिक संघों की कार्यवाहियों के सम्बन्ध में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, उस पर अभी भी कुछ प्रतिबन्ध लगे हैं, किन्तु रेलवे से बाहर के औद्योगिक कर्मचारी वर्ग पर से ये प्रतिबन्ध हटा लिये गये हैं।

(४) सरकार द्वारा श्रमिक संघों तथा सेवा संघों (Service associations) की मान्यता (Recognition) के सम्बन्ध में स्थिति निम्न प्रकार है अभी एक वर्ष पूर्व तक औद्योगिक कर्मचारियों को छोड़कर, केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के संघों की मान्यता का नियमन सन् १९३७ में जारी किए गए कार्यपालक अनुदेशों (Executive instructions) द्वारा किया जाता था। परन्तु अब इनका स्थान गत वर्ष मार्च में जारी किए गये 'केन्द्रीय सिविल सेवा' (सेवा-संघों की मान्यता) के नियम, १९५९,

ने (जिनका निर्माण कि सविधान की धारा ३०६ तथा धारा १४८ के खण्ड ५ के अन्तर्गत किया गया है) ले लिया है। इन नवीन नियमों के उपबन्धों तथा १९३७ के अनुदेशों मे, सारभूत दृष्टि से, कोई अन्तर नही है यथा सघो की मान्यता अब भी निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति पर निर्भर होती है

(क) यह कि ऐसे किसी भी व्यक्ति का सम्बन्ध कर्मचारी सघ के कार्यों से नही होगा जोकि सरकारी नही है ,

(ख) सघ की कार्यकारिणी समिति की नियुक्ति केवल सदस्यों मे से की जायेगी ,

(ग) सघ पृथक पृथक् कर्मचारियों के पक्ष का समर्थन नही करेगा , और

(घ) सघ किसी भी राजनैतिक कोष की स्थापना नही करेगा अथवा स्वय किसी भी राजनैतिक दल या राजनीतिज्ञ के विचारों के प्रचारार्थ धन नही देगा।

कर्मचारियों (मुख्यत औद्योगिक कर्मचारी वर्ग) के सघो की मान्यता का नियमन श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) द्वारा बनाये गए कुछ नियमो के द्वारा (जिनका निर्माण सविधि के द्वारा नही होता) किया जाता है। इन नियमों म यह व्यवस्था है कि मान्यता का पात्र (Eligible) बनने के लिए एक सघ (Union) को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी ही चाहिये—

(क) इसकी सदस्यता उन कर्मचारियों तक ही सीमित रहनी चाहिए जो एक से ही उद्योग अथवा ऐसे उद्योगो मे काम करते हो जो कि परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित अथवा सम्बद्ध हो ,

(ख) इसे उस उद्योग अथवा उद्योगों मे काम करने वाले सभी कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए ,

(ग) इसके नियमों म यह व्यवस्था नहीं होनी चाहिए कि यह भाग (ख) म उल्लिखित कर्मचारियों के किसी भी वर्ग को सदस्यता से वचित कर सके ,

(घ) सघ (Union) के सविधान के नियमो म हडतालो की घोषणा करने की कार्यविधि से सम्बन्धित समुचित उपबन्ध (Provision) सम्मिलित किया जाना चाहिए ,

(ङ) नियमो मे यह भी व्यवस्था होनी चाहिए कि सघ की कार्यकारिणी समिति (Executive committee) की बैठक का आयोजन छ माह मे कम से कम एक बार अवश्य हो , और

(च) भारतीय श्रमिक सघ अधिनियम १९२६ (Indian Trade Unions Act 1926) के अन्तर्गत इसका पजीकरण (Registration) अवश्य होना चाहिए।

कर्मचारी सघो को मान्यता प्रदान करना या न करना सरकार के विवेक (Discretion) पर निर्भर होता है। वेतन आयोग (Pay Commission) ने

कर्मचारी संघों (Employees Associations) के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें कीं—

(१) अमान्यता प्राप्त संघ की सदस्यता को अनुशासनिक अपराध (Disciplinary offence) नहीं माना जाना चाहिए। परन्तु यदि वह संघ ऐसी कार्यवाहियों में भाग लेता है, जिनका आश्रय यदि पृथक् सरकारी कर्मचारियों द्वारा लिया जाता और उसे आचार नियमों (Conduct Rules) के किसी उपबन्ध का उल्लंघन माना जाता, तो अनुशासनात्मक कार्यवाही के आधार पर उन सम्बन्धित सरकारी कर्मचारियों से उसकी सदस्यता छोड़ने की माँग की जा सकती है।[1]

(२) कर्मचारी संघों की मान्यता के नियमों के निर्माण तथा मान्यता प्रदान करने का कार्य उदार भावना से किया जाना चाहिये।[2]

(३) सरकारी कर्मचारियों को हड़तालों का आश्रय नहीं लेना चाहिए अथवा न हड़ताल करने की धमकी ही देनी चाहिए, परन्तु कानून में संशोधन किए बिना ही यह परिवर्तन अवश्य होना चाहिए कि कर्मचारी स्वयं ही हड़तालों एवं प्रदर्शनों के प्रयोग का परित्याग कर दें, और सरकार को भी यह परिपाटी (Convention) डालनी चाहिए कि कुछ महत्वपूर्ण मामलों से सम्बन्धित ऐसे किसी भी विवाद (Dispute) को, जिसको बातचीत के द्वारा न सुलझाया जा सके, पंच-निर्णय (Arbitration) के सुपुर्द कर दिया जाए।[3]

(४) श्रमिक संघों की क्रियाओं के लिए समुचित सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।[4]

वेतन आयोग इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा कि यदि सरकार द्वारा विवादों के निपटारे के लिए अन्य किसी उपयुक्त मशीनरी की व्यवस्था की जाए तो हड़तालों की सम्भावना को समाप्त किया जा सकता है। आयोग ने ठीक ही कहा कि "वर्तमान परिस्थितियों में, यदि इस प्रस्ताव का—कि सरकारी कर्मचारियों को हड़ताल का परित्याग कर देना चाहिए—न्यायोचित आधार प्राप्त करना है और उस प्रस्ताव पर कर्मचारियों की तत्पूर्ण स्वीकृति प्राप्त करनी है, तो उनसे सुलह की बातचीत (Negotiation) के लिए, उनकी व्यवस्थाओं को दूर करने के लिए तथा विवादों के निपटारे के लिए एक उपयुक्त मशीनरी की स्थापना की जानी चाहिए, साथ ही, पंचनिर्णय की व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिससे कि पारिश्रमिक (Remuneration) अथवा सेवा की अन्य किसी ऐसी विशिष्ट महत्वपूर्ण शर्त—जैसे कि अवकाश व काम के घण्टों आदि—के विषय में यदि कोई मतभेद हो और उसे सुलझाया न जा सका हो तो उसके लिए पंचनिर्णय का आश्रय लिया जा सके। और केवल ऐसा होने पर ही

1 *Ibid* Paragraph 31, chapter XLIX,
2 *Ibid* Paragraph 13
3 *Ibid* Paragraphs, 16-17
4 *Ibid* Paragraph 18

यह कहा जाएगा कि सरकार अपने कर्मचारियों के प्रति अपने उस दायित्व (Obligation) को पूरा कर रही है जिसकी आशा कर्मचारी तब करते हैं जबकि उनसे काम रोक देने के उनके अधिकार को छोड़ देने की माग की जाती है। यदि लोक हित की दृष्टि से सरकारी कर्मचारियों से उस अस्त्र का प्रयोग न करने की माग की जाती है जोकि गैर-सरकारी कर्मचारियों के हाथों में उचित पारिश्रमिक तथा नौकरी की सतोषजनक शर्तें प्राप्त करने का एक प्रभावशाली साधन सिद्ध होता है, तो उचित तथा न्यायसगत स्थिति केवल यही हो सकती है कि सरकारी कर्मचारियों को न्यायपूर्ण व्यवहार प्राप्त करने की एक वैकल्पिक व्यवस्था की सुविधा प्रदान की जाए। यदि लोक सेवा से हड़तालों तथा प्रदर्शनों का उन्मूलन किया जा सके और व्यवस्थित प्रक्रियाओं द्वारा लोक-सेवकों को न्यायोचित व्यवहार का आश्वासन दिया जा सके, तो कर्मचारियों की शिकायतें दूर करने के लिए एक यथेष्ट मशीनरी की रचना करना, जिसमें कि अनिवार्य पचनिर्णय भी सम्मिलित हो अयुक्तिसगत नहीं होगा।"[1]

सुलह की बातचीत तथा विवादों के निपटारे का साधन

ह्विटले परिषदें
(Whitley Councils)

हमने देखा कि सरकारी कर्मचारियों की सेवा की शर्तों से सम्बन्धित विवादों के निपटारे तथा सुलह की बातचीत के लिए एक मशीनरी अथवा निकाय (Body) की स्थापना का कितना अधिक महत्व है। इस प्रसग में यहाँ ब्रिटिश ह्विटले परिषदों, जो कि सरकारी कर्मचारियों के विवादों का निपटारा तथा सुलह की बातचीत करती हैं, की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करना उचित ही होगा।

प्रारम्भ (Origin) :

सन् १६१६ में ब्रिटिश सरकार ने गैर-सरकारी उद्योगों में श्रमिकों तथा मालिकों के बीच सम्बन्धों में एक स्थायी सुधार लाने के हेतु सुझाव देने के लिए, Rt Hon J H Whitley, M P (बाद में लोक-सदन के स्पीकर) की अध्यक्षता में एक समिति (Committee) की स्थापना की। इस समिति ने ऐसी परिषदों (Councils) के गठन की सिफारिश की कि जिसमें विवादों का निपटारा करने के लिए कर्मचारियों तथा मालिकों, दोनों के ही प्रतिनिधि हों। सिविल-सेवा के कर्मचारी-सघों ने, विशेषकर पोस्ट आफिस के, ह्विटले प्रतिवेदन के प्रति बड़ा उत्साह प्रकट किया और यह माग की कि *सयुक्त परामर्श तथा विचार-विमर्श* के इस सिद्धान्त को सिविल-सेवकों पर भी लागू किया जाए। उन्होंने सेवा-सम्बन्धी सभी मामलों के सम्बन्ध में राजकोष (Treasury) के साथ प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। सिविल-सेवकों ने पूर्णत ह्विटले परिषदों की स्थापना की माग

1 *Ibid*, pp 541-52

की। सरकार ने ८ अप्रैल १९१९ को यह माग स्वीकार कर ली। अर्थ महामात्य (Chancellor of the Exchequer) ने सिविल-सेवा म ह्विटले परिषदो के लिए एक सशोधित सविधान बनाने के लिए एक समिति की नियुक्ति की। राजकोष के Sir Malcolm Ramsay इस समिति के अध्यक्ष थे और Mr. G H Stuart Bunning उपाध्यक्ष। इस समिति ने सन् १९१९ मे सिविल-सेवा मे ह्विटले परिषदा के सम्बन्ध मे अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया। तभी से ब्रिटेन के सरकारी विभागो मे ह्विटले परिषदो की स्थापना चली आ रही है। ह्विटले परिषदों की स्थापना के विषय म लिखते हुए White ने कहा कि "वर्तमान पीढ़ी म ब्रिटिश सिविल सेवा मे जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है वह सम्भवत ह्विटले परिषदा की स्थापना ही है। इन निकायो (Bodies) में सरकारी पक्ष तथा कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि समान सख्या मे होते है तथा ये निकाय अनेक विवादास्पद समस्याओ के समाधान तथा सुलह की बातचीत के लिए कर्मचारियो के विचारो तथा उनकी आलोचनाओ को प्रस्तुत करने वाले बडे मूल्यवान अभिकरण (Agency) सिद्ध हुए है। [1]

ह्विटले परिषदो के उद्देश्य तथा कार्य
(Objects and Functions of Whitley Councils)

प्रशासकीय विभागो के लिए सयुक्त ह्विटले समितियो की व्यवस्था की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य य हैं सिविल-सेवा से सम्बन्धित मामलो के विषय म सेवा योजक (Employer) के रूप मे राज्य तथा सिविल-सेवको के बीच अधिकाधिक सहयोग स्थापित करना ताकि लोक सेवा म कुशलता लाई जा सके और कर्मचारियो के हितो की रक्षा भी की जा सके, कर्मचारियो की शिकायतो को निबटाने के लिए एक यन्त्र की व्यवस्था करना तथा सिविल सेवा के विभिन्न अगो के प्रतिनिधियो के अनुभवो तथा भिन्न भिन्न विचारो को एक स्थान पर जुटाना।

ह्विटले परिषदो का सम्बन्ध केवल ७०० पौंड वार्षिक तक वतन पाने वाल अनौद्योगिक (Non industrial) कर्मचारियो की समस्याओ से है। ह्विटले परिषदो के काय निम्न प्रकार हैं —

(१) कर्मचारी वर्ग के विचारों तथा अनुभवो का उपयोग करन के लिए सर्वोत्तम उपायो की व्यवस्था करना।

(२) ऐसे उपायो की व्यवस्था करना कि जिनके द्वारा कर्मचारी-वग अपनी सवा की शर्तों के निर्धारण तथा निरीक्षण म अधिक भाग ल सक तथा उत्तरदायी बनाये जा सकें।

[1] L D White *The Civil Service in the Modern State* A collection of *Documents* p 23

(३) सेवा की शर्तों, जैसे कि भर्ती, काम के घण्टे, पदोन्नति, अनुशासन पदावधि, पारिश्रमिक तथा ग्रतिवयस्कता की आयु (Age of superannuation) ग्रादि, का नियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्तो का निर्धारण।

राष्ट्रीय परिषद (National Council) मे, पदोन्नति के सम्बन्ध मे होने वाला विचार-विमर्श विषय के सामान्य पहलुग्रो तथा उन सिद्धान्तो तक ही सीमित रहेगा जिन पर कि पदोन्नतियाँ (Promotions) सामान्य रूप से निर्भर रहनी चाहिए। किसी भी परिस्थिति मे व्यक्तिगत मामलो पर विचार नही किया जायेगा।

इसी प्रकार, राष्ट्रीय परिषद् को यह छूट रहेगी कि वह अनुशासनात्मक कार्यवाही से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तो पर विचार-विमर्श कर सके, परन्तु वैयक्तिक मामलो के सम्बन्ध मे कोई विचार-विनिमय ग्रथवा वाद-विवाद नही होगा।

(४) सिविल-सेवको की ग्रगामी शिक्षा (Further education) को प्रोत्साहन देना तथा उनको उच्चतर प्रशासन तथा सगठन का प्रशिक्षण (Training) देना।

(५) कार्यालय की यन्त्र-रचना तथा सगठन में सुधार करना ग्रौर इस विषय पर कर्मचारी-वर्ग द्वारा दिये जाने वाले सुझावो पर पूर्ण रूप से विचार करने के ग्रवसरो की व्यवस्था करना।

(६) सिविल-सेवको की नौकरी से सम्बन्धित प्रस्तावित विधि निर्माण पर सुझाव देना।

ह्विटले परिषदो का संगठन
(Organization of Whitley Councils):

ह्विटले परिषदो के सगठन मे—

(१) एक राष्ट्रीय परिषद (A National Council),

(२) विभागीय परिषदें (Departmental Councils) तथा

(३) जिला या क्षेत्रीय समितियाँ (District or Regional Committees) सम्मिलित होती हैं।

(१) राष्ट्रीय परिषद
(National Council).

राष्ट्रीय परिषद् मे ५४ सदस्य होते हैं। इनमे से ग्राधे सरकारी पक्ष के होते हैं ग्रौर उनकी नियुक्ति सरकार द्वारा सिविल-सेवको ग्रथवा ग्रन्य उच्च ग्रधिकारियो मे से की जाती है जिसमे राजकोष (Treasury) तथा श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) का कम से कम एक-एक प्रतिनिधि ग्रवश्य होता है। परिषद् के शेष ग्राधे सदस्य कर्मचारी-पक्ष के होते हैं जिनकी नियुक्ति वितरण की एक निश्चित योजना के ग्रनुसार कर्मचारी-सघो द्वारा की जाती है। ह्विटले परिषदो के सविधान मे कहा गया है कि "राष्ट्रीय परिषद् के क्षेत्र मे ऐसे सभी विषय

सम्मिलित होंगे जोकि कर्मचारी-वर्ग की सेवा की शर्तों को प्रभावित करें।" राष्ट्रीय परिषद् स्थायी समितियों (Standing committees), विशिष्ट समितियों (Special committees) तथा पदक्रम समितियों (Grade committees) की नियुक्ति कर सकती है और इस प्रकार नियुक्त की गई किसी भी समिति को विशिष्ट शक्तियों का हस्तान्तरण अथवा प्रत्यायोजन (Delegation) कर सकती है।

(२) विभागीय परिषद
(Departmental Councils) :

राष्ट्रीय परिषद् का सम्बन्ध उन विषयों में नहीं होता जो कि शुद्ध रूप से विभागीय (Purely department) होते हैं। विभागीय मामलों के लिए विभागीय ह्विटले परिषदें होती हैं जिनकी नियुक्तियां स्वतन्त्र रूप में की जाती हैं और राष्ट्रीय परिषद् के समान ही इनमे सरकारी पक्ष तथा कर्मचारी पक्ष के आधे आधे प्रतिनिधि होते हैं। सामान्य नियम के रूप में, प्रत्येक विभाग में एक विभागीय परिषद् की स्थापना की जाती है परन्तु बड़े विभागों में एक से अधिक विभागीय परिषदें भी हो सकती हैं। इन परिषदों की सदस्य संख्या कम होती है। विभागीय परिषद् के सरकारी पक्ष के सदस्यों की नियुक्ति मन्त्री या स्थायी विभागाध्यक्ष द्वारा की जाती है। कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधियों का चुनाव उन संघों (Associations) अथवा संघ समूहों द्वारा किया जाता है जिनके सदस्य उस विशिष्ट विभाग में काम करने वाले कर्मचारी होते हैं। विभागीय परिषदों के कार्य तथा उद्देश्य, जहाँ तक कि वे सम्बन्धित विभाग मे ही विशेष रूप से लागू होते हों, लगभग वही होते हैं जोकि राष्ट्रीय परिषद् के होते हैं। विभागीय परिषदें ऐसी किसी पदोन्नति पर भी वादविवाद कर सकती हैं जिसके सम्बन्ध मे कि कर्मचारी-पक्ष की ओर से यह आवेदन किया गया हो कि इसमें पदोन्नति के उन सिद्धान्तों का उल्लंघन किया है जोकि राष्ट्रीय परिषद् द्वारा अथवा उसकी अनुमति से स्वीकार किये गये थे। विभागीय परिषदें ऐसे मामलों की रिपोर्ट राष्ट्रीय परिषद को कर सकती हैं जोकि एक से अधिक विभागों की परिधि मे आते हों। इस व्यवस्था के अतिरिक्त, राष्ट्रीय तथा विभागीय परिषदों के बीच अपील का और कोई सूत्र (Line) नहीं है। राष्ट्रीय तथा विभागीय परिषदों के बीच कोई पद-सोपानीय सम्बन्ध (Hierarchical connection) नहीं है। तथापि, राष्ट्रीय परिषद् को सभी विभागीय परिषदों के संविधान स्वीकार करने ही पड़ते है और राष्ट्रीय परिषद् को ऐसे विभागीय विकासों से परिचित रखा जाता है जो राष्ट्रीय करारों (National agreements) की दृष्टि से असंगत प्रतीत होते हों।

(३) जिला अथवा क्षेत्रीय समितियां
(District or Regional Committees)

ये जिला अथवा क्षेत्रीय समितियां देश भर में फैले हुए कर्मचारी-वर्ग की शुद्धत स्थानीय समस्याओं को सुलझाती है। इसका निर्माण उसी सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है जिस पर कि विभागीय परिषदों का किया जाता है।

ह्विटले परिषदों की सत्ता की सीमायें
(Limitations of the Authority of the Whitley Councils)

प्रश्न यह है कि ह्विटले परिषदों को क्या सत्ता प्राप्त है ? ह्विटले परिषदों के संविधान (Constitution) में यह दिया हुआ है कि "परिषद् द्वारा जो भी निर्णय किए जायेंगे वे दोनों पक्षों की सहमति से ही किए जायेंगे, उन पर सभापति (Chairman) और उप-सभापति के हस्ताक्षर होंगे, उन *निर्णयों की सूचना मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) को दी जायेगी और तब उनको कार्यान्वित किया जायेगा।"* विभागीय ह्विटले परिषदों के निर्णयों (Decisions) की सूचना विभागाध्यक्ष (Head of the Department) को दे दी जायेगी और तब वे कार्यान्वित होंगे, क्या इसका अर्थ यह है कि मन्त्रि-परिषद् ह्विटले परिषदों के निर्णयों को मानने को बाध्य है ? यह हो सकता है कि ह्विटले परिषदों के निर्णय मन्त्रि-परिषद् की नीति के विरुद्ध हों ; यदि ऐसा हुआ तो मन्त्रि-परिषद् के उत्तरदायित्व का क्या होगा ? इस स्थिति का स्पष्टीकरण सन् १९१९ में किया गया था। दोनों पक्षों के बीच एक समझौता है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है "*ह्विटले परिषदों की स्थापना से सरकार संसद (Parliament)* के प्रति अपने किसी भी उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकती, और मन्त्रियों (Ministers) तथा उनकी सामान्य अथवा विशिष्ट सत्ता के अन्तर्गत कार्य करने वाले विभागाध्यक्षों को प्रत्येक स्थिति में निश्चय ही ऐसी कार्यवाहियाँ करनी चाहियें जोकि लोक-हित की दृष्टि से आवश्यक हों। यह स्थिति संसदीय सरकार तथा मन्त्रीय उत्तरदायित्व से सवैधानिक सिद्धान्तों में अन्तर्निहित है और मन्त्री न तो इसका परित्याग कर सकते हैं अथवा न इससे बच सकते हैं।

इस सवैधानिक सिद्धान्त (Constitutional principle) से यह स्पष्ट है कि जहाँ तक सिविल-सेवा का सम्बन्ध है, सरकार द्वारा ह्विटले प्रणाली की स्वीकृति में उसकी यह इच्छा अवश्य निहित है कि ह्विटले कार्यविधि (Whitley procedure) *का पूर्णतया सम्भव उपयोग न किया जाए, परन्तु लोकहित की दृष्टि से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में तथा अपनी सत्ता के क्रियान्वय में उसने अपनी कार्य* करने की स्वाधीनता का परित्याग नहीं किया है और न वह ऐसा कर ही सकती है।"

इस प्रकार, सिविल अथवा असैनिक सेवा से सम्बन्धित मामलों पर संसद की *सर्वोच्चता तथा सरकार का नियन्त्रण यथापूर्व* वर्तमान है। फिर एक बात यह है कि जब तक मन्त्री सरकारी पक्ष को समझौते (Agreement) से सहमति प्रकट करने का अधिकार न दें तब तक परिषद किसी भी समझौते अथवा निर्णय पर नहीं पहुँच सकती है। Mr Douglas Honghton ने समझौतों से सम्बन्धित वर्तमान स्थिति को सक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया है कि "सरकारी पक्ष अविभाज्य (Indivisible) होता है। सिविल सेवा में सम्पूर्ण ह्विटले पद्धति की यह एक मूलभूत बात है। इस पद्धति के प्रणेताओं ने इसे अपूर्ण रूप में ही समझा । समझौते स्वयं सम्पन्न नहीं

होने, बल्कि होने से पूर्व मन्त्रियो द्वारा उनके लिए स्वीकृति प्रदान की जाती है।"[1] बात यह है कि ह्विटले-परिषदें किसी समझौते अथवा निर्णय पर तब तक नहीं पहुँच सकती जब तक कि सरकारी पक्ष उससे सहमत न हो जाए और सरकारी पक्ष किसी भी मामले पर तब तक सहमत न होगा जब तक कि उसको मन्त्रियो से विशिष्ट सत्ता अथवा अधिकार न प्राप्त हो जाए।

ह्विटले परिषदों के योग का मूल्यांकन
(Evaluation of the Role of Whitley Councils).

यदि ह्विटले परिषदों से सरकार की शक्तियो तथा उसकी प्रशासकीय सत्ता मे कोई कमी नही होती है तो प्रश्न यह पैदा होता है कि कर्मचारी-वर्ग के लिए इन परिषदों की उपयोगिता क्या है ? ह्विटले परिषदो की सबसे पहली उपयोगिता यह है कि ये सेवा-योजक (Employer) तथा कर्मचारियो (Employees) के लिए सामूहिक रूप से मिलने के लिए एक ऐसे स्थल की व्यवस्था करती हैं जहाँ कि दोनों पक्ष एक साथ मिलकर बैठते हैं तथा कर्मचारी-वर्ग को प्रभावित करने वाले मामलो पर वाद-विवाद तथा विचार-विनिमय करते हैं। सरकारी पक्ष (सेवा-योजक) को अपने मत का औचित्य सिद्ध करना पडता है और उसके विषय मे कर्मचारियो को सन्तुष्ट करना पडता है। इस सन्तुष्टि से सेवा-योजक तथा कर्मचारियों के बीच परस्पर एक दूसरे को समझने की अच्छी भावना उत्पन्न होती है। पारस्परिक विचार-विनिमय तथा वार्तालाप की इस रीति से अनेक भ्रान्तियाँ तथा मिथ्या धारणायें दूर हो जाती हैं। जब पारस्परिक सहमति से कार्यवाहियाँ की जाती हैं तो प्रशासन की कार्य क्षमता तथा मनोबल (Moral) मे वृद्धि होती है।

इस व्यवस्था से सरकार अपनी नीतियों के विषय मे कर्मचारियों के विचार जान सकती है और उनमे सशोधन, परिवर्तन अथवा आवश्यक हेर-फेर कर सकती है। Mr. Winnifrith ने, जिनका कि ब्रिटिश सिविल-सेवा मे कार्मिक नीतियो (*Personnel policies*) के निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस तथ्य पर काफी जोर दिया है। उन्होने कहा 'बिल्कुल स्पष्ट रूप से मैं यह स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ कि सेवा योजक अथवा प्रबन्धक, केवल अपनी अनिपुण अवस्था के कारण ही, सर्वदा यह नही जान पाते कि सर्वोत्तम स्थिति क्या है। अत प्रबन्ध-पक्ष (Management side) के लिए यह बात बडे महत्व की है कि सेवा की शर्तों मे कोई भी परिवर्तन करने से पूर्व वह कर्मचारियो के विचार जानकर उससे लाभ उठाये।"[2]

1 Douglas Houghton M P. in William A Robson (Ed.) *The Civil Service in Britain and France*, p 144.

2 Winnifrith, '*Negotiation and Joint Consultation in the Civil Service*,' *Whitley Bulletin, Vol XXXIII P 104*

ह्विटले परिषदों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके द्वारा कर्मचारी-वर्ग तथा प्रबन्ध-वर्ग के बीच ऐक्य एवं सहकारितापूर्ण सम्बन्धों का विकास हुआ है।[1]

कर्मचारी सघ अब काफी उत्तरदायी हो गये हैं। उन्होंने प्रतिष्ठा भी प्राप्त की है। उधर सरकारी पक्ष मे अपनी आलोचनायें सुनने की क्षमता का विकास हुआ है। इस प्रकार ह्विटले परिषदों के कारण, सरकारी कर्मचारी इस योग्य हो गये है कि वे वेतन, सेवा की शर्तों अथवा पदोन्नतियों आदि से सम्बन्धित अपनी मागो को हड़ताल अथवा अन्य किसी असवैधानिक उपाय का आश्रय लिये बिना ही पूर्ण करा सकें। ह्विटले परिषदें अतिवयस्कता (Superannuation), काम के घण्टों, छुट्टियों, नौकरी से हटाये जाने, यात्रा-व्यय, पदोन्नति के समय होने वाली वेतन-वृद्धियों, भर्ती (Recruitment) तथा पदोन्नति के सिद्धान्तों से सम्बन्धित विषयों पर वादविवाद करती हैं, वे कर्मचारी-वर्ग से सम्बन्धित सरकारी नीति के विषयों पर वाद-विवाद अथवा विचार-विनिमय नही करतीं। ह्विटले परिषदों ने "शान्ति बनाये रखने मे तथा कर्मचारियों को अपने कार्य के बारे मे प्रसन्न रखने मे"[2] बडी सहायता पहुँचाई है।

यह एक सार्वलौकिक तथ्य है कि ह्विटले परिषदों ने प्रवर तथा अवर अथवा उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों (Superiors and subordinates) के बीच सद्भावना एवं मधुर सम्बन्ध स्थापित किया है।

यह बात तो निश्चित है कि ह्विटले परिषदों की सफलता सरकारी तथा कर्मचारी पक्ष के सहयोगपूर्ण रुख पर निर्भर होगी। भिन्न भिन्न विभागों मे ह्विटले परिषदों को जो सफलतायें प्राप्त हुई हैं वे भिन्न-भिन्न हैं। यदि उच्च पदाधिकारी यह सोचते है कि कर्मचारी-वर्ग के साथ समान आधार पर बातचीत करना अपमानजनक है, अथवा यदि कर्मचारी ही दिये बिना लेने का स्वार्थी रुख अपनाते है, तो ह्विटले पद्धति की असफलता अनिवार्य है। उच्च पदाधिकारियों को ह्विटले परिषदों के प्रति स्वेच्छाचारी नही, बल्कि लोकतन्त्रीय रुख अपनाना चाहिए, और कर्मचारियों को अपनी मागें प्रस्तुत करते समय सदा व्यापक राष्ट्रीय समस्याओं को दृष्टिगत रखना चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो ह्विटले प्रणाली की सफलता बिल्कुल निश्चित है। ह्विटलेवाद (Whitleyism) की सफलता इस बात पर निर्भर है कि दोनो ही

---

1 In the words of Sir Albert Day, "The Staff movement is much more harmonious, *thanks to Whitleyism, than it used to be, and is imbued with a* sense of common purpose and corporate responsibility once woefully lacking *Strong differences* are sometimes revealed, of course, and occasionally there may be quite a blow off But I expect that can happen on the official side as well as, though in a House of Lords sort of way '

—Whitley Bulletin (July 1953) Vol HXXIII, No 7 P 301

2 Dogles Honghton, *op cit*, p 150

पक्षों की ओर से "विवाद तथा विरोध की बजाये सहयोग एवं समझौते"[1] की नीति अपनाई जाये।

ह्विटले परिषदों ने सिविल-सेवा की सभी समस्याओं के समाधान में सहायता पहुंचाई है। सन् १६२० से सिविल सेवा का पुनर्वर्गीकरण (Reclassification) हुआ है तथा वेतनों, राजनैतिक अधिकारों, आगामी शिक्षा (Further education) तथा प्रशिक्षण (*Training*), पदोन्नतियों (*Promotions*), अनुशासन व सामान्य मनोबल आदि में वृद्धि हुई है। अभी हाल के वर्षों में तो राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की बैठक कभी-कभी ही होती है। गत पन्द्रह वर्षों में, पूर्ण राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् की दो बार बैठकें हुई हैं। इनका अधिकांश कार्य समितियों (Committees) द्वारा तथा दोनों पक्षों के बीच दिन प्रतिदिन सम्पर्क बनाये रखकर सम्पन्न किया जाता है। औपचारिक बैठकों (*Formal meetings*) के स्थान पर अनौपचारिक वाद-विवादों (Informal discussions) का महत्व बढ़ गया है। ह्विटले परिषदों की महत्ता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इसके कार्य की मात्रा ने इसको समितियों तथा अनौपचारिक बैठकों का उपयोग करने को बाध्य कर दिया है।

सिविल-सेवा पंचनिर्णय अथवा विवाचन न्यायाधिकरण
(The Civil Service Arbitration Tribunal).

प्रश्न यह है कि यदि ह्विटले परिषदों में दोनों पक्षों के बीच सुलह की बात-चीत तथा विचार-विमर्श असफल हो जाए, तो विवादों (Disputes) के निपटारे के लिये क्या किया जाए ? इस कार्य के लिये, ब्रिटेन में, एक सिविल-सेवा पंचनिर्णय अथवा विवाचन न्यायाधिकरण है जिसकी स्थापना सन् १६३६ में हुई थी। न्यायाधिकरण का एक अध्यक्ष होता है जोकि एक प्रमुख वकील होता है तथा दो अन्य सदस्य होते हैं जिनमें से एक राष्ट्रीय ह्विटले परिषद् के कर्मचारी-पक्ष द्वारा चुनी हुई नाम-सूची (Panel) में से लिया जाता है, और दूसरा परिषद् के सरकारी पक्ष द्वारा मनोनीत नामसूची में से लिया जाता है। मुकदमे ह्विटले परिषदों द्वारा अथवा कर्मचारी संघों द्वारा न्यायाधिकरण (Tribunal) को सौंपे जा सकते हैं। न्यायाधिकरण द्वारा 'वर्ग' (*Class*) के ही दावे (*Claims*) स्वीकार किये जाते हैं, व्यक्ति के नहीं। केवल ८५० पौण्ड और इससे कम वेतनों से सम्बन्धित दावे ही न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं। परिलाभों (Emoluments), कार्य के साप्ताहिक घण्टों तथा छुट्टियों को प्रभावित करने वाले दावे न्यायाधिकरण के सम्मुख लाये जा सकते हैं। जैसा कि हमने देखा, न्यायाधिकरण का कार्य यद्यपि 'न्यायपूर्ण, धैर्ययुक्त तथा पूर्ण' है किन्तु सीमित है। साथ ही, सरकार ने 'नीति के आधार पर' पंचनिर्णय को अस्वीकृत करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है

---

1 Day, *op cit*, p 30! Also refer to B S Khanna Whitleyism—A feature of Democratic Administration The Indian Journal of *Public Administration*, New Delhi April-June, 1959 Vol V, No 2, pp 207 222

और पचनिर्णय को कार्यान्वित करने की सरकार की वचनबद्धता ससद की उच्च सत्ता के अधीन है। परन्तु व्यवहार मे, पचनिर्णय को अस्वीकृत अथवा रद्द नही किया गया है।

भारत मे सुलह की बातचीत तथा विवादो के निपटारे का यन्त्र (Machinery for Negotiations and Settlement of Disputes in India)

ह्विटले परिषदो की आवश्यकता (Need for Whitley Councils)

कर्मचारी वर्ग परिषद् (Staff Councils)—सन् १६५४ मे, भारत सरकार ने केन्द्रीय मन्त्रालयो मे, कर्मचारी-वर्ग समितियो[1] (Staff Committees) की स्थापना का निश्चय किया। प्रत्येक मन्त्रालय (Ministry) मे अब दो कर्मचारी वर्ग परिषदें हैं—एक तो वरिष्ठ कर्मचारी वर्ग परिषद् (Senior Staff Council), जोकि द्वितीय व तृतीय श्रेणी के कर्मचारियो के लिये है, और एक कनिष्ट कर्मचारी-वर्ग परिषद् (Junior Staff Council), जो चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो के लिये है। वरिष्ठ कर्मचारी-वर्ग परिषद् सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियो (Government nominees) तथा अनुभाग अधिकारियो (Section Officers), सहायको (Assistants), आशुलिपिको (*Stenographers*) व लिपिको (*Clerks*) आदि के प्रतिनिधियो को मिलाकर बनती है। सम्बन्धित मन्त्रालय कुछ अधिकारियो (जिनकी सख्या निर्धारित नही है), जोकि अवर सचिव (*Under Secretary*) की पदस्थिति (Rank) से नीचे के नही होते, तथा सलग्न कार्यालयो (Attached offices) के प्रधानो अथवा उनके द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तियो को मनोनीत करता है जोकि परिषद् मे प्रशासन का प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधि कर्मचारी सघो द्वारा मनोनीत नही किये जाते, अपितु कर्मचारियो द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। ये दो वर्ष तक अपने पद पर बने रहते हैं। मन्त्रालय का सचिव अथवा एक सयुक्त सचिव (Joint Secretary) परिषद् का अध्यक्ष होता है। कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधियो के परामर्श से वह उनमे से एक को परिषद् का सचिव नामजद करता है। यह आवश्यक है कि तीन माह मे कम से कम एक बार परिषद् की बैठक अवश्य हो, परन्तु कर्मचारी-वर्ग के १/५ प्रतिनिधियो की प्रार्थना पर अध्यक्ष को परिषद् की विशेष बैठक (Meeting) बुलानी होती है। परिषद् केवल उसी प्रस्ताव की सिफारिश कर सकती है जोकि प्रत्येक पक्ष के सदस्यो के बहुमत से स्वीकृत हुआ हो, और तब सम्बन्धित मन्त्रालय यह निश्चय करता है कि उस सिफारिश पर यदि कोई कार्यवाही की जाए तो क्या की जाए। परिषद् की कार्यवाहियां (Proceedings) मन्त्री (Minister) के समक्ष प्रस्तुत की जाती है और असहमति के केन्द्रबिन्दुओ की ओर विशेष रूप से उसका ध्यान आकर्षित किया जाता है।

1 Renamed Staff Councils in August 1957

कर्मचारी-वर्ग परिषद् की बैठकों में जिन विवादों का समाधान नहीं हो पाता वे समन्वय समिति (Co-ordination Committee) के सुपुर्द कर दिये जाते हैं जोकि स्वराष्ट्र, वित्त, श्रम, गृहनिर्माण तथा पूर्ति मन्त्रालयों के तीन वरिष्ठ पदाधिकारियों को मिलाकर बनती हैं।

कर्मचारी-वर्ग परिषदों के उद्देश्य
(Objects of the Staff Councils)

कर्मचारी-वर्ग परिषदों के उद्देश्य ये हैं (१) कार्य के स्तरों में सुधार के सुझावों पर विचार करना, (२) कर्मचारियों के लिए एक ऐसे यन्त्र की व्यवस्था करना जिसके द्वारा वे अपनी सेवा की शर्तों को प्रभावित करने वाले मामलों के विषय में अपने दृष्टिकोण से सरकार को परिचित करा सकें, और (३) अधिकारियों के बीच वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने के उपायों की व्यवस्था करना जिससे कि उनके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का विकास हो और कर्मचारियों को अपने कार्य में अधिक रुचि लेने का प्रोत्साहन मिले। ये परिषदें परामर्शदात्री संस्थायें हैं और (१) कर्मचारियों की कार्य करने की दशाओं एवं शर्तों, (२) सेवा की शर्तों का नियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्तों, (३) कर्मचारी-वर्ग के कल्याण तथा (४) कार्य-क्षमता एवं कार्य के स्तरों में सुधार से सम्बन्धित कोई भी मामला इनकी बैठकों में वादविवाद के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

कनिष्ठ-कर्मचारी वर्ग परिषदों की रचना तथा उनके कार्य भी मुख्यतः वैसे ही होते हैं। इसमें सहायकों (Assistants) अथवा उनके ऊपर की पदस्थिति के अधिकारी सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। सम्बन्धित मन्त्रालय का उप-सचिव (Deputy Secretary) इसका अध्यक्ष होता है। कर्मचारी-वर्ग के प्रतिनिधि प्रत्यक्ष रूप से कर्मचारियों द्वारा ही निर्वाचित किये जाते हैं। इस कार्य के लिए कर्मचारियों को दो वर्गों में बाटा जाता है (१) दफ्तरी और रिकार्ड छाटने वाले, और (२) जमादार, चपरासी फर्राश, चौकीदार व मेहतर आदि। प्रत्येक वर्ग एक अतिरिक्त प्रतिनिधि का निर्वाचन कर सकता है जोकि उच्च श्रेणी से सम्बन्धित एक सरकारी कर्मचारी होना चाहिये परन्तु वह अनुभाग अधिकारी (Section officer) से ऊंची पदस्थिति (Rank) के पद पर आसीन नहीं होना चाहिए। डाक व तार तथा रेलवे विभागों को अपनी निजी संस्थायें अथवा परिषदें होती हैं जिनके द्वारा वे कर्मचारी-वर्ग की समस्याओं का समाधान करते हैं।

सरकार के औद्योगिक कर्मचारी 'भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम, १९२६' (Indian Trade Unions Act 1926) तथा 'औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७' (Industrial Disputes Act, 1947) के अन्तर्गत आते हैं। ये अधिनियम सरकार तथा गैर-सरकारी कर्मचारियों के बीच कोई भेद नहीं करते, और यदि ये इनके बीच कोई भेद करते भी है तो वह उस उद्यम अथवा सेवा की प्रकृति पर आधारित होता है जिसमें कि कर्मचारी काम कर रहा होता है, अथवा उसके कार्यों

की प्रकृति तथा उसको प्राप्त होने वाले परिलाभो (Emoluments) की मात्रा पर आधारित होता है। अधिनियम (Act) मे विवादो के निपटारे के लिए, कुछ शर्तों के पूरा होने पर ऐच्छिक पच-निर्णय (Voluntary arbitration) की तथा जनोपयोगी सेवाओ की स्थिति मे अनिवार्य न्यायिक निर्णय (Compulsory adjudication) की व्यवस्था है जब तक कि सरकार हडताल की धमकी को निरर्थक अथवा न्यायिक निर्णय की आवश्यकता को अनुपयुक्त न समझे।[1] इस प्रकार का न्यायिक निर्णय सरकार द्वारा स्वीकृत होने पर दोनो पक्षो पर अनिवार्य रूप से लागू होता है और तदनुसार उसकी सूचना दे दी जाती है।

भारत मे विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत की व्यवस्था की आलोचना

(Criticism of Machinery for Settlement and Negotiations of Disputes)

वेतन आयोग (Pay Commission) (१९५७-५९) के समक्ष गवाही देते हुए कर्मचारियों के सगठनो ने सरकार तथा उसके कर्मचारियो के बीच विवादो के निपटारे तथा सुलह की बातचीत की वर्तमान व्यवस्था की निम्नलिखित आलोचनाए की —

(१) सरकार मे, विवादो के निवारण के एक प्रभावशाली अस्त्र के रूप मे सयुक्त परामर्श के सिद्धान्त को स्वीकार करने की इच्छा का अभाव था,

(२) *वहाँ भी जहाँ कि वार्तालाप-यन्त्र सुविचारपूर्ण था, वह कुशलता के साथ* काय नही कर रहा था,

(३) बैठको (Meetings) का आयोजन नियमित रूप से नही किया जाता था, अथवा निर्णय (Decisions) करने या उनको क्रियान्वित करने मे शीघ्रता नही *की जाती थी*,

(४) प्रशासन का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ अधिकारी उस यन्त्र-रचना के प्रति, जिसके अन्तर्गत कि उन्हे कार्य करना था, उचित रुख नही अपनाते थे। कर्मचारी-वर्ग परिषदो (Staff councils) के विषय मे वेतन आयोग के प्रतिवेदन (Report)[2] मे कहा गया कि "कर्मचारी-वर्ग परिषदो तथा ह्विटले यन्त्र मे बहुत कम समानता पाई जाती है, हाँ इनके नामकरण मे अवश्य कुछ समानता है। इन परिषदो के उद्देश्य तो काफी व्यापक हैं, परन्तु उनकी शक्तिया तथा कार्यविधिया उनके सक्रिय काय-क्षेत्र को अत्यन्त सीमित कर देती हैं। सेवा की शर्तों से सम्बन्धित अधिकाश मामले आमतौर से केन्द्रीय स्तर पर निपटाये जाते है, विभागीय स्तर पर नही, परन्तु ऐसे मामलो पर विचार करने के लिये केन्द्रीय कर्मचारी-वर्ग परिषद् जैसी कोई सस्था नही है। परिणाम यह होता है कि कर्मचारी वर्ग परिषदो की सिफारिशें

1 Section 10 of the Act

2 Pay Commission Report, *op cit*, p 540

सामान्य रीति के अनुसार उपयुक्त मन्त्रालयों को विचारार्थ प्रेषित कर दी जाती हैं और उन पर जो निर्णय किए जाते हैं, एक अवधि के पश्चात्, जोकि कभी-कभी विचारणीय होती है, परिषदों को बता दिए जाते है। सरकारी पक्ष को यह सत्ता प्राप्त नहीं होती कि वह सरकार के उत्तरदायित्व पर किसी भी बात के लिए वचन-बद्ध हो सके, इसके सदस्य अधिक से अधिक अपने वैयक्तिक सामयिक विचार प्रकट कर सकते हैं परन्तु सरकार किसी भी प्रकार उनको स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होती। इन परिस्थितियों में, इन परिषदों को सुलह की वार्तालाप के यन्त्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती। वस्तुस्थिति यह है कि ये परिषदें कर्मचारियों के प्रतिनिधियों के लिये केवल एक ऐसा मंच मात्र हैं जहाँ से कि वे अपनी व्यथाओं एवं शिकायतों को प्रस्तुत कर सकें और सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियों के सम्मुख अपने विचार रख सकें। हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि इन परिषदों का परामर्श एवं विचार विमर्श करने के यन्त्र की व्यवस्था करने का साधन भी माना जा सकता है। हम जो सूचना उपलब्ध हुई है उससे यह प्रकट नहीं होता कि सरकार द्वारा इन परिषदों के सम्मुख कोई भी समस्या या प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत किया गया हो । इन परिषदों का ह्विटल परिषदों से पूर्णतः भिन्न माना जाता है।'

भारत में ह्विटल परिषदों की अत्यधिक आवश्यकता है। वेतन आयोग ने सरकारी कर्मचारियों के विवादों को सुलझाने तथा सुलह की बातचीत के लिये अपने प्रतिवेदन में निम्न बातों की सिफारिश की

झगड़ों को सुलझाने तथा सुलह की बातचीत के लिए, एक केन्द्रीय संयुक्त परिषद् (Central joint council) सहित, जिसमें, कि औद्योगिक तथा गैर-औद्योगिक केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के सम्पूर्ण निकाय (Whole body) का प्रतिनिधित्व हो, ह्विटले-तुल्य यन्त्र की स्थापना होनी चाहिये। केन्द्रीय संयुक्त परिषद् की एक समिति औद्योगिक कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित मामलों को निबटा सकती है।

इसी प्रकार विभागीय संयुक्त परिषदों की भी स्थापना होनी चाहिए।

सुलह की बातचीत (Negotiation) के संयुक्त यन्त्र के एक-एक आवश्यक पूरक (Complement) के रूप में ऐसे अनिवार्य पंचनिर्णय (Compulsory arbitration) की व्यवस्था होनी चाहिए जोकि केवल मान्यता प्राप्त संस्थाओं (संघों) के लिए ही खुला हो और ऐसे कर्मचारियों के वेतन व भत्तों, कार्य के साप्ताहिक घण्टों तथा छुट्टियों तक सीमित हो जोकि वर्तमान द्वितीय श्रेणी के स्तर से ऊपर के न हों।

श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) कर्मचारी सम्बन्धों (Staff relations) से सम्बद्ध महत्वपूर्ण मामलों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए। प्रस्तावित केन्द्रीय संयुक्त परिषद् से विशेष रूप से इसका सम्बन्ध होना चाहिए और इसको पंच मण्डल (Board of arbitrators) के अध्यक्ष की नियुक्ति करनी

चाहिये, यदि पंच-निर्णय आवश्यक हो, तो भारत में ह्विटले परिषदों की अत्यधिक आवश्यकता है। कर्मचारियो के झगड़े जिनके फलस्वरूप हड़तालें होती हैं भारत में आये-दिन की बात हो गई है। ह्विटलेवाद (Whitleyism) की मुख्य महत्ता उन साधनों में निहित नहीं है जोकि यह झगड़ो को सुलझाने के लिए प्रस्तुत करता है (वैसे उन साधनों का अपना निजी महत्व है), अपितु उन अवसरो (Opportunities) में निहित है जिन्हें यह झगड़ों तथा हड़तालो को रोकने के लिए उपलब्ध कराता है।



टिप्पणी—भारत में सरकारी सेवाओं में हड़तालों पर रोक लगा दी जायेगी और केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के संघों में किसी भी बाहर के व्यक्ति को पद ग्रहण करने की अनुमति नहीं होगी। सरकार पंचनिर्णय द्वारा विवादों का निबटारा करने के लिए सेवाओं की सभी शाखाओं में सुलह यन्त्र की स्थापना करेगी।

(हिन्दुस्तान टाइम्स, ६ अगस्त १९६०)

भारत सरकार कुछ सरकारी सेवाओं में हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगा रही है। सरकार अपने कर्मचारियों को दो ठोस लाभ प्रदान करने का विचार कर रही है—विभिन्न स्तरों पर एक संयुक्त वार्तालाप यन्त्र (Joint negotiating machinery) और इसके असफल रहने की स्थिति में पंचनिर्णय (Arbitration)।

२३

अमेरिकन सिविल सेवा

(American Civil Service)

प्रशासन की काय क्षमता एक बडी मात्रा म उस कर्मचारी-वर्ग की कार्यक्षमता पर निर्भर रहती है जोकि प्रशासन की व्यवस्था करता है। किसी भी दश का कुशल प्रशासन सिविल सेवा की क्षमता एव समथता पर निर्भर होता है। किसी भी देश की सिविल सवा के सम्बन्ध म जो प्रमुख प्रश्न पैदा होते हैं वे ये हैं सिविल अथवा असैनिक सवको की भर्ती (Recruitment) किस प्रकार की जाती है और उन्हे प्रशिक्षण (Training) किस प्रकार दिया जाता है ? उसका चयन योग्यता (Merit) क आधार पर किया जाता है अथवा केवल वैयक्तिक तथा राजनैतिक आधार पर ? उनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है और उनको वेतन किस प्रकार दिया जाता है ? उनक काय का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है और किन किन दशाओ एव शर्तों क अन्तगत उन्हे पदोन्नत (Promote) किया जाता है ? व किस प्रकार अनुशासित (Disciplined) रह सकते हैं ? पदो से उन्हे किस प्रकार तथा क्यो हटाया जाता है ? सरकारी सेवा जीवन वृत्ति (Career) के लिए किस सीमा तक अवसर प्रस्तुत करती है ? सिविल सेवा की काय-क्षमता इन तथा ऐसे ही अन्य सम्बन्धित प्रश्नो के समुचित हल पर निर्भर होती है। गत अध्यायो मे इन समस्याओ म से अनेक पर विचार किया जा चुका है। यहाँ तो केवल अमेरिकन सिविल सेवा की कुछ महत्वपूर्ण एव विशिष्ट समस्याओ पर ही विचार किया जाता है।

पहले अमेरिका म सिविल सवको का चुनाव योग्यता के आधार पर नही बल्कि राजनैतिक विचार के आधार पर किया जाता था और इसलिए अमेरिका को लूट खसोट प्रणाली (Spoils system) की कुख्यात भूमि कहा जाता है। राज्य क पद विजेता राजनैतिक दल द्वारा अपने समथको मे लूट के माल के रूप मे बाटे जाते थे। देश के सामाजिक एव राजनैतिक जीवन पर इस लूट खसोट प्रणाली का बडा दूषित प्रभाव पडता था। अनेक योग्य व्यक्तियों तथा सगठनो न सिविल सेवा क सुधार के प्रश्न को अपना केन्द्र बिन्दु बनाया। इसका ही परिणाम यह हुआ कि सन् १८८३ म काग्रेस ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिविल सेवा अधिनियम पारित किया जोकि सामान्यत पेन्डलटन अधिनियम' (Pendleton Act) के नाम से विख्यात है और जिसन उसी दिन स राष्ट्रीय सिविल सेवा मे प्रवेश का नियमन

करने वाले एक मूलभूत कानून के रूप मे कार्य किया है, यद्यपि समय-समय पर इसमे अनेक संशोधन होते रहे हैं। ६५ प्रतिशत सिविल सेवक अब प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही अपने पदो पर आसीन हैं। लूट-खसोट अभी पूर्ण रूप से समाप्त नही हुई है क्योकि इसका अन्त बडी कठिनाई से होता है। पर इतनी बात अवश्य है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्मिक व्यवस्था (Personnel system) मे योग्यता प्रणाली ने अब वह स्थान प्राप्त कर लिया है जिस पर गर्व किया जा सकता है।

सन् १८८३ का पेन्डलटन अधिनियम
(The Pendleton Act of 1883)

इस महत्वपूर्ण अधिनियम के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार है —

(१) इस अधिनियम मे राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल गया कि वह संयुक्त राज्य सिविल सेवा आयोग (United State Civil Service Commission) का निर्माण करने के लिए, सीनेट के द्वारा और उसकी सलाह तथा सहमति से तीन व्यक्तियो को सिविल आयुक्त (Civil Service Commissioners) नियुक्त कर सके, परन्तु उनमे दो से अधिक व्यक्ति किसी एक ही दल (Party) से सम्बद्ध न हों। ये आयुक्त केवल राष्ट्रपति (President) द्वारा ही हटाये जा सकते है।

(२) इनका कार्य यह है कि ये राष्ट्रपति के कथनानुसार ऐसे उपयुक्त नियमो के निर्माण मे राष्ट्रपति की सहायता करें जोकि अधिनियम को कार्यरूप देने के लिए आवश्यक हो। एक बार जब इन नियमो की घोषणा करदी जाय तो संयुक्त राज्य के सभी अधिकारियो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उन्हे कार्यान्वित करने मे सहायता दें।

(३) "अच्छे प्रशासन की दृष्टि से जहा तक भी सम्भव होगा" इन नियमो के द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाए की जायेगी (क) वर्तमान मे वर्गीकृत अथवा भविष्य मे वर्गीकृत की जाने वाली लोक सेवाओ मे प्रवेश के इच्छुक प्रार्थियो की उपयुक्तता एव पात्रता की जाँच करने के लिए खुली प्रतियोगिता परीक्षाओ की व्यवस्था, (ख) परीक्षाए व्यावहारिक प्रकृति की होगी और उनके द्वारा यह देखा जायेगा कि प्रार्थी उस सेवा के कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए उपयुक्त पात्र हैं या नही जिसमे कि वे अपनी नियुक्ति चाहते हैं, (ग) प्रत्येक श्रेणी के पद उन व्यक्तियो द्वारा भरे जायेंगे जोकि परीक्षाओ मे सर्वोच्च क्रम से स्थान प्राप्त करेंगे, (घ) वाशिंगटन मे स्थित पद विभिन्न राज्यो एवं प्रदेशो मे उनकी जनसख्या के आधार पर बाँट दिये जायेंगे, (ङ) अन्तिम रूप से पुष्टीकृत (Confirmed) नियुक्ति से पूर्व परिवीक्षा (Probation) की अवधि की व्यवस्था की जायगी (च) इन नियमो (Rules) के आवश्यक अपवादो (Necessary exceptions) का उल्लेख नियमो मे ही किया जायेगा और आयोग के वार्षिक प्रतिवेदनो मे उनके कारण (Reasons) दिये जायेंगे, (छ) आयोग परीक्षाओ का संचालन करेगा,

कांग्रेस को प्रेषित करने के लिए वार्षिक प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करेगा *जिसम अन्य बातो के साथ ही अधिनियम के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सुझाव* भी दिये जायेंगे।

(४) श्रमिक व कारीगर तथा सीनेट द्वारा पुष्टीकरण (Confirmation) के लिए मनोनीत (Nominated) व्यक्ति अधिनियम के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखे गये हैं। इस प्रकार वर्गीकृत' (Classified) पदो पर योग्यता सिद्धान्त (Merit principle) लागू होता है। कर्मचारी अब दलीय कार्यों की दृष्टि से किये जाने वाले मूल्यांकन से मुक्त हैं, और उन्हे यह अधिकार नही है कि वे राजनीति मे सक्रिय रूप म भाग ले सकें। संयुक्त राज्य अमेरिका मे सिविल सेवा सुधार का मुख्य रुझान, जो 'पन्डलटन अधिनियम' के साथ प्रारम्भ हुआ था, अब इस उद्देश्य की ओर है कि *प्रदर्शित योग्यता के आधार पर ही नियुक्तियाँ की जायें और नियुक्तियों* (Appointees) को यह आश्वासन दिया जाये कि कुशल कार्य-सम्पादन तथा श्रेष्ठ व्यवहार की स्थिति म उन्हे पदावधि की सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

सिविल सेवा अथवा असैनिकसेवा आयोग
(Civil Service Commission)

सन् १८८३ के अधिनियम मे राष्ट्रपति तथा सीनेट द्वारा नियुक्त किये जाने वाले तीन सदस्यो के द्विदलीय सिविल सवा आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गई। आयोग परीक्षाओ के लिए नियम बनाता है, उनका सचालन करता है और पात्र प्रत्याशिया (Eligible candidates) की सूचियो को प्रमाणित करता है, सिविल सेवको का वर्गीकरण करता है, उनके लिए नियम तथा विनियम (Rules and regulations) बनाता है, सेवा के लिए प्रशिक्षण (Training) की व्यवस्था करता है, राजनैतिक क्रियाओ क आरोपो की जाँच पडताल करता है, सिविल सेवा निष्ठा कार्यक्रम का सचालन करता है, सन् १९४८ के उस कार्यपालक आदेश को क्रियान्वित करता है जिसके द्वारा कि सम्पूर्ण सेवा (Service) के अन्तर्गत नौकरी के सम्बन्ध म न्यायपूर्ण कार्यवाहियो एव कार्यविधियो की अपेक्षा की जाती है, प्रस्थापना शाखाओ से सवा अभिलेख (Service records) प्राप्त करता है, कार्य कुशलता माप प्रणाली (Efficiency rating system) तथा सवा-निवृत्ति विधि (Retirement law) की व्यवस्था करता है तथा सिविल सेवा के सुधार एव उन्नति से *सम्बन्धित अन्य अनेक कार्य करता है।* आयोग इन कार्यो को *ग्यारह सभागो* (Divisions) तथा अन्य अनक इकाइयो (Units) के द्वारा सम्पन्न करता है। आयोग के अध्यक्ष के पर्यवेक्षण (Supervision) म सभागो द्वारा अनक ऐस कार्य सम्पन्न किये जाते हैं जैसे कि कार्मिक वर्गीकरण (Personnel classification), परीक्षायें लेना तथा कार्य पर नियुक्त करना, सेवा निवृत्ति, राज्यनिष्ठा का अवलोकन, सेवा अभिलेख, बजट तथा वित्त (Budget and finance), सूचना (Information), जाँच पडताल तथा निरीक्षण। सघीय प्रशासनिक अधिकरणो की आवश्यकताओ की

पूर्ति की दृष्टि से देश को चौदह सिविल सेवा क्षेत्रो मे विभाजित किया गया है और मुख्य-मुख्य नगरो मे प्रत्येक क्षेत्र के प्रधान कार्यालय हैं। अमेरिका मे लगभग १७०० प्रकार की सिविल सेवा परीक्षाये पाई जाती हैं जिनमे निम्नलिखित महत्वपूर्ण है

(१) "समवेत" तथा "असमवेत" परीक्षाये (Assembled and Unassembled Examinations)।

(२) "प्रतियोगिता" तथा "अप्रतियोगिता" परीक्षाये (Competitive and Non-competitive Examinations)।

(३) *व्यावहारिक बनाम सामान्य परीक्षाये (Practical vs General Examinations)* ।

जब किसी प्रत्याशी (Candidate) से परीक्षा के लिए किसी निर्दिष्ट स्थान (Designated place) पर उपस्थित होने के लिए कहा जाता है तो उसे "समवेत परीक्षा" के नाम से पुकारा जाता है, और यदि प्रत्याशी से परीक्षा के लिये किसी भी स्थान पर उपस्थित होने की माग नही की जाती तो उसे "असमवेत परीक्षा" कहा जाता है। लिपिक अथवा अन्य अधीनस्थ प्रकृति के अधिकाश पदो के प्रत्याशियो के लिये "समवेत परीक्षा" की ही व्यवस्था की जाती है। इन प्रत्याशियो की परीक्षा वर्गों (Groups) मे ली जाती है और वह पूर्णतया लिखित होती है, उदाहरण के लिये आशुलिपिको (Stenographers) तथा मुद्रलेखको (Typists) को राज्यो मे ५०० अथवा उससे भी अधिक निर्दिष्ट स्थानो मे से एक मे जाना पडता है और *नियमित परीक्षा मे बैठना होता है। परीक्षा मे श्रेष्ठता एव प्रवीणता के क्रम से* प्रतियोगियो को सूचीबद्ध कर लिया जाता है। सिविल-सेवा के उच्चतर श्रेणी के पदो के प्रार्थियो (Applicants) से सामान्यत यह माग नही की जाती कि वे परीक्षा के लिये किसी स्थान पर उपस्थित हो। ऐसी परीक्षाओ को "असमवेत परीक्षाओ" की सज्ञा दी जाती है। उच्चतर *श्रेणी* के पदो के प्रत्याशियो को औपचारिक परीक्षा, वास्तव मे बिल्कुल होती ही नही। उनके अनुभव, व्यक्तित्व (Personality), उनकी शिक्षा एव सामान्य योग्यता का मूल्याकन साक्षात्कार (Interview) तथा प्रमाण पत्रो द्वारा ही कर लिया जाता है, कभी-कभी इसके अनुपूरक के रूप म, किसी ऐसे निर्धारित कार्य की सम्पन्नता के द्वारा ही मूल्याकन किया जाता है जैसे कि कोई मौलिक विवरण का लेख तैयार कराना।

परीक्षायें अधिकतर "प्रतियोगी" (Competitive) प्रकृति की होती हैं। प्रत्याशियो का चयन (Selection) पद के कार्य की सम्पन्नता (Performance) के आधार पर किया जाता है। कुछ परीक्षायें अप्रतियोगी भी होती हैं और प्रत्याशी को उनम केवल उत्तीर्ण होना होता है।

अमेरिका मे व्यावहारिक परीक्षाओ (Practical examinations) पर जोर दिया जाता है। पेन्डलटन अधिनियम मे यह कहा गया है कि परीक्षायें "व्यावहारिक प्रकृति की होनी चाहिए" और जहाँ तक भी सम्भव हो, "उन विषयो से सम्बन्धित

होनी चाहिए जिसके द्वारा कि उन सेवाओं के कार्यों को सम्पन्न करने की परीक्षाओं की सापेक्षिक क्षमता एवं योग्यता की न्यायपूर्ण जांच की जा सके जिनमें कि वे नियुक्त होना चाहते हैं।' परीक्षा की यह पद्धति दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओं की जाच नहीं की जाती। ब्रिटेन में परीक्षाओं की जो पद्धति है उसके द्वारा प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओं, गुणों एवं क्षमता की जाच की जाती है। "कुछ भी हो" "अमेरिकन परीक्षा प्रणाली में अभी भी यह कमी पाई जाती है कि उसका उद्देश्य केवल ऐसे प्रत्याशियों की भर्ती करना मात्र है, इससे अधिक नहीं, जो कि किसी विशिष्ट और सम्भवत नैत्यक (Routine) कार्य को सम्भाल सकें— इसमें प्रत्याशी की उन बौद्धिक योग्यताओं एवं क्षमताओं का ध्यान नहीं रखा जाता जो कि एक बार नियुक्त होने के पश्चात् उसको और अधिक विशाल उत्तरदायित्वों के वहन करने के योग्य बनायेंगी।" अब अमेरिका में सामान्य रुझान प्रत्याशियों की सामान्य योग्यता की जाच करने की ब्रिटिश परीक्षा की पद्धति के प्रतिरूप की ओर को ही है। सिविल सेवा आयोग ने अब कालिजो से निकले हुये नये छात्रों के लिये एक सामान्य-कार्य परीक्षा' की व्यवस्था की है।

उन सभी प्रत्याशियों को पात्र सूची (Eligible list) में रखा जाता है जोकि ७० प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करते हैं। जब कभी भी किसी विभाग (Department) में कोई स्थान रिक्त होता है तो नियुक्ति अधिकारी (Appointing officer) को पात्र प्रत्याशियों की सूची में के तीन सर्वोच्च नामों में से एक का चयन करके उस पद को भरना होता है। नियुक्त किये गये प्रत्येक व्यक्ति का परिवीक्षा (Probation) पर रखा जाता है। यदि उसका कार्य सन्तोषजनक होता है तो उसे स्थायी कर दिया जाता है। कर्मचारी-वर्ग में किसी भी प्रकार की कार्य-क्षमता तथा मनोबल (Morale) तब तक नहीं लाया जा सकता जब तक कि उन्हें पदस्थिति (Rank) तथा वेतन में वृद्धि का न्यायपूर्ण एवं युक्तिसगत आश्वासन न दिया जाय। अब पदोन्नतियाँ (Promotions), योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है। योग्यता की जांच पदोन्नति-परीक्षाओं (Promotions examinations) तथा प्रत्याशी की कार्य कुशलता मापों (Efficiency ratings) के आधार पर की जाती है। रैन्डलटन अधिनियम' में पदोन्नति परीक्षाओं की व्यवस्था है। अधिनियम में यह कहा गया है कि किसी भी वर्गीकृत अधिकारी अथवा कर्मचारी की पदोन्नति उस समय तक नहीं की जायेगी, "जब तक कि उसने निर्धारित परीक्षा न उत्तीर्ण कर ली हो अथवा उसने इतनी योग्यता का प्रदर्शन न किया हो कि उसे ऐसी परीक्षा से विशेष रूप से मुक्त कर दिया जाए", और काफी समय पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा एक और नियम इसमें सम्मिलित किया गया कि 'वर्गीकृत सेवा में

1 Frederic A Ogg and P Orman Ray, *Essentials of American Government* New York Appleton-Century Crafts, Inc 7th Edition 1952 p 330

पदोन्नति की योग्यता की जाँच के लिए जहाँ तक भी व्यावहारिक तथा हितकर होगा, प्रतियोगिता परीक्षाओं की व्यवस्था की जायेगी।" सिविल सेवा आयोग अब ऐसे पदो के लिए, जो कि एक से अधिक विभागों के लिए समान होते हैं, अनेक पदोन्नति परीक्षाओं का सचालन करता है। पृथक पृथक् विभाग तथा सस्थान (Establishments) अपने-अपने सम्बन्धित क्षेत्राधिकारी (Jurisdictions) मे पदोन्नतियो के लिए परीक्षाओं का आयोजन करते हैं। अमेरिकन अब पदोन्नतियो के लिये कार्य कुशलता मापो (Efficiency ratings) की पद्धति को पूर्ण रूप से लागू करने का प्रयास कर रहे हैं।

कोई भी सेवा तब तक कार्य नहीं कर सकती, जब तक कि वह अनुशासित (Disciplined) न हो। वर्गीकृत सेवाओं के लिए यह व्यवस्था है कि "समान अपराधो के लिए समान दण्ड दिये जायेंगे तथा राजनैतिक अथवा धार्मिक कारणो के आधार पर कोई भेदभाव नही किया जायेगा।" अनुशासन भग की स्थिति मे किसी भी कर्मचारी को निलम्बित (Suspend) किया जा सकता है, उसके पदक्रम तथा वेतन मे कमी की जा सकती है और यहाँ तक कि उसे सेवा से हटाया भी जा सकता है। सन् १९५२ के Lloyd-La-Follette Act मे यह व्यवस्था है कि वर्गीकृत सेवा (Classified service) के किसी भी कर्मचारी को तब तक उसके पद से नही हटाया जायेगा जब तक कि कोई ऐसा कारण उपस्थित न हो जिससे उक्त सेवा की कार्य-कुशलता बढाने मे बाधा पडती हो', यह कि जिस कर्मचारी को पद से हटाया जायेगा उसको हटाये जाने के कारण (Reasons) लिखित मे दिये जायेंगे, यह कि उन कारणो का लिखित मे उत्तर देने के लिए उस कर्मचारी को समय दिया जायेगा, "परन्तु साक्षियो (Witnesses) की जाच पडताल अथवा सुनवाई (Hearing) की तब तक कोई आवश्यकता न होगी जब तक कि पद से हटाने (Removal) वाले अधिकारी की ही ऐसी इच्छा न हो।" सिविल सेवा अधिनियम (Civil Service Act) द्वारा इस बात पर प्रतिबन्ध लगाया गया है कि सयुक्त राज्य का कोई भी पदाधिकारी अथवा कर्मचारी, किसी भी राजनैतिक कार्य के लिए चन्दा अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुयें देने अथवा रोकने अथवा उनको देने मे उपेक्षा करने के कारण अन्य किसी भी अधिकारी या कर्मचारी को सेवोमुक्त (Discharge) या पदोन्नत (Promote) न कर सकेगा, अथवा उसकी पदावनति न कर सकेगा, या उसके प्रतिफल (Compensation) या सरकारी पदक्रम मे कोई परिवर्तन न कर सकेगा अथवा न ऐसा करने का वायदा कर सकेगा या धमकी ही दे सकेगा।" इस प्रकार अन्यायपूर्ण तरीके से पदो से हटाये जाने की घटनायें नही हो पाती, और कर्मचारियो को अपने पदो के सम्बन्ध मे न्यायोचित सुरक्षा मिल जाती है।

सिविल सेवक को उस सरकार के प्रति निष्ठावान (Loyal) होना चाहिए जिसकी यह नौकरी करता है। लोकतन्त्र मे उसे राजनीति से, तटस्थ (Neutral) रहना चाहिए। उसे किसी भी राजनैतिक हलचल मे भाग नहीं लेना चाहिए। सिविल

सेवा विनियमों (Civil Service regulations) के प्रथम नियम में यह कहा गया है कि सिविल सेवक को मत (Vote) देने तथा सभी राजनैतिक विचारों पर व्यक्तिगत रूप से अपनी राय प्रकट करने का अधिकार है। परन्तु यह ध्यान रहे कि वह किसी भी राजनैतिक प्रबन्ध अथवा राजनैतिक कार्यवाही में सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकेगा। कर्मचारी संस्थाओं अथवा संघों के रूप में अपने आपको संगठित कर सकते हैं। परन्तु किसी प्रकार भी उन्हें हड़ताल करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। लोक-सेवकों के लिये पूर्व-प्रवेश (Pre entry) तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण (In service training) की भी व्यवस्था है।

अमेरिकन सिविल सेवा प्रणाली के दोष
(Defects in American Civil Service System)

अमेरिकन सिविल सेवा उत्तरदायी प्रशासकीय पदों पर ऊंची योग्यता वाले व्यक्तियों को आकर्षित करने तथा रखने में असफल रही है। अमेरिका में इस सम्बन्ध में जोर इस बात पर दिया जाता रहा है कि दुष्टजनों (Rascals) को सिविल सेवा से बाहर रखा जाय। लोक-सेवा के लिए सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिकार योग्य एवं सक्षम व्यक्तियों को आकर्षित करने का कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया गया है। जैसा कि एक विद्वान् ने कहा है कि "सम्भवतः हमारी कार्मिक व्यवस्था का एक प्रमुख दोष उच्च योग्यता एवं गुणों वाले व्यक्तियों को आकर्षित करने की असफलता में निहित है"। हमें १२,००० से १६,००० डालर तक के वार्षिक वेतनों पर, उच्च पदक्रम तथा उच्च प्रतिष्ठा वाले ऐसे स्थायी उच्च पदाधिकारियों की आवश्यकता है, जो कि विभागों की अध्यक्षता करने वाले अस्थायी एवं राजनैतिक अधिकारियों को सलाह दे सकें, परामर्श दे सकें तथा उनकी सेवा कर सकें, और इस प्रकार राजनीति तथा प्रशासन के बीच की खाई को भर सकें। परन्तु हम अब तक चोटी के उन स्थायी प्रशासकीय पदों की पहिचान करने तक में सफल नहीं हो सके हैं, और वस्तुस्थिति यह है कि सरकारी सेवा को जीवन-वृत्ति (Career) के रूप में अपनाने वाले उच्च कोटि के व्यक्ति इस विषय में अंधकार में हैं कि ऐसे उच्च पदों तक किस प्रकार पहुँचा जाय, तथा इन अनिश्चितताओं के कारण ही अनेक सम्भावित जीवन-वृत्ति वाले व्यक्ति गैर-सरकारी सेवाओं में रहना पसन्द करते हैं।"[1]

अमेरिका में लूट-खसोट प्रणाली (Spoils system) के अवशेष अभी तक वर्तमान हैं। सिविल सेवा आयोग सर्वश्रेष्ठ प्रत्याशियों की प्राप्ति के लिये कोई ठोस प्रयत्न नहीं करता, इसके प्रयत्न सिविल सेवा से केवल दुष्टजनों" (Rascals) को बाहर निकालने तक ही सीमित हैं। लोक-सेवाओं में पाई जाने वाली इस कमी का उल्लेख हूवर आयोग ने भी किया। उसने कहा कि "कठिन व्यावसायिक, वैज्ञानिक तकनीकी तथा प्रशासनिक पदों पर सर्वोत्तम युवकों तथा युवतियों की भरती करने

1 Claudius O Johnson *American Government*, p 458

के लिए न पर्याप्त-समय ही लगाया जा रहा है और न यथेष्ट प्रयत्न ही किये जा रहे हैं।"[1] &[2]

संयुक्त राज्य अमेरिका मे, गैर-सरकारी व्यवसाय की अपेक्षा सिविल सेवा मे कम वेतन मिलता है। सिविल सेवा मे योग्य एवं गुणी व्यक्तियों को आकर्षित नहीं किया जाता। ऐसे व्यक्ति यदि सिविल सेवा मे आ भी जाते हैं, तो निम्न वेतन तथा उन्नति के अवसरों की कमी के कारण त्याग पत्र देकर चल जाते हैं। अमेरिका में १८ वर्ष से ३५ वर्ष तक की आयु का कोई भी व्यक्ति सिविल सेवा मे प्रवेश कर सकता है। आयु की यह बड़ी सीमा दोषपूर्ण है। होना यह चाहिये कि १८ से २५ वर्ष तक की आयु के युवा व्यक्ति सिविल सेवा मे भर्ती किये जाये और वे सिविल सेवा को अपनी स्थायी जीवन-वृत्ति (Permanent career) बना लें। यदि लोक-सेवा की भर्ती ३५ अथवा ४० वर्ष की आयु के व्यक्तियों के लिये खुली रहती है तो ऊँची आयु के ऐसे व्यक्ति भी सरकारी सेवा मे प्रवेश पा जाते हैं जोकि व्यक्तिगत व्यवसायों में असफल सिद्ध हुये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि सरकारी सेवा उन व्यक्तियों के लिये एक शरण-स्थल बन गई है जोकि जीवन के अन्य क्षेत्रों मे असफल रह चुके हैं। इससे लोक-सेवा (Public service) मे अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है।

अमेरिकन सिविल सेवा को विशाल अमेरिकन राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए उसमे सुधार किये जाने चाहिये। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित सुधारों के सुझाव दिये जाते है

(१) सरकारी पदों के लिये भर्ती करते समय इस बात का ठोस प्रयत्न किया जाना चाहिये कि उसमे समाज के सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्ति ही लिये जाए।

(२) सरकारी पदों म प्रारम्भिक आयु वाले व्यक्तियों की भर्ती की जानी चाहिये जिससे कि लोक-सेवा कर्मचारियों के लिये एक स्थायी जीवन-वृत्ति बन सके

(३) सिविल सेवकों के वेतन म वृद्धि की जानी चाहिये।

(४) सिविल सेवकों को उन्नति के प्रचुर अवसर प्रदान किये जाने चाहियें।

---

1 Hoever Commission Report, pp 3 5

2 Professor Herman Finer points out two great defects of American Civil Service They are

"(1) In the first place no recognition has yet been given to the principle of an Administrative Class or administrative "brain trust" Most of those recruited by examination have not undertaken the general work of administration The function of thought, comprehensive and synoptic, supplied by a widespread career group—Thought Covering grand sections of the whole *administrative apparatus, and sweeping its gaze over the whole of the Govern*ment from a lofty plane, unencumbered by administrative and clerical trivia*lity—is lacking*

(2) The examinations show triviality also—no width, no philosophic wrestling—*they are back into the routine of their subjects*" *op cit*, 842-43

(५) परीक्षाओं द्वारा प्रत्याशियों की सामान्य बुद्धिमत्ता की जाच की जानी चाहिये।

(६) इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि अमेरिकन सिविल सेवा मे ब्रिटिश नमूने के प्रशासकीय-वर्ग (Administrative class) का निर्माण किया जाय।

अमेरिका मे, सिविल सेवा के सुधारो का मुख्य उद्देश्य लूट-खसोट (Spoils) को दूर करना तथा योग्यता (Merit) को लोक-सेवा का आधार बनाना था। अब वह समय आ गया है जबकि इन सुधारो का उद्देश्य सिविल सेवा म कुशलता तथा मनोबल (Morale) बढ़ाना होना चाहिए और यह उद्देश्य उस समय तक पूरा नहीं हो सकता जब तक कि परीक्षा-पद्धति में सुधार न किया जाए तथा सिविल सेवा मे प्रगति तथा पदोन्नति के श्रेष्ठतर अवसर न उपलब्ध कराये जायें।

२४

ब्रिटिश सिविल सेवा

(British Civil Service)

ब्रिटिश सिविल सेवा ने ससार के अनेक लोकतन्त्रीय देशों के लिए एक आदर्श का कार्य किया है। ब्रिटेन मे सिविल सेवा की भर्ती मे लूट-खसोट (Spoils) अथवा सरक्षण (Patronage) की व्यवस्था नही है। सिविल सेवकों का चयन (Selection) योग्यता (Merit) के आधार पर किया जाता है और योग्यता की जाँच खुली तथा न्यायपूर्ण प्रतियोगिता द्वारा की जाती है। प्रत्याशियों की योग्यता की जाँच करने के लिए एक स्वतन्त्र सिविल सेवा आयोग की नियुक्ति की गई है। ब्रिटेन मे सिविल सेवा ऐसे योग्य तथा गुण सम्पन्न व्यक्तियों से भरी हुई है जोकि युवावस्था मे सेवा मे प्रवेश करते हैं और उसको अपनी जीवनवृत्ति (Career) भी बना लेते हैं क्योंकि वहाँ वेतन तथा पदस्थिति मे वृद्धि के प्रचुर अवसर वर्तमान हैं।

ब्रिटेन मे, गैर-औद्योगिक (Non-industrial) सिविल सेवकों का निम्नलिखित श्रेणियों मे वर्गीकरण किया गया है

(१) प्रशासनिक-वर्ग (Administrative class),

(२) कार्यपालक या निष्पादक-वर्ग (Executive class),

(३) लिपिक तथा उप-लिपिक-वर्ग (Clerical and sub-clerical class),

(४) मुद्र-लेखक-वर्ग (Typists class),

(५) व्यावसायिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी-वर्ग (Professional, scientific and technical class),

(६) डाकघर अभिसाधक-वर्ग (Post Office manipulative class) (जिसमे सफाई करने वाले आदि भी सम्मिलित हैं),

(७) सन्देशवाहक तथा सफाई करने वाले आदि (डाकघर का छोडकर),

(८) डाकघर इजीनियरिंग तथा सम्बद्ध सेवा (Post office Engineering and allied service)।

अब हम सिविल सेवकों की इन विभिन्न श्रेणियों अथवा वर्गों की कुछ विशिष्टताओं पर विचार प्रकट करते हैं।

प्रशासनिक-वर्ग

(The Administrative Class)

ब्रिटेन मे प्रशासकीय-वर्ग एक ऐसा निर्देशक-वर्ग है जिसे सिविल सेवा की धुरी कहा जा सकता है। इस श्रेणी मे पुरुषों तथा स्त्रियों की भर्ती २२ से २४ वर्ष

तक की आयु में की जाती है, यह भर्ती कठिन प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा उन प्रत्याशियों (*Candidates*) में से की जाती है जो कि अधिकतर ऑक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के उच्च कोटि के स्नातक (Graduates) होते हैं।

कर्त्तव्य (Duties)

प्रशासनिक-वर्ग के कर्त्तव्य में नीति का निर्माण, सरकारी यन्त्र में समन्वय (Co-ordination) तथा सुधार और लोक सेवा के विभागों (Department) का सामान्य प्रशासन तथा नियन्त्रण सम्मिलित है।

संख्या तथा वेतन
(Numbers and Pay)

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी-वर्ग को निम्न पदक्रमों (Grades) में बांटा जाता है –

	१-७-५३ की संख्या			वेतन (पौंड में)	
	पुरुष	स्त्रियां	योग	पुरुष	स्त्रियां
राजकोष का स्थायी सचिव (Permanent Secretary to the Treasury)	१	—	१	५,०००	—
स्थायी सचिव	३३	—	३३	४,५००	—
उप सचिव (Deputy secretary)	६७	१	६८	३,२५०	३,२५०
अवर सचिव (Under Secretary)	२१०	७	२१७	२,५००	२,३२५
सहायक सचिव (Asstt Secretary)	६७६	२७	७०३	१६०० २१००	१४२३-१९५०
प्रधान (Principle)	१,१७१	१०९	१,२८०	११५०-१५७०	१०२५-१३९५
सहायक प्रधान	२५७	३५	२९२	४७०-८५५	४७०-७५०
योग (देखिये तीसरी टिप्पणी)	२४१५	१७९	२५९४		—

टिप्पणी—(१) ये वेतन क्रम वे हैं जोकि जुलाई १९५३ को लन्दन में स्टाफ से सम्बन्धित थे।

(२) छोटे-छोटे विभागों के कुछ प्रधानों (*Heads*) को *उप सचिव के रूप में* श्रेणीबद्ध कर लिया गया है।

(३) इस श्रेणी में २,१२५ पौं० वेतन के तीन प्रधान सहायक सचिव तथा विभिन्न वेतन क्रमों के सत्तर अन्य अधिकारी सम्मिलित हैं।

काम के घन्टे और अवकाश (Hours of work and Leave)

वर्तमान समय मे अधिकाश प्रशासनिक अधिकारी कार्यालयो मे सप्ताह मे ४५३/४ घण्टे या ५१/२ दिन कार्य करते है ।

इस श्रेणी के सदस्यो को साधारणतया ३६ दिन की छुट्टिया दी जाती हैं जो कि १० वर्ष की सेवा के पश्चात् ४८ तक बढ जाती हैं । वर्तमान मे यह छूट ३६ दिन तक ही सीमित कर दी गई है ।[1]

कार्यपालक अथवा निष्पादक-वर्ग
(Executive Class)

निष्पादक-वर्ग मे १८ से लेकर २५ वर्ष तक के व्यक्तियो की भर्ती की जाती है । माध्यमिक शिक्षा का पूर्ण पाठ्यक्रम इसके लिए अर्हता का स्तर है ।

कर्त्तव्य :

निष्पादक-वर्ग के कर्तव्य लिपिक-वर्ग तथा प्रशासनिक-वर्ग के कर्तव्यो के मध्य मे निहित होते हैं । इनके कर्तव्यो को सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—निर्धारित नीति के ढाचे के अन्तर्गत दिन-प्रति दिन के सरकारी कार्य का सचालन । तथापि, इनमे पूर्ति (Supply), वित्त तथा लेखाकन का कार्य (Finance and accounting work) तथा अन्य विशिष्टीकृत कार्य (Specialised work), *जैसे कि करो का निर्धारण (Assessment of taxes), जिसके लिये व्यावसायिक योग्यताओ की आवश्यकता नही होती,* सम्मिलित है।

संख्या तथा वेतन :

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी-वर्ग (Permanent staff) को निम्नलिखित पदक्रमो (Grades) मे बाटा जाता है :—

	१-७-५३ की सख्या			वेतन (पौंड मे)	
	पुरुष	स्त्रिया	योग	पुरुष	स्त्रियाँ
बडे सस्थानो के अध्यक्ष (Head of Major Establishment)	३२	—	३२	२,५००	—
प्रधान निष्पादक अधिकारी (Principal Executive Officer)	१२३	—	१२३	१६००–२०००	—
वरिष्ठ मुख्य निष्पादक अधिकारी (Senior Chief Executive Officer)	२५७	३	२६०	१४०८–१५६२	१२२६–१४०८

1 Source : Introductory Factual Memorandum on Civil Service

	पुरुष	स्त्रियां	योग	पुरुष	स्त्रियां
मुख्य निष्पादक अधिकारी	७०२	१८	७२०	१२६०–१५००	१,०६०-१,३२५
वरिष्ठ निष्पादक अधिकारी	२,५८५	१८०	२,७६५	१०३०–१२३०	९००-१,०६०
उच्च निष्पादक अधिकारी	७,६१५	१,२७१	८,९८६	८३०–९९५	७१०–८६०
निष्पादक अधिकारी	१७५३५	५७६२	२३,२९७	४६०–८००	२६०–६७५
योग	२८,८४६	७,३३६	३६,१८२	—	—

टिप्पणी: (१) ये वेतन-क्रम (Scales of pay) वे हैं जोकि १ जुलाई १९५३ को लन्दन में स्टाफ से सम्बन्धित थे।

(२) ऊपर उल्लेख किये गये अधिकारी-वर्ग के साथ ही, लगभग २८,००० प्रस्थापित विभागीय निष्पादक अधिकारी और हैं जोकि मुख्यतः अन्तर्देशीय राजस्व (Inland Revenue) तथा श्रम मन्त्रालय (Ministry of Labour) में हैं, और जिनका वेतन-क्रम सामान्य श्रेणी के वेतन-क्रम से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

काम के घन्टे तथा अवकाश :

सामान्य नियम के अनुसार सप्ताह में ५½ दिन काम होता है। वर्तमान में इस श्रेणी के अधिकांश अधिकारी औसत से सप्ताह में ४५½ घण्टे काम करते हैं।

निष्पादक अधिकारियों को ३६ दिन के अवकाश की अनुमति दी जाती है। उच्च निष्पादक अधिकारी तथा इससे ऊपर के अधिकारी ३६ दिन का अवकाश ले सकते हैं जोकि १५ वर्ष की सेवा के पश्चात् (३६ दिन की छुट्टियों वाले पद-क्रम में ही) बढ़कर ४८ दिन का हो जाता है।[1]

लिपिक-वर्ग

(The Clerical Class)

सिविल सेवा की श्रेणियों में लिपिक-वर्ग की संख्या सबसे अधिक है। इनकी भर्ती १६ से लेकर १७½ वर्ष तक की आयु के बीच की जाती है। इसके लिए आवश्यक शिक्षा की योग्यता सैकण्डरी पाठ्य-क्रम (Secondary course) के माध्यमिक स्तर (Intermediate standard) की होती है।

विवरण तथा कर्त्तव्य (Description and Duties)

लिपिक श्रेणी में सामान्य लिपिक-वर्ग तथा विभागीय लिपिक पद-क्रमों (Grades) के ३०,००० सदस्य हैं जिनका वेतन, युद्धकाल से आगम आप न्यूनाधिक रूप में लिपिक पद-क्रमों (Clerical grades) जैसा ही हो गया है। अभी तक जो

1 Source Factual Memorandum

मुख्य विभागीय लिपिक पद-क्रम (Departmental clerical grades) वर्तमान हैं वे ये हैं : अन्तर्देशीय राजस्व कर अधिकारी (Inland Revenue Tax Officers), श्रम मन्त्रालय पद-क्रम षष्ठ अधिकारी (Ministry of Labour grade six Officers) और सीमा-शुल्क व उत्पादन कर विभागीय लिपिक अधिकारी (Customs and Excise Departmental Clerical Officers)। सामान्य लिपिक-वर्ग में दो पद-क्रम होते हैं—उच्च लिपिक अधिकारी तथा लिपिक अधिकारी। इसके अतिरिक्त लगभग १५,००० अस्थायी लिपिक भी हैं जिनमें से अधिकांश ऐसे कार्य सम्पन्न करते हैं जो कि लिपिक अधिकारियों के कार्यों से कुछ ही कम कठिन होते हैं।

उच्च लिपिक अधिकारी कुछ संस्थानों (Establishments) में लिपिक कर्मचारी-वर्ग (Clerical staff) की देखभाल करते हैं और यह पर्यवेक्षण (Suppervision) ही सामान्यतः उनका पूर्ण कर्त्तव्य अथवा कर्तव्य का मुख्य भाग है, उदाहरण के लिए, रजिस्ट्रियों (Registries) में। उनका शेष कर्तव्य मुकदमा-सम्बन्धी कार्य (Case work) है। लिपिक अधिकारियों को, जोकि संख्या में सबसे अधिक हैं, और अधिक व्यापक कार्य सौंपे जाते हैं। लिपिक अधिकारी उन सब सरल कार्यों को सम्पन्न करते हैं जोकि लिपिक सहायकों (Clerical assistants) को नहीं सौंपे जाते। ये सुस्पष्ट विनियमों (Regulations), अनुदेशों (Instructions) अथवा सामान्य प्रक्रिया के अनुसार विशिष्ट मामलों को निबटाते हैं, स्पष्ट अनुदेशों के अनुसार सीधे-सादे लेखों (Accounts), दावों तथा विवरण पत्रों (Returns) आदि का सूक्ष्म-परीक्षण (Scurtinise) करते हैं तथा उनकी जांच के प्रति जांच (Cross check) करते हैं, विवरण-पत्रों तथा लेखों के लिए निर्धारित फार्मों में आवश्यक सामग्री व आंकड़े तैयार करते हैं, सरल आलेख (Draft) तथा सार (Precis) तैयार करते हैं, ऐसी सामग्री एकत्रित करते हैं जिनके आधार पर निर्णय (Judgments) किये जा सकें, और लिपिक सहायकों के कार्य का पर्यवेक्षण करते हैं। इस पद-क्रम (Grade) के कुछ सदस्यों को लिपिक अधिकारी (सचिव) की पदसंज्ञा (Designation) भी दी जाती है। ये सचिव सम्बन्धी कार्य (Secretarial work) करते हैं जिसमें ज्येष्ठ अधिकारियों के लिये किया जाने वाला आशुलिपि (Short hand) तथा मुद्र-लेखन (Typing) कार्य भी सम्मिलित हैं।

संख्या तथा वेतन :

इस श्रेणी के स्थायी अधिकारी वर्ग की संख्या तथा वेतन निम्न प्रकार हैं—

	१–८–५३ को संख्या			वेतन (पौंड में)	
	पुरुष	स्त्रियां	योग	पुरुष	स्त्रियां
उच्च लिपिक अधिकारी (Higher Clerical Officers)	१,६३३	८४७	२,४८०	६५५-८००	५३०-६७५
लिपिक अधिकारी	५१,१५३	२६,२६०	७७,४१३	१७०-५००	१७०-४६०
लिपिक अधिकारी (सचिव)	१५	१,२८४	१,२९९	१७०-५७०	१७०-४६०
योग	५२,८०१	२८,३९१	८१,९९२		

काम के घंटे तथा अवकाश :

इस श्रेणी के अधिकांश अधिकारी वर्तमान समय में सप्ताह में ५½ दिन या ४५½ घण्टे कार्य करते हैं।

लिपिक अधिकारियों को वर्ष भर में २४ और उच्च लिपिक अधिकारियों को ३६ दिन के अवकाश की अनुमति दी जाती है।[1]

लिपिक सहायक वर्ग
(Clerical Assistant Class)

कर्त्तव्य :

लिपिक सहायक लिपिक सम्बन्धी ऐसे सरल कार्यों को सम्पन्न करते हैं जोकि साधारणतया युद्धकाल में सम्पन्न किये जाते हैं और कुछ सीमा तक अस्थायी लिपिकों द्वारा अभी भी सम्पन्न किये जाते हैं। इनको नैत्यक कार्य (Routine duties) कहा जा सकता है जिनमें कि निम्न प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं सरल दस्तावेजों (Documents), आँकड़ा तथा अभिलेख (Records) आदि का तैयार करना उनको प्रमाणित करना तथा उनका सूक्ष्म-परीक्षण करना, अन्य दस्तावेजों को तैयार करना कार्यालय यन्त्र की सहायता से अथवा उसके बिना ही सरल गणितीय आँकड़े तैयार करना, रजिस्ट्री कार्य के साधारण फार्म तैयार करना, सुस्पष्ट सामान्य अनुदेशों के अन्तर्गत सरल पत्र-व्यवहार करना, कार्यालय यन्त्रों का सचालन करना। इस श्रेणी के लिपिकों के कर्त्तव्यों का यह एक सामान्य विवरण है, उनके कर्त्तव्यों की कोई कड़ी परिभाषा नहीं है, उनको इसी प्रकार के अन्य कार्य भी सौंपे जा सकते हैं। उच्चक्रम के लिपिक सहायकों के कार्य निम्नक्रम के लिपिक अधिकारियों के कार्यों का अतिव्यापन (Overlapping) करते हैं।

संख्या तथा वेतन :

यह वर्ग पूर्णतया एक प्रस्थापित (Established) वर्ग है। इसके सदस्यों की संख्या तथा वेतन इस प्रकार हैं —

	संख्या			वेतन (पौंड में)	
	पुरुष	स्त्रियाँ	योग	पुरुष	स्त्रियाँ
लिपिक वेतन	११,१३८	१७,३२०	२८,४५८	३ पौंड से ८ पौं ८ शि	३ पौंड से ८ पौं ८ शि

अवकाश :

लिपिक सहायकों को १८ दिन की छुट्टियों की अनुमति दी जाती है किन्तु पाँच वर्ष की सेवा के पश्चात् ये छुट्टियाँ बढ़कर २१ दिन तक हो जाती है।[2]

1 Source Factual Memorandum,
2 Source Factual Memorandum

ब्रिटेन में भर्ती की आयु की सीमायें संयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा, जहाँ कि कोई भी व्यक्ति ३५ अथवा ४० वर्ष तक भी सिविल-सेवा मे प्रवेश कर सकता है, नीची हैं। भर्ती की पद्धति सामान्य सार्वजनिक शिक्षा पद्धति से मेल खाती है। सिविल-सेवा की परीक्षाओं का स्तर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-परीक्षाओं के स्तर पर आधारित है।

सिविल सेवा आयोग

(Civil Service Commission)

ब्रिटेन मे सिविल-सेवा की भर्ती एक स्वतन्त्र सिविल-सेवा आयोग द्वारा की जाती है। १८५५ के सपरिषद् आदेश (Order in Council) द्वारा सेवा म प्रवेश के लिए नियम बनाने तथा उन्हे कार्यान्वित करने के लिए तीन सदस्यों के एक केन्द्रीय परीक्षक मण्डल (Central Board of Examiners) का निर्माण किया गया। सिविल-सेवा आयोग, जिसमे अब ६ सदस्य है, की नियुक्ति सम्राट (Crown) द्वारा मन्त्रियो के परामर्श से की जाती है। आयुक्त (Commissioners) सामान्यत वे व्यक्ति होते हैं जिन्हे सि सेवा मे लम्बी अवधि का अनुभव होता है। वे किसी भी मन्त्री के अधीनस्थ अथवा उसके प्रति उत्तरदायी (Answerable) नही होते, वे अपने प्रतिवेदन (Report) महारानी (Queen) को सम्बोधित करके लिखते है। उन्हे एक प्रकार की अर्ध-न्यायिक (Quasi judicial) स्थिति प्राप्त होती है जोकि उन्हे राजनैतिक दबाव से मुक्त रखती है। आयोग के काय म राजकोष का घनिष्ठ *सम्बन्ध होता है। नियम बनाने के कार्य में राजकोष (Treasury) भी भाग लेता* है। भर्ती के मामलो मे आयोग किसी भी प्रकार के बाह्य नियन्त्रण स मुक्त होता है। आयोग की स्वतन्त्रता की गारन्टी के लिए, यह व्यवस्था है कि आयुक्तो को केवल ससद के दोनो सदनो की प्रार्थना पर ही उनके पद से हटाया जा सकता है। सभी उपलब्ध सूचनाओं से इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि ब्रिटेन मे सिविल-सेवा आयोग भर्ती के मामलो मे बाह्य राजनैतिक दबावो से मुक्त है। सन् १६२० के सपरिषद आदेश मे आयोग के कार्यों का उल्लेख किया गया है। सक्षेप मे वे इस प्रकार हैं (१) "उन सभी व्यक्तियों, जो स्थायी अथवा अस्थायी रूप से महामहिम (His Majesty's) के किसी भी सिविल सस्थान मे स्थान अथवा रोजगार के लिए प्रस्तावित किये गये है, की योग्यताओं का, उनकी नियुक्ति से पूर्व, आयोग द्वारा अनुमोदन करना, (२) ऐसे विनियम (Regulations) बनाना जिनके द्वारा उस रीति का निर्धारण किया जाये जिसके अनुसार व्यक्तियों को सिविल सस्थानो (Civil establishments) में प्रवेश किया जा सके और उन शर्तों का निर्धारण किया जाये जिनके आधार पर आयुक्त योग्यता के प्रमाण पत्र दे सकें, और (३) ऐसी सभी नियुक्तियो एव पदोन्नतियों को लन्दन-गजट में प्रकाशित करना जिनके सम्बन्ध म योग्यता के प्रमाण-पत्र (Certificates of qualification) जारी किये गये हों।

आयोग सिविल-सेवा परीक्षाओं तथा पदोन्नति (Promotion) के नियमों की व्यवस्था करता है। आयोग सदा ही भर्ती करने के कार्य के भार से अत्यधिक लदा रहता है। १ जून, १९४९ से मार्च, १९५० तक इसने ३,००,००० प्रत्याशियों की परीक्षा ली और लगभग ८४,००० पदों के लिये प्रत्याशियों को सफल प्रमाणित किया। इसने लेखाकारों, (Accountants) व *सांख्यिकियों (Statisticians)* आदि जैसे विशिष्ट पदों के ३०,००० अन्य प्रत्याशियों की भी परीक्षा ली; इसके अतिरिक्त भी, इसने वैज्ञानिक सिविल-सेवा के १६,००० प्रार्थियों की परीक्षा ली जिनमें ४,००० प्रत्याशी सफल हुए। सन् १९५३–५४ में खुली प्रतियोगिताओं में ३८,००० से अधिक *प्रत्याशियों की परीक्षा ली और लगभग ६,५०० को नियुक्ति के लिए प्रमाणित किया*, इसी प्रकार सीमित प्रतियोगिताओं में ११,००० की परीक्षा ली और २,००० को प्रमाणित किया, तथा लगभग ४१,००० साधारण और ४६० विशेष नामनिर्देशनों अथवा नामजदगियों (Nominations) का कार्य निबटाया।"

ब्रिटेन में सिविल-सेवा में उन खुली प्रतियोगिताओं द्वारा प्रवेश किया जाता है जोकि राजकोष तथा संसद की सहमति से बनाये गये विनियमों के अन्तर्गत आयोग द्वारा संचालित की जाती है। ये जांच निम्न प्रकार से की जा सकती हैं: (१) लिखित परीक्षा द्वारा, जिसमें मौखिक तत्व भी पाया जा सकता है, (२) साक्षात्कार (Interview) द्वारा, अथवा (३) संयुक्त पद्धति के द्वारा जिसमें *व्यक्तित्व (Personality)* की जाँच तो साक्षात्कार द्वारा की जाती है और ज्ञान की जाँच लिखित परीक्षा द्वारा। परीक्षायें सामूहिक रूप में एक साथ ली जाती हैं, अर्थात् प्रतियोगी किसी विशिष्ट सेवा अथवा पद के लिये परीक्षा देने के हेतु एक स्थान पर एक साथ इकट्ठे होते हैं। अमेरिकन परीक्षाओं तथा ब्रिटेन की सिविल-सेवा परीक्षाओं में कुछ मूलभूत अन्तर पाये जाते हैं। *अमेरिका में सिविल-सेवा परीक्षायें विशिष्ट (Specific), व्यावहारिक* (Practical) तथा अशैक्षणिक (Non academic) होती हैं। अमेरिका में प्रत्याशियों की जाँच मुख्यतः यह देखने के लिए की जाती है कि उस विशिष्ट पद के कर्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए वे कहाँ तक उपयुक्त एवं योग्य हैं जिस पर कि वे नियुक्त होना चाहते हैं। इसके विपरीत, ब्रिटिश परीक्षाओं का उद्देश्य प्रत्याशी की उस समीक्षा का पता लगाना नहीं है कि यदि कल को उसे किसी विशिष्ट पद पर नियुक्त किया जाय तो वह उस पद के कार्यों को कहाँ तक सम्पन्न कर सकेगा। ब्रिटेन की सिविल सेवा परीक्षायें तो प्रत्याशी (Candidate) की बौद्धिक साज-सज्जा एवं सामान्य योग्यता का माप करती हैं। परीक्षा के विषय अभिन्न रूप से शैक्षणिक होते हैं, *उदाहरणार्थ, इतिहास, गणित, प्राचीन तथा आधुनिक भाषायें*, दर्शनशास्त्र (Philosophy), अर्थशास्त्र (Economics), राजनीतिशास्त्र, *प्राकृतिक विज्ञान* आदि। ये विषय उदार अथवा सामान्य अध्ययनों के क्षेत्र में से लिए जाते हैं, तकनीकी (Technical) अध्ययनों के क्षेत्र से नहीं। परिणाम यह होता है कि

परीक्षायें एक निश्चित शैक्षणिक स्तर के अनुरूप हो जाती हैं और यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि शिक्षा पद्धति (Educational system) तथा सिविल सेवा के ढांचे के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध कायम होना ही चाहिए। इस प्रकार, ब्रिटिश सिविल-सेवा मे उन अधिकारियो की भर्ती की जाती है जिनके पास 'उच्चस्तरीय मस्तिष्क, व्यक्तित्व, प्रभावपूर्णता (Effectiveness), निर्णयशीलता तथा सत्यनिष्ठा (Integrity) होती है, और शिक्षा की प्रक्रिया (Process) द्वारा ये सब गुण एक ही व्यक्ति मे सन्तुलित रूप मे पाए जाते हैं।" आनर्स डिग्री अथवा लिखित परीक्षा को उच्चस्तरीय मस्तिष्क की गारन्टी समझा जाता है, स्वतन्त्र निर्णायक प्रत्याशी की सत्यनिष्ठा की जाच करते हैं, और "व्यक्तित्व प्रभावपूर्णता तथा निर्णयशीलता" की जाँच मौखिक साक्षात्कार के द्वारा वर्गीय वाद-विवाद (Group discussions) के द्वारा तथा कुछ दिन तक प्रत्याशियो को "अतिथियो" के रूप मे 'राष्ट्र गृह' (Country house) आदि मे रख कर निरीक्षण द्वारा की जाती है।

सिविल-सेवा मे भर्ती किए जाने वाले अपरिपक्व एव अप्रशिक्षित (Untrained) व्यक्तियो को सहानुभूतिपूर्ण प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post-entry training) दिया जाता है। विभागो (Departments) के अपने प्रशिक्षण अधिकारी होते हैं जोकि नवप्रविष्ट सिविल सेवको के प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी होते हैं। राजकोष का 'प्रशिक्षण तथा शिक्षा सभाग' (Training and Education Division) भी प्रशिक्षण सम्बन्धी विषयो के बारे मे सूचनाए प्रसारित करता है, शेष सिविल सेवा के लिए एक सामान्य परामर्श देने वाले ब्यूरो के रूप मे कार्य करता है, और काफी मात्रा मे स्वय भी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करता है। सभी नियुक्तिया प्रारम्भ मे एक या दो वर्ष के परिवीक्षाकाल (Probationary period) के लिए की जाती हैं। यदि परिवीक्षा की अवधि मे प्रत्याशी उस कार्य के लिए अनुपयुक्त (Unsuitable) सिद्ध होता है तो उसे अन्य कार्य दे दिया जाता है। और यदि वह पूर्णतया अनुपयोगी एव व्यर्थ साबित होता है तो उसको सेवा से पृथक कर दिया जाता है।

ब्रिटेन मे, नवयुवक सिविल-सेवा को एक स्थायी जीवनवृत्ति (Permanent career) के रूप मे अपनाते हैं। सिविल-सेवा मे पदोन्नतियो की एक ऐसी योजना लागू की जाती है जोकि कार्य-कुशलता तथा मनोबल (Morale की दृष्टि से सर्वोत्तम होती है। पदोन्नति (Promotion) एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी को (उदाहरणार्थ, लिपिक श्रेणी से निष्पादक श्रेणी को अथवा निष्पादक श्रेणी से प्रशासनिक श्रेणी को) और एक पदक्रम (Grade) से दूसरे पद-क्रम को (उदाहरण के लिए, कनिष्ठ निष्पादक पदक्रम से उच्च निष्पादक पदक्रम को) योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है, यद्यपि सेवा के निम्न पदक्रमो मे पदोन्नतियो मे ज्येष्ठता (Seniority) को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। पदोन्नति विभागीय अध्यक्ष के विवेक (Discretion) पर निर्भर होती है। परन्तु इस विवेक का दुरुपयोग न होने के विषय मे आश्वस्त होने के लिए विभागीय पदोन्नति मण्डलो (Departmental promotion

boards) का निर्माण किया गया है जोकि साक्षात्कार (Interview) तथा वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किय गये कर्मचारियों के वार्षिक प्रतिवेदनों के आधार पर प्रत्याशियों को पदोन्नत करते हैं। कर्मचारियों का यह अधिकार होता है कि वे अन्यायपूर्ण पदोन्नतियों के विरुद्ध अपील कर सकें।

ब्रिटेन म सिविल सेवक राजनीति म तटस्थ (Neutral) रहते हैं। उन पर जो भी दल (Party) पदारूढ होता है उसी की सेवा करते हैं। जैसा कि भूतपूर्व उदार दलीय प्रधान-मन्त्री श्री एटली ने कहा कि "वे ही व्यक्ति जिन्होंने श्रम परिवहन अधिनियम (Labour s Transport Act) के निर्माण में महत्वपूर्ण कार्य किया था अब अनुदार दलीय सरकार की आज्ञा से उस छिन्न-भिन्न करने में लगे हैं।'[1]

प्रो० लास्की ने इगलैंड म ससदीय सरकार'(Parliamentary Government in England) नामक अपनी पुस्तक म इस बार म सदेह प्रकट किया कि सिविल-सेवक समाजवादी सरकार को उचित सहयोग दे भी सकेंगे या नहीं। परन्तु अनुभव के आधार पर सभी सन्देह निरर्थक सिद्ध हुए और सिविल-सेवकों ने उतनी निष्ठा (Loyalty) तथा उतने ही उत्साह के साथ मजदूर दल (Labour party) की सेवा की जैसी कि अनुदार दल (Conservative) की, की थी।

ब्रिटेन म सिविल सेवकों को अपने पद के सम्बन्ध म न्यायोचित एव युक्ति-सगत सुरक्षा प्राप्त है। अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए उनके अपने कर्मचारी सगठन हैं। ब्रिटिश कार्मिक व्यवस्था का सबसे बड़ा योग ह्विटले परिषदें हैं।

सिविल सेवा और आर्थिक आयोजन
(Civil Service and Economic Planning)

विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के इस युग म, नियन्त्रणकारी राज्य का स्थान समाज सेवी राज्य (Social service state) ने ले लिया है। वर्तमान समय म राज्य अपने नागरिकों के लिए भोजन शिक्षा, गृह व स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक *सेवाओं की व्यवस्था करता है।* उद्योग धन्धों पर तथा बैंकिंग, कृषि व वाणिज्य (Commerce) पर अब बड़े पैमाने पर राज्य का स्वामित्व तथा नियन्त्रण स्थापित है। 'वर्तमान समाज अधिकाधिक रूप म एक आयोजनाबद्ध समाज (Planned *society) होता जा रहा है* जिसम कि राज्य क्रेता तथा वितरणकर्ता (Distributor) के रूप म कार्य करता है और जिसका निर्माण ऐसे नागरिकों स होता है जिनके समान दावे तथा समान अधिकार होते हैं। स्वामित्व (Ownership) तथा नियन्त्रण (Control) म सर्वसाधारण द्वारा भाग लेना—इसके प्रमुख केन्द्रीय विचारों म स एक है। इस सम्बन्ध म महत्वपूर्ण प्रश्न यह है क्या *१६वीं शताब्दी की सुधार की* हुई सिविल सेवा बीसवीं शताब्दी के मध्य के इस आयोजन के युग के लिए उपयुक्त

1 Lord Attlee, *Civil Servants, Ministers Parliament and the Public in the Civil Service in Britain and French* Ed W A Robson p 16

है ? क्या यह सेवा इतनी कुशल और प्रशिक्षित है कि १९वीं शताब्दी के अबन्ध नीति (Laissez faire) वाले अथवा पुलिस राज्य के स्थान पर समाज-सेवी अथवा कल्याणकारी राज्य की सेवा कर सके ?

अब इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाती है कि प्रशासन की भावना तथा यन्त्र, दोनों ही ऐसे होने चाहियें जोकि नवीन समाज की आवश्यकताओं की दृष्टि से उपयुक्त हों। आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्रीय आयोजन (Central planning) तथा निष्पादकीय क्रियान्वय (Executive application) में सक्रिय एव प्रभावपूर्ण सम्पर्क कायम किया जाय। जैसा कि Mr Greaves ने कहा कि " यह बात विवाद से परे है कि बीसवी शताब्दी के राज्य की अत्यधिक परिवर्तित तथा बढी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बडे पैमाने पर सुधारो की जरूरत है।"[1]

लोकतन्त्रीय समाज मे आयोजन (Planning) प्रोत्साहन (Persuation), शिक्षा तथा विचार-विमर्श पर आधारित होता है। सिविल सेवा को केवल क्रूर व जबरदस्ती के उपायो को ही लागू नहीं करना होता है। सिविल-सेवको को समाज-सुधारको, शिक्षा-शास्त्रियो तथा प्रशासको का भाग अदा करना पड़ता है। प्रोत्साहन देने के लिए सतत एव विचारपूर्ण प्रयत्नो की आवश्यकता होती है। सिविल-सेवा मे सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण सुझाव यह दिया जाता है कि अनेक लोक-सेवाओ का सिविल, वैज्ञानिक, आर्थिक तथा जनोपयोगी सेवाओ का—एक लोक-सेवा में एकीकरण कर दिया जाय। सिविल-सेवा को ऐसे एकरूप ढांचे के अन्तर्गत सगठित करने की अधिकाधिक व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे कि विभिन्न सेवाओ के बीच अधिकतम अदला-बदली हो सके। आधुनिक सिविल-सेवा विज्ञान, शिल्पकला, अर्थशास्त्र, आयोजन, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान (Psychology) के यथेष्ट ज्ञान से पूर्णतया सुसज्जित होनी चाहिए। केवल ऐसा होने पर ही सिविल सेवक समानता, स्वाधीनता तथा भाईचारे के आधार पर नए समाज के पुनर्निमाण की चुनौती का सामना कर सकते हैं। ब्रिटेन तथा अन्य लोकतन्त्रीय देशो की सिविल-सेवाओ से भी आज यही अपेक्षा की जाती है। आर्थिक एव सामाजिक आयोजन के विशाल कार्यों की सम्पन्नता की दृष्टि से "यह आवश्यक है कि सिविल-सेवको को ससार के बारे मे पूर्ण ज्ञान हो, और साथ ही, उन्हे उच्च कोटि का विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जाय ; क्योंकि आयोजन मे वर्तमान से आगे की ओर को बढना होता है जिससे भविष्य तक ठीक स्थिति मे पहुँचा जा सके।"[2] सिविल-सेवकों के लिए प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post-entry training), की व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि उनको नये-नये

1 H R G Greaves, The Civil Service in the Changing State, A Survey of Civil Service Reform and the Implication of a Planned Economy on *Public Administration in England*, p. 226.

2 Sir Oliver Franks, Central Planning and Control in War and Peace, London 1947.

कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के लिए तैयार किया जा सके। सिविल-सेवकों को अपने में आत्मविश्वास, शक्ति, साहस तथा चित्त की दृढ़ता आदि अनेक गुणों का विकास करने की आवश्यकता होती है। हरमन फिनर के अनुसार ब्रिटेन में उच्च सिविल सेवा की समस्या स्थायी प्रशासकों की खोज की ही है। प्रशासकों के गुणों का विषय सदा ही एक स्थायी खोज का विषय बना रहेगा क्योंकि इसकी अत्यधिक आवश्यकता है।

२५

भारतीय सिविल अथवा असैनिक सेवा
(Indian Civil Service)

भारतीय सिविल-सेवा 'राजनैतिक सरक्षण' (Political patronage) अथवा 'लूट खसोट प्रणाली' (Spoils system) के दोषो से मुक्त है। सिविल-सेवा मे भर्ती (Recruitment) योग्यता (Merit) के आधार पर की जाती है। योग्यता की जाँच खुली प्रतियोगिता (Open competition) द्वारा की जाती है जिसकी व्यवस्था एक स्वतन्त्र, निष्पक्ष एव अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) लोक सेवा आयोग करता है। सघीय लोक-सेवा आयोग (U P. S C) निम्नलिखित सेवाओ के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओ का आयोजन करता है —

(१) भारतीय प्रशासन सेवा (I A S)

(२) भारतीय विदेश सेवा (I F S)

(३) भारतीय पुलिस सेवा (I P S)

(४) भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा सेवा (Indian Audit and Accounts service)

(५) भारतीय प्रतिरक्षा लेखा सेवा (Indian Defence Accounts service)

(६) भारतीय रेलवे लेखा सेवा, आदि-आदि।

उच्च सिविल सेवा मे २१ से लेकर २४ वर्ष तक के युवा व्यक्तियो की भर्ती की जाती है। आर्ट्स अथवा शुद्ध विज्ञान (Pure science) की डिग्री को उच्च सिविल-सेवा मे भर्ती के लिए एक आवश्यक योग्यता माना जाता है। उच्च सिविल सेवा के लिए विचारो की परिपक्वता, बौद्धिक प्रशिक्षण तथा सुदृढ ज्ञान की आवश्यकता होती है। इन गुणो की जाच लोक-सेवा आयोग द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली एक प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है। परीक्षाओ की योजना मुख्य रूप से इन विचारो पर आधारित है कि—

(क) एक ऐसी लिखित परीक्षा होनी चाहिये जोकि सभी प्रत्याशियो के लिये हो और जिसका उद्देश्य प्रत्याशियो की विचारशक्ति, निर्णय शक्ति तथा स्पष्ट व्याख्या करने की क्षमता और सामान्य ज्ञान की जाच करना हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु प्रत्याशियो को तीन अनिवार्य प्रश्न-पत्रो (Compulsory papers) मे बैठना होता है :

(१) निबन्ध (Essay)	१५० अंक
(२) सामान्य अंग्रेजी (General English)	१५० "
(३) सामान्य ज्ञान (General knowledge)	१५० "

(ख) एक लिखित परीक्षा द्वारा प्रत्याशी की बौद्धिक क्षमता तथा छात्र-कालीन योग्यताओं की जाच होनी चाहिये, यह लिखित परीक्षा प्रत्याशी द्वारा स्वय चुने गये ऐसे विषयो (Subjects) मे हो जिनका सिविल-सेवक के कार्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो भी सकता है अथवा नही भी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्याशी को निम्नलिखित वैकल्पिक विषयो मे से कुछ म परीक्षा देनी होती है

वैकल्पिक विषय—(i) भारतीय पुलिस सेवा में प्रत्याशियों (Candidates) को निम्नलिखित विषयो मे से कोई दो लेने होते हैं

(ii) भारतीय पुलिस सेवा को छोड़कर अन्य सभी सेवाओ के प्रत्याशियो को निम्नलिखित विषयो मे से कोई तीन लेने होते है :

	अंक
(१) शुद्ध गणित	२००
(२) रसायन-शास्त्र	२००
(३) भौतिक शास्त्र	२००
(४) प्राणि-शास्त्र	२००
(५) इतिहास	२००
(६) राजनीति-शास्त्र	२००
(७) विधि	२००
(८) भूगोल,'''आदि आदि	२००

भारतीय प्रशासन सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा के लिये प्रतियोगिता करने वाले सभी प्रत्याशियो को अतिरिक्त प्रश्न-पत्रो के रूप मे निम्नलिखित मे से कोई दो विषय छाटने होते हैं

	अंक
(१) उच्च शुद्ध गणित	२००
(२) उच्च भौतिक-शास्त्र	२००
(३) उच्च रसायन-शास्त्र	२००
(४) उच्च प्राणि-शास्त्र	२००
(५) उच्च आर्थिक सिद्धान्त	२००
अथवा	
उच्च भारतीय अर्थशास्त्र	२००
(६) राजनैतिक सगठन तथा लोक-प्रशासन	२००
(७) समाज-शास्त्र	२००
(८) उच्च भूगोल'''आदि आदि।	२००

(ग) प्रत्याशी के वैयक्तिक गुणो की जाँच करने के लिये साक्षात्कार (Inter view) की व्यवस्था होनी चाहिये , उन वैयक्तिक गुणो म कुछ ऐसे मानसिक गुण भी सम्मिलित हैं जिनकी जाच लिखित परीक्षा मे नही की जा सकती । लिखित परीक्षायें तो प्रत्याशी की बौद्धिक साज सज्जा एव योग्यता की जाच करती है और साक्षात्कार परीक्षायें प्रत्याशियो के व्यक्तित्व (Personality) तथा वैक्तिक गुणो की जाच के लिए होती हैं।

भिन्न-भिन्न उच्च सिविल-सेवाओ मे प्रश्न-पत्रो का विभाजन तथा अकों का अनुपात निम्न प्रकार है —

सघीय लोक-सेवा आयोग द्वारा सचालित की जाने वाली अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओ की विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओ के लिये विषयो की योजना इस प्रकार है

(१) अनिवार्य विषय (सभी सेवाओ के लिए)

		अंक
(i)	अग्रेजी निबन्ध	१५०
(ii)	सामान्य अग्रेजी	१५०
(iii)	सामान्य ज्ञान	१५०
	योग	४५०

(२) ऐच्छिक विषय (भारतीय पुलिस सेवा के लिए २ और अन्य सेवाओं के लिए ३ विषय लेने होते हैं)।

कुल ऐच्छिक विषय २३ हैं जिनमे प्रत्येक के २०० अक है । इन विषयो मे लगभग वे सब विषय आ जाते हैं जोकि कालिजो और विश्वविद्यालयो मे पढाये जाते हैं।

भारतीय पुलिस सेवा के लिये कुल	४०० अक
अन्य सेवाओ के लिये कुल	६०० अक

(३) अतिरिक्त विषय (Additional subjects) (केवल भारतीय प्रशासन सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा के लिये दो विषय लेने होते हैं)।

कुल अतिरिक्त विषय १५ हैं जिनमे प्रत्येक के २०० अक है। इनमे से अनेक विषय तो ऐच्छिक विषयो जैसे ही हैं परन्तु इनके सम्बन्ध मे प्रत्याशियो से उच्चस्तरीय ज्ञान की आशा की जाती है।

कुल अक (केवल भा० प्र० से तथा भा० वि० सेवा के लिय)	४०० अक

(४) मौखिक परीक्षा (Viva-Voce)

भा० प्र० मे तथा भा० वि० सेवा के लिए	४०० अक
अन्य सेवाओ के लिए	३०० अक

भा० प्र० सेवा तथा भा० वि० सेवा के लिखित प्रश्न-पत्रों के लिए अंकों का कुल योग १४५०

भा० प्र० सेवा तथा भा० वि० सेवा की मौलिक परीक्षा के लिए अंकों का कुल योग ४००

योग	१,८५०

अन्य सेवाओं के लिखित प्रश्न-पत्रों के अंकों का योग	१,०५०
अन्य सेवाओं की मौखिक परीक्षा के अंकों का योग	३००
भारतीय पुलिस सेवा के लिखित प्रश्न पत्रों का योग	८५०
भारतीय पुलिस सेवा की मौखिक परीक्षा के अंकों का योग	३००

भारत में प्रतियोगिता परीक्षा की जो पद्धति अपनाई गई है वह ब्रिटिश पद्धति के नमूने की है। लिखित परीक्षायें प्रत्याशी के उन कार्यों, जिन्हें कि भविष्य में सम्पन्न करने के लिए उनसे कहा जायेगा, से सम्बन्धित विशिष्ट अथवा तकनीकी (Technical) ज्ञान की जाँच करने के लिए नहीं हैं। उनका उद्देश्य तो प्रत्याशी की सामान्य योग्यताओं एवं बौद्धिक क्षमता की जाँच करना है। इसीलिए संघीय लोक सेवा आयोग की परीक्षा के विषयों का पाठ्यक्रम विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम पर आधारित है। देश में प्रचलित शिक्षा-पद्धति तथा सिविल-सेवा की प्रतियोगिता परीक्षाओं के बीच निकट सम्बन्ध है। साक्षात्कार (Interview) *अथवा मौखिक परीक्षा का महत्व भी अत्यधिक है। प्रत्याशियों की शीघ्र निर्णय करने की क्षमता, तत्परता तथा वैयक्तिक गुणों की जाँच मौखिक साक्षात्कार द्वारा ही की जाती है।* भारत में प्रचलित मौखिक साक्षात्कार की पद्धति के प्रति जनसाधारण में काफी विरोध पाया जाता है। इस सम्बन्ध में सामान्य शिकायतें ये हैं कि यह पद्धति मनमानी (Arbitrary) है क्योंकि मौखिक परीक्षा के ४०० अंक पूर्णतया आयोग के सदस्यों की इच्छा पर निर्भर होते हैं। इस पद्धति के द्वारा प्रत्याशी के व्यक्तित्व की वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्ति निरपेक्ष जाँच (Objective test) नहीं की जा सकती। २० अथवा ३० मिनट में समाप्त हो जाने वाले साक्षात्कार में वैयक्तिक गुणों की जाँच किस प्रकार हो सकती है। इसके अतिरिक्त, एक प्रत्याशी को उच्च सिविल सेवा के लिए प्रतियोगिता करने के तीन अवसर प्राप्त होते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि अपने प्रथम वर्ष के साक्षात्कार में एक प्रत्याशी को ३० अथवा ४० अंक प्राप्त होते हैं, किन्तु दूसरे या तीसरे वर्ष में वही प्रत्याशी २०० या ३०० अंक प्राप्त कर लेता है। प्रश्न यह पैदा होता है कि एक या दो वर्ष की संक्षिप्त अवधि में उस प्रत्याशी के व्यक्तित्व में किस प्रकार इतनी *तीव्रगति से सुधार हो गया ? एक शिकायत यह भी है कि मौखिक साक्षात्कार के समय चुनाव मण्डल (Selection Board) के सदस्यों का व्यवहार कुछ ऐसा होता* है कि उनसे प्रत्याशी (Candidate) घबरा जाता है। सदस्य प्रत्याशी को जरा भी प्रोत्साहित नहीं करते और प्रत्याशियों के व्यक्तित्व (Personality) की जाँच आयोग

के सदस्यो की आत्मनिष्ठ अथवा व्यक्तिसापेक्ष भावनाओ (Subjective feelings) के आधार पर की जाती है। भा० प्र० से० (I A S.), भा० वि० से० (I F S), भा० पु० से० (I.P S) व भा० ले० तथा ले० सेवा (I A and A S) आदि उच्च सिविल सेवाओ मे भर्ती की पद्धति के इस दोष का उल्लेख ए० डी० गोरवाला ने भी किया था। उन्होने कहा कि 'यह अत्यन्त आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं (Psychological tests) की महत्ता अनुभव की जाये और शनै शनै वे मौखिक परीक्षाओ का स्थान ले लें। अपरिचित प्रत्याशियो के साथ होने वाली पन्द्रह मिनट की बातचीत यद्यपि लोक-सेवा आयुक्तो (Public Service Commission) के व्यापक अनुभव से सम्बद्ध होती है तथापि यह उस कुशल मनोवैज्ञानिक परीक्षा का स्थान नही ले सकती जिसका उद्देश्य प्रत्याशी के मानसिक गुणो तथा भावनात्मक रूपो पर एक वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि डालता है ''। प्राय यह शिकायतें भी की जाती हैं कि ऐच्छिक विषयो के लिए बनाये जाने वाले कुछ प्रश्न पत्रो का स्तर निम्न होता है जिससे उन विषयो को लेने वाले प्रत्याशियो को अनुचित लाभ प्राप्त हो जाता है। समय-समय पर ऐसा होना अनिवार्य भी है किन्तु यथासम्भव सभी को समान अवसर प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षा के उस भाग को, जोकि सामान्यत. सभी प्रत्याशियो के लिए हो, सम्पूर्ण परीक्षा का अपेक्षाकृत अधिक अनुपात प्रदान किया जाये जिससे कि प्रत्याशियो की सापेक्षिक योग्यता की समुचित रूप मे जाच की जा सके।"[1]

यह कहा जा सकता है कि मौखिक साक्षात्कार प्रत्याशी के व्यक्तित्व की जाच करने वाली एक महत्वपूर्ण परीक्षा है और इसमे ही इस प्रकार सुधार किया जाना चाहिए जिससे कि इसे वास्तविक रूप मे लाभदायक बनाया जा सके।[2]

परीक्षाओ के द्वारा सिविल-सेवा के लिए विश्वविद्यालयो के जो स्नातक (Graduates) चुने जाते है उन्हे प्रशिक्षण (Training) के लिए भेज दिया जाता है। भारत ने केन्द्रीय सस्थागत प्रशिक्षण (Centralised institutional training) तथा साथ ही, 'काम पर प्रशिक्षण' (On-the job training) की पद्धति अपनाई है। भारत मे इस कार्य के लिए एक राष्ट्रीय प्रशासन एकादमी (National Academy of Administration) है जहां पर सभी चुने हुए प्रत्याशियो को एक निश्चित अवधि के लिए भेजा जाता है। फिर भिन्न-भिन्न सेवाओ के लिए पृथक्-पृथक् प्रशिक्षण स्कूल होते है जिनमे भिन्न-भिन्न सेवाओ के लिए चुने गए प्रत्याशी व्याख्यानो के रूप मे औपचारिक अनुदेश (Formal instructions) प्राप्त करते है। इसके पश्चात् उन्हे कार्यालयो मे भेजा जाता है जहां कि वे व्यावहारिक रूप मे कार्य करते है और इस प्रकार 'काम पर प्रशिक्षण' प्राप्त करते है। प्रशिक्षण मे नवीनीकरण पाठयक्रमो

1 A D Gorwala, Report on *Public Administration*, 1951 p. 62

२ सुधारो के लिए कृपया भर्ती का अध्ययन देखिये।

(Refresher courses) का उपयोग किया जाना चाहिए। उन अधिकारियों को भी जोकि १५–२० वर्ष तक कार्य कर चुके हैं, नवीनीकरण पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए भेजा जाना चाहिए।

सिविल-सेवकों को ज्येष्ठता व योग्यता (Seniority-cum-merit) के आधार पर पदोन्नति के न्यायोचित अवसर प्रदान किए जाते हैं। भविष्य निधि (Provident Fund) व पेन्शनों आदि के रूपों में सेवा निवृत्ति के लाभ (Retirement benefits) भी यथेष्ट मात्रा में दिए जाते हैं। सामान्य शर्तों के अन्तर्गत सिविल-सेवकों को पद की पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है। सिविल-सेवकों के लिए एक आचार-संहिता (Code of Conduct) भी बनी हुई है जिसका उल्लंघन करने पर अनुशासन की कार्यवाही की जाती है जोकि निलम्बन (Suspension), पदावनति (*Demotion*) और यहाँ तक कि पदच्युति (Dismissal) तक के रूप में हो सकती है। सिविल-सेवकों को राजनैतिक दृष्टि से तटस्थ रहना होता है। उन्हें किसी भी दल (Party) के समर्थन में सक्रिय राजनीति में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जाती। उनकी निष्ठा (*Loyalty*) सरकार के प्रति होती है, *किसी भी दल के प्रति नहीं।* भारत में मन्त्रियों (Ministers) तथा सिविल-सेवकों के बीच वैसा ही सम्बन्ध पाया जाता है जैसा कि ब्रिटेन में पाया जाता है। मन्त्रियों द्वारा (यद्यपि बहुधा सिविल सेवकों के परामर्श से मुख्य नीति का निर्माण किया जाता है और उस नीति को कार्यान्वित करना सिविल सेवकों का कार्य होता है। Sir Warren Fisher ने मन्त्रियों तथा सिविल-सेवकों के बीच के सम्बन्धों का इस प्रकार वर्णन किया है

"मन्त्रियों का कार्य नीति निर्धारित करना है, और जब एक बार नीति का *निर्धारण कर दिया जाता है तो* सिविल-सेवकों *का यह निश्चित तथा असंदिग्ध कर्तव्य* हो जाता है कि वे चाहे उस नीति से सहमत हों या न हों, उसको ईमानदारी के साथ यथार्थ रूप में एक सी ही शक्ति तथा एक समान इच्छा के साथ क्रियान्वित करने का प्रयत्न करें। *यह बात बिल्कुल स्पष्ट तथा स्वतः सिद्ध है* और इसके बारे में कभी भी कोई विवाद नहीं हो सकता। इसके साथ ही साथ, सिविल सेवकों का यह भी परम्परागत कर्त्तव्य है कि जब निर्णय किये जा रहे हों तब वे अपने पास वर्तमान सम्पूर्ण जानकारी तथा अनुभव अपने राजनैतिक प्रधानों को उपलब्ध करायें, और वे ऐसा बिना किसी भी प्रकार के भय या पक्षपात के तथा बिना इस बात की परवाह किए हुए करें कि इस प्रकार दिया गया परामर्श मन्त्री के प्रारम्भिक विचारों से मेल खाता है या नहीं। ये सम्बन्धित तथ्य मन्त्रियों के समक्ष प्रस्तुत करने में, जिनके एकत्रित करने तथा व्यवस्थित करने में प्राय विभाग के सम्पूर्ण *संगठन का सहयोग* लेना पड़ सकता है, सिविल-सेवकों को अधिक से अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। इन तथ्यों (Facts) से निष्कर्ष निकालने और उन्हें प्रस्तुत करने में भी उन्हें पूर्ण बुद्धिमत्ता से *काम लेना चाहिए।*"[1]

1 Quoted by Herman Finer, *op, cit*, pp. 770-71.

इस प्रकार भारत मे पदोन्नति के न्यायोचित अवसरो, नौकरी की सुरक्षा तथा अच्छे वेतन के कारण सिविल सेवको के मनोबल (Morale) तथा कार्य-क्षमता का स्तर अत्यन्त ऊचा रहता है।

परिवर्तनशील समाज मे सिविल सेवा
(Civil Service in a Changing Society) :

भारत मे ब्रिटिश शासन का उद्देश्य देश मे अपना प्रभुत्व कायम रखना था। सरकार करो के सग्रह तथा शान्ति, कानून व व्यवस्था की स्थापना के कार्य से ही *विशेष रूप से सम्बन्धित थी, जो थोड़ी सी जनोपयोगी सेवायें (Public utility* services) उस समय चालू की गई थी वे ब्रिटिश शासन के इस मुख्य लक्ष्य को—कि देश पर ब्रिटिश नियन्त्रण बनाये रखा जाय—पूरा करने के लिए ही थी। भारत के लोगो का मुख्य व्यवसाय उस समय कृषि ही बना हुआ था। स्वाधीनता के सघर्ष के साथ ही साथ नये-नये विचार जनता के सामने आय। परिणामस्वरूप जनता, जो कि निर्धनता, अपौष्टिक व अपूर्ण भोजन तथा अनेक कष्टो से पीडित थी, समानता की माग करने लगी। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत मे नौकरशाही (Bureaucracy) का मुख्य योग निषेधात्मक (Negative) ही था, अर्थात् इसने नियामक कार्य (Regulatary functions) सम्पन्न किये और जनता के स्वतन्त्रता आन्दोलन को कुचलने के यथासम्भव सभी प्रयत्न किये।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने औद्योगीकरण (Industrialisation) के द्वारा देश को आधुनिकीकरण करने तथा नागरिको को आधुनिक जीवन की सभी सुविधायें प्रदान करने का कार्य अपने हाथो मे ले लिया। राज्य के कार्यों की निषेधात्मक विचारधारा (Negative concept) का स्थान लोकतन्त्रीय कल्याणकारी विचारधारा ने ले लिया। फलत स्वतन्त्र जीवन के लोकतन्त्रीय मूल्यो को दृष्टिगत रखते हुए एक नय समाननावादी समाज की स्थापना करनी थी। बढती हुई जनसख्या के जीवन स्तर मे सुधार करना था। प्रशासकीय यन्त्र-व्यवस्था म जोकि ब्रिटिश शासन से उत्तराधिकार मे मिली थी, नये समाजवादी राष्ट्र की आवश्यकताओ के अनुरूप हेर फेर तथा परिवतन करना था। सिविल-सेवको को केवल कानून के रक्षको से बदल कर सामाजिक कल्याण करने वाले अधिकारियो का रूप देना था। चूंकि सरकार का ढाचा लोकतत्रीय था अत सिविल-सेवको से यह कहा गया कि वे जनता के प्रतिनिधियो के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करें। मानवीय समायोजन (Human adjustment) *की यह एक अद्भुत घटना थी। ब्रिटिश* शासन के दिनो मे, नौकरशाही जिन राजनैतिक नेताओ के विरुद्ध लड रही थी तथा उन्हे गिरफ्तार कर रही थी, अब उसे उन्ही नेताओ के अधीन कार्य करने को कहा गया था। नौकरशाही द्वारा जो नेता अपमानित एव तिरस्कृत किय जाते थे, अब उसे उन्ही नेताओ की आज्ञानुसार चलना था एव उनका सम्मान करना था। नौकरशाही द्वारा स्वय को समुचित उत्तरदायिता तथा लोकप्रिय नियन्त्रणसे युक्त एव लोक-

तन्त्रीय ढाचे के अनुरूप बनाया था। यदि किसी ऐसे उदाहरण की आवश्यकता हो कि भारतीय सिविल सेवा म अपने आपको यथास्थिति अनुकूल बनाने की कितनी क्षमता तथा शक्ति है तो इसका सर्वोत्तम उदाहरण वे श्रेष्ठ तथा ऐश्वर्यपूर्ण सम्बन्ध है जोकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भ से ही मन्त्रियो तथा पुरानी नौकरशाही के बीच पाये जाते हैं। राजद्रोह तथा पारस्परिक संघर्ष की ऐसी कोई घटना नही हुई जिसका उल्लेख किया जा सके। नौकरशाही ने बडी सुगमता के साथ अपने आपको लोकतन्त्र तथा लोकप्रिय नियन्त्रण के अनुरूप बना लिया है।

अब नौकरशाही द्वारा स्वय को इस प्रकार उपयुक्त बनाना है जिससे कि वह भारतीय अर्थ-व्यवस्था (Indian Economy) के पुनर्निर्माण के विशाल उत्तरदायित्व को सम्भाल सके। भारत ने ऐसी महत्वाकाक्षी पचवर्षीय योजनाये प्रारम्भ की हैं जिनका मुख्य उद्देश्य बढती हुई जनसख्या के रहन-सहन के स्तर मे सुधार करना तथा एक समाजवादी, लोकतन्त्रीय समाज की स्थापना करना है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से ही भारत मे सरकारी नीति तथा राष्ट्रीय प्रयत्नो का केन्द्रीय लक्ष्य तीव्र गति से सन्तुलित आर्थिक विकास करना रहा है। प्रथम पचवर्षीय योजना का उद्देश्य जहाँ द्वितीय महायुद्ध तथा देश के विभाजन के कारण उत्पन्न कुछ अत्यावश्यक समस्याओ का हल खोजना था, वहाँ देश की अर्थव्यवस्था की जडें मजबूत करना तथा ऐसे सस्थागत परिवर्तन लाना भी था जिनसे कि भविष्य मे तीव्र गति स विकास करने का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा इन दोनो ही दिशाओ मे उल्लेखनीय प्रगति हुई। द्वितीय पचवर्षीय योजना के द्वारा प्रथम योजनाकाल म प्रारम्भ की गई प्रक्रियाओ को जारी रखना था। इसका ध्येय उत्पादन (Production), निवेश (Investment) तथा रोजगार (Employment) मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि करना और सस्थागत परिवर्तनो (Institutional changes) म इतनी तीव्र वृद्धि करना था जितनी कि अर्थ-व्यवस्था (Economy) को अधिक गतिशील तथा अधिक विकासशील बनाने के लिए आवश्यक हो। इस योजना का एक लक्ष्य भारत मे समाजवादी ढग की समाज (Socialist pattern of Society) की स्थापना करना था।

समाजवादी ढग के समाज का, निश्चय ही, अर्थ यह है कि प्रगति की दिशाओ के निर्धारण का प्राथमिक सिद्धान्त व्यक्तिगत लाभ नही, अपितु सामाजिक लाभ होना चाहिए, और यह भी विकास का स्वरूप तथा सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धो का ढाचा इस प्रकार आयोजनाबद्ध (Planned) होना चाहिये कि उनके परिणामस्वरूप केवल राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के अवसरो मे ही उल्लेखनीय वृद्धि न हो, बल्कि धन तथा आमदनियो की अधिकाधिक समानता भी उत्पन्न की जा सके। यह आवश्यक है कि आर्थिक विकास (Economic development) के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम सम्पन्न वर्गों को प्राप्त हो और ऐसी दशाये उत्पन्न की जायें जिनम कि छोटे व्यक्तियो का भी जीवन म उन्नति के अवसर प्राप्त हो सकें।

ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के लिये, राज्य (State) को भारी उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने हैं। सरकारी क्षेत्र (Public sector) का तीव्र गति से विकास होना है। राज्य को अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत, सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनों ही प्रकार के निवेश (Investment) के सम्पूर्ण स्वरूप का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भाग लेना है और ऐसे विकास-कार्यक्रमों को प्रारम्भ करना है जिन्हें गैर-सरकारी क्षेत्र (Private sector) अपने हाथ में लेने को अनिच्छुक है अथवा असमर्थ है। विकास के कुछ ऐसे नये तथा बड़े कार्यक्रमों के संचालन का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से राज्य को ही अपने हाथों में लेना चाहिए जिनमें कि आधुनिक तकनीकी ज्ञान, बड़े पैमाने के उत्पादन एकीकृत नियन्त्रण (Unified control) तथा साधनों के बटवारे (Allocation of resources) की आवश्यकता हो। उन क्षेत्रों के प्रबन्ध में विशेष रूप से सरकारी स्वामित्व (Public owrership), चाहे वह आंशिक हो अथवा पूर्ण, और सरकारी नियन्त्रण या सरकार द्वारा भाग लेने की आवश्यकता है जिनमें आर्थिक शक्ति तथा धन के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। गैर-सरकारी उच्च उद्यम (Private enterprise) को सम्पूर्ण योजना के ढाचे के अन्तर्गत रहते हुए अपना योग देना है। विकासशील अर्थ-व्यवस्था में सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनों ही क्षेत्रों का एक साथ विस्तार करने की गुंजाइश होती है, परन्तु यदि निर्धारित गति के अनुसार विकास करना है और पूर्वनिश्चित महान् सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति में उसका योग प्राप्त करना है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी क्षेत्र पूर्ण रूप से ही आगे न बढ़े, अपितु आपेक्षिक रूप से गैर-सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ भी आगे बढ़े।

समाजवादी ढंग की समाज के स्वरूप को बिल्कुल दृढ़ अथवा कठोर नहीं मान लेना चाहिए। प्रत्येक देश अपनी निजी कल्पनाशक्ति तथा परम्पराओं के अनुसार ही इसके स्वरूप का विकास करता है। परन्तु इसमें निहित कुछ आधारभूत मूल्यों तथा संस्थागत व्यवस्थाओं पर जोर देना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। समाजवादी ढंग की समाज की स्थापना का सार निम्न बातों में निहित है ठोस निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना, जनता के जीवन-स्तरों को ऊंचा उठाना, सभी लोगों के लिए उन्नति के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध करना, कम सुविधा प्राप्त वर्गों में उद्यमों की उन्नति करना और समाज के सभी वर्गों के बीच साझेदारी की भावना उत्पन्न करना। यह कहा जा सकता है कि समाजवादी स्वरूप (Socialist pattern) संविधान में उल्लिखित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का ही एक अधिक आधुनिक एवं ज्वलन्त रूप है।

उद्देश्य (Objectives)

लोकतन्त्र और समानता के आधार पर तीव्र गति से प्रगति करना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। इस व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अग्रलिखित मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया है—

(१) राष्ट्रीय आय में इतनी वृद्धि करना जिससे देश के रहन सहन का स्तर ऊंचा हो,

(२) मूल और भारी उद्योगों के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण करना,

(३) रोजगार के अवसरों का अधिक विस्तार, और

(४) आय व सम्पत्ति की विषमताओं का निराकरण और आर्थिक शक्ति का पहल में अधिक समान वितरण।

स्वतन्त्र भारत में सिविल-सेवा पर सरकारी स्वामित्व वाली औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रायोजनाओं (Projects) के प्रबन्ध का भार आ पड़ा है। सिविल-सेवकों को आयोजन (Planning) की समस्याओं के बारे में सरकार को सलाह देनी होती है और उन्हें ही आयोजन को क्रियान्वित भी करना होता है। प्रश्न यह है कि सिविल-सेवकों पर जिन नए कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का वहन करने का भार आ पड़ा है क्या वे उसके लिए उपयुक्त हैं? "यह आरोप लगाया जाता है कि सिविल-सेवक पूर्व वातों अथवा पूर्व दृष्टान्तों (Precedents) पर अत्यधिक ध्यान देता है, वह सदा भूत (Past) की ओर देखता है और परम्पराओं अथवा कार्य करने के अभ्यस्त तरीकों का जरा भी छोड़ना नहीं चाहता। वह आवश्यकता से बहुत अधिक सावधान रहता है। एक गुण, जिसमें कि उसे विशिष्टता प्राप्त होती है, यह है कि वह सदा ऐसे कारणों की खोज-बीन करता रहता है जिनके आधार पर किसी भी परिवर्तन का विरोध किया जा सके तथा निर्धारित क्रियाविधि (Course of action) का परिपालन जारी रखा जा सके। उसका दृष्टिकोण निषेधात्मक (Negative) होता है जब कि वह रचनात्मक (Constructive) होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उसे गलती होने का इतना अधिक भय रहता है अथवा उसमें आत्मविश्वास की इतनी कमी रहती है कि वह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से बचने का ही प्रयत्न करता है और फलस्वरूप निर्णय चाहने वाले किसी भी प्रश्न का भार वह यथासम्भव अन्य किसी भी व्यक्ति पर डाल देता है।"[1] सिविल-सेवकों के प्रशिक्षण पर नियुक्त समिति ने भी इस आरोप की पुष्टि की थी। समिति ने कहा कि "सिविल सेवकों में जो दोष बहुलता के साथ पाए जाते हैं वे ये हैं—पूर्व वातों अथवा पूर्व दृष्टान्तों के प्रति अत्यधिक लगाव, पहल करने की क्षमता (Initiative) तथा कल्पनाशक्ति का अभाव, दीर्घसूत्रता अथवा टाल-मटोल, और उत्तरदायित्व लेने अथवा निर्णय देने के प्रति अनिच्छा। हमारा यह विचार है कि सिविल सेवकों में ये दोष कुछ न कुछ मात्रा में पाए जाते हैं।"[2]

एक सिविल सेवक, जोकि कल्पनाशक्ति, विचारशक्ति तथा रचनात्मक सुझावों के क्षेत्र में कमजोर होता है, उन नये कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का भार वहन करने के

1 H G R Greaves, *The Civil Service in the Changing State*, p 46
2 Report Cmd 6525 of 1944 Para 13,

लिये अनुपयुक्त होता है जिनके लिये कि पहल करने की क्षमता, उद्यम तथा साहस की आवश्यकता होती है। फूक-फूक कर पैर रखने वाले वे व्यक्ति जोकि हर समय अपने बचाव का ध्यान रखते हैं, राज्य के निरन्तर बढते हुए आधुनिक कार्यों को सम्पन्न नही कर सकते। नौकरशाही के इन दोषो तथा नये समाज की आवश्यकताओ को दृष्टिगत रखते हुए जरूरत इस बात की है कि सिविल-सेवको के समुचित चयन (Proper selection) तथा उनमे उच्च कार्य-कुशलता एव ऊचा मनोबल बनाये रखने के लिए समुचित प्रेरणाओ की व्यवस्था की जाए। सिविल-सेवको के उचित चुनाव तथा पर्याप्त प्रशिक्षण से ही इस बात का निश्चय होगा कि वे नये समाज की चुनौती का सामना करने मे समर्थ होगे या नही। भारत सिविल-सेवा के बारे मे लिखते हुए पाल एच० एपलिबी ने कहा

"चयन के सिद्धान्त के विषय मे यह कहा जा सकता है कि प्रचलित पद्धति मे लगभग वैसी ही निष्पक्षता बरती जाती है जैसी कि किसी भी सिविल सेवा पद्धति मे पाई जाती है, परन्तु परीक्षा की विधियां आधुनिक नही हैं तथा वे प्रशासकीय योग्यताओ के विषय म आधुनिक ज्ञान से पूर्णतया सम्बन्धित नही है। साक्षात्कार-प्रणाली (Interviewing method) की अवश्य प्रशसा की जानी चाहिये। तथापि, परीक्षा विधि शैक्षणिक है, प्रशासकीय नही।"[1]

भारत के लिए आर्थिक सिविल-सेवा
(Economic Civil Service for India)

उत्पादन के मुख्य साधनों के सरकारी नियन्त्रण को भारतीय आर्थिक आयोजन (Indian Economic Planning) के एक आवश्यक अग के रूप मे अपनाया गया है। राष्ट्रीय साधनो के एक बडे क्षेत्र पर समुदाय (Community) का स्वामित्व स्थापित हो गया है। परिवहन सेवाओ (Transport services) के सगठन के लिए, नये-नये नगरो के नियोजन तथा विकास के लिए और सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगो के सचालन के लिए सरकारी पदाधिकारी ही उत्तरदायी हैं। भारत मे सरकारी निगम (Public Corporations) जिनकी स्थापना राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगो का प्रबन्ध करने के लिये की गई है, सरकारी पदाधिकारियो द्वारा ही सचालित किये जाते हैं। आर्थिक क्षेत्र की अनेक क्रियाओ को सम्पन्न करने का भार सिविल-सेवा पर आ पडा है। इस स्थिति मे प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या वर्तमान सिविल-सेवा नये कार्यों का भार वहन करने के लिए उपयुक्त है अथवा राज्य के आर्थिक कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए एक पृथक् 'आर्थिक सिविल-सेवा' का निर्माण किया जाना चाहिए? ए० डी० गोरवाला ने लोक प्रशासन पर दिये गये अपने प्रतिवेदन मे आर्थिक सिविल सेवा की समस्या की विवेचना की है। यह कहा जाता है कि कन्ट्रोल के नियमन, औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकृति के सरकारी उद्यमो का

1 Paul H Appleby *Public Administration in India*, Report of a Survey p 29

सचालन, कुछ विभागो जैसे कि उद्योग तथा वाणिज्य व आर्थिक मामलो के विभागो आदि मे भर्ती, तथा कुछ योजनाओ के क्रियान्वय का कार्य आर्थिक सिविल सेवा पर ही छोड दिया जाना चाहिय। आर्थिक सिविल सेवा के अन्तर्गत सामान्यत निम्नलिखित चार विभिन्न प्रकार के अधिकारी एव कर्मचारी एक साथ सम्मिलित किये जाते हैं —

(१) ऐसे अधिकारी जोकि आर्थिक नीति (Economic policy) की उच्चतम सतह पर सरकार को सलाह देने म समर्थ एव सक्षम हो।

(२) ऐसे अधिकारी एव कर्मचारी जोकि निम्न सतह पर ऐसी आर्थिक सामग्री एकत्रित करने तथा प्रस्तुत करने म समर्थ हो जिसको आर्थिक नीति के सम्बन्ध मे दिय जाने वाले परामर्श का आधार बनाया जा सके।

(३) ऐसे अधिकारी जिनका अर्थशास्त्र (Economics) का ज्ञान काफी सुदृढ हो और जिनसे कुछ सचिवालयिक तथा निष्पादक पदो के कार्यों को उन व्यक्तियो के मुकाबले अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न करने की आशा की जाए जोकि अर्थशास्त्र के ऐसे ज्ञान से रहित हो।

(४) ऐसे अधिकारी जिनम कुशलता क साथ कार्य सम्पन्न करने का प्रबन्ध-सम्बन्धी अनुभव तथा योग्यता वर्तमान हो। आर्थिक सिविल सेवा के पक्ष-पोषको द्वारा यह कहा जाता है कि इस सेवा मे की जाने वाली भर्ती को अर्थशास्त्र मे डिग्री प्राप्त करने वाले व्यक्तियो तक ही सीमित कर दिया जाना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र के स्नातको (Graduates) मे प्रशासकीय तथा प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता—जोकि किसी भी प्रकार की सिविल सेवा क लिए अत्यन्त आवश्यक होती है—अनिवार्य रूप से पाई जाती हो, ऐसी बात तो नही है। ए० डी० गोरवाला ने ठीक ही कहा है 'इस श्रेणी के पदाधिकारी किसी भी स्थिति म अर्थ-कच्चरे डिग्री-धारको मे से नहीं लिये जा सकते। जिन विभागो म बहुधा आर्थिक सामग्री एव आर्थिक प्रवृत्तियो को दृष्टिगत रखते हुए निर्णय देने होते हैं उनमे काम करने वाले पद-धारको के लिए आर्थिक आधार एव ज्ञान, निश्चय ही कुछ उपयोगी हो सकता है परन्तु इन पदों की भर्ती को केवल उन व्यक्तियो तक ही सीमित कर देने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा जिन्होने कि अर्थशास्त्र की डिग्री प्राप्त की हो। एक सर्व-सामान्य योग्यता एव ज्ञान वाले पदाधिकारी को, उसकी सेवा के प्रारम्भिक वर्षों म, आवश्यक आर्थिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है। सभी दृष्टियों स फिर, विशिष्ट आर्थिक सिविल सेवा (Special Economic Civil Service) के पक्ष के समर्थन मे कहने को कुछ बाकी नहीं रहेगा।[1]

एक सुझाव यह दिया जा सकता है कि सरकारी स्वामित्व वाल उद्योगो के सचालन के लिये एक ऐसी औद्योगिक प्रबन्ध सेवा की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे

1 A D Gorwala, *Report on Public Administration* Government of India Planning Commission 1951 p 64

ऐसे व्यक्ति हों जिन्होंने औद्योगिक प्रबन्ध सेवा का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। भारत सरकार ने ऐसी औद्योगिक प्रबन्ध सेवा की आवश्यकता अनुभव की और एक योजना की घोषणा की जोकि "औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र योजना" के नाम से विख्यात है।

औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र योजना
(The Industrial Management Pool Scheme)

(१) औद्योगिक प्रबन्ध केन्द्र (I M P) की स्थापना आगे दी हुई विधि के अनुसार उन मन्त्रालयों (Ministries) की मांगों की पूर्ति के लिए की जायेगी जिनके अधीन औद्योगिक उद्यम (Industrial undertaking) काम कर रहे होंगे। वर्तमान में तो, उत्पादन मन्त्रालय, लोहा व इस्पात मन्त्रालय, परिवहन व संचार मन्त्रालय और वाणिज्य तथा उपभोक्ता उद्योगों के मन्त्रालय इस केन्द्र में भाग लेंगे। बाद में इस बात की खुली छूट होगी कि औद्योगिक उद्यमों के संचालन से सम्बन्धित कोई भी अन्य मन्त्रालय केन्द्र की नियन्त्रणकारी सत्ता की सहमति से इस योजना में सम्मिलित हो सके।

(२) **नियन्त्रणकारी सत्ता (Controlling Authority)**—स्वराष्ट्र मन्त्रालय **(Home Ministry)** केन्द्र की नियन्त्रणकारी सत्ता के रूप में कार्य करेगा। स्वराष्ट्र मन्त्रालय को एक मण्डल (Board) द्वारा परामर्श दिया जायेगा जिसकी रचना निम्न प्रकार होगी —

१ मन्त्रि परिषद् सचिव ·· · ··अध्यक्ष पदेन।
२, ३, ४, ५ व ६ भाग लेने वाले मन्त्रालयों अर्थात् उत्पादन, लोहा व इस्पात परिवहन व संचार, वाणिज्य तथा उपभोक्ता उद्योगों के सदस्य ·· प्रतिनिधि।

भारत सरकार का स्थापना अधिकारी (Establishment Officer) मण्डल का पदेन सचिव (Ex-officio secretary) होगा।

(३) केन्द्र (Pool) सभी सरकारी उद्यमों (Public enterprizes) में ज्येष्ठ (अर्थात् उच्च तथा मध्य स्तर के) प्रबन्धकीय पदों (Managerial posts) पर भर्ती की योजना तैयार करेगा, चाहे वे सरकारी उद्यम प्रत्यक्ष रूप से सरकार द्वारा संचालित किये जाते हों अथवा ऐसे निगमों या कम्पनियों द्वारा संचालित किये जाते हों जिनमें कि सरकार नियन्त्रणकारी स्थिति रखती हो। इस क्रम में गैर-तकनीकी प्रकृति के ऐसे पद सम्मिलित होंगे जिनका सम्बन्ध, उदाहरणार्थ, सामान्य प्रबन्ध, वित्त तथा लेखों (Finance and accounts), विक्रय, क्रय, भण्डार (Stores), यातायात, वैयक्तिक प्रबन्ध व कल्याण तथा नगर प्रशासन से हो।

(४) कोई भी पद केन्द्र के सदस्यों के लिए सुरक्षित नहीं होगा। तथापि केन्द्र के पदाधिकारी केन्द्र में भाग लेने वाले मन्त्रालयों के अधीन संचालित किये जाने

वाले सरकारी (सार्वजनिक) उद्यमो मे गैर-तकनीकी पदों की नियुक्ति के लिए उपलब्ध रहेंगे। औद्योगिक उद्यमों के वरिष्ठ पद (Senior posts) पदोन्नति (Promotion) की स्थिति में उन अधिकारियों के लिए भी उपलब्ध होंगे, जोकि सम्बन्धित उद्यम से सम्बद्ध होंगे। अतः केन्द्र के पदाधिकारियों की संख्या का निर्धारण उद्यमों में वरिष्ठ प्रबन्धकीय पदों की कुल आवश्यकताओं की सतह से नीचे ही होगा।

(५) पदक्रम तथा वेतनक्रम (Grades and Pay scales)—केन्द्र (Pool) निम्नलिखित वेतन क्रमों पर सात पद क्रमों में संगठित किया जायेगा —

	रु०
पदक्रम प्रथम	२,७५० (स्थिर)
पदक्रम द्वितीय	२,५०० (स्थिर)
पदक्रम तृतीय	२,०००-१२५-२,२५०
पदक्रम चतुर्थ	१,६००-१००-२,६००
पदक्रम पंचम	१,३००- ६०-१,६००
पदक्रम षष्ठ	१,०००- ५०-१,४००
पदक्रम सप्तम	६००- ४०-१,०००

सेवा के इन सभी पदक्रमों की प्रथम श्रेणी को केन्द्रीय सेवाओं से सहाय मागा जायेगा।

इसके साथ ही साथ योजना (Scheme) के अनुच्छेद ७ के अन्तर्गत दी गई प्रथम टिप्पणी के अनुसार भर्ती किये गये कनिष्ठ अधिकारी (Junior officers) रु० ३५०-२५-५००-३०-६२० के वेतन क्रम मे उपयुक्त स्तरों पर नियुक्त किये जा सकते हैं। एक ही पद-क्रम में भी वेतन वृद्धि स्वयचालित (Automatic) रूप मे नही प्राप्त होगी। बल्कि इसके विपरीत, इस सम्बन्ध में एक ठोस निर्णय (Decision) किया जायेगा और तब एक पदाधिकारी का वेतन-वृद्धि (Increment) पाने के लिए उपयुक्त माना जायेगा। यह निर्णय उन निगमों अथवा कम्पनियों के निर्देशक मण्डल (Board of Directors) द्वारा किया जायेगा जिनके अन्तर्गत कि वह सम्बन्धित पदाधिकारी काम कर रहा है परन्तु शर्त यह है कि केन्द्रीय सलाहकार मण्डल (Central Advisory Board) के परामर्श से नियन्त्रणकारी सत्ता ने उसकी पुष्टि कर दी हो। एक ही पदक्रम के अन्दर भी ज्येष्ठता (Seniority) का कोई क्रम नहीं होगा। इस प्रकार एक पदक्रम (Grade) के सभी पदाधिकारी केवल योग्यता (Merit) के आधार पर पदोन्नति (Promotion) के पात्र होंगे और योग्यता के आधार पर ही चयन (Selection) करके अगले उच्च पदक्रम मे उनको पदोन्नत कर दिया जायेगा।

(६) अधिकृत संख्या (Authorised Strength)—प्रारम्भिक रचना के समय केन्द्र के अधिकारियों की अधिकृत स्थायी संख्या २०० होगी। नियन्त्रणकारी

सत्ता द्वारा इस संख्या का वितरण विभिन्न पद-क्रमो मे कर दिया जायेगा ; परन्तु यह वितरण वित्त मन्त्रालय (Ministry of Finance) के परामर्श से तथा इस बात को ध्यान मे रखकर किया जायेगा कि प्रत्येक पदक्रम की अनुमानित आवश्यकता कितनी है और प्रत्येक पद-क्रम के लिए उपलब्ध व्यक्ति किस कोटि (Quality) के हैं। जब भी आवश्यकता हो इस संख्या पर पुनर्विचार किया जा सकता है परन्तु प्रत्येक स्थिति मे, ऐसा दो वर्षों मे एक बार ही किया जा सकता है।

(७) भर्ती (Recruitment)—प्रारम्भ मे केन्द्र की रचना अनुच्छेद ५ मे उल्लिखित पद क्रमो मे से किसी मे भी भर्ती करके की जायेगी। यह भर्ती उन व्यक्तियो मे से चयन करके की जायेगी—

(क) जिन्होने मान्यता प्राप्त किसी विश्वविद्यालय की डिग्री अथवा उसके समकक्ष अन्य कोई उपाधि प्राप्त की हो,

(ख) जिनकी आयु २७ तथा ४५ वर्षों के बीच मे हो,

(ग) जिनका पाच वर्ष का औद्योगिक अथवा प्रबन्ध-सम्बन्धी अनुभव हो तो अधिक अच्छा है।

टिप्पणी—(१) अपवादभूत परिस्थितियो मे २७ वर्ष से कम आयु के प्रत्याशियो (Candidates) की भर्ती की जा सकती है। ऐसे प्रत्याशियो को, नियुक्ति होने पर रु० ३५०-२५-५००-३०-६२० के क्रम मे वेतन मिलता है।

टिप्पणी—(२) ४५ वर्ष से ऊपर की आयु के व्यक्ति, यदि विशिष्ट रूप से उपयुक्त हो तो, *केन्द्र मे नियुक्त होने के बजाए दीर्घकालीन ठेके पर रखे जा सकते हैं।*

भर्ती के क्षेत्र मे निम्नलिखित सम्मिलित होगे —

(क) अखिल भारतीय तथा प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के पदाधिकारी (रेलवे तथा प्रतिरक्षा सेवाओ सहित)।

(ख) इसी पदस्थिति तथा अनुभव के राज्य सरकारो के अधिकारी।

(ग) *वर्तमान सरकारी उद्यमो के अनुभवी अधिकारी।*

(घ) खुले बाजार से लिये जाने वाले प्रत्याशी।

(८) भर्ती की रीति (Method of recruitment)—केन्द्र के लिए भर्ती एक 'विशिष्ट भर्ती मण्डल' (Special Recruitment Board) की सिफारिश पर की जायेगी। इस मण्डल की रचना निम्न प्रकार होगी :—

(१) अध्यक्ष अथवा एक सदस्य ··· संघीय लोक सेवा आयोग का सदस्य।

(२) एक गैर-सरकारी व्यक्ति। } सदस्य

(३ व ४) राज्य उद्यमो के प्रबन्ध निर्देशक तथा सामान्य प्रबन्धक।

(४ व ५) भाग लेने वाले मन्त्रालयों के प्रतिनिधि, उन मन्त्रालयों को छोड़कर जिनका प्रतिनिधित्व ३ व ४ मे प्रबन्ध निर्देशकों (Managing Directors) तथा सामान्य प्रबन्धकों (General Managers) द्वारा किया गया हो।

सरकार द्वारा नियुक्तियाँ करने से पूर्व मण्डल की सिफारिशें समालोचना अथवा टीका टिप्पणी के लिए सघीय लोक सेवा आयोग (U P S C) के समक्ष रखी जायेंगी।

यह आवश्यक नहीं है कि भर्ती को अनिवार्य रूप से उन प्रत्याशियो तक ही सीमित कर दिया जाय जोकि विज्ञापनो के प्रत्युत्तर मे केन्द्र (Pool) मे आने के लिए प्रार्थना-पत्र दें। भर्ती मण्डल (Recruitment Board) उन व्यक्तियो के नामो पर भी विचार कर सकता है जिन्होने प्रार्थना-पत्र न दिया हो परन्तु उनके नामो के सुझाव मन्त्रालयो द्वारा मण्डल के समक्ष रखे गये हों।

वार्षिक प्रविष्टि (Annual intake) अधिकृत संख्या की ५ प्रतिशत निर्धारित कर दी जायेगी और केन्द्र की प्रारम्भिक रचना के २ वर्ष के पश्चात् इस पर पुनर्विचार किया जायेगा। इस वार्षिक प्रविष्टि की, तथा साथ ही साथ, उन न्यूनताओं की भर्ती जोकि केन्द्र की मूल रचना में या तो अधिकृत संख्या मे वृद्धि के कारण हुई हों अथवा अन्य किसी कारण से, 'विशिष्ट भर्ती मण्डल' द्वारा ऊपर उल्लिखित रीति से ही की जायेंगी।

(९) **प्रशिक्षण तथा परिवीक्षा** (Training and Probation)—केन्द्र (Pool) मे नियुक्ति के लिए चुने गये व्यक्ति दो वर्षों की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहेंगे। यदि उनका सम्बन्ध अखिल भारतीय सेवाओं से है तो इस अवधि के पश्चात् केन्द्र के लिए स्थायी रूप से उनके नामो का अनुमोदन किया जा सकता है। यदि उनका सम्बन्ध केन्द्रीय अथवा राज्य सेवाओं से है तो या तो स्थायी रूप से उनके नामो का अनुमोदन किया जा सकता है अथवा उन्हें स्थायी रूप से केन्द्र में खपाया जा सकता है। नियन्त्रणकारी सत्ता को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह प्रत्येक मामले मे परिवीक्षा की अवधि (Period of probation) को घटा-बढ़ा सके। नियन्त्रणकारी सत्ता जब भी आवश्यक समझेगी, सरकारी विभागों मे तथा सरकारी अथवा गैर सरकारी क्षेत्र मे औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उद्यमो मे अधिकारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगी।

(१०) **नियुक्ति अथवा तैनाती** (Posting)—नियन्त्रणकारी सत्ता (Controlling authority) *अधिकारियों को प्रशिक्षण देने वाले के पश्चात्* भाग लेने वाले (Participating) उन उद्यमो मे उनकी तैनाती की व्यवस्था करेगी जहाँ पर कि उनकी सेवाओं का सर्वोत्तम रूप मे उपयोग किया जा सकता हो। इस प्रकार तैनात हो जाने के पश्चात् अधिकारी (Officers) उस उद्यम के तात्कालिक नियन्त्रण मे

रहेगे जिसमे कि वे कार्य कर रहे होगे और उसके द्वारा ही उनका वेतन आदि की अदायगी की जायेगी। भाग लेने वाले सभी उद्यम नियन्त्रणकारी सत्ता को ऐसे सभी वर्तमान अथवा भावी रिक्त-स्थानो का विवरण देंगे जिन पर कि सेवा के सदस्य उपयुक्त रीति से रखे जा सकते है। परन्तु उन उद्यमो के लिए यह आवश्यक नही होगा कि वे किसी रिक्त स्थान (Vacancy) के लिए सेवा के किसी सदस्य को स्वीकार करें ही, और न नियन्त्रणकारी सत्ता ही इस बात के लिए बाध्य होगी कि वह प्रत्येक रिक्त-स्थान के लिए एक केन्द्र अधिकारी (Pool Officer) की व्यवस्था करे।

केन्द्र के प्रत्येक पदाधिकारी को, चाहे वह किसी भी उद्यम मे कार्य करे, यह अधिकार होगा कि वह इतना वेतन प्राप्त कर सके जोकि केन्द्र मे उसके पदक्रम के वेतन से कम न हो। इस बात का भी आश्वासन रहेगा कि, केवल अपवादभूत परिस्थितियो (Exceptional circumstances) को छोडकर, केन्द्र के पदाधिकारी को किसी भी ऐसे पद पर नही लगाया जायेगा जिसको कि सामान्यत एक निम्न पदक्रम के अधिकारी द्वारा भरा जाना चाहिए था, और अपवादभूत परिस्थितियो मे भी, इस आश्वासन के विरुद्ध कार्यवाही नियन्त्रणकारी सत्ता तथा उद्यम के वित्तीय सलाहकारो की सहमति से ही की जा सकती है। यदि उस उद्यम (Enterprise) के वेतन-ढांचे मे, जिसमे कि वह कुछ समय के लिए कार्य कर रहा है, उस पद का वेतन, जिस पर कि वह आसीन है, यदि उसके पद क्रम के वेतन से अधिक है तो इस बात का निर्णय नियन्त्रणकारी सत्ता करेगी कि उस पदाधिकारी को उन दोनो वेतनो के अन्तर का पूर्ण अथवा कुछ भाग दिये जाने की आज्ञा दी जाए या नही।

(११) प्रतिनियुक्ति (Deputation)—केन्द्र के एक पदाधिकारी को अधिक अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से अथवा अन्य किसी कारण से ऐसे पद पर तैनात किया जा सकता है जोकि सामान्यत केन्द्रीय प्रशासन केन्द्र (Central Administrative Pool) के सदस्य के लिए सुरक्षित होता है। इसी प्रकार, केन्द्रीय प्रशासन केन्द्र के अधिकारियो तथा केन्द्र की सहायक सेवाओ के अधिकारियो को ऐसे पदो (Posts) पर प्रतिनियुक्त करके (On deputation) भेजा जा सकता है, जोकि सामान्यत केन्द्र के सदस्यो के लिए सुरक्षित होते हैं।

(१२) अवकाश, पेन्शन तथा सेवा की अन्य शर्तें (Leave, pension and other Conditions of Service)—सेवा की ये शर्तें वही होगी जोकि प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओ के अधिकारियो पर समय-समय पर लागू होती हैं। जिन व्यक्तियो की भर्ती ४५ वर्ष की आयु के पश्चात् खुले बाजार से की जाती है उनकी नियुक्ति ठेके (Contract) पर की जा सकती है, और इस स्थिति मे, सेवा की शर्तों एव दशाओ में उस ठेके मे उल्लिखित मात्रा के अनुसार ही सशोधन कर लिया जायेगा।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारत आजकल एक संकट-काल से गुजर रहा है—जिसे परिवर्तनकालीन संकट कहा जा सकता है। भारतीय सिविल-सेवा को लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज की नई माँगों के अनुरूप बनना है। १९वीं शताब्दी की सिविल-सेवा के प्रयत्न बीसवीं शताब्दी की समस्याओं पर लागू नहीं हो सकते। आज ऐसी सिविल-सेवा की आवश्यकता है जोकि विचारशील हो, बौद्धिक क्षमता से युक्त हो और जनता की माँगों के प्रति उत्तरदायी हो, इसके साथ ही साथ, सिविल सेवा को जनता के राजनैतिक प्रतिनिधियों के नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करना है। ब्रिटिश शासन के समय नौकरशाही (Bureaucracy) अफसर अपने आपको समाज में एक पृथक् वर्ग के रूप में मानते थे। नौकरशाही अफसर सदा ही स्वयं को श्रेष्ठ समझते थे और जनता को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। लोकतन्त्रीय स्वतन्त्र भारत में, अब सिविल-सेवा का यह रूप केवल असामयिक ही नहीं है, अपितु खतरनाक भी है। नौकरशाही को जनता के साथ रहकर कार्य करना है। उसे जनता का सहयोग प्राप्त करना है। यदि नौकरशाही को लोकतन्त्रीय समाज की सेवा करनी है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके दृष्टिकोण तथा कार्य के तरीकों में परिवर्तन किया जाए।

जन-साधारण को भी यह बात ध्यान में रखनी है कि कोई भी प्रशासकीय मशीनरी तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि सिविल सेवकों का यथेष्ट सम्मान न किया जाये। समाचार-पत्रों में संसद (Parliament) में तथा सार्वजनिक मंचों पर नौकरशाही की अनुत्तरदायित्वपूर्ण आलोचना तथा अनावश्यक निन्दा करने से सिविल सेवा का मनोबल (Morale) कम हो जायेगा तथा कार्य-क्षमता घट जायेगी, और यदि ऐसा हुआ तो देश के हितों की दृष्टि से यह बड़ा हानिकारक होगा।

भारत में शासक दल तथा सिविल-सेवा के बीच अभी ठीक-ठीक सम्बन्धों का विकास होना है। ऐसी अनेक शिकायतें की जाती हैं कि स्थानीय कांग्रेसी एम. एल. ए. तथा संसद सदस्य (M. Ps.) प्रशासन में आये-दिन अनावश्यक हस्तक्षेप करते हैं। यह आरोप लगाया जाता है कि वे सिविल-सेवकों से अनुचित पक्षपात कराना चाहते हैं और यदि सिविल-सेवक उनका कहा नहीं मानते हैं तो एम० एल० ए० तथा संसद-सदस्य अपने "बड़े भाइयों" (Big Brothers) अर्थात् मन्त्रियों तक पहुँच करते हैं, और उसका परिणाम यह होता है कि सिविल-सेवकों का स्थानान्तरण (Transfer) कर दिया जाता है अथवा उन्हें परेशान किया जाता है। यदि ये सब आरोप ठीक हैं तो निश्चय ही भारतीय लोकतन्त्र का भविष्य अन्धकारमय है।

भाग ३

वित्तीय प्रशासन

(FINANCIAL ADMINISTRATION)

२६

वित्तीय प्रशासन की समस्या

(The Problem of Financial Administration)

वित्त का महत्व
(Importance of Finance)

कोई भी सरकार धन के बिना किसी भी कार्य को सम्पन्न नही कर सकती। वित्त सरकार के जीवन रक्त (Life blood) के सदृश होता है। वास्तव मे बात यह है कि वित्त तथा प्रशासन को पृथक् नही किया जा सकता। बिना वित्त के कोई भी सरकार कार्य नही कर सकती, ठीक उसी प्रकार जैसे कि बिना पैट्रोल के मोटरकार नही चल सकती। वित्त प्रशासकीय मशीनरी का ईंधन है। बिना धन व्यय किये सरकार की कोई भी क्रिया सम्पन्न नही की जा सकती, उन अधिकारियो अथवा कर्मचारियो को जोकि कार्य करते हैं, वेतन अथवा मजदूरी तो देनी ही पडती है। प्रशासकीय क्रिया की सीमा का निर्धारण उपलब्ध वित्तीय साधनो के द्वारा ही किया जाता है। जितना अधिक वित्त उपलब्ध होता है, उतनी ही अधिक प्रशासकीय क्रियायें सम्पन्न की जाती है। वित्त प्रशासन मे इतने सार्वलौकिक रूप मे व्याप्त हो गया है जिस प्रकार कि वातावरण (Atmosphere) मे आक्सीजन वायु। जब सरकार अपनी योजना के उद्देश्यो एव लक्ष्यो को निर्धारण करती है, उस समय उसके लिये इस योजना की लागत तथा आय के स्रोतो का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

एक सगठित राज्य की तुलना उस बडे कारखाने से की जा सकती है जिसमे विभिन्न प्रकार की मशीनें अनेक प्रक्रियाओं (Processes) मे कार्यरत रहती है। प्रत्येक कारखाने का अपना एक इजिन घर होता है जिसमे कि प्रधान चालक, वाष्प अथवा बिजली का इजिन रखा होता है जो अन्य सब मशीनो को शक्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार राज्य (State) मे भी एक इजिन-घर (Engine-house) होता है। यह इजिन-घर वित्त-विभाग (Finance Department) या राजकोष (Treasury) होता है, और उसमे मुख्य चालक, वित्तीय इजिन रखा होता है जो सरकार के सब प्रशासकीय यन्त्रो को चालू रखता है, और जिस प्रकार वाष्प इजिन कोयले को शक्ति (Power) मे बदल देता है उसी प्रकार यह वित्तीय इजिन राजस्व (Revenue) को लोक सेवाओ मे परिवर्तित कर देता है। सरकार की क्रियाओ मे चूंकि दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है और सरकार उन क्रियाओ पर भारी धनराशिया व्यय करती है, अत:

वर्तमान समय में सरकार की अकुशल तथा अपव्ययी वित्तीय कार्यवाहियों को सहन नहीं किया जा सकता। अतः वित्तीय प्रशासन कुशल तथा प्रवीण होना चाहिए और इसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि जिससे धन का जरा भी अपव्यय न हो।

वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration)

'वित्तीय प्रशासन' शब्द का उपयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें वे सब प्रक्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं जोकि निम्न कार्यों को सम्पन्न करने में उत्पन्न होती हैं "सरकारी धन के संग्रह, बजट-निर्माण, विनियोजन तथा व्यय करने में; आय तथा व्यय, और प्राप्तियों एवं संवितरणों का लेखा-परीक्षण (Audit) करने में; परिसम्पत्तियों (Assets) तथा देनदारियों (Liabilities) और सरकार के वित्तीय सौदों का हिसाब-किताब रखने में, और आमदनियों व खर्चों, प्राप्तियों व संवितरणों तथा निधियों (Funds) व विनियोजना (Appropriations) की दशा के सम्बन्ध में प्रतिवेदन-लेखन (Reporting) में।"[1]

वित्तीय प्रशासन जनता के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण की आधारशिला का स्पर्श (Touch) करता है। सरकार की सभी क्रियाओं का नियन्त्रण इसी से सम्बद्ध होता है।

वित्त के बिना सरकार अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो सकती। प्रशासन के लिए वित्त की इतनी अधिक महत्ता होने के कारण, वित्त के प्रशासन का अध्ययन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। जो सरकार वित्तीय प्रशासन की एक सन्तोषजनक व्यवस्था का निर्माण कर लेती है वह अपने कार्यों का प्रबन्ध कुशलता के साथ करने की दिशा में काफी आगे बढ़ जाती है। इस प्रकार, "वित्तीय प्रशासन, जोकि ऐसी व्यवस्था तथा रीतियों का निर्माण करता है जिनके द्वारा लोक सेवाओं के संचालन के लिए धन प्राप्त किया जाता है, व्यय किया जाता है और उसका लेखा रखा जाता है, आधुनिक सरकार का हृदय माना जाता है।"[2]

वित्तीय प्रशासन एक सुसंचालक एवं गतिशील प्रक्रिया (Process) है जोकि निम्नलिखित संक्रियाओं (Operations) की एक सतत शृंखला का निर्माण करता है —

(१) आय तथा व्यय की आवश्यकताओं के अनुमान लगाना — अर्थात् "बजट का बनाना।" (Preparation of the budget)।

(२) इन अनुमानों के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) की अनुमति प्राप्त

1 First chapter of a report made by *Gufienhagen* and Associates in Dec, 1929 to the Missouri State Survey Commission, quoted by *Nigro* p 313

2 Hoover Commission on organisation of the Executive Branch of the Government (task force report), Fiscal, Budgeting and Accounting Activities, Washington Dec. 1949.

करना— अर्थात् "बजट की विधायी अनुमति" (Legislative approval of the budget)।

(३) आय तथा व्यय की क्रियाओं को कार्यान्वित करना— अर्थात् "बजट को कार्यान्वित करना।" (Execution of the budget)।

(४) वित्तीय व्यवस्थाओं का राजकोषीय प्रबन्ध (Treasury management of the finances)।

(५) इन सक्रियाओं की विधायी उत्तरदायित्व (Legislative accountability) अर्थात् समुचित रूप से हिसाब-किताब रखना और उस हिसाब-किताब का परीक्षण कराना।[1]

वित्तीय प्रशासन मे ऊपर बताई गई प्रक्रियायें सम्मिलित है। ये वित्तीय क्रियायें निम्नलिखित अभिकरणों (Agencies) द्वारा सम्पन्न की जाती हैं—

(१) व्यवस्थापिका सभा अथवा विधानमण्डल (The Legislature),

(२) सरकार की कार्यपालिका शाखा,

(३) राजकोष अथवा वित्त विभाग,

(४) लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department)।

वित्तीय प्रशासन का सचालन तथा नियन्त्रण इन्ही अभिकरणो के द्वारा किया जाता है। अब हम इस बात की विवेचना करेंगे कि वित्तीय प्रशासन के सम्बन्ध मे ये अभिकरण क्या-क्या कार्य सम्पन्न करते हैं?

वित्तीय प्रशासन के अभिकरण
(The Agencies of Financial Administration)

(१) व्यवस्थापिका सभा (The Legislature)

"लोकतन्त्रीय रीति से निर्माण की गई व्यवस्थापिका राजवित्त (Public finance) पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण नियन्त्रण लगाती है। सरकार के वित्तीय मामलो के शासन-प्रबन्ध मे एक प्रमुख तथ्य यह है कि व्यवस्थापिका शाखा एक ऐसे भडार के सदृश होती है जिसमे सरकारी धन के प्राप्त करने तथा व्यय करने से सम्बन्धित सम्पूर्ण सत्ता (Authority) केन्द्रित रहती है। यह एक ऐसा निकाय (Body) होता है जोकि इस बात का निश्चय करता है कि कितना धन प्राप्त किया जायेगा और सामान्य शर्तों के अन्तर्गत, कितना व्यय किया जायेगा। प्रधान होने के नाते, यह व्यवस्थापिका का कर्तव्य होता है कि वह यह देखे कि उसके एजेन्ट अपने कार्य सन्तोषजनक रीति से सम्पन्न करते हैं या नही।"[2] **धन प्राप्त करने की तथा धन को व्यय करने की स्वीकृति देने वाली सत्ता के रूप मे, व्यवस्थापिका को यह शक्ति**

1 Pffner and Presthus *Pbulic Administration*, 1935, pp 262—3, Dimock, *Public Administration*, New York, 1954, p 185, L D White, Introduction to the study of *Public Administration*, New York, 1948 p 247

2 W. F. Willoughby, *Principles of Public Administration*, Washington, 1927, p. 621.

प्राप्त होती है कि वह किसी भी कर (Tax) को लगा सके, समाप्त कर सके, बढ़ा सके अथवा घटा सके। इसे धन व्यय करने की अनुमति देने की अन्तिम सत्ता प्राप्त होती है। व्यवस्थापिका सभा अथवा विधान-मण्डल की अनुमति के बिना लोकतन्त्रीय सरकार किसी भी कर को न लगा सकती है अथवा न उसका संग्रह कर सकती है और न धन को व्यय ही कर सकती है।

भारत मे, हमने ब्रिटिश पद्धति के ससदीय लोकतन्त्र (British System of Parliamentary Democracy) को अपनाया है। अत वे सामान्य सिद्धान्त जोकि ब्रिटिश ससद की वित्तीय कार्यवाहियो का सचालन करते है, भारत पर भी लागू होते हैं। *Sir Erskine May ने उन सिद्धान्तो का निम्न शब्दो मे वर्णन किया है :* "सम्राट को, जाकि अपने उत्तरदायी मन्त्रियो के परामर्श से कार्य करता है और कार्यपालक प्रधान होता है, देश की सम्पूर्ण आय तथा लोक-सेवा के लिए किय जाने वाले सब भुगतानो के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। अत सम्राट सर्वप्रथम लोकसभा (House of Commons) को सरकार की आर्थिक आवश्यकताओ से परिचित कराता है और लोक सभा ऐसे अनुदानो तथा सहायताओ की स्वीकृति देती है जो उनकी मागो की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं, तथा करो के द्वारा और सरकारी आय के अन्य स्रोतो के विनियोजन द्वारा स्वीकृत किये हुए अनुदानो के लिए धन-प्राप्ति के उपायो की व्यवस्था करती है। इस प्रकार, सम्राट धन की माग करता है लोक-सभा उसकी स्वीकृति देती है और लार्ड सभा (House of Lords) उस स्वीकृति पर अपनी सहमति देती है। परन्तु लोक-सभा उस समय तक धन की स्वीकृति नही देती जब तक कि सम्राट द्वारा उसकी माग न की जाये, और उस समय तक कर नही लगा सकती अथवा उसमे वृद्धि नही कर सकती जब तक कि अपने सवैधानिक परामर्शदाताओ के माध्यम से सम्राट द्वारा यह न घोषित कर दिया जाये कि लोक-सेवा (Public service) के लिए ऐसा कराधान (Taxation) आवश्यक है।"[1]

इसी प्रकार भारत मे कार्यपालिका (Executive) बजट उपस्थित करके व्यवस्थापिका (Legislature) से धन की माग करती है और व्यवस्थापिका अथवा ससद उसको स्वीकार करती है। व्यवस्थापिका कार्यपालिका के नेतृत्व म कार्य करती है। अनुदानो (Grants) की सभी मागें और कराधान के सभी प्रस्ताव कार्यपालिका की ओर से रखे जाते है और व्यवस्थापिका इन प्रस्तावो एव मागो पर अपनी स्वीकृति प्रदान करती है।

(२) कार्यपालिका (The Executive)

वित्तीय प्रशासन तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित दूसरा अभिकरण कार्यपालिका है। वित्त से सम्बन्धित नीति के मामलो का नियन्त्रण सम्पूर्ण रूप से कार्यपालिका

1 Sir Thomas Erskine May, *A Treatise on the Law, Privileges, Proceedings and Usage of Parliament*, 13th Ed, p 493

में ही निहित होता है। कार्यपालिका अथवा सरकार ही व्यय की नीति (Policy of expenditure) का निर्धारण करती है। सरकारी अधिकारियों के वेतन, पेन्शन तथा भविष्य निधि (Provident Fund) आदि से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का निश्चय सरकार द्वारा ही किया जाता है। कार्यपालिका वित्त से सम्बन्ध रखने वाले नीति-निर्माण के कार्यों को सम्पन्न करती है।

(३) राजकोष अथवा वित्त विभाग
(The Treasury or Finance Department) :

राजकोष अथवा वित्त विभाग सदा ही देश के सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। यह विभाग देश की वित्तीय व्यवस्थाओं से सम्बन्धित अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न करता है। यह धन के व्यय पर नियन्त्रण लगाता है। यह सरकार के विभिन्न धन व्यय करने वाले विभागों पर नियन्त्रण रखता है और उनमें परस्पर समन्वय स्थापित करता है। करों के संग्रह के लिये भी यह विभाग ही उत्तरदायी होता है। इस विभाग का यह कर्त्तव्य है कि यह आय तथा व्यय के अनुमानों अर्थात् सरकार के वार्षिक बजट को तैयार करे। इसका मुख्य कार्य देश के वित्तीय कार्यों का समुचित प्रबन्ध करना है। यह सरकार के व्यय का महत्वपूर्ण नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन के सभी विभागों में सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख विभाग 'वित्त विभाग' ही है जिसे कि इंगलैण्ड में 'राजकोष' कहा जाता है।

(४) लेखा-परीक्षण (Audit) :

लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department) वित्तीय नियन्त्रण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिकरण है। सरकारी व्यय को एक स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण के अधीन करके एक सत्यनिष्ठ तथा सुदृढ़ वित्त-व्यवस्था के विषय में आश्वस्त हुआ जा सकता है। 'सभी वित्तीय सौदों की सत्यता, वैधता एवं कुशलता की जाँच करने तथा उसके सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के कार्य को ही लेखा-परीक्षण कहा जाता है।' सरकारी द्रव्य का लेखा-परीक्षण, व्यवस्थापिका के उत्तरदायित्व पर, एक स्वतन्त्र पदाधिकारी द्वारा किया जाता है। जब व्यवस्थापिका धन के व्यय की स्वीकृति देती है तो उनको यह भी देखना चाहिए कि वह धन मितव्ययता व ईमानदारी के साथ और वैधानिक रूप में व्यय किया जा रहा है या नहीं। संसद (Parliament) को यह देखना होता है कि सरकारी अधिकारी अपने निजी लाभ के लिये कहीं धन का दुरुपयोग या गबन तो नहीं कर रहे हैं। संसद अपने ही एक पदाधिकारी के द्वारा सरकारी धन का लेखा-परीक्षण कराती है जिसे भारत में नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor-General) कहा जाता है।

(५) संसदीय समितियाँ
(Parliamentary Committees) .

अन्त में, व्यवस्थापिका अथवा संसद की दो समितियां, जिन्हें कि सामान्यतया

अनुमान समिति (Estimates committee) तथा सार्वजनिक लेखा समिति (Public accounts committee) कहा जाता है, व्यवस्थापिका के उत्तरदायित्व पर वित्तीय नियन्त्रण लागू करती हैं। अनुमान समिति सरकार के विभिन्न विभागों के व्यय मे मितव्ययता (Economy) लाने के सुझाव देती है और सार्वजनिक लेखा समिति नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन को दृष्टिगत रखते हुये विनियोजन लेखो (Appropriation accounts) की जाच करती है और उनमे पाई जाने वाली वित्तीय अनियमितताओ की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करती है तथा भविष्य म उनकी रोकथाम करने के सुझाव देती है।

ऊपर उल्लेख किये गए अभिकरण सरकार के अन्तर्गत वित्तीय नियन्त्रण तथा प्रशासन का कार्य करते हैं। इस वित्तीय नियन्त्रण का उद्देश्य व्यय मे ईमानदारी तथा मितव्ययता लाना है। सरकारी धन कर-दाताओ (Tax payers) द्वारा दिया जाता है। इन अभिकरणो को यह देखना होता है कि कर-दाता के धन का ठीक प्रकार तथा समुचित रीति से *उपयोग किया जा रहा है या नही। सरकारी धन तो एक धरोहर अथवा न्याय (Trust) के सदृश होता है अत वित्तीय प्रशासन को यह देखना चाहिए कि उस धरोहर को नष्ट न किया जाय।* वित्तीय प्रशासन को यह भी देखना चाहिए कि जिस कार्य के लिए एक पैनी (Penny) पर्याप्त हो, उस पर एक पौंड न खर्च किया जाय, और यह कि वह पैनी भी किसी व्यक्ति के वैयक्तिक लाभ के लिए नही, अपितु सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए खर्च की जाय। इस प्रकार कुशल वित्तीय प्रशासन प्रत्येक देश के लिए आवश्यक होता है।[1]

समस्या का साराश
(Summary of the Problem)

व्यवस्थापिका को विधि (Law) के द्वारा सरकारी आय के स्रोतो का निर्धारण करना होता है। कार्य-पालिका को उस आय के सग्रह के लिए कार्य-विधि (Procedure) का निर्माण तथा मशीनरी की व्यवस्था करनी होती है। इन आमदनियो के समुचित अभिलख (Records) अथवा लेखे (Accounts) रखने होते हैं जिससे कि एक स्वतन्त्र अधिकारी द्वारा इन लेखो का परीक्षण किया जा सके। *स्वतन्त्र अधिकारी को अपने लेखा-परीक्षण का प्रतिवेदन व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है।*

वित्त के *प्रशासन म, व्यवस्थापिका केन्द्रीय भाग अदा करती है।* वित्तीय प्रशासन के अन्य सभी अभिकरण व्यवस्थापिका के उत्तरदायित्व पर ही कार्य करते

---

1 "Thus whether or not an executive is figure minded he can hardly ignore the pervasive character of financial administration in general administration for it arises at every stage of the process, permeates every aspect of it, and is essential to the *performance of every duty* "

—Dimock, *Public Administration*, p 185

हैं और अपने कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। देश के वित्त तथा वित्तीय प्रशासन पर व्यवस्थापिका का नियन्त्रण प्रत्यक्ष तथा व्यापक होता है। देश के सुदृढ वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व व्यवस्थापिका पर ही रहता है। व्यवस्थापिका ही उन शर्तों का निर्धारण करती है जिनके अनुसार धन व्यय किया जा सकता है और यही अन्तिम रूप मे इस बात की जाच करती है कि कार्यपालिका ने उन शर्तों को पूरा किया या नही।

व्यवस्थापिका
(Legislature)
(धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता)

- कार्यपालिका (वित्तीय नीति पर नियन्त्रण रखती है)
- महालेखा-परीक्षक (धन व्यय होने के पश्चात् लेखों का परीक्षण करता है)
- अनुमान समिति (व्यय में मितव्ययता लाने के सुझाव देती है)
- सार्वजनिक-लेखा समिति (विनियोजन लेखों की जाँच करती है और वित्तीय अनियमितताओं के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है)
- राजकोष अथवा वित्त विभाग
  - बजट तैयार करना
  - सरकार के वित्तीय कार्यों का प्रबन्ध करना
  - व्यय पर नियन्त्रण रखना

२७

आय-व्ययक अथवा बजट
(The Budget)

"बजट" शब्द फ्रांसीसी भाषा के शब्द "बूजट" (Bougette) से लिया गया है जिसका अर्थ है चमड़े का बैग या थैला। आधुनिक अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग सब से पहले इंगलैंड मे सन् १७३३ ई० मे किया गया जब कि वित्त-मन्त्री ने अपनी वित्तीय योजना को लोक सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया तो पहली बार व्यंग के रूप मे यह कहा गया कि वित्त-मन्त्री ने अपना "बजट खोला।" तभी से सरकार की वार्षिक आय तथा व्यय के वित्तीय विवरण (Financial statement) के लिए इस शब्द का प्रयोग होने लगा।

बजट की परिभाषा
(Definition of Budget)

कुछ लेखकों ने बजट की परिभाषा अनुमानित आमदनियों तथा खर्चों के केवल एक विवरण के रूप मे की है। अन्य लेखकों ने बजट शब्द को राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों (Revenue and Appropriation Acts) का पर्यायवाची कहा है। Leroy Beaulieu ने लिखा है कि "बजट एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत होने वाली अनुमानित प्राप्तियों तथा खर्चों का एक विवरण है; यह एक तुलनात्मक तालिका है जिसमे उगाही जाने वाली आमदनियों तथा किये जाने वाले खर्चों की धनराशियां दी हुई होती हैं, इसके भी अतिरिक्त, यह आय का संग्रह करने तथा खर्च करने के लिए उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा दिया गया एक आदेश अथवा अधिकार है।" Rene *Stourm* ने बजट की परिभाषा इस प्रकार की है कि "यह एक लेख-पत्र है जिसमे सरकारी आय तथा व्यय की एक प्रारम्भिक अनुमोदित योजना दी हुई होती है।" जब कि G Jeze ने बजट का वर्णन इस प्रकार किया है कि "यह सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियों (*Receipts*) *तथा खर्चों का एक पूर्वानुमान* (*Forecast*) तथा अनुमान (Estimate) है, और कुछ प्राप्तियों का संग्रह करने तथा कुछ खर्चों को करने का एक आदेश है।"[1]

उपरोक्त परिभाषायें कम से कम दो प्रकार से दोष-पूर्ण है। सर्वप्रथम, इनमे यह नहीं कहा गया है कि बजट मे विगत सक्रियाओं (Operations), वर्तमान

1 Quoted by W F. Willoughby, *Principles of Public Administration*, pp 436-37.

दशाओं तथा साथ ही साथ, भविष्य के प्रस्तावों से सम्बन्धित तथ्यों का उल्लेख होना चाहिए। दूसरे, इन परिभाषाओं में बजट तथा 'राजस्व व विनियोजन अधिनियमों' के बीच कोई भेद नहीं किया गया है। इन दोनों में भेद किया ही जाना चाहिए। बजट तो प्रशासन के कार्य का प्रतिनिधित्व करता है और राजस्व व विनियोजन अधिनियम व्यवस्थापिका अथवा विधान मण्डल के कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बजट में एकीकृत तथा व्यापक रूप में, उन सभी तथ्यों का समावेश किया जाना चाहिए जो कि सरकार के विगत तथा भावी व्यय और राजकोष (Treasury) की आय तथा वित्तीय स्थिति से सम्बन्ध रखते हों। डब्लू० एफ० विलोबी के अनुसार, "बजट सरकार की आमदनियों तथा खर्चों का केवल अनुमान मात्र ही नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक है। यह (बजट) एक ही साथ रिपोर्ट, अनुमान तथा प्रस्ताव है अथवा उसे ऐसा होना चाहिए। यह एक ऐसा लेखपत्र (Document) है, अथवा होना चाहिए जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालिका धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता के समक्ष इस बात का प्रतिवेदन करती है कि उसने और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने गत वर्ष प्रशासन का संचालन किस प्रकार किया; लोक-कोषागार की वर्तमान स्थिति क्या है, और इन सूचनाओं के आधार पर वह आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यक्रम की घोषणा करती है और यह बतलाती है कि उस कार्यक्रम के निष्पादन के लिए धन की व्यवस्था किस प्रकार की जायेगी।"[1]

बजट क्या है? एक प्राधिकारी के अनुसार, "बजट-निर्माण साधारणतया उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा कि एक सरकारी अभिकरण की वित्तीय नीति का निर्माण किया जाता है, विधानीकरण (Enactment) किया जाता है और उसको कार्यान्वित किया जाता है।"[2] इस प्रकार, बजट-वित्तीय कार्यों की एक योजना है। एक अन्य विद्वान ने बजट पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया है कि "बजट पद्धति एक ऐसी व्यवस्थित रीति है जिसके द्वारा भूत (Past) तथा वर्तमान से सूचनाएं एकत्र की जाती है, उनके आधार पर भविष्य के लिए वित्तीय योजनाओं

1 "The Budget thus, is something much more than a *mere estimate of* revenues and expenditures It is or should be, at once a report on estimate, and a proposal It is, or should be, the document through which the chief executive comes before the fund raising and fund granting authority and *makes full report regarding the manner in which he and his subordinates have* administered affairs during the last completed year, in which he exhibits the present condition of the public treasury, and, on basis of such information, sets forth his programme of work for the year to come and the manner in which he proposes that such work should be financed Willoughby, *op cit*, p 436

2 Report on Financial Administration in the *Michigan State Government* (Chicago Public Administration Service 1938) p 67 (This report was prepared by Joseph Pois)

का निर्माण किया जाता है और तदनन्तर यह प्रतिवेदन दिया जाता है कि वे योजनायें किस प्रकार क्रियान्वित की गईं।"[1]

प्रस्तावित बजट का स्वरूप
(Form of the proposed Budget)

प्रथम भाग (Part I) ·

(१) बजट में उन सभी विभागों तथा अभिकरणों के प्रशासन, सचालन, तथा परिपालन के लिए किये जाने वाले सभी प्रस्तावित खर्चों का समावेश किया जाना चाहिए जिनके लिए कि व्यवस्थापिका या विधान-मण्डल (Legislature) द्वारा विनियोजन (Appropriations) किये जाने हों।

(२) पूंजीगत प्रायोजनाओं (Capital projects) पर किये जाने वाले सभी खर्चों के अनुमान सम्मिलित किये जाने चाहिए।

द्वितीय भाग (Part II) ·

आय के स्रोत (Sources of income)—कराधान (Taxation), उधार (Borrowing), घाटे की वित्त-व्यवस्था (Deficit financing) के द्वारा व कागजी मुद्रा जारी करके।

बजट के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम
(Economic and Social Implications of Budget)

आधुनिक बजट राष्ट्र के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। प्रारम्भिक काल मे, चूंकि बजट सरकार की अनुमानित प्राप्तियो एव खर्चों का एक विवरणमात्र था, अत इसके केवल दो उद्देश्य थे। प्रथम सरकार को यह निश्चित करना होता था कि कार्य-कुशलता के एक उपयुक्त स्तर पर अपनी आवश्यक क्रियाओ का सचालन करने के लिये उसे जो थोडे से धन की आवश्यकता है उस धन को वह किस प्रकार कर-दाताओ की जेब से निकाले। दूसरे, विधान-मण्डल को धन के बारे मे स्वीकृति देनी होती थी अत सरकार यह जानना चाहती थी कि धन किस प्रकार व्यय किया जाये। इस प्रकार, अबन्ध नीति (Laissez faire) के दिनो मे बजट आय तथा व्यय का केवल एक वितरण मात्र था। आधुनिक राष्ट्र और विशेषकर एक कल्याणकारी राज्य या एक विशिष्ट लक्षण सरकार की क्रियाओ की मात्रा तथा विविधता म वृद्धि होना है। सरकार की क्रियाओं मे तेजी से वृद्धि हो रही है और सामाजिक जीवन के लगभग सभी पहलुओ मे उनका विस्तार हो रहा है। सरकार अब एक ऐसे अभिकरण के सदृश है जिसका कार्य ठोस एव नियन्त्रणात्मक क्रियाओ द्वारा नागरिको के सामान्य कल्याण मे वृद्धि करना है। सरकार द्वारा बजट बनाने का कार्य उन बडी प्रक्रियाओ मे से एक है जिनके द्वारा सार्वजनिक साधनो के उपयोग की योजना बनाई जाती है और उनका नियन्त्रण किया जाता है। अत बजट

1 The Budget as an Aid to Management New York Policy Holder Service Bureau p 1

सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण वक्तव्य तथा सरकार के उन कार्यक्रमों के स्पष्टीकरण का एक प्रमुख ग्रस्त्र बन गया है जोकि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था (National economy) के सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनों ही क्षेत्रों में फैले होते हैं। बजट विकास तथा उत्पादन (Production) को, आय की मात्रा तथा वितरण को और मानवीय शक्ति एवं सामग्री की उपलब्धता को प्रभावित करता है। कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अर्थ-व्यवस्था में बजट एक महत्वपूर्ण योग देता है। अत प्रत्येक नागरिक इस बात का इच्छुक होता है कि वह बजट से सरकार की विभिन्न क्रियाओं एवं कार्यक्रमों की प्रकृति तथा लागत से सम्बन्धित बातें ज्ञात करे। बजट से नागरिक यह जान सकते हैं कि सरकार की अनेक योजनाओं तथा कार्य-क्रमों से उन्हें क्या-क्या लाभ प्राप्त होने जा रहे हैं और उन्हें कितना-कितना कर अदा करना पड़ेगा। बजट के द्वारा नागरिकों की विभिन्न रुचियों (Interests), उद्देश्यों, इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का एक कार्य क्रम के रूप में एकत्रीकरण किया जाता है जिससे कि नागरिक सुरक्षा, सुख व सुविधा के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें। बजट में उल्लिखित सरकार की कराधान नीति (Taxation policy) के द्वारा, यह हो सकता है कि वर्गीय विभिन्नताओं तथा असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाय। बजट में दी हुई सरकार की उत्पादन नीति का उद्देश्य निर्धनता, बेरोजगारी तथा धन के असमान वितरण को दूर करना हो सकता है। इस प्रकार, राष्ट्र के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर बजट का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्त
(Important Principles of the Budget)

बजट की परिभाषा और नागरिकों के सामाजिक जीवन में उनके महत्व का विवेचन करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया जाये। बजट के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं प्रचार, स्पष्टता, व्यापकता, एकता, नियतकालीनता, परिशुद्धता और सत्यशीलता।[1]

अब हम बजट के इन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की क्रमश विवेचना करते हैं—

(१) प्रचार (Publicity)—सरकार के बजट को अनेक चरणों (Stages) में से गुजरना होता है, उदाहरण के लिये, कार्यपालिका द्वारा व्यवस्थापिका के समक्ष बजट की सिफारिश, व्यवस्थापिका द्वारा उस पर विचार, तथा बजट का प्रशासन व

---

1 (1) *Public Administration* Dimock Dimock, 1954, p 195-96
(2) *Public Administration* in a Democratic Society, Graves, 1950 p 309
(3) Ideas and issues in *Public Administration*, Ed Waldo 1953 p 309-10
(4) *Public Administration*, Review Vol IV Summer 1944 Harold D Smith Director of the Budget, p 181 88

क्रियान्वय। इन विभिन्न चरणों के द्वारा बजट को सार्वजनिक बना देना चाहिए। बजट पर विचार करने के लिये व्यवस्थापिका (Legislature) के गुप्त अधिवेशन नहीं होने चाहियें। बजट का प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि देश की जनता तथा समाचार-पत्र विभिन्न करों अथवा व्यय की विभिन्न योजनाओं के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर सकें।

(२) स्पष्टता (Clarity)—*बजट का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाना* चाहिए कि वह सरलता व सुगमता से समझ में आ जाए।

(३) व्यापकता (Comprehensiveness)—सरकार के सम्पूर्ण राजकोषीय (Fiscal) कार्यक्रम का सारांश बजट में आ जाना चाहिये। बजट द्वारा सरकार की आमदनियों एवं खर्चों का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिये। इसमें यह बात स्पष्ट की जानी चाहिये कि सरकार द्वारा क्या कोई नया ऋण अथवा उधार लिया जाना है। सरकार की प्राप्तियों तथा विनियोजनाओं का ब्यौरेवार स्पष्टीकरण होना चाहिये। बजट ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सके।

(४) एकता (Unity)—सम्पूर्ण खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिये सरकार की सभी प्राप्तियों (Receipts) का एक सामान्य निधि (Fund) में एकत्रीकरण कर लिया जाना चाहिये।

(५) नियतकालीनता (Periodicity)—सरकार को विनियोजन तथा खर्च करने का अधिकार एक निश्चित अवधि के लिये ही दिया जाना चाहिये। यदि उस अवधि में धन का उपयोग न किया जाये तो या तो वह अधिकार समाप्त हो जाना चाहिये अथवा उसका पुर्नविनियोजन (Re-appropriation) होना चाहिए। सामान्यतः बजट अनुदान वार्षिक आधार पर दिये जाते हैं। व्यवस्थापिका को, उस अवधि कि सम्पूर्ण आवश्यकताओं को, जिसमें कि व्यय किये जाते हैं, दृष्टिगत रख कर उस अवधि से पूर्व ही बजट पारित करना चाहिये। उदाहरण के लिये, यदि वित्तीय वर्ष १ अप्रैल से आरम्भ होना है तो सुविधाजनक यह होगा कि व्यवस्थापिका अथवा विधानमण्डल १ अप्रैल से पूर्व ही खर्चों की अनुमति दे दे।

(६) परिशुद्धता (Accuracy)—किसी भी सुदृढ वित्तीय व्यवस्था के लिये बजट अनुमानों की परिशुद्धता तथा विश्वस्तता अत्यन्त आवश्यक है। वे सूचनाएं, जिन पर कि बजट अनुमान आधारित हों, यथेष्ट रूप में ठीक, ब्यौरेवार तथा मूल्याङ्कन करने की दृष्टि से उपयुक्त होनी चाहियें। जानबूझ कर राजस्व का कम-अनुमान लगाने अथवा तथ्यों को छिपाने की बात नहीं होनी चाहिये।

(७) सत्यशीलता (Integrity)—इसका अर्थ है कि राजकोषीय कार्यक्रमों का क्रियान्वय ठीक उसी प्रकार होना चाहिये जिस प्रकार कि बजट में उसकी व्यवस्था की गई हो। यदि बजट को उस प्रकार क्रियान्वित नहीं किया जाता है जिस प्रकार कि उसका विधानीकरण किया गया था, और यदि योजनाओं को उस प्रकार लागू

नहीं किया जाता है जिस प्रकार कि बजट में उनकी व्यवस्था की गई थी, तो फिर बजट बनाने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। अतः सत्यनिष्ठा के साथ बजट का क्रियान्वय करना एक ऐसा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसका पालन किया जाना चाहिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि बजट के द्वारा उन उद्देश्यों को प्राप्त करना है जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था, अर्थात् सत्यनिष्ठ एवं कुशल वित्तीय प्रशासन की स्थापना, तो ऊपर उल्लख किये गये सिद्धान्तों का पालन होना ही चाहिए।

बजट के विभिन्न प्रकार
(Various Types of Budget)

सामान्यत तीन प्रकार के बजटों का उल्लेख किया जाता है, अर्थात् (१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट, (२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट और (३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट। अब हम प्रत्येक प्रकार के बजट की मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करते हैं।

(१) व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट (Legislative-type Budget) — जब कार्यपालिका (Executive) की प्रार्थना पर, व्यवस्थापिका की एक कमेटी द्वारा बजट तैयार किया जाता है तो वह व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट कहलाता है। इस प्रकार के बजट से कार्यपालिका के बजाए व्यवस्थापिका का महत्व बढ जाता है। व्यवस्थापिका बजट तैयार करती है और उस पर अपनी स्वीकृति देती है। परन्तु यह बात बडी सन्देहास्पद है कि व्यवस्थापिका बजट तैयार करने में पर्याप्त समर्थ भी होती है या नहीं क्योंकि केवल कार्यपालिका ही विभिन्न विभागों की आवश्यकताओं की जानकारी अच्छी तरह प्राप्त कर सकती है।

(२) कार्यपालिका प्रणाली का बजट (*Executive-type Budget*)—*इस प्रणाली में बजट कार्यपालिका द्वारा तैयार किया जाता है और जब वह बजट व्यवस्था* पिका द्वारा अनुमोदित कर दिया जाता है तब उसको कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व भी कार्यपालिका का ही होता है। बजट के निर्माण तथा कार्यान्वय का यह सामान्य रूप से स्वीकृत सिद्धान्त है।

(३) मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का बजट (Board or Commission-type Budget)—इस प्रणाली में, बजट का निर्माण एक मण्डल अथवा आयोग द्वारा किया जाता है जिसमें या तो पूर्णतया प्रशासकीय अधिकारी होते हैं अथवा प्रशासकीय और विधायी अधिकारी (Legislative officers) संयुक्त रूप से होते हैं। यह प्रणाली अमेरिका के कुछ राज्यों में तथा कुछ म्युनिसिपल सरकारों में प्रचलित है। इस व्यवस्था का उद्देश्य या तो यह हो सकता है कि बजट के निर्माण के कार्य में मुख्य कार्यपालिका के साथ कुछ अधिक महत्वपूर्ण स्वतन्त्र प्रशासकीय अधिकारियों को लगा दिया जाए अथवा यह कि इस प्रकार निर्माण किये हुए मण्डल के द्वारा मुख्य

कार्यपालिका की घेराबन्दी सी कर दी जाए जिससे वित्तीय नियोजन पर उसका (कार्यपालिका का) प्रभाव सीमित किया जा सके।

वर्तमान समय मे कार्यपालिका प्रणाली का बजट ही अधिक प्रचलित है। यह समझना ठीक ही है कि विभिन्न व्यय कारक अभिकरणो की आवश्यकताओं की जाँच कार्यपालिका ही अच्छी प्रकार कर सकती है, अत इसे ही आय तथा व्यय के अनुमान (Estimates) तैयार करने चाहिए और अपनी वित्तीय योजना व्यवस्थापिका के समक्ष रखनी चाहिए। कार्यपालिका प्रणाली का बजट विशेषज्ञो (Experts) द्वारा तैयार किया जाता है और ससार के लगभग सभी देशो म बजट तैयार करने मे मुख्य कार्यपालिका की सहायता करने के लिए किसी न किसी विशिष्ट अभिकरण की व्यवस्था की जाती है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे बजट विभाग (Bureau of Budget), ब्रिटेन मे राजकोष (Treasury) और भारत मे वित्त-विभाग (Finance Department) वे विशिष्ट अभिकरण हैं जोकि कार्यपालिका के उत्तरदायित्व पर बजट तैयार करते हैं।

बजट तथा बजट-पद्धति
(Budget and A Budget System)

विभिन्न प्रकार के बजटो का विवेचन करने के पश्चात् अब हम इस बात पर विचार करते है कि बजट तथा एक बजट पद्धति में क्या अन्तर है ? बजट तो एक प्रलेख अथवा लेखपत्र (Document) होता है, किन्तु बजट-पद्धति एक ऐसी प्रणाली होती है जिसके द्वारा बजट का उपयोग वित्तीय प्रशासन के केन्द्रीय अस्त्र के रूप मे किया जाता है। बजट-पद्धति के तीन चरण होते है —

(१) बजट के निर्माण के लिए सत्ता का निर्धारण और बजट का निर्माण।

(२) बजट पर विधायी कार्यवाही।

(३) बजट का कार्यान्वय अर्थात् राजस्व व विनियोजन अधिनियमो (Revenue and Appropriation Acts) के उपबन्धो को क्रियान्वित करना।

बजट-पद्धति के आवश्यक तत्व
(Essentials of the Budget System)

बजट-पद्धति के विभिन्न चरणो का विवेचन करने से पूर्व, इसके आवश्यक तत्वो का अध्ययन करना लाभप्रद होगा। बजट किसी न किसी को तैयार करना होता है और उसे व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। यह उत्तरदायित्व मुख्य कार्यपालिका पर आता है जोकि एक विशेषज्ञ अभिकरण, जैसे कि बजट-विभाग अथवा राजकोष, की सहायता से बजट तैयार करती है और उसे व्यवस्थापिका के समक्ष रखती है। बजट शुद्ध तथा पूर्ण रूप से तैयार किया जाना चाहिए और इसमे सभी तथ्यो का ब्यौरेवार उल्लेख होना चाहिए। बजट ऐसा होना चाहिए कि जो सरकार की वित्तीय स्थिति का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे और इसके ढांचे की रचना

इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिसमे नागरिक तथा कर-दाता बजट की प्रत्येक बात को स्पष्ट रूप से समझ सकें। व्यवस्थापिका द्वारा बजट पर वाद विवाद तथा विचार के लिए जो कार्यविधि अपनाई जाए उसे गुप्त नहीं रखना चाहिए। जब बजट व्यवस्थापिका द्वारा पारित हो जाए उसके पश्चात् उसको समुचित रूप से क्रियान्वित करना चाहिए। एक बार जो बजट स्वीकार कर लिया जाये फिर पूरी निर्धारित अवधि तक उसका दृढ़ता से पालन किया जाना चाहिए, जब तक कि कुछ ऐसी असाधारण परिस्थितियाँ ही उत्पन्न न हो जाए जिनके कारण बजट में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाए और यदि ऐसा नहीं किया गया, तब तो बजट बनाने का कोई अर्थ ही नहीं होगा और बजट की योजना एक उपहासमात्र बन जायेगी।[1]

बजट सम्बन्धी कार्यविधियाँ और समस्यायें
(Budgetary Procedures and Problems)

बजट पद्धति के आवश्यक तत्वों का विवेचन करने के पश्चात अब हम बजट पद्धति के विभिन्न चरणों अथवा सतहों का अध्ययन करते हैं जिनमें से कि बजट को गुजरना होता है।

(१) अनुमान तैयार करना
(Preparation of Estimates)

सर्वप्रथम मुख्य कार्यपालिका अपनी वित्तीय नीति निर्धारित करती है जिसके आधार पर अनुमान तैयार किए जाते हैं। बजट की तैयारी का कार्य निम्नतम सतह में प्रारम्भ होता है। मुख्य कार्यपालिका से प्राप्त अनुदेशों (Instructions) के आधार पर अनेक प्रशासकीय अभिकरण अपने अपने अनुमान तैयार करते हैं। तब सम्भाग प्रमुखों (Division Chiefs), विभागीय अध्यक्षों (Departmental heads) और बाद में, राजकोष अथवा वित्त विभाग के अधिकारियों द्वारा इन अनुमानों की जाँच तथा सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। अनेक बैठकों तथा वाद विवादों के पश्चात प्रस्तावित व्यय को एक लेख पत्र (*document*) के रूप में एकीकृत कर लिया जाता है जिस पर कि वित्त विभाग तथा मुख्य कार्यपालिका द्वारा पुन वाद विवाद किया जा सकता है। अनुमानों को तैयार करने की अवधि में विभिन्न विभागों के बीच एक प्रतियोगिता सी होती रहती है क्योंकि वे अपने-अपने दावे स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते हैं और इस स्थिति में Survival of the fittest का सिद्धान्त ही लागू होता है। अंतिम विश्लेषण में अनुमान (Estimates) कार्यपालिका विभाग, जैसे कि राजकोष अथवा वित्त विभाग के हाथों में आ जाते हैं।

1 The Budget system is discussed in details by A E Buck, *The Annals of the American Academy of Political and Social Science* Vol 113 (May 1924), pp 31 39 quoted by Waldo, *op cit*, pp 299—304

(२) बजट पर व्यवस्थापिका की स्वीकृति
(Legislative Approval of the Budget)

बजट जब तैयार हो जाता है तो वह स्वीकृति देने की प्रार्थना के साथ व्यवस्थापिका अथवा विधान-मण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। व्यवस्थापिका में इस पर दो भागों में वाद-विवाद किया जाता है। सर्वप्रथम, व्यय-पक्ष (Expenditure side) पर विचार किया जाता है और उसके पश्चात आय-पक्ष (Revenue side) पर। सभी व्यवस्थापिका सभाएं अनुमानों की जांच पड़ताल करने के लिए समितियों का विस्तृत उपयोग करती है। धन प्राप्त करने वाली तथा धन के व्यय की स्वीकृति देने वाली एक सत्ता के रूप में, वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में, व्यवस्थापिका की आवाज अन्तिम एवं निर्णायक होती है। व्यवस्थापिका जब बजट पर वाद-विवाद कर लेती हैं, तब दो पृथक विधेयक पारित किये जाते है—एक तो विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill) होता है जोकि धन व्यय करने का एक वैधानिक अधिकार अथवा आदेश होता है, दूसरा राजस्व विधेयक (Revenue Bill) होता है जोकि करो के लगाने तथा उगाहने का अधिकार देता है। व्यवस्थापिका द्वारा इन दोनों विधेयकों के पारित होने के पश्चात् मुख्य कार्यपालिका उस पर अपनी सहमति देती है और इस कारण बजट का एक महत्वपूर्ण चरण, अर्थात् व्यवस्थापिका का अनुमोदन, पूरा हो जाता है।

बजट, जोकि व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है, कार्यपालिका को यह प्राधिकार देता है कि वह व्यवस्थापिका द्वारा उल्लिखितानुसार विशिष्ट मदों पर धन व्यय कर सके। फिफनर के मतानुसार, इस व्यय को कार्य, संगठनात्मक इकाई, प्रकृति तथा उद्देश्य के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। 'कार्य' (Function) के अनुसार वर्गीकरण उसे कहते हैं जिसमे एक ही कार्य के लिए किए, जाने वाले सब व्यय एक ही शीर्षक के अन्तर्गत रखे जाते है, उदाहरण के लिये जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा, सार्वजनिक कार्य (Public works) तथा शिक्षा। विभागों का संगठन सामान्यतः 'एक ही कार्य' के अनुसार किया जाता है जिससे कि एक ही कार्य के लिए किये जाने वाले सब व्यय एक ही विभाग मे लाये जा सकें। इन परिस्थितियों मे, 'कार्य' के अनुसार किया जाने वाला वर्गीकरण 'संगठनात्मक इकाई' के द्वारा किये जाने वाले वर्गीकरण का ही पर्यायवाची होगा। 'प्रकृति' (Character) द्वारा वर्गीकरण खर्चों (Expenditures) मे समय-तत्व (Time element) की ओर संकेत करता है। यह विभिन्न मदो को इस आधार पर पृथक् करता है कि क्या वे (मदें) विगत वर्षों के दायित्वों से सम्बन्धित है जैसे कि ऋण सेवा (Debt service), या वर्तमान उपयोग के लिए वर्तमान साधनों में से किये जाने वाले खर्चों से सम्बन्धित हैं, अथवा ऐसे कार्यों के लिए किये जाने वाले पूंजीगत व्यय (Capital outlay) से सम्बन्धित हैं जिनका उपयोग भावी वित्तीय वर्षों में किया जायेगा। 'उद्देश्य' (Object) द्वारा वर्गीकरण से आशय है खरीदी जाने वाली चीजों की गणना करना जैसे कार्मिक-वर्ग की सेवायें, पूर्तियाँ तथा ठेके की सेवायें। बजट अनुमानों मे वर्गीकरण के इन सभी रूपों का उपयोग किया जाना चाहिये।

२८

ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration in Britain and United States of America)

भारत मे वित्तीय प्रशासन की प्रणाली का विवेचन करने से पूर्व, लाभदायक यह होगा कि ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका म प्रचलित वित्तीय प्रशासन की प्रणालियो का अध्ययन किया जाए।

ब्रिटेन मे वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration in Britain)

ब्रिटिश राजनैतिक व्यवस्था का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि वहाँ ससद (Parliament) की स्थिति सर्वोच्च है। चूंकि ससद की स्थिति सर्वोच्च है अत वही देश के वित्तीय मामलो पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। यह कोई भी नया कर लगा सकती है, यह किसी भी प्रचलित कर (Tax) म वृद्धि या कमी कर सकती है अथवा उसको समाप्त कर सकती है। व्यय करने के लिए धन की अनुमति भी ससद द्वारा ही दी जाती है।

प्रारम्भ मे ही इस बात का उल्लेख कर देना उचित होगा कि ससद कार्यपालिका (Executive) के नेतृत्व मे ही इन वित्तीय अधिकारो का उपयोग करती है। ससद धन के व्यय के किसी भी प्रस्ताव पर सम्राट की सिफारिश के बिना विचार नही कर सकती। ससद केवल उतनी ही धनराशि की स्वीकृति देगी जितनी की विभागो (Departments) द्वारा अभियाचना अथवा माग की जाए। वह अभियाचित' धनराशि मे वृद्धि नही कर सकती, यद्यपि उसे उस धनराशि मे कमी करने की शक्ति प्राप्त होती है। अभियाचित धनराशि म कमी का प्रस्ताव विभाग मे विश्वास की कमी का द्योतक माना जाता है और कठोर दलीय अनुशासन के कारण विरोधी-पक्ष के अभियाचित धनराशि मे कमी करने के प्रयत्न सफल नही हो सकते। ससद बजट को बिना किसी परिवर्तन के मूलरूप मे उसी प्रकार स्वीकार कर लेती है जिस रूप मे कि वह प्रारम्भ मे प्रस्तावित किया जाता है, जब तक कि स्वय मन्त्रि परिषद् के सदन-कक्ष मे बजट मे कोई परिवर्तन करने को सहमत न हो जाए, और ऐसा बहुत कम होता है।

लोक सभा (House of Commons) वित्त के सम्बन्ध में निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करती है।[1] यह सरकारी विभागों द्वारा तैयार किये गए 'अनुमानों' (Estimates) की जांच करती है और प्रत्येक पृथक् मांग पर अनुदान (Grant) की स्वीकृति देती है। सरकार यह अभियाचित धन देने की व्यवस्था करती है और विभिन्न विभागों में उसका विनियोजन करती है। यह उक्त कार्य के लिए आवश्यक धन देने की व्यवस्था के उपायों का निश्चय करती है और इस बात का निर्धारण करती है कि कौन-कौन से नये कर लगाये जायें तथा किन-किन पुराने करों में कमी की जाए अथवा किन-किन करों को समाप्त किया जाए। यह उन रीतियों की भी जांच तथा सूक्ष्म परीक्षण करती है जिनके द्वारा स्वीकृत धनराशियां व्यय की जाती हैं। यह व्यय करने वाले विभागों स्वतन्त्र लेखा परीक्षण (Audit) करने की भी व्यवस्था करती है। लेखों Accounts) का परीक्षण केवल नियन्त्रण तथा महालेखा-परीक्षक द्वारा ही नहीं किया जाता, अपितु संसद की एक पूर्णशक्ति प्राप्त, निर्दलीय सार्वजनिक लेखा समिति (Publ c Accounts Committee) द्वारा भी किया जाता है।

संसद सरकार के विभिन्न विभागों को व्यय के लिए धन की स्वीकृति देती है, अतः विभिन्न विभागों से सम्बन्धित व्यय के अनुमान अनुमोदन (Approval) के लिए संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। अनुमोदन के लिए संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाने से पहले ये अनुमान कार्यपालिका द्वारा तैयार किये जाते हैं। अब हम यह देखते हैं कि ये अनुमान किस प्रकार तैयार किये जाते हैं।

अनुमानों की तैयारी
(Preparation of Estimates)

'अनुमानों' अथवा 'प्राक्कलनों' (Estimates) में, वह अनुमानित धनराशि दिखाई जाती है जोकि किसी निर्दिष्ट कार्य के लिए आवश्यक होती है और यह प्रार्थना की जाती है कि उक्त कार्य के लिए धनराशि की स्वीकृति दे दी जाए। प्रत्येक वर्ष १ अक्टूबर से हर एक विभाग में अनुमानों को तैयार करने का कार्य शुरू हो जाता है। यह कार्य राजकोष (Treasury) के निकट परामर्श से किया जाता है। ब्रिटेन के वित्तीय प्रशासन में राजकोष अत्यन्त महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। अनुमानों को तैयार करते समय विभाग तथा राजकोष के मार्ग-दर्शन एवं पर्यवेक्षण (Supervision) में काम करते हैं। विलोबी ने ठीक ही कहा है कि अनुमान जब विभागों द्वारा अन्तिम रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं तो "वे उन प्रस्तावों के विवरण-पत्र (Statement) के ही द्योतक होते हैं जिनके सम्बन्ध में कि प्रस्तुत करने वाले विभिन्न विभागों तथा राजकोष के बीच पहले से ही सहमति होती है।"[2] ये अनुमान

1 Standing Order 63 of the House of Commons.
2 W. F. Willoughby *Financial Administration of Great Britain.*

'पूर्ति सेवाओं' (Supply service) के लिए होते हैं मुख्यतः थल सेना, नौसेना (Navy), वायु सेना तथा सिविल सेवाओं के लिए—जिनके लिए कि धनराशि की व्यवस्था वार्षिक आधार पर की जाती है। सचित निधि की सेवाओं (Consolidated Fund service) अथवा प्रभारों (Charges), जैसे कि न्यायाधीशों के वेतन तथा पेन्शनें, शाही संस्थाओं (Royal establishments) के व्यय आदि के लिए वार्षिक अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती।

सदन मे अनुमान अथवा प्राक्कलन (Estimates in the House)

जब व्यय के अनुमान तैयार हो जाते हैं, तब फरवरी के मध्य मे सरकार उनको लोकसभा म रखती है। प्राक्कलन किय जान के पश्चात् अनुमान सम्पूर्ण सदन की समिति को सौप दिये जाते हैं जिसे कि 'पूर्ति समिति' (Committee of supply) कहा जाता है। व्यय के सम्बन्ध म लोकसभा के कार्य मुख्यत इस समिति के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते है।

सदन तथा सम्पूर्ण सदन की समिति मे अन्तर (Distinction between the House and the Committee of the Whole House)

ब्रिटेन मे, वित्त से सम्बन्धित कार्य अधिकतर 'सम्पूर्ण सदन की समिति' मे ही सम्पन्न किया जाता है। अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि सदन और सम्पूर्ण सदन की समिति मे क्या अन्तर है। दोनो के बीच अन्तर की मुख्य बाते निम्नलिखित हैं—

(१) सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the whole House) की अध्यक्षता समितियो के चेयरमैन द्वारा की जाती है जबकि सदन (House) की अध्यक्षता अध्यक्ष (Speaker) द्वारा की जाती है। समिति का चेयरमैन अध्यक्ष की (Speaker's) कुर्सी पर नही बैठता, बल्कि मेज पर लिपिक की (Clerk's) कुर्सी पर बैठता है।

(२) जब सदन अपने आपको सम्पूर्ण सदन की समिति मे परिवर्तित कर लेता है तो मेज से अध्यक्ष की सत्ता (Speaker's authority) की प्रतीक गदा (Mace) हटा दी जाती है और कुछ समय के लिए मेज के नीचे रख दी जाती है।

(३) सम्पूर्ण सदन की समिति की कार्यविधि (Procedure) सदन की कार्यविधि के मुकाबले कम औपचारिक (Less formal) होती है सम्पूर्ण सदन की समिति मे प्रस्ताव के अनुमोदन की आवश्यकता नही होती। सदस्यो को भी, जितनी बार वे चाहे, उतनी ही बार बोलने की अनुमति होती है।

"पूर्ति समिति" (Committee of Supply)

पूर्ति समिति उन धनराशियो के अनुदानो (Grants) पर विचार करके सरकारी व्यय (Public Expenditure) का नियन्त्रण करती है जिनकी कि थल सेना, नौ सेना, वायु सेना तथा सिविल सेवको (राजस्व विभागो सहित) के लिए चालू वर्ष म आवश्यकता होती है। यह इन अनुदानो पर उस व्यय के आधार पर विचार करती है जोकि *स्थायी आदेश स० १६ के अन्तर्गत सम्राट के मन्त्रियो* द्वारा तैयार किये जाते हैं और प्रत्येक सत्र (Session) म पूर्ति के काय के लिए २६ दिन दिये जाते हैं। पूर्ति समिति द्वारा पास किये गए प्रस्ताव सदन को वापिस भेज दिये जाते हैं और ये प्रस्ताव विनियोजन अधिनियम (Appropriation act) के आधार पर तैयार किये जाते है। इस अधिनियम मे विस्तार से इस बात की व्याख्या की जाती है कि वित्तीय वष मे विभिन्न कार्यों के लिए प्रत्येक विभाग द्वारा कितनी धन-राशि व्यय की जा सकती है।

पूर्ति प्रस्तावो का स्वरूप (Form of Supply Resolution)

पूर्ति समिति के समक्ष प्रत्येक अनुदान की माग एक प्रस्ताव (Motion) द्वारा रखी जाती है जिसमे स्वीकृत की जाने वाली धनराशि तथा उस विशिष्ट सेवा का उल्लेख किया जाता है जिसके लिए कि उस धनराशि की माग की जाती है। प्रस्ताव का रूप इस प्रकार होता है 'कि एक धनराशि, जोकि पौंड क ""से अधिक न हो, उल्लिखित उद्देश्य की पूर्ति के हेतु उस व्यय भार की अदायगी के लिए जिसका भुगतान ३१ मार्च सन् १९—तक के वर्ष की अवधि मे किया जायेगा, महामहिम के लिये स्वीकृत की जानी चाहिए।"[1]

पूर्ति समिति की कार्यविधि (Procedure in the Committee of Supply)

समिति मे, ऐसा कोई भी सशोधन नही रखा जा सकता है जाकि विचाराधीन अनुदान से सम्बन्धित नही है, और न कोई ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किया जा सकता है जोकि विचाराधीन प्रस्ताव को स्थगित करने के सम्बन्ध मे हा। 'समिति अनुदान के पक्ष मे मत दे सकती है या उसको अस्वीकृत कर सकती है अथवा उसकी धनराशि में कमी कर सकती है। ऐसा करने के लिए वह या तो सम्पूर्ण अनुदान म कमी कर सकती है अथवा व्यय की उन मदो मे कमी कर सकती है जिनसे कि अनुदान की रचना की गई हो परन्तु समिति और कोई कार्य नहीं करती।' सवैधानिक सिद्धान्त

1 That a sum not exceeding £ X be granted to His Majesty to defray the charge which will come in course of payment during the year ending on the 31st Day of March, 19— for the object therein specified

द्वारा राष्ट्रीय व्यय का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्राट् में निहित कर दिया गया है और यह सिद्धान्त लोकसभा को उस धनराशि में वृद्धि करने से रोकता है जिसकी कि राज्य की सेवा के लिए सम्राट् द्वारा माग की जाती है। यह सिद्धान्त पूर्ति समिति में भी दृढ़ता से लागू किया जाता है। ऐसे किसी भी संशोधन या प्रस्ताव नहीं किया जा सकता जिसमें कि अनुदान की धनराशि में अनुमानों में उल्लिखित धनराशि से अधिक की वृद्धि की बात कही गई हो। जब वर्ष भर की सेवा के लिए सभी मांगों की स्वीकृति दे दी जाती है तो पूर्ति समिति की बैठकें बन्द कर दी जाती है।

"उपाय और साधन समिति"
(The Committee of Ways and Means)

पूर्ति समिति केवल विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट धनराशियों का विनियोजन करती है। परन्तु व्यय करने का यह प्राधिकार (Authority) सचित निधि (Consolidated Fund) से धन प्राप्त करने का वास्तविक प्राधिकार नहीं है। सचित निधि में से धन निकालने का यह प्राधिकार सम्पूर्ण सदन की एक अन्य समिति, जिसे कि 'उपाय और साधन समिति' कहा जाता है, में पारित प्रस्तावों के द्वारा प्राप्त होता है। "उपाय और साधन समिति का कार्य सरकारी राजस्व के उस भाग पर विचार करना, जो कि चालू वित्तीय वर्ष की अवधि में सम्राट की सेवा के लिए अपेक्षित व्यय की पूर्ति के लिए आवश्यक होता है, और उन प्रस्तावों का अनुमोदन करना है जो कि सचित निधि से उन धनराशियों के निकालने का प्राधिकार देते हैं जो पूर्ति समिति द्वारा स्वीकृत अनुदानों की पूर्ति के लिए आवश्यक होती है।" इस प्रकार यह समिति दो कार्य सम्पन्न करती है (१) सचित निधि से धन प्राप्त करने का प्राधिकार देना, और (२) करों द्वारा अथवा ऋण द्वारा धन उगाहने के प्रस्तावों पर विचार करना। समिति 'उपायों व साधनों की स्वीकृति देने वाले' प्रस्तावों के द्वारा सदन (House) के सम्मुख अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। इस समिति के प्रस्तावों का रूप इस प्रकार होता है "कि ३१ मार्च सन १९***तक के वर्ष की अवधि की सेवाओं के हेतु महामहिम के लिए स्वीकृत अनुदान की पूर्ति के लिए ब्रिटेन के सचित कोष में से क पौण्ड धन राशि के निकालने की स्वीकृति दी जानी चाहिए। इसके पश्चात् ससद द्वारा विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill) पारित किया जाता है जो कि व्यय के सचित निधि से धन निकालने का अधिकार प्रदान करता है।

व्यय की अनुमति प्राप्त होने के पश्चात कराधान (Taxation) पर विचार किया जाता है। वर्ष भर की सेवाओं के लिए करों (Taxes) पर विचार करना 'उपाय और साधन समिति' का कर्त्तव्य है। उपाय और साधन समिति द्वारा स्वीकृत और तत्पश्चात् लोक सभा के समक्ष प्रेषित प्रस्ताव वे आधार होते हैं जिन पर कि वित्त विधेयक (Finance Bill) तैयार किया जाता है। यह विधेयक आने वाले

वित्तीय वर्ष में लगाये जाने वाले प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करो तथा उन दरो का निर्धारण करता है जिन पर कि उन करो का संग्रह किया जाता है। इसमे राजस्व के नये अथवा अतिरिक्त स्रोतो का भी उल्लेख किया जाता है। कराधान (Taxation) अथवा राजस्व (Revenue) के सुझावो पर क्रमिक रूप मे 'सम्पूर्ण सदन की समिति' (अर्थात् उपाय व साधन समिति) में वाद-विवाद किया जाता है और फिर प्रस्तावो के रूप मे स्वीकार करने के पश्चात् वे सदन को प्रेषित कर दिये जाते हैं तथा विधेयको (Bill) के रूप मे पारित कर दिये जाते हैं।

विनियोजन विधेयक तथा वित्त विधेयक, जब लोक सभा (House of Commons) द्वारा पारित कर दिये जाते है तो फिर वे लार्ड सभा (House of Lords मे भेज दिये जाते है। तदनन्तर दोनो विधेयक सम्राट् (King) के पास भेजे जाते हैं जो कि उन पर हस्ताक्षर करते हैं और तब वे विधेयक राज्य के कानून (Laws) बन जाते हैं। सन् १६११ के संसद अधिनियम (Parliament Act) के पश्चात्, लार्ड सभा का व्यवहारत धन विधेयको पर कोई प्राधिकार नहीं रहा है। इस प्रकार, विनियोजन अधिनियम तथा वित्त अधिनियम लोक सभा तथा उसकी दो समितियो, अर्थात् पूर्ति समिति तथा उपाय व साधन समिति, की लम्बी क्रियाओ के फलस्वरूप ही बनते है। विनियोजन अधिनियम (Appropriation Act) संचित निधि से सभी स्वीकृत अनुदानो की अदायगी का प्राधिकार (Authority) प्रदान करता है और वित्त अधिनियम व्यय के लिए आवश्यक आय की व्यवस्था करता है। कराधान की प्राप्तिया तथा सम्राट के उत्तरदायित्व पर राजकोष द्वारा प्राप्त की गई अन्य सभी धनराशिया संचित निधि मे ले जाई जाती है "जिसमे कि प्रत्येक प्रकार की सरकारी आय जमा की जाती है और जिसम से प्रत्येक प्रकार की सरकारी सेवा के लिए धन दिया जाता है" और सरकारी खर्च की अदायगी के लिए आवश्यक धनराशियां इस निधि मे से ही निकाली जाती है।

ब्रिटिश राजकोष
(British Treasury)

ब्रिटिश संसद की धन प्राप्त करन तथा व्यय की स्वीकृति देने की शक्तियो पर हम विचार कर ही चुके। परन्तु ब्रिटिश राजकोष के अध्ययन के बिना, जोकि ब्रिटेन मे वित्तीय प्रशासन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था है, ब्रिटिश वित्तीय प्रशासन का अध्ययन अधूरा ही है। "राजकोष का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि यह एक विभाग (Department) है जोकि, कार्यपालिका के नियन्त्रण तथा संसद की सत्ता के अधीन, देश के राज वित्त (Public finance) के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है ···सार रूप मे, यह एक स्थायी संस्था है जो कि देश तथा राष्ट्रीय दिवालियेपन (National bankruptcy) के बीच मे खड़ी होती है"।[1] ब्रिटेन

1 The Treasury, T L. Health, 1927 p 1

मे राजकोष ने अन्य सभी विभागो पर अपनी प्रधानता स्थापित कर ली है। यह सरकार के अन्य सभी विभागो का नियन्त्रण करता है और उनमे परस्पर समन्वय स्थापित करता है। ब्रिटेन मे, प्रत्येक विभाग को धन व्यय करने के लिए राजकोष की अनुमति लेनी होती है। राजकोष की प्रधानता अथवा प्रभुत्व की स्थापना के लिए यह शक्ति पर्याप्त है।

अब हम राजकोष के प्रमुख वित्तीय कार्यों पर विचार करते हैं। ये कार्य निम्न प्रकार हैं —

राजकोष के कार्य
(Functions of the Treasury)

(१) 'ससद के अधीन रहते हुए, यह करो के आरोपण (Imposition) एव नियमन (Regulation) तथा राजस्व के सग्रह के लिए उत्तरदायी होता है।

(२) यह विभिन्न मात्राओ मे तथा अनेक प्रकार से सरकारी व्यय का नियन्त्रण करता है, मुख्यत ससद के अनुमानो की तैयारी अथवा उनके पर्यवेक्षण (Supervision) द्वारा।

(३) यह लोक सेवाओ की दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था करता है। इस कार्य के लिए इसे उधार लेने की विस्तृत शक्तिया प्राप्त होती हैं।

(४) यह लोक ऋण (Public debt), मुद्रा तथा बैंकिंग को प्रभावित करने वाली कार्यवाइयाँ करता है और उनका सचालन करता है।

(५) यह उस रीति का निर्धारण करता है जिसके अनुसार कि सरकारी लेख (Public accounts) रखे जाऐंगे।"[1]

इस प्रकार, विभागो के व्यय तथा वित्तीय व्यवस्थाओ पर राजकोष का नियन्त्रण अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत होता है। इसके अतिरिक्त, चूँकि ब्रिटेन मे राज्य के आर्थिक तथा समाज-कल्याण के कार्य निरन्तर बढते जा रहे है, अत देश के वित्तीय मामलो मे राजकोष का महत्व भी बढता जा रहा है। राजकोष सिविल-सेवा पर भी विस्तृत नियन्त्रण रखता है। चूँकि राजकोष प्रस्थापना कार्यों (Establishment purposes) के लिए विभिन्न विभागो को धन देता है अत स्वभावत ही, यह सिविल सेवको के वेतन, पेन्शन, भर्ती तथा सेवा की अन्य शर्तों स सम्बन्धित नियमो के निर्माण मे एक महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है।

राजकोष अन्य सभी विभागो पर घना वित्तीय नियन्त्रण रखता है और सभी सिविल-सेवको के काम की दशाओ तथा स्तरो का भी पर्यवेक्षण करता है। किसी भी मन्त्रालय (Ministry) के लिए व्यय की किसी भी योजना को मन्त्रिपरिषद् (Cabinet) से अनुमोदित करना उस समय तक बडा कठिन है जब तक कि राजकोष उसका

1 Report of the Machinery of Government Committee, 1918, p 16

अनुमोदन न कर दे । यहां तक कि ससद द्वारा 'अनुमानो' अथवा 'प्राक्कलनो' (Estimates) की स्वीकृति के पश्चात् भी, मन्त्रालय अपने विनियोजनो को अपनी इच्छानुसार व्यय नही कर सकते । वे केवल राजकोष से एक 'अभियाचन' (Requisition) के द्वारा ही, जिस पर कि महानियन्त्रक व लेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) के प्रति-हस्ताक्षर हो, सचित निधि (Consolidated Fund) से धन निकाल सकते हैं ।

किसी भी मन्त्रालय मे अधिकारियो की सख्या अथवा उनके वेतनो मे की जाने वाली किसी भी वृद्धि के लिये उस स्थिति म भी जब कि मन्त्रालय के पास उक्त कार्य के लिए पर्याप्त धन हो, राजकोष की अनुमति लेनी पडती है । कर्मचारी-वर्ग तथा उसके वेतन के स्वाभाविक सम्बन्ध ने सिविल-सेवा के विषय मे राजकोष को एक आदेशात्मक स्थिति प्रदान की है । राजकोष के स्थायी सचिव को "सिविल-सेवा के प्रधान" (Head of the Civil Service) की सज्ञा दी जाती है और ऐसे सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो के बारे मे, जैसे कि वेतनक्रमो (किन्तु राजकोष तथा स्टाफ के बीच विवाद की स्थिति मे पचनिर्णय के अधीन), पुनर्गठन योजनाओ तथा अतिवयस्कता भत्तो (Superannuation allowances) के बारे मे, सत्ता प्राप्त होती है ।

राजकोष का संगठन : अर्थ महामात्य

(Organization of Treasury : Chancellor of the Exchequer)

प्रधान मन्त्री (Prime Minister) यद्यपि राजकोष का प्रथम लार्ड होता है, परन्तु राजकोष के वास्तविक प्रशासन से उसका थोडा ही सम्बन्ध होता है । अर्थ-महामात्य (Chancellor of the Exchequer) राजकोष का प्रभावशाली मन्त्रीय प्रमुख होता है । वह राजकोष की सत्ता की नीव का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्थर होता है । वह ब्रिटेन का वित्त मन्त्री (Finance Minister) होता है और जहां तक उसके कार्यों का सम्बन्ध है "वह निम्न बातो के सम्बन्ध म ससद के प्रति उत्तरदायी होता है । सरकारी आय का उचित सग्रह, वे साधन जिनके द्वारा यह आय प्राप्त की जायेगी, वे ऋण जिनके द्वारा इसकी न्यूनतापूर्ति की जायेगी, लगाये जाने वाले कर (Taxes), करो के सम्बन्ध म दी जाने वाली माफिया और छूटें, सरकारी बाकियो (Public balances) की अभिरक्षा, सरकारी व्यय की मोटी रूप रेखायें और व्यय तथा आय के बीच सन्तुलन बनाये रखना । वह सरकार की उन सब कार्यवाहियो के लिए भी उत्तरदायी होता है जोकि मुद्रा (Currency) व बैंकिंग, स्थानीय ऋण तथा सामान्यत वित्तीय मामलो को प्रभावित करें ।"[1] प्रधान-मन्त्री के पश्चात् अर्थ महामात्य ही मन्त्रिपरिषद् का सबसे महत्वपूर्ण मन्त्री होता है । इसमे कोई सन्देह नही कि वित्त से सम्बन्धित नीति का निर्धारण पूरी मन्त्रि परिषद् द्वारा ही किया जाता है परन्तु सभी वित्तीय मामलो के सम्बन्ध मे उसकी आवाज सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है । उसे चूंकि राष्ट्रीय बजट (National Budget) मे आय तथा

1 Health, *op cit* p 66

व्यय के पक्ष को सन्तुलित रखना होता है, अतः यह ऐसी किसी भी योजना अथवा प्रायोजना को अस्वीकार कर सकता है जिसमें नये खर्चों की माँग की गई हो। जब विभिन्न विभागों द्वारा प्रतियोगितापूर्ण माँगें उसके सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं, तो वह उन प्रतियोगिता पूर्ण मांगों के सापेक्षिक महत्व का अंकन करता है और मामलों का निपटारा करता है। जैसा कि हैल्डेन समिति (Haldane Committee) ने ठीक ही कहा कि "यदि उस (अर्थ मन्त्रालय को) जलाशय (Reservoir) के भरने तथा उसमें एक निश्चित गहराई तक पानी बनाये रखने के लिए उत्तरदायी बनाना है, तो वह इस स्थिति में होनी चाहिये कि उस जलाशय से बाहर जाने वाले पानी का वह नियमन कर सके।' यद्यपि मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) वित्तीय नीति का निर्धारण करती है परन्तु इससे किसी भी प्रकार वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में अर्थ मन्त्रालय की महत्ता तथा सत्ता कम नहीं होती।

जहाँ तक राजकोष के संगठन का प्रश्न है यह तीन अनुभागों (Sections) में बटा हुआ है, पूर्ति (Supply) स्थापना (Establishment) or (Personnel), और वित्त अनुभाग (Finance section)। ये अनुभाग इसके तीनों कार्यों के ही समवर्ती हैं, अर्थात् व्यय करने वाले अन्य विभागों की क्रियाओं की देखभाल करना, सिविल-सेवकों की नियुक्तियाँ तथा वेतनों का पर्यवेक्षण, और वित्तीय नीति का विस्तृत विवरण तैयार करना। राजकोष की पूर्ति शाखा व्यय की जांच करती है। यह शाखा अनेक उप-अनुभागों (Sub-section) में बटी होती है। प्रत्येक उप-अनुभाग मन्त्रालयों के एक वर्ग के अधीन होता है जिनकी वित्तीय क्रियाओं का यह पर्यवेक्षण करता है। ये अनुमानों अथवा प्राक्कलनों के तैयार करने में तथा राजस्व के ढाँचे का निर्माण करने में इन अनेक विभागों की भी सहायता करते हैं।

स्थापना शाखा भी अनेक उप-अनुभागों में बटी होती है और ये उप-अनुभाग सिविल-सेवकों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा पारिश्रमिक के सम्बन्ध में मन्त्रालयों के वैसे ही वर्गों के लिए समानान्तर सेवाएं सम्पन्न करते हैं।

वित्तीय अनुभाग तीन शाखाओं में विभाजित होता है। एक के नियन्त्रण में तो देशीय मामलों से सम्बन्धित वित्तीय विभाग होते हैं, जैसे कि अन्तर्देशीय राजस्व (Inland Revenue) तथा सीमा शुल्क व आबकारी विभाग (Department of Customs and Excise), दूसरी शाखा अधिराज्यों (Dominions), औप-निवेशिक कार्यालयों (Colonial offices) तथा राजनयिक सेवाओं (Diplomatic services) का नियन्त्रण करती है; तीसरी शाखा 'वित्तीय अनुसंधान" के अनुभाग के नाम से प्रसिद्ध है। इस अनुभाग में वित्तीय नीति का विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है, बजट सम्बन्धी गणनाएं की जाती हैं और इनसे सरकारी लेखा (Public Accounts) के वार्षिक संस्करण तैयार किये जाते हैं। केन्द्रीय सांख्यिकीय कार्यालय (Central statistical office) द्वारा की जाने वाली अर्थ-व्यवस्था (Economy) की सम्पूर्ण

ाय तथा व्यय की वार्षिक गणनाओ को 'बजट श्वेत पत्र' (Budget White Paper) के नाम से पुकारा जाता है ।

राजकोष द्वारा प्रदान किये जाने वाले योग की आलोचना (Criticism of the Role of the Treasury)

चूँकि राजकोष सरकार के प्रत्येक विभाग पर अपना नियन्त्रण रखता है अत वे सभी विभाग इसको मित्रतापूर्ण दृष्टि से नही देखते जिनके व्यय की योजनाओ को यह अस्वीकृत कर सकता है अथवा उनमे कटौती कर सकता है । इसके अतिरिक्त, राजकोष मितव्ययी दृष्टिकोण से भी कार्य करता है जैसा कि राजकोष के एक स्थायी सचिव की इस प्रसिद्ध टिप्पणी से प्रकट है कि "ब्रिटिश कर-दाता की असुरक्षित दशा को दृष्टिगत रखते हुये वह सो नहीं सकता ।" चूँकि राजकोष देश की वित्तीय व्यवस्थाओ का अभिरक्षक (Custodian) होता है अत वह इस बात को देखने का पूर्ण प्रयत्न करता है कि धन समुचित रीति से व्यय किया जा रहा है या नहीं, और इसी कारण "प्राय इस पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह सकुचित दृष्टिकोण वाला, परम्परावादी तरीके अपनाने वाला और स्वय को परिवर्तित दशाओ के अनुकूल बनाने के प्रति अनिच्छा रखने वाला है ।" इस आलोचना के समर्थन मे जो महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है वह यह कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन की वित्तीय पत्रिकाओ ने यह आरोप लगाया कि स्थिति की माग यह है कि मुद्रा स्फीति (Inflation) को रोकने के लिये अवस्फीति सम्बन्धी (Deflationary) उपाय अपनाये जाने चाहिये, जबकि इसके विपरीत, राजकोष ब्याज की अत्यन्त नीची दरें कायम रख रहा था । इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार की वित्तीय (Financial) तथा आर्थिक (Economic) नीतियो के बीच निकट सम्पर्क नही रहा । नवम्बर सन् १९४७ म सर स्टेफोर्ड क्रिप्स राजकोष के महामात्य (Chancellor) नियुक्त हुये और उन्होंने सरकार के आर्थिक कार्यक्रमो तथा सभी सम्बन्धित मन्त्रालयो के बीच समुचित समन्वय कायम करके इस समस्या के समाधान का प्रयत्न किया ।

प्लौडेन रिपोर्ट (Plowden Report)

ब्रिटिश ट्रेजरी (British Treasury)—जुलाई १९५८ मे अनुमानो (Estimates) की प्रवर समिति (Select Committee) ने "व्यय पर ट्रेजरी नियन्त्रण" नामक एक रिपोर्ट प्रकाशित की । इस रिपोर्ट मे समिति ने कहा "वास्तव मे ट्रेजरी नियन्त्रण की किसी "व्यवस्था" (System) का उल्लेख करना भाषा का अपमान करना है, यदि "व्यवस्था" शब्द का अर्थ यह लिया जाए कि कुछ ऐसी कार्य विधिया तथा परम्पराए हैं जो किसी न किसी समय पर विचारशीलता के साथ नियोजित तथा सस्थापित की गई थी जिसे "ट्रेजरी नियन्त्रण" कहा जाता है उसे

प्रशासनिक व्यवहार का ऐसा ढाचा कहना अधिक उपयुक्त होगा जो शताब्दियो मे एक वृक्ष की भाँति विकसित हुआ है, नियोजित की अपेक्षा प्राकृतिक, सैद्धान्तिक की अपेक्षा व्यवहारवद्ध।"[1]

अनुमानों की प्रवर समिति के इन शब्दों से प्रेरित होकर ३० जुलाई १९५९ को लार्ड प्लोडेन की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने दो वर्ष बाद सन् १९६१ मे "सार्वजनिक व्यय के नियन्त्रण" पर एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

इस समिति के सम्मुख "केन्द्रीय समस्या" यह थी कि बढते हुए सार्वजनिक व्यय पर श्रेष्ठतम नियन्त्रण किस प्रकार स्थापित किया जाए तथा इसे सरकारी इच्छानुसार वाछनीय सीमाओ मे कैसे बाधा जाए। समिति इस निर्णय पर पहुची कि सार्वजनिक व्यय मे दूरदर्शिता तथा भविष्य की आवश्यकताओ को दृष्टिगत रखकर नियोजन आवश्यक है। समिति ने कहा कि "ऐसे निर्णय जिनमे भारी भावी व्यय विहित हो सदा सम्पूर्ण सार्वजनिक व्यय के कई वर्षों के सर्वेक्षणो तथा भावी वित्तीय स्रोतो को दृष्टिगत रखकर लिए जाने चाहियें।"[2] ट्रेजरी के नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए समिति इस निष्कर्ष पर पहुची कि "वित्तीय मामलों पर मन्त्रियो द्वारा सामूहिक निर्णय लेने तथा उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए और अधिक प्रभावशाली यन्त्र की आवश्यकता है।"[3] प्रभावशाली नियन्त्रण के लिए समिति ने यह भी सुझाव दिया कि "व्यय सम्बन्धी भावी समस्याओ के मापन तथा निराकरण के लिए साधनो मे सुधार होना चाहिए, विशेषकर अनुमानो के स्वरूप का भारी सरलीकरण तथा मात्रात्मक साधनो का अधिक व्यापक प्रयोग।"[4]

ब्रिटिश ट्रेजरी को मुख्यत दो महत्वपूर्ण कार्य करने पडते हैं व्यय पर नियत्रण तथा राष्ट्रीय आर्थिक नीतियो का निर्धारण। आधुनिक ट्रेजरी का एक प्रमुख दायित्व सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध करना है। साथ ही उसको वित्त के सरक्षक का परम्परागत दायित्व भी सम्भालना पडता है। अत ट्रेजरी को व्यापक दृष्टि से राष्ट्र की सम्पूर्ण आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्यो का निर्धारण करना पडता है तथा विभिन्न विभागो की नीतियो मे समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समायोजन स्थापित करना पडता है। इसलिए ट्रेजरी मे यह योग्यता होनी चाहिए कि वह:

(अ) प्रत्येक विभाग की गति-विधियो तथा आवश्यकताओ को राष्ट्रीय आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्यो, भावी आर्थिक स्रोतो की स्थिति एव उनके प्रयोग के लिए प्रस्तुत की जाने वाली मांगों से सम्बन्धित करे; तथा

---

1 Quoted by D N Chester The Plowden Report I Nature and Significance, Public Administration (London) Spring 1963, Vol 41, p 3.

2 The Plowden Report (Para 7)

3 *Ibid* Para 12 D

4 *Ibid* Para 12 C

(ब) विभागों को एक संयुक्त उद्यम के हिस्सेदार समझकर राष्ट्रीय आर्थिक तथा वित्तीय नीति के सब पहलुओं पर परामर्श दे तथा उन्हें अपने दायित्वों को कार्य-कुशलता एवं मितव्ययता से निभाने में सहायता दे।[1]

ट्रेजरी राष्ट्रीय आर्थिक नीति के निर्धारण तथा वित्त पर नियन्त्रण के दोनों कार्यों को तभी सम्पन्न कर सकती है जब वह सिविल सेवा का प्रभावशाली प्रबन्ध करने तथा सरकार के अन्य विभागों के साथ प्रभावशाली सम्पर्क स्थापित करने में सफल हो। प्लोडेन रिपोर्ट अन्य विभागों तथा ट्रेजरी के सामान्य कार्यों के साथ सिविल-सेवा के सदस्यों सम्बन्धी प्रबन्ध कार्यों का भी विवेचन करती है।

ट्रेजरी तथा अन्य विभागों के कार्यों पर प्लोडेन रिपोर्ट में निम्नलिखित बातें कही गई हैं —

"३५ प्रत्येक विभाग का प्राथमिक दायित्व सरकार द्वारा निश्चित की गई सीमाओं की परिधि में अपनी नीति को सचालित करना है। विभाग अपने कार्य को कुशलता से करने के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है' यह महत्वपूर्ण है कि विभाग अपने दायित्वों को ठीक-ठीक समझें, स्वीकार करें तथा वे दायित्व विभागों और ट्रेजरी के पारस्परिक सम्बन्धों में प्रतिबिम्बित हों।

"३६ ट्रेजरी वह विभाग है जिसका केन्द्रीय दायित्व राष्ट्रीय आर्थिक तथा वित्तीय नीति संचालित करना है, वह वित्त की संरक्षक है तथा सिविल-सेवा एवं प्रशासनिक यन्त्र की स्वामिनी है। इसका उत्तरदायित्व निम्न विषयों पर है —

(अ) सरकारी सेवा की कार्य-कुशलता बनाये रखना तथा यह देखना कि सभी विभागों में, विशेष कर उच्च स्तरों पर, सम्पूर्ण सेवा के सर्वोत्तम अधिकारी हों, तथा

(ब) सम्पूर्ण सरकारी सेवा में प्रबन्ध सेवाओं (Management Services) का विकास करना, नवीन प्रबन्ध विधियों को प्रारम्भ करने में पहल करना तथा विभागों की प्रबन्ध विधियों पर दृष्टि रखना।"[2]

सिविल-सेवा के सदस्यों सम्बन्धी ट्रेजरी के प्रबन्ध कार्य विभिन्न प्रकार के हैं। प्रथम तो ट्रेजरी भर्ती सम्बन्धी पहलुओं में सिविल-सेवा आयोग से सम्बद्ध है। दूसरे, ट्रेजरी का ही कार्य सिविल-सेवा के वेतन-क्रम तथा अन्य दशायें तय करना है। तीसरे, ट्रेजरी की ही उचित स्टाफ सम्बन्ध, जिसे 'ह्विटलेवाद' (Whitleyism) कहते हैं, बनाये रखने की भी जिम्मेदारी है। चौथे, इसका सम्बन्ध लोक-सेवा के कर्मचारियों के अनुशासन, पदोन्नति, पदावनति, सेवा-निवृत्ति इत्यादि से भी है। पांचवे, ट्रेजरी का प्रशिक्षण सम्भाग (Treasury Training Division) लोक-सेवा के सभी भागों

1 Refer to R W. D Clark The Plowden Report II The Formulation of Economic Policy, Public Administration, (London) Spring 1963, volume 41, pp 20-21.

2 Refer to W. W. Morton The Plowden Report III The Management Functions of the Treasury. Public Administration, London, Spring 1963 Vol 41, p. 27.

के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा सम्मेलन सचालित करती है और ये कार्यक्रम तथा सम्मेलन अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुए हैं।

इस प्रकार प्लोडेन रिपोर्ट ब्रिटिश ट्रेजरी के कार्यों तथा उसकी समस्याओं पर काफी प्रकाश डालती है। रिपोर्ट में ट्रेजरी के तीन प्रमुख कार्यों पर ठीक बल दिया गया है तथा उनमें सुधार के लिए सुझाव भी दिये गये हैं। ट्रेजरी के तीन प्रमुख दायित्व है :

(अ) सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध, (ब) वित्त का सरक्षण, तथा (स) सिविल-सेवा का कार्य-कुशल प्रबन्ध। ट्रेजरी को इन तीनों कार्यों को एकसा महत्व प्रदान करना पड़ता है।[1]

लेखा-परीक्षण (Audit)

वित्तीय प्रशासन का अन्तिम अभिकरण लेखा-परीक्षण है। ससद विशिष्ट कार्य के लिए धन की स्वीकृति देती है। अत वह इस विषय में आश्वस्त होना चाहती है कि विभागों द्वारा धन उसी विशिष्ट कार्य के लिए व्यय किया जा रहा है या नहीं जिसके लिये कि उसने उसकी अनुमति दी थी। इस कार्य की व्यवस्था के लिए एक उच्च स्थायी अधिकारी का व्यवधान (Interposition) किया जाता है जिसके पद का पूर्ण नाम "महामहिम के राजकोष की प्राप्ति और निर्गम का महानियन्त्रक तथा लोक लेखों का महालेखा-परीक्षक" (Comptroller General of the receipt and issue of His Majesty's Exchequer And Auditor-General of Public Accounts) है। इस अधिकारी की आज्ञा के बिना सचित निधि अथवा कोषागार से धन नहीं निकाला जा सकता, यह अधिकारी जब इस बात से पूर्णत सन्तुष्ट हो जाता है कि यह माँग उस सेवा के लिए ही है जिसके लिए कि ससद द्वारा स्वीकृति दी जा चुकी है, तब राजकोष से अभियाचन (Requisition) प्राप्त होने पर, उनको कोषागार खाते तथा बैंक ऑफ इगलैंड से अथवा बैंक ऑफ आयरलैंड से उधार दे देता है। धन के व्यय होने के पश्चात्, वह नियन्त्रक तथा महालेखा-परीक्षक के कार्यों का दूसरा भाग, अर्थात् लेखा-परीक्षक के रूप में अपने कार्य, सम्पन्न करता है। कोषागार तथा लेखा परीक्षण विभाग अधिनियम, १८६६, (The Exchequer and Audit Departments Act, 1866) में यह व्यवस्था है कि सरकारी धन से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति उक्त धन के उपयोग के लेखे नियन्त्रक व महालेखा-

1 Public Administration (Journal of the Royal Institute of Public Administration, London), Spring 1963, Volume 41, devotes its study to the Plowden Committee Report There are four lectures on Plowden Committee Report (1) The Plowden Report—Introduction Lord Plowden pp 1-2, (2) The Plowden Report I Nature and Significance D N Chester, pp 3 15 (3) The Formulation of Economic Policy II R W B Clarke pp 17-24, (4) The Management Functions of the Treasury III W W Morton pp 25 35 (5) Management Services in Industry IV J E Wall pp 37 50.

परीक्षक के समक्ष उपस्थित करेगा। लेखों (Accounts) की जाँच पड़ताल करने के पश्चात्, वह व्यय की अनियमितताओं के सम्बन्ध में संसद को अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करता है। फिर, लोक सभा अपनी सार्वजनिक लेखा समिति से इन विवरणों तथा प्रतिवेदनों की जाच तथा सूक्ष्म निरीक्षण कराती है। यह समिति अपने निर्णय सदन (House) के सामने रखती है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन का चक्र पूरा हो जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion):

ब्रिटेन के वित्तीय प्रशासन में राजकोष (Treasury), मन्त्रि परिषद (Cabinet) तथा संसद (Parliament) महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। "वित्तीय प्रशासन में इन तीनों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, सर्वप्रथम तो यह देखने के लिए कि योजना जिस रूप में संसद के समक्ष प्रस्तुत की गई है वह सन्तोषजनक है या नहीं,...... दूसरे, इसलिए कि योजना जिस रूप में लोक सभा से बाहर आती है क्या वह रूप वास्तव में सदन की इच्छाओं को व्यक्त करता है, और तीसरे, इसलिए कि योजना संसद के निर्णयों के अनुसार कार्यान्वित की जा रही है या नहीं।"[1]

परन्तु इस बात की काफी आलोचना की जाती है कि ब्रिटिश संसद देश के वित्तीय व्यवस्थाओं पर से अपना प्रभुत्व खोती जा रही है। बजट जिस रूप में मन्त्रि परिषद द्वारा संसद में प्रस्तुत किया जाता है, बिना किसी परिवर्तन के वैसा का वैसा ही संसद द्वारा अनुमोदित कर दिया जाता है। यदि संसद किसी भी माँग की धन-राशि में १०० पौंड भी कम करना चाहती है तो इसे 'विश्वास' (Confidence) का प्रश्न बना लिया जाता है और संसद में मन्त्रि-परिषद का बहुमत होने के कारण ऐसी कटौती करना सम्भव नहीं हो पाता। अत पूर्ति के दिनों (Supply days) का उपयोग विरोधी पक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध अपनी शिकायतों को व्यक्त करने में किया जाता है। संसद व्यय की किसी भी मद (Item) को न बढ़ा सकती है अथवा न घटा ही सकती है। कटौती प्रस्ताव (Cut motions) यदि रखे भी जाते है तो सदा ही वे मतों से पराजित कर दिये जाते है। Sir Erskine May का कहना है कि यहाँ उस प्रक्रिया (Process) का (जोकि काफी लम्बी अवधि से प्रचलित है) वर्णन करना अनावश्यक होगा जिसमें कि पूर्ति समिति में मत-विभाजन के विचार का साहित्यिक अर्थ के बजाए लाक्षणिक अर्थ (Symbolic meaning) ही रह गया है। अन्य शब्दों में, इस अवसर पर मांगों के वित्तीय पहलुओं पर विचार नहीं किया जाता बल्कि केवल सरकार की प्रशासकीय नीति की आलोचना की जाती है। इस प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी माग में १०० पौण्ड की कटौती को भी सरकार अपनी बड़ी पराजय मानती है और त्याग पत्र देने तक को तैयार हो जाती है। अत चूंकि सम्पूर्ण सदन अनुमानों की धनराशियों का निर्धारण करने में

1 Hicks *Public Finance*, 1948, p 52

एकमत नहीं हो पाता, अत सदन उनके वित्तीय पहलुओं पर विचार नहीं कर पाता और उन मन्त्रियों तथा अधिकारियों की नीति तथा क्रियाओं तक ही अपने को केन्द्रित रखना है जिनके वतना की व्यवस्था उन मांगों में निहित होती है।[1] इसी प्रकार एक अन्य लेखक ने कहा है कि जब बजट की मुख्य-मुख्य व्यवस्थायें पूर्व निर्धारित होती हैं तो बजट पर वाद विवाद का कोई वास्तविक अर्थ ही नहीं रह जाता, और चूंकि वाद-विवाद वित्तीय मामलों से हटकर विनियोजन की मांग करने वाले विभागों की नीति पर केन्द्रित हो जाता है, अत साधारण सदस्य सरकार की सामान्य वित्तीय नीति की स्पष्ट रूप से समझने के एक अवसर से वंचित हो जाता है।[2]

इन सभी प्रणालियों का परिणाम यह हुआ है कि वित्त पर संसद की सत्ता कम होती जा रही है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration in the United State of America)

ब्रिटेन की वित्तीय प्रणाली का अध्ययन करने के पश्चात्, संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित वित्तीय प्रणाली अध्ययन भी लाभदायक रहेगा। संयुक्त राज्य अमेरिका में सरकारी व्यय की पूर्ति के लिए साधनों की खोज का उत्तरदायित्व संविधान (Constitution), द्वारा कांग्रेस को सौंप दिया गया है। संविधान में कहा गया है कि, "कांग्रेस को करों, शुल्कों, महसूलों व उत्पादन करों के लगाने व उनका संग्रह करने, ऋणों को अदा करने, और संयुक्त राज्य की सामूहिक प्रतिरक्षा व सामान्य कल्याण की व्यवस्था करने की शक्ति प्राप्त होगी।'[3] इस प्रकार कांग्रेस (Congress) को कोई भी कर लगाने, उसमें कमी करने अथवा उसको समाप्त करने का अधिकार है और कांग्रेस ही सरकार के विभिन्न विभागों को व्यय की अनुमति देती है।

अनुमानों अथवा प्राक्कलनों की तैयारी
(Prepration of Estimates)

सन् १९२१ के बजट तथा लेखांकन अधिनियम (Budget and Accounting Act) के अन्तर्गत, राष्ट्रपति (President) का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नियमित सत्र (Session) के प्रारम्भ में निम्नलिखित सामग्री कांग्रेस को प्रेषित करे—

(१) आगामी वित्तीय वर्ष के लिये सरकार की सहायता के हेतु आवश्यक खर्चों तथा विनियोजनों (Appropriations) के अनुमान (Estimates)।

(२) प्रचलित राजस्व विधियों (Revenue laws) तथा ऐसे राजस्व प्रस्तावों के अन्तर्गत, जिन्हें कि वह प्रस्तावित करे, आगामी वित्तीय वर्ष के हेतु सरकार के लिये प्राप्तियों (Receipts) के अनुमान।

---

1 Sir Erskine May, *op cit* 15th Edition, 1950, pp 292—3

2 Major *Foreign Powers, Carter, Ranney and Herz*, 1952 p 98

3 Constitution of the United States Art I, Sec 8

(३) चालू वित्तीय वर्ष की अवधि के लिए सरकार की प्राप्तियों तथा खर्चों के अनुमान।

(४) विगत वित्तीय वर्ष की अवधि की सरकार की प्राप्तियों तथा खर्चों की एक सूची।

(५) ऐसे विवरण-पत्र (Statements), इनमे विगत वित्तीय वर्ष के अन्त की राजकोष की दशा तथा चालू वर्ष और आगामी वर्ष के लिए उस दशा से सम्बन्धित अनुमान दिखाये गये हों।

(६) संयुक्त राज्य अमेरिका की ऋणग्रस्तता (Indebtedness) से सम्बन्धित तथ्य (Facts)।

(७) ऐसे अन्य वित्तीय विवरण-पत्र, जिसके विषय मे कि वह यह आवश्यक समझे कि उनसे सरकार की वित्तीय स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा।

बजट-विभाग या ब्यूरो
(Bureau of the Budget)

राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य है कि वह सरकार की आय तथा व्यय का एक पूर्ण अनुमान तैयार करे और उसे अनुमोदन के लिये कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करे। इन अनुमानों को तैयार करने मे बजट विभाग अथवा बजट-ब्यूरो (Bureau of the Budget) राष्ट्रपति की सहायता करता है। इस ब्यूरो का निर्माण सन् १९२१ के 'बजट व लेखाङ्कन अधिनियम' द्वारा किया गया था। प्रारम्भ मे इस ब्यूरो की स्थापना राजकोष विभाग (Treasury Department) मे की गई थी परन्तु वास्तव मे यह केवल राष्ट्रपति के प्रति ही उत्तरदायी था। सन् १९३९ की पुनर्गठन योजना के अन्तर्गत, यह ब्यूरो राष्ट्रपति के निष्पादक कार्यालय में स्थानान्तरित कर दिया गया। ब्यूरो के मुख्य अधिकारी ये हैं निर्देशक (Director), छ सहायक निर्देशक और सामान्य परिषद् (General Council)। ८ सितम्बर सन् १९३९ के निष्पादक आदेश (Executive order) ८२४८ के अन्तर्गत, ब्यूरो के कार्य निम्न प्रकार हैं :—

(१) सरकार के राजकोषीय (Fiscal) व वित्तीय कार्यक्रम में राष्ट्रपति की सहायता करना।

(२) बजट के प्रशासन का पर्यवेक्षण व नियन्त्रण करना।

(३) प्रशासकीय प्रबन्ध की योजनाओं के विकास के सम्बन्ध में अनुसंधान (Research) करना और विकसित प्रशासकीय संगठन एवं कार्य-प्रणाली के विषय मे सरकार के निष्पादक विभागों व अभिकरणों को परामर्श देना।

(४) सरकारी सेवा का संचालन अधिक कुशलता तथा मितव्ययता के साथ करने मे राष्ट्रपति की सहायता करना।

(५) प्रस्तावित विधान पर विभागीय परामर्श को स्पष्ट करके तथा उसमें समन्वय करके राष्ट्रपति की सहायता करना।

(६) प्रस्तावित निष्पादक आदेशों तथा घोषणाओं पर विचार तथा स्पष्टीकरण में, और जहाँ आवश्यक हो, उनकी तैयारी में सहायता करना।

(७) सांख्यिकीय सेवाओं (Statistical services)...के सुधार, विकास तथा समन्वय की योजना बनाना और उनकी उन्नति करना।

(८) प्रस्तावित कार्य, वास्तव में प्रारम्भ किये गये कार्य तथा पूर्ण किये गये कार्य (उस सापेक्षिक समय सहित जोकि सरकार के विभिन्न अभिकरणों ने कार्य को पूरा करने में लगाया) के सम्बन्ध में सरकार के अभिकरणों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की प्रगति से राष्ट्रपति को सूचित रखना, यह सब इसलिए कि विभिन्न अभिकरणों की कार्य की योजनाओं के बीच समन्वय स्थापित किया जा सके और इसलिए कि काग्रेस द्वारा विनियोजित धन को अधिकतम सम्भव मितव्ययी तरीके से खर्च किया जा सके, जिसमें कि प्रयत्नों का अतिव्यापन (Overlapping) तथा दोहराव (*Duplication*) कम से कम हो। इस प्रकार ब्यूरो केवल बजट के निर्माण में राष्ट्रपति की सहायता करने वाला अभिकरण ही नहीं है, बल्कि इसे इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि सरकार के व्यय को न्यूनतम रखा जा सके।

बजट अनुमानों की तैयारी
(Preparation of Budget Estimates)

संयुक्त राज्य अमेरिका में बजट के निर्माण का कार्य इसके लागू होने से लगभग एक वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो जाता है। संयुक्त राज्य में वित्तीय वर्ष १ जुलाई से प्रारम्भ होता है और ३० जून को समाप्त होता है, अतः ग्रीष्मकाल में बजट विभाग अपना बजट-ब्यूरो विभिन्न व्ययकारक अभिकरणों से यह प्रार्थना करता है कि वे वर्ष भर के लिये आवश्यक विनियोजकों (Appropriation) के अपने अपने अनुमान प्रस्तुत करें। ब्यूरो को लगभग सितम्बर के मध्य में ये विभागीय अनुमान प्राप्त हो जाते हैं। अनुमान प्रपत्रों (Estimate forms) में, जोकि विभागों को भरने होते हैं तीन प्रकार की सूचनाएं माँगी जाती हैं —(१) कार्मिक सेवाओं के व्यय, (२) पूर्तियों अथवा सामग्रियों (Supply) में व्यय, और (३) पूंजीगत व्यय (Capital expenditures)। पहली सूचना में ऊपर से नीचे तक नियुक्त कर्मचारियों के वेतन व *मजदूरियां सम्मिलित होती हैं। दूसरी में, कार्यालय की वह सामग्री तथा अन्य* साज सज्जा सम्मिलित होती है जोकि विभाग के संचालन के लिये खरीदी जाती है। तीसरी सूचना में भवनों (Buildings), भूमि की खरीद तथा स्थायी साज-सज्जा (Equipment) के व्यय सम्मिलित होते हैं।

विभिन्न विभागों द्वारा इस प्रकार एकत्रित किये गये अनुमानों की सूचनाओं का, ब्यूरो के *बजट परीक्षकों द्वारा, आलोचनात्मक अध्ययन* तथा सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। ब्यूरो द्वारा अनुमानों के अध्ययन का यह कार्य कई माह *तक* चलता रहता है। विभागीय अध्यक्षों, निर्देशक (Director) तथा राष्ट्रपति के बीच अध्ययन, सुनवाई तथा विचार विमर्श के कार्य में कई माह लग जाते हैं। विभागों,

ब्यूरो तथा राष्ट्रपति द्वारा अनुमानों का पूर्ण पर्यालोचन (Discussion) होने के पश्चात्, राष्ट्रपति दिसम्बर के अन्त में अथवा जनवरी के प्रथम सप्ताह में उन्हें कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार निम्नलिखित चरणों में बजट का निर्माण किया जाता है। सर्वप्रथम, राष्ट्रपति अपनी वित्तीय नीति का निर्धारण करता है। दूसरे चरण में, बजट-ब्यूरो आय तथा व्यय के अनुमान तैयार करता है। तीसरे चरण में, विभिन्न व्ययकारक विभाग अपने-अपने प्रारम्भिक अनुमान प्रस्तुत करते हैं। चौथे चरण में, इन प्रारम्भिक अनुमानों पर बजट-ब्यूरो द्वारा विचार किया जाता है। पांचवें में, व्ययकारक सेवाएं अपने संशोधित अनुमान प्रस्तुत करती हैं। छटवें में, इन संशोधित अनुमानों पर बजट-ब्यूरो द्वारा पुनः विचार किया जाता है, और अन्तिम चरण में, बजट-प्रलेख तैयार किया जाता है और कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

कांग्रेस में बजट
(Budget in the Congress)

जब प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) को राष्ट्रपति से बजट प्राप्त हो जाता है तो यह विनियोजन समिति (Committee on Appropriations) के सुपुर्द कर दिया जाता है, जोकि सरकार की अनेक क्रियाओं के विनियोजनों पर विचार करने के लिये स्वयं को उप-समितियों (Sub-committees) में बांट लेती है। समितियां गवाही के लिए सम्बन्धित विभागों के अधिकारियों को बुला सकती हैं। समितियां अनुमानों में कोई भी परिवर्तन कर सकती हैं। विभिन्न उप-समितियां विनियोजन विधेयकों (Appropriation Bills) के रूप में सभा के समक्ष अपने-अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। प्रतिनिधि सभा इन विधेयकों पर वाद-विवाद करती है और अनुमानों में कोई भी परिवर्तन कर सकती है। जब प्रतिनिधि सभा इन अनुमानों (Estimates) को अनुमोदित कर देती है, तब वे सीनेट (Senate) को भेज दिये जाते हैं। सीनेट तथा इसकी विनियोजन समितियां इन अनुमानों में कोई भी परिवर्तन कर सकती हैं। बहुधा ऐसा होता है कि दोनों सदनों (Houses) द्वारा पास किये गये विवरणों के बीच समझौता कराने के लिये एक 'सम्मेलन समिति' (Conference Committee) की आवश्यकता होती है। दोनों सदनों में पास होने के पश्चात् विनियोजन विधेयक राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है जोकि, कभी-कभी को छोड़कर, उस पर हस्ताक्षर कर देता है।

"Pork Barrel" and "Logrolling"

संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस जब वित्तीय मामलों पर विचार करती है तो उसे बड़े बाहरी दबावों के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है जोकि "Pork Barrel" तथा "Logrolling" के नाम से प्रसिद्ध हैं। वस्तु-स्थिति यह थी कि संघीय राजकोष के धन को "सुअर के मांस का बड़ा पीपा" (Barrel of pork) समझा जाता था और कांग्रेस का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने चुनाव-क्षेत्र के लिए उसका

अधिक से अधिक भाग प्राप्त करने का प्रयत्न करता था, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि दासता के दिनों में प्रत्येक परिवार का मुखिया उस समय सुअर के मांस का अपना हिस्सा प्राप्त करने का प्रयत्न करता था जबकि मालिक के घर मांस का वर्तन खोला जाता था। कांग्रेस के सदस्य, स्थानीय दबावों के कारण, स्थानीय कार्यों के लिये अधिकतम धन प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। चूंकि कांग्रेस का प्रत्येक सदस्य अपने जिले के लिए अधिकतम धन प्राप्त करना चाहता था अतः वे परस्पर सहयोग करते थे और एक दूसरे का समर्थन करते थे। इस पारस्परिक समर्थन को "लट्ठा लुढ़काना" (Log rolling) कहा जाता था। Prok-barrel तथा Log-rolling के द्वारा सर्वोत्तम रीति से तैयार किये गये अनुमान भी लूट का सा माल बन जाते थे।[1]

राजस्व के उपाय
(Revenue Measures)

खर्च के लिये धन की अनुमति देने के पश्चात् कांग्रेस राजस्व के उपायों के सम्बन्ध में विधि (Law) का निर्माण करती है। कांग्रेस वर्ष भर के लिये ही राजस्व के उपायों से सम्बन्धित विधि का निर्माण नहीं करती, बल्कि लगभग प्रत्येक अधिवेशन में यह राजस्व विधियों में संशोधन भी करती है। प्रतिनिधि सभा में 'उपाय व साधन समिति' (Ways and Means Committee) और सीनेट में वित्त समिति (Finance Committee) पर सभी राजस्व विधेयकों (Revenue Bills) को तैयार करने का कार्यभार होता है। सदन समिति (House Committee) सभी क्षेत्रों से, जैसे कि राजकोष के सचिव राष्ट्रपति, अध्यक्ष (Speaker) और प्रेस से, राजस्व के मामलों के सम्बन्ध में परामर्श तथा सुझाव प्राप्त करती है 'उपाय व साधन समिति' बैठकों का आयोजन करती है, वाद विवाद करती है और राष्ट्रपति, अथवा अध्यक्ष अथवा सीनेट की वित्तसमिति से सुझाव प्राप्त करती है और तत्पश्चात् सदन के समक्ष विधेयक प्रस्तुत करती है। सदन में विधेयक पर वाद विवाद किया जाता है, उसमें संशोधन किया जाता है और तब उसे स्वीकृत किया जाता है। तत्पश्चात विधेयक सीनेट को सौंप दिया जाता है, जहाँ पहले यह सीनेट की वित्त समिति में जाता है और फिर सीनेट में। दोनों सदनों में यदि कोई मतभेद होता है तो उसे 'सम्मेलन (Conference) द्वारा दूर कर लिया जाता है। दोनों सदनों में स्वीकृत होने के पश्चात्, राजस्व विधेयक राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है जोकि बिना किसी हेर फेर के उस पर हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार व्यय की अनुमति देकर और

1 'If the odour of pork does not fill the halls of Congress to the extent it did forty years ago it must nevertheless be sadly recorded that pork still holds a place as a congressional diet Even most of the economy minded Congressmen either partake there of or allow their colleagues to indulge '

—Jhonson, *op cit*, p 485

राजस्व की व्यवस्था करके, कांग्रेस आय तथा व्यय के अनुमानों के वार्षिक बजट को पास करने का अपना पहला कार्य पूर्ण कर लेती है।

बजट का प्रबन्ध
(Administering the Budget)

कांग्रेस द्वारा बजट पास कर देने के पश्चात् देखना यह होता है कि व्ययकारक अभिकरणों (Spending agencies) के हिस्से में जो धन आया है उसे वे कांग्रेस द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार ही व्यय करें। अतः बजट के प्रबन्ध तथा कार्यान्वय के लिए, सन् १९२१ के 'बजट तथा लेखाकन अधिनियम' (Budget and Accounting Act) के द्वारा एक स्वतन्त्र संस्थान (Establishment) की स्थापना की गई जोकि 'सामान्य लेखाकन कार्यालय' (General Accounting Office) के नाम से प्रसिद्ध है। महानियन्त्रक (Comptroller General) इस कार्यालय का अध्यक्ष होता है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति तथा सीनेट द्वारा पन्द्रह वर्ष के लिए की जाती है। यह कार्यालय कार्यपालिका के नियन्त्रण से बहुत कुछ मुक्त रहता है। सामान्य लेखाकन कार्यालय तथा बजट-ब्यूरो बजट का प्रबन्ध व प्रशासन करते हैं। कार्यपालिका द्वारा बजट-ब्यूरो को बजट के पर्यवेक्षण (Supervision), नियन्त्रण तथा कार्यान्वय का कार्य सौंपा जाता है। बजट के निर्देशक (Director) के माध्यम से, राष्ट्रपति सरकार के व्ययकारक अभिकरणों से यह माग करता है कि व्यय करने से पहले वे धनराशियों के मासिक विवरण पत्र (Monthly statements) प्रस्तुत करें, निर्देशक की स्वीकृति के पश्चात् ऐसी मासिक धनराशियों से अधिक व्यय नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, कांग्रेस द्वारा विनियोजन (Appropriation) का अर्थ व्यय का आदेश (Order) नहीं है, बल्कि कार्यपालिका के अनुमोदन (Approval) की स्थिति में, वह तो केवल व्यय करने की अनुमति (Permission) मात्र है। ब्यूरो का निर्देशक सरकार के अत्यधिक तथा निरर्थक खर्चों को रोकने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

महानियन्त्रक विभागों तथा संस्थानों के लिए हिसाब-किताब रखने की एक पद्धति निर्धारित करता है और संयुक्त राज्य के द्वारा अथवा उसके विरुद्ध किये जाने वाले दावों (Claims) का निबटारा करता है। परन्तु उसके मुख्य कार्य लेखाकन (Accounting) तथा लेखा-परीक्षण (Auditing) के ही हैं। अपनी लेखाकन सत्ता (Accounting authority) के द्वारा यह प्रस्तावित खर्चों तथा धन की उपलब्धता के बारे में निर्णय करता है। अपनी लेखा-निरीक्षण सत्ता (Auditing authority) के द्वारा यह सौदों (Transactions) के हो चुकने के पश्चात् हिसाब-किताब की जाँच व परीक्षण करता है जिससे कि व्यय में पाई जाने वाली किसी भी अवैधानिकता अथवा अनियमितता का पता लगाया जा सके। इस प्रकार प्रत्येक पग पर जाच व परीक्षण की व्यवस्था की जाती है जिससे कि धन के दुरुपयोग अथवा अपव्यय को रोका जा सके।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे वित्त पर काग्रेस की सत्ता वास्तविक है और प्रभावशाली है। काग्रेस किसी भी कर मे कटौती कर सकती है और किसी भी विशिष्ट खर्च मे वृद्धि कर सकती है। काग्रेस व्यय की किसी भी मद को बढ़ा अथवा घटा सकती है। काग्रेस मे स्वीकृत होने के पश्चात् बजट जिस रूप मे बाहर आता है उसके विषय मे कार्यपालिका सदा ही निश्चित नही होती। सयुक्त राज्य अमेरिका मे काग्रेस को बजट सम्बन्धी प्रस्तावो म सशोधन करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है, एक ऐसी शक्ति जोकि ब्रिटेन मे ससद को प्राप्त नही है।

ब्रिटिश तथा अमरीकी पद्धतियों की तुलना
(British and American Systems Compared)

समानतायें
(Similarities)

(१) दोनो ही देशो म अनुमान (Estimates) कार्यपालिका (Executive) द्वारा तैयार किये जाते हैं।

(२) दानो देशो म, बजट मे वर्ष भर के व्यय के अनुमान दिये जाते हैं और उस व्यय के लिए जितनी आय की आवश्यकता होती है उसके पूर्वानुमानित आकडे दिए जाते हैं।

(३) सयुक्त राज्य की काग्रेस की विनियोजन समिति की बैठकें ब्रिटेन की पूर्ति समिति के वाद-विवाद के सदृश होती हैं।

(४) दोनो देशो मे, विस्तृत राजस्व अनुमानो पर 'उपाय व साधन समिति' मे वाद विवाद किया जाता है।

विभिन्नतायें
(Differences)

(१) आय तथा व्यय के अनुमानो की स्वीकृति की कार्य-पद्धति ब्रिटेन के मुकाबले सयुक्त राज्य अमेरिका म कम एकीकृत तथा कम केन्द्रित है। केवल एक विनियोजन विधेयक तथा एक वित्त विधेयक की बजाय, सयुक्त राज्य अमेरिका की काग्रेस मे व्यय तथा कराधान (Taxation) का निर्धारण क्रमश पृथक् पृथक उपायो की एक शृ खला के रूप मे किया जाता है। पृथक्-पृथक् विनियोजन विधेयको के कारण, वर्ष भर के कार्यक्रम पर सम्पूर्णरूप म विचार करने का कार्य काग्रेस के लिए कम आसान बन जाता है।

(२) काग्रेस मे प्रत्येक सदस्य को इस बात की छूट होती है कि वह व्यय मे वृद्धि तथा करो म कमी करने का प्रस्ताव कर सके। ब्रिटेन की ससद म यह सम्भव नही है। इसी कारण यह आलोचना की जाती है कि ब्रिटिश ससद की वित्तीय शक्तिया कम कर दी गई हैं। सन १९१७ म ब्रिटेन मे राष्ट्रीय व्यय पर एक प्रवर समिति (Select committee) की नियुक्ति की गई थी जिसका कार्य वित्त पर

संसदीय नियन्त्रण के सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार करना था । इस समिति द्वारा सन् १६१८ मे प्रस्तुत किये गए प्रतिवेदन मे यह कहा गया कि निस्सन्देह स्थिति यह थी कि वह पद्धति पूर्णतया असन्तोषजनक थी जिसके अन्तर्गत कि मन्त्रालय के बजट प्रस्तावो मे परिवर्तन न किये जा सकने की व्यवस्था मन्त्रालय को अस्वीकार्य थी । प्रतिवेदन मे समिति ने कहा कि —[1]

"कुछ अपवादो को छोडकर, (जाँच के प्रश्नो के) उत्तरो से यही एक राय प्रकट होती है कि व्यय पर संसदीय नियन्त्रण की वर्तमान पद्धति अपर्याप्त है । उस दृष्टि से हम सहमत है वर्तमान कार्यविधि (Procedure) से सदन (House) सन्तुष्ट नही है ।"

"इसमे कोई सन्देह नही कि संसद के समक्ष अनुमानो का प्रस्तुतीकरण बडा लाभप्रद है । इससे अनुमानो की धनराशियो का प्रचार हो जाता है तथा उनके व्यय के लिए उत्तरदायित्व का निर्धारण हो जाता है । मन्त्रियो तथा विभागो पर भी इसका परोक्ष प्रभाव पडता है क्योकि यह सम्भावना सदा बनी रहती है कि अनुमानो की किसी भी मद को चुनौती दी जा सकती है । नीति तथा प्रशासन के पर्यालोचन के लिये पूर्ति समिति मे किये जाने वाले वाद-विवाद अत्यावश्यक होते है । परन्तु जहाँ तक व्यय के प्रस्तावो के प्रत्यक्ष सक्रिय नियन्त्रण का सम्बन्ध है, यह कहना ठीक ही होगा कि यदि अनुमान संसद मे प्रस्तुत न किये गये होते और पूर्ति समिति की स्थापना ही न हुई होती, तब भी कोई विशेष अन्तर नही पडता । वस्तु-स्थिति यह है कि अधिकतर अनुमान प्रतिवर्ष प्रत्येक सत्र (Session) के अन्त मे विवादान्तक प्रस्ताव (Closure) के अन्तर्गत बिना जरा भी वाद-विवाद के औपचारिक रूप से (Formally) पास कर दिये जाते है । यद्यपि प्रत्येक अनुमान चाहे उस पर विवादान्तक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया हो अथवा नही, संसदीय प्रक्रिया (Parliamentary process) मे से ठीक वैसा का वैसा ही निकल जाता है जैसा कि वह आया था, तथापि यह नही कहा जा सकता कि किसी भी वर्ष मे अथवा किसी भी मद के अन्तर्गत ऐसा अवसर कभी आता ही नही कि जिसमे व्यय के प्रस्तावो पर लाभप्रद रीति से पुनर्विचार अथवा संशोधन किया जाता हो ।"

"अनुमानो के प्रस्तुत किये जाने से पूर्व राजकोष द्वारा सामान्यत उनका सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है । परन्तु राजकोष (Treasury) स्वयं कार्यपालिका (Executive) का ही एक अंग होता है । जब कोई भी विभागीय मन्त्री ऐसे किसी भी प्रस्ताव के बारे मे, जिसे कि वह प्रस्तुत करना चाहता है अथवा अपने अनुमानो मे रखना चाहता है, अर्थ महामात्य (Chancellor of the Exchequer) की व्यक्तिगत सहमति प्राप्त कर लेता है, तो अनिवार्यत ही राजकोष उस प्रस्ताव के बारे मे मौन धारण कर लेता है । राजकोष का नियन्त्रण, एक निश्चित सीमा तक बहुमूल्य अवश्य है, परन्तु यह संसदीय नियन्त्रण का स्थानापन्न (Substitute) नही है ।"

1 Reports from the Select Committee on National Expenditure, p 115.

जहां तक अमेरिकन पद्धति का सम्बन्ध है, यह आरोप लगाया जाता है कि काग्रेस को अत्यधिक शक्ति देने से कार्यपालिका शक्तिहीन हो गई है। इस बात का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कार्यपालिका को ही हो सकता है कि व्यय के लिए कितने धन की आवश्यकता है। व्यवस्थापिका को धन की स्वीकृति देनी चाहिए और तब कार्यपालिका को उसके लिए उत्तरदायी बना देना चाहिए। परन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका मे अध्यक्षात्मक पद्धति की सरकार (Presidential system of government) के कारण ऐसा होना सम्भव नहीं है। इस प्रकार विभिन्न देशो की वित्तीय प्रणालियाँ उनमें प्रचलित राजनैतिक पद्धतियो पर निर्भर होती हैं। ब्रिटेन की राजनैतिक पद्धति म मन्त्रि-परिषद् (Cabinet) नीति-निर्धारक अभिकरण है और व्यवस्थापिका (Legislature) उस नीति को कार्यान्वित करने के उपायो की व्यवस्था करती है तथा कार्यपालिका को किसी भी त्रुटि अथवा भूल के लिए, यदि कोई हो तो, उत्तरदायी बनाती है। सयुक्त राज्य अमेरिका म 'निर्धारक' कार्य काग्रेस मे निहित है अत उनकी वित्तीय व्यवस्थाओं के सम्बन्ध मे भी काग्रेस ही पूर्ण सत्ता का प्रयोग करती है।

२६

भारतीय बजट अथवा आय-व्ययक
(Indian Budget)

भारतीय बजट की तैयारी
(Preparation of the Indian Budget)

बजट अनुमानो की तैयारी किसी भी देश के वित्तीय प्रशासन का प्रथम पग है। बजट अनुमानो की तैयारी का उत्तरदायित्व कार्यपालिका (Executive) के कधो पर होता है। कार्यपालिका को विभिन्न विभागो की आवश्यकताओ का ज्ञान होता है अत वही इस स्थिति मे होती है कि आय तथा व्यय के अनुमानो को सर्वश्रेष्ठ रीति से तैयार कर सके। भारत मे वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry), प्रशासकीय मन्त्रालय और अधीनस्थ कार्यालय, योजना आयोग (Planning Commission) तथा नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General), सभी बजट की तैयारी मे लगे रहते हैं।

भारतीय वित्तीय वर्ष (Indian Financial Year) १ अप्रैल से प्रारम्भ होता है, अत उससे पहले वर्ष के जुलाई अथवा अगस्त मास से ही अनुमानो (Estimates) की तैयारी का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। बजट की तैयारी का कार्य स्थानीय कार्यालयो से प्रारम्भ होता है। जुलाई अथवा अगस्त मे वित्त मन्त्रालय प्रशासकीय मन्त्रालयो तथा विभागाध्यक्षो को उनके व्यय की आवश्यकताओ के अनुमान तैयार करने के लिए प्रपत्र (फार्म) भेजता है। विभागो द्वारा ये निर्धारित प्रपत्र स्थानीय कार्यालयो को भेज दिये जाते हैं जोकि उन पर अनुमान तैयार करते हैं। प्रत्येक प्रपत्र (फार्म) मे निम्नलिखित खाने होते है—

(१) गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय, (२) वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान, (३) वर्तमान वर्ष के सशोधित अनुमान, और आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान। *अनुमानो मे प्रस्तावित वृद्धि अथवा कमी के विस्तार के लिए भी प्रपत्र* (फार्म) मे एक खाना (Column) होता है।

अनुमान प्रपत्र की प्रतिलिपि अग्राकित सारिणी के अनुसार है—

Budget Estimate for the year 19—

Minor head & sub heads of *appropriation*	Actuals for the last year	Budget estimates as sanctioned for the current year	Revised estimates for the current year		Revised estimates for the next year		*Expansion* of increase or decrease
			Disbursing officer	Head of the Deptt	Disbursing officer	Head of the Deptt	

स्थानीय कार्यालय के प्रपत्र प्रशासकीय मन्त्रालयों के सम्बन्धित विभागों को भेजते हैं। विभागाध्यक्षों द्वारा इन अनुमानों का सूक्ष्म निरीक्षण तथा पुनर्विलोकन किये जाने के पश्चात् प्रशासकीय मन्त्रालय (Administrative Ministers) अपने अपने विभागों के सभी अनुमानों को एकीकृत करते हैं और नवम्बर के मध्य के लगभग वित्त मन्त्रालय को प्रेषित कर देते हैं। हर एक विभाग के अनुमानों की एक

प्रतिलिपि भारत के महालेखापाल (Accountant General) को प्रेषित कर दी जाती है। वह विभिन्न मदों (Items) की जाच करता है और यह देखता है कि अनुमानो मे सभी स्वीकृत प्रभार (Charges) ही वर्तमान हैं और अस्वीकृत प्रभार उनमें सम्मिलित नहीं किये गए हैं। वह इन प्रशासकीय मन्त्रालयों के अनुमानों के बारे में अपनी टिप्पणियां वित्त-मन्त्रालय के समक्ष प्रस्तुत करता है।

वित्त-मन्त्रालय द्वारा अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण
(Scruting of Estimates by the Finance Ministry) :

प्रशासकीय मन्त्रालयो द्वारा तैयार किये गए बजट अनुमानो की जब महालेखापाल द्वारा जाच कर ली जाती है, तत्पश्चात् वित्त-मन्त्रालय द्वारा उनका सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा तैयार किये गए बजट अनुमानो को मोटे रूप में तीन भाग मे बाटा जाता है —

(१) स्थायी प्रभार (Standing Charges), (२) प्रचलित योजनायें (Continuing schemes), और (३) नवीन योजनायें (New Schemes)।

(१) स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय—स्थायी व्यय मे स्थायी सस्थानो (Permanent establishments) के वेतन भत्ते (Allowances) और व्यय तथा कार्यालय के प्रासगिक व्यय (Office contingencies) सम्मिलित हैं। इस प्रकार के व्यय से सम्बन्धित विभागीय अनुमान प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा सूक्ष्म परीक्षण के लिए, सीधे वित्त मन्त्रालय के आर्थिक मामलो के विभाग (Department of Economic Affairs) के बजट सभाग (Budget Division) को भेजे जाते हैं।

(२) प्रचलित योजनायें अथवा कार्यक्रम— प्रशासकीय मन्त्रालयो द्वारा तैयार की गई प्रचलित योजनाओ के अनुमानो का सूक्ष्म परीक्षण व्यय विभाग (Department of Expenditure) मे किया जाता है। यह सूक्ष्म परीक्षण पहले से ही किये गये कार्य की प्रगति, उस बारे में की गई वचन-बद्धताओं (Commitments) तथा अन्तिम वर्ष के लिए कार्य के सम्पादन की योजनाओ एव प्रवृत्तियों (Trends) के सम्बन्ध मे किया जाता है। यह सूक्ष्म परीक्षण गत वर्ष के कार्य सम्पादन के सम्बन्ध मे तथा सतत प्रकृति (Continuous type) का होता है।

(३) नवीन योजनायें अथवा कार्यक्रम—वित्त-मन्त्रालय द्वारा अनुमानो का वास्तविक सूक्ष्म परीक्षण नये कार्यक्रमो के प्रस्तावित खर्चों के सम्बन्ध मे होता है। बजट मे आवश्यक व्यवस्था करने से पहले, व्यय की गई मदो की जाच विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयो से सम्बन्धित वित्तीय सलाहकारो द्वारा की जाती है। पूंजीगत व्यय (Capital expenditure) के अनुमानो की जाच भी वित्तीय सलाहकारो द्वारा की जाती है और फिर इन अनुमानो पर योजना आयोग (Planning Commission) के परामर्श से आर्थिक मामलो के विभाग द्वारा विचार किया जाता यह है। विचार साधनो (Resources) की उपलब्धता के आधार पर तथा बजट मे सम्मिलित करने के लिए प्रतियोगी मागो की प्रत्येक मद की प्राथमिकता (Priority) के सम्बन्ध

मे किया जाता है। वित्त-मन्त्रालय द्वारा बजट मे व्यय की नई मदो की पूर्ण जाच की जाती है। नई योजनाओ पर व्यय के सम्बन्ध मे वित्त-मन्त्रालय द्वारा जिस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं वे ये हैं नये व्यय की आवश्यकता क्या है ? भूतकाल (Past) मे कार्य किस प्रकार चल रहा था ? आदि आदि। परन्तु इस पूर्व-बजट सूक्ष्म परीक्षण (Pre-budget scrutiny) के सम्बन्ध मे एक आलोचना यह की जाती है कि ऐसी नई योजनाओ के सम्बन्ध मे जिनमे कि भारी व्यय की आवश्यकता होती है, यह सूक्ष्म परीक्षण सदा ही पूर्ण नही होता है। इसका परिणाम यह होता है कि योजना की वास्तविक आवश्यकताओ के स्पष्ट ज्ञान के अभाव मे, बजट मे उसके लिए एक-मुश्त धनराशि की व्यवस्था कर दी जाती है। इस असन्तोषजनक सूक्ष्म परीक्षण का कारण यह है कि प्रशासकीय मन्त्रालय बहुधा ऐसी योजनायें बजट मे सम्मिलित करने के लिए ले आते हैं जोकि केवल सैद्धान्तिक अथवा विचार मात्र ही होती हैं और इसके अतिरिक्त अधिकाश योजनायें भी मन्त्रालय को ठीक बजट की तैयारी के समय प्राप्त होती हैं। ऐसी योजनाओ का बजट मे सम्मिलित करने पर बजटोत्तर (Post-budget) सूक्ष्म परीक्षण आवश्यक हो जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि व्यय की स्वीकृतियाँ प्रदान करने मे देरियाँ होती हैं। यह सम्पूर्ण स्थिति बड़ी असन्तोषजनक है। "यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशासकीय मन्त्रालय बजट मे सम्मिलित करने के लिए अपनी सम्बन्धित योजनाए वित्त-मन्त्रालय के सम्मुख केवल तभी रखें जबकि किसी विशिष्ट योजना से सम्बन्धित वह समस्त विवरण तैयार हो जाए जोकि उस योजना का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक तथा पर्याप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूरदर्शितापूर्ण योजनाओ के निर्माण का कार्य वर्ष भर चलता रहना चाहिए जिससे कि बजट की तैयारी के समय हो जाने वाली भीड़-भाड़ कम की जा सके।"[1] इसी प्रकार अन्य अनुमान समिति (Estimates Committee) के प्रतिवेदन मे कहा गया कि "समिति इस स्थिति को बड़ी असन्तोषजनक समझती है कि वित्त-मन्त्रालय बजट में सम्मिलित करने के लिए अपूर्ण तथा अविचार-पूर्ण योजनाओं को स्वीकार करने मे इस प्रकार जल्दबाजी करता है। स्पष्टत ही, इस कार्यविधि का परिणाम यह होता है कि ससद मे ऐसे अपूर्ण अनुमान उपस्थित कर दिये जाते है जो गलत सिद्ध हो सकते हैं और जिनके कारण योजनाओ के वित्तीय पहलुओ के नियन्त्रण मे शिथिलता हो सकती है। तथा योजनाओ के कार्यान्वय मे देरी हो सकती है। समिति का यह मत है कि वित्त-मन्त्रालय का यह कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि ऐसी कोई भी योजना बजट मे सम्मिलित न की जाए जिसका सूक्ष्म परीक्षण न हुआ हो। किन्तु यदि ऐसी योजनाए एक वर्ष मे पूर्ण तथा परिपक्व हो जाए और यदि उनका शीघ्र क्रियान्वय आवश्यक हो, तो उस स्थिति

1 Estimates Committee, 1957-58 Twentieth Report (*Second Lok Sabha*) Budgetary Reform, p 22

में अनुपूरक माँगें प्रस्तुत की जानी चाहिए।"[1] इस प्रकार नई योजनाओं तथा व्यय की नई मदों का सूक्ष्म परीक्षण (Scrutiny) विस्तृत तथा पूर्ण होना चाहिए। यदि किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण मामले के बारे में प्रशासकीय मंत्रालय तथा वित्त-मंत्रालय के बीच कोई मतभेद हो तो उस स्थिति में मामला मंत्रि परिषद् (Cabinet) को सौंप दिया जाता है और मंत्रि परिषद् में भी यदि कोई मतभेद हो तो वित्तीय मामलों के बारे में वित्त मंत्रालय की आवाज सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है।

अनुमानों का पुनर्वर्गीकरण
(Reclassification of Estimates)

मन्त्रालयों व विभागों आदि के द्वारा जो अनुमान तैयार किये जाते हैं वे स्थायी व्ययों, प्रचलित योजनाओं तथा नई योजनाओं के रूप में होते हैं। वित्त मंत्रालय द्वारा जब वे अन्तिम रूप से स्वीकृत कर दिए जाते हैं तो निम्न प्रकार उनका पुनर्वर्गीकरण कर दिया जाता है

अधिकारियों का वेतन	Pay of Officers
संस्थान का वेतन	Pay of Establishment
भत्ते तथा व्यावसायिक व्यय	Allowances and Honoraria
अन्य प्रभार	Other Charges

यह वर्गीकरण ब्रिटिश सरकार के लिए उपयुक्त था क्योंकि उस सरकार का मुख्य उद्देश्य कानून व व्यवस्था की स्थापना करना था अतः उस समय केवल न्यूनतम परिपालन सेवाओं (Maintenance services) की ही आवश्यकता होती थी। वर्तमान कल्याणकारी राज्य (Welfare state) में पुराना वर्गीकरण बिल्कुल व्यर्थ है। अतः अनुमान समिति ने यह सिफारिश की है कि अनुमानों का वर्गीकरण निम्न प्रकार होना चाहिए

स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय
(Standing Charges)

अधिकारियों व कर्मचारी वर्ग का वेतन।
अधिकारियों व कर्मचारी-वर्ग के भत्ते (Allowances)।
कार्यालय के प्रासंगिक व्यय (Contingencies)।
अन्य मदें (उन बड़ी मदों का उल्लेख किया जाए जिनमें प्रत्येक की लागत १० ००० रु० से अधिक हो)।

प्रचलित योजनायें
(Continuing Schemes)

योजना सं० १ (योजना का नाम) (Name of the scheme)।
अधिकारियों व कर्मचारी-वर्ग का वेतन।

---

1 Estimates Committee 1958 59 Fifty fifth Report (Second Lok Sabha) Ministry of Finance (Department of Expenditure) pp 6-7

अधिकारियो व कर्मचारी-वर्ग के भत्ते।
कार्यालय के प्रासगिक व्यय।
अन्य मदें (उन बडी मदो का उल्लेख किया जाय जिनमे प्रत्येक की लागत १०,००० रु० से अधिक हो)।
योजना स० २ (योजना का नाम)
योजना स० ३ (योजना का नाम)

नवीन योजनायें
(New Schemes) :

योजना स० १ (योजना का नाम)
अधिकारियो व कर्मचारी वर्ग का वेतन
अधिकारियो व कर्मचारी-वर्ग के भत्ते
कार्यालय के प्रासगिक व्यय
अन्य मदे (उन बडी मदो का उल्लेख किया जाय जिनमे प्रत्येक की लागत १०,००० रु० से अधिक हो)।
योजना स० २ (योजना का नाम)
योजना स० ३ (योजना का नाम)

अनुमानो के इस वर्गीकरण मे व्यय की सम्पूर्ण योजना बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

सरकारी आय के अनुमान
(Estimates of Revenue)

व्यय के अनुमान पूर्ण हो जाने के पश्चात्, सरकारी आय अथवा राजस्व (Revenue) के अनुमान तैयार किये जाते हैं। सरकारी आय का अनुमान लगाना भी वित्त-मन्त्रालय का कार्य है। आय-कर विभाग (Income Tax Department), केन्द्रीय उत्पादन-कर विभाग (Central Excise Department) तथा सीमा शुल्क (Customs) विभाग, जोकि सरकारी आय का सग्रह करने वाले महत्वपूर्ण विभाग हैं, विगत वर्ष मे सग्रह की गई सरकारी आय के आकडो के आधार पर आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सम्भावित सरकारी आय का अनुमान लगाते हैं। इसके पश्चात वित्त-मन्त्रालय व्यय की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए करो (Taxes) की दरो मे हेर-फेर करता है। इस स्थिति मे यह हो सकता है कि नये कर लगाये जायें, पुराने समाप्त कर दिये जायें या बढा दिये जाए अथवा घटा दिये जाए।

जब वित्त-मन्त्रालय द्वारा आय तथा व्यय के अनुमान तैयार कर लिए जाते हैं तो ससद मे प्रस्तुत करने के लिए दो विवरण-पत्र (Statements) तैयार किए जाते हैं। वे है 'वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र" (Annual Financial Statement) और "अनुदानो की मांगें" (Demands for Grants)। प्रथम विवरण-पत्र मे

सार्वजनिक लेखे (Public Accounts) तथा सचित निधि (Consolidated Fund), दोनो के ही अन्तर्गत सरकार की कुल प्राप्तियाँ (Gross receipts) तथा व्यय दिखाये जाते हैं। दूसरे विवरण-पत्र (अर्थात् अनुदानो की मागो) मे वे व्यय दिखाये जाते है जिनकी पूर्ति सचित निधि मे से की जाती है। पृथक् प्रशासकीय इकाई की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथक् मागें प्रस्तुत की जाती है।

व्यवस्थापिका के लिए बजट
(Budget for the Legislature)

इस प्रकार सरकारी धन के व्यय से सम्बन्धित विभागो तथा अभिकरणों (Agencies) के लम्बे प्रयत्नो के फलस्वरूप दो महत्वपूर्ण प्रलेखपत्र (Documents) तैयार किये जाते हैं, अर्थात् "वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र" तथा "अनुदानो के लिए मागें"। ये प्रलेखपत्र व्यवस्थापिका (Legislature) मे प्रस्तुत किये जाते हैं। सविधान (Constitution) के अनुच्छेद ११२ मे यह व्यवस्था है कि

"(१) प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे मे ससद के दोनो सदनो के समक्ष राष्ट्रपति भारत सरकार की उस वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियो और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे सविधान के इस भाग मे "वार्षिक वित्त-विवरण" के नाम से निर्दिष्ट किया गया है।

(२) वार्षिक वित्त-विवरण मे दिये हुए व्यय के अनुमानो मे—

(क) जो व्यय इस सविधान मे भारत की सचित निधि पर भारत व्यय के रूप मे वर्णित है उसकी पूर्ति के लिए अपेक्षित धनराशियाँ, तथा

(ख) भारत की सचित निधि से किये जाने वाले अन्य प्रस्तावित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशिया, पृथक्-पृथक् दिखाई जायेंगी तथा राजस्व लेखे पर होने वाले व्यय का अन्य व्यय से भेद किया जायेगा।

इस रीति के द्वारा *कार्यपालिका द्वारा बजट तैयार किया जाता है* और विचार तथा अनुमोदन के लिए विधान-मण्डल मे प्रस्तुत किया जाता है।

व्यवस्थापिका में भारतीय बजट
(Indian Budget in the Legislature)

बजट अनुमान कार्यपालिका (Executive) द्वारा तैयार किये जाते हैं और तत्पश्चात् स्वीकृति के लिए व्यवस्थापिका के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। व्यवस्थापिका कुछ सिद्धान्तों के आधार पर विनियोजन (Appropriations) का प्रबन्ध करती है अथवा धन की व्यवस्था करती है। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं —

(१) केवल कानून द्वारा पहले से प्राधिकार प्राप्त कार्यों की पूर्ति के लिए ही प्रशासकीय निकायों (Bodies) के लिए विनियोजन किये जाते हैं।

(२) "सरकारी आय की प्राप्ति के लिये विधेयकों" (Bills for raising revenue) का निर्माण निम्न सदन (Lower House) में किया जाता है।

(३) विनियोजन सामान्यतः एक सीमित अवधि के लिए, जैसे कि एक वर्ष अथवा ऐसी ही अवधि के लिए किये जाते हैं।

(४) प्रशासकीय अभिकरणों से यह आशा की जाती है कि वे अपना कार्य पूर्णतया विनियोजन विधि (Appropriation law) के अनुसार ही सम्पन्न करेंगे। इसका अर्थ यह है कि धन केवल विनियोजित कार्यों की पूर्ति के लिए ही व्यय किया जावेगा।

(५) विनियोजन प्रक्रिया (Process) व्यवस्थापिका को निरन्तर एक ऐसा अवसर प्रदान करती है कि जिससे वह सरकार की प्रशासकीय नीति पर पुनर्विचार कर सके। इस प्रकार व्यवस्थापिका धन प्राप्त करने वाली तथा धन के व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता है, अतः व्यवस्थापिका की स्वीकृति के बिना कार्यपालिका न तो धन उगाह ही सकती है और न उसे व्यय ही कर सकती है। अब हम देखेंगे कि भारतीय संसद किस प्रकार बजट को स्वीकार करती है।

वित्त पर संसद की शक्ति के सम्बन्ध में संवैधानिक उपलब्ध (Constitutional Provisions Concerning Parliament's Power Over Finance)

भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में संसद के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति भारत सरकार की उस वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण-

पत्र' कहा जायेगा"। वार्षिक वित्तीय विवरण में दिये हुए व्यय के अनुमानों अथवा प्राक्कलनों में—

(क) भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित धनराशियां, तथा

(ख) भारत की संचित निधि से किये जाने वाले अन्य प्रस्थापित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित धनराशियां, पृथक्-पृथक् दिखाई जायेंगी और राजस्व लेखे (Revenue account) पर होने वाले व्यय का अन्य व्यय से भेद किया जायेगा।

संविधान में यह व्यवस्था की गई कि निम्नलिखित व्यय भारत की संचित निधि पर भारित व्यय होगा —

(क) राष्ट्रपति की उपलब्धियां (Emoluments) तथा भत्ते (Allowances) तथा उसके पद से सम्बद्ध अन्य व्यय,

(ख) राज्य-परिषद् (Council of States) के सभापति (Chairman) और उपसभापति तथा लोक-सभा के अध्यक्ष (Speaker) तथा उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते,

(ग) ऐसे ऋण-प्रभार (Debt charges) जिनका दायित्व भारत सरकार पर है जिनके अन्तर्गत ब्याज, शोधन-निधि-प्रभार (Sinking fund charges) और प्रतिदान-प्रभार (Redemption charges) तथा उधार लेने और ऋण सेवा (Service of debt) व ऋण के प्रतिपादन (Redemption of debt) सम्बन्धी अन्य व्यय भी हैं,

(घ) (१) उच्चतम न्यायालय (Supreme court) के न्यायाधीशों को, अथवा उनके बारे में, दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और पेन्शनें,

(२) संघीय न्यायालय (Federal Court) के न्यायाधीशों को अथवा उनके बारे में, दिये जाने वाले निवृत्ति वेतन अथवा पेन्शनें,

(३) जो उच्च न्यायालय (High Court) भारत के राज्य-क्षेत्र (Territory) के अन्तर्गत किसी भी क्षेत्र (Area) के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) का प्रयोग करता है अथवा जो राज्य (State) के समवर्ती प्रान्त के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व किसी भी समय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था उसके न्यायाधीशों को, या उनके बारे में दी जाने वाली पेन्शनें,

(ङ) भारत के नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक को, या उनके बारे में दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति-वेतन अथवा पेन्शनें;

(च) किसी न्यायालय या मध्यस्थ न्यायाधिकरण (Arbitral tribunal) के निर्णय (Judgment), आज्ञप्ति (Decree) अथवा पंचाट (Award) के भुगतान के लिए अपेक्षित कोई धनराशियां,

(छ) इस संविधान द्वारा, अथवा संसद मे विधि (Law) द्वारा, इस प्रकार भारित घोषित किया गया कोई अन्य व्यय ।[1]

भारत की संचित निधि पर भारित व्यय से सम्बद्ध अनुमान संसद मे मतदान के लिए न रखे जायेंगे, परन्तु इस बात का यह अर्थ न किया जायेगा कि वह संसद के किसी सदन मे उन अनुमानो मे से किसी पर चर्चा को रोकती है ।

उक्त अनुमानो मे से जितने अन्य व्यय से सम्बद्ध हैं वे लोक सभा के समक्ष अनुदानो की मांगो के रूप मे रखे जायेंगे, और लोक सभा को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह किसी मांग को स्वीकार या अस्वीकार करे अथवा किसी मांग को, उसमे उल्लिखित राशि को कम करके स्वीकार करे ।[2]

लोक सभा द्वारा अनुदान किये जाने के पश्चात्, भारत की संचित निधि मे से—

(क) लोक सभा द्वारा इस प्रकार किये गये अनुदानो (Grants) की, तथा

(ख) भारत की संचित निधि पर भारित, किन्तु संसद के समक्ष पहले रखे गये विवरण मे दी हुई राशि से किसी भी अवस्था मे अनधिक (Not exceeding) व्यय की

पूर्ति के लिए अपेक्षित सब धनो के विनियोजन के लिए विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया जायगा ।

इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की धनराशि मे हेर-फेर करने, या अनुदान के लक्ष्य को बदलने, अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि मे हेर-फेर करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, ऐसे किसी विधेयक पर, संसद के किसी सदन मे प्रस्तावित नही किया जायेगा ,

भारत की संचित निधि मे से संसद मे पारित विधि (Law) द्वारा किये गये विनियोजन के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन न निकाला जायेगा ।[3]

अनुपूरक, अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदानो के लिए भी यही कार्यविधि (Procedure) अपनाई जायेगी ।

अनुपूरक अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदान (Supplementary, Additional or Excess Grants)

(१) यदि—

(क) अनुच्छेद ११४ के उपबन्धो (Provisions) के अनुसार निर्मित किसी विधि द्वारा किसी विशेष सेवा पर चालू वित्तीय वर्ष के लिए व्यय किये जाने के लिए प्राधिकृत (Authorised) कोई धनराशि उस वर्ष के प्रयोजनो के लिए अपर्याप्त पाई

1 अनुच्छेद (Art) ११२

2 अनुच्छेद ११३.

3 अनुच्छेद ११४

जाती है या जब उस वर्ष के वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र में अपेक्षित न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक अथवा अतिरिक्त व्यय की चालू वित्तीय वर्ष में आवश्यकता पैदा हो गई हो, अथवा

(ख) किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर, उस सेवा और उस वर्ष के लिए अनुदान की गई धनराशि से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राष्ट्रपति यथा-स्थिति (As the case may be) संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस व्यय की अनुमानित राशि को दिखाने वाला दूसरा विवरण-पत्र रखवायेगा अथवा लोकसभा में ऐसी अधिक राशि के लिए माँग उपस्थित करायेगा।[1]

लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान (Votes on Account, Votes on Credit and Exceptional Grants)

वित्तीय मामलों में सामान्य प्रक्रिया की पूर्ति के लम्बित (Pending) रहने तक, लोकसभा को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अनिश्चित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लेखानुदान, प्रत्ययानुदान तथा अपवादानुदान पारित कर सके। भारत में वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने से पूर्व बजट सम्बन्धी वाद-विवाद को पूर्ण करने में समर्थ न हो सकें। इस स्थिति में सदन एक लेखानुदान (Vote on account) पारित कर देता है जोकि सरकार को दो माह की अवधि के लिए धन निकालने का प्राधिकार देता है।

"लोक सभा को—

(क) किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिए अनुमानित व्यय के बारे में किसी अनुदान को, ऐसे अनुदान के लिए मतदान करने के लिए अनुच्छेद ११३ में निर्धारित क्रिया की पूर्ति के लम्बित रहने तक तथा उस व्यय के सम्बन्ध में अनुच्छेद ११४ के उपबन्धों के अनुसार विधि के पारित होने (Passing) के लम्बित होने तक, पेशगी देने की,

(ख) जब किसी सेवा की महत्ता या अनिश्चित रूप के कारण माँग वैसे ब्यौरे के साथ वर्णित नहीं की जा सकती जैसा कि वार्षिक वित्तीय विवरण पत्र में साधारणतया दिया जाता है तब भारत के सम्पत्ति स्रोतों पर अप्रत्याशित माँग की पूर्ति के लिए अनुदान करने की;

(ग) किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का जो अनुदान भाग न हो, ऐसा कोई अपवादानुदान (Exceptional grant) करने की;

शक्ति होगी तथा उक्त अनुदान जिन प्रयोजनों के लिए किये गये हैं उनके लिए भारत की संचित निधि में से धन निकालना विधि द्वारा प्राधिकृत करने की

---

1 अनु० ११५

शक्ति ससद को होगी।"[1]

इसके अतिरिक्त, इस सम्बन्ध म वित्त विधेयक या सशोधन राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तुत या प्रस्तावित न किया जायेगा तथा ऐसे उपबन्ध करने वाला विधेयक राज्य सभा म प्रस्तुत न किया जायगा।[2]

राज्य-सभा की वित्तीय शक्तियाँ

(Financial Powers of the Council of State)

वित्तीय मामलो म लोकसभा को राज्य सभा पर सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है। सविधान म यह व्यवस्था है कि

(१) राज्य सभा मे धन-विधेयक (Money Bill) प्रस्तुत नहीं किया जायेगा।

(२) लोकसभा से पारित हो जाने के पश्चात् धन विधेयक, राज्य सभा को उसकी सिफारिशो के लिए पहुचाया जायेगा तथा राज्य सभा, विधेयक प्राप्त होने के चौदह दिन की कालावधि के भीतर, विधेयक को अपनी सिफारिशो सहित लोकसभा को लौटा देगी तथा ऐसा होने पर लोकसभा राज्य-सभा की सिफारिशो म सबको या किसी को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी।

(३) यदि राज्य सभा की सिफारिशो मे से किसी को लोकसभा स्वीकार कर लेती है तो धन विधेयक राज्य-सभा द्वारा सिफारिश किये गय तथा लोकसभा द्वारा स्वीकृत सशोधनो सहित दोनो सदनो द्वारा पारित समझा जायगा।

(४) यदि राज्य-सभा की सिफारिशों मे से किसी को भी लोकसभा स्वीकार नही करती है तो धन विधेयक, राज्य-सभा द्वारा सिफारिश किये गय सशोधनो म से किसी के बिना, उस रूप मे दोनो सदनो द्वारा पारित समझा जायगा जिसमे कि वह लोकसभा द्वारा पारित किया गया था।

(५) यदि लोकसभा द्वारा पारित तथा राज्य-सभा को उसकी सिफारिशो के लिए पहुचाया गया धन-विधेयक उक्त चौदह दिन की कालावधि के भीतर लोक सभा को लौटाया नहीं जाता तो उक्त कालावधि की समाप्ति पर यह दोनो सदनो द्वारा उस रूप मे पारित समझा जायेगा जिसमे लोकसभा ने उसको पारित किया था।[3]

इस प्रयोजन के लिए कोई भी विधेयक धन विधेयक समझा जायगा यदि उसम केवल निम्नलिखित विषयो मे से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखने वाले उपबन्ध (Provisions) अन्तर्विष्ट हैं, अर्थात —

---

1 अनु० ११६
2 अनु० ११७
3 अनु० १०९

(क) किसी कर का आरोपण (Imposition), समाप्ति, परिहार Remission), बदलना या विनियमन ,

(ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का, या कोई प्रत्याभूति (Guarantee) देने का, अथवा भारत सरकार द्वारा लिए गये अथवा लिए जाने वाले किन्ही वित्तीय दायित्वो के सम्बन्ध म विधि को संशोधित करने का विनियमन ;

(ग) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) अथवा आकस्मिकता निधि (Contingency Fund) की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि मे धन डालना अथवा उसमे से धन निकालना ,

(घ) भारत की संचित निधि मे से धन का विनियोजन (Appropriation) ,

(ङ) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि को बढाना ,

(च) भारत की संचित निधि के या भारत के लोक-लेखे (Public Account of India) के मध्य धन प्राप्त करना अथवा ऐसे धन की अभिरक्षा या निकासी करना अथवा संघ या राज्य के लेखो का लेखा-परीक्षण , अथवा

(छ) उप खण्ड (Sub-clauses) (क) से (च) तक मे उल्लिखित विषयो म से किसी का आनुषगिक (Incidental) कोई व्यय ।

यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन-विधेयक है या नही तो उस पर लोकसभा के अध्यक्ष (Speaker) का निर्णय व प्रमाण पत्र अन्तिम होगा ।[1]

सदन में बजट
(Budget in the House)

संसद की वित्तीय शक्तियो म सम्बन्धित सवैधानिक उपबन्धो का विवेचन करने के पश्चात् अब हम उस कार्य-विधि (Procedure) पर विचार करते हैं जोकि बजट के विवाद, पुनरावलोकन तथा अनुमोदन (Approval) के सम्बन्ध मे सदन मे अपनाई जाती है। निम्नलिखित प्रलेख-पत्र (Documents) वार्षिक वित्तीय विवरण-पत्र के साथ ही सदन मे प्रस्तुत किये जाते हैं। इनके द्वारा विभिन्न कार्यक्रमो तथा नीतियो की विषय सूचियो की व्याख्या की जाती है जोकि बजट का ही अग बनती हैं —

(१) केन्द्र सरकार का बजट ।

(२) तीन खण्डो मे असैनिक अनुमानो (Civil Estimates) के अनुदानो की मागे (Demands),

(३) डाक व तार अनुमानो के अनुदानो (Grants) की मागें ।

(४) प्रतिरक्षा सेवाओ के अनुमान ।

---

1 अनु० ११०

(५) बजट पर व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र (Explanatory Memorandum on the Budget),

(६) वित्त विधेयक तथा व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र,

(७) बजट प्रस्तुत करते समय का वित्त मन्त्री का भाषण,

(८) विगत वर्ष का आर्थिक सर्वेक्षण (Economic Survey),

(६) बजट का आर्थिक वर्गीकरण (लगभग एक सप्ताह पश्चात् प्रस्तुत किया जाता है),

(१०) संक्षेप में बजट (लगभग दो माह पश्चात् किया जाता है)।

एक पृथक रेलवे बजट भी उपस्थित किया जाता है जिसमें रेलों की आय-व्यय, रेलों के लिए अनुदानों की मांगें, बजट प्रस्तुत करने का रेल-मन्त्री का भाषण तथा रेलवे बजट पर व्याख्यात्मक स्मृति-पत्र सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त, जब भिन्न भिन्न मन्त्रालयों की मांगों पर विवाद तथा मतदान किया जाता है तभी विभिन्न मन्त्रालयों के प्रशासकीय प्रतिवेदन (Reports) भी सदन में प्रस्तुत किये जाते हैं। जहाँ तक देश की आर्थिक स्थिति तथा नीति सम्बन्धी मामलों का प्रश्न है, वित्त-मंत्री का भाषण तथा आर्थिक सर्वेक्षण ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रलेख-पत्र है। जहाँ तक बजट की कार्य-क्रम सम्बन्धी सूची का सम्बन्ध है, इसके बारे में अनुदानों की मांगें (Demands for grants) तथा व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रलेखपत्र है। अनुदानों की मांगें उन मन्त्रालयों तथा विभागों के अनुसार क्रमबद्ध कर ली जाती हैं जिनमें कि मतदान की हुई धनराशियों के लिए संवितरण सत्ताओं (Disbursing authorities) का निर्माण होता है। मांगों में राजस्व तथा पूंजीगत व्यय भी पृथक् पृथक् दिखाये जाते हैं और आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान, चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान तथा विगत वर्ष के वास्तविक आंकड़े दिये होते हैं। विनियोजनों सहित इस प्रकार की कुल १६० मांगें होती हैं जिनमें प्रत्येक चार भागों में बंटी होती हैं प्रथम भाग में मांगों के अधीन कुल अपेक्षित धनराशि दी हुई होती है; द्वितीय भाग में बड़े शीर्षकों (Major heads) तथा उप शीर्षकों (Sub-heads) के अन्तर्गत उपलब्ध दिये होते हैं जिससे कि मुख्य रूप से व्यय की ऐसी मदों को प्रकट किया जा सके, जैसे कि अधिकारियों का वेतन, संस्थान का वेतन (Pay of establishment), भत्ते तथा व्यावसायिक व्यय, अन्य प्रभार (Charges) व इंगलैंड में प्रभार आदि। तृतीय भाग विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत और अधिक ब्यौरा प्रस्तुत करता है जिससे कि अनेक ऐसी मदों (Items) का उल्लेख किया जा सके, जैसे उन अधिकारियों तथा संस्थाओं की संख्या जोकि किसी विशिष्ट मन्त्रालय अथवा विभाग द्वारा उन कार्यक्रमों के संचालन के लिए आवश्यक हों जिनके लिए कि वह उत्तरदायी है; और चतुर्थ भाग में उन प्रतिलब्धियों (Recoveries) का विस्तृत विवरण दिया होता है जोकि व्यय में कमी करने के कारण लेखों (Accounts) में समायोजित (Adjust) की जाती है। व्याख्यात्मक स्मृतिपत्र

राजस्व के अनुमानो, राजस्व (Revenue) मे से किये जाने वाले व्यय, और पूंजी तथा ऋण-शीर्षको के सौदो के महत्वपूर्ण पहलुओ के बारे मे जानकारी प्रदान करता है। इसके साथ ही साथ, इन स्मृतिपत्रो (Memoranda) मे कई प्रकार के विवरण-पत्र (*Statements*) भी दिये जाते हैं जोकि बजट प्रलेख-पत्र की बहुसख्यक मागो मे बिखरी हुई व्यय की मदो को एक स्थान पर इकट्ठा करते हैं। व्याख्यात्मक स्मृतिपत्रो (Explanatory Memoranda) मे सरकारी आय तथा व्यय के बारे मे व्यापक जानकारी दी हुई होती है। विस्तृत जानकारी से परिपूर्ण ये सब प्रलेख-पत्र (Documents) सदन के समक्ष रखे जाते है जिससे कि *सदस्य बजट के सभी वित्तीय पहलुओ* को समझने मे समर्थ हो सकें।

बजट का प्रस्तुतीकरण
(Presentation of the Budget)

बजट वित्त-मन्त्री द्वारा फरवरी के अन्तिम दिन सामान्यतया शाम के ५ बजे लोक सभा मे प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही, वित्त-मन्त्री अपना बजट भाषण देते हैं। बजट जिस दिन लोक-सभा मे प्रस्तुत किया जाता है उस दिन इस पर कोई वाद-विवाद नही होता।[1]

बजट पर सामान्य वाद-विवाद
(General Discussion of the Budget)

सदन मे बजट प्रस्तुत होने के कुछ दिन पश्चात् बजट पर सामान्य वाद-विवाद होता है। सामान्य वाद-विवाद के समय, "सदन को इस बात की छूट होगी कि वह सम्पूर्ण बजट अथवा उसमे उत्पन्न सिद्धान्त के किसी प्रश्न के बारे मे वाद-विवाद कर सके, परन्तु इस समय कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत न किया जा सकेगा, न सदन मे बजट पर मतदान ही लिया जा सकेगा।" वाद-विवाद के अन्त मे वित्त-मन्त्री विवाद का एक सामान्य उत्तर देते हैं।[2] बजट पर सामान्य वाद विवाद के लिए आम-तौर पर दो या तीन दिन दिये जाते हैं।

मांगो पर मतदान
(The Voting of Demands)

जब बजट पर सामान्य वाद-विवाद समाप्त हो जाता है तब लोक सभा मे अनुदानो की मागो पर अर्थात् बजट के व्यय भाग पर मतदान लेने का कार्य प्रारम्भ होता है। अनुदान की *माग* एक प्रस्ताव के रूप मे की जाती है, "कि (अमुक-अमुक) मागो के सम्बन्ध मे ३१ मार्च १६— को समाप्त होने वाले वर्ष की अवधि मे व्ययो की अदायगी के लिए, एक धनराशि जोकि रु० क से अधिक न हो, राष्ट्रपति के लिए

1 Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha, Rule 205.
2 Rule 207 (1) (2)

स्वीकृति की जानी चाहिये।" विधिवत् मतदान होने के पश्चात् माग (Demand) अनुदान (Grant) बन जाती है।

कटौती प्रस्ताव
(Cut Motions)

इन मागो पर सदस्यो द्वारा तीन प्रकार की कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। माग की धनराशि म कमी करने का प्रस्ताव निम्नलिखित रीतियो में से किसी भी एक रीति द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है —

नीति सम्बन्धी कटौती प्रस्ताव
(Policy Cut Motion)

(क) यह कि माग की धनराशि घटाकर १ रु० कर दी जानी चाहिये।" यह प्रस्ताव माग म अन्तर्निहित नीति के प्रति अस्वीकृति का सूचक होता है। ऐसे प्रस्ताव को नीति की अस्वीकृति का कटौती प्रस्ताव' कहा जायेगा। ऐसे प्रस्ताव की सूचना देने वाला सदस्य नीति की उन बातो का यथार्थ रूप मे उल्लेख करेगा जिन पर कि वह विवाद का प्रस्ताव कर रहा है। विवाद सूचना में उल्लेख की गई विशिष्ट बात अथवा बातो तक ही सीमित रहेगा और सदस्यो को इस बात की खुली छूट होगी कि वे वैकल्पिक नीति का पक्ष-समर्थन कर सकें।

मितव्ययता कटौती
(Economy Cut)

(ख) 'यह कि माग के धन मे से विशिष्ट धनराशि कम कर दी जानी चाहिये।" यह प्रस्ताव उस मितव्ययता का सूचक होता है जो कि लाई जा सकती है। ऐसी विशिष्ट धनराशि या तो माग म एक मुश्त रकम कम करने के रूप मे हो सकती है अथवा माग की किसी एक मद मे कमी या उसकी समाप्ति के रूप मे हो सकती है। ऐसे प्रस्ताव को 'मितव्ययता कटौती प्रस्ताव" कहा जायेगा। प्रस्ताव की सूचना म *सक्षिप्त तथा यथार्थ रूप म उस विशिष्ट विषय का उल्लेख होगा* जिस पर कि विवाद किया जाना है और इस सम्बन्ध म जो भाषण होंगे वे इस विवाद तक ही सीमित होंगे कि मितव्ययता किस प्रकार लाई जा सकती है।

प्रतीक कटौती (Token cut)

(ग) 'यह कि माग की धनराशि मे १०० रु० की कमी की जानी चाहिए।" यह प्रस्ताव उस विशिष्ट शिकायत को प्रकट करने के लिये प्रस्तुत किया जाता है जो कि भारत सरकार के उत्तरदायित्व की परिधि के अन्तर्गत आती है। ऐसे प्रस्ताव को 'प्रतीक कटौती' कहा जायेगा और इसके सम्बन्ध म होने वाला वाद-विवाद प्रस्ताव (Motion) म उल्लिखित विशिष्ट शिकायत तक ही सीमित रहेगा।[1]

सदन के सदस्य बजट म प्रस्तावित व्यय की किसी मद को बढा नहीं सकते अथवा किसी मद म वृद्धि नही कर सकते। वे किसी भी मद के व्यय की धनराशि

1 Rule 209

को केवल या तो अस्वीकार कर सकते हैं अथवा उसमे कमी कर सकते है। और वस्तु-स्थिति यह है कि व्यवहार मे ऐसा भी सभव नही होता। मन्त्रि-मण्डल अपने बहुमत के बल पर किसी भी कटौती प्रस्ताव को गिरा सकता है। इस प्रकार बजट का वाद-विवाद कुछ विशिष्ट विभागो के प्रशासन के विरुद्ध व्यथस्थाओं अथवा शिकायतो का सामान्य प्रदर्शन-मात्र होता है। बजट का प्रस्तुतीकरण तथा वाद-विवाद (Discussion) ये ऐसे महत्वपूर्ण अवसर है जब कि मागो पर मतदान लिये जाने से पूर्व *शिकायतें व्यक्त की जा सकती है।* ससद, जिसके प्रति कि मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी होता है, का यह उत्तरदायित्व है कि वह इस बारे मे आश्वस्त हो सके कि राष्ट्रीय हितो का पूरा घ्यान रखते हुए ही बजट का निर्माण किया गया है और यह कि बजट ससद द्वारा निर्धारित मुख्य नीतियो के अनुसार ही बनाया गया है। ससदीय पद्धति के जनतन्त्र मे, ससद द्वारा बजट मे कोई बडा सशोधन तो नही किया जाता, परन्तु सरकार की वित्तीय नीतियो तथा बजट की मदो की स्वस्थ आलोचना करने का उपयुक्त क्षेत्र अवश्य वर्तमान रहता है। इस आलोचना से कार्यपालिका को लोकमत के अनुसार नीतियो तथा कार्य-क्रमो मे हेर-फेर करने मे सहायता मिल सकती है।

कटौती प्रस्तावो (Cut Motions) के आधार पर, ससद मे मांगो पर वाद विवाद आरम्भ होता है। भारतीय ससद मे केवल 'प्रतीक कटौती प्रस्ताव' ही लाये जाते हैं, अर्थात् यह कि 'माँग की राशि मे १०० रु० की कमी कर दी जानी चाहिए। इस प्रस्ताव के द्वारा किसी भी शिकायत या जानकारी पाने की प्रार्थना अथवा सुधार के सुझावो पर सम्बन्धित मन्त्री का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। अध्यक्ष (Speaker) किसी भी मन्त्रालय की मांगो को तथा उस पर आये हुए कटौती प्रस्तावो को विवाद के लिए एक साथ ही सदस्य के सम्मुख रखता है। वाद-विवाद के अन्त मे, सम्बन्धित विभाग का मन्त्री उस विवाद का उत्तर देता है जिसमे वह सभी आलोचनाओ का जवाब देता है और सदस्यो द्वारा उठाई गई शिकायतो को दूर करने का आश्वासन भी देता है। मन्त्री के उत्तर के अन्त मे, या तो कटौती प्रस्ताव वापिस ले लिए जाते हैं अथवा फिर उन पर मतदान लिया जाता है। मतदान मे कटौती प्रस्ताव *अस्वीकार हो जाते हैं क्योकि सदन मे मन्त्रि-मण्डल का बहुमत होता है।*

विनियोग अथवा विनियोजन विधेयक
(Appropriation Bill)

मांगो पर मतदान होने के पश्चात्, पूर्तियो के मतदान का अन्तिम चरण *विनियोजन विधेयक का अनुमोदन (Approval) है।* विनियोजन विधेयक सदन द्वारा मतदान की हुई मांगो को कानूनी रूप देता है और उन कार्यो के लिए भारत की सचित निधि से धन निकालने का अधिकार प्रदान करता है। लोकसभा मे इसके पारित होने की प्रक्रिया वही है जो किसी दूसरे विधेयक की होती है, उसमे केवल एक अन्तर है और वह यह है कि इस विधेयक को पारित करते समय सदन द्वारा पूर्व पारित अनुदानो मे अथवा सचित निधि के प्रभारो मे कोई सशोधन नही *किया*

जा सकता। "विनियोजन विधेयक पर वाद विवाद विधेयक के अनुदानो मे अन्तनिहित प्रशासकीय नीति अथवा सार्वजनिक महत्व के ऐसे मामलों तक ही सीमित रहेगा जाकि उस समय नहीं उठाये गये थे जबकि अनुदानो की सम्बन्धित माँगें विचाराधीन थी।"[1] लोक-सभा मे विनियोजन विधेयक पर तीन या चार घण्टे तक वाद विवाद किया जाता है, फिर अध्यक्ष द्वारा इसके धन विधेयक (Money Bill) होने का प्रमाण पत्र दिया जाता है और तदनन्तर इसे राज्य सभा मे भेजा जाता है। राज्य सभा को इस विधेयक म संशोधन करने अथवा इसको अस्वीकार करने का अधिकार नही होता। यह विधेयक पर केवल विवाद कर सकती है और १४ दिन की अवधि के अन्दर अन्दर अपनी सिफारिशें लोकसभा को भेज सकती है। लोकसभा उन सिफारिशों को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है। राज्य सभा हर हालत म विधेयक को १४ दिन के भीतर लोकसभा को वापिस करने के लिए बाध्य है। यदि राज्य सभा १४ दिन के अन्दर विधेयक को वापिस न करे, तो भी प्रत्येक स्थिति म लोकसभा का अध्यक्ष इसके बिना भी उसे राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेज देता है। राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापिस नही लौटा सकता। अत यह कहा जा सकता है कि विनियोजन विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति केवल औपचारिक है।[2]

करो पर मतदान वित्त विधेयक
(The Voting of Taxes : The Finance Bill)

अनुदानो की माँगो पर मतदान होने के पश्चात, सदन को सरकार के व्यय की पूर्ति के लिए उपायो व साधनो (Ways and Means) की भी व्यवस्था करनी होती है। अत इसे बजट के दूसरे पहलू अर्थात् आय-पक्ष पर विचार करना होता है। भारत सरकार के एक वित्तीय वर्ष के सभी कर सम्बन्धी प्रस्ताव वित्त विधेयक मे सम्मिलित कर लिये जाते हैं। फिर, प्रतिवर्ष सभी करो पर मतदान नहीं लिया जाता और न प्रत्येक वर्ष इस सम्बन्ध म अधिकार ही दिया जाता है। कुछ कर स्थायी होते हैं और ऐसे करो का नियमन करने वाले कानून के उपबन्धों के अन्तर्गत कार्यपालिका उनकी दरो म समय समय पर परिवर्तन करती है। आय-कर व सीमाशुल्क आदि, जैसे अन्य करो की दरों का निर्धारण प्रतिवर्ष व्यवस्थापिका अथवा विधान-मण्डल (Legislature) द्वारा किया जाता है। वित्त विधेयक पर वाद-विवाद का प्रारम्भ वित्त मन्त्री द्वारा रखे गये इस प्रस्ताव से होता है कि विधेयक को विचारार्थ लिया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव के आधार पर सरकार की कराधान नीति (Taxation Policy) पर सामान्य वाद विवाद किया जाता है। तदनन्तर विधेयक सदन (House) की एक प्रवर समिति (Select Committee) को सौंप दिया जाता है। प्रवर समिति

1 नियम (Rule) २१८ (४)
2 अनु० १११

अपनी आलोचनाओ तथा प्रस्तावो के साथ विधेयक को वापिस लौटा देती है और तब सदन मे विधेयक की प्रत्येक धारा पर वाद विवाद होता है। सशोधनो के प्रस्ताव रखे जाते हैं परन्तु किसी भी कर म वृद्धि करने तथा सशोधनो पर वाद-विवाद होने के पश्चात् यह प्रस्ताव (Motion) रखा जाता है कि सदन द्वारा विधेयक पारित कर दिया जाये। यदि बहुमत उसके पक्ष मे होता है तो सदन द्वारा विधेयक पारित कर दिया जाता है। तत्पश्चात् विधेयक राज्य सभा को सौंप दिया जाता है। जब दोनो सदन सहमत हो जाते हैं तो वह विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है, और उनकी स्वीकृति के पश्चात वह देश का कानून बन जाता है।

भारत तथा ब्रिटेन की वित्तीय कार्यविधि की तुलना
(Financial Procedure in India and Britain Compared)

इसमे कोई सदेह नही कि भारतीय वित्तीय कार्यविधि ब्रिटिश ससदीय पद्धति पर आधारित है, परन्तु फिर भी दोनो मे कुछ विभिन्नताएं पाई जाती हैं:—

(१) ब्रिटेन मे केवल एक ही बजट तैयार किया जाता है और ससद मे प्रस्तुत किया जाता है। भारत मे दो बजट तैयार किये जाते हैं और ससद मे पृथक्-पृथक् रखे जाते हैं। रेलवे का अपना निजी बजट होता है और सरकार के अन्य विभागो के आय-व्यय सामान्य बजट (General Budget) मे सम्मिलित किये जाते हैं।

(२) ब्रिटेन मे, वित्तीय मामलो मे, सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) का उपयोग किया जाता है। मागो तथा करों पर मतदान सम्पूर्ण सदन की समिति द्वारा ही लिया जाता है जिसे कि क्रमश पूर्ति-समिति (Committee of Supply) तथा उपाय व साधन समिति (Committee of Ways and Means) कहा जाता है। भारत मे बजट पर वाद-विवाद स्वय सदन मे ही होता है। ब्रिटिश प्रक्रिया का लाभ यह है कि सम्पूर्ण सदन की समिति मे जो वाद विवाद होते हैं वे अनौपचारिक (Informal) होते हैं और उनमे कार्य-विधि के नियमो का कठोरता से पालन नही किया जाता।

(३) ब्रिटेन मे अर्थ महामात्य (Chancellor of the Exchequer) मागो के अनुमानो (Estimates) को प्रस्तुत करते समय बजट भाषण नहीं देता। वह अपना भाषण बाद मे उस समय देता है जबकि 'उपाय व साधन समिति' मे बजट का राजस्व-भाग (Revenue part) प्रस्तुत किया जाता है। भारत मे, बजट वित्त मन्त्री के बजट भाषण के साथ सदन में प्रस्तुत किया जाता है। उसके भाषण के साथ ही बजट का उद्घाटन होता है।

———

परिशिष्ट

(Appendix)

भारत की सचित निधि व लोक लेखे तथा आकस्मिकता निधि

(Consolidated Fund, Public Accounts of India and Contingency Fund)

भारत सरकार द्वारा प्राप्त सब राजस्व (Revenues), राजकोष-पत्रों (Treasury bills) को जारी करके, ऋणों द्वारा अथवा अर्थोपाय पेशगियों (Ways and means advances) द्वारा लिये गये सब उधार तथा उधारों की अदायगी में उस सरकार को प्राप्त सब धनों की एक सचित निधि बनेगी जिसे कि "भारत की सचित निधि" कहा जायेगा। भारत सरकार द्वारा, या उसकी ओर से, प्राप्त अन्य सब सार्वजनिक धन भारत के लोक लेखे (Public Account of India) में जमा किये जायेंगे। भारत की सचित निधि में से कोई धन विधि (Law) की अनुकूलता से, तथा सविधान में उपबन्धित प्रयोजनों के लिए या उपबन्धित रीति से, अन्यथा विनियोजित नहीं किये जायेंगे।[1]

आकस्मिकता निधि (Contingency Fund)

आधुनिक राज्य को अपने राजकोष से अप्रत्याशित (Unexpected) मांगों को पूरा करना होता है और ऐसे व्यय भी करने पड़ते हैं जिनके बारे में, हो सकता है कि विधान-मण्डल अथवा ससद में वाद विवाद न हुआ हो। चूंकि व्यवस्था यह है कि भारत सरकार द्वारा किये जाने वाले व्यय की प्रत्येक मद के लिये ससद की पूर्व अनुमति की आवश्यकता होती है, अत ऐसे आकस्मिक व्यय के लिए उपबन्ध (Provision) किया जाना है जिससे कि बिना ऐसी पूर्व अनुमति (Previous sanction) के ही ऐसे आकस्मिक व्यय किये जा सकें। ससद विधि द्वारा, अग्रदाय (Imprest) के रूप में, "भारत की आकस्मिकता-निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता निधि की स्थापना कर सकेगी जिसमे ऐसी विधि द्वारा निर्धारित राशियां समय-समय पर डाली जायेंगी, तथा अनवेक्षित (Unforeseen) व्यय का अनुच्छेद ११५ या ११६ अनुच्छेद के अधीन ससद से, विधि द्वारा, प्राधिकृत होना लम्बित रहने तक (Pending), ऐसी निधि में से ऐसे व्यय की पूर्ति के लिए अग्रिम धन देने के लिए राष्ट्रपति को योग्य बनाने के हेतु उक्त निधि राष्ट्रपति के हाथ में रखी जायेगी।[2] सन् १९५० के आकस्मिकता निधि अधिनियम (Contingency Fund Act) के द्वारा १५ करोड़ रु० की ऐसी एक निधि का निर्माण भी किया गया है।

---

1 अनु० २६६

2 अनु० २६७

३१

भारत में बजट की क्रियान्विति

(Execution of the Budget in India)

(१)

वित्त-मन्त्रालय

(Ministry of Finance)

सरकार का वित्त विभाग (Finance Department) उन अनुमानो (Estimates) से सम्बन्धित व्यय की मदो पर व्यापक नियन्त्रण रखता है जो ससद द्वारा स्वीकृत कर दी जाती हैं और जिनके लिए साधनो (Resources) का उपयुक्त विनियोजन कर दिया जाता है। अब हम यह देखते हैं कि वित्त-विभाग व्यय पर किस प्रकार नियन्त्रण रखता है अथवा अन्य शब्दो मे, भारत मे वित्त मन्त्रालय के कार्य क्या हैं और उसका सगठनात्मक ढाँचा किस प्रकार का है ?

वित्त विभाग विभिन्न व्ययकारक विभागो (Spending Department) पर नियन्त्रण रखता है और उसम समन्वय (Coordination) स्थापित करता है। सरकार की सामान्य आर्थिक व वित्तीय नीतियो तथा कार्यक्रमो के निर्धारण का उत्तरदायित्व वित्त विभाग पर होता है। वित्त विभाग सरकार के आय तथा व्यय के अनुमान तैयार करता है और स्वीकृति के लिए उनको ससद मे प्रस्तुत करता है। ससद द्वारा बजट की स्वीकृति के पश्चात्, वित्त-विभाग बजट की कार्यान्विति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। इस प्रकार वित्त-विभाग नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण (Supervision) करने वाला विभाग है जिसका मुख्य कार्य सरकार के वित्तीय कार्यो का प्रबन्ध करना है।

वित्त-विभाग के मुख्य कर्त्तव्य इस प्रकार हैं —

(१) "केन्द्र सरकार के वित्तीय कार्यो का प्रशासन करना और सम्पूर्ण रूप मे देश को प्रभावित करने वाले वित्तीय मामलो का निबटारा करना।

(२) प्रशासन कार्य का सचालन करने के लिए आवश्यक आय व करो की उगाही करना और कराधान (Taxation) तथा सरकार की उधार नीतियो का नियमन करना।

(३) बैंकिग तथा मुद्रा (Currency) से सम्बन्धित समस्याओ के समाधान का प्रबन्ध करना और सम्बन्धित मन्त्रालयो के परामर्श से देश के विदेशी विनिमय के साधनो (Foreign exchange resources) के समुचित उपयोग की व्यवस्था करना।

(४) सम्बन्धित विभागों एव प्रशासकीय मन्त्रालयों के सहयोग से सरकार के सम्पूर्ण व्यय का नियन्त्रण करना।"[1]

विभाग का संगठन
(Organisation of the Department)

वित्तमन्त्री (Finance Minister), वित्त-मन्त्रालय के एक राज्य-मन्त्री (Minister of state) तथा दो उपवित्त-मन्त्रियों की सहायता से, भारत सरकार के इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण विभाग का प्रबन्ध करता है। यह मन्त्रालय इस समय आर्थिक मामलो के विभाग, राजस्व विभाग (Revenue Department) तथा व्यय विभाग (Expenditure Department) मे बटा हुआ है। प्रत्येक विभाग एक स्वतन्त्र सचिव (Secretary) के अधीन होता है और सभी विभागों मे समन्वय स्थापित करने के लिए एक प्रधान वित्त सचिव (Principal Finance Secretary) होता है। आर्थिक मामलो का विभाग (Department of Economic Affairs) निम्नलिखित छः सभागों (Divisions) मे बटा हुआ है —(१) बजट, (२) आयोजन (Planning), (३) आन्तरिक वित्त, (४) बाह्य वित्त, (५) आर्थिक तथा (६) बीमा (Insurance)। एक अन्य सभाग भी है जोकि पूंजीगत निर्गमन (Capital issues) शेयर बाजारों तथा वित्त निगमों (Finance Corporations) के नियन्त्रण का कार्य करता है। आर्थिक मामलो के विभाग के विभिन्न सभागों का सम्बन्ध निम्न कार्यों से होता है केन्द्रीय बजटों का निर्माण व एकीकरण तथा राज्य के बजटों, बैंकिंग, मुद्रा लोक ऋण (Public debt), पूंजीगत निर्गमनों, विदेशी विनिमय, अदायगी शेष (Balance of payments), तकनीकी सहायता कार्यक्रमों, व राष्ट्रीयकरण जीवन बीमे आदि का पुनरावलोकन (Review)। विभाग का मुख्य आर्थिक सलाहकार (Chief Economic Adviser), अनेक आर्थिक विशेषज्ञों (Economic experts) की सहायता से निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करता है —

(क) महत्वपूर्ण आर्थिक, वित्तीय तथा मौद्रिक (Monetary) समस्याओं का अध्ययन एव अनुसधान (Research)।

(ख) अदायगी शेष, व्यापार शेष (Balance of trade), मुद्रा तथा सिक्का-ढलाई (Coinage) से सम्बन्धित आकडे तैयार करना व उनको रखना।

(ग) विदेशी आर्थिक व वित्तीय प्रतिवेदनों (Reports) का अध्ययन तथा विश्लेषण (Analysis)।

राजस्व विभाग (Department of Revenue), जोकि केन्द्रीय राजस्व मण्डल (Central of Revenue) के रूप मे भी कार्य करता है, अग्रांकित विषयों से व्यवहार करता है

1 The organisation of the Government of India, The Institute of Public Administration, New Delhi, 1959 p, 61,

प्राय-कर (Income-Tax), व्यय कर (Expenditure tax), धन-कर तथा आस्ति-कर (Wealth tax and estate duty), सीमा-शुल्क (Customs), केन्द्रीय उत्पादन शुल्क (Central excise), अफीम तथा मादक पदार्थ और भारतीय मुद्राक अधिनियम (Indian stamp act) के अन्तर्गत केन्द्रीय कार्य (Central functions) ।

व्यय विभाग (Department of expenditure) चार सभागो (Divisions) मे बँटा होता है—

(१) सयुक्त सचिव (Joint secretary) के अधीन प्रस्थापना सभाग (Establishment division) ।

(२) एक अतिरिक्त सचिव (Additional secretary) तथा छ सयुक्त सचिवो के अधीन ७ असैनिक (Civil) व्यय सभाग ।

(३) सयुक्त सचिव के अधीन एक विशिष्ट पुनर्गठन इकाई (Special Reorganisation Unit) अथवा मितव्ययता सभाग (Economy division) ।

(४) एक अतिरिक्त सचिव के अधीन, जिसकी दो सयुक्त सचिव सहायता करते है, प्रतिरक्षा व्यय सभाग (Defence expenditure division) ।

व्यय विभाग (Department of expenditure), रेलवे मन्त्रालय को छोडकर, मुख्यत व्यय नियन्त्रण के प्रशासन से सम्बन्धित होता है ।

व्यय विभाग का प्रस्थापना-सभाग निम्न कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है· वित्तीय नियमो व विनियमो का निर्धारण, मन्त्रालयो व विभागो आदि को वित्तीय अधिकारो का सौपा जाना तथा सरकारी कर्मचारियो की सेवा की ऐसी दशाओ से सम्बन्धित प्रस्तावो की वित्तीय छान बीन, जैसे कि वेतन, पेन्शन, अवकाश, प्रतिनियुक्ति (Deputation) आदि । प्रस्थापना सभाग के अन्तर्गत जिन वित्तीय नियमो से सम्बन्ध होता है वे मुख्यत ये हैं मौलिक तथा अनुपूरक नियम (Fundamental and supplementary rules), सिविल सेवा के नियम व विनियम, सामान्य, वित्तीय नियम, वित्तीय कार्य, सामान्य भविष्य निधि नियम, उच्चतर सिविल सेवा नियम आदि । व्यय विभाग के व्यय सभागो पर भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो को वित्तीय परामर्श देने का उत्तरदायित्व होता है । किसी भी प्रशासकीय मन्त्रालय से सम्बन्धित व्यय के किसी प्रस्ताव को बजट मे सम्मिलित करने से पहले, उस पर सम्बन्धित व्यय सभाग (Expenditure division) की सहमति लेनी आवश्यक होती है । ५० लाख रु० से अधिक लागत की योजनाओ पर व्यय करने के लिये तथा ससद् द्वारा बजट की स्वीकृति के पश्चात् ५० लाख रु० से कम लागत की योजनाओ मे ठोस रद्दोबदल करने के लिए भी इसकी सहमति की आवश्यकता होती है । व्यय विभाग द्वारा प्रशासकीय मन्त्रालयो के व्यय प्रस्तावो का सूक्ष्म-परीक्षण (Scrutiny) व्यय मे मितव्ययता (Economy) लाने के उद्देश्य से किया जाता है और यह मितव्ययता दो प्रकार की होती है—

(१) "ऐसी सेवाओ को सम्मिलित न किया जाय जिनकी आवश्यकता न हो—अर्थात् नीति के मामलो मे मितव्ययता , और

(२) आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था में अपव्यय (फजूलखर्ची) न हो—अर्थात् हिसाब-किताब के मामलों में मितव्ययता।"

व्यय विभाग के मितव्ययता सभाग (Economy division), जिसे कि विशिष्ट पुनर्गठन इकाई (Special Reorganisation Unit) भी कहा जाता है, की स्थापना सर्वप्रथम सन् १९५२ में की गई थी। इसका कार्य, कार्य-कुशलता के अनुरूप ही मितव्ययता के सुझाव देने के उद्देश्य से, ब्यौरेवार जाँच करके तथा कार्य के उपयुक्त स्तरों का विकास करके, विभिन्न मन्त्रालयों (Ministries) और उनके सलग्न तथा अधीनस्थ कार्यालयों की सगठन तथा कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकताओं की एक व्यक्तिनिरपेक्ष (Objective) तथा सूक्ष्म जाच पडताल करना था।

वित्त-मन्त्रालय के योग का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन (Critical Assessment of the Role of the Ministry of Finance)

ससद की अनुमति के परिणामस्वरूप, वित्त विभाग द्वारा सामान्य नीति स्वीकार किये जाने के पश्चात् भी, उसे व्यय की प्रत्येक मद पर अपना नियन्त्रण रखना होता है। अन्य विभागों पर वित्त विभाग का यह नियन्त्रण इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि 'तुम पैसे की परवाह करो तो पौण्ड स्वय तुम्हारी परवाह करेंगे।' देश के वित्तीय कार्यों पर वित्त विभाग के इस नियन्त्रण का परिणाम यह हुआ है कि भारत सरकार के केवल एक ही विभाग में सत्ता का केन्द्रीयकरण हो गया है। और सत्ता के इस केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयों के उच्च पद के उत्तरदायी अधिकारियों तक को भी वित्तीय प्राधिकार नहीं सौंपे जाते। वित्त मन्त्रालय के हास्यास्पद प्रवृत्ति के इस योग का एक उदाहरण यह है कि एक बार एक राजदूतावास (Embassy) में 'भोज देने की मेज की टाग' टूट गई, तो राजदूत (Ambassador) को उस मेज की मरम्मत कराने के लिए परराष्ट्र मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय की अनुमति लेनी पडी और तब उसने सरकारी स्वागत सत्कार के अपने कर्तव्यों को पूरा किया। यदि ऐसी छोटी छोटी बातों के लिए कार्य पालक अधिकारियों (Executive officials) को वित्त मन्त्रालय की अनुमति लेनी पडती है तो यह निश्चित है कि सरकारी कार्यों में बड़ी अकुशलता उत्पन्न हो जायेगी। फिर, जबकि हम बडी बडी विशाल प्रायोजनाओं (Projects) को प्रारम्भ कर रहे हैं, वित्त मन्त्रालय की इन दरों की कार्य विधियों के, निश्चय ही, बडे हानिकारक परिणाम होंगे। वित्त मन्त्रालय विकास योजनाओं तथा उद्यमों के कार्यक्रमों की तकनीकी बारीकियों (Technical details) की भी जाच करता है। यह एक ऐसा कार्य है जिसके लिये यह सबसे अधिक अनुपयुक्त है।[1]

1 "The not only acts as an irritant but is also time consuming Ultimately these objections mostly come to be waived but often only after interminable discussions, and control becomes effective only over establishment proposals, the expend ture on which forms but an insignificant fraction of the total cost The Finance Ministry, therefore whilst straining at the grant, has often to swallow the camel" —Asoka Chanda, *Indian Administration* p 283

ससद द्वारा बजट का अनुमोदन कर देने के पश्चात्, वित्त-मन्त्रालय द्वारा व्यय की सूक्ष्म छानबीन इस कारण की जाती है कि बहुधा प्रशासकीय मन्त्रालय अनुमानो की तैयारी के अन्तिम क्षणो मे ही वित्त-मन्त्रालय के सम्मुख अपनी योजनाए प्रस्तुत करते हैं। अत अनेक योजनाओ पर उस समय पूर्णत विचार नही हो पाता। ये योजनाए बिना किसी कार्यक्रम अथवा आयोजना के ही प्रस्तुत कर दी जाती है जब ससद द्वारा इन योजनाओ के लिए एकमुश्त धनराशि की अनुमति दे दी जाती है, तब वित्त-मन्त्रालय इन योजनाओ की छानबीन आरम्भ करता है। परिणाम यह होता है, कि वित्त-मन्त्रालय द्वारा धन की स्वीकृति देने मे देरी होती है। अनेक योजनाओ के सम्बन्ध मे व्यापक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से जो पूर्व बजट (Pre-Budget) छानबीन होती है वह सामान्यत अपर्याप्त होती है। चूँकि अनेक योजनाए पूर्व छानबीन किये बिना ही बजट मे सम्मिलित करली जाती हैं, अत वित्त मन्त्रालय के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि बजट के अनुमोदन (Approval) के पश्चात् तथा उसके वास्तविक कार्यान्वय से पहले वह उनकी जाँच पडताल करे, जिससे कि उस समय तक कोई भी व्यय न किया जा सके जब तक कि वित्त-मन्त्रालय की सहमति से व्यय की अनुमतियो के आदेश न जारी हो जाए। ऐसी कार्यविधि (Procedure) मे बहुधा काफी समय लगता है और जब तक व्यय की अनुमति (Expenditure sanction) का आदेश जारी होता है तब तक काफी देर हो चुकी होती है। इस देरी को समाप्त करने के लिए, प्रशासकीय मन्त्रालयो तथा वित्त-मन्त्रालय बजट द्वारा अनुमोदन से पूर्व ही, उसकी योजनाओ की पूर्ण तथा विस्तृत छानबीन की जानी चाहिए। यह तो बजट-निर्माण का बडा गलत तरीका है कि योजनाओ तथा कार्यक्रमो के बारे मे पूर्ण जानकारी प्राप्त किए बिना ही उन्ह बजट मे सम्मिलित कर लिया जाता है। पाल एच० एपिलबी के अनुसार, "आवश्यकता इस बात की है कि वित्त-मन्त्रालय बजाय इसके कि बजट बनाने के पश्चात् खर्चों पर व्यापक नियन्त्रण लगाए, उसको अपना अधिक ध्यान श्रेष्ठतर बजट-निर्माण पर ही केन्द्रित करना चाहिए। वस्तुत व्यय का गूढ एव लाभप्रद नियन्त्रण तो केवल कार्यक्रम व योजनाए बनाने वाले अभिकरणो (Agencies) मे ही किया जा सकता है। ये अभिकरण उपयुक्त ढग के बजट-कार्यक्रम प्रस्तुत करना केवल तभी प्रारम्भ कर सकेंगे जबकि इस श्रेष्ठतर किस्म के वित्तीय प्रबन्ध के बारे मे उन्ह अनुभव होगा। इस प्रकार, वित्त-मन्त्रालय अपने उत्तरदायित्व की दृष्टि से उपयुक्त किस्म का बजट केवल तभी प्रस्तुत कर सकता है जबकि अन्य मन्त्रालय बजट-निर्माण का *कार्य उत्तम व विकसित ढग से करें।*"[1] *इसी प्रकार ए० डी० गोरवाला ने कहा कि* "वित्तीय मामलो के सम्बन्ध मे, वास्तविक रूप मे, आवश्यकता नियन्त्रण की है, हस्तक्षेप की नही। आज जो कुछ हो रहा है वह यह कि छोटे-छोटे मामलो मे

1 Paul H Appleby *Re examination of India's Administrative system* p 34-35

उत्तेजनात्मक हस्तक्षेप किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप प्रशासकीय विभागों, अर्थात सरकार के एक बड़े भाग की शक्ति तथा समय का भारी अपव्यय होता है और उनमे निराशा पैदा होती है। यह स्थिति समाप्त की जानी ही चाहिए।"[1]

अनुमान समिति (Estimates Committee) ने प्रशासकीय, वित्तीय तथा अन्य सुधारों से सम्बन्धित अपने नवें प्रतिवेदन मे इस समस्या पर व्यापक रूप से विचार प्रकट किया। इसने यह भी कहा कि वित्त-मन्त्रालय तथा प्रशासकीय मन्त्रालयों के बीच समन्वय (Coordination) कायम रहना चाहिए और प्रशासकीय मन्त्रालयों को अधिक वित्तीय अधिकार (Financial authority) सौंपे जाने चाहिए।

समिति ने कहा कि "प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा वित्त-मन्त्रालयों के बीच पूर्ण सौहार्द (Cordiality) की स्थापना करने के लिए तथा इस दिशा मे सक्रिय पग उठाये जाने चाहिए कि एक दूसरे का पूरक (Complementary) बना रहे और अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति मे एक दूसरे का सहायक हो।

इसके साथ ही साथ समिति ने निम्न सिफारिशें की —

(१) किसी भी योजना (Scheme) का प्रारम्भ करने से पहले, उसकी समुचित रूपरेखा बनाई जानी चाहिए और इस बात की भी जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए कि उस योजना के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नहीं, अथवा उपयुक्त समय पर वह उपलब्ध किया जा सकता है या नहीं। उसके कार्यक्रमों तथा अनुमानों का व्यापक रूप से हिसाब लगाया जाना चाहिए जिससे कि वित्त-मन्त्रालय उस योजना को वित्तीय नीति के अनुरूप बनाने मे समर्थ हो सके।

(२) वित्त-मन्त्रालय द्वारा वित्तीय दृष्टिकोण से योजना से सहमति प्रकट किये जाने के पश्चात्, योजना के व्यापक कार्यान्वय तथा उस पर धन व्यय करने का उत्तरदायित्व सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय का होना चाहिए जिसको यह अधिकार भी प्रदान किया जाना चाहिए कि वह योजना के उपशीर्षकों की धनराशियों मे उस सीमा तक हेर-फेर कर सके जहाँ तक कि योजना की कुल लागत पर उसका प्रभाव न पड़े।

व्यवहार मे कार्यविधि निम्न प्रकार होगी—

प्रत्येक मन्त्रालय को अपना बजट यथासम्भव व्यापक रूप मे तैयार करना चाहिए और आगामी वित्तीय वर्ष मे कार्यान्वित की जाने वाली सभी योजनाओं के पूर्ण ब्यौरे का हिसाब किताब लगाना चाहिए। वर्तमान समय मे पद्धति यह है कि आगामी वित्तीय वर्ष के बजट अनुमान चालू वित्तीय वर्ष के मध्य मे तैयार किये जाते हैं। वित्त-मन्त्रालय के बजट विभाग (Budget Division) को मन्त्रालयों से बजट के विभिन्न प्रस्ताव चालू वित्तीय वर्ष की समाप्ति के अन्तिम एक या दो माह के मध्य मे थोक रूप मे प्राप्त होते हैं। *इसका परिणाम यह होता है कि बजट-विभाग को* इतना पर्याप्त समय नहीं मिल पाता कि वह उन प्रस्तावों की विस्तारपूर्वक

1 A D Gorwala Report on *Public Administration*, 1951, p 42

जाच कर सके और प्रत्येक मद की सावधानी के साथ छानबीन कर सके। अत पद्धति यह रही है कि बजट सभाग केवल स्थूल रूप से जांच करता है और विभिन्न योजनाओ के लिए कुछ सकल धनराशियो (Gross amounts) का निर्धारण कर देता है तथा आगामी वित्तीय वर्ष मे उनके व्यय के लिए स्वय को अथवा वित्त मन्त्रालय को वचनबद्ध नही करता। रीति यह है कि अनुमानो म जो धनराशिया सम्मिलित की जाती हैं वे केवल सदन का मत प्राप्त करने के लिए ही होती है, उससे प्रशासकीय मन्त्रालय को व्यय करन का अधिकार प्राप्त नही होता, यह अधिकार तो उस वित्त मन्त्रालय द्वारा सविस्तृत व्यय की अनुमति प्रदान किये जाने के पश्चात प्राप्त होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि ससद द्वारा बजट का मतदान होन तथा वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होन के पश्चात सम्बन्धित मन्त्रालय बजट का कार्यान्विय के लिए प्रस्तावो पर विचार करना तथा विस्तृत अनुमान तैयार करना आरम्भ करता है। इस प्रक्रिया मे वित्त मन्त्रालय का काफी समय लग जाता है और प्रशासकीय मन्त्रालय योजना (Scheme) के अनुसार चलन को सहमत हो जाता है। प्रशासकीय मन्त्रालय जब वित्त मन्त्रालय की सहमति प्राप्त कर लेता है तब उसके पश्चात् वह मानवीय शक्ति, स्थान, भवन तथा अन्य साज-सज्जा प्राप्त करन की व्यवस्था करता है और सरकारी शासन-यन्त्र क जटिल नियमो के कारण ऐसी व्यवस्था करने मे समय लगता है। परिणाम यह होता है कि जब तक मन्त्रालय योजना को कार्यान्वित करने के लिए तैयार होता है तब तक वर्ष का काफी भाग समाप्त हो चुकता है और वष के अन्त म वित्त मन्त्रालय को अचानक ही पता लगता है कि उसे तो धन शीघ्रता के साथ व्यय करना चाहिए अन्यथा या तो बिना प्रयोग किया गया धन सरकार वापिस ले लेगी अथवा उसे उन धनराशियो को बजट म सम्मिलित कराने के लिए वित्त मन्त्रालय तक फिर पहुच करनी पडगी और तदनुसार नये सिरे से व्यय करने की अनुमति लेनी पडेगी। समिति यह समझती है कि यह कार्यविधि बडी कष्टप्रद तथा समय व धन का अपव्यय कराने वाली है और पहल करने की क्षमता (Initiative) को नष्ट करती है। होना यह चाहिए कि व्ययकारक मन्त्रालय (Spending ministry) को, वित्त मन्त्रालय से अनुमति की प्रार्थना करने से पहले ही यथासम्भव विस्तृत रूप मे अपनी योजना तैयार कर लनी चाहिये और योजना की कुल अपेक्षित लागत सहित उनके कार्यान्वय का स्पष्ट कार्यक्रम बना लेना चाहिए, उन चरणो का निर्धारण कर लेना चाहिए जिनम वह धनराशि व्यय की जायेगी और सक्षेप मे, उस योजना के सम्बन्ध म पूर्ण सरकारी विवरण तैयार कर लना चाहिए। वित्त मन्त्रालय का सम्पूर्ण रूप म योजनाओ की जाच करनी चाहिए और उनके सम्बन्ध मे निषेधात्मक नही, बल्कि ठोस निश्चयात्मक परामर्श देना चाहिए तथा यथासम्भव ऐसे वैकल्पिक उपाय बतालाने चाहियें जिनके द्वारा कि योजना कम लागत तथा अधिक कुशलता के साथ कार्यान्वित की जा सके। प्रशासकीय मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय द्वारा योजना (Scheme) के अनुमोदन के पश्चात उसको सम्बन्धित मन्त्रालय के बजट

अनुमानो मे सम्मिलित कर लेना चाहिए और उसके बाद अतिरिक्त व्यय की अनुमति दी जानी चाहिए अथवा योजनाओं के विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत पुनर्विनियोजनो (Reappropriations) पर कोई रुकावट नही होनी चाहिए, बशर्ते कि योजना की कुल धनराशि मे वृद्धि न हो। उस स्थिति मे, जबकि योजना पर पुनर्विचार करना पड़े और उसके लिए और अतिरिक्त धन की आवश्यकता हो, योजना के लिए आवश्यक अतिरिक्त को बजट अथवा अनुपूरक अनुमानों (Supplementary Estimates) मे सम्मिलित करने से पूर्व वित्त मन्त्रालय की सहमति प्राप्त कर ली जानी चाहिए।

व्ययकारक मन्त्रालय को, बनाई गई योजना के अनुसार ही चलना चाहिए और मन्त्रालय के अन्तर्गत ही ऐसे प्रशासकीय तथा वित्तीय परामर्श लेते रहना चाहिये जोकि समय-समय पर आवश्यक समझे जायें। इससे वे सब प्रकार की देरियां समाप्त हो जायेंगी जो अब योजनाओं के तैयार करने मे तथा उनके कार्यान्वय (Execution) मे होती हैं, या जो छोटी-छोटी मदो पर व्यय की अनुमति प्राप्त करने के लिए योजना को रोक लेने के कारण होती है, अथवा जो कागजातो को इधर से उधर और उधर से इधर भेजने के कारण होती हैं। *प्रशासकीय मन्त्रालयों को अपने कार्यक्रमों की योजना अच्छी प्रकार बनानी चाहिये जिससे कि किसी भी प्रकार धन का अपव्यय न हो।*"[1]

इस प्रकार, अनुमान समिति की सिफारिशो के आधार पर कार्यविधि तथा रीतियों में इस प्रकार सुधार किया जाना चाहिए जिससे कि कार्य मे देरी न हो और वित्तीय नियन्त्रण मे कार्य-कुशलता लाई जा सके। आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासकीय मन्त्रालयो को वित्तीय उत्तरदायित्व सौंपे जाए। इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जाना चाहिए कि "हर एक मद की सूक्ष्म जाच करने की अपेक्षा स्थूल नियन्त्रण अधिक मितव्ययी होता है।" इसमे कोई सदेह नही कि यह ऊपरी अथवा स्थूल नियन्त्रण वित्त-मन्त्रालय द्वारा लगाया जाना चाहिए, परन्तु प्रशासकीय मन्त्रालयों को विभिन्न कार्यक्रमों एव योजनाओं पर व्यय करने के लिए अधिक शक्तियां दी जानी चाहियें। इस प्रकार, सभी प्रशासकीय विभागों को वित्तीय उत्तरदायित्व सौंपे जाने चाहियें, उनमें मितव्ययता की भावना पैदा करनी चाहिए। केवल इस रीति के द्वारा ही, प्रशासकीय मशीनरी आर्थिक नियोजन तथा सामाजिक पुनर्निर्माण का विशाल उत्तरदायित्व अपने कन्धो पर उठा सकती। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व के दिनो मे जो *कार्य विधियां प्रचलित थी वे नवीन भारत के लोकतन्त्रीय समाजवादी ढग के समाज* के लिए अनुपयुक्त हैं। वित्तीय जाच तथा नियन्त्रण के द्वारा सरकारी अधिकारियो की पहल करने की क्षमता नष्ट नही होनी चाहिए।

---

1 Estimates Committee 1953 54, pp 4-5

३२

भारत में बजट की क्रियान्विति
(Execution of the Budget in India)
(२)

राजकोषीय नियन्त्रण
(Exchequer Control)

संसद द्वारा कार्यपालिका (Executive) के लिए अनुदान (Grants) स्वीकार किये जाते हैं और विनियोजन (Appropriations) किये जाते हैं। कार्यपालिका का यह कर्त्तव्य है कि वह धन को उसी प्रकार व्यय करे जिस प्रकार कि संसद ने उसकी स्वीकृति प्रदान की है। कार्यपालिका के पदाधिकारी जब सार्वजनिक धन को व्यय करें तो उनके कार्य-संचालन का मार्गदर्शन ईमानदारी, कुशलता तथा मितव्ययता के सिद्धान्तों के द्वारा होना चाहिए। संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका को सभी खर्चों के लिए स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति संसद को ही प्राप्त है। इस बात के विषय मे आश्वस्त होना संसद का कर्त्तव्य है कि यह देखने के लिए पर्याप्त मशीनरी वर्तमान है या नही कि कार्यपालिका संचित निधि से धन लेकर उन विनियोजनो से बाहर तो व्यय नही कर रही है जिनकी संसद ने विधि (Law) द्वारा व्यवस्था की थी। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि बजट किस प्रकार क्रियान्वित किया जाता है, और भारत मे व्यय पर राजकोषीय नियन्त्रण किस प्रकार लगाया जाता है?

बजट की क्रियान्विति का अर्थ है —

(१) धन का समुचित संग्रह,

(२) संग्रह किये गये धन की समुचित अभिरक्षा (Custody),

(३) धन का समुचित संवितरण (Disbursement)।

(१) धन का संग्रह (Collection of Funds)

व्यवस्थापिका (Legislature) कर लगाती है और कार्यपालिका (Executive) उन करो का प्रबन्ध करने के लिए उपयुक्त प्रशासन-यन्त्र तथा कार्यविधि के नियमों की व्यवस्था करती है। प्रशासन-यन्त्र के निर्माण हो जाने तथा करो के प्रशासन के सम्बन्ध मे कार्यविधि के नियमो की रूपरेखा बन जाने के पश्चात्, करो के निर्धारण (Assessment) का कार्य प्रारम्भ होता है। करो के निर्धारण का अर्थ है–

इस निर्णय पर पहुँचना कि कौन-कौन व्यक्ति तथा निकाय (Bodies) कर अदा करेंगे, और करों की उस धनराशि का निर्धारण जो कि उन्हें अदा करनी होगी। जब करों का निर्धारण हो जाता है तब उनका संग्रह किया जाता है अर्थात् विभिन्न कर-निर्धारितियों (Assessees) से प्राप्तव्य धन वसूल किया जाता है। वित्त-मन्त्रालय का राजस्व विभाग (Department of Revenue) देश के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों (Direct and indirect taxes) के प्रशासन का नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करता है परन्तु यह कार्य इसके द्वारा एक अन्य पदनाम (Designation) से, अर्थात् केन्द्रीय राजस्व मण्डल (Central Board of Revenue) के नाम से, किया जाता है। अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary) केन्द्रीय राजस्व मण्डल का पदेन सभापति (Ex-officio chairman) होता है और मण्डल के सदस्यों को सचिवालय (Secretariat) में संयुक्त सचिवों के रूप में पदेन स्थिति (Ex-officio status) प्राप्त होती है तथा वे दोहरी क्षमता के अन्तर्गत कार्य करते हैं : अर्थात् जब वे नीति-सम्बन्धी मामलों पर सरकार को परामर्श देते हैं तथा सरकार के आदेशों (Orders) के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करते हैं तो राजस्व विभाग के रूप में कार्य करते हैं और जब सरकार की राजस्व नीति को क्रियान्वित करते हैं तो वे राजस्व मण्डल के रूप में कार्य करते हैं। इस निकाय द्वारा इन दोहरे कार्यों को सम्पन्न करने का कारण यह है कि केन्द्रीय राजस्व मण्डल सविधि (Statute) द्वारा निर्मित निकाय है और इसके कार्यों का निर्धारण विधान-मण्डल के अधिनियम (Act) द्वारा किया जाता है। यह सरकार के आदेश जारी नहीं कर सकता। अत यह आवश्यक समझा गया कि मण्डल के सदस्यों को सचिवालयिक पदवी प्रदान की जाय और एक राजस्व विभाग बनाया जाये।

इस प्रकार, केन्द्रीय राजस्व मण्डल के मुख्य कार्य का सम्बन्ध राजस्व के संग्रह से ही है। मण्डल द्वारा जिन राजस्व विधियों (Revenue laws) का प्रबन्ध किया जाता है वे ये हैं :—

(१) समुद्री सीमाशुल्क अधिनियम, १८७८ (Sea customs Act),
(२) भूमि सीमाशुल्क अधिनियम, १९२४ (Land customs Act),
(३) केन्द्रीय उत्पादन कर तथा नमक अधिनियम, १९४४ (Central Excise and Salt tax Act)
(४) आय-कर अधिनियम, १९२२ (Income-Tax Act,)
(५) अतिरिक्त लाभ कर अधिनियम, १९४० (Excess Profits Tax Act),
(६) व्यावसायिक लाभकर अधिनियम, १९४७ (Business Profits Tax Act),
(७) आस्ति कर अधिनियम, १९५३ (Estate Duty Act),
(८) धन कर अधिनियम, १९५७ (Wealth Tax Act),
(९) व्यय कर अधिनियम, १९५७ (Expenditure Tax Act),

(१०) उपहार कर अधिनियम, १९५८ (Gift Tax Act),
(११) अफीम अधिनियम, १८५७ व १८७८ (Opium Act),
(१२) हानिकारक भेषज अधिनियम, १९३० (Dangerous Drugs Act),
(१३) रेलयात्री भाडा अधिनियम, १९५७ (Railway passenger Fares Act)।
(१४) मुद्रांक अधिनियम, १८९९ (Stamp Act)।

राजस्व मण्डल उन अनेक प्रशासकीय तथा अधीनस्थ प्राधिकारियो (Subordinate authorities) का पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण करता है जोकि विभिन्न अधिनियमो के अन्तर्गत अपने मे निहित शक्तियो को क्रियान्वित करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह विभागीय व्यवहार म एकरूपता लाने तथा विभिन्न राजस्व विधियो के प्रशासन की कार्यविधि का निर्माण करने के उद्देश्य से विभिन्न अधीनस्थ प्राधिकारियो को सामान्य किस्म के आदेश, अनुदेश (Instructions) तथा निर्देश (Directions) जारी करता है। यह अधीनस्थ प्राधिकारियो के आदेशो के विरुद्ध की गई अपीलें भी स्वीकार करता है।

धन की अभिरक्षा तथा संवितरण
(Custody and Disbursement of Funds)

राजस्व का संग्रह करने के पश्चात्, उसका संवितरण करना होता है। अब हम इस सम्बन्ध मे भारत मे प्रचलित पद्धति की विवेचना करेंगे।

राजकोष (Treasuries)— भारतवर्ष मे प्रत्येक जिले मे एक राजकोष है और इस प्रकार लगभग ३०० राजकोष हैं। ये राजकोष देश की राजकोषीय व्यवस्था (Fiscal system) की इकाइयां हैं और वे आधार हैं जिन पर कि लोक लेखो (Public accounts) का आरम्भ होता है। प्रत्येक राजकोष के अधीन एक या एक से अधिक उप राजकोष (Sub-treasuries) होते हैं जोकि जिले के प्रत्येक तहसील मे स्थित होते है। राजकोषो तथा उप-राजकोषो मे, उस राज्य की सरकार, जिसमे कि वे राजकोष तथा उप राजकोष स्थित होते हैं तथा संघ सरकार, दोनो के ही सौदो अथवा लेन-देनो के सम्बन्ध मे प्रतिदिन धन की प्राप्तियो तथा उसके संवितरण का कार्य किया जाता है और उस कार्य से सम्बन्धित संघ तथा राज्य सरकारो के प्रारम्भिक लेखे पृथक्-पृथक् रखे जाते हैं। उप-राजकोष राजकोषो के समक्ष दैनिक लेखे (Daily accounts) प्रस्तुत करते हैं, जहाँ कि उन्हे वर्गीकृत तथा सूचीबद्ध किया जाता है और तत्पश्चात् वे, प्रधान राजकोष के लेखो सहित, माह मे दो बार राज्य के महालेखापाल (Accountant General) को प्रेषित कर दिये जाते हैं। लेखो के साथ ही इनके प्रमाणक (Vouchers) भी भेजे जाते हैं यह राजकोष पद्धति (Treasury system), जोकि भारतीय प्रशासन प्रणाली का एक मुख्य लक्षण है, दो कारणो से प्रचलित है— प्रथम तो देश की विशालता के कारण और प्रधान देश

में प्रचलित पर्याप्त बैंकिंग सुविधाओं के कारण। रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना होने के पश्चात् से राजकोष की बाक़ियों (Balances) का एक बड़ा भाग रिज़र्व बैंक में जमा किया जाता है। रिज़र्व बैंक उन स्थानों पर स्टेट बैंक का उपयोग अपने अभिकर्त्ता (Agent) के रूप में करता है जहाँ कि स्टेट बैंक की शाखायें होती हैं। महालेखापालों द्वारा, मासिक अथवा वार्षिक आधार पर, विभिन्न राजकोषों तथा अन्य विभागीय कार्यालयों से प्राप्त लेखों का सकलन (Compilation) का एकीकरण किया जाता है। जब कभी अन्य किसी राज्य सरकार या भारत सरकार के उत्तरदायित्व पर राजकोषों में धन की प्राप्तियों (Receipts) तथा उसके सवितरण का कार्य किया जाता है तो अनिधि लेखे (Upto-date accounts) तैयार किये जाने से पहले, सम्बन्धित सरकारों के बीच लेखों अथवा खातों में आवश्यक समायोजन (Adjustments) करने होते हैं। एक ही सरकार के विभागों के बीच भी समायोजन किये जाते हैं, विशेषकर तब, जबकि उनमें कोई विभाग वाणिज्य विभाग (Commercial Department) होता है। इन समायोजनों को पूरा करने में तथा विभिन्न अनुदानों (Grants) तथा विनियोजनों से सम्बद्ध वित्तीय सौदों का ठीक-ठीक लेखा तैयार करने में काफ़ी समय लग जाता है। पृथक् पृथक् ऐसे वित्तीय नियम तथा आदेश होते हैं जोकि सवितरण तथा नियन्त्रण अधिकारियों (Disbursing and controlling officers) को, अनुपूरक अनुदान व विनियोजन प्राप्त करने अथवा बचतें सौंपने के हेतु, समय पर कार्यवाही करने के लिए तथा व्यय की प्रगति की देखभाल के लिए, उत्तरदायी बनाते हैं। इन प्राधिकारियों (Authorities) से यह आशा की जाती है कि वे इस कार्य के लिए कुछ विभागीय लेखे रखें और फिर लेखा-अधिकारियों (Accounts officers) के लेखों से उनका मिलान कर लें।

व्यय के नियन्त्रण का प्रारम्भिक उत्तरदायित्व उन अनेक विभागीय नियन्त्रणकारी सत्ताओं पर होता है जिनके अधिकार में अनुदान तथा विनियोजन रखे जाते हैं। धन के सवितरण की सामान्य प्रक्रिया यह है कि 'विपत्र अथवा बिल केवल "सवितरण अधिकारियों" (Disbursing officers) द्वारा लिखे जा सकते हैं जो कि अदायगियों की शुद्धता के लिए मुख्यतः उत्तरदायी होते हैं। उन विपत्रों पर "नियन्त्रण अधिकारियों" (Controlling officers) द्वारा प्रतिहस्ताक्षर (Countersign) किये जाते हैं जोकि दण्डनीय उपेक्षा के कारण होने वाली किसी भी हानि के लिए वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी ठहराये जाते हैं। 'राजकोष अधिकारी' (Treasury officer) को, चैकों की अदायगियों को अधिकृत करने से पूर्व योगों (Totals) की गणितीय शुद्धता को भी देखना होता है। उसे सवितरण अधिकारी के हस्ताक्षरों को भी प्रमाणित करना होता है और, यदि आवश्यक हो तो, यह भी देखना होता है कि महालेखापाल से इस सम्बन्ध में प्राधिकार (Authority) प्राप्त है या नहीं। इस प्रकार धन की अदायगियाँ उस समय तक नहीं की जा सकती जब तक कि उसके लिए किसी को उत्तरदायी न बना दिया जाय, और जैसा कि हमने ऊपर देखा कि ठीक-ठीक भुगतान

का उत्तरदायी तीन व्यक्तियो मे बटा रहता है अर्थात, सवितरण अधिकारी, नियन्त्रण, अधिकारी और राजकोष अधिकारी।

पुर्नवियोजन
(Re-appropriation)

प्राय ऐसा होता है कि विधान मण्डल (Legislature) द्वारा विभिन्न कार्यो के लिए उपलब्ध किया हुआ धन अप्रयुक्त (Unutilized) रह जाता है। ऐसा भी होता है कि विशिष्ट 'अनुदान' (Grant) के अन्तर्गत, विनियोजन की एक इकाई (Unit) मे तो धन की बचत हो जाती है और दूसरी मे धन की और अधिक आवश्यकता होती है। "यदि एक इकाई से दूसरी इकाई मे जो धन का स्थानान्तरण किया जाता है तो धन के इन विचलनो (Deviations) को व्यवस्थित कर लिया जाता है बशर्ते कि कुल उपलब्ध धनराशि मे वृद्धि न की जाये। स्थानान्तरण की इस प्रक्रिया को पुर्नविनियोजन कहा जाता है।" पुर्नविनियोजन एक अनुदान से दूसरे अनुदान मे को नही किया जा सकता क्योकि प्रत्येक अनुदान का निर्धारण विधान-मण्डल द्वारा किया जाता है और कार्यपालिका को उसमे किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का अधिकार नही होता। एक ही अनुदान की भिन्न भिन्न इकाइयो के अन्तर्गत विभिन्न धनराशियो मे हेर-फेर करने को ही पुर्नविनियोजन कहा जाता है। अधीनस्थ अधिकारी वित्त-मन्त्रालय की अनुमति के बिना धन का पुर्नविनियोजन नही कर सकता। पुर्नविनियोजन भिन्न भिन्न अनुदानो के बीच नही किया जा सकता। यह तो केवल एक ही अनुदान की विभिन्न इकाइयो के बीच किया जा सकता है। ३१ मार्च के पश्चात् धन का कोई भी स्थानान्तरण नही किया जा सकता क्योकि इस अवधि के पश्चात् बिना व्यय की हुई सभी धनराशियाँ समाप्त हो जाती हैं। अन्य नियम, जो कि पुर्नविनियोजन को सीमित करते है, बजट तथा लेखे सम्बन्धी शुद्धता एव यथार्थता से सम्बन्ध रखते हैं। विधान-मण्डल अथवा व्यवस्थापिका द्वारा किसी अनुदान मे की गई कटौती को फिर से पूरा करने के लिए पुर्नविनियोजन नही किया जा सकता। प्रभूत मदो (Charged items) के लिए निर्धारित धन की बचतें मतदेय मदो (*Voted items*) में अथवा मतदेय मदो की बचते प्रभूत मदो में स्थानान्तरित नही की जा सकती। अनुदान के राजस्व और पूजीगत भागो के बीच भी विनियोजन नही किया जा सकता।

ब्रिटेन मे व्यय पर राजकोषीय नियन्त्रण
(Exchequer Control over Expenditure in Britain)

ब्रिटेन में, व्यय पर राजकोष के नियन्त्रण की जो पद्धति प्रचलित है उसका सक्षेप में अध्ययन करना लाभप्रद होगा। ससद द्वारा विनियोजन अधिनियम के पास होने के पश्चात से, ब्रिटेन में व्यय पर राजकोष का नियन्त्रण प्रारम्भ हुआ है। ब्रिटेन में, लोक धन के निर्गमन का केवल एक ही स्रोत, अर्थात् बैंक ऑफ इगलैंड है और

सभी अदायगियाँ वहीं पर केन्द्रित रहती हैं। प्रत्येक विभाग अथवा मन्त्रालय का अपना निजी लेखाकन अधिकारी (Accounting officer) होता है। लेखांकन अधिकारी मन्त्रालय द्वारा प्रदत्त किये जाने वाले सभी बिल पास करता है और महावेतनाधिकारी (Paymaster-General) पर "भुगतान के आदेश" जारी करता है। महावेतनाधिकारी सहायक महावेतनाधिकारी के माध्यम से, जोकि एक स्थायी सिविल सेवक होता है, कार्य करता है। "अनुमोदित" धन से अधिक व्यय न होने देने का उत्तरदायित्व लेखांकन अधिकारी का होता है। वह इस बात का ध्यान रखने के लिए अभिलेख (Records) भी रखता है कि उसके द्वारा जारी किये गये "भुगतान के आदेशों" की धनराशि अनुमोदित' राशि से अधिक न हो जाये। महावेतनाधिकारी बैंक ऑफ इंगलैंड में द्रव्य जमा करता है और उसमें एक खाता रखता है जिसमें से "भुगतान के आदेशों" के द्वारा उसके समक्ष उपस्थित की जाने वाली सभी विभागीय मांगों की अदायगियाँ की जाती हैं। इंगलैंड में अनुमोदित धन महावेतनाधिकारी के नाम पर जमा होता है और उसकी प्रार्थना पर ही राजकोष खाते से, अर्थात् बैंक ऑफ इंगलैंड में ब्रिटिश सरकार के खाते से, धन निकाला जाता है। प्राप्त की हुई सभी धनराशियाँ भी महावेतनाधिकारी को ही दे दी जाती हैं।[1]

बैंक राजकार्यीय आदेश को कार्यान्वित करता है और राजकोष के दैनिक लेख के समर्थन में उसे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को प्रेषित कर देता है। ये दैनिक लेखे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को इस योग्य बनाते हैं कि वह संसद द्वारा किये गये विभिन्न मतदानों के अनुसार व्यय की प्रगति पर दृष्टि रख सके। इस प्रकार, ऐसी पद्धति के अन्तर्गत कोई भी व्यय अधिक नहीं किया जा सकता, क्योंकि लेखांकन अधिकारी धन की प्रत्येक निकासी के लिए उत्तरदायी होते हैं; अतः यदि कोई व्यय अधिक मात्रा में किया जाता है तो लेखांकन अधिकारी को उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इस प्रकार भारत में भी, ब्रिटेन जैसी, प्रत्येक मन्त्रालय के लिए पृथक्-पृथक् लेखांकन अधिकारियों की, पद्धति को लागू किया जाना चाहिए,

1 Funds which are issued to the Paymaster-General from the Bank are arranged as below after the passage of the Appropriation Act

(1) A Royal Order under the Sign Manual authorises the Treasury with the concurrence of the Comptroller and Auditor-General to issue from the Exchequer the amounts authorised by the Appropriation Act.

(2) The Treasury requires the Comptroller and Auditor-General to grant "credits on the Account of His Majesty's Exchequer for amounts within the voted limits. The Comptroller and Auditor-General writes to the Bank of England and 'grants a credit to the Treasury on the account of His Majesty's Exchequer to the amount of £ " The Treasury, there upon requests the Bank of England to transfer the sums (as granted by the Comptroller and Auditor-General) "from the Exchequer to the Supply Account of His Majesty's Paymaster-General in the books of the Bank, specifying the services in respect of which the issues are to be made"

जिसमें कि सम्बन्धित मन्त्रालय अथवा विभाग में की जाने वाली सभी अदायगियाँ लेखाकन अधिकारी पर ही केन्द्रित रहती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में प्रचलित पद्धति, जिसमें कि लेखे (Accounts) रखने के लिए तथा स्वय सकलित किये गए लेखों का परीक्षण (Audit) करने के लिए एक ही अभिकरण (Agency) को उत्तरदायी बनाया जाता है, अनुचित तथा दोषपूर्ण है। अत इस स्थिति में जितनी भी जल्दी सुधार किया जायगा, देश के कुशल वित्तीय प्रशासन की दृष्टि से ऐसा करना उतना ही अधिक अच्छा होगा।

३२

लेखांकन तथा लेखा-परीक्षण
(Accounting and Audit)

लोक-धन के समुचित लेखे रखना तथा एक ऐसे अभिकरण (Agency) द्वारा जोकि कार्यपालिका (Executive) के नियन्त्रण से मुक्त हो, उनका लेखा-परीक्षण कराना राजवित्त (Public finance) के किसी भी कुशल प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रोफेसर हैनेरी ने ठीक ही कहा है कि "लेखाङ्कन रचनात्मक (Constructive) होता है और लेखा-परीक्षण विश्लेषणात्मक (Analytical)। लेखाङ्कन की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से वित्तीय प्रकृति के लेन देनो अथवा सौदो (Transactions) का, द्रव्य के आधार पर, विवरण रखना वर्गीकरण करना और सक्षेपीकरण करना तथा उनके परिणामो की व्याख्या करना ही लेखाङ्कन है।" "किसी सगठन की वित्तीय स्थिति तथा वित्तीय सक्रियाओ से सम्बन्धित तथ्यो को निश्चित तथा प्रमाणित अथवा सत्यापित (Verify) करने के लिए सगठन के बहीखातो, अभिलेखो तथा कार्यविधियो की सुव्यवस्थित परीक्षा को लेखा परीक्षण कहते हैं।"[1]

लेखे (Accounts)

लेखाङ्कन क्या है ? "उस वित्तीय स्थिति तथा उन सक्रियाओ से सम्बन्धित तथ्यो को शीघ्रता से निर्मित करने तथा स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की विद्या को ही लेखाङ्कन कहते हैं जोकि प्रबन्ध के एक आधार के रूप मे आवश्यक होती है।"[2] लेखाङ्कन का अर्थ है— सगठन के वित्तीय कार्यों का समुचित अभिलेख रखना। अत

---

1 Accounting has been defined as the "art of recording classifying and *summarizing transactions, wholly or in part of a financial nature, in terms of* money and interpreting the results thereof"

* Auditing is an examination of the books, records and procedures of an organisation to ascertain or to verify the facts with respect to the organisation's financial opposition and financial operations

(Puerto Rioo and its Public Administration Programme (San Juan, 1945) pp 244-45)

2 "Accounting is the science of producing promptly and presenting clearly the facts relating to financial condition and operations that are required as a basis of management"

Francis Oakey Principles of Government Accounting and Reporting 1921, p 1

लेखो अथवा हिसाब किताब का रखना व्यय करने वाली सत्ताओं अथवा कार्यपालिका का कर्तव्य है। समुचित लेखे यह भी प्रकट करते है कि धन का प्रयोग वैधानिक रूप से किया गया है, और लेखा-प्रतिवेदन (Account report) के आधार पर व्यय करने वाले अधिकारी अपने उच्च अधिकारियो के सम्मुख अपने खर्चों का औचित्य (Justification) सिद्ध करते हैं। लेखाङ्कन की एक समुचित पद्धति के द्वारा धन के अनुचित प्रयोग को रोका जा सकता है। लखाङ्कन से इस बात की भी निश्चिन्तता हो जाती है कि धन का प्रयोग उस कार्य के लिए वैधानिक रूप मे किया गया है या नही जिसके लिए कि ससद ने उसकी स्वीकृति दी थी। लेखे इस प्रकार रखे जाने चाहियें कि वे वित्तीय सक्रियाओ से सम्बन्धित सामग्री प्रस्तुत करें तथा उनसे व्यय करने वाले प्राधिकारियो की ईमानदारी प्रकट हो। व्यय करने वाल प्राधिकारियो को अपने द्वारा खर्च किये जाने वाले एक एक पैसे के सम्बन्ध में रसीदें (Receipts) अथवा प्रमाणक (Vouchers) प्रस्तुत करने चाहिए।

लोक-लेखाङ्कन के आवश्यक तत्व
(Essentials for Public Accounting)

अब हम लोक-लेखाङ्कन के कुछ आवश्यक तत्वो पर विचार प्रकट करते हैं। ये निम्न प्रकार हैं —

(१) **लेखों का केन्द्रीकरण** (Centralization of accounts)—सभी प्रकार के वित्तीय अभिलेख रखने अथवा उनके रखने की विधि का पर्यवेक्षण करने तथा सभी प्रकार के वित्तीय प्रतिवेदनो को तैयार करने के लिए एक ही अधिकारी को उत्तरदायी बनाया जाना चाहिये। इसका लाभ यह होगा कि सरकारी विभागों के सभी लेखा का समन्वय तथा एकीकरण किया जा सकेगा।

(२) **लेखाङ्कन-पद्धति की प्रकृति** (Character of the Accounting system)—हिसाब किताब दोहरे लेखे के आधार (Double entry basis) पर रखा जाना चाहिए। साथ ही निम्नलिखित सिद्धान्तो के आधार पर एक साधारण खाता-बही (General ledger) रखी जानी चाहिए —

(क) लेखो का वर्गीकरण सतुलित निधि वर्गों (Balanced fund groups) मे किया जाना चाहिए।

(ख) स्थायी सम्पत्ति (Permanent property) के वे परिसम्पत्ति खाते (Asset accounts) जोकि खर्चों अथवा ऋणो की पूर्ति के लिए उपलब्ध न हों, निधि परिसम्पत्तियों (Fund assets) से पृथक् रखे जाने चाहिए।

(३) **निधियों अथवा कोषों का वर्गीकरण** (Classification of funds)—परिसम्पत्तियो, देयताओ (Liabilities) तथा प्रत्येक निधि अथवा निधियो के प्रत्यक वर्ग को लेखो के एक पृथक् सन्तुलित वर्ग के रूप म रखा जाना चाहिए। प्रत्येक नि

के लिये एक पूर्ण तुलन-पत्र अथवा चिट्ठे (Balance sheet) का सकलन किया जाना चाहिए।

(४) बजट सम्बन्धी नियन्त्रण के लेखे (Budgetary Control Accounts)—लोक-लेखाङ्कन पद्धति मे बजट सम्बन्धी नियन्त्रण के लेखो, सरकारी आमदनियो, खर्चों, विनियोजनो (Appropriations) तथा ऋण-भारो का समावेश होना चाहिए।

(५) राजस्व लेखाङ्कन (Revenue Accounting)—लेखा-प्रतिवेदनो मे, गैर-राजस्व प्रवृति की सभी मदें राजस्व के प्रतिवेदनो (Reports of revenue) से पृथक् कर दी जानी चाहिए। प्रामाणिक वर्गीकरण के अनुसार, राजस्वो को निधि द्वारा प्राप्त आमदनियो मे तथा स्रोत (Source) द्वारा प्राप्त आमदनियो मे वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

(६) व्यय लेखाङ्कन (Expenditure Accounting)—प्रामाणिक वर्गीकरण के अनुसार, खर्चों की निधि विभाग, क्रियाओ (Activities) (और यदि वाञ्छनीय हो तो उद्देश्य) के आधार पर वर्गीकृत किया जाना चाहिए।[1]

इस प्रकार, सरकारी लेखे तैयार करते समय उपरोक्त सिद्धान्तो का पालन किया जाना चाहिए और ऐसे वार्षिक लेखा-प्रतिवेदनो (Annual accounts reports) का प्रकाशन किया जाना चाहिए जिनमे कि सरकार के सभी विभागो की ठीक-ठीक वित्तीय स्थिति दिखाई गई हो।

लोक लेखे—इसकी विभिन्न किस्मे
(Public Accounts—Its Various Kinds)

अब हम लोक-लेखो की विभिन्न किस्मो पर विचार करते हैं:—

(१) लेखों की रोकड प्रणाली तथा सभूत प्रणाली (Cash System and Accrual System of Accounts)—लेखो की रोकड पद्धति मे सौदो का विवरण केवल तब रखा जाता है जबकि रोकड वास्तव मे ली या दी जाती है किन्तु सभूत प्रणाली मे सौदो की बातचीत के समय ही उनका लेखा दर्ज कर लिया जाता है। सभूत प्रणाली के आधार पर राजस्व का अर्थ है कि लेखो की प्रत्येक मद उस समय दर्ज की जाती है जबकि वह वाजिब होती है अथवा उसके लिए बिल अथवा विपत्र जारी किया जाता है। इस प्रकार, रोकड प्रणाली से कभी भी ठीक-ठीक वित्तीय स्थिति प्रकट नही होती, क्योकि यह सदा विगत स्थिति की द्योतक होती है और

1 The above principles have been summarized from *Public Administration in a Democratic Society* pp 432 36 by W Brooke Graves who condensed these principles from an outline of Principles of Municipal Accounting recommended by the National Committee on Municipal Accounting January 6, 1936, and Morey, Lloyd "Fundamentals of Municipal Accounting," an address before the Municipal Finance Officers Association

सभूत प्रणाली सदा वर्तमान स्थिति को प्रकट करती है। चूकि कुछ ठको (Contracts) को पूरा होने मे महीनो लग जाते हैं अत स्वभावत ही दोनो प्रणालियो के बीच का अन्तर काफी महत्वपूर्ण है। सभूत प्रणाली प्रबन्धकर्ताओ के लिए यह सभव बना देती है कि वे अपनी वास्तविक स्थिति का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कर सके, किन्तु रोकड-प्रणाली मे ऐसा होना सभव नही है। सभूत प्रणाली के अन्तर्गत, आय का लेखा तब किया जाता है जब कि वह अर्जित (Earned) की जाती है, और खर्चों का लेखा तब किया जाता है जब कि वे किये जाते हैं। सभूत प्रणाली मे, राजस्व तथा करो का लेखा तब किया जाता है और तभी उन पर नियन्त्रण रखा जाता है जब कि उनका निर्धारण (Assessment) किया जाता है, और व्ययो का लेखा तब किया जाता है जब कि वे किए जाते हैं। सभूत प्रणाली राजस्व अनुमानो की वसूलयाबी और व्यय तथा विनियोजनो की उपलब्धता के सम्बन्ध मे पूर्णतया आधुनिक सूचनाए तथा जानकारी प्रदान करती है।

(२) **लागत-मूल्य लेखाङ्कन प्रणाली (Cost Accounting System)** — इसका अर्थ है कि लेखाङ्कन की ऐसी प्रणाली जिसमे क्रमिक विभागो मे विभिन्न क्रियाओ की लागत (Costs) नियत कर दी जाती है। लेखाङ्कन की लागत-मूल्य पद्धति मे अनेक लागतें प्रकट की जाती हैं जैसे कि सरकार की विभिन्न सेवाओ की स्थापना एव उनके सचालन की लागत, उससे सम्बन्धित पृथक्-पृथक् कार्यों अथवा क्रियाओ के सम्पन्न करने की लागत, व्यय के विभिन्न कार्यों अथवा कार्यों के वर्गों की लागत आदि। यदि विभिन्न क्रियाओं की लागत से सम्बन्धित ऐसी जानकारी की आवश्यकता होती है तो एक विशिष्ट लागत मूल्य लेखाङ्कन-प्रणाली की व्यवस्था की जाती है।

भारत मे लेखाङ्कन
(Accounting in India)

भारत सरकार के ठीक-ठीक लेखे रखने का उत्तरदायित्व नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) पर होता है। "सघ और राज्यो के लेखो को ऐसे रूप मे रखा जायेगा जैसा कि भारत का नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, निर्धारित करे।"[1] नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के अधीन, प्रत्येक राज्य मे एक महालेखापाल (Accountant General) होता है जिसके कार्यालय मे (सघ तथा राज्य के) उन सौदो (Transactions) के लेखे रखे जाते हैं जोकि राज्य की क्षेत्रीय सीमाओ के अन्तर्गत सम्पन्न होते हैं। रेलो के लेखे (Railway Accounts) रेलो के वित्तीय आयुक्त (Financial Commissioner) द्वारा, और प्रतिरक्षा लेखे (Defence Accounts) वित्त-मन्त्रालय द्वारा, वित्तीय सलाहकार (प्रतिरक्षा) और सैनिक महालेखापाल के माध्यम मे रखे जाते

1 Art 150

है। जहाँ तक भारत सरकार के लेखों को रखने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में महालेखा परीक्षक के निम्नलिखित कर्तव्य तथा शक्तियाँ हैं[1] —

(१) महालेखा-परीक्षक (Auditor-General) भारत के वित्त तथा राजस्व लेखा का सकलन उस रूप में करेगा जोकि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किया जायेगा और उन्हें राष्ट्रपति के पास भेजेगा। वह किसी भी सरकारी अधिकारी से कोई भी सूचना उस रूप में माँग सकता है जोकि उन लेखों के पूर्तिकरण की दृष्टि से आवश्यक हो।

(२) महालेखा-परीक्षक को यह अधिकार होगा कि वह उस रूप का निर्धारण कर सके जिसके अनुसार लेखा परीक्षण कार्यालयों में लेखे रखे जायेंगे, बशर्ते कि राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना ऐसा कोई भी परिवर्तन न किया जाय जो कि वित्त के स्वरूप को तथा राजस्व लेखों (Revenue Accounts) को प्रभावित करे।

(३) यदि कोई ऐसा सन्देह अथवा विवाद उत्पन्न होता है कि किसी बड़े शीर्षक (Major head) में कोई विशिष्ट छोटा शीर्षक, अथवा किसी छोटे शीर्षक (Minor head) में कोई विशिष्ट ब्योरेवार (Detailed) शीर्षक सम्मिलित किया जाना चाहिए या नहीं तो उसका निर्णय महालेखा-परीक्षक द्वारा किया जायेगा।

(४) महालेखा-परीक्षक प्रतिवर्ष लेखा-परीक्षण विभागों (Audit Departments) द्वारा रखे गये बहीखातों की बाकियों का सारलेख तैयार करेगा और उसे राष्ट्रपति के पास भेजेगा।

(५) महालेखा-परीक्षक को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह उस रूप (Form) का निर्धारण कर सके जिसमें कि भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग के सम्मुख लेखे प्रस्तुत करने वाले अधिकारी ऐसे लेखे प्रस्तुत करेंगे, अथवा जिस (रूप) में वे प्रारम्भिक लेखे रखे जायेंगे जिनसे कि इस प्रकार प्रस्तुत किये जाने वाले लेखों का सकलन किया जाता है अथवा जिन पर वे आधारित होते हैं।

(६) महालेखा परीक्षक इस बात की व्यवस्था करेगा कि उसके अधीनस्थ अधिकारी राष्ट्रपति अथवा स्थानीय शासन द्वारा माँगी गई ऐसी कोई भी सूचना प्रदान करें अथवा वह स्वयं प्रदान करे जो कि उसके नियन्त्रण के अधीन कार्यालयों में रखे गये लेखों से प्राप्त की जा सकती है।

(७) महालेखा परीक्षक इस बात की व्यवस्था करेगा कि राष्ट्रपति, स्थानीय शासन तथा प्राधिकारियों को अपने वार्षिक बजट अनुमान तैयार करने में जिस सहायता की भी आवश्यकता हो, भारतीय लेखा परीक्षण विभाग के अधिकारियों द्वारा वह प्रदान की जाय।[2]

1 *His Powers are governed by the Audit and Accounts Order 1936* as *adapted under the Indian (Provisional Constitution) Order 1947*

2 Extract from Auditor General's Rules framed by the Secretary of State *in Council under Section 96 D (1) of the Government of India Act, 1935,* reproduced by Dr Gyan Chand, *The Financial System of India*, 1926 pp 410-414

भारत की स्वतन्त्रता के कारण होने वाले कुछ परिवर्तनों के फलस्वरूप, उपरोक्त नियमों में कुछ आवश्यक हेर-फेर किये गए है, यद्यपि उनका महत्वपूर्ण ढांचा पूर्ववत् ही है, उदाहरण के लिए, सन् १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत परिषद् (Council) में गवर्नर जनरल तथा राजमन्त्री (Secretary of State) थे। अब देश में ससदीय पद्धति है जिसमे कि देश पर शासन करने की वास्तविक सत्ता ससद तथा उसकी समिति, अर्थात मन्त्रि-परिषद् (Council of the ministers) में निहित है और राष्ट्र के प्रधान को राष्ट्रपति (President) कहा जाता है।

भारत मे लेखाकन की कार्यविधि
(Accounting Procedure in India)

राजकोष (Treasuries), जो कि भारत मे राजस्व-विषयक प्रशासन की पहली इकाई (Unit) है, अपने प्रमाणक (Vouchers) (अथवा रुपया निकालने वाले अधिकारियों द्वारा राजकोषों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले विपत्र), माह में दो बार उनसे व्यवहार करने वाले भिन्न-भिन्न महालेखापालों (Accountants General) के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जो कि इन प्रमाणकों से लेखों (Accounts) का सकलन करते हैं। राजकोषों द्वारा भेजे गए ये प्रमाणक महालेखापालों के कार्यालयों में लेखों के उन बड़े तथा मुख्य शीर्षकों मे सकलित किये जाते है जो कि नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित होते हैं। तब उनमें वे अन्तर्विभागीय सौदे भी जोड़ दिये जाते हैं जिनके लिए सम्बन्धित विभागों के बहीखातों के शेषों में समायोजन (Adjustments) किए जाने है। इसके पश्चात् नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक महालेखापालों के अभिलेखों (Records) से दो प्रकार के लेखों का सकलन करता है। वित्त लेखों (Finance Accounts) में सभी प्राप्तियां तथा व्यय एक साथ दिखाये जाते हैं जबकि विनियोजन लेखों (Appropriation Accounts) में ससद द्वारा अनुमोदित अनुदानों (Grants) के अनुसार किया गया वास्तविक व्यय दिखाया जाता है। नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक अन्य अधीनस्थ महालेखापालों द्वारा प्रस्तुत किये गए लेखों के विवरण-पत्रों (Statements) से एक सामान्य वित्तीय विवरण-पत्र भी तैयार करता है जिसमे कि प्राप्तियों एव सवितरणों (Receipts and disbursements) के अलावा सरकार की अशोधित देयताएं तथा परिसम्पत्तियां (Outstanding liablities and assets) दिखाई जाती है। यह सब कार्य प्रधान केन्द्रीय कार्यालय में किया जाता है। नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक द्वारा तैयार किये गए लेखे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाते है जो कि उन्हे सदन (*House*) के सम्मुख रखता है।

लेखों तथा लेखा-परीक्षण की पृथकता
(Separation of Accounts and Audit)

वर्तमान व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत कि व्ययकारक प्राधिकारी (Spending authorities) उन सौदों अथवा लेन-देनों (Transactions) के सम्बन्ध मे, जिनके

लिए कि वे जिम्मेदार होते है, एक पूर्ण तथा प्राधुनिक हिसाब किताब रखने के लिए उत्तरदायी नही होते और पूर्णलेखो के संकलन तथा परिपालन का कार्य एवं बाह्य सत्ता पर्यात भारतीय लेखा परीक्षण विभाग मे निहित रहता है,—व्ययकारक विभागों के अनेक ऐसे उत्तरदायित्वो की दृष्टि से पूर्णतया असंगत (Inconsistant) है जैसे कि अपने वित्तीय सौदो पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण तथा बजट अनुदानो व विनियोजनों की परिधि मे रहने के संसद के प्रति अपने दायित्वो को पूरा करने का उत्तरदायित्व वास्तव मे, प्रचलित व्यवस्थायें उक्त उत्तरदायित्वो को कलंकित करती है तथा अत्यन्त दोषपूर्ण हैं। लेखाङ्कन तथा लेखा-परीक्षण की व्यवस्था पृथक्-पृथक् कार्यों के रूप मे की जानी चाहिए, क्योकि प्रबन्ध (Management) के एक आवश्यक अस्त्र के रूप मे, लेखाङ्कन का कार्य प्रबन्धको के नियन्त्रण के अन्तर्गत रहना चाहिए और प्रबन्ध पर बाह्य निरीक्षण एवं जाच के रूप म भी, लेखा-परीक्षण तथा लेखाङ्कन के कार्य को एक ही अभिकरण मे संयुक्त नही किया जाना चाहिए।

लेखा-परीक्षण से लेखाङ्कन को पृथक् रखने के पक्ष मे जो तर्क दिये जाते हैं वे ये हैं —

(१) लेखो अथवा हिसाब किताब का रखना व्यय-कारक प्राधिकारियो का निष्पादक कार्य (Executive function) है।

(२) जब लेखो का विभागीकरण किया जाता है तो प्रशासकीय अधिकारियो को वास्तविक व्यय के आँकड़े उपलब्ध हो जाते हैं। यदि प्रशासन अपने निजी लेखे (Accounts) रखता है तो विभिन्न विभागो की स्थिति का स्पष्ट वित्तीय चित्र सदा उसके सामने रह सकता है। अक्तूबर सन् १९५१ मे ब्रिटेन मे राष्ट्रमण्डल (Common wealth) के देशो मे महालेखा-परीक्षकों (Auditor-General) का सम्मेलन सर्वसम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुचा कि महालेखा परीक्षक को भुगतान नही करने चाहिए अथवा लेख नही रखने चाहिए। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक ने संसदीय समिति के सामने दिये गये अपने वक्तव्य मे यह कहा कि, "यदि भारत मे राजकोषीय नियन्त्रण की एक सन्तोषजनक व्यवस्था लागू करनी है, तो मेरे विचार से, हमें इस दिशा मे उठाये जाने वाले पहले पग के रूप मे, ब्रिटेन मे प्रचलित पद्धति का आश्रय लेना होगा, जिस में कि प्रत्येक मन्त्रालय (Ministry) तथा बड़े व्ययकारक विभाग मे पृथक् पृथक् लेखाधिकारी (Accounts officers) रखे जाते हैं और उस मन्त्रालय अथवा विभाग से सम्बन्धित सभी अदायगियाँ उस अधिकारी पर ही केन्द्रित रहती हैं। इसका ही एक अन्य रूप यही हो सकता है कि राज्य सरकार को हिसाब-किताब अथवा लेखों को रखने का कार्य स्वयं अपने ऊपर लेना होगा जोकि संविधान के संक्रमणकालीन उपबन्धो (Transitorial provisions) के अन्तर्गत, वर्तमान समय मे, नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक का उत्तरदायित्व माना जाता है। वर्तमान स्थिति जिसमे कि लेखे रखने तथा उनका परीक्षण करने के लिए एक ही अभिकरण को उत्तरदायी बनाया जाता है, केवल नियम विरुद्ध ही नही है, अपितु अत्यन्त अनुचित

तथा दोषपूर्ण भी है।"[1] प्रचलित व्यवस्था की अनुपयुक्तता को साइमन आयोग (Simon Commission) ने भी स्वीकार किया था जिसने कि प्रचलित व्यवस्था मे पाये जाने वाले दोषो का एक स्पष्ट विश्लेषण किया।

साइमन आयोग ने कहा कि "भारतीय वित्तीय व्यवस्था का एक विचित्र लक्षण यह है कि यह उसको (महालेखा-परीक्षण को) एक तीसरा कार्य सौंपती है। लेखों के सकलन (Compilation of accounts) तथा उनके परीक्षण (Audit) का कार्य, उन प्रान्तो (Provinces) को छोड़कर जिनमे कि परिषदीय राजमन्त्री (Secretary of State in Council) ने अन्य कोई घोषणा की हो, एक ही अभिकरण अर्थात् भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग (Indian Audit Department) को सौंपा गया है। अत महालेखा-परीक्षण केवल लेखा-परीक्षण के लिए ही उत्तरदायी नहीं होता, बल्कि उन लेखो अथवा हिसाब किताब को तैयार करने का उत्तरदायित्व भी उस पर ही होता है जिनका कि वह लेखा-परीक्षण करता है। वह, वास्तव मे, वह अधिकारी होता है जोकि उन लेखो के सकलन के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी होता है जोकि राजमन्त्री को प्रतिवर्ष ससद के दोनों सदनो के समक्ष रखने होते हैं। कर्त्तव्यो के इस नियम-विरुद्ध (Anomalous) सयोग (जोकि भारत मे सन् १६२० से पूर्व प्रचलित प्रशासन को अत्यन्त केन्द्रीकृत पद्धति का अवशेष-मात्र है) का स्पष्टीकरण भारत की सवैधानिक तथा प्रशासकीय व्यवस्थाओ की सक्रमणकालीन प्रकृति मे निहित है। भारत सरकार क अनेक विभागो मे तथा सयुक्त प्रान्त (United Provinces) मे लेखा-परीक्षण तथा लेखे पहले ही पृथक् कर दिये गये हैं, और अन्य प्रान्तो मे इस वित्तीय सुधार का विस्तार करने के कार्यक्रम मे, जिसकी कि सन् १६२४ की Muddiman Committee ने तीव्र सिफारिश की थी, केवल इसमे व्यय होने वाली लागत का विचार ही बाधक हो रहा है।"[2]

इस प्रकार, इन गम्भीर दोषो को दूर करने तथा प्रभावशाली राजकोषीय नियन्त्रण लागू करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक तथा अनिवार्य है कि लेखा-परीक्षण के कार्य को लेखाकन के कार्य से पृथक् किया जाये और प्रशासकीय विभागो के अन्तर्गत आवश्यक लेखाकन-यन्त्र का सगठन किया जाए। लोक-व्यय (Public expenditure) पर राजकोषीय नियन्त्रण के बारे मे प्रस्तुत किये गये अपने तृतीय प्रतिवेदन (Report) मे सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) ने भी लेखाकन तथा लेखा-परीक्षण के कार्य को पृथक् करने की सिफारिश की।

निष्कर्ष (Conclusion)

यदि लेखे प्रशासनिक अधिकारियो के पास को स्थानान्तरित कर दिये जायें तो अनेक समस्याओ का समाधान करना होगा। "लेखो (Accounts) का विभागीकरण करने से यह आवश्यकता उत्पन्न होगी कि इन लेखो का एकीकरण किया जाए

1 Simon Commission Report V. I, p 377.
2 Simon Commission Report V. I, p 377

तथा सम्पूर्ण रूप मे सघ व राज्य सरकारो के सम्मिलित वित्त तथा राजस्व लेखो मे उनका सकलन किया जाए। इस बात के विषय मे निश्चित होने की भी आवश्यकता होगी कि मन्त्रालयो की बिखरी हुई इकाइयो के अन्तर्गत लेखाकन के सिद्धान्तो एव उसकी कार्यविधि म एकरूपता (Uniformity) कायम रखी जाए। सघ तथा राज्यो के बीच ताल मेल बनाए रखने की भी व्यवस्था करनी होगी। इस विचार के ही सदर्भ म यह प्रश्न भी बडा महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या एक ऐसे अभिकरण के द्वारा जो कि लेखा के तथा विशेष रूप से लागू किए जाने वाले नियमो व विनियमो के विभागीय ढाचे से अपरिचित होता है पर्याप्त एव कुशल लेखा-परीक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। भाषाई राज्यो के बनने से, जहाँ कि सरकारी काम-काज प्रादेशिक भाषाओ म ही किया जायेगा, और ही समस्या के उठ खडी होने की सम्भावना है। सार रूप म यह कहा जा सकता है कि उचित यही है कि इन परिवर्तनो का आरम्भ उस समय तक नही किया जाना चाहिए जब तक कि भविष्य बिल्कुल निश्चित तथा स्पष्ट न हो जाय।"[1]

"भारत सरकार के लेखे तथा लेखा-परीक्षण की भूमिका" (An Introduction to Indian Government Accounts and Audit) नामक पुस्तक मे इस समस्या का निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है —

"सन १९२४ मे, सयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) मे तथा भारत सरकार के कुछ विभागों मे सिविल क्षेत्र मे लेखा परीक्षण से लेखो को पृथक करने की एक योजना प्रयोग के रूप मे लागू की गई थी। परन्तु सन १९३१ मे पूर्णतया वित्तीय कारणो से यह प्रयोग (Experiment) छोड दिया गया क्योकि यह देखा गया है कि लेखो के पृथक्करण की यह पद्धति अधिक खर्चीली थी। कुछ भी हो, लेखो तथा लेखा-परीक्षण के सयुक्तीकरण की पद्धति सैद्धान्तिक रूप मे बडी अवास्तविक है और यह लेखा-परीक्षण (Audit) को लेखे (Accounts) के उन कार्यों से सयुक्त करके, जोकि पूर्णतया निष्पादक अधिकारियो के कार्य हैं, लेखा परीक्षण की स्वतन्त्रता को नष्ट करने लगती है। वर्तमान म इस अत्यन्त आवश्यक सुधार के मार्ग म मानवीय शक्ति की समस्यायें बाधक हैं परन्तु भविष्य मे जब भी मानवीय शक्ति की स्थिति सुधरेगी तभी इस सुधार (Reform) को गम्भीरता के साथ लागू करना होगा।[2] इस समस्या को दृष्टिगत रखते हुए, यह आवश्यक है कि लेखों तथा लेखा परीक्षण को पृथक किया जाए और अधिक लागत के कारण अथवा मानवीय शक्ति की तथाकथित कमी के कारण इस सुधार को लागू करने मे देरी न की जाए।

लेखा-परीक्षण (Audit)

लेखा परीक्षण देश के वित्तीय कार्यों पर ससदीय नियन्त्रण लगाने के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अस्त्रो म से एक है। स्वतन्त्र लेखा परीक्षण लोक-धन की सुरक्षा का

1 Asoka Chanda *Indian Administration* p 250

2 An Introduction to the Government Accounts and Audit p 531

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। "वित्तीय सक्रियाओं तथा परिणामों से सम्बन्धित तथ्यों को निश्चित, सत्यापित तथा सूचित करने के लिए किसी व्यवसाय अथवा संगठन के बहीखातों तथा अभिलेखों की सुव्यवस्थित परीक्षा को लेखा-परीक्षण कहते हैं।"[1] लोकतन्त्रीय देश में सरकारी धन का लेखा-परीक्षण एक स्वतन्त्र अधिकारी द्वारा किया जाता है जोकि विधान-मण्डल (Legislature) के उत्तरदायित्व पर इस कार्य को सम्पन्न करता है। उसका यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि धन मितव्ययता एवं ईमानदारी के साथ व्यय किया गया है या नहीं।

लेखा-परीक्षण के प्रकार पूर्व-लेखा-परीक्षण और उत्तर-लेखा परीक्षण

(Types of Audit : Pre-Audit and Post-Audit)

पूर्व-लेखा परीक्षण का सम्बन्ध, किसी सौदे अथवा लेन देन के पूर्ण होने तथा लेखांकन की अन्तिम पुस्तकों में उसका अभिलेख किए जाने से पूर्व उसके महत्वपूर्ण तत्वों की परीक्षा से होता है। यह प्रबन्ध-कर्त्ताओं का एक अस्त्र है तथा विभाग अथवा अभिकरण के अन्तर्गत उन सौदों की परिशुद्धता (Accuracy) तथा वैधता (Legality) की एक प्रशासकीय जाँच है जोकि अभी चालू है। पूर्व-लेखा-परीक्षण धन की उपलब्धता तथा व्यय की वैधता की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। यदि इसकी समुचित व्यवस्था की जाए तो यह बजट के साधनों से अधिक व्यय को रोक सकता है।

उत्तर-लेखा-परीक्षण का सम्बन्ध, सौदों के पूर्ण हो जाने तथा लेखांकन की पुस्तकों में उसका लेखा किये जाने के पश्चात् उनके अभिलेखों (Records) की जाँच से होता है। उत्तर-लेखा-परीक्षण तब किया जाता है जबकि धन वास्तव में खर्च कर दिया जाता है।

लेखा-परीक्षक के कार्य

(Functions of an Auditor)

वार्षिक लेखा-परीक्षण एक ऐसे व्यक्ति अथवा अभिकरण द्वारा किया जाना चाहिए जोकि कार्यपालिका के नियन्त्रण से स्वतन्त्र हो। स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण के कार्य को सम्पन्न करने वाला अभिकरण विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

लेखा-परीक्षक के मुख्य रूप से तीन कर्त्तव्य होने चाहिए। सर्वप्रथम उसे भूतकाल के सौदों की जाँच करनी चाहिए। सरकारी धन की प्राप्ति अभिरक्षा

1 "Auditing is a systematic examination of the books and records of a business or other organisation, in order to ascertain or verify, and to report upon, the facts regarding its financial operations and the results thereof"
—Robert H Montgomery, Auditing *Theory and Practice*, 6th Ed 1960

(Custody) तथा सवितरण (Disbursement) करने वाले सभी व्यक्तियो अथवा अभिकरणों के लेखों तथा विवरणो की जाच करनी चाहिए जिससे कि उनकी ईमानदारी तथा समुचित उत्तरदायिता के बारे मे आश्वस्त हुआ जा सके। दूसरे, जो सरकारी निधियाँ (Funds) व्यय की गई हो, जो प्राप्त की गई हो अथवा जो प्राप्त की जानी हो, उनके सौदो की वैधता के प्रश्न की जाच करनी चाहिए। तीसरे, लेखा परीक्षक को ऐसे परीक्षणो अथवा जाचो के परिणामो की सूचना विधान-सभा (Legislative Assembly) को, जोकि सरकार की कार्यपालिका तथा प्रशासकीय शाखाओं की जाच का कार्य करने वाली एक शाखा (Branch) है, देनी चाहिए। दूसरी ओर नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के कार्य ये हैं : राज्य द्वारा अथवा उसके विरुद्ध किये गए दावो का निपटारा, और इसी के प्रसग म, राज्य के केन्द्रीय लेखो को रखना तथा क्षेत्रीय कार्यालयों तथा सस्थाओ में सहायक लेखाकन पद्धतियों का निर्धारण करना। इनमे शुद्ध रूप से प्रशासकीय कर्तव्य ही सम्मिलित हैं। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक प्रशासकीय नियन्त्रण तथा अभिलेख के उपायो के रूप मे, सभी दावो (Claims) की उपयुक्तता, यथार्थता तथा वर्गीकरण के निर्धारण के उद्देश्य से उनका प्रशासकीय पूर्व-परीक्षण करेगा।[1]

इगलैंड में व्यय-नियन्त्रण : लेखा-परीक्षण (Expenditure Control in England : Audit)

इगलैंड म सन् १८६६ के 'राजकोष तथा लेखा-परीक्षण विभाग अधिनियम द्वारा स्वतत्र लेखा-परीक्षण की व्यवस्था की गई। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक वार्षिक रूप से राजकोष तथा अन्य विभागो के लेखो की जाच करता है। वह इतनी गहराई से जाच करता है जितनी कि आन्तरिक प्रशासकीय जाचों को दृष्टिगत रखते हुए वह आवश्यक समझता है। वह इस बात का निश्चय करता है कि व्यय ससदीय विनियोजनो की सीमा के अन्तर्गत किये गए है या नही, और राजकोषीय निर्देशो का पालन किया गया है या नही। "नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक अपने निर्णयो का विवरण लोकसभा की सार्वजनिक लेखा समिति के सामने रखता है जिसका सभापति विधान मण्डल के विरोधी पक्ष का एक सदस्य होता है।" यह समिति सरकारी अधिकारियो तथा राजकोष के प्रतिनिधियो की सुनवाई करने के पश्चात अपने निर्णयो की सूचना लोकसभा (House of Commons) को देती है। विधायी आलोचना (Legislative criticism) की स्थिति मे, या तो राजकोष को अपना अभ्यास-क्रम ही बदलना होता है अथवा सार्वजनिक रूप से अपना पक्ष पोषण करना होता है। यदि कही किसी विभाग द्वारा विनियोजनो से अधिक व्यय किय जाते है तो राजकोष को उसकी अनुमति देनी आवश्यक होती है और जहां तक भी अनुज्ञेय (Permissible) हो, उसे धन के स्थानान्तरण का प्राधिकार देना होता है, यदि ऐसा नहीं होता

1 Report on a survey of the organisation of the State Governments of North Corolinga Brookings Institution, Washington, D C., 1930 p 320.

है तो राजकोष की अनुपूरक विनियोजन (Supplementary appropriation) के रूप मे लोकसभा से सत्यापन (Ratification) प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि इन दोनो मे से कोई भी रीति नही अपनाई जाती है तो विभागीय लेखाकन अधिकारी वैयक्तिक रूप से इसके लिए उत्तरदायी होता है।[1]

सयुक्त राज्य अमेरिका मे व्यय नियन्त्रण . लेखा परीक्षण (Expenditure Control in the United States : Audit)

सयुक्त राज्य अमेरिका मे सन् १९२१ के बजट तथा लेखाकन अधिनियम (Budget and Accounting Act) के द्वारा एक स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय को निम्नलिखित शक्तिया सौपी गई, अमेरिका की सरकार के द्वारा अथवा उसके विरोध मे किये गये सभी दावो तथा मागो का निवटारा तथा समायोजन करना, लेखाकन की प्रक्रिया तथा रूप का निर्धारण करना लोक-धन की प्राप्ति, सवितरण तथा उपयोग सम्बन्धी सभी मामलो की जाच पडताल करना, और कानून का उल्लघन करके किये गए प्रत्येक व्यय अथवा ठेके की सूचना काग्रेस को देना। इस प्रकार इन शक्तियो मे ये प्राधिकार सम्मिलित हैं, लोक-धन की प्राप्ति, उसके व्यय अथवा उपयोग सम्बन्धी सभी सविधियो (Statutes) की व्याख्या करना, ठेको का अनुमोदन करना और भुगतानो की वैधता के लिए आवश्यक मूल प्रलेखो को अपनी अभिरक्षा (Custody) मे रखना है। ये शक्तिया यह प्रदर्शित करती हैं कि सयुक्त राज्य अमेरिका मे सामान्य लेखाकन कार्यालय (General Accounting office) को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है।

भारत का नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India)

भारतीय सविधान के निर्माताओ ने एक स्वतन्त्र नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक की भी व्यवस्था की है जोकि भारत की सचित निधि (Consolidated Fund of India) मे से व्यय किये जाने वाली सभी लोक-धनराशियो का लेखा परीक्षण करता है। उसके स्थायित्व तथा पदावधि की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है बशर्ते कि उसका व्यवहार अच्छा हो। इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया गया है कि उसके पद को किसी भी प्रकार के बाह्य प्रभाव तथा दबावा से मुक्त रखा जाए। सेवा-निवृत्ति (Retirement) के पश्चात् उसकी पुनर्नियुक्ति नही की जा सकती। इस स्वतन्त्रता की गारन्टी इसलिए की गई है जिससे कि, वह बिना किसी भय के कार्य कर सके।

---

1 "Under this system there is puplic assurance that financial policies and procedures will stand disinterested scruting, without calling in question the major substantive decisions for which the Government assumes political responsibility"

—F M Marx (Ed) *Elements of Public Administration* . 1946 New York, p 607

अपने कर्तव्यों के निष्पादन में, उसका, यहाँ तक कि राष्ट्र की सर्वोच्च सत्ता तक से भी मतभेद अथवा विरोध हो सकता है। वह विभिन्न कार्यपालक प्राधिकारियों (Executive authorities) द्वारा किये जाने वाले खर्चों के विश्लेषण तथा आलोचनात्मक जाँच के अपने कर्तव्यों को केवल तभी सम्पन्न कर सकता है जबकि वह कार्यपालक के नियन्त्रण अथवा दबावों से मुक्त रहे।

संविधान (Constitution) के अनुच्छेद १४८–१५१ में उसकी शक्तियों की व्यवस्था तथा उसके पद की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है—

नियुक्ति तथा सेवा की शर्तें
(Appointment and Conditions of Service) :

"अनुच्छेद १४८ (१) भारत का एक नियन्त्रक महालेखा परीक्षक होगा जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant) द्वारा नियुक्त करेगा तथा वह अपने पद से केवल उसी रीति और केवल उन्हीं कारणों से हटाया जायेगा जिस रीति और जिन कारणों से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जाता है।

(२) प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपने पद-ग्रहण के पूर्व राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा उस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के समक्ष तृतीय अनुसूचि में इस प्रयोजन के लिए दिये हुए प्रपत्र के अनुसार शपथ या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा।

(३) नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की शर्तें ऐसी होगी जैसी कि संसद विधि द्वारा निर्धारित करे, और जब तक संसद इस प्रकार निर्धारित न करे तब तक ऐसी होंगी जैसी कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं :

परन्तु न तो नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के वेतन में और न उसकी अनुपस्थिति का छुट्टि, पेन्शन या सेवा निवृत्ति की आयु सम्बन्धी अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।

(४) अपने पद पर न रहने के पश्चात् नियन्त्रक महालेखा परीक्षक भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन और पद का पात्र न होगा।

(५) इस संविधान के तथा संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भी भारतीय लेखा परीक्षा व लेखा-विभाग में सेवा करने वाले व्यक्तियों की सेवा की शर्तें तथा नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक की प्रशासकीय शक्तियाँ ऐसी होंगी जैसी कि नियन्त्रक महालेखा-परीक्षक से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति नियमों द्वारा विहित करे।

(६) नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के कार्यालय के प्रशासन व्यय जिसके अन्तर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके बारे में, देय सब वेतन, भत्ते तथा निवृत्ति-वेतन अथवा पेन्शन भी हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे।

कर्तव्य
(Function) :

अनु० (१४६) नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक संघ के और राज्यों के तथा अन्य प्राधिकारी या निकाय (Body) के लेखों (Accounts) के सम्बन्ध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जैसा कि संसद निर्मित विधि के द्वारा या उसके आधीन निर्धारित किये जायें तथा, जब तक उस बारे में इस प्रकार उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक, संघ के और राज्यों के लेखों के सम्बन्ध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जैसा कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः *भारत अधिराज्य (Indian Dominion)* के और प्रान्तों के लेखों के सम्बन्ध में भारत के महालेखा-परीक्षक को प्रदत्त थी या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य थी।

अनु० (१५०) संघ के और राज्यों के लेखों को ऐसे रूप में रखा जायेगा जैसा कि भारत का नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, निर्धारित करे।

अनु० (१५१) (१) भारत के नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक संघ-लेखा सम्बन्धी प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जायेगा जो उनको संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(२) भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के राज्य के लेखा सम्बन्धी प्रतिवेदनों को राज्यपाल के समक्ष उपस्थित किया जायेगा जो उनको उस राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

उसे "संघ अथवा राज्यों के राजस्वों में से, भारत में तथा भारत से बाहर किये गए सभी खर्चों का लेखा-परीक्षण करना होता है और इस बात का निश्चय करना होता है कि लेखों में धनराशियों के जो संवितरण दिखाये गए हैं क्या वे धनराशियां उस सेवा अथवा कार्य के लिए वैधानिक रूप से उपलब्ध थीं अथवा उस पर लागू होती थीं जिस पर कि वे लागू अथवा भारित की गईं थीं और क्या व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप है जिससे कि उन व्ययों का प्रशासन होता है।" इस प्रकार लेखा-परीक्षण प्रतिवेदन (Audit Report) के व्ययों के सम्बन्ध में होने वाली अनियमितताओं का उल्लेख करना होता है। प्रतिवेदन में यह भी उल्लेख करना होता है कि क्या बजट अनुदानों से अधिक धनराशि व्यय की गई है, अथवा व्यय के लिए कोई उचित अनुमति प्राप्त थी या नहीं, अथवा लोक धनराशियों के दुर्विनियोजन (Mis-appropriation) अथवा अपव्यय (Waste) का तो कोई मामला नहीं था। तत्पश्चात् ये प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित किये जाते हैं।

भारत में लेखा-परीक्षण विभाग का संगठन
(Organisation of the Audit Department in India) :

नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक संगठन का प्रधान होता है और उसके कर्तव्यों के निष्पादन में चार उप-नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक उसकी सहायता करते हैं।

प्रधान कार्यालय का अधिकारी-वर्ग निम्न प्रकार होता है—

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) = १

उप-नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (Deputy Comptroller and Auditor General) = ४

वाणिज्यिक लेखा-परीक्षा नियन्त्रक (Controller of Commercial Audit) = १

लेखा-परीक्षक तथा लेखा-निर्देशक (Director of Audit and Accounts) = १

निरीक्षण-निर्देशक (Director of Inspection) = १

समन्वय-निर्देशक (Director of Coordination) = १

सहायक नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक (Assistant Comptroller and Auditor General) = ३

सहायक लेखाधिकारी (Assistant Accounts Officers) = १०

लेखक वर्गीय (Ministerial) गैर-लेखक वर्गीय सेवाओं के अनेक अन्य सदस्य होते हैं। प्रधान कार्यालय के सगठन के अतिरिक्त, भारतीय लेखा-परीक्षण तथा लेखा विभाग क्षेत्रीय कार्यालयो के निम्नलिखित चार वर्गों मे बटा हुआ है, अर्थात्—

(१) असैनिक लेखा-परीक्षक तथा लेखा कार्यालय।

(२) डाक व तार लेखा-परीक्षा तथा लेखा कार्यालय।

(३) रेलवे लेखा-परीक्षा कार्यालय, और

(४) प्रतिरक्षा सेवा लेखा-परीक्षा कार्यालय।

पहले दोनो प्रकार के क्षेत्रीय कार्यालय सम्मिलित रूप मे लेखा तथा लेखा-परीक्षा कार्यालय हैं किन्तु अन्तिम दोनो प्रकार के क्षेत्रीय कार्यालय केवल लेखा-परीक्षण का ही कार्य करते है। ब्रिटेन मे भारतीय लेखो के लेखा-परीक्षक (Auditor) के कार्यालय तथा सयुक्तराज्य अमेरिका मे लेखा-परीक्षक के कार्यालय भी नियन्त्रक महालेखा-परीक्षक के ही आधीन हैं।

लेखा-परीक्षण के सम्बन्ध मे विवाद
(Controversy about Audit)

लोक-प्रशासन के विशेषज्ञ पाल एच० एपिलबी ने, भारतीय प्रशासन पर लिखे गये अपने दो प्रतिवेदनो मे, जोकि उन्होने भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किये, नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के कार्य के महत्व की आलोचना की। उन्होने कहा कि "भारत मे नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक का कार्य एव बडी मात्रा म औपनिवेशिक शासन (Colonial rule) का अवशेषमात्र है। यह कार्य ब्रिटिश शासन के मार्ग मे बाधक नही था, बल्कि यह उस शासन का सहायक था तथा उसका एक अभिन्न अग

था। यह ब्रिटिश काल मे सरकारी सेवाओ मे काम करने वाले भारतीयों पर बडे प्रतिबन्ध लगाता था। ये प्रतिबन्ध सरकार द्वारा ऐसे प्रशासन की स्थिति मे लगाये जाते थे जोकि मुख्यत पुलिस तथा कराधान (Taxation) के कार्यों से सम्बन्धित थे और जिसका कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यो से कोई सम्बन्ध नही था।

स्वतन्त्रता के पहले ही दौर मे, भारतीय मन्त्रालय नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक की उपेक्षा करने लगे और यह दुर्व्यवहार अधिक स्पष्ट हो गया। बाद मे इस स्थिति मे पूर्ण सुधार किया गया, परन्तु इसी प्रक्रिया मे पुराने प्रतिबन्धात्मक प्रभाव उस समय फिर उभर आये जबकि नई नीतियो के क्रियान्वय के लिए अधिक लोचशीलता की तथा उत्तरदायित्वपूर्ण विवेक के अधिक प्रयोग की आवश्यकता थी। इस न सुधरी हुई स्थिति का निचोड यह है कि आज नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक लोक-कर्मचारियो मे निर्णय करने तथा कार्य करने के प्रति पाई जाने वाली व्यापक अनिच्छा का एक मुख्य कारण बना हुआ है।"

यह निरोधात्मक तथा निषेधात्मक प्रभाव नौकरशाही पर ससद के माध्यम से पडता है क्योकि ससद द्वारा छोटे-छोटे अपवादो तथा लेखा-परीक्षक के कार्य की ओर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है···।

इस सम्बन्ध मे निश्चय ही दोष ससद का है। इसने ससदीय उत्तरदायित्व के नाम पर लेखा-परीक्षण के महत्व को अत्यधिक रूप से बढा चढा कर व्यक्त किया है और इसी कारण यह नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के कार्यों की वैसी परिभाषा करने मे असफल रही है जैसी कि सविधान के अनुसार करनी चाहिए थी। इस प्रकार जो स्थान रिक्त रहा, उसमें लेखा-परीक्षक ने अपनी स्थिति बदल ली।

"नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक का कार्य वास्तव मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य नही है। लेखा-परीक्षक (Auditors) अच्छे प्रशासन के बारे मे अधिक नही जानते, और न अधिक जानने की उनसे आशा ही की जा सकती है, उनकी प्रतिष्ठा भी उन अन्य लोगो के साथ ही सर्वोच्च होती है जोकि प्रशासन के बारे मे अधिक नही जानते। लेखा-परीक्षक जो कुछ जानते हैं वह है लेखा-परीक्षण (Auditing)—और इसे प्रशासन (Administration) नही कहा जा सकता, यह एक आवश्यक किन्तु अत्यन्त उत्साहहीन कार्य है जिनका स्वरूप सकुचित तथा उपयोगिता अत्यन्त सीमित है।"[1]

जहाँ तक एपिलबी के विचारो का सम्बन्ध है, उनके अपने देश मे भी उनको महत्व नही दिया जाता। उनके ये विचार ठीक नही हैं। सरकारी धन तो एक सार्वजनिक धरोहर अथवा न्यास (Trust) है। इस धरोहर का दुरुपयोग नही किया

1 Public Administration in India, Report of a survey 28-29 Paul H. Appleby consultant in *Public Administration* Re-examination of India's Administrative System with special reference to Government's Industrial and Commercial Enterprises, 1953, pp 27-28 42-43

जाना चाहिए। प्रत. इसको सुरक्षा का एकमात्र साधन लेखा-परीक्षण ही है। लेखा-परीक्षण का उद्देश्य यह नहीं होना चाहिए कि यह छिद्रान्वेषण की निषेधात्मक दृष्टि से प्रशासन को देखे बल्कि उसे तो प्रशासन को ठीक प्रकार समझने की निश्चयात्मक रीति से व्यवहार करना चाहिए और तब अपने निर्णय देने चाहियें। "सभी मान्य जनतन्त्रों में, लेखा-परीक्षण आवश्यक दोष (Necessary evil) समझ कर ही सहन नहीं होता अपितु यह मूल्यवान मित्र समझा जाता है जो प्रक्रिया सम्बन्धी तथा तकनीकी अथवा प्रावैधिक अनियमितताओं व भूलों की ओर, जो व्यक्तियों द्वारा निर्णय के दोषों, पक्षपातों और बेईमानी के कार्य व आशय के रूप में होती हैं, ध्यान आकृष्ट करता है। लेखा-परीक्षण तथा प्रशासन के पूरक योगों (Complementary roles) को स्वतः सिद्ध प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है क्योंकि सरकारी यन्त्र के सुचारु सचालन के लिए ये अनिवार्य है।"[1]

लेखा-परीक्षण के दृष्टिकोण से भी पुनर्नवीकरण की आवश्यकता है। भूतकाल में, लेखा-परीक्षण तथा प्रशासन ने एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् रहकर कार्य किया है। दोनों में एक साथ मिलने की, एक दूसरे का दृष्टिकोण समझने की, और सबसे अधिक महत्वपूर्ण, विवादास्पद विषयों को स्पष्ट करने तथा सुधारात्मक कार्यवाही करने की ओर कम ही झुकाव रहा है। इस स्थिति में, लेखा परीक्षण को अपने प्रतिवेदनों में अनेक ऐसे मामले सम्मिलित करने की प्रेरणा मिली जिनके बारे में सन्तोषजनक स्पष्टीकरण तथा समायोजन की आवश्यकता हो। इस प्रकार इस सम्बन्ध में यह धारणा बनने लगी कि लेखा-परीक्षण का उद्देश्य प्रशासन की कमियों को प्रदर्शित करना है। ऐसी योजनाओं तथा प्रायोजनाओं के सम्बन्ध में भी तकनीकी प्रकृति की आपत्तियाँ उठाई जाती हैं जिनका कार्यान्वय योग्यता, क्षमता तथा साहस एवं शीघ्रता के साथ किया गया है।[2]

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश में महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति सबसे अधिक महत्वपूर्ण नियुक्तियों में से एक होती है। प्रत्येक उत्तरदायी सरकार को इस पद के लिए उचित व्यक्ति का चयन करने में विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। किसी भी प्रकार के दबाव से मुक्ति तथा उसका प्रतिकार करने की योग्यता का होना, इस उच्च पद के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लेखा-परीक्षण में चाहे कुछ भी कमियां क्यों न हो, पर एपिलबी के प्रतिवेदन में महालेखा-परीक्षक पर जिस प्रकार का दोषारोपण किया गया है, लोकतन्त्र के सभी हितैषियों द्वारा उस पर दुःख प्रकट किया जायेगा।

---

1 Asoka Chanda · *Indian Administration*, p 151
2 Ibid, pp. 252-53

३४

संसदीय वित्त समितियां

(Parliamentary Financial Committees)

संसद अपनी सार्वजनिक लेखा-समिति तथा अनुमान समिति के द्वारा देश के वित्त पर अत्यन्त प्रभावशाली नियन्त्रण लागू करती है। अब हम वित्तीय नियन्त्रण के सम्बन्ध में इन दोनों समितियों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों का अध्ययन करेंगे।

सार्वजनिक लेखा-समिति
(Public Accounts Committee)

उत्तरदायी सरकारों वाले सभी देशों की वित्तीय व्यवस्थाओं में यह एक मान्य उपबन्ध (Provision) होता है कि बजट के क्रियान्वय के पश्चात् सौदों अथवा व्यवहारों का पुनरवलोकन किया जाता है। यह तो स्पष्ट है कि विधान-मण्डल (Legislature) को विशिष्ट कार्यों के लिए नियत धनराशियों पर मतदान की शक्ति देना उस समय तक बिल्कुल व्यर्थ है जब तक कि उसे इस बात की देखभाल करने का अधिकार न प्रदान किया जाये कि धन कार्यपालिका (Executive) द्वारा उन उद्देश्यों एवं कार्यों की पूर्ति के लिए व्यय किया गया है या नहीं जिनके लिए कि उस पर मतदान हुआ था। ऐसी अनुरूपता लाने के लिए सामान्यतः यह योजना अपनाई जाती है कि लोक-सेवकों के एक ऐसे वर्ग द्वारा, जोकि व्ययकारक प्राधिकारियों से पृथक् व स्वतन्त्र होता है, लोक लेखों का एक पूर्ण एवं सतत लेखा-परीक्षण किया जाता है। तत्पश्चात् ऐसे लेखा-परीक्षक का प्रतिवेदन, विधान-मण्डल की एक समिति सार्वजनिक लेखा समिति के पास भेज दिया जाता है जोकि उसकी जाँच करती है और अपने निर्णयों की सूचना विधान-मण्डल को भेजती है।

भारत में, सार्वजनिक लेखा समिति का निर्माण प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए संसद के दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है। इसमें २२ सदस्य होते हैं जिनमें १५ लोकसभा से लिए जाते हैं और ७ राज्य-सभा से।

'Rules of Procedure and Conduct of Business' के अनुसार समिति का कार्य इस विषय में अपने आपको सन्तुष्ट करना है कि—

(क) लेखों में धनराशियों के जो सवितरण दिखाये गये हैं क्या वे धनराशियाँ उस सेवा अथवा कार्य के लिये वैधानिक रूप से उपलब्ध थीं अथवा उस पर लागू होती थीं जिस पर कि वे लागू अथवा भारित की गई थीं;

(ख) क्या व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप हैं जिससे कि उन व्ययों का प्रशासन होता है , और

(ग) क्या प्रत्येक पुनर्विनियोजन (Re appropriation) समर्थ प्राधिकारी द्वारा बनाये गये नियमों के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में किये गये उपबन्ध (Provision) के अनुसार किया गया है।

सार्वजनिक लेखा-समिति के निम्नलिखित कर्तव्य भी होंगे[1] —

(क) नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन को दृष्टिगत रखते हुए उन लेखा विवरणों (Statement of accounts) की, जिनमें कि राज्य निगमों (State Corporations) (जैसे कि वायु निगम व दामोदर घाटी निगम आदि) और व्यापार तथा विनिर्माण योजनाओं एवं प्रायोजनाओं (जैसे कि हिन्दुस्तान स्टील व सिंद्री फर्टिलाइजर्स आदि आदि) की आय तथा व्यय दिखाये जाते हैं , तथा साथ ही साथ उन चिट्ठों अथवा तुलन पत्रों (Balance sheets) एवं हानि-लाभ खातों के विवरणों की जांच करना जिन्हें कि किसी विशिष्ट निगम, व्यापारिक संस्था अथवा प्रायोजना (Project) की वित्तीय व्यवस्था का नियमन करने वाले वैधानिक नियमों के उपबन्धों के अनुसार तैयार किया जाता हो अथवा राष्ट्रपति जिन्हें तैयार कराना आवश्यक समझें।

(ख) स्वायत्त संस्थाओं की आय तथा व्यय प्रदर्शित करने वाले उन लेखा-विवरणों की जांच करना जिनका लेखा परीक्षण भारत के नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक द्वारा या तो राष्ट्रपति के निर्देशों के अनुसार अथवा संसद की संविधि (Statute) द्वारा किया जाए।

(ग) उन मामलों के सम्बन्ध में नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार करना जिनके विषय में राष्ट्रपति उससे किसी भी आय अथवा प्राप्ति का लेखा-परीक्षण करने अथवा भण्डारों (Stores) तथा शेष मालों (Stocks) के खातों की जांच करने की मांग करें।

अपने कार्यों का निष्पादन करने के लिए समिति को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह व्यक्तियों को बुलवा सके तथा कागजातों व अभिलेखों की मांग कर सके। यह अपने विचाराधीन लेखों में अभिलिखित व्यय के सम्बन्ध में विभागीय अधिकारियों से प्रश्न पूछ सकती है। जब मन्त्रालयों (Ministries) अथवा विभागों (Departments) के लेखा की जांच की जाती है तब उस सम्बन्धित मन्त्रालय के सचिव (Secretaries) समिति के समक्ष उपस्थित होते हैं। समिति की जांच उस सामग्री पर आधारित होती है जोकि नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक द्वारा प्रदान की जाती है। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक समिति के प्रयत्नों में सहायता पहुंचाने के लिए उसकी बैठकों में स्वयं उपस्थित होता है। वह समिति का मुख्य कार्याधिकारी व्यक्ति, मार्गदर्शक तथा मित्र होता है। वह सभापति (Chairman) का, जोकि

1 Rules of Procedure, Rule 308 (3)

निपटाये जाने वाले मामलों की बारीकियों से सामान्यत अनभिज्ञ होना है, दायी हाथ होता है। वह ऐसे उपयोगी प्रश्नों का भी सुझाव देता है जोकि समिति के सदस्यों द्वारा साक्षियों (Witnesses) से पूछे जा सकते हैं। इस प्रकार सार्वजनिक लेखा-समिति तथा नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक पूरक (Complementary) योग प्रदान करते हैं।

समिति का मुख्य कार्य नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन (Report) की जाँच करना है जिससे कि इस बात का निश्चय हो सके कि संसद द्वारा स्वीकृत धन सरकार द्वारा "मांग की परिधि के अन्तर्गत" व्यय किया गया है या नहीं। साक्षियों व प्रमाणों की जाँच के पश्चात्, समिति अपना प्रतिवेदन तैयार करती है जो कि संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। समिति की सिफारिशें सरकार द्वारा बिना किसी हेर-फेर के स्वीकार तथा कार्यान्वित की जाती हैं। जब कभी सरकार के पास समिति द्वारा की गई सिफारिशों से मतभेद के कारण होते हैं तो ऐसे कारण समिति के सामने रखे जाते हैं। समिति सरकार के विचारों को दृष्टिगत रखकर मामले पर पुनर्विचार करती है और फिर या तो अपनी सिफारिशों में संशोधन कर देती है अथवा उन पर दृढ रहती है। मतभेद सामान्यत इसी रीति से दूर कर लिए जाते हैं और जहाँ तक भी सम्भव होता है इस सम्बन्ध में समझौता कर लिया जाता है। यदि कार्यपालिका तथा समिति इस विषय में किसी समझौते पर नहीं पहुँचते तो अन्त में मामला संसद के सामने रखा जाता है, यद्यपि वास्तव में ऐसा अवसर आज तक कभी आया नहीं है।

इस समिति की सामान्य आलोचना यह की जाती है कि इसका कार्य शव-परीक्षा (Post-mortem) करना है। इस परीक्षण से कोई मतलब हल नहीं होता क्योंकि एक बार धन जब गलत तरीके से व्यय कर दिया जाता है तब उसके पश्चात् उसे वापिस नहीं लौटाया जा सकता। परन्तु इस सम्बन्ध में यह तर्क दिया जा सकता है कि शव-परीक्षा की भी अपनी निजी उपयोगिता होती है। "यह तथ्य अथवा ज्ञान ही, कि एक ऐसी समिति भी है जो कि किये गये कार्य का सूक्ष्म-परीक्षण करेगी, कार्यपालिका की शिथिलता अथवा उपेक्षा पर...एक बड़ी रोक लगाता है। यह परीक्षा यदि समुचित रीति से की जाती है तो इससे प्रशासन की सामान्य कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। समिति द्वारा की जाने वाली परीक्षा भावी अनुमानों तथा भावी नीतियों (Future policies), दोनों के लिए ही एक मार्ग-दर्शक के रूप में भी लाभप्रद हो सकती है।"[1] सार्वजनिक लेखा-समिति की उपयोगिता केवल इस कारण ही समाप्त नहीं की जा सकती चूंकि इसका कार्य शव-परीक्षा करना है। यह तथ्य ही कि धन के व्यय होने के पश्चात् कोई लेखों अथवा खातों (Accounts) की जाँच करेगा, सरकारी अधिकारियों को सावधान रखता है इन प्रतिवेदनों के सम्बन्ध में

1 Speeches and writings G V Mavalerkar Speech to P. A C April, 10, 1950 p 79

संसद के प्रति कार्यपालिका की उत्तरदायिता (Responsibility) का प्रभाव यह होता है कि वित्तीय प्रशासन की कार्य कुशलता बढ़ती है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि समिति के कार्य इस प्रकार हैं। प्रथम तो, इस विषय में आश्वस्त होना कि धन संसद की इच्छानुसार व्यय किया गया है; दूसरे, इस विषय में आश्वस्त होना कि व्यय करते समय पर्याप्त मितव्ययता का ध्यान रखा गया है, और तीसरे, सभी वित्तीय मामलों में लोक-नैतिकता (Public morality) के ऊंचे स्तरों को कायम रखना। समिति का नियन्त्रण एक विशेषज्ञ का नियन्त्रण है क्योंकि यह एक ऐसे दक्ष एवं विशेषज्ञ-लेखापरीक्षण का पूर्ण उपयोग करती है जिसके उद्देश्य इसके अपने उद्देश्यों से ताल-मेल खाते हैं। इसके अतिरिक्त, समिति का नियन्त्रण मुख्यतः एक वित्तीय नियन्त्रण है। इसका मुख्य कार्य लेखा-परीक्षण (Audit) की जांच करना है। चालू व्यय की जाँच-पड़ताल से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसका नियन्त्रण तो न्यायिक (Judicial) होता है। कानून बिल्कुल स्पष्ट होता है, विभागों के विगत कार्य स्पष्ट होते हैं और सदस्यों को यह निश्चय करना होता है कि कानून तथा विभागों के विगत कार्य (Past actions) एक दूसरे से मेल खाते हैं या नहीं। यह एक निर्दलीय नियन्त्रण होता है। आस्टिन चेम्बरलेन ने इस समिति का वर्णन इन शब्दों से किया है: "यह न्यायाधीशों की एक समिति है जोकि अपने कार्य के समय सभी दलीय विचारधाराओं को एक ओर रख देती है।"[1] "अपने इन्हीं गुणों के कारण सार्वजनिक लेखा समिति ने सफलता प्राप्त की है। लेखा-समिति को विशेषज्ञ एवं दक्ष होना ही चाहिए क्योंकि इसको अनेक जटिल एवं तकनीकी प्रश्नों से निपटना होता है तथा विशेषज्ञों के साथ उन पर वाद-विवाद करना होता है। यदि इसे लेखा-परीक्षण के निष्कर्षों का सर्वोत्तम रीति से लाभ उठाना है तो इसका नियन्त्रण मुख्यतः वित्तीय नियन्त्रण ही होना चाहिए। इसके न्यायिक तथा निर्दलीय होने की ख्याति प्राप्त करने की सामर्थ्य का अर्थ यह है कि यह एक ऐसे विश्वास, निश्चितता तथा प्रभाव के साथ कार्य कर सकती है जिन्हें कि राजनीति से सम्बद्ध निकायों (Bodies) से प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती……।"[2] भारतीय लोक लेखा समिति ने भी निर्दलीय होने की ख्याति प्राप्त की है और इसने बिना किसी भय अथवा पक्षपात के, भारत सरकार के विभिन्न विभागों से सम्बन्धित व्यय की अनेक अनियमितताओं का उल्लेख किया है।

---

1 House of Commons Debates 28-6-1921 Col 2985.

2 Basil Chubb : *The Control of the Public Expenditure* 1952, Oxford pp 196 97

समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें
(Important Recommendations of the Committee)

लेखों (Accounts) तथा लेखा-परीक्षण (Audit) की पृथकता के सम्बन्ध में सार्वजनिक लेखा समिति ने यह विचार व्यक्त किया : "राजकोषीय नियन्त्रण के इस प्रश्न पर विचार करते समय, समिति कुछ ऐसे स्थानों की प्रचलित व्यवस्था का भी उल्लेख करना चाहेगी जहां कि भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग के कार्यालयों पर पूर्व-लेखापरीक्षण (Pre-audit) का सचालन करने तथा प्रदायगियों अथवा भुगतान (Payments) करने के उत्तरदायित्वों का भार भी डाल दिया गया है। धन के भुगतान करने तथा प्रारम्भिक लेखे रखने का कार्य कार्यपालिका के प्राधिकारियों (Executive authorities) का है, और यह बात सर्वविदित है तथा सार्वलौकिक रूप से स्वीकार की जाती है कि भुगतानों अथवा प्रदायगियों का लेखा-परीक्षण करने वाला अभिकरण (Agency) उस अभिकरण से पृथक् तथा स्वतन्त्र होना चाहिए जिसे कि वितरण तथा भुगतान करने होते हैं क्योंकि इन कार्यों को संयुक्त करने से सम्भावना यह है कि जालसाजी तथा गबन करना सुविधाजनक हो जायेगा और उनका प्रकाश में आना भी कठिन हो जायेगा। इससे महालेखा-परीक्षक की स्थिति बड़ी उलझनपूर्ण तथा नियम-विरुद्ध हो जाती है। अतः भारतीय लेखा-परीक्षण विभाग को भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बनाना मौलिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से गलत है। नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक ने समिति को सूचित कर दिया है कि यह तथा उसके पूर्ववर्ती अधिकारी (Predecessors) समय-समय पर सरकार से इस बात का विरोध करते रहे हैं कि उसके विभाग को पूर्व-लेखा परीक्षण तथा राजकोषीय भुगतान के लिए उत्तरदायी बनाना अनुचित तथा अनुपयुक्त है, और इस बात का दबाव डालते रहे हैं कि उसको पूर्व-लेखा परीक्षण तथा भुगतान करने के कार्य से मुक्त कर दिया जाए। संवैधानिक दृष्टि से यह कार्य उसके विभाग के कर्तव्यों की परिधि से पूर्णतया बाहर है। परन्तु दुर्भाग्यवश विभिन्न सरकारों ने न तो इस कार्य की अनुपयुक्तता को ही अनुभव किया है और न इस व्यवस्था के जोखिम को ही समझा है, अतः इस माह नई दिल्ली राजकोष की स्थापना के अभिनव उदाहरण को छोड़कर, सरकारों ने नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के सुझाव को कार्यान्वित नहीं किया है। समिति नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के इन विचारों का पूर्ण समर्थन करती है कि उनके विभाग को बिना जरा भी देरी किये इस कार्य से मुक्त कर दिया जाना चाहिए, और यह सिफारिश करती है कि सम्बन्धित सरकारों द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में शीघ्र पग उठाये जाने चाहियें।"[1]

व्यय पर समुचित राजकोषीय नियन्त्रण रखने के लिए समिति ने अन्य महत्वपूर्ण सिफारिशें भी कीं समिति ने यह कहा कि "इस बात के विषय से आश्वस्त होने

1 Public Accounts Committee, Third Report, 1952—53 *Exchequer Control over Public Expenditure*, pp. 18—19.

के लिए, कि अनुमोदित अनुदानों (Grants) तथा संसद द्वारा किये गये विनियोजनों (Appropriations) से अधिक व्यय नहीं किये गये हैं, राजकोषीय नियन्त्रण की एक सन्तोषजनक व्यवस्था के अत्यन्त शीघ्र लागू किये जाने की आवश्यकता है। यह बड़ी अनुचित बात है कि नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को संघ तथा राज्य सरकारों के लेखों के संकलन का तथा उनके ही लेखा परीक्षण का भी उत्तरदायित्व सौंपा जाये।" समिति ने यह सिफारिश की कि 'केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह जब राज्यों को वार्षिक अनुदान दे तब उन दशाओं एवं शर्तों का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दे जिनके अन्तर्गत तथा जिनकी पूर्ति के लिए उन अनुदानों का उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे कि अन्य अनचाहे कार्यों में अनुदानों के अन्तरित किये जाने का भय न रहे, तथा लेखा-परीक्षण करने वाले प्राधिकारियों को इस बात की जाँच करने में कोई कठिनाई न हो कि व्यय अनुदान की शर्तों तथा उद्देश्यों के अनुरूप किया गया है या नहीं।" 'नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक को यह भी अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि वह राज्य द्वारा संरक्षण प्राप्त व्यापारिक संस्थाओं के व्यय का भी लेखा-परीक्षण कर सके, चाहे उनका नाम कुछ भी क्यों न हो, क्योंकि न उनका वित्तीय-पोषण संचित निधि (Consolidated Fund) से ही किया जाता है।"

'सरकारी औद्योगिक व्यवसायों के प्रबन्ध के लिए निगमों (Corporations) की स्थापना संसद द्वारा पारित किये गये अधिनियमों (Acts) की सत्ता के अन्तर्गत की जानी चाहिये।"

'लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department) को पूर्व-लेखापरीक्षण तथा भुगतान के कार्य से मुक्त करने के लिए सम्बन्धित सरकारों द्वारा शीघ्रगामी पग उठाये जाने चाहियें।" सार्वजनिक लेखा समिति की ये अमूल्य सिफारिशें जब लागू की जायेंगी तब लोक-व्यय (Public Expenditure) पर समुचित राजकोषीय स्थापित हो जायगा।

अनुमान समिति
(Estimates Committee)

एक अन्य समिति जोकि संसद के उत्तरदायित्व पर वित्तीय नियन्त्रण लागू करती है, अनुमान समिति है।

अनुमान समिति सदन (House) के तीस सदस्यों को मिलाकर बनती है जिनका निर्वाचन प्रतिवर्ष किया जाता है। इसका मुख्य कार्य व्यय में मितव्ययता (Economy) लाने के सुझाव देना है अतः इसे 'सतत मितव्ययता समिति" (Continuous Economy Committee) कहा जाता है। इस समिति का सरकार की नीति से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसका काम इस विषय में आश्वस्त होना है कि सरकार द्वारा निर्धारित नीति के ढाँचे के अन्तर्गत सरकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए न्यूनतम व्यय ही किए जाए। समिति का वास्तविक कार्य, सरकार की नीति

तथा उद्देश्यों को स्वीकार करते हुए जिनसे कि उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, इस सम्बन्ध में सुझाव देना है कि उस नीति तथा उसके उद्देश्यों को सरकारी साधनों का न्यूनतम व्यय करके किस प्रकार क्रियान्वित तथा पूर्ण किया जा सकता है।

अनुमान समिति के कार्य इस प्रकार हैं —

(१) इस सम्बन्ध में रिपोर्ट देना कि अनुमानों में निहित नीतियों के अनुरूप क्या क्या मितव्ययताएं संगठनात्मक सुधार, कार्य कुशलता अथवा प्रशासनिक सुधार लाए जा सकते हैं।

(२) प्रशासन में कार्य-कुशलता तथा मितव्ययता लाने के लिए प्रचलित नीति के स्थान पर किसी अन्य नीति का सुझाव देना।

(३) इस बात की जाँच करना कि प्रशासकीय क्रियाओं के सम्पादन में जो धन लगा हुआ है वह अनुमानों में निहित नीति की सीमाओं के अन्तर्गत है या नहीं।

(४) अनुमानों को संसद के समक्ष प्रस्तुत करने की विधि के सम्बन्ध में सुझाव देना।[1]

यह एक या एक से अधिक उप समितियों (Sub Committees) की भी नियुक्ति कर सकती है। प्रत्येक उपसमिति को अविभाजित समिति की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ये उप समितियाँ ऐसे किसी भी मामले की जाँच करती है जोकि उनको सौंपा जाता है, और इन उप समितियों के प्रतिवेदनों (Reports) को सम्पूर्ण समिति (Whole Committee) के प्रतिवेदनों के सदृश ही माना जाता है, बशर्ते कि वे सम्पूर्ण समिति की किसी बैठक में अनुमोदित कर दिये जायें। इस शक्ति का प्रयोग अनेक अवसरों पर किया जा चुका है, उदाहरण के लिए, जब अनुमान समिति को उत्पादन मन्त्रालय (Ministry of Production) के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रीय उद्योगों के अनुमानों की जाँच करनी थी तब अनेक उप-समितियों की नियुक्ति की गई थी और एक-एक विशिष्ट उद्यम एक-एक उप-समिति को सौंप दिया गया था। उप समितियों की पद्धति कार्य-कुशलता बढाने वाली है। और इसके अच्छे रचनात्मक परिणाम निकलते हैं।

समिति सरकारी अधिकारियों से सुनवाई करती है और परीक्षणाधीन अनुमानों से सम्बन्धित अन्य गवाहियाँ लेती है। यह एक प्रश्नावली तैयार कर सकती है जिसके प्रश्नों का उत्तर विभागीय अध्यक्षों को देना होता है। यह विभागीय अधिकारियों से कोई भी चार्ट व आँकड़े आदि माँग सकती है।

इसके प्रतिवेदन सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली सिफारिशों के रूप में होते हैं। सरकार इन सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है अथवा उनको न स्वीकार करने के कारण दे सकती है। ऐसी स्थिति में, यदि समिति अपनी पहली सिफारिशों की ही पुन पुष्टि कर देती है तो उस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय संसद पर छोड़ दिया जाता है। तथापि, व्यवहार में ऐसी स्थिति उत्पन्न होने नहीं दी जाती

1 *Ibid*, Rule 310

और पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा ही मतभेद दूर कर लिए जाते हैं। जैसी कि लोक-सदन (House of Commons) में भी पद्धति है, अनुमान समिति के प्रतिवेदनों पर औपचारिक वाद-विवाद (Formal debate) नहीं किया जाता। सदस्य प्रतिवेदन पर या तो बजट पर सामान्य वाद-विवाद के समय विचार करते हैं अथवा उस समय जबकि सम्बन्धित अनुमान विचाराधीन होते हैं। अनुमान समिति ने लोक-निधियों का कुशल तथा मितव्ययी उपयोग करने के सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। अनुमान समिति ने प्रशासकीय, वित्तीय तथा अन्य सुधारों पर अपने नवें प्रतिवेदन (१९५३-५४) में निम्नलिखित सिफारिशें की —

"किसी भी योजना को प्रारम्भ करने से पहले, उसका समुचित रीति से निर्माण किया जाना चाहिए और इस बात का भी निश्चय किया जाना चाहिए कि योजना के लिए जितनी धनराशि की आवश्यकता है क्या वह उपलब्ध है अथवा उपयुक्त समय पर उपलब्ध की जा सकती है। योजनाओं तथा अनुमानों का ब्यौरेवार पूर्ण हिसाब लगाया जाना चाहिए जिससे कि वित्त-मन्त्रालय (Ministry of Finance) उस योजना का अनुमोदन करने तथा वित्तीय सहमति प्रदान करने में समर्थ हो सके।"

"जब वित्त-मन्त्रालय द्वारा वित्तीय दृष्टिकोण से योजना (Scheme) पर सहमति प्रदान कर दी जाय, तो उसके पश्चात् उस योजना के ब्यौरेवार कार्यान्वय तथा उस सम्बन्ध में धन व्यय करने का उत्तरदायित्व सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय का होना चाहिए तथा उसे यह अधिकार भी प्रदान किया जाना चाहिए कि वह योजना के उप-शीर्षकों के अन्तर्गत धनराशियों में उस सीमा तक हेर-फेर अथवा रद्दोबदल कर सके जहाँ तक कि कुल लागत-व्यय पर इसका कोई प्रभाव न पड़े।"

प्रशासकीय मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय द्वारा योजना का अनुमोदन किए जाने के पश्चात् उसको सम्बद्ध मन्त्रालय के बजट अनुमानों में सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए; और उसके बाद फिर जब तक कि योजना की कुल धनराशि में ही वृद्धि न हो तब तक योजना के विभिन्न उप-शीर्षकों के अन्तर्गत पुनर्विनियोजनों पर कोई अतिरिक्त अनुमति अथवा प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये। यदि योजना का पुनर्वालोकन करना पड़ जाये और उसके लिये और अतिरिक्त धनराशि की आवश्यकता हो, तो उस स्थिति में योजना की उस आवश्यक अतिरिक्त धनराशि को बजट अथवा अनुपूरक अनुदानों में सम्मिलित किए जाने से पहले वित्त-मन्त्रालय की सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

अधिकांश योजनाएं (Schemes) ऐसी होती हैं कि प्रारम्भ में अर्थात् निर्माण के समय उनके सभी पहलुओं पर विचार नहीं किया जाता और फिर योजनाओं के प्रारम्भ होने के पश्चात् प्रशासकीय मन्त्रालय अपने विचारों में वृद्धि, परिवर्तन अथवा उनका पुनर्निर्माण करते हैं। समिति के मत में, यह एक ऐसा तत्व है जिससे अत्यधिक

देरी तथा अपव्यय को प्रोत्साहन मिलता है और इसके कारण ही वित्त-मन्त्रालय द्वारा समय-समय पर सूक्ष्म-परीक्षण किया जाना आवश्यक हो जाता है।

"वित्त मन्त्रालय में काम के जमाव को समाप्त करने के उद्देश्य से तथा उसको प्रस्तावों पर प्रभावशाली नियन्त्रण लागू करने के योग्य बनाने के उद्देश्य से भी, अत्यन्त आवश्यक है कि सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालय कम से कम एक वर्ष पूर्व योजनाएं तैयार करें, हां कुछ अपवादभूत परिस्थितियों की बात दूसरी है जहाँ की योजना के तत्काल प्रारम्भ किये जाने की आवश्यकता हो और उस पर पहले विचार कर सकना अथवा हिसाब लगाना सम्भव न हो।"

इसी प्रकार द्वितीय लोक-सभा की अनुमान-समिति ने बजट सम्बन्धी सुधारों के विषय में प्रस्तुत किये गये अपने बीसवें प्रतिवेदन (१९५७–५८) में ये सिफारिशें की —

"वित्तीय वर्ष का प्रारम्भ पहली अक्तूबर से किया जा सकता है। यह व्यवस्था हो सकती है कि बजट अगस्त मास के अन्तिम पक्ष में संसद में उपस्थित किया जाय और सितम्बर के अन्त तक उस पर मतदान हो जाए। वाञ्छनीय यह होगा कि वित्तीय वर्ष के पहली अक्तूबर से प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में कोई भी कार्यवाही सभी राज्य-सरकारों के परामर्श से की जाये।"

"यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशासकीय मन्त्रालय अपनी-अपनी योजनाओं को बजट में सम्मिलित करने के लिए वित्त-मन्त्रालय के समक्ष केवल तभी प्रस्तुत करें जब कि उन सभी सम्बन्धित ब्यौरों (Details) का हिसाब लगा लिया जाए जोकि एक विशिष्ट योजना को स्पष्ट रूप से समझने के लिए आवश्यक हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दूरदर्शी योजनाओं को तैयार करने की प्रक्रिया पूरे वर्ष भर जारी रहनी चाहिए जिससे कि बजट की तैयारी के समय होने वाली काम की भीड़ को कम किया जा सके।"

"यह आवश्यक है कि एक ऐसी कार्य-विधि (Procedure) अपनाई जानी चाहिये जिसमें कि बजट के पश्चात् अतिरिक्त अनुमति की आवश्यकता को समाप्त किया जाए और जिसमें राज्य-सरकारों सहित विभिन्न सत्ताओं को यह आश्वासन दिया जाए कि अनुमोदित उद्देश्यों के लिए उपबन्धित धनराशियों के सम्बन्ध में, बिना व्यय की हुई धनराशि आगामी वित्तीय वर्ष के लिए उपलब्ध रहेगी।"

"यह वाञ्छनीय है कि सरकार जब भी उधार ले तभी प्रत्येक समय संसद को उसकी सूचना दे। इसके अतिरिक्त, वैयक्तिक उधार (Individual borrowing) के विवरण की सूचना भी संसद को, बाजार जाने के पहले तथा बाद में, दोनों समय दी जानी चाहिए।"

"यह भी आवश्यक है कि सरकार बजट सम्बन्धी कार्यविधियों तथा कार्यवाहियों का सतत रूप से पुनरावलोकन करती रहे जिससे कि जहाँ एक ओर वे अन्य देशों में की गई प्रगति से पीछे न रहें, वहाँ दूसरी ओर वे इस देश की आर्थिक तथा अन्य विशिष्ट लक्षणों को भी दृष्टिगत रखें।"

इस प्रकार इन दो समितियों के माध्यम से संसद द्वारा प्रभावशाली वित्तीय नियन्त्रण लागू किया जाता है।

भाग ४

नागरिक तथा प्रशासन

(CITIZEN AND ADMINISTRATION)

३५

प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण
(Legislative Control Over Administration)

प्रशासन के सम्बन्ध मे विधान-मण्डल के योग का अध्ययन किये बिना लोक-प्रशासन का अध्ययन अपूर्ण ही है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध मे विधान-मण्डल (Legislature) के महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निम्न प्रकार हैं —

(१) विधान-मण्डल ही इस बात का निश्चय करते है कि राज्य को क्या क्या कार्य करने होंगे और वे कार्य किन किन अभिकरणो को सौंपे जायेंगे। विधान-मण्डल सविधियो (Statutes) के द्वारा मूल नीतियों की मुख्य रूपरेखाए निर्धारित करते है और सगठन, अधिकारो, कर्त्तव्यों तथा प्रशासकीय प्राधिकारियों द्वारा अपनायी जाने वाली कार्यविधि (Procedure) की रीतियो की व्याख्या करते हैं। विधान-मण्डल कानून बनाता है और प्रशासकीय प्राधिकारियो की सीमाओ तथा उनके कार्यों का निर्धारण करता है।

(२) विधान मण्डल ऐसी शर्तों के अन्तर्गत जिन्हे कि वे उपयुक्त समझते हैं, वित्त की व्यवस्था करते हैं। विधान मण्डल धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय को स्वीकृति देने वाली सत्ता (Fund-raising and fund-granting authority) है। यह विभिन्न प्रशासकीय कार्यो के लिए धन की व्यवस्था करता है और भिन्न-भिन्न प्रशासकीय विभागो द्वारा किये जाने वाले व्यय की वैधता (Legality) तथा उपयुक्तता का आश्वासन देता है।

(३) विधान-मण्डल स्वतन्त्र लेखा-परीक्षण (Audit) के माध्यम द्वारा व्यय पर नियन्त्रण लगाते हैं। विधान-मण्डल प्रत्येक प्रशासकीय कार्य-क्रम के लिए धन का विनियोजन करते है और लेखा-परीक्षण के द्वारा वे इस बात का आश्वासन देते हैं कि प्रशासकीय प्राधिकारियो द्वारा धन का समुचित उपयोग किया गया है।

(४) विधान-मण्डल कभी-कभी कार्यविधियो अथवा प्रक्रियाओं का भी निर्धारण करते हैं, विशेषकर तब, जबकि उनसे महत्वपूर्ण वैयक्तिक हित प्रभावित होते हों।

(५) विधान-मण्डल प्रशासकीय प्राधिकारियो को शक्तियां प्रदान करते हैं और उन शक्तियो के प्रयोग पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाते हैं जिन्हे कि वे ठीक समझते है। विधान-मण्डल के अधिनियम (Acts) उन शक्तियों की सीमाओ का निर्धारण

करते हैं जोकि प्रशासकीय अभिकरणों द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं ; ये प्रायः उन शक्तियों के प्रयोग की रीति का भी निर्धारण करते हैं।

(६) विधान-मण्डल अपनी समितियों के द्वारा किसी भी प्रशासकीय अभिकरण (Agency) की कार्य-प्रणाली की जाँच-पड़ताल कर सकता है।

(७) विधान-मण्डल में विवादों तथा पर्यालोचनों के द्वारा सदस्यों को एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है जिससे कि वे प्रशासन को उत्तर-दायी ठहरा सकें।

विधान-मण्डल एक नियन्त्रणकारी सत्ता है जिसके प्रति मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) तथा प्रशासकीय अभिकरण उत्तरदायी होते हैं। इसे अनेक ऐसे अवसर प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा यह जान सकता है कि लोक-प्रशासन अपने कर्त्तव्यों का तथा इसकी आज्ञाओं का कहाँ तक पालन कर रहे हैं।

वार्षिक बजट-विवाद, प्रश्नोत्तर (Interpellations) तथा कार्य-पालिका से प्रश्न व लेखा-परीक्षण (Audit) आदि—ये सब विधान-मण्डल को प्राप्त होने वाले ऐसे अवसर हैं जिनके द्वारा वह प्रशासन पर नियन्त्रण लागू करता है।

भारत मे प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण
(Parliamentary Control Over Administration in India)

अन्य किसी भी विधान-मण्डल के समान भारतीय ससद (Indian Parliament) के तीन मुख्य कार्य हैं: कानून बनाना, वित्त की व्यवस्था करना तथा प्रशासन का पर्यवेक्षण (Supervision) करना। भारत मे ससद मन्त्रियो (Ministers) के माध्यम से प्रशासकीय अधिकारियो पर नियन्त्रण लगाती है। मन्त्री अपने-अपने विभागो (Departments) के कार्य-सचालन के लिए ससद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्रशासन पर नियन्त्रण लगाने के लिए ससद निम्नलिखित उपाय काम मे लाती है —

(१) ससद के सदस्य मन्त्रियो से उनके विभागो के कार्य-सचालन के बारे मे प्रश्न पूछ सकते हैं।

(२) ससत्सदस्य किसी भी विभाग की कार्य-प्रणाली पर वाद-विवाद तथा तर्क-वितर्क कर सकते हैं।

(३) सार्वजनिक महत्व के किसी भी मामले पर स्थगन-प्रस्ताव (Motion for Adjournment) सदस्यो को एक ऐसा अवसर प्रदान करता है जिसके द्वारा वे किसी भी विभाग के कार्य-सचालन पर विवाद कर सकते हैं।[1]

(४) सार्वजनिक हित (Public interest) के किसी भी मामले पर वाद-विवाद किया जा सकता है।[2]

---

1 Rule 56

2 Rule 50 (1)

(५) अत्यावश्यक सार्वजनिक महत्व के मामलो पर अल्पकालीन वाद-विवाद किया जा सकता है ।[1]

(६) सदस्य अत्यावश्यक सार्वजनिक महत्व के मामलो की ओर मन्त्रियो का ध्यान आकर्षित कर सकते है ।[2]

(७) असन्तुष्ट सदस्य किसी मन्त्री अथवा पूरे मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव (Motion of non-confidence) रख सकते है ।

(८) राष्ट्रपति के अभिभाषण पर वाद-विवाद किया जा सकता है ।

(९) विधेयको (Bills) पर वाद विवाद होता है ।

(१०) बजट सम्बन्धी वाद-विवाद ।

(११) ससद अपनी समितियो के द्वारा नियन्त्रण लगाती है ।

(१२) ससद नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor-General) के लेखा-परीक्षण (Audit) के द्वारा धन के व्यय पर नियन्त्रण लगाती है ।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि प्रशासन पर नियन्त्रण रखने मे ये उपाय किस प्रकार सहायक होते है ।

(१) ससदीय प्रश्न
(Parliamentary Questions)

प्रश्न पूछना ससदीय नियन्त्रण की एक अत्यन्त प्रभावशाली रीति है । ससदसदस्य उचित समय की सूचना देने के पश्चात् मन्त्रियो से प्रश्न पूछ सकते हैं । इस सम्बन्ध मे अनुपूरक प्रश्नो (Supplementary questions) का भी एक उपलब्ध (Provision) है ।[3] मन्त्रियो पर उनके विभागो के दिन-प्रतिदिन के कार्य-सचालन के सम्बन्ध मे प्रश्नो की झडी लगा दी जाती है । प्रश्नो के द्वारा शिकायतें व्यक्त की जा सकती है तथा जानकारी प्राप्त की जा सकती है । प्रश्न सिविल-सेवको को सावधान तथा सतर्क रखते है । अनेक प्रश्न नौकरशाही (Bureaucracy) को जवाबदेह बनाने के लिए पूछे जाते हैं । प्रश्न एक ऐसा अवसर प्रदान करते है जिसके द्वारा प्रशासकीय नीति अथवा क्रिया के किसी भी भाग की ओर जनता का तत्काल ध्यान आकर्षित किया जा सकता है । Hugh Gaitshell का कहना है कि "प्रत्येक व्यक्ति, जिसने कि कभी भी सिविल-सेवको के विभाग मे कार्य किया होगा, मेरे इस विचार से सहमत होगा कि यदि कोई ऐसी मुख्य चीज है जोकि सिविल-सेवको को अत्यधिक सतर्क, सावधान तथा भयभीत रखती है तथा जो ऐसे अभिलेख (Records) रखने को प्रोत्साहन देती है जोकि सिविल-सेवा से बाहर अनावश्यक समझे जाते,

1 Rule 197.

2 Rule 193 94 95

3 (Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha, Lok Sabha Secretariate, New Delhi, 1957—Rule 32—53)

तो वह ससद मे पूछे जाने वाले प्रश्नो का डर ही है।"[1] प्रत्येक कार्यवाही प्रश्न पूछने को उत्तेजित कर सकती है, प्रत्येक प्रश्न स्थगनविवाद का रूप ले सकता है और प्रत्येक स्थगन-प्रस्ताव पूर्ण वाद-विवाद का रूप धारण कर सकता है। ससदीय प्रश्न नौकरशाही की बुराइयो के विरुद्ध व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा के लिये त्रुटियों के परीक्षण तथा बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश (Writ of Habeaus Corpus) के रूप मे श्रेणीबद्ध किये जा सकते हैं। W. B Munro ने ठीक ही कहा है कि "यद्यपि ये प्रश्न कभी-कभी उस मन्त्री को जिससे कि ये पूछे जाते है, अथवा उस सरकार को, जिससे ये सम्बन्ध रखते है, गिराने के लिए तारपीडो का काम करते हैं तथापि लोक प्रशासन पर नियन्त्रण लगाने की यन्त्र-रचना में से एक महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं।"[2]

(२) वाद-विवाद तथा पर्यालोचन
(Debate and Discussions)

वाद विवाद तथा पर्यालोचन अथवा तर्क-वितर्कों के द्वारा, ससद अनेक सरकारी अभिकरणों की प्रशासकीय क्रियाओं का सूक्ष्म-परीक्षण करती है। वाद विवाद तब होता है जब किसी नई विधि अथवा कानून का निर्माण किया जाता है अथवा पुराने कानून मे सशोधन अथवा उसका खण्डन किया जाता है। प्रशासन पर ससदीय नियन्त्रण की दृष्टि से बजट-विवाद (Budget debates) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। विनियोजन-प्रक्रिया एक ऐसा सबसे अधिक व्यापक तथा व्यवस्थित साधन है जिसके द्वारा विधान मण्डल प्रशासकीय क्रियाओं का पुनरावलोकन करता है। बजट-विवादों को एक महान् वार्षिक राष्ट्रीय जांच समझा जाता है। विभिन्न विभागों से सम्बन्धित अनुदानो (Grants) की मांगों पर विचार के समय, ससद सम्पूर्ण विभाग की कार्य-प्रणाली की जांच, सूक्ष्म-परीक्षण तथा पुनरावलोकन करती है। "सक्षेप मे, प्रश्न तथा वाद विवाद के द्वारा प्रशासन का स्थायी रूप से सतत पुनरावलोकन किया जाता है। छोटे से छोटा विवरण अथवा ब्यौरा बड़े परिणामो के रूप मे सामने आ सकता है क्योंकि विरोधी दल अपना पूरा समय कार्यपालिका की त्रुटियो को ढूंढने मे ही लगाता है, और एक बार जब वह ऐसी त्रुटियो का पता लगा लेता है तो उसे उनकी निरन्तर आलोचना करने के असीमित अवसर प्राप्त हो जाते हैं।"[3]

(३) समितियो द्वारा ससदीय नियन्त्रण
(Parliameutary Control through Committees)

ससदीय समितियाँ प्रशासन पर व्यापक नियन्त्रण लगाती हैं। वे प्रशासन के कार्य-सचालन की जाँच-पड़ताल तथा सूक्ष्म-निरीक्षण करती हैं। भारत मे सार्वजनिक

1 (Hugh Gaitshell Hansard 21, Oct 1947 Col 74)

2 W B Munro, *Modern Governments of Europe*

3 N V Gadgil Accountability of Administration, the Indian Journal of *Public Administrations* New Delhi Vol I No 3, p 199

लेखा समिति (Public Accounts Committee) तथा अनुमान समिति (Estimates Committee), संसद की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण वित्त समितियां हैं। ये समितियां प्रशासन पर बड़ा नियन्त्रण करती हैं। "सार्वजनिक लेखा समिति को भारत सरकार के विनियोजन लेखों (Appropriation Accounts) का तथा उन पर नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के प्रतिवेदन का सूक्ष्म-परीक्षण करना होता है, और इसे यह स्पष्ट करना होता है कि धन वैधानिक रूप से तथा ईमानदारी के साथ व्यय किया गया है या नहीं।" अनुमान समिति सम्पूर्ण विभाग के संगठन का पुनर्वालोकन करने के पश्चात् व्यय में मितव्ययता लाने के सुझाव देती है। आश्वासन समिति (Committee on Assurances) सदन-कक्ष में मन्त्रियों द्वारा समय-समय पर दिये गये आश्वासनों, वायदों व कार्यों आदि की छानबीन करती है और समिति को इस सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन देना होता है कि (क) ये आश्वासन, वायदे तथा कार्य आदि किस सीमा तक पूरे किये गये हैं, और (ख) जहां ये पूरे किये गये वहां उसकी पूर्ति आवश्यक न्यूनतम समय में की गई या नहीं।[1]

इस समिति ने 'केवल प्रशासकीय कार्य कुशलता की देखभाल रखने में ही सहायता नहीं की है, अपितु पुरानी पद्धति में निहित अनेक दोषों को दूर करने में भी सहायता पहुंचाई है। मन्त्रीगण अब वायदे करते समय सावधान रहते हैं और प्रशासन किए हुए वायदों के सम्बन्ध में कार्यवाही करने के बारे में काफी सक्रिय रहते हैं··· । सरकार के विभिन्न मन्त्रालय अब संसद के प्रति अपने कर्त्तव्यों के बारे में जागरूक रहते हैं।"[2]

(४) लेखा-परीक्षण द्वारा नियन्त्रण
(Control through Audit)

विधान-मण्डल धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता है। जब यह धन को व्यय करने की अनुमति देता है, तो इस बात के बारे में भी आश्वस्त रहता है कि धन वैधानिक रूप से तथा ईमानदारी के साथ व्यय किया जाय। संसद द्वारा व्यय पर यह नियन्त्रण अपने सरकारी नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक के माध्यम से किया जाता है। वह विधान-मण्डल के उत्तरदायित्व पर व्यय का लेखा परीक्षण करता है और अपना लेखा-परीक्षण प्रतिवेदन विधान-मण्डल के समक्ष रखता है। लेखा-परीक्षण 'सरकारी अधिकारियों को जवाबदेह बनाने वाले मुख्य ऐतिहासिक उपायों में से एक उपाय माना गया है।'

---

1 Rule 323

2 M N Kaul, "*Parliamentary Procedure since Independence*" Article in Civic Affairs, March 1951, p 14

प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण की सीमायें
(The Limits of Legislative Control over Administration)

विधान मण्डल को प्रशासन के दिन प्रतिदिन के कार्य पर व्यापक नियन्त्रण नहीं लगाना चाहिए। विधान-मण्डल को चाहिए कि वह प्रशासकीय अधिकारियों को शक्तियों का हस्तान्तरण (Delegation) करे; साथ ही इसे उन शक्तियों के प्रयोग के सम्बन्ध में सदा सावधान रहना चाहिए। जहां सरकारी अधिकारी अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें वहां इसे उन पर रोक लगानी चाहिए। परन्तु विस्तृत मात्रा में विधायी नियन्त्रण लगाने से प्रशासन में पक्षाघात की सी स्थिति उत्पन्न होने का खतरा बना रहता है। विधान-मण्डल को सिविल-सेवकों पर विश्वास होना चाहिए। जॉन स्टुअर्ट मिल ने भी प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण की सीमाओं का उल्लेख किया है।

जान स्टुअर्ट मिल ने "Proper Function of Representative Bodies" के अपने अध्याय में लिखा है कि प्रतिनिधि सभा के समुचित कार्य शासन-प्रबन्ध करने की बजाय जिसके लिए कि वह पूर्णत अनुपयुक्त है, ये हैं 'सरकार की देखभाल करना तथा उस पर नियन्त्रण रखना; उसके कार्यों के प्रचार पर प्रकाश डालना,' यदि उनके बारे में कोई प्रश्न उठाये तो उनका औचित्य सिद्ध करने तथा उनकी पूर्ण व्याख्या करने को बाध्य करना; यदि वे कार्य निन्दा योग्य हों तो उनकी निन्दा करना व रोक लगाना, और यदि सरकारी अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करें अथवा उनका ऐसी रीति से उपयोग करें जोकि राष्ट्रीय भावना के विरुद्ध हो तो उनको पद विमुक्त करना, और उनके उत्तराधिकारी नियुक्त करना"' । किसी भी राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा के लिए यह शक्ति बहुत है । इन सीमाओं के अन्तर्गत प्रतिनिधि सभा के कार्यों द्वारा लगाया जाने वाला प्रतिबन्ध ऐसे लोकप्रिय नियन्त्रण के लाभों को प्राप्त कराने में समर्थ होगा जोकि कुशल विधान तथा प्रशासन की आवश्यकताओं से कम नहीं होगा।

आवश्यकता इस बात की है कि विधायकगण (Legislators) अपने सोचने-विचारने का तरीका बदलें, क्योंकि वे सिविल-सेवकों की प्रत्येक क्रिया को सन्देह भरी दृष्टि से देखते हैं चूंकि भारतीय संसद सिविल-सेवकों का विश्वास नहीं करती, अत उसने सत्ता के हस्तातरण की आवश्यकता तथा उसके लाभों को नहीं समझा है।

"अन्ततः संसद शक्तियों के हस्तान्तरण के विरोध का मुख्य गढ़ है। शक्ति के हस्तान्तरण का अभाव भारतीय प्रशासन का सबसे बड़ा दोष है। शक्तियों के व्यापक हस्तान्तरण के प्रति संसद की अनिच्छा, जबकि संसदीय शक्तियों को महत्वपूर्ण तथा ठोस बनाने के लिए ऐसा हस्तान्तरण अत्यन्त आवश्यक है, मन्त्रियों को अपनी शक्तियों के हस्तान्तरण के प्रति हतोत्साहित करती है और सचिवों (Secretaries) को अपनी शक्तियों के हस्तान्तरण के प्रति हतोत्साहित करती है।

भारत को आज अन्य सब बातो से अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, और ससद को सबसे अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, वह है सयुक्त सचिवो (Joint Secretaries) द्वारा अधिक शासन, उप-सचिवो (Deputy secretaries) द्वारा अधिक शासन, अवर-सचिवो (Under secretaries) द्वारा अधिक शासन, और प्रबन्ध निर्देशकों (Managing directors) तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियो द्वारा अधिक शासन। यही एक ऐसी रीति है जिसके द्वारा अधिक शासन किया जा सकता है तथा ससद सामान्य मार्गदर्शन की दिशा मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकती है।

ससद के सदस्य अपेक्षाकृत स्वायत्तता-प्राप्त उद्यमो की स्थापना के प्रति अपनी अभिरुचि प्रकट करते हैं। इस लेखक ने कभी ऐसा कोई उदाहरण नही सुना जिसमे लोकतन्त्रीय सरकार ऐसे किसी भी उद्यम पर किसी भी ऐसी रीति से, जोकि वास्तव मे सरकार के लिए महत्वपूर्ण हो, नियन्त्रण न लगा सकी हो या उसने नियन्त्रण न लगाया हो। जब तक कि ससद स्वय को बडी कार्यवाही के उपयुक्त नही बनाती और सामान्य निर्देशन के उच्च-स्तर के कार्यों के लिए स्वय प्रयत्न नही करती, तब तक भारत का भविष्य सदिग्ध ही रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि ससद उच्च-स्तर (High level) पर कार्य करने की आवश्यकता को समझे। जहाँ तक प्रशासन का सम्बन्ध है, यह अधिकतर निम्न स्तर पर कार्य करती है। यह बात आश्चर्यजनक नही है, विधान-मण्डल सभी जगह अपने कार्यों को शनै शनै बढाने लगते हैं और जब वे प्रशासन में विशिष्ट मामलो से व्यवहार करने की चेष्टा करते हैं तो प्रत्येक स्थान पर कम से कम योग्य (Least competent) साबित होते हैं। लेखक ने भारतीय प्रशासन मे अन्य बडी आवश्यकताओं की अपेक्षा इनके प्रति कम जागरण पाया है।

"शक्ति के हस्तान्तरण से उत्तरदायित्व के क्षेत्र मे वृद्धि होती है।" ससद को इस सम्बन्ध मे काफी विचार करने की आवश्यकता है।

"मैं यह सुझाव देना चाहता हू कि सबसे सरल तरीका, जिसके द्वारा कि ससद प्रशासन पर अपने निषेधात्मक (Negative) प्रभाव को निश्चयात्मक (Positive) प्रभाव मे बदल सकती है, यह होगा कि वह कार्यों की आलोचना करने की दृष्टि से देखना बन्द करे और उनको प्रशसा करने की दृष्टि से देखना आरम्भ करे। ऐसा होने पर यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा कि जो कुछ प्रशसनीय है वह कम नही है' 'और यह कि कार्य करने के नये-नये साहसपूर्ण तरीके अपनाये जा रहे हैं। साहस, पहले करने की क्षमता (Initiative) तथा योग्य कार्यों की प्रशसा की जानी चाहिए। तथापि, यह भय हो सकता है कि ससद के हाथो मे इस प्रयत्न का भी रूप विगड ही जायेगा, जैसा कि एकपक्षीय नए विचारो को पुरस्कार देने की अमेरिकन पद्धति में हुआ। ऐसी पद्धति म कम ही लाभ होता है' ।" मेरे विचार से यहा आवश्यकता इस बात की है कि अपने कार्यों की वास्तविक सफलता के लिए ससद को प्रशासन पर निर्भर रहने की स्थिति को उच्च मान्यता देनी चाहिए। ब्रिटिश

पद्धति मे ब्रिटिश सिविल-सेवकों को उच्च सम्मान प्रदान करना बड़ा मूल्यवान सिद्ध हुआ है''' । परन्तु स्थिति यह है कि ब्रिटेन में, संसद तथा जनता की दृष्टि मे लोक सेवा की प्रतिष्ठा बडी ऊँची है । यहाँ जनता की दृष्टि मे तो इसकी प्रतिष्ठा ऊँची है, परन्तु संसद इस मामले मे छिद्रान्वेषी, प्रशंसा न करने वाली तथा कृपण रही है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सिविल कर्मचारियों का दृष्टिकोण निषेधात्मक तथा शासन-विरोधी रहा करता था । स्वतन्त्रता के अभियान के लिये तो ऐसा दृष्टिकोण आवश्यक था । परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारतीय नेताओं के सामने एक बडी समस्या यह रही है कि स्वतन्त्र तथा क्रान्तिकारी भारत द्वारा आयोजित कार्यक्रमों की सफलता के लिए इस दृष्टिकोण को एक ठोस, कार्यकारी तथा सत्यागत उत्तर-दायित्व के रूप मे किस प्रकार परिवर्तित किया जाए । औपनिवेशिक शासन से भारत के अपने निजी शासन मे भाग लेने का यह परिवर्तन ससद-सदस्यों तथा नेताओं के लिए जितना कठिन रहा है उसका २०वां भाग भी सिविल-सेवकों के लिए कठिन नहीं रहा, और यह परिवर्तन काफी समय पहले ही कर लिया गया । सिविल-सेवकों पर ससदीय अविश्वास का एक आश्चर्यजनक एवं अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ है कि सिविल सेवकों ने औपनिवेशिक शासन की कठोर कार्यविधियों एवं प्रक्रियाओं तक ही स्वयं को सीमित रखा है और इससे नवीन भारत के नीति सम्बन्धी महान् उद्देश्यों को पूरा करने की उनकी क्षमता मे भारी कमी हुई है । सिविल-सेवा एक ऐसा आवश्यक यन्त्र है जिसके द्वारा कोई भी कार्यवाही आगे बढाई जा सकती है , और यदि उसका ही उपयोग अविश्वास के साथ किया गया तो उसके कार्य भी कम ही प्रभावशाली होंगे ।

"भारत अपने महान् प्रयत्नों मे सफल होगा या नहीं"— यदि इस प्रश्न के उत्तर के निचोड को कुछ थोडे से आवश्यक तत्वों म रख सकना सभव हो, तो मैं दो आवश्यक तत्वों पर जोर दूंगा जोकि निम्न दो प्रश्नों के रूप मे हैं

"क्या भारत, अपने भाषावार विभाजन का सामना करते हुए तथा अपने प्रशासन के एक बडे भाग के लिये असाधारण रूप से राज्यों पर निर्भर रहते हुए अपनी राष्ट्रीय एकता तथा शक्ति को कायम रखने मे तथा उसका विकास करने मे समर्थ हो सकेगा ?"

"क्या जनता तथा ससद इस बात की ओर पर्याप्त ध्यान देने तथा सत्ता के हस्तान्तरण द्वारा ऐसी कोटि की लोक-सेवा की व्यवस्था करने के लिए यथेष्ट रूप मे इच्छुक हैं जोकि प्रशासकीय प्रभावपूर्णता के लिए आवश्यक हो ?"

अन्त मे भारत को प्रशासन मे केवल उतना ही लाभ प्राप्त होगा जितना कि वह उसका मूल्य अदा करेगा और जितना वह उसे अवसर प्रदान करेगा । यदि भारत ने स्वयं को मर्यादित क्षमता की नौकरशाही तक ही सीमित रखा, तो राष्ट्रीय सफलताएं भी उसी हद तक सीमित हो जायेंगी ।[1]

1 Appleby op cit.

नौकरशाही (Bureaucracy) की अनियन्त्रित बुराइयों पर रोक लगाने के लिए प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण का होना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु विधान-मण्डल द्वारा प्रशासन मे छोटी-छोटी बातो के आधार पर अधिक हस्तक्षेप नही होना चाहिए। प्रशासकों को शासन-कार्य चलाने के लिए शक्ति तथा सत्ता प्राप्त होनी ही चाहिए। विधान-मण्डल तथा सरकार की कार्यपालिका शाखाओ के कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों की स्पष्ट रूप से व्याख्या तथा सीमांकन होना चाहिए। विधान-मण्डल को चाहिए कि वह प्रशासन मे आने वाली बुराइयों को दूर करे परन्तु उसे देश का शासन-कार्य स्वयं ही चलाने का प्रयत्न नही करना चाहिए। विधान-मण्डल को सगठन के आन्तरिक प्रशासन के लिए विस्तृत नियमो का निर्धारण नही करना चाहिए क्योंकि इस स्थिति मे प्रशासकों के लिए कोई भी पहल करना कठिन हो जाता है। प्रशासकों को भी चाहिए कि वे विधान-मण्डल का विश्वास तथा सद्भाव प्राप्त करने का प्रयत्न करें। ऐसा तभी किया जा सकता है जबकि प्रशासक विधायकगण को राष्ट्र के मामलो से परिचित रखने का अधिक प्रयत्न करें, और बदले मे स्वयं भी विधायकों (Legislators) के विचारों से परिचित रहे।[1]

हस्तान्तरित अथवा अधीनस्थ विधान
(Delegated or Subordinate Legislation)

१. अर्थ :

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि विधान-मण्डल (Legislature) का कार्य विधान बनाना है परन्तु ससार के विभिन्न देशो के विधान-मण्डल प्रशासकीय प्राधिकारियों को बडी-बडी विधायी शक्तियो का हस्तातरण करते रहे है। इस व्यवस्था को 'हस्तान्तरित अथवा अधीनस्थ विधान' के नाम से पुकारा जाता है 'The Committee on Minister's Powers' ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है, "अधीनस्थ प्राधिकारियो तथा निकायो (Bodies) द्वारा, स्वयं संसद द्वारा प्रदत्त वैधानिक सत्ता के अनुसार, छोटी-छोटी विधायी शक्तियो के क्रियान्वय को ही हस्तान्तरित विधान कहा जाता है।"[2] हस्तान्तरित विधान का अर्थ या तो (क) अधीनस्थ प्राधिकारी, जैसे कि मन्त्री (*Minister*) द्वारा ससद से हस्तान्तरित हुई विधायी शक्ति (Legislative power) का क्रियान्वय है, अथवा (ख) ऐसे अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा बनाई जाने वाली सहायक विधि (*Subsidiary law*) से है। विधान-

1 "The legislature should also realize that the details of the business of Government have escaped the competence of legislative committees and Chairmen, the possibility of deciding policy by settling details, once perhaps feasible, has disappeared, and in the future legislatures perforce must deal with administration on the basis of Principle and generality if they are to deal with it effectively and in the public interest"

(L. D. White, *New Horizons in Public Administration*, pp. 5-6)

2 Report of the *Committee on the Minister's powers*, London

मण्डल अधिनियम (Act) पास करता है और उस अधिनियम के अन्तर्गत नियम *(Rule) बनाने की शक्ति सम्बन्धित मन्त्री को सौंप देता है।* कभी-कभी विधान-मण्डल किसी कानून की केवल मोटी रूपरेखा ही बनाता है और उस कानून की विस्तृत बातें पूरी करने का अधिकार सम्बन्धित मन्त्री को सौंप देता है। इसे ही हस्तान्तरित विधान कहा जाता है क्योंकि इसमें स्वयं संसद उन प्राधिकारियों (Authorities) को, जोकि विधान मण्डल के अधीनस्थ अथवा उसके प्रति उत्तर-दायी होते हैं, कुछ विधायी शक्तियाँ सौंप देती है।

२ हस्तान्तरित विधान की आवश्यकता :

महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के कारण, विधायी *शक्तियों के विस्तृत हस्तान्तरण की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। विस्तृत विधायी* शक्तियों का हस्तान्तरण करने वाले अधिनियम एक के बाद एक सविधि-पुस्तिका (Statute Book) में स्थान पा रहे हैं।

हस्तान्तरित विधान की वृद्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के कारण राज्य के कार्यों में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। संसद ऐसे विधान बनाने के कार्य में ही अधिकाधिक व्यस्त रहती है जिनका कि उद्देश्य समाज के दिन प्रतिदिन के कार्यों का नियमन करना होता है। अब तो राज्य ऐसे अनेक कार्यों को भी सम्पन्न करता है जिन्हें कि पहले *इसके क्षेत्र से पूर्णतः बाहर समझा जाता था। राज्य के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि होने* के कारण हस्तान्तरित विधान एक आवश्यकता बन गया है। विधान मण्डल आजकल अत्यधिक कार्य भार से लदे रहते हैं। यदि वे अपना कार्य कुशलता के साथ करना चाहते हैं तो उनके लिए केवल एक ही मार्ग है, और वह है सत्ता सौंपने का। ऐसा होता है कि संसद एक कानून की केवल मोटी रूपरेखा में पास करती है, और उस कानून की बारीकियों (*Details*) का पूरा करने का अधिकार सम्बन्धित विभाग को सौंप देती है। इस प्रकार संसद अपने आपको मुख्य नीति सम्बन्धी मामलों तक ही सीमित रखती है और बारीकियों से सम्बन्धित छोटे-छोटे मामले सम्बद्ध विभागों पर छोड़ दिये जाते हैं।

(२) शिल्पकला की प्रगति से वर्तमान युग में हस्तान्तरित विधान एक आवश्यकता बन गया है। संसद यथेष्ट रूप में इतनी सुसज्जित नहीं होती कि अनेक *प्राविधिक अथवा तकनीकी (Technical) मामलों की बारीकियों पर विचार कर* सके, जोकि मुख्यतः अधीनस्थ विधान का विषय होता है और जिसके *निर्माण* को राजनैतिक विचार प्रभावित नहीं करते। तकनीकी मामलों के सम्बन्ध में संसद कानून की एक मोटी रूपरेखा पास करती है और उसकी बारीकियों को पूरा करने का अधिकार उस अभिकरण (Agency) को सौंप देती है जोकि उस कार्य के लिए तकनीकी दृष्टि से पूर्ण सुसज्जित होता है।

(३) संसद के पास सदा ही समय का अभाव रहता है, अतः इसके सामने केवल एक ही रास्ता होता है और वह यह कि यह अपनी कुछ सत्ता अन्य अभिकरण को हस्तान्तरित करे।

(४) समय परिवर्तन के साथ ही साथ कानूनो मे भी हेर-फेर करने की आवश्यकता होती है। संसद ऐसे हेर-फेर अथवा परिवर्तन शीघ्रता के साथ नही कर सकती क्योंकि इसकी बैठकें लगातार नही होती। अतः कानून की बारीकियो मे परिवर्तन करने का प्राधिकार सम्बन्धित विभाग को सौंप दिया जाता है।

हस्तान्तरित विधान से संसद का समय बचता है। यह लोचहीनता (Inelasticity) को कम करता है क्योंकि लोचहीनता के कारण बहुधा अधिनियम (Act) अकार्यशील हो जाता है। संसद द्वारा पास किये गये अधिनियम के सम्बन्ध मे बनाये गये नियम (Rules) स्थानीय तथा विशिष्ट परिस्थितियो के लिए अधिक उपयुक्त रह सकते हैं बशर्ते कि इन नियमो को बनाने का अधिकार सम्बद्ध विभागो को दे दिया जाये। राज्य के निरन्तर बढते हुए कार्यों के कारण संसद का ध्यान केवल कानून के प्रमुख उपबन्धो (Provisions) तक ही सीमित रखने की तथा उसकी बारीकियो के निर्माण का कार्य विभागो पर छोड़ने की पद्धति का अनुकरण ही सम्भवतः एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा कि संसदीय शासन अपने विधायी कार्यों को सतोषजनक रूप से सम्पन्न कर सकता है। "यह (हस्तान्तरित विधान) प्रत्यक्ष रूप से संसद के अधिनियमो से सम्बन्धित होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक बालक अपने माता-पिता से सम्बन्धित होता है और बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है तो उससे यह माग की जाती है कि वह अपने माता-पिता का कुछ कार्य-भार अपने ऊपर ले, अतः छोटे-छोटे मामलो एवं कार्यों को वह निपटा लेता है जबकि माता-पिता मुख्य कार्य की देखभाल व प्रबन्ध करते हैं।"[1] ऐसा होने पर संसद को छोटी-छोटी बारीकियो की परवाह किए बिना विधान मे अधिक गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने के लिए अधिक समय मिल जायेगा। 'Committee on Minister's powers' के प्रतिवेदन मे यह कहा गया कि "सत्य तो यह है कि यदि संसद विधि-निर्माण की शक्ति के हस्तान्तरण के प्रति अनिच्छुक रही तो यह ऐसी [illegible] तथा कोटि का विधान पास करने मे असमर्थ रहेगी जैसा कि आज का [illegible] चाहता है ......।"[2]

प्रोफेसर हर्ट ने इन लाभों का संक्षेपीकरण निम्न प्रकार किया है

(१) कानून की बारीकियों (Details) मे [illegible] विधान-मण्डल अपना तथा जनता का ध्यान नीति के मौलिक तत्वों के [illegible] पर केन्द्रित कर सकता है और इस प्रकार शासन के [illegible] दृढ कर सकता है।

---

1 Cecil T. Carr, *Delegated Legislation*, p. 2

2 Report p. 32.

(२) ऐसा होने से विधान-मण्डल को अतिरिक्त समय भी मिल जाता है जिसमे कि वह ऐसी रीति की खोज कर सकता है जिसके द्वारा प्रशासकीय अधिकारी उसकी नीतियो को कार्यान्वित करें तथा आधुनिक रूप दें।

(३) चूँकि सविधियो (Statutes) की अपेक्षा इन नियमो (Rules) मे अधिक आसानी के साथ सशोधन किया जा सकता है अत गलतियो को सुधारने तथा परिवर्तित परिस्थितियो का सामना करने का कार्य भी सरल हो जाता है, बशर्ते कि कठिनाई कानून की बारीकियो के सम्बन्ध मे हो, मूल नीति के सम्बन्ध मे नहीं।

(४) प्रशासक उस दुविधा से बच जाता है जिसका कि उसे बहुधा उस समय सामना करना होता है जबकि विधायी बारीकियों (Legislative details) की लालफीताशाही से उसके हाथ बधे होते हैं।

(५) प्रशासक वह शक्ति होता है जोकि निरन्तर विशिष्ट समस्याओ से ही जूझता रहता है अत वह अनुभव के द्वारा ऐसे विशिष्ट नियमो का निर्माण कर सकता है जोकि विधान के उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से सर्वोत्तम हो।

(६) व्याख्यात्मक विनियम (Interpretative regulations) कानून की निश्चितता को बढाने का एक उपाय है, विशेषकर तब, जबकि सविधि (Statute) मे यह व्यवस्था की गई हो कि ऐसे विश्लेषणो अथवा अर्थों के अनुरूप ईमानदारी के साथ किये गए अथवा न किये गए किसी भी कार्य पर सिविल अथवा आपराधिक उत्तरदायिता लागू न होगी, चाहे ऐसे कार्य के किये जाने अथवा न किये जाने के पश्चात् उन विश्लेषणो अथवा व्याख्याओं को न्यायालयो द्वारा अवैध ही क्यो न ठहरा दिया गया हो।

(७) आकस्मिक विधान (Contingent legislation) एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा विधान-मण्डल किसी भी नीति को अवरुद्ध रख सकता है और उसका क्रियान्वित होना ऐसी अज्ञात भावी घटनाओ पर निर्भर रखा जा सकता है, जैसे कि किसी विदेशी सरकार की कोई कार्यवाही।

हस्तान्तरित विधान मे बचाव अथवा सुरक्षाए (Safeguards in Delegated Legislation)

हस्तान्तरित विधान कितना ही अनिवार्य क्यो न हो, "स्वेच्छाचारी प्रशासन के कीटाणुओं" का सामना करने के लिए कुछ सुरक्षाओं की व्यवस्था होनी चाहिए। हस्तान्तरित विधान की वृद्धि के कारण ही, एक भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश लार्ड हीवर्ट को यह कहना पडा कि एक नई निरकुशता (New Despotism) जन्म ले रही है। हस्तान्तरित विधान के कारण नौकरशाही व अधिनायकवाद की सम्भावना को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित सुरक्षाओ की व्यवस्था की जाती है —

(१) हस्तान्तरण सदा ही एक उत्तरदायी प्राधिकारी अर्थात् मन्त्री (Minister) को किया जाता है जोकि ससद के प्रति उत्तरदायी होता है। ससद केवल ऐसे

अभिकरण अथवा विभाग को ही अपनी सत्ता का हस्तातरण करती है जोकि उसके नियन्त्रण मे होता है।

(२) ससद हस्तातरित की गई विधायी शक्ति की सीमाओ की स्पष्ट रूप से व्याख्या करती है और यदि उन सीमाओ का उल्लघन किया जाता है तो नागरिको के अधिकारो की रक्षा के लिए न्यायालयो का आश्रय दिया जाता है।

(३) न्यायाधिकारी वर्ग आदेशो (Orders) की छानबीन कर सकता है और उनको अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित कर सकता है।[1]

अत ससद ऐसी व्यवस्था करती है कि हस्तातरित शक्ति के कार्यान्वय का खण्डन किया जा सके। नियमो (Rules) को सदन-कक्ष म चुनौती दी जा सकती है। ससदीय नियन्त्रण की दृष्टि स, इगलैंड मे दो प्रकार के वैधानिक लेख पत्र हैं —

(१) एक तो वे, जिनके लिए ससद से स्वीकारात्मक प्रस्ताव (Affirmative resolution) प्राप्त करना ही होता है। लेख पत्र (Instrument) का मसौदा (*Draft*) ससद के सामने रखा जाता है और यह व्यवस्था की जाती है कि "यदि वह एक सपरिषद् आदेश (Order in-council) है तो यह महामहिम (His Majesty) के समक्ष नही प्रस्तुत किया जायेगा, अथवा यदि वह कोई अन्य लेख पत्र है तो उसका निर्माण नहीं किया जायेगा, जब तक कि सपरिषद् आदेश की स्थिति मे, प्रत्येक सदन (House) महामहिम से यह प्रार्थना न करे कि आदेश किया जाना चाहिए, अथवा अन्य किसी स्थिति मे प्रत्येक सदन यह न निश्चय कर ले कि लेख पत्र का निर्माण किया जायेगा।" नियम एक स्वीकारात्मक प्रस्ताव के द्वारा ससद से अनुमोदित किए जाने होने हैं।

(२) दूसरे वे, जोकि अस्वीकृत की प्रक्रिया (Annulment procedure) के अधीन होते हैं। ससद को यह शक्ति प्राप्त होती है कि वह अस्वीकृति प्रस्ताव (Annulment resolution) पास कर सके अथवा स्वीकारात्मक प्रस्ताव को अस्वीकार कर सके।

नियम चालीस दिन की अवधि के लिए सदन की मेज पर रखने होते हैं।

सूक्ष्म-परीक्षण समिति की व्यवस्था
(Provision of a Scrutiny Committee)

इगलैंड मे Donoughmore Committee (१९३२) ने यह सिफारिश की कि प्रत्येक सदन मे एक-एक स्थायी समिति (Standing Committee) की स्थापना

1 In a case in England in 1917, Lord Shaw of Dunfermline in Rex V, Halliday observed "The Increasing crust of legislative efforts and the Convenience to the executive of a refuge to the device of *orders in Council* would increase that danger (i e. transitions to arbitrary government) ten fold were the Judiciary to approach *any action of the Government in a* spirit of Compliance rather than that of independent scrutiny."

होनी चाहिए, जोकि ऐसे प्रत्येक विधेयक (Bill) पर विचार करे तथा अपने प्रतिवेदन दे जिनमें विधि-निर्माण की शक्तियां मन्त्री को सौंपने का प्रस्ताव हो, तथा हस्तांतरित विधायी शक्ति के कार्यान्वय के लिए बनाये गए ऐसे प्रत्येक विनियम (Regulation) तथा नियम पर विचार करे एवं अपना प्रतिवेदन दे, जिसको सदन के समक्ष रखने की आवश्यकता हो। यह सिफारिश स्वीकार नहीं की गई थी। युद्धकाल में, हस्तांतरित विधान का पर्यवेक्षण करने के लिए लोकसभा (House of Commons) में वैधानिक नियमों तथा आदेशों (Statutory Rules and orders) पर एक प्रवर समिति (Select Committee) की स्थापना की गई थी और लार्डसभा (House of Lords) में एक विशिष्ट आदेश समिति (Special Orders Committee) की स्थापना की गई थी।

आजकल वैधानिक लेख पत्रों (Statutory Instruments) पर एक प्रवर समिति बनी हुई है, जिसे कि सूक्ष्म परीक्षण कहा जाता है। यह ऐसे सारे ही लेख पत्रों की जांच करती है जिनके लिए चाहे स्वीकारात्मक प्रस्ताव की कार्य-विधि (Affirmative resolution procedure) निर्धारित की गई हो अथवा नकारात्मक (Negative) प्रस्ताव की कार्य-विधि।

भारत में अधीनस्थ विधान पर समिति
(Committee on Subordinate Legislation in India)

भारत में अधीनस्थ विधान पर विचार करने के लिए एक समिति बनी हुई है जोकि इस बात की छानबीन करती है कि विनियम (Regulations), नियम (Rules) उप-नियम (Sub-rules) व उप-विधियां (Bye laws) आदि बनाने की संविधान द्वारा प्रदत्त अथवा संसद द्वारा हस्तांतरित शक्तियों का कार्यान्वय, ऐसे विधान की परिधि के अन्तर्गत, समुचित रूप से किया जा रहा है या नहीं और सदन को उसकी सूचना देती है। समिति में पन्द्रह व्यक्ति होते हैं जोकि अध्यक्ष (Speaker) द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किये जाते हैं। संसद द्वारा अधीनस्थ प्राधिकारी को हस्तांतरित किये गए विधायी कार्यों (Legislative functions) के अनुसरण के लिए बनाया गया कोई भी विनियम, नियम, उप-नियम व उप-विधि आदि सदन के सामने रखा जायेगा और घोषणा के तुरन्त पश्चात् ही राज्य पत्र (गजट) में प्रकाशित किया जायेगा। समिति के कर्तव्य निम्न हैं—

नियम ३१० में उल्लिखित ऐसा प्रत्येक आदेश सदन के सामने रखा जाने के पश्चात् समिति, विशेष रूप से, इस बात पर विचार करेगी कि—

(१) क्या यह आदेश संविधान के अथवा उस अधिनियम (Act) के सामान्य उद्देश्यों के अनुरूप है जिसके अनुसरण में कि उसका निर्माण किया गया है,

(२) क्या उसमें कोई ऐसा विषय है जिस पर कि, समिति की राय में, संसद के एक अधिनियम के रूप में अधिक उपयुक्त रूप से विचार तथा व्यवहार किया जाना चाहिए,

(३) क्या उसमे किसी भी कर (Tax) के आरोपण (Imposition) का प्रस्ताव है,

(४) क्या यह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से न्यायालयो के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) पर रोक लगाता है,

(५) क्या इसका ऐसे किसी भी उपबन्ध (Provision) पर पश्चाद्दर्शी प्रभाव (Retrospective effect) पड़ता है जिसके सम्बन्ध मे कि संविधान (Constitution) अथवा अधिनियम स्पष्टत ऐसी कोई शक्ति प्रदान नही करता,

(६) क्या यह भारत की सचित निधि (Consolidated Fund of India) अथवा लोक-राजस्वो (Public revenues) मे से व्यय की व्यवस्था करता है,

(७) क्या यह सविधान द्वारा अथवा उसे अधिनियम द्वारा जिसके अनुसरण मे कि इसका निर्माण किया गया है, प्रदत्त शक्तियो का कुछ असाधारण अथवा अप्रत्याशित सा उपयोग करता प्रतीत होता है,

(८) क्या इसके प्रकाशन मे अथवा इसको ससद के सामने रखने मे अनुचित रूप से देरी की गई है,

(९) क्या किसी भी कारण से इसके रूप (Form) अथवा आशय के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

समिति अपना प्रतिवेदन ससद के समक्ष प्रस्तुत करेगी। यह अपना यह मत प्रकट कर सकती है कि किसी भी आदेश को पूर्णत अथवा आशिक रूप से रद्द कर दिया जाए अथवा किसी भी पहलू की दृष्टि से उसमे सुधार कर दिया जाए।[1]

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि 'हस्तान्तरित विधान' की प्रक्रिया के विरुद्ध की जाने वाली आलोचनाए निराधार तथा निर्मूल है। हस्तान्तरित विधान नौकरशाही को स्वेच्छाचारी शक्तियां प्रदान नही करते। ससद को यह अधिकार होता है कि वह उन पर नियन्त्रण रख सके, न्यायपालिका (Judiciary) को उनका पुनर्वालोकन करने का अधिकार होता है तथा उनको क्षेत्राधिकार से बाहर (Ultra vires) तथा निष्प्रभाव एव निरर्थक (Null and void) घोषित करने का अधिकार होता है।

प्रोफेसर लास्की के शब्दो मे, "हस्तान्तरित विधान की प्रक्रिया के पक्ष मे कहने को बहुत कुछ है और इसके विरोध मे कहने को बहुत कम है। कोई भी व्यक्ति जोकि हस्तान्तरित विधान की विषय सामग्री की जाँच करेगा, यही पायेगा कि इस

1 (Rule 317-32?)

'Thus, given the present control of the House by the Cabinet and the present party system, control means, in practice, discussion, interrogation, the airing of grievances and the very occasional wringing from a Minister of some small concession"

—Ernest H Beet, *Parliament and Delegated Legislation*, (1945 53), p 328

प्रक्रिया के द्वारा संसद के बहुमूल्य समय मे काफी बचत होती है, जिसका उपयोग अन्य महत्वपूर्ण मामलो मे अच्छी प्रकार किया जा सकता है। विष अथवा हानिकारक पदार्थों की सूची के विस्तार तथा लन्दन म टैक्सियो के भाडे की तालिका मे परिवर्तन आदि के ये कार्य, जोकि नियामक शक्तियो के प्रयोग के लाक्षणिक उदाहरण हैं, स्वय सदन की अपेक्षा, यदि उपयुक्त सुरक्षाओ के अन्तर्गत, मन्त्रियो के एक समूह द्वारा किये जाए तो वास्तव मे वे हमारी स्वाधीनता के लिए चुनौती या धमकी नहीं हैं। मुख्य बात यह है कि ससद इस स्थिति मे होनी चाहिए कि जब भी वह उपयुक्त समझे, शक्ति के किसी भी प्रयोग पर आपत्ति उठा सके, और यह इस योग्य होनी चाहिए *कि जो कुछ उसके नाम से किया गया है उसकी जाँच कर सके, जिससे कि* यह निश्चय हो जाए कि ऐसी कोई बात जिसके विरुद्ध यह आपत्ति उठा सकती है, उसकी दृष्टि अथवा क्षेत्राधिकार से बाहर न रह जाए। इस प्रकार, हस्तान्तरित विधान की पद्धति, जोकि वास्तव मे उससे भी अधिक प्राचीन है जितना कि इसके आलोचक समझते हैं, निश्चयात्मक राज्य (Positive state) के लिए सुविधाजनक तथा आवश्यक है।"[1]

---

1 Prof Harold J Laski, *Parliamentary Government in England* pp 351 52.

३६

प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण

(Judicial Control Over Administration)

प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण की समस्या उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण (Legislative control) की समस्या। हम यह बतला चुके हैं कि विधान-मण्डल कार्यपालिका (Executive) की नीति तथा उसके व्यय पर नियन्त्रण लगाता है। न्यायिक नियन्त्रण का उद्देश्य यह होता है कि प्रशासकीय कार्यों की वैधता (Legality) के बारे में निश्चिन्त हुआ जा सके और इस प्रकार सत्ता (Authority) के किसी भी अवैधानिक (Unlawful) उपयोग से नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की जा सके। राज्य की निरन्तर बढ़ती हुई क्रियाओं के कारण प्रशासन की शक्तियों (Powers) में भी वृद्धि हो रही है। समस्या यह है कि प्रशासकीय सत्ता के दुरुपयोग से नागरिकों की रक्षा किस प्रकार की जाय। जब प्रशासन की सामान्य प्रक्रियाएं असफल हो जाती है तो इस सम्बन्ध में उपायों की व्यवस्था न्यायालय (Courts) करते हैं। एक जनतन्त्रीय राज्य में सत्ता के दुरुपयोग, भेदभाव तथा सरकारी पक्षपात से जनता के अधिकारों की रक्षा करनी होती है। विधि के शासन (Rule of law) का सिद्धान्त, जो कि लोकतन्त्र का एक आवश्यक अंग है, प्रशासकीय कार्यों पर न्यायिक नियन्त्रण का आधार प्रस्तुत करता है। A. V. Dicey ने इस सिद्धान्त का वर्णन इस प्रकार किया था :—

"……किसी भी व्यक्ति को दण्ड नहीं दिया जा सकता तथा शारीरिक अथवा आर्थिक रूप में कानूनी रूप से हानि नहीं पहुँचाई जा सकती, हां सामान्य वैधानिक रीति से प्रस्थापित विधि (Law) के स्पष्ट रूप से भंग करने पर देश के सामान्य न्यायालयों द्वारा ऐसा अवश्य किया जा सकता है……। कोई भी व्यक्ति विधि अथवा कानून से ऊपर नहीं है, बल्कि ' प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसकी पदस्थिति *(Rank) तथा दशा कुछ भी क्यों न हो, देश के सामान्य कानून के अधीन होता है* और सामान्य न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के प्रति उत्तरदायी होता है… प्रधानमन्त्री से लेकर एक पुलिस कान्सटेबिल अथवा कर संग्रह करने वाले कर्मचारी तक, प्रत्येक सरकारी अधिकारी व कर्मचारी वैधानिक अधिकार-क्षेत्र (Lagal jurisdiction) से बाहर किये गये किसी भी कार्य के लिए उतना ही उत्तरदायी है जितना कि अन्य कोई नागरिक । संविधान के सामान्य सिद्धान्त जिन्हें कि हमने अपनाया है, उन न्यायिक निर्णयों के परिणाम हैं जोकि न्यायालयों के सामने लाये गये

विशिष्ट मुकदमों में प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकारों का निर्धारण करने के लिए दिये गये ।'[1]

यदि नागरिक यह समझते हैं कि प्रशासकीय सत्ता का दुरुपयोग करके उनके अधिकारों का अपहरण कर लिया गया है तो अपनी व्यथाओं को व्यक्त करने के लिए तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए वे न्यायालयों की शरण ले सकते हैं।

प्रशासकीय कार्यवाही के विरुद्ध उत्पन्न होने वाले मामलों पर न्यायालयों द्वारा पुनर्विचार किया जा सकता है। ये मामले निम्न कारणों से उत्पन्न हो सकते हैं —

(१) विवेक का अनुचित उपयोग (Abuse of discretion) ;
(२) अधिकार-क्षेत्र का अभाव (Lack of jurisdiction) ,
(३) विधि की त्रुटि (Error of law) ,
(४) तथ्य-प्राप्ति में त्रुटि (Error in the finding of fact), और
(५) कार्य विधि की त्रुटि (Error of procedure) ।

यदि कोई सरकारी अधिकारी अपनी सत्ता का दुरुपयोग करता है, पक्षपात करता है अथवा बदला लेता है, तो पीड़ित पक्ष ऐसे अधिकारी के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करने के लिये न्यायालय में जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि किसी सरकारी अधिकारी ने अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर कार्य किया है तो उस पर पुनर्विचार के लिए वह न्यायालय की शरण ले सकता है। कोई भी व्यक्ति यदि यह समझता है कि विधि सम्बन्धी कोई त्रुटि की गई है अथवा तथ्य या कार्य विधि सम्बन्धी भूल की गई है तो उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह उन सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध न्यायालय में पहुँच कर सके।

क्या कोई नागरिक सरकार पर मुकद्दमा चला सकता है ?
(Can a Citizen sue the Government ?)

न्यायिक उपायों पर विचार करने से पूर्व एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या यह है कि यदि किसी सरकारी कार्यवाही के परिणामस्वरूप किसी नागरिक के साथ अन्याय हुआ हो तो अपनी सरकार तथा सरकारी अधिकारियों पर मुकदमा दायर करने के उसके अधिकार की मात्रा तथा प्रकृति क्या हो। इंगलैंड में परम्परा यह रही है कि सम्राट् को किसी भी कार्यवाही की वैधानिक उत्तरदायित्व से उन्मुक्त रखा गया है। 'सम्राट कोई गलती नहीं कर सकता', अतः किसी भी न्यायालय में उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। वह कानून से भी ऊपर है। राष्ट्राध्यक्ष को कानूनी उत्तरदायित्व से मुक्त करने की यह पद्धति संयुक्त राज्य अमेरिका व भारत आदि कुछ अन्य देशों द्वारा भी अपनाई गई थी। भारत में, राष्ट्रपति तथा राज्यों के राज्यपालों (Governors) को संविधान में उल्लिखित अपनी शक्तियों के प्रयोग और कर्त्तव्यों के पालन में अपने द्वारा किये गये किसी कार्य के लिए कानूनी दायित्व से

1 A V Dicey *Introduction to the study of the law of the Constitution* (8th Ed , 1915), pp 183—4, 189—191

उन्मुक्त रखा गया है।[1] राष्ट्रपति पर संसद द्वारा दोषारोपण किया जा सकता है। अपनी पदावधि मे वे किसी भी प्रकार की दण्ड्य-कार्यवाही (Criminal proceedings) गिरफ्तारी अथवा कारावास से उन्मुक्त (Immune) हैं।[2] परन्तु दो माह की सूचना देने के पश्चात्, राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के रूप मे अपना पद ग्रहण करने से पूर्व या पश्चात्, अपने वैयक्तिक रूप मे किये गये अथवा कर्तुमभिप्रेत (Purporting to be done) किसी कार्य के बारे मे राष्ट्रपति या ऐसे राज्य के राज्यपाल के विरुद्ध अनुतोष (Relief) की माँग करने वाली कोई व्यवहार-कार्यवाहियाँ (Civil proceedings) उसकी पदावधि मे किसी भी न्यायालय मे संस्थित की जा सकती है।[3]

मन्त्रियो (Ministers) को उन्मुक्ति अथवा विशेषाधिकार प्राप्त नही हैं परन्तु राष्ट्राध्यक्ष (Head of the state) द्वारा किये गये कार्यों के लिए उन पर कोई कानूनी उत्तरदायित्व नही है।[4] महाद्वीपीय देशो मे यह विचारधारा, कि सरकार सर्वोच्च सत्ता है और उस पर मुकदमा नही चलाया जा सकता, पुरानी समझी जाती है, और असैनिक मामलो म प्रशासन के प्रत्येक कार्य को, यदि उससे व्यक्ति के अधिकारो का हनन होता है, प्रशासनीय अथवा व्यवहार-न्यायालयो मे चुनौती दी जा सकती है।

इगलैंड, भारत तथा अमेरिका मे न्यायिक पदाधिकारी (Judicial officers) न्यायिक क्षमता के अन्तर्गत किये गय अपने कार्यो के बारे मे किसी भी उत्तरदायित्व से उन्मुक्त हैं।

अधिकारियो का वैयक्तिक उत्तरदायित्व
(Personal Liability of Officers)

अधिकारियो के वे कार्य, जिनके लिए वे उत्तरदायी अथवा जिम्मेदार ठहराये जा सकते है, ये है किसी कार्य को करने म असफल रहना जबकि उस कार्य को करना स्पष्ट रूप से उनका कर्त्तव्य है (Nonfeasance), असावधानी तथा उपेक्षापूर्ण कार्य करना, किन्तु किसी द्रोह अथवा बुरी भावना से नही (Misfeasance), और जान-बूझ कर हानि पहुँचाने के लिए किया गया कोई अवैध कार्य।[5]

न्यायेतर अधिकारियो को उनके कार्यों के सम्बन्ध मे अधिक उन्मुक्ति (Immunity) प्राप्त नही है। भारत मे, सरकारी ठेको अथवा संविदाओ (Official

1 अनुच्छेद ३६१ (१)
2 अनु० ३६१ (२) (३)
3 अनु० ३६१ (४)
4 अनु० ७४ (२) तथा १६३ (३)

5 (L. T. David, *The Tort Liability of Public Officers, Public Administration Service*, Chicago, 1940, p 28)

contracts) की स्थिति को छोड़कर, सरकारी अधिकारियों की उत्तरदायिता वैसी ही है जैसी कि सामान्य व्यक्तियों की है। सरकारी अधिकारी (कार्यपालिका के अध्यक्ष सहित) संविधान के प्रयोजनों के हेतु किये गये ठेकों के सम्बन्ध में वैयक्तिक उत्तरदायित्व से मुक्त है।[1] किसी भी सरकारी अधिकारी द्वारा शासकीय क्षमता में अन्तर्गत किये गये कार्य के सम्बन्ध में, दो माह की सूचना देने के पश्चात् उसके विरुद्ध व्यवहार कार्यवाहियाँ (Civil proceedings) संस्थित की जा सकती हैं। जहाँ तक दण्ड्य उत्तरदायित्वों का सम्बन्ध है, सरकार की पूर्वानुमति लेकर सरकारी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाहियाँ प्रारम्भ की जा सकती हैं। ऐसे अधिकारी के विरुद्ध कोई भी दण्ड्य कार्यवाही (Criminal proceeding) संस्थित नहीं की जा सकती जिसने कि तथ्य सम्बन्धी कोई गलती की हो और सत्यनिष्ठा के साथ उसका यह विश्वास हो कि उसने वैध (Lawful) कार्य ही किया है। ऊपर उल्लेख किये गये मामलों तथा स्थितियों में, यदि सरकारी अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करें, अथवा नागरिकों के अधिकारों को क्षति पहुँचाने का प्रयत्न करें, तो उनके विरुद्ध मुकदमा दायर किया जा सकता है।

न्यायिक समीक्षा की रीतियाँ
(Methods of Judicial Review)

न्यायिक पुनर्विलोकन अथवा न्यायिक समीक्षा की असाधारण रीतियाँ पांच हैं बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश (Writ of Habeas Corpus) परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार-पृच्छा (Quo-Warranto), तथा उत्प्रेषण आदेश (Certiorari)। 'Writ' लेटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, व्यापारिक प्रकृति का एक औपचारिक पत्र (Formal letter)। 'Writ' एक औपचारिक लेख है जोकि विधि सत्ता द्वारा जारी किया जाता है और जो किसी व्यक्ति अथवा उसकी सम्पत्ति के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) की प्राप्ति के प्रयोजन के लिए, अथवा उसको विधि न्यायालय में उपस्थित होने को बाध्य करने के लिए काम में लाया जाता है।

(१) बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदेश (The Writ of Habeas Corpus)—(Literally (that) you have the body)। बन्दी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ है 'शरीर रूप में उपस्थित करना'। बन्दी प्रत्यक्षीकरण से अभिप्राय एक ऐसे आदेश से है जो उस व्यक्ति को दिया जाता है। जिसने किसी दूसरे व्यक्ति को नजरबन्द कर रखा है कि वह उसे न्यायालय के समक्ष उपस्थित करे। इस प्रकार न्यायालय किसी भी नजरबन्द व्यक्ति को अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दे सकता है जिससे कि वह इस बात की जाच कर सके कि उस व्यक्ति की नजरबन्दी वैधानिक है या नहीं और उसके उपरान्त वह उसके साथ विधि के अनुकूल व्यवहार

1 Art 299 (2)

कर सके। इस आदेश का प्रयोग व्यक्ति की नजरबन्दी की वैधता की जाच के लिये किया जाता है। कोई भी व्यक्ति जिसको प्रशासकीय अधिकारियो द्वारा नजरबन्द किया गया हो, अपनी नजरबन्दी का मामला न्यायालय के सामने ला सकता है जहाँ उसकी नजरबन्दी की वैधता (Legality) पर विचार किया जाता है।

(२) उत्प्रेषण-आदेश (The Writ Certiorari)—(Literally to be certified)। यह उच्च न्यायालय द्वारा किसी नीचे के न्यायालय को जारी किया गया एक आदेश है जिसमे वह नीचे के न्यायालय को यह आज्ञा देता है कि वह किसी विशिष्ट मुकदमे के सम्बन्धित कागजात उच्च न्यायालय को भेज दे। इस उपाय को अवर अधिकारियो (Inferior officers), मण्डलो तथा न्यायाधिकरणो (Tribunals) की कार्यविधि (Procedure) की समीक्षा करने के लिए, अनेक अधिकार क्षेत्रो मे भी काम मे लाया जाता है, इस स्थिति मे प्रशासकीय अधिकरण को न्यायिक कार्यो को सम्पन्न करने वाला एक निम्न न्यायाधिकरण समझा जाता है। इस आदेश के द्वारा उच्चतर न्यायालय एक निम्न न्यायालय के अभिलेखो (Records) की समीक्षा करता है। परन्तु 'आदेश' (Writ) जारी होने से पहले तीन बातो का होना आवश्यक है (१) प्रशासकीय न्यायाधिकरण न ऐसी रीति से कार्य किया हो जोकि उसकी निर्धारित शक्ति एव सत्ता के अन्तर्गत न हो, (२) शिकायत करने वाले पक्ष को किसी उच्चतर प्रशासकीय न्यायाधिकरण अथवा न्यायालय मे अपील करने का अधिकार न हो, और (३) इसका और कोई सामान्य उपचार (Ordinary remedy) न हो।

(३) प्रतिषेध आदेश (The Writ of Prohibition)—(Literally to forbid)। प्रतिषेध आदेश भी उच्चतर न्यायालय द्वारा जारी किया जाता है। इस आदेश के द्वारा नीचे के न्यायालयो, न्यायाधिकरणो, अधिकारियो अथवा व्यक्तियो को उस अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने से रोका जाता है जो कि उन्हे विधि द्वारा प्रदत्त नही है। यह अवैध अधिकार क्षेत्रो के प्रयोग को रोकने के लिए जारी किया जाता है।

(४) अधिकार पृच्छा आदेश (The Writ of Quo-warranto)—(Literally by what warrant)। यह आदेश किसी लोक-पद (Public office) की अवैध मान्यता को अथवा किसी व्यक्ति द्वारा किसी लोक-पद के जबरदस्ती अधिकार को रोकता है। इस आदेश के द्वारा किसी व्यक्ति के किसी पद के ऊपर दावे के कानूनी औचित्य की जाच की जा सकती है।

(५) परमादेश (The Writ of Mandamus)—(Literally, we command)। यह एक आदेश होता है जोकि किसी व्यक्ति या निकाय (Body) के उन प्रशासकीय कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए दिया जाता है जिनको नियमानुसार उसे करना चाहिए किन्तु जिन्हे उसने पूरा नही किया है। यह आदेश उच्चतर

न्यायालय द्वारा राज्य (State) के नाम से नीचे के न्यायाधिकरण, निगम (Corporation) मण्डल (Board) अथवा व्यक्ति को जारी किया जाता है जिसमें उनको उन कार्यों को सम्पन्न करने की आज्ञा दी जाती है जोकि विधि द्वारा विशेष रूप से उनके पद के कर्त्तव्यों में सम्बद्ध किए गए हैं।

भारत का संविधान उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह मौलिक अधिकारों (Fundamental rights) को प्रवर्तित कराने के लिए ऐसे निर्देश, आदेश अथवा लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख अथवा आदेश भी हैं, जो भी समुचित हो निकाल सकें।[1] उच्च न्यायालयों (High Courts) को भी यह शक्ति प्राप्त है कि वे मौलिक अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए अथवा अन्य किसी प्रयोजन के लिए इन आदेशों, निर्देशों अथवा लेखों को जारी कर सकें।[2]

फ्रांसीसी प्रशासकीय अधिकार
(French Droit Administratif)

इंगलैंड, भारत तथा अमेरिका में कानून किसी सरकारी अधिकारी तथा एक सामान्य नागरिक के बीच कोई भेद नहीं करता। 'विधि अथवा कानून के शासन' (Rule of law) का मुख्य सिद्धान्त यह है कि कानून के सामने हर एक व्यक्ति समान है। इन देशों में यदि लोक-सेवक सत्ता का गलत अथवा अनधिकृत उपयोग करते हैं तो उन्हें विधि-न्यायालय के सामने लाया जाता है। इसके विपरीत, फ्रांस में न्यायालयों की दो ऐसी पद्धतियों का विकास किया गया है जोकि परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं, अर्थात् एक तो सामान्य न्यायपालिका (Ordinary judiciary) और दूसरी प्रशासकीय न्यायपालिका (Administrative judiciary)। प्रशासकीय न्यायालय ऐसे सभी मुकदमों की सुनवाई करते हैं जो कि प्राइवेट नागरिकों द्वारा सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध इसलिये दायर किये जाते हैं क्योंकि उन्होंने (सरकारी अधिकारियों ने) असावधानता, अकुशलता अथवा अपने कर्त्तव्यों के उपेक्षापूर्ण सम्पादन के कारण उनको क्षति अथवा हानि पहुंचाई है। सिविल-सेवकों के पदक्रम (Rank), वेतन तथा पेन्शनों के कारण फ्रांसीसी प्रशासकीय न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का प्रश्न विवादग्रस्त बना हुआ है। ऐसे मामले जिनमें कि नागरिक क्षति की उत्तरदायिता (Tort liability) तथा प्रशासकीय ठेकों व अर्ध ठेकों की अस्वीकृति सम्मिलित है, प्रशासकीय न्यायालयों के समक्ष लाये जा सकते हैं। Droit Administratif) के अन्तर्गत लोक सेवकों को विशिष्ट दर्जा दिया जाता है और अपने सरकारी कार्यों के लिए वे सामान्य विधि-न्यायालयों के नियन्त्रण के अधीन

1 अनु० ३२ (२)
2 अनु० २२६ (१)

नहीं होते । वे एक विशिष्ट प्रकार के न्यायालयों के नियन्त्रण में रहते हैं जिन्हें कि प्रशासकीय न्यायालय कहा जाता है । यदि लोक-सेवकों (Public servants) की असावधानता तथा कर्त्तव्य पालन की उपेक्षा के कारण किसी व्यक्ति की कोई हानि हुई हो अथवा उसको कोई क्षति पहुँची हो, तो वह उसकी क्षतिपूर्ति के लिए एक टिकिट लगे प्रपत्र (form) पर प्रशासकीय न्यायालय के समक्ष अभ्यर्थना-पत्र (petition letter) प्रस्तुत कर सकता है । न्यायालय उस शिकायत की छानबीन कराता है और यदि वह शिकायत ठीक पाई जाती है तो पीड़ित व्यक्ति को सरकारी राजकोष से क्षतिपूर्ति का भुगतान किया जाता है । राज्य अपने अधिकारियों व कर्मचारियों अथवा अभिकर्त्ताओं (Agents) के कार्यों के लिये उत्तरदायी होता है और यदि उनकी उपेक्षा अथवा असावधानी के कारण नागरिकों को कोई हानि पहुचती है तो वह उसकी क्षतिपूर्ति करता है ।

फ्रांसीसी प्रशासकीय न्यायालयों में सबसे नीचे तो क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils) होती हैं और सबसे ऊपर राज्य परिषद् (Council of State) होती है । *सामान्य न्यायालयों तथा प्रशासकीय न्यायालयों के बीच क्षेत्राधिकार (jurisdiction)* सम्बन्धी मतभेदों के सभी मामलों का निपटारा विवादों के एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण (Independent Tribunal of Conflicts) द्वारा किया जाता है ।

Dicey का यह मत था कि फ्रांसीसी प्रशासकीय न्यायालयों का अधिशासन सरकार द्वारा किया जाता है और यह कि droit administratif एक ऐसा प्रयत्न है जो सरकारी अधिकारियों पर चलाये जाने वाले मुकदमों की सुनवाई अपने निजी न्यायालयों में करके उनको (सरकारी अधिकारियों को) एक विशेषाधिकार की स्थिति प्रदान करता है । इसके विपरीत फ्रांसीसी जनता ने नागरिकों की स्वाधीनता की रक्षक के रूप में इस पद्धति का समर्थन किया है । Berthelemy का कहना है कि फ्रांसीसी पद्धति के आलोचकों को "गलत जानकारी मिली हुई है तथा वे अत्यधिक अन्यायपूर्ण हैं ।" प्रशासकीय न्यायालयों के जो अन्य लाभ गिनाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं —

(१) इनमें न्याय सस्ता है तथा नागरिक इन न्यायालयों तक आसानी से पहुच कर सकते हैं । प्रशासकीय न्यायालय नागरिकों को शीघ्रता के साथ तथा उचित व्यय पर न्यायिक सहायता प्रदान करते हैं ।

(२) ऐसे न्यायालयों में न्यायाधीश तथा प्रशासक, दोनों की ही चतुरता एवं प्रवीणता विद्यमान रहती है जो ठोस रूप में नागरिकों की स्वाधीनता की रक्षा करती है । आंग्ल-अमरीका देशों में भी अब फ्रांसीसी नमूने के प्रशासकीय न्यायालयों के पक्ष में व्यापक भावना पाई जाती है ।

निष्कर्ष (Conclusion) :

सरकारी अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले सत्ता के दुरुपयोग को रोकने तथा उसके उपचार के लिये प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण लगाना अत्यन्त आव-

श्यक है। परन्तु यदि न्यायालयों द्वारा प्रशासन में प्रत्येक कार्य पर पुनर्विचार कर सकने की सुविधा दी गई तो इससे प्रशासन का कार्य ही ठप्प हो जायेगा। प्रशासकीय यन्त्र कार्य करना बन्द कर देगा क्योंकि इस स्थिति में उसके निर्णयों को कोई पूर्णता अथवा अन्तिमता (Finality) प्राप्त नहीं होगी। प्रशासकीय कार्य-कुशलता के दावों (Claims) के बीच एक समझौता अथवा समाधान होना चाहिए, जोकि सामाजिक कल्याण के लिए तथा लोक-सेवकों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध नागरिकों के वैयक्तिक अधिकारियों की न्यायिक सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। न्यायिक समीक्षा (Judicial review) की सीमाओं का वर्णन, सन् १९४१ में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में तैयार किये गये, प्रशासकीय निर्णयों तथा न्यायिक समीक्षा के एक अध्ययन में, Harris तथा Ward द्वारा स्पष्ट रूप से किया गया है। उनका कहना है कि :—

"एक ओर तो यह कहा जाता है कि नागरिक के संवैधानिक, वैधानिक अथवा सामान्य कानूनी अधिकारों से सम्बद्ध प्रशासकीय कार्य की जाँच न्यायालय में की जानी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि न्यायालय किसी विशिष्ट प्रशासकीय कार्य से सम्बन्धित तथ्यों (Facts) की तथा विधि के क्रियान्वय (Application of law) की पूर्णरूप से समीक्षा करें तथा उसे पास करें।

दूसरी ओर, यह कहा जाता है कि न्यायालयों को प्रशासकीय निर्णयों के तथ्यों की समीक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि स्वरूप (Form) तथा कार्यविधि (Procedure) की दृष्टि से प्रशासकीय कार्यवाही ठीक है या नहीं, और प्रशासकीय निर्णय करने का आधार युक्तियुक्त अथवा न्यायोचित है या नहीं। इस विषय में काफी विभिन्नता पाई जाती है कि न्यायिक समीक्षा किस सीमा तक की जानी चाहिए। न्यायालयों द्वारा की जाने वाली तथ्य एवं विधि की समीक्षा, प्रशासकीय निर्णय की विषय सामग्री की, अपील करने की कार्यविधियों के लिए किये जाने वाले विधायी उपबन्धों (Legislative provisions) की तथा समीक्षा करने वाली सत्ता की प्रकृति की, भिन्नता के अनुसार ही भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार, ऐसे नियमों का निर्धारण करना बड़ा कठिन है जोकि प्रशासकीय निर्णयों की न्यायिक समीक्षा के विस्तार की सभी कसौटियों पर खरे उतरें। प्रशासकीय अभिकरण के निर्णयों पर न्यायिक नियन्त्रण की पूर्ण स्थिति पर विचार करने से प्रत्येक पृथक् अभिकरण के साथ पृथक् व्यवहार किये जाने की आवश्यकता स्पष्ट हो जायेगी।"

पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण तथा पूर्ण न्यायिक नियन्त्रण की इन दोनों चरम सीमाओं के बीच के किसी मार्ग की खोज होनी चाहिए क्योंकि पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण का परिणाम तो नौकरशाही शासन के रूप में सामने आ सकता है और पूर्ण न्यायिक नियन्त्रण से सरकार के नियामक तथा सेवा-कार्यों के कुशल सचालन में बाधा पड़ सकती है। "न्यायालयों में एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति यह पाई जाती है···

कि वे प्रशासकीय न्यायाधिकरणों द्वारा किये गये तथ्य-सम्बन्धी निर्णयों पर पुनर्विचार करने से इन्कार कर देते हैं, यद्यपि वे परिनियत कानून तथा न्यायालयों के निर्णयों में वर्णित इस मौलिक सिद्धान्त पर दृढ़ रहते हैं कि सामान्य न्यायालय प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के विधि (Law) के प्रश्नों से सम्बद्ध निर्णयों की समीक्षा अथवा पुनर्वालोकन करेंगे।"[1]

न्यायालयों को चाहिए कि वे प्रशासकीय अभिकरण (Agency) के तथ्य-सम्बन्धी निर्णयों को प्रथम दृष्टि में ही अथवा निष्कर्ष रूप में स्वीकार कर लें, और इस प्रकार अपने नियन्त्रण को क्षेत्राधिकार (Jurisdiction), कार्यविधि (Procedure) तथा शक्ति के दुरुपयोग के प्रश्नों के लिए सुरक्षित रखें। न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा (Judicial review) की शक्ति तो प्राप्त होती ही है परन्तु उन्हें उसका प्रयोग "साधारण चातुर्य तथा आत्मसंयम" के साथ करना चाहिए। सरकारी विवेक के दावे 'जनता की भलाई' की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। Frank J. Goodnow ने ठीक ही कहा है कि "जिस चीज पर जोर देने की जरूरत है वह व्यक्ति के अन्तर्निहित स्वाभाविक अधिकार नहीं हैं, अपितु प्रशासकीय कार्य-कुशलता की महत्ता, और वस्तुतः उसकी आवश्यकता (Necessity) है। क्योंकि प्रशासकीय कार्य-कुशलता पर ही उस सामाजिक नियन्त्रण की प्रभावपूर्णता निर्भर है जिसके बिना कि वर्तमान परिस्थितियों में ठोस विकास होना सम्भव है।" अन्त में यह ही कहा जा सकता है कि लोक-सेवकों का चयन (Selection) तथा प्रशिक्षण (Training) इस प्रकार किया जाना चाहिए कि न्यायिक पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण की आवश्यकता ही कम महत्वपूर्ण हो जाय।

---

1 *Quoted by Graves, op cit., pp 690-91*

३७

प्रशासकीय कानून तथा न्यायिक निर्णय
(Administrative Law and Adjudication)

प्रशासकीय कानून अथवा विधि
(Administrative Law)

प्रशासकीय अधिकारियों को अपनी शक्तियों के कार्यान्वय में सदा ही विवेकाधीन सत्ता (Discretionary authority) प्राप्त होती है। प्रशासकीय विवेक (Administrative discretion) का अर्थ है कि अधिकारी को दो विकल्पों (Alternatives) में से एक का चुनाव करना है। 'प्रशासकीय विवेक प्रशासकीय अधिकारी को कानून द्वारा प्रदान की गई वह शक्ति अथवा अधिकार है जिसके द्वारा वह अपने निजी निर्णय तथा सद्विवेक के अनुसार, क्रियाविधि (Course of action) का निश्चय करने में, नियम (Rule) या विनियम (Regulation) (अर्ध विधान) जारी करने में, अथवा आदेश (अर्ध-न्यायिक निर्णय) जारी करने में, विकल्पों के बीच चुनाव कर सके।' प्रशासकीय अधिकारी को प्रत्येक पग पर विवेक का उपयोग करना होता है, उदाहरण के लिए किसी पद के लिए प्रार्थियों में से चुनाव करने में तथा किसी कम्पनी की उपज को क्रय करने का निश्चय करने आदि में विवेक का उपयोग करना होता है।

प्रशासकीय विवेक का उपयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए। प्रशासकीय विवेक की सीमाएं कानून द्वारा निर्धारित की जाती हैं जिसे कि प्रशासकीय कानून या विधि कहा जाता है। प्रशासकीय कानून प्रशासकीय अधिकारियों तथा अभिकरणों द्वारा उपयोग किये जाने वाले विवेक का निर्धारण करता है। प्रशासकीय कानून सार्वदेशिक रूप से लोक प्रशासन में सम्बन्धित होता है। प्रशासकीय कानून का सम्बन्ध प्रशासकीय अभिकरणों तथा अधिकारियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले विवेक (Discretion) के कानूनी पहलुओं से होता है। फिफनर के अनुसार, प्रशासकीय कानून में निम्नलिखित चीजें सम्मिलित की जाती हैं

(१) प्रशासकीय अभिकरणों (Administrative agencies) की शक्तियों तथा कर्तव्यों की व्याख्या करने वाले संविधान, संविधियाँ (Statutes), चार्टर, अध्यादेश (Ordinances) तथा प्रस्ताव (Resolutions),

(२) प्रशासकीय अधिकारियों तथा अभिकरणों द्वारा बनाये जाने वाले नियम तथा विनियम,

(३) प्रशासकीय अधिकारियो तथा अभिकरणो द्वारा जारी किये जाने वाले आदेश व निर्णय।

(४) न० १, २ व ३ से सम्बन्धित न्यायिक निर्णय (Judicial decisions)।[1]

एक समिति द्वारा प्रशासकीय कानून के क्षेत्र (Scope) के सम्बन्ध मे सुझाव दिये गये थे। इसके क्षेत्र मे निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जाती है—

(१) लोक-सेविवर्ग (Public Personnel) की समस्यायें,

(२) राजकोषीय प्रशासन (Fiscal administration) की समस्याए,

(३) प्रशासकीय विवेक के सम्बन्ध मे कानूनी स्थितियो के अध्ययन (Studies),

(४) प्रशासकीय न्यायालयो तथा प्रशासकीय कानून की समस्यायें,

(५) प्रशासकीय विनियमो का कानून,

(६) प्रशासकीय जाँच की समस्याये,

(७) सरकारी ठेको (Contracts) के सम्बन्ध मे किये जाने वाले अध्ययन,

(८) सरकार के विरुद्ध किये जाने वाले दावे (Claims),

(९) प्रशासकीय कार्यवाही के विरुद्ध किये जाने वाले उपचारो (Remedies) के सम्बन्ध मे किये गये अध्ययन,

(१०) लोक-प्रशासन मे व्यावसायिक सघ (Professional association) की मान्यता तथा दर्जा,

(११) बहुल-अध्यक्षीय प्रशासकीय निकायो (Plural-headed administrative bodies) की कार्यवाहियो का नियमन करने वाले कानूनी नियम।[2]

नागरिको के दृष्टिकोण से प्रशासकीय विवेक का नियन्त्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रशासकीय विवेक व्यक्ति की स्वाधीनता तथा हितो को अत्यधिक प्रभावित कर सकता है। उस विवेक का नियमन करने के लिए प्रशासकीय कानून का होना अत्यन्त आवश्यक है। विकल्पो (Alternatives) का चुनाव करते समय, अधिकारियो को मनमाने ढग से कार्य नही करना चाहिए। स्वविवेक का अर्थ यह नही है कि सत्ता प्राप्त करके सरकारी अधिकारी द्रोही (Malicious), पक्षपाती अथवा स्वेच्छाचारी (Arbitrary) बन जायें। प्रशासकीय कानून प्रशासकीय विवेक की प्रकृति का निर्धारण करता है तथा उसका नियमन करता है। कानून यह देखता है कि प्रशासकीय विवेक का दुरुपयोग न किया जाये। प्रशासकीय कानून सर्वसामान्य की भलाई की दृष्टि से अधिकारियो की वैयक्तिक स्वाधीनता तथा सम्पत्ति पर प्रति-

1 Pfiffner, *op cit*, p 443

2 William A Robson, *Justice and Administrative Law*, pp 548 50, 554-57

बन्ध लगाता है। प्रशासकीय कानून का उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण की वृद्धि करना है।[1]

प्रशासकीय न्यायिक निर्णय
(Administrative Adjudication)

प्रशासकीय न्यायिक निर्णय का अर्थ है प्रशासकीय विभाग अथवा अभिकरण के द्वारा न्यायिक (*Judicial*) अथवा अर्ध-न्यायिक (Quasi-judicial) प्रकृति के प्रश्नों का निर्धारण करना। न्यायालय के समान, प्रशासकीय अभिकरण ऐसे मामलों में विभिन्न पक्षों की सुनाई करते हैं, प्रमाणों व साक्षियों की सूक्ष्म जांच करते हैं तथा निर्णय देते हैं, जिनका सम्बन्ध कानूनी अधिकारों तथा कर्तव्यों से होता है। प्रोफेसर ह्वाइट के अनुसार, "प्रशासकीय न्यायिक निर्णय का अर्थ है, प्रशासकीय अभिकरण के द्वारा कानून और तथ्य के आधार पर गैर-सरकारी पक्ष से सम्बद्ध विवाद (*Dispute*) की जांच-पड़ताल तथा निबटारा करना।"[2] न्यायिक निर्णय के कार्य में लगे हुए प्रशासकीय अभिकरण सरकार के नियमित ब्यूरो तथा विभाग हो सकते हैं, अथवा महालेखा-परीक्षक (Auditor-General) के सदृश न्यायिकनिर्णय की कुछ शक्तियों से युक्त तथ्यान्वेषक निकाय (Fact finding bodies), या स्वतन्त्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) अथवा विशेष किस्म के प्रशासकीय न्यायालय या न्यायाधिकरण हो सकते हैं। जब कभी भी किसी प्रशासकीय अभिकरण के द्वारा किसी विवाद अथवा मतभेद का निपटारा किया जाता है तो उसे प्रशासकीय न्यायिक निर्णय कहा जाता है। प्रशासकीय न्यायिक निर्णय निम्न प्रकार का हो सकता है —

(१) *परामर्शदात्री प्रशासकीय न्यायिक निर्णय, जोकि विभागाध्यक्ष* (Head of a department) अथवा अन्य प्राधिकारी में *निहित अन्तिम निर्णय की* शक्ति से युक्त होता है।

(२) कभी कभी प्रशासकीय न्यायिक निर्णय को किसी प्रशासकीय कार्य के सम्पादन की पूर्व शर्त बना दिया जाता है।

(३) प्रशासकीय न्यायिक निर्णय (Administrative adjudication) बहुधा किसी प्रशासकीय अधिकारी के नियमित कार्यों ही का एक अंग बना दिया जाता है।

(४) प्रशासकीय न्यायिक निर्णय किसी विधायी प्रशासकीय प्रक्रिया (Legislative administrative process) के साथ संयुक्त हो सकता है।

---

1 Oliver P Field, *Research in Administrative Law*, p 48

2 " Administrative adjudication means the investigation and settling of a dispute involving a private party on the basis of law and fact by an administrative agency " (L D White, *op cit* pp 553.

(५) प्रशासकीय निर्णयो (Administrative decisions) के विरुद्ध नियमित मुकदमे दायर किये जा सकते हैं।

(६) कभी प्रशासकीय न्यायिक निर्णय को अनुज्ञापत्र-दायक क्रियाओ (Licensing activities) के सम्बन्ध मे क्रियान्वित किया जाता है।

(७) प्रशासकीय न्यायिक निर्णय दावो के निपटारे (Settlement of Claims) के सम्बन्ध मे भी किया जा सकता है।[1]

प्रत्येक देश ने प्रशासकीय न्यायाधिकरणो को अर्ध-न्यायिक शक्तियाँ (Quasi-judicial powers) प्रदान की हैं भारत मे विभागाध्यक्षो अथवा विशिष्ट अधिकारियो को प्रशासकीय न्याय-निर्णय की यह शक्ति प्रदान की गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ प्रशासकीय न्यायाधिकरणो की स्थापना की गई है, जैसे कि आय-कर अपील न्यायाधिकरण (Income tax Appellate Tribunals) राजस्व मण्डल (Boards of Revenue) श्रम तथा औद्योगिक न्यायालय (Labour and Industrial Courts), श्रम अपील न्यायाधिकरण (Labour Appellate Tribunals) आदि। ये प्रशासकीय न्यायाधिकरण शिकायतो व अपीलो की सुनवाई करते हैं, प्रमाणो व साक्षियो की सूक्ष्म जाच करते हैं, तथ्यो की खोज करते हैं तथा अपने निर्णयो की घोषणा करते हैं।

इस पद्धति के गुण व दोष
(Merits and Defects of the System)

प्रशासकीय अभिकरणो द्वारा किए जाने वाले प्रशासकीय न्याय निर्णय अब स्थायी रूप धारण करने लगे हैं। अत इसके गुण व दोषो का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि इसके दोषो को दूर करके इस पद्धति को सुदृढ बनाया जा सके।

इसके लाभ निम्न प्रकार हैं —

(१) जब मामले नियमित न्यायालयो की बजाए प्रशासकीय न्यायाधिकरणो के समक्ष लाए जाते हैं तो उनका निर्णय केवल मामले की यथार्थ बातो (Merits of the case) के आधार पर ही नहीं किया जाता, अपितु सर्वसामान्य के कल्याण के लिए आवश्यक किसी सरकारी नीति को आगे बढाने के उद्देश्य से भी किया जाता है।

(२) इन न्यायाधिकरणो के द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि (Procedure), सामान्य न्यायालयो की कार्यविधि की अपेक्षा अधिक शीघ्रगामी होती है। सकटकाल के समय न्यायायिक निर्णय की प्रक्रिया के द्वारा शीघ्र कार्यवाही की जाती है।

---

1 Blachly and Oatman, *Administrative Legislation and Adjudication*, Chap 6

(३) प्रशासकीय न्यायाधिकरण प्रशासकीय अधिकारियों को विस्तृत विवेक (Discretion) तथा स्वाधीनता प्रदान करते हैं जो कि प्रशासकीय कार्य कुशलता के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है।

(४) नई समस्याओं से व्यवहार करते समय, इन न्यायाधिकरणों द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि, सामान्य न्यायालयों की कठोर रूप से औपचारिक कार्यविधि के मुकाबले अधिक लोचदार (Elastic) होती है।

(५) न्यायाधीश (Judges) अधिकतर रूढ़िवादी होते हैं। वे अधिकांश प्रशासन की नई सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों के विरोधी होते हैं। ऐसे व्यक्ति जब प्रशासकीय मामलों के सम्बन्ध में निर्णय देते हैं तो उन पर उनकी व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं (Subjective feelings) का प्रभाव पड़ता है और वे सामाजिक प्रगति को रोकते हैं। प्रशासकीय अधिकारी चूँकि इन नई सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों का निर्माण करते हैं अतः उन्हें उनसे सहानुभूति होती है और जब वे ऐसे विवादों के सम्बन्ध में न्यायिक निर्णय देते हैं तब समाज के व्यापक हित उनके सामने रहते हैं।

प्रशासकीय न्यायिक निर्णय का मुख्य दोष यह है कि विभिन्न प्रशासकीय न्यायाधिकरणों द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि में एकरूपता (Uniformity) नहीं पाई जाती। इस पद्धति का दूसरा दोष स्वतन्त्र पुनर्विलोकन अथवा स्वतन्त्र समीक्षा (Independent review) की व्यवस्था का अभाव है। पुनर्विलोकन करने वाले अधिकारियों में निष्पक्षता की गारन्टी के लिए स्वतन्त्र पुनर्विलोकन की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के निर्णयों की न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था के द्वारा नागरिकों के अधिकार पूर्णतया सुरक्षित किये जा सकते हैं।

भारत में प्रशासकीय न्यायाधिकरण
(Administrative Tribunals in India)

एक लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासनिक अधिकारियों तथा साधारण नागरिक के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रश्न बड़ी जटिलतायें पैदा करता है। व्यक्तिगत अधिकार तथा जनहित में संघर्ष की घटनाएँ अक्सर घटित होती रहती हैं। प्रशासनिक निर्णयों से उत्पन्न होने वाले विवादों या शिकायतों की न्यायपूर्ण जाँच करने तथा उन पर न्यायपूर्ण निर्णय देने के लिए आजकल विशेष अभिकरण या न्यायाधिकरण स्थापित किए जाते हैं।

भारत में न्यायिकनिर्णय के एक स्थायी यन्त्र के रूप में प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की स्थापना की व्यवस्था हाल ही में हुई है। भारत में इस प्रकार की संस्थायें निम्नलिखित हैं (क) रेलवे रेट्स ट्रिब्यूनल (Railway Rates Tribunal), (ख) इन्कमटैक्स एपीलेट ट्रिब्यूनल, (ग) लेबर कोर्ट्स इन्डस्ट्रियल ट्रिब्यूनल्स, नेशनल ट्रिब्यूनल्स तथा वेजबोर्ड्स, और (घ) इलेक्शन ट्रिब्यूनल्स।[1]

1 "Tribunals are the appendages of the Government departments They should be properly regarded as machinery provided by Parliament for adjudication rather than as part of the administration These special bodies are

इन्कमटैक्स एपीलेट ट्रिब्युनल ग्रायकर के सहायक ग्रपील ग्रायुक्तो (A A C's), जो ग्रायकर ग्रधिकारियो (I T. O's) के ग्रादेशो के विरुद्ध ग्रपीलें सुनने वाले प्रथम ग्रधिकारी होते है, के ग्रादेशो के विरुद्ध ग्रपीलें सुनता है। इस न्यायाधिकरण की क्रिया प्रणाली पूर्णतया न्यायिक (Judicial) होती है। सुनवाई खुली होती है, वकील पैरवी कर सकते है तथा ग्रसहमति के कारणो के वक्तव्य प्रस्तुत किय जा सकते हैं। सिविल क्रिया प्रणाली की सहिता (Code of Civil Procedure) के ग्रन्तगत ग्रन्य सिविल न्यायालयो की भाँति यह न्यायाधिकरण भी गवाहो को उपस्थित होने का ग्रादेश दे सकता है, शपथ दिलवा कर कथनो की जाच कर सकता है तथा लखा-जोखा विषयक प्रपत्र एव स्थानीय जाच के प्रपत्र मगवा सकता है। इसके निर्णय सरकार पर बाध्य होते हैं। ग्रायकरदाता तथा सरकार दोनो ही इस न्यायाधिकरण के निर्णयो के विरुद्ध पहले उच्च न्यायालय मे तथा बाद म सर्वोच्च न्यायालय मे ग्रपील कर सकते हैं। किन्तु ऐसी ग्रपील कानून के ही किसी प्रश्न (On a point of law) पर हो सकती है। विधि मन्त्रालय सघीय लोक सेवा ग्रायोग के परामर्श से इस न्यायाधिकरण के सदस्यो व ग्रध्यक्ष की नियुक्ति करता है। यह न्यायाधिकरण वित्त के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Revenue) के नियन्त्रण से स्वतन्त्र है। न्यायाधिकरण न्यायपूर्ण तरीको से ग्रपना कार्य सम्पन्न करता है। इस पर भी यदि कोई पक्ष इसके निर्णय से ग्रसन्तुष्ट है तो वह साधारण (उच्च तथा सर्वोच्च) न्यायालयो मे ग्रपील कर सकता है।

एक साधारण व्यक्ति को यह शका रहती है कि वह सभवत इस प्रकार के निकायो से न्याय प्राप्त नही कर सकेगा। उसका साधारण न्यायालयो पर ज्यादा विश्वास होता है। उपरोक्त प्रकार के न्यायाधिकरण तभी सफल हो सकते हैं जब वे फ्रैंक्स समिति के शब्दो मे, "खुलापन, न्यायपूर्णता तथा निष्पक्षता" बनाय रखें। इसके ग्रतिरिक्त इन न्यायाधिकरणो के निर्णयो के विरुद्ध साधारण न्यायालयो मे ग्रपील करने का ग्रधिकार जनता पर ग्रच्छा, स्वस्थ प्रभाव डालता है। इन पर न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control) की व्यवस्था भारत के सविधान की धाराग्रो ३२, १३६, २२४ तथा २२७ मे की गई है। धारा ३२ मौलिक ग्रधिकारो के ग्रतिक्रमण की दशा मे नागरिको को सावैधानिक उपचार प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का ग्राश्रय लेने का ग्रधिकार प्रदान करती है। सर्वोच्च न्यायालय तरह-तरह के ग्रादेश पत्र जैसे उत्प्रेक्षण ग्रादेश (Writ of Certiorari), प्रतिषेध ग्रादेश (Writ of Prohibition), ग्रधिकार पृच्छा ग्रादेश (Writ of Quo Warranto)

meant to examine and determine specific issues or adjudicate in a judicial spirit on certain grievance against or disputes arising from administrative decisions They are intended to assure fair decisions on matters affecting the rights of citizens and sometimes function as appellate bodies when challenged (Journal of the National Academy of Administration, Mussoorie Vol VI No 1 1961, Syndicate Study Administrative Reorganisation in India, p 189.

इत्यादि जारी कर सकता है। धारा १३६ में सर्वोच्च न्यायालय को अपील करने की विशेष आज्ञा प्रदान करने का अधिकार दिया गया है। अनेक बार सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरणों की रचना में अवैधता का प्रश्न लेकर, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की अवहेलना का प्रश्न लेकर, कानूनों की व्याख्या में त्रुटि का प्रश्न लेकर तथा गवाही रहित, तथ्यहीन या काल्पनिक जाच के आधार पर जारी किये गए आदेशों का प्रश्न लेकर नागरिकों के पक्ष में हस्तक्षेप किया है।

यदि इस प्रकार के न्यायिक पुनर्निरीक्षण की व्यवस्था हो तो प्रशासकीय न्याय निर्णय से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, बल्कि तब ऐसी न्याय प्रणाली सस्ती, शीघ्रता से उपलब्ध होने वाली, तकनीकी पेचीदगियों से रहित, द्रुतगति वाली तथा विशिष्ट ज्ञान के गुणों से परिपूर्ण होती है। लोक-कल्याणकारी राज्य में प्रशासनिक न्याय निर्णय की व्यवस्था प्रशासनिक यन्त्र के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में दृढ़ता से स्थापित हो चुकी है तथा साधारण न्याय व्यवस्था की अपेक्षा इसमें बहुत से अतिरिक्त लाभ भी हैं।

३८

लोक सम्पर्क

(Public Relations)

लोक प्रशासन समाज की आवश्यकताओ को पूरा करता है। यह ऐसे कार्य अपने हाथ मे लेता है जिनका उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण मे वृद्धि करना होता है। लोक-प्रशासन का यह कर्तव्य है कि वह प्रशासन के कार्य-सचालन के सम्बन्ध मे जनता की राय ज्ञात करे। इसे केवल यह ही नही जानना चाहिए कि लोक प्रशासन के बारे मे क्या सोचते है, बल्कि उनको इस बात से भी परिचित रखना चाहिए कि प्रशासन उनके लिए क्या कर रहा है। प्रशासन का यह कर्तव्य है कि जनता के मन मे प्रशासन के बारे मे यदि कोई गलतफहमी हो तो वह उसे दूर करे। कोई भी प्रशासन तब तक सफल नही हो सकता जब तक कि जनमत (Public opinion) उसके विरोध मे है। अनेक बार ऐसा होता है कि जनता का विरोध प्रशासन की नीतियो की बारे मे उत्पन्न भ्रातियों अथवा गलतफहमियो पर आधारित होता है। लोक प्रशासन को चाहिए कि वह जनता की गलतफहमियो को दूर करे और प्रशासन के कार्य मे उनका सहयोग (Co-operation) प्राप्त करे। भारत मे, सामान्य जनता पुलिस प्रशासन के विरुद्ध है। जनता मे व्यापक रूप से यह भावना पाई जाती है कि पुलिस भ्रष्टाचारी, बेईमान तथा समाज के शत्रुओ की मित्र है। कोई भी पुलिस के साथ सहयोग करना नही चाहता क्योकि लोगो के मन मे इस भावना ने व्यापक रूप से अपनी जडें जमा ली हैं कि पुलिस अधिकारी अच्छे नागरिको को परेशान करने मे विश्वास करते हैं। इस दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ है कि जनता पुलिस से घृणा करती है, उसे जनता का बहुत कम सहयोग प्राप्त होता है, और पुलिस कठिन मामलो की छानबीन व जाच पडताल करने मे कम ही सफल होती है। यह निर्दोष लोगो को पकड लेती है और बनावटी मामले घड लेती है। जब तक नागरिको तथा उस पुलिस के बीच, जोकि नगरो म कानून व व्यवस्था (Law and order) की सरक्षक समझी जाती है, सहयोग की भावना न हो, तब तक समाज मे कानून व व्यवस्था की स्थापना कैसे की जा सकती है ?

नागरिको तथा प्रशासको के बीच मेल-जोल व जानकारी बढाने के लिए लोक-सम्पर्कों (Public relations) का विकास किया जाना चाहिए। लोक-सम्पर्कों का उद्देश्य यह होता है कि प्रशासन के कार्य क्रमो के बारे मे अनुकूल जनमत उत्पन्न किया जाए। उपलब्ध सेवाओ की प्रकृति तथा क्षेत्र के सम्बन्ध मे जनता को परिचित

रखना चाहिए। लोक-सम्पर्कों द्वारा सरकारी अधिकारियों की योग्यता, क्षमता, न्यायपूर्णता, निष्पक्षता तथा ईमानदारी के बारे में जनता के मन में विश्वास उत्पन्न किया जाना चाहिए। जनता को यह महसूस कराया जाना चाहिए कि सरकारी अधिकारी अपने कर्तव्यों के प्रति ईमानदार हैं और उनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है, केवल ऐसा होने पर ही लोग प्रशासन के कार्य क्रमों का समर्थन तथा उनमें सहयोग करेंगे। प्रशासन के कार्य-संचालन के लिए लोक-सम्पर्कों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि प्रशासन की प्रभावोत्पादकता में तभी वृद्धि होती है जब कि उसके प्रति नागरिकों का रुख मित्रतापूर्ण होता है। लोग प्रशासन का सम्मान करेंगे या उससे घृणा, यह बात लोक-सम्पर्कों पर ही निर्भर होती है। जनता का सहयोग तथा समर्थन, जोकि प्रभावशाली प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है अच्छे लोक-सम्पर्कों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

जे० एल० मैकेनी (J. L. Mc Cany) द्वारा 'लोक-सम्पर्क' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है "प्रशासन में लोक-सम्पर्क, अधिकारी-वर्ग तथा नागरिकों के बीच पाये जाने वाले प्रधान एवं गौण सम्बन्धों तथा इन सम्बन्धों द्वारा स्थापित प्रभावों एवं दृष्टिकोणों की परस्पर-क्रियाओं का मिश्रण है।"[1]

"लोक-प्रशासन के क्षेत्र, जैसी कि हमारी धारणा है, का सम्बन्ध केवल सूचना अथवा जानकारी प्रदान करने मात्र से ही नहीं है बल्कि उससे कुछ अधिक से है। इस शब्द का प्रयोग यहां अत्यधिक शाब्दिक अर्थ में किया गया है जिसमें कि जनता के साथ स्थापित होने वाले सभी सम्बन्ध आ जाते हैं। सेवा के कार्य, चाहे वे कुछ भी क्यों न हों, साथ ही उनके परिणाम तथा उन सेवाओं को सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार जनता के प्रति सन्तोषजनक होने चाहिए। सन्तोष अथवा तुष्टि (Satisfaction) एक भावनात्मक अथवा व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) स्थिति है। इस बात का निश्चय करने के लिए, कि सन्तोष है या नहीं, उन व्यक्तियों के विचार जानने की आवश्यकता होती है जिनकी सेवा की जाती है। अतः लोक-सम्पर्क की एक विकसित नीति, सुझावों तथा शिकायतों को व्यक्त करने की सुविधा प्रदान करके जनता के रुख तथा मत की छानबीन करके, तथा उपभोक्ता की प्रतिक्रियाओं में रुचि रखने वाली अधिक उन्नत वाणिज्यिक संस्थाओं द्वारा विकसित अन्य उपायों के द्वारा सम्बन्धित जनता की मनस्थिति का पता लगाने का प्रयत्न करती है। लोक-अधिकारियों द्वारा लोक-सम्पर्क के इस पहलू की आमतौर पर उपेक्षा कर दी गई है।"[2]

लोक-सेवकों को अपने कार्य तथा संगठन के बारे में जनता की भावनाओं का पता लगाना होता है। उन्हें संगठन के उद्देश्यों तथा कार्यों के बारे में लोगों को

1 *James L. Mc Canv*, Government Publicity (1939).

2 *William E. Mosher*, "Public Relations" Public Relation of Public Personnel Agencies Report of Committee on Public Relations of Public personnel Agencies, Civil Service Assembly of the United States and, Chanaa 1941, p 4

जानकारी प्रदान करनी होती है। उन्हे जनता के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने होते है जिससे कि लोग प्रशासन के कार्यक्रमो मे अपना सक्रिय सहयोग तथा समर्थन प्रदान कर सकें। यही लोक सम्पर्क का कार्य है। Rex Harlow का कहना है कि लोक सम्पर्क "एक विज्ञान है जिसके द्वारा एक सगठन यथार्थ-रूप मे अपने सामाजिक उत्तरदायित्वो को पूरा करने का, तथा सफलता के लिए आवश्यक जन-स्वीकृति तथा अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है", और एक अन्य स्थान पर उन्होने कहा है कि "लोक सम्पर्क एक प्रक्रिया (Process) है जिसके द्वारा एक सगठन सभी सम्बन्धित पक्षो की आवश्यकताओ तथा इच्छाओ का विश्लेषण करता है जिससे कि वह उनके प्रति अधिक उत्तरदायित्व के साथ व्यवहार कर सके।"[1] लोक सम्पर्को का उद्देश्य सगठन की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करना तथा दोषारोपण और भ्रान्तियों अथवा गलतफहमियो से उसकी रक्षा करना है।

परन्तु लोक-सम्पर्क के कार्यक्रम का सम्बन्ध जनता के केवल किसी एक सामान्य-वर्ग से ही नही होना चाहिए। इसका सम्बन्ध तो जनता के अनेको वर्गों से होना चाहिये। समाज के विभिन्न वर्ग भिन्न-भिन्न प्रशासकीय कार्यवाहियों से प्रभावित होते हैं। व्यवसायी (Businessmen) वाणिज्य-विभाग (Department of Commerce) से सम्बन्धित होते हैं और उद्योगपति (Industrialists) उद्योग विभाग (Department of Industries) से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होते हैं, इसी प्रकार और भी। लोक सम्पर्क के कार्यक्रम को जनता के अनेक वर्गों की आवश्यकताओ को पूरा करना होता है। लोक सम्पर्क कार्यक्रम (Public Relations Programme) को विधान-मण्डल (Legislature), प्रेस, श्रमिक सघो (Labour unions), व्यावसायिक वर्गों, दबाव डालने वाले वर्गों आदि से सम्बन्ध कायम रखना पड़ता है। निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि "लोक सम्पर्क प्रशासक के उस कार्य का एक भाग है जिसके अन्तर्गत वह इस बात का पता लगाता है कि लोग उसके सगठन तथा कार्यक्रम के बारे मे क्या सोचते हैं। लोक-सम्पर्क का उद्देश्य सगठन को अनिश्चित आलोचनाओ से बचाकर उसकी प्रतिष्ठा तथा ख्याति मे वृद्धि करना और उसके जीवन की रक्षा करना है। इस प्रकार लोक सम्पर्क का प्रत्येक कार्यक्रम निश्चयात्मक (Positive) तथा प्रतिरक्षात्मक (Defensive) होता है। ऐसे कार्यक्रम की सफलता इस बात का ठीक-ठीक निर्णय करने पर निर्भर होती है कि सगठन के उद्देश्यो को पूरा करने के लिये तथा उसकी ख्याति (Goodwill) मे वृद्धि करने के लिए वर्तमान मे तथा भविष्य मे क्या करना चाहिए।"[2]

लोक सम्पर्क के द्वारा प्रत्येक सरकारी अभिकरण को विधान-मण्डल, प्रेस तथा जनता पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होता है तथा उनके साथ सम्बन्ध कायम

1 Rex F. Harlow, *Public Relations in War and Peace* (New York, 1942) pp X, 130.

2 Dimock, *Dimock op. cit.* p 414

करने होते हैं। प्रत्येक अभिकरण (Agency) को विधान-मण्डल के साथ अच्छे लोक सम्बन्ध बनाये रखने चाहियें, और केवल ऐसा होने पर ही यह विधान-मण्डल से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त विनियोजन (Appropriation) प्राप्त कर सकता है। लोक-सम्पर्कों के द्वारा अभिकरण की आवश्यकतायें प्रभावशाली ढंग से विधान-मण्डल के समक्ष रखी जानी चाहिये। लोक सम्बन्धों के द्वारा विधान-मण्डल को अभिकरण की कार्य-प्रणाली से परिचित रखना चाहियें जिससे कि विधान-मण्डल अभिकरण के विरुद्ध कोई गलत शिकायतें न कर सके।

लोक-सम्पर्क के द्वारा दैनिक समाचार पत्रों से उचित सम्बन्ध बनाये रखे जाने चाहियें। समाचार-पत्रों के द्वारा आसानी से जनता तक पहुंचा जा सकता है। अभिकरण के कार्य सचालन के बारे में समाचार-पत्रों द्वारा की जाने वाली स्वस्थ समालोचनायें जनता की दृष्टि में अभिकरण की नैतिक स्थिति ऊंची उठाने के लिए अत्यन्त आवश्यक होती हैं। अत लोक सम्पर्क स्थापित करके यह देखना चाहिये कि समाचार-पत्र अथवा प्रेस अभिकरण के कार्य सचालन के बारे में अनुकूल समालोचनायें करे और यह कि प्रेस के द्वारा अभिकरण के विरुद्ध व्यर्थ की टीका टिप्पणी न की जाये।

जैसा कि बतलाया जा चुका है, लोक सम्बन्धों के द्वारा अभिकरण के कार्यों के बारे में जनता को जानकारी प्रदान करनी होती है। इसके द्वारा प्रशासन की सत्यनिष्ठा के बारे में जनता के मन में विश्वास उत्पन्न करना होता है। अभिकरणों को अपनी नीतियों एव कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में जनता का सहयोग प्राप्त करना होता है। साथ ही इसके द्वारा अभिकरण के कार्य सचालन के बारे में लोगों के मन में उत्पन्न गलतफहमियों को भी दूर करना होता है।

लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम
(Media of Public Relations)

लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम एक तो स्वय सरकारी कर्मचारी ही है, साथ ही अभिकरण (Agency) के ग्राहक, उपयुक्त हित-सम्बद्ध वर्ग, प्रचार (Publicity) विज्ञापन (Advertising) तथा कुछ अन्य विशिष्ट उपाय जैसे कि प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, शिकायतें सुनने की व्यवस्था और प्रबन्धकर्त्ताओं द्वारा वार्षिक अथवा *नियतकालीन* रिपोर्टें प्रकाशित करना है।

लोक सम्पर्क स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम स्वय कर्मचारी है। सरकारी कर्मचारी विनीत, शिष्ट तथा अभिकरण के कार्य सचालन की पद्धति से सुपरिचित होने चाहिये। प्राय ऐसा होता है कि टेलीफोन सचालकों तथा स्वागत-कर्त्ताओं के पदों पर लडकियों को नियुक्त किया जाता है क्योंकि यह समझा जाता है कि पुरुषों की अपेक्षा वे अधिक विनीत, शिष्ट तथा मिष्टभाषी होती है। प्रचार के सभी साधनों का उपयोग लोक-सम्बन्धों की स्थापना के लिये किया जाना

चाहिए। इस कार्य के लिए रेडियो, टेलीविजन व समाचारपत्रों आदि का भी समुचित उपयोग किया जाना चाहिए। सरकारी अभिकरणों को अपने ऐसे विशिष्ट लेख प्रकाशित करने चाहिए जिनमे कि उनके उद्देश्यों, लक्ष्यो व कार्यों आदि का वर्णन हो। अभिकरण के कार्यक्रमो की प्रकृति तथा उनके क्षेत्र (Scope) के सम्बन्ध मे जनता को जानकारी प्रदान करनी चाहिए और उनके लिए जनता का समर्थन प्राप्त करना चाहिए। लोक-प्रतिवेदन (Public reporting) के साधनों का भी समुचित विकास किया जाना चाहिए। ऐसे नियतकालीन, प्रगति विवरण (Periodic progress reports) प्रकाशित किये जाने चाहिये जिनमे कि इन अभिकरणो की सफलताओं एव प्राप्तियो का संक्षिप्त वर्णन हो। ये विवरण आकर्षक होने चाहियें जिससे कि लोग उन्हे पढें। लोक-सम्बन्धो की स्थापना के ये माध्यम इतने पूर्ण होने चाहिए जिससे कि इनके द्वारा लोक सम्पर्क के सभी उद्देश्य पूरे हो जाए। लोक सम्बन्धों की स्थापना करने वाले अधिकारी अपने कार्य के विशेषज्ञ होने चाहिये।

भारत मे लोक सम्पर्क के यन्त्र

(Public Relations Machinery in India)

भारत मे प्रचार का कार्य भारत सरकार के एक कार्यपालिका विभाग, अर्थात् सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय (Ministry of Information and Broadcasting) को सौंपा गया है। इस मन्त्रालय के कार्य निम्नलिखित है —

(१) सरकारी प्रचार, जिसमे कि प्रकाशन व विज्ञापन सम्मिलित हैं,

(२) प्रसारण (Broadcasting),

(३) प्रदर्शिनी के लिये फिल्मो की स्वीकृति प्रदान करना,

(४) समाचार चल-चित्रों (News reels) तथा वास्तविक जीवन के चल-चित्रों (*Documentary films*) का उत्पादन तथा वितरण,

(५) समाचार पत्रों का पञ्जीकरण (Registration) तथा परिगणन,

यह मन्त्रालय निम्नलिखित कार्यालयो के द्वारा अपने प्रचार के कार्यों को सम्पन्न करता है —

(१) महानिर्देशक आकाशवाणी, नई दिल्ली का कार्यालय (Directorate General, All India Radio, New Delhi),

(२) प्रेस सूचना ब्यूरो (Press Information Bureau),

(३) विज्ञापन तथा द्राष्टिक प्रचार का निर्देशालय (Directorate of Advertising and Visual Publicity),

(४) प्रकाशन सम्भाग (Publications Division),

(५) फिल्म सम्भाग, बम्बई,

(६) फिल्मो के गुण-दोष विवेचकों का केन्द्रीय मण्डल (Central Board of film Censors),

(७) अनुसंधान तथा अभ्युद्दश सम्भाग (Research and Reference Division)

(८) भारतीय समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार (Registrar of Newspapers for India),

(९) पंचवर्षीय योजना प्रचार कार्यालय।

अब हम इन कार्यालयों के कार्यों की क्रमश: विवेचना करते हैं —

(१) अखिल भारतीय आकाशवाणी— वर्तमान युग में आकाशवाणी प्रचार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन है। अ० भा० आकाशवाणी ग्रामीण जनता, स्कूल के बच्चों औद्योगिक श्रमिकों तथा सशस्त्र सेनाओं के लिए विशेष कार्यक्रमों की व्यवस्था करती है। इन कार्यक्रमों के द्वारा सरकार की योजनाओं के सम्बन्ध में जनता को काफी जानकारी प्रदान की जाती है।

(२) प्रेस सूचना ब्यूरो— इसका मुख्य कार्य है, सरकारी क्रियाओं एवं नीतियों के बारे में प्रेस के द्वारा जनता को सूचनाएं प्रदान करना और उन क्रियाओं एवं नीतियों के सम्बन्ध में प्रेस के द्वारा ही प्रतिध्वनित होने वाले जनमत की मुख्य प्रवृत्तियों से सरकार को परिचित रखना। यह पहले ही कहा जा चुका है कि लोक-सम्पर्क एक 'द्विमार्गीय यातायात' (Two way traffic) है। इसके द्वारा, एक ओर तो, सरकार को जनता की भावनाओं (Feelings) का ज्ञान होना चाहिए और दूसरी ओर जनता को सरकार की समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होनी चाहिए। प्रेस सूचना ब्यूरो जनता को सरकार के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करता है और सरकार को जनता के बारे में।

(३) विज्ञापन तथा द्रिष्टिक प्रचार का निर्देशालय— इसके कार्यों में, इश्त-हारी विज्ञापन देना, वर्गीकृत विज्ञापन देना, तथा विज्ञापकों (Posters), बड़े बड़े इश्तहारों पुस्तिकाओं आदि का निर्माण तथा वितरण करना सम्मिलित है।

(४) प्रकाशन सभाग— यह सभाग लोकप्रिय पुस्तिकाओं, पुस्तकों पत्रिकाओं व एल्बमों आदि के निर्माण वितरण तथा विक्रय के लिए उत्तरदायी होता है, जिन के द्वारा कि सरकार की क्रियाओं, देश के दर्शनीय स्थानों, तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमों की प्रगति के बारे में जनता को जानकारी प्रदान की जाती है।

(५) फिल्म सभाग, बम्बई— भारतीय जनता में प्रचार करने का एक महत्वपूर्ण साधन सिनेमा में दिखाई जाने वाली फिल्में हैं। जनता के लिए उनका भारी शैक्षणिक महत्व है। इनके द्वारा देश तथा विदेश में घटित होने वाली घट-नाओं से लोगों को परिचित रखा जाता है। चल-चित्रों अथवा फिल्मों के द्वारा ही सरकारी प्रचार भी किया जाता है। यह सभाग छोटे-छोटे वास्तविक जीवन के चल-चित्रों, व्यंग चल चित्रों, अनुदेशात्मक चल चित्रों तथा समाचार चल-चित्रों का निर्माण करता है।

(६) फिल्मों के गुणदोष विवेचकों का केन्द्रीय मण्डल— यह फिल्मों की जाच करता है और जनता मे प्रदर्शन के लिए उनको प्रमाणित करता है।

(७) अनुसधान तथा अभ्युद्देश सभाग— इसके मुख्य कार्य ये है (क) प्रचार के विषयो के सम्बन्ध मे मूलभूत अनुसधान कार्य करना, (ख) प्रचलित तथा अन्य विषयो पर आधारभूत टीकाओ तथा मार्ग-दर्शन की व्यवस्था करना, (ग) महत्वपूर्ण विषयो पर ज्ञान का सग्रह करना, और (घ) प्रचार करने वाली विभिन्न इकाइयो के प्रयोग के लिए प्रचार सामग्री तैयार करना।

(८) भारतीय समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार का कार्यालय— यह कार्यालय भारत मे समाचार-पत्रो के प्रकाशन, मूल्य तथा स्वामित्व आदि के बारे मे आँकडे रखता है।

(९) पचवर्षीय योजना प्रचार— जनता के सहयोग के बिना कोई भी योजना सफल नही हो सकती। योजनाओं के प्रचार का कार्य सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय के उत्तरदायित्व पर प्रचार के सभी साधनो के माध्यम से किया जाता है।

निष्कर्ष
(Conclusion):

लोक सम्पर्क का जनता पर क्या प्रभाव पडता है? यह प्रभाव अच्छा पडता है या बुरा? Rex Harlow के मतानुसार, इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि लोक सम्पर्क व्यवसाय के नीतिशास्त्र का किस सीमा तक पालन किया जाता है कोई भी सस्था अपनी वास्तविक प्रकृति (Nature) को छिपा नही सकती और जब लोक-सम्पर्क के कार्यक्रमो द्वारा छिपाने का उक्त कार्य सम्पन्न किया जाता है तो प्रबन्ध-व्यवस्था पर उनका उलटा ही असर पडता है। सगठन का हित इसी मे है कि "लोक-सम्पर्क की क्रियायें ईमानदारी से पूर्ण, सत्य, स्पष्ट, अधिकृत तथा उत्तरदायी होनी चाहिए, वे उचित तथा वास्तविक होनी चाहिए, और उनका सचालन लोक-हित की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए।"[1]

इस प्रकार, लोकसम्पर्क के द्वारा प्रोपैगण्डा नही किया जाना चाहिए। इसके द्वारा तो केवल प्रचार का कार्य ही किया जाना चाहिए। प्रशासन की सफलताओ को शासनारूढ विशिष्टदल (Party) की सफलताओ के रूप मे नही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। Wright तथा Christian ने 'प्रबन्ध मे लोक सम्पर्क' (Public Relations in Management) नामक अपनी पुस्तक मे नीतिशास्त्र (Ethics) की इस प्रस्तावित सहिता (Code) का समर्थन किया परन्तु यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक कि लोक सम्पर्क को एक व्यवसाय (Profession) के रूप मे पूर्ण मान्यता नही प्रदान की जाती, तब तक इस सम्बन्ध मे दृढ व स्थायी नियमो की घोषणा का प्रयत्न करना अबुद्धिमत्तापूर्ण है। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि लोक सम्पर्क का उपयोग प्रोपैगेण्डे के लिए नही, बल्कि शिक्षा एव जानकारी के लिए किया जाना चाहिए। इसके द्वारा जन-सहयोग तथा जनता की उत्तरदायित्वता प्राप्त करने का

1 Rex Harlow, *Public Relations in War and Peace*, New York, 1942, p 73

प्रयत्न करना चाहिए। इसके द्वारा प्रशासन तथा इसकी नीतियों के बारे में जनता की गलतफहमियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। लोकतन्त्रीय देश में, लोक-सम्पर्क का कार्य एक ऐसे अधिक विकसित लोकतन्त्र के लिए पथ प्रशस्त करता है जिसमें कि जनमत को अच्छी प्रकार से परिचित रखा जाता है।

अनेक वर्ष पूर्व सिविल सेवा असेम्बली ने अपनी लोक-सम्पर्क समिति की एक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें कि जनता के दृष्टिकोण से विषय का विवेचन किया गया था। हम उसको यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

सरकारी लोक सम्पर्क में सामान्य विचारणीय बातें
(Ceneral Considerations in Government Public Relations)

मूलभूत मान्यताएं
(Basic Assumptions)

जनता के केवल एक वर्ग से लोक सम्पर्क स्थापित करना उचित नहीं है, बल्कि यह तो व्यापक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले तथा अनेक मार्ग प्रस्तुत करने वाले जनता के अनेक व विविध वर्गों से स्थापित किया जाना चाहिए।

जनता के अनेक वर्गों के कारण, लोक सम्पर्क के कार्यक्रम को अनेक तत्त्वों में विभाजित कर लेना चाहिए। इसके लिए कोई एक विवरण अथवा क्रिया पर्याप्त नहीं हो सकती ; बल्कि इनके लिये तो एक ऐसी व्यापक पद्धति अपनाई जानी चाहिए जिसमें जनता का प्रत्येक वर्ग आ जाय।

यह कार्यक्रम अभिकरण के अभिलेखों (Records) से प्रमाणित होने वाली जानकारी के प्रस्तुतीकरण पर आधारित होना चाहिये।

चूंकि जनता के सामने काफी प्रतियोगिता विद्यमान रहती है, अतः सरकारी अभिकरण को सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण में ऐसे तरीकों का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि कम से कम उतने ही प्रभावशाली हों जितने कि उनके प्रतिद्वन्द्वियों के हों।

लोक-सम्पर्क के कार्यक्रम का सम्बन्ध केवल न्यूनाधिक रूप से औपचारिक किस्म के प्रचार मात्र से *ही नहीं है बल्कि सरकारी अधिकारी वर्ग तथा जनता के* व्यक्तियों के बीच प्रत्यक्ष प्रकार के वैयक्तिक सम्बन्धों से भी है। आश्चर्य तो यह है कि लोक सम्पर्क के इस पहलू पर कम ही ध्यान दिया गया है।

लोक सम्पर्क में न केवल अभिकरण (Agency) से जनता की ओर को सूचना तथा सद्भावना का प्रवाह ही सम्मिलित है, अपितु इसका जनता से अभिकरण की ओर को प्रवाह भी सम्मिलित है। मार्ग दोनों दिशा को (Two ways-street) होना चाहिए।

बाधाएं
(Obstacles)

आधुनिक सरकार की जटिलता। सामान्य जनता का सामान्यतः उदासीन रुख।

लोक सम्बन्धों के मामलों में अनेक सरकारी अधिकारियों द्वारा अपने उत्तर-दायित्वों के महत्व को मान्यता देने का अभाव।

प्रयोग की जाने वाली रीतियों की प्रभावपूर्णता को मापने के व्यक्तिनिरपेक्ष (Objective) तरीकों का अभाव।

लोक सम्पर्क की क्रियाओं के लिए सीमित धन की उपलब्धता तथा व्यावसायिक एवं तकनीकी सहायताओं की आवश्यकता।

निष्पक्षता बरतने में कठिनाई।

जनता को यह समझाने में कठिनाई, कि लोक सम्पर्क के ये प्रयत्न अनिवार्यतः प्रोपैगेण्डा-मात्र ही नहीं हैं। फिर एक विश्वास यह किया जाता है कि अधिकांश सरकारी सूचनाएं केवल प्रचार-मात्र ही होती हैं।



परिशिष्ट १

प्रशासनिक 'क्रियाप्रणाली' पर प्रधान मन्त्री द्वारा १० अगस्त, १९६१ को संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया वक्तव्य।

(१) प्रशासन में सुधार के लिए निरन्तर विचार होता रहता है। हाल ही में वर्तमान स्थिति पर पुनर्विचार किया गया था, विशेष कर तृतीय योजना के निर्धारण को दृष्टिगत रख कर।

योजना का समयानुसार तथा प्रभावशाली क्रियान्वन आज की प्रशासनिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु है।

सरकारी प्रशासनिक यन्त्र पर पुनर्विचार करते समय द्वितीय योजना काल में अनुभव की गई कठिनाइयों तथा तृतीय योजना की आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया है।

(२) प्रशासनिक सुधार के लिए आवश्यक कदमों पर निर्णय लेते समय निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यों को दृष्टिगत रखा गया है :

(i) व्यक्तियों और सगठनों का मूल्यांकन केवल परिणामों (Results) के आधार पर होना चाहिए। इस उद्देश्य से उन्हें उनके कार्यों, दायित्वों, साधनों, उपक्रमों के समय क्रम, तथा उनकी आधारभूत मान्यताओं से स्पष्ट रूप से परिचित करा देना चाहिए। प्रत्येक कार्य में समुचित चुनौती तथा प्रोत्साहन की व्यवस्था की जानी चाहिए और व्यक्तियों तथा सगठनों को अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक जिम्मेदारी, विश्वास तथा शक्तियाँ दी जानी चाहिए।

(ii) वित्तीय नियन्त्रण की वर्तमान व्यवस्था का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। वित्तीय प्रस्तावों में निहित प्रत्येक मद का निरीक्षण केवल महत्वपूर्ण मामलों तक ही सीमित होना चाहिए। उदारता के साथ वित्तीय जिम्मेदारी प्रशासनिक विभागों तथा विभागों द्वारा क्रियान्वन अधिकारियों को प्रदान की जानी चाहिए। वित्त मन्त्रालय को उन पर नियन्त्रण बजट-पूर्व जाच (Pre budget scrutiny) तथा समुचित प्रतिवेदन व्यवस्था (Reporting system), आवश्यक क्षेत्रों में कार्य-अध्ययन तथा अकस्मात् निरीक्षणों के जरिए रखना चाहिए।

(iii) विभागाध्यक्षों तथा नीतियों व कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने वाले कार्यपालिका अधिकारियों की जिम्मेदारी काफी बढ़ाई जायेगी। यह अधिक शक्तियाँ प्रदान करके तथा इस बात की आवश्यकता पर बल देकर किया जायेगा कि भ्रष्टाचार तथा लोक सम्पर्क की समस्याओं का पहले से अधिक नियोजित आधार पर सामना किया जाये। व्यक्तिगत शिकायतों की सुनवाई की वर्तमान व्यवस्था के अतिरिक्त

प्रति वर्ष प्रत्येक विभागाध्यक्ष एक कार्यक्रम निर्धारित करेगा। इन कार्यक्रमों की जाँच-परख मन्त्रालयों के सचिव करेंगे तथा वे ही इनकी क्रियान्वित-प्रगति की देख रेख करेंगे।

(iv) प्रशिक्षण तथा परामर्श का प्रयोग करके कार्यपालिका विकास के एक सतत् कार्यक्रम के जरिए लोक सेवाअधिकारियों की प्रबन्ध योग्यता में वृद्धि की जायेगी। सरकार उन अधिकारियों को निकाल बाहर करने के लिए भी शक्तियां प्राप्त करेगी जिनके विरुद्ध अनैतिक आचरण का सन्देह हो तथा जो अपने कार्य में प्रभावहीन हों।

(v) कार्य तथा क्रियाप्रणालियों के सरलीकरण का काम तीव्रता से जारी रखा जायेगा। ऐसा कार्य-अध्ययनों (Work studies) तथा प्रशासन के सब क्षेत्रों में समुचित रूप से प्रशिक्षित अधिकारीगण नियुक्त करके किया जायेगा।

(vi) जनसम्पर्क के प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया जायेगा (नम्रता, सहानुभूति इत्यादि गुणों को जागृत करने तथा विभिन्न कार्यों के लिए लोक-कार्यालयों में आने वाले व्यक्तियों के प्रति अधिकारियों की उच्चतापूर्ण मनोवृत्ति बदलने के लिए कार्यक्रमों की एक शृंखला प्रारम्भ की जायेगी। जनता में सरकारी सूचनाएं प्रसारित करने के लिए उत्तमतर प्रबन्ध किया जायेगा। जनता द्वारा सरकार को दिये गये प्रार्थना-पत्रों इत्यादि पर निर्णय लेने के लिए समय-सीमाएं निर्धारित करने तथा जनता को उनसे अवगत कराने के विषय में भी निश्चय किया गया है

(३) उपरोक्त व्यापक उद्देश्यों को मूर्त रूप देने के लिए कुछ ठोस प्रस्तावों की रचना की गई है। उनमें से कुछ मुख्य प्रस्ताव निम्नलिखित हैं —

(i) मन्त्रालयों को सगठन की किसी कठोर प्रणाली के अनुसार अपना सगठन करने की आवश्यकता नहीं। उन्हें सगठन की प्रणाली को कुछ व्यापक सीमाओं की परिधि में परिवर्तित करने की स्वतन्त्रता होगी जिससे वे अपनी निजी परिस्थितियों के अनुकूल कार्य की गति तथा स्वरूप को ढाल सकें।

(ii) मन्त्रालयों को नीति, सामान्य देख-रेख तथा स्तरों (Standards) को लागू करने के कार्यों से ही सम्बन्ध रखना चाहिए। परिणाम स्वरूप क्रियान्वन से सम्बन्ध रखने वाले अभिकरणों को अधिक मजबूत बनाना चाहिए तथा उन्हें अधिक दायित्व सौंपे जाने चाहिए।

(iii) वित्तीय प्रबन्ध की जिम्मेदारी पहले से अधिक मात्रा में मन्त्रालयों तथा क्रियान्वन करने वाले अभिकरणों को प्रदान करनी चाहिए। अब एक स्वीकृत कार्यक्रम जो वाणिज्य तथा उद्योग, सूचना व प्रसार, सामुदायिक विकास व सहकारिता मन्त्रालयों एव खाद्य विभाग में शुरू किया जायेगा, में निम्न विशेषताएं सम्मिलित हैं·
(अ) वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक मन्त्रालयों के मध्य बजट-पूर्व जाँच-परख (Pre-budget scrutiny) के एक तीव्र कार्यक्रम का निर्धारण जिससे उन विषयों, जिनमें

पिछले वर्ष की वास्तविक आय-व्यय की मदें महत्वपूर्ण नहीं समझी जातीं, से बजट-अनुमान पहले की अपेक्षा शीघ्र बन सकें, (ब) मन्त्रालयों को वित्तीय शक्तियाँ प्रदान करने में और अधिक उदारता का प्रयोग करना जिससे कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण विषयों को छोड़कर प्रशासनिक मन्त्रालय बजटोत्तर काल में वित्त मन्त्रालय से बार-बार पूछ-ताछ न करे, तथा (स) वित्त-मन्त्रालय द्वारा एक समुचित प्रतिवेदन व्यवस्था (Reporting system) तथा परीक्षण जाँचों (Test checks) द्वारा प्रमुख वित्तीय पहलुओं पर नियन्त्रण। वित्त-मन्त्रालय भी साथ साथ प्रमुख उपक्रमों के अनुमानों की जाँच-परख तथा उन पर वित्तीय पुनर्विचार की अपनी व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए कदम उठा रहा है। इस कार्यक्रम की विशेषताओं पर विस्तार से विचार हो रहा है। यदि यह उपरोक्त चार मन्त्रालयों में सफल हुआ तो इसे वित्तीय प्रबन्ध की एक सामान्य व्यवस्था के रूप में सब मन्त्रालयों में लागू किया जायेगा।

(iv) सेक्शन आफिसर तक के पदों तक के कर्मचारियों पर गृह मन्त्रालय का नियन्त्रण सम्बन्धित विभागों को हस्तांतरित कर दिया जाना चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप ये कर्मचारीगण अपने अपने विभाग की आवश्यकताओं के अनुकूल प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे और कर्मचारीगण का प्रबन्ध भी उत्तमतर होगा।

(v) महत्वपूर्ण पदाधिकारी कम से कम पाँच वर्ष तक एक पद पर रहेंगे। जिससे वे (उनसे) अपेक्षित (Expected) परिणाम दिखा सकें। यदि उनके एक ही पद पर जनहित के उद्देश्य से रखे जाने के कारण उनकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो तो इस हानि से उनकी समुचित सुरक्षा की जाय।

(vi) समिति, समूह तथा सम्मेलन इत्यादि का प्रयोग काफी कम किया जाना चाहिए। व्यक्तियों तथा अभिकरणों को पूर्ण दायित्व सौंपा जाये तथा इसके साथ ही आवश्यक समर्थन एवं विश्वास भी दिया जाए।

(vii) उपक्रमों की तकनीकी तैयारी तथा उनके क्रियान्वन के समय-क्रम को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। विशेषकर इसलिए कि तृतीय योजना में शामिल किए गये बहुत से उपक्रमों के विषय में अभी तक प्राप्त जानकारी असन्तोषजनक है। ठोस सुझाव यह है कि चतुर्थ योजना के लिए तैयारी तुरन्त की जानी चाहिए तथा अगले तीन वर्षों में चतुर्थ योजना के उपक्रमों का अध्ययन पूर्ण करने के लिए एक व्यापक समय-तालिका बना लेनी चाहिए।

(viii) गृह मन्त्रालय वैज्ञानिक तथा तकनीकी पदों के लिए चुनाव की प्रक्रिया का अध्ययन करेगा। जिससे इस प्रकार के पदों पर नियुक्तियाँ पहले से अधिक गति के साथ की जा सकें।

(ix) संगठन तथा विधि डिवीजन (O and M Division) तथा मन्त्रालयों के कार्य अध्ययन कोषक (Work study Cells) मन्त्रालयों के सचिवों द्वारा इंगित उन क्रिया प्रणालियों का सरलीकरण एवं सुधार करने के लिए निरन्तर अध्ययन करेंगे जिनके कारण निर्णय लेने तथा क्रियान्वन में विलम्ब होता है।

(x) प्रगति की जिम्मेदारी देख रेख करने वाली सामान्य शृंखला पर होगी किन्तु 'योजना उपक्रमों की समिति' (Committee on Plan Projects) तथा 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' (Programme Evaluation Organization) जैसे अभिकरण प्रशासनिक अनुसंधान एवं मूल्यांकन का कार्य जारी रखेंगे।

(xi) प्रत्येक मन्त्रालय में एक छोटी समिति नियुक्त की जायेगी जिसका काय अकार्यकुशल तथा उन व्यक्तियों का पता लगाना होगा। जिनकी निष्ठा तथा ईमानदारी पर सन्देह हो और जिनपर नैतिक आधार पर अभियोग लगाया जा सकता हो। प्रभावहीन व्यक्तियों का सुधार तथा विकास करने के लिए प्रशिक्षण तथा परामर्श द्वारा प्रयास किया जायगा।

जो व्यक्ति सुधर नहीं सकते तथा जिनकी आयु ४५ से ५० वर्ष के बीच है उन्हें या तो ५० वर्ष की आयु पर या २५ वर्ष की सेवा पूर्ण कर लेने पर, जो भी पहले हो, सेवा निवृत्त कर दिया जाएगा। सेवा निवृत्ति के नियमों में आवश्यक संशोधन न किये जायेंगे। निष्ठा- हीन व्यक्तियों की समस्या का निराकरण पृथक रूप से किया जायगा।

(xii) सभी संस्थापित सेवाओं के प्रारम्भिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में कार्य अध्ययन (Work study) को एक अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जायेगा। सेवारत कर्मचारियों (In service personnel) के लिए काय अध्ययन के कोर्स विस्तृत किए जायेंगे।

(xiii) सेवा के हर प्रकार के सदस्यों के लिए (Supervision) की विधियों सम्बन्धी प्रशिक्षण में वृद्धि की जायगी।

(xiv) सुव्यवस्थित रूप से बनाये गये स्तरों (standards) पर आधारित प्रोत्साहन की एक योजना का प्रयोग किया जायेगा। समुचित पारितोषिक देकर कुछ निश्चित उद्देश्यों जैसे उपक्रमों की लागत में कमी करना उपक्रमों की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी आवश्यकताओं में कमी करना उपक्रमों के क्रियान्वन में गतिशीलता लाना, इत्यादि की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन दिया जायगा।

(xv) उपक्रमों का प्रबन्ध प्रशासनिक व्यवहार का एक नया तथा महत्वपूर्ण अंग है। इसकी विशेषतायें हैं, निश्चित लक्ष्य तथा समयक्रम (Schedules), लागत व्यवस्था, क्रियान्वन में पहल की आवश्यकता तथा तकनीकी कार्यकुशलता एवं नवीनता पर बल। इनके लिए समुचित पूर्व नियोजन तथा सही-सही अनुमानन आवश्यक है। उपक्रमों की तकनीकी तैयारी तथा कार्य का समय-क्रम सुदृढ किया जायेगा। उपक्रमों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की क्रिया को अधिक सरल तथा उपयोगी बनाया जायेगा।

(xvi) व्यक्तिगत तथा सामूहिक उत्तरदायित्व के विकास के लिए प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जायेगा। निम्नलिखित व्यापक शीर्षकों के अन्तर्गत कई प्रकार के कदम उठाये जा रहे हैं

(अ) पहल, कार्यक्रम निर्धारण की योग्यता तथा अधिकारियों के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का विकास करने के लिए विधियों का निर्माण। (उदाहरणार्थ अधि-

कारियों को अपने कार्य को स्वयं नियोजित करने तथा अपने कार्य का मूल्यांकन करने हेतु मापदण्ड सम्बन्धी सुझाव देने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा)।

(ब) कार्य में सुधार के लिए योग्यता की वृद्धि की जायेगी। (उदाहरणार्थ *केस अध्ययनों एवं निर्णय तन्त्र की प्रक्रियाओं में प्रशिक्षण द्वारा तथा विभिन्न प्रकार* के उपक्रमों के लिए समय वितरण में सुधार हेतु गतिविधियों का चुनाव करके ऐसा किया जायगा)।

(xvii) विभागाध्यक्षों को जनता के साथ सम्पर्क बनाये रखने तथा उनमें सुधार करने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा। वे कर्मचारियों की कठिनाइयों तथा मामलों की प्रकृति को ध्यान में रखकर पत्रों प्रार्थनापत्रों तथा रिटीशनों का निपटारा करने के लिए जहाँ तक व्यावहारिक होगा समय-सीमायें लगाएंगे तथा इन समय-सीमाओं को जनता में प्रसारित करेंगे। इस बात का प्रयास किया जायेगा कि इन समय-सीमाओं का पूर्णतया पालन किया जाए, केवल उन मामलों को छोड़कर जिनकी जांच परख सामान्य परिस्थितियों की अपेक्षा अधिक विस्तार से करनी आवश्यक हो।

(xviii) प्रत्येक विभागाध्यक्ष आने वाले वर्ष के लिए पहले से ही एक गोपनीय *कार्यक्रम बनायेगा जिसमें प्रचलित भ्रष्टाचार के स्वरूप भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग के स्वरूप* तथा स्थिति के सुधार के लिए उठाये जाने वाले कदमों का संकेत होगा। यह कार्यक्रम सम्बन्धित मन्त्रालय के सचिव के पास भेजा जायेगा। साथ ही विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (Special police Establishment) भी प्रत्येक मन्त्रालय सचिव को प्रत्येक विभागाध्यक्ष के कार्यक्षेत्र में प्रचलित भ्रष्टाचार पर अपने विचार भेजेगा। सचिव दोनों प्रपत्रों का अध्ययन करने के पश्चात् अन्तिम कार्यक्रम अनुमोदित करेगा तथा उसे विभागाध्यक्ष के पास भेजेगा। वह कार्यक्रम के क्रियान्वन की प्रगति का भी समय समय पर ध्यान रखेगा।

(xix) इसी प्रकार प्रत्येक विभागाध्यक्ष द्वारा प्रति वर्ष एक ऐसा कार्यक्रम निर्धारित किया जायेगा जिसमें जन सम्पर्क सम्बन्धी बड़ी बड़ी समस्याओं का उल्लेख होगा तथा उनके निराकरण के लिए उठाये जाने वाले कदमों का संकेत किया जाएगा। सम्बन्धित मन्त्रालय का सचिव इस कार्यक्रम के क्रियान्वन की प्रगति की भी समय-समय पर देखरेख करेगा।

(xx) जहाँ आवश्यक हो वहाँ सूचना प्रसारण के लिए उत्तरदायी अधि-कारियों के आधीन विशेष शाखाएं होनी चाहिए। इन्हें जनता की आवश्यकताओं *की पूर्ति के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।*

(xxi) शिष्टता की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय तरीके बनाये जाने चाहिएँ *तथा प्रमुख राष्ट्रीय समारोहों का लाभ उठाकर लोक प्रशासन के सेवा पक्ष पर बल* देना चाहिए।

(४) लोक उद्यमों का प्रशासन एक पेचीदा विषय है। उनके सचालन के संगठनात्मक तथा प्रबन्धात्मक पहलुओं को प्रभावित करने वाली कृष्णमनन समिति की रिपोर्ट पर पृथक रूप से विचार हो रहा है। उनके सचालन के इन विशेष प्रश्नों

पर जो उनके आन्तरिक सगठन तथा सम्बन्धो से सम्बन्धित थे, प्रशासन को सुदृढ करने की सामान्य समस्या के ही एक अग के रूप मे विचार हुआ । उपरोक्त निर्णय उन पर भी लागू किए जाएगें , प्रत्येक सगठन की निजी परिस्थितियो के अनुकूल उन निर्णयो का विस्तृत क्रियान्वन किया जाएगा । सरकारी उद्यमो के प्रशासनिक सचालनो को सुधारने के लिए निम्न अतिरिक्त निर्णय भी लिए गए है —

(अ) सम्बन्धित मन्त्रालयो मे सुदृढ तकनीकी नियोजन के लिए पृथक कोषक (Cells) होने चाहिए जिनका काय उपक्रमो के व्यापक तकनीकी तथा आर्थिक पहलुओ एव क्रियान्वन के निश्चित चरणो का अध्ययन करना हो तथा सब सम्बद्ध कदमो मे समायोजन स्थापित करना हो ।

(ब) बडे-बडे राजकीय उद्यमो मे डिजाइन तथा शोध (Research) सम्बन्धी इकाइयाँ भी होनी चाहिए । नय उपक्रमो की तैयारी की जिम्मेदारी उन पर होनी चाहिए ।

(स) सब बडे उपक्रमो म मूल्याकन, प्रगति पर पुनर्विचार लागतो मे कमी, उत्पादन मे वृद्धि तथा काय स्तर की जाच करन के लिए इकाइयाँ होनी चाहिए । इन इकाइयो को प्रबन्ध के उच्चाधिकारियो के अाधीन काम करना चाहिए किन्तु इन्हे देख रेख की प्रत्यक्ष शृ खला मे हस्तक्षेप न करके स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहिए ।

(द) वित्त मन्त्रालय को अपना उपक्रम समायोजन कोषक (Project coordination cell) सुदृढ करना चाहिए जिससे वह (१) लागत के अनुमानो तथा उपक्रमो के व्यापक आर्थिक पहलुओ की गहराई से जाच कर सक तथा (२) केन्द्रीय सरकार की औद्योगिक गतिविधि के वित्तीय तथा आर्थिक पहलुओ पर एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी सम्पन्न कर सके ।

(ड) योजनाओ विशेषकर औद्योगिक उपक्रमो सम्बन्धी योजनाओ के निर्माण के लिए प्राप्त अल्प समय को दृष्टिगत रखते हुए सम्बन्धित मन्त्रालयो को यह आदेश दिया जा रहा है कि वे चौथी योजना मे शामिल किए जाने वाले उपक्रमो का अध्ययन अगले तीन वर्षो मे पूरा कर लें ।

(५) योजना आयोग न केन्द्रीय मन्त्रालयो तथा राज्य सरकारो द्वारा प्रस्तुत सुझावो के अध्ययन के बाद परामर्श करने की प्रक्रियाओ को सरल करने का निश्चय किया है । लागत के अनुमानो मे १०% या एक करोड रुपये (जो भी कम हो) तक के परिवर्तनो के लिए अब योजना आयोग की स्वीकृति आवश्यक नही होगी । वार्षिक योजनाओ पर बातचीत अधिक महत्वपूर्ण उपक्रमो तथा कायक्रमो तक ही सीमित होगी । केन्द्रीय सहायता की प्रक्रियाओ म पहल ही सरलीकरण किया जा चुका है । केन्द्र सचालित कायक्रमो की सख्या म भारी कमी कर दी गई है तथा राज्यो की योजनाओ म निहित कार्यक्रमो की उस सूची म भी कमी कर दी गई है जिनके लिए कुछ निर्धारित नियमो के अनुसार सहायता देनी पडती है । सहायता के य नियम भी

सरल किये जा रहे हैं। जहाँ तक राज्यों के कार्यक्रमों तथा उपक्रमों की प्रगति की रिपोर्टों का प्रश्न है यह प्रस्तावित किया गया है कि इन्हें केन्द्रीय सरकार के किसी एक ही अभिकरण को समर्पित किया जाए, अर्थात् सम्बन्धित मन्त्रालय को समर्पित किया जाए, किन्तु रिपोर्टों की रूप-रेखा योजना आयोग से सलाह मशविरा करके बनायी जाए। आवश्यक संशोधनों के साथ ये सिद्धान्त केन्द्रीय मन्त्रालयों द्वारा क्रियान्वित किये जाने वाले कार्यक्रमों पर भी लागू होंगे।

(६) प्रशासनिक सुधार के लिये किये गये निर्णयों को यथासम्भव व्यापक तथा विस्तृत रूप देने का प्रयास करने के बावजूद उपरोक्त वक्तव्य कुछ सामान्य सिद्धान्तों का ही परिचय देता है। उन्हें मूर्त रूप देने के लिये बहुत सा कार्य करना बाकी है। यह एक अविरल कार्य है तथा स्पष्ट है कि एक समय में इस प्रकार के किसी वक्तव्य में उसका विस्तृत उल्लेख करना कठिन है। केन्द्र में केबिनेट सचिव की अध्यक्षता में प्रशासन पर एक समिति की स्थापना की गई है। इसका विशेष कार्य उपरोक्त निर्णयों के क्रियान्वन की प्रगति की जाँच करना तथा मन्त्रि-परिषद को समय-समय पर इस सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रस्तुत करना होगा।

उपरोक्त निर्णयों की सूचना राज्य सरकारों को भी दी जा रही है। उनके क्रियान्वन के विषय में केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को प्रसन्नता से आवश्यक सहायता देगी।

परिशिष्ट २

वे विषय जिनके लिये वित्त मन्त्रालय उत्तरदायी हैं—

अ—आर्थिक मामलों का विभाग
(Department of Economic Affairs)

(१) विनिमय नियन्त्रण
(Exchange Control)

(१) विदेशी मुद्रा नियन्त्रण कानून का प्रशासन

(२) विदेशी मुद्रा सम्बन्धी बजट निर्माण

(३) विदेशी मुद्रा के स्रोतों का नियन्त्रण जिसमें विदेशी मुद्रा की दृष्टि से आयात के प्रस्तावों की जाँच करना भी सम्मिलित है

(४) विदेशी विनियोजन (Investment),

(५) सोने तथा चाँदी का आयात-निर्यात।

(२) आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता
(Foreign Aid for Economic Development)

(६) निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत भारत को प्राप्त होने वाली तकनीकी तथा आर्थिक सहायता —

(अ) कोलम्बो योजना की तकनीकी सहयोग की स्कीम,

(ब) अमरीकी चार सूत्री कार्यक्रम (Point Four Programme),

(स) संयुक्त-राष्ट्र संघीय तकनीकी सहायता प्रशासन (U N Technical Assistance Administration) का कार्यक्रम,

(द) विभिन्न विदेशी सरकारों द्वारा प्रदान की जाने वाली अस्थायी तकनीकी सहायता।

(७) भारत द्वारा दी जाने वाली सहायता —

(अ) कोलम्बो योजना के अन्तर्गत सहयोगिक आर्थिक विकास के लिए नेपाल सरकार को दी जाने वाली आर्थिक तथा तकनीकी सहायता,

(ब) कोलम्बो योजना के सदस्य राष्ट्रों को इस योजना की तकनीकी सहायता स्कीम के अन्तर्गत दी जाने वाली सहायता,

(८) कोलम्बो योजना की परिषद तथा योजना की परामर्शदात्री समिति की बैठकों से सम्बन्धित सब मामले एवं निम्नलिखित विषय—

(१) अमरीकी तकनीकी सहायता मिशन,

(२) अमरीकी विकास ऋण कोष,

(३) कोलम्बो योजना,

(४) नार्वे द्वारा सहायता,

(५) फोर्ड प्रतिष्ठान तथा रॉकफेलर प्रतिष्ठान,

(६) विदेशों से प्राप्त होने वाले ऋण तथा अनुदान,

(७) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, आयात-निर्यात बैंक इत्यादि से प्राप्त होने वाले ऋण तथा अनुदान।

(३) आन्तरिक वित्त

(Internal Finance) :

(९) मुद्रा तथा बैंकिंग, अर्थात् निम्न विषयों से सम्बद्ध प्रश्न—

(अ) टकसाल (Assay) डिपार्टमेण्ट, सिल्वर रिफाइनरी प्रोजेक्टों सहित सिक्युरिटी प्रेस तथा टकसालें,

(ब) सिक्के,

(स) नोट जारी करना,

(द) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा दूसरे बैंक,

(ड) स्वदेशी बैंकिंग,

(ढ) पूंजी ऋण पर देना तथा पूंजी देने वाले व्यक्ति,

(क) निगोशिएबिल इन्स्ट्रूमेन्ट्स ऐक्ट, १८८१ के अन्तर्गत छुट्टियां.

(ख) भारत-पाक बैंकिंग समझौते का प्रशासन,

(ग) भारत के चैरिटेबिल एण्डोमेण्ट्स के कोषाध्यक्ष के कार्य।

(४) आर्थिक परामर्श

(Economic Advice) .

(१०) संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इससे सम्बद्ध संगठनों (जैसे आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिए आर्थिक आयोग इत्यादि) में भारत के भाग लेने से सम्बन्धित आर्थिक तथा वित्तीय प्रश्नों पर आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करना तथा संक्षिप्त निर्देश तैयार करना।

(५) बजट (Budget) :

(११) साधन तथा स्रोत (Ways and means)।

(१२) रेलवे बजट को छोड़कर अनुपूरक तथा अधिक अनुदानों सहित केन्द्रीय बजट का निर्माण करना।

(१३) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा ऋण लिए जाने तथा बाजारी ऋणों की व्यवस्था करना।

(१४) लोक ऋण अधिनियम का प्रशासन।

(१५) केन्द्रीय ट्रेज़री नियमों का प्रशासन।

(१६) ब्याज की दरो, ऋण की दरो, प्रोडक्टिविटी टेस्ट रेट्स इत्यादि को निर्धारित करना।

(१७) लेखाकन तथा लेखा परीक्षण की प्रक्रियाओ का निर्धारण एव वर्गीकरण।

(१८) राज्यो के पुनर्गठन, देश-विभाजन तथा सघीय वित्तीय एकीकरण से सम्बद्ध वित्तीय मामले।

(१९) भारत की आकस्मिकता निधि सम्बन्धी नियमो का प्रशासन।

(२०) केन्द्रीय वित्त स्थिति को सुदृढ करने के लिए ट्रेजरी बिल्स इत्यादि।

(२१) स्टर्लिंग पेन्शनें— इगलैंड सरकार को उत्तरदायित्व का हस्तातरण तथा वास्तविक दायित्व का निश्चित अनुमान।

(२२) केन्द्रीय तथा राज्यो के बजटो की सामान्य रूप रेखा।

(२३) वित्त आयोग।

(२४) छोटी बचतें जिसमे राष्ट्रीय बचत सगठन का प्रशासन भी सम्मिलित है।

(६) नियोजन (Planning):

(२५) राज्यो को सविधान मे निहित कानूनी अनुदान तथा उनके विकास, कार्यक्रमो और अन्य स्वीकृत उद्देश्यो के लिए अस्थायी वित्तीय अनुदान एव ऋण।

(२६) स्थानीय करारोपण।

(२७) राज्यो का वित्त।

(२८) सार्वजनिक सस्थाओ जैसे निगमो, नगरपालिकाओ इत्यादि द्वारा ऋण लेना।

(२९) केपिटल बजट।

(३०) महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्नो से सम्बद्ध सहकारिता।

(३१) नियोजन तथा विकास।

(३२) करारोपण जाँच आयोग।

(३३) भारतीय लोक प्रशासन सस्थान को अनुदान।

(३४) सामान्य तथा राज्यो के व्यवस्थापन (Legislation) के आर्थिक एव वित्तीय पहलुओ की जाँच।

(७) बिक्री कर (Sales Tax)

(३५) १९५६ के भारतीय बिक्री कर अधिनियम का प्रशासन।

(३६) १९५६ के बिक्री-कर कानून विषयक वैलीडेशन ऐक्ट का प्रशासन।

(३७) बिक्री-कर के स्थान पर अतिरिक्त आबकारी कर का रोपण।

(३८) राज्यो के बिक्री-कर से सम्बन्धित वे मामले जो राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आयें।

(८) बीमा (Insurance)

(३९) सामान्य बीमा से सम्बन्धित नीति, १९३८ के बीमा अधिनियम का प्रशासन, बीमा कम्पनियों के संघ का समूह (Pool), जीवन बीमा निगम की अधीनस्थ कम्पनियाँ।

(४०) जीवन बीमा से सम्बन्धित नीति, जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण, १९५६ के जीवन बीमा अधिनियम का प्रशासन, जीवन बीमा न्यायाधिकरण।

(९) निगम (Corporations)

(४१) औद्योगिक वित्त निगम (I F C) अधिनियम, १९४८ तथा पुनर्वास वित्त प्रशासन (R F A) अधिनियम, १९४८ का प्रशासन।

(४२) राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, १९५१ के अन्तर्गत राज्यों के वित्तीय निगम।

(४३) भारत औद्योगिक ऋण तथा विनियोजन निगम लिमिटेड (I C I C I Ltd)।

(४४) रिफाइनेन्स कारपोरेशन फॉर इन्डस्ट्री।

(१०) स्टाक एक्सचेंज
(Stock Exchanges)

(४५) सिक्युरिटीज कान्ट्रेक्टस (रेगुलेशन) ऐक्ट, १९५६ का प्रशासन।

(४६) स्टॉक एक्सचेंजों का नियन्त्रण।

(११) केपिटल ईशूज
(Capital Issues)

(४७) ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियों द्वारा जारी किये जाने वाली पूंजी पर नियन्त्रण।

(१२) विभिन्न
(Miscellaneous)

(४८) बीमा विभाग का प्रशासन।

ब—व्यय विभाग
(Department of Expenditure)

(१) वित्तीय नियम तथा प्रतिबन्ध और वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन (Delegation)

(२) भारत सरकार के उन सब मन्त्रालयों व कार्यालयों से सम्बन्धित वित्तीय अनुमति जिन्हें किन्हीं नियमों के अधीन वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन नहीं किया गया है या जिन्हें कोई सामान्य अथवा विशेष आदेश नहीं प्राप्त हैं।

(३) मितव्ययता लाने के लिए सरकारी संस्थानो की भर्ती पर पुनर्विचार ।

(४) लागत-लेखा (Cost accounts) सम्बन्धी प्रश्नो पर मन्त्रालयो तथा सरकारी उद्यमो को परामर्श देना तथा उनकी ओर से लागत की जाँच का कार्य सम्भालना ।

(५) दिल्ली प्रशासन से सम्बन्धित व्यय के प्रस्ताव ।

(६) भारतीय लेखा परीक्षण विभाग (I A A D)

(७) प्रतिरक्षा लेखा विभाग (D A D)

(८) हीराकुड बांध योजना के मुख्य लेखा-अधिकारी वित्तीय परामर्श दाता के कार्यालय ।

(९) केन्द्रीय वेतन आयोग ।

स—राजस्व विभाग
(Department of Revenue)

(१) केन्द्रीय राजस्व मण्डल (C B R) से सम्बद्ध सभी मामले ।

(२) एक्स्चेंज बिलो, चैंको, प्रामिसरी नोटों, लेडिंग बिलो, क्रेडिट पत्रो, बीमा पालिसियो, शेयरो के हस्तांतरण, डिबेन्चरो, प्रोक्सियो तथा रसीदो पर स्टैंम्प ड्यूटी ।

(३) हर तरह के स्टैंम्पो की सप्लाई तथा वितरण ।

(४) आयकर (इन्कमटैक्स एपीलेट ट्रिब्यूनल से सम्बन्धित मामलो को छोड कर), कारपोरेशन कर, केपिटल गेन्स कर, एक्सेंज प्रोफिट्स कर, बिजनेस प्रोफिट्स कर, एस्टेट ड्यूटी, सम्पत्ति कर, व्यय कर, उपहार कर, तथा रेलवे यात्री भाडा अधिनियम से सम्बन्धित सभी मामले ।

(५) केन्द्र-शासित प्रदेशो मे आवकारी का प्रशासन जैसे निम्नलिखित विषयो से सम्बन्धित प्रश्न :—

(अ) मानव उपभोग के लिए मादक पेय पदार्थ.

(ब) अफीम, भारतीय गांजा तथा अन्य मादक वस्तुए ।

(६) वे औषधिया या सौन्दर्य प्रसाधन जिनमे ५ (ब) मे उल्लिखित वस्तुओ का प्रयोग किया गया हो ।

(७) अफीम की कृषि, निर्माण तथा बिक्री ।

(८) खतरनाक मादक वस्तुओ से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते तथा उनका क्रियान्वन ।

(९) सीमाकर नीति (जैसे भारतीय सीमाकर अधिनियम, सीमाकर बोर्ड, सीमाकर मूल्याकन, उद्योगो की सीमाकर की दृष्टि से सुरक्षा, भूमि सीमा कर नीति, अन्तर्राष्ट्रीय-मन्डलीय प्राथमिकताओ इत्यादि) को छोडकर सीमा कर से सम्बन्धित सभी मामले जिनमे, समुद्र, वायु या स्थल मार्गो द्वारा माल के आयात-निर्यात पर लगे कर, राजस्व के हित मे आयात-निर्यात पर लगे प्रतिबन्ध तथा निषेध और सीमा करो की व्याख्या करना भी सम्मिलित है ।

(१०) केन्द्रीय आबकारी से सम्बन्धित सभी मामले।

(११) नमक पर भारत-विभाजन से पूर्व दी गई ड्यूटी की वापसी के लिए सभी दावे।

(१२) अधीनस्थ संगठन :—

(अ) आयकर विभाग ;

(ब) सीमाकर (Customs) विभाग,

(स) केन्द्रीय आबकारी विभाग, तथा

(द) मादक वस्तुओं का विभाग

(१८ जनवरी १९६१ के भारत के असाधारण गजट में प्रकाशित।)

परिशिष्ट ३

केन्द्रीय अनुमान समिति की वित्तीय वर्ष में परिवर्तन पर प्रस्तुत की गई २०वीं रिपोर्ट के कुछ अंश।

(अ) वित्तीय वर्ष

(३६) वर्तमान वित्तीय वर्ष १ अप्रैल को प्रारम्भ होता है और ३१ मार्च को समाप्त होता है। १८६६–६७ तक वित्तीय वर्ष १ मई को प्रारम्भ होकर ३० अप्रैल को समाप्त होता था। १८६७ में इसमें ब्रिटिश परम्परा के अनुकूल परिवर्तन कर दिया गया।

(३७) विभिन्न देशों के विभिन्न वित्तीय वर्ष हैं। ब्रिटेन, न्यूजीलैन्ड, जर्मनी ग्रीस तथा जापान में वित्तीय वर्ष १ अप्रैल को शुरू होता है और कनाडा में इसका प्रारम्भ १ जनवरी से होता है। एक बार में इसको बदलकर १ जुलाई कर दिया गया था किन्तु बाद में फिर १ अप्रैल कर दिया गया। फ्रांस, आस्ट्रिया, बेल्जियम, चैकोस्लोवाकिया, तथा पोलेण्ड में यह प्रथम जनवरी को शुरू होता है और आस्ट्रेलिया, हंगरी, इटली, स्वीडेन तथा अमेरिका में इसका प्रारम्भ प्रथम जुलाई को होता है। बर्मा में इसका प्रारम्भ १ अक्तूबर को होता है।

(३८) भारतीय दशाओं को देखते हुए वित्तीय वर्ष की अनुकूलता पर कई बार विचार हुआ है। इसका निश्चय अवश्य ही प्रशासनिक सुविधा, राजकीय आय के विषय में अधिक अच्छी पूर्व-घोषणा तथा बजट के कुशल क्रियान्वन जैसे तत्वों के आधार पर होगा। इस सम्बन्ध में भारतीय वित्त तथा मुद्रा पर १६१५ में प्रस्तुत की गई चैम्बरलन कमीशन की रिपोर्ट से उद्धृत करना उपयुक्त होगा —

"भारतीय राजस्व, चाहे वे रेलवेज, सीमा करों या मालगुजारी के अन्तर्गत हों, असाधारण रूप से प्रत्येक वर्ष की कृषि सम्बन्धी गतिविधियों की सफलता असफलता के अनुसार गिरता-चढता रहता है और कृषि सम्बन्धी गतिविधियां स्थायी रूप से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर निर्भर हैं जो जून से अक्तूबर तक भारतीय उप महाद्वीप तथा बर्मा पर छायी रहती हैं। वर्तमान व्यवस्था के अन्तगत भारतीय बजट मार्च के अन्त से पूर्व प्रस्तुत किया जाता है तथा वित्त मन्त्री को उस सर्वाधिक महत्व पूर्ण तत्व के अज्ञान में ही अपने अनुमान तैयार करने पडते हैं जिस पर पूरे वर्ष के परिणाम निर्भर होंगे।"

आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि, 'वित्तीय दृष्टि से बजट के लिए वर्तमान तिथि अत्यधिक असुविधाजनक है।"

आयोग ने सुझाव दिया कि वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ की तिथि बदल कर १ अप्रैल से १ जून या एक नवम्बर कर दी जानी चाहिए। क्योंकि प्रान्तीय सरकारें इस परिवर्तन के पक्ष म नही थी इसलिए भारत सरकार ने १६२१ में इसे न बदलने का निश्चय किया। उसके बाद बताया जाता है कि सरकार व राष्ट्रीय विकास परिषद दोनो ने इस प्रश्न पर विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि वित्तीय वर्ष को परिवर्तित करने की कोई आवश्यकता नही है।

(३६) राजस्व की पूर्व-घोषणा तथा इसके मानसून से सम्बन्ध का प्रश्न केन्द्रीय सरकार को शायद महत्वपूर्ण न लगे क्योकि उसकी मुख्य आमदनी प्रायकर आबकारी करो तथा सीमा करो से होती है। किन्तु जहाँ तक राज्य सरकारों का सम्बन्ध है मालगुजारी का प्रश्न महत्वपूर्ण भिन्नता पैदा कर सकता है। इस प्रश्न के अतिरिक्त दो अन्य तत्व भी हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। प्रतिवर्ष बजट अप्रैल के अन्त तक पास किया जाता है और इसके बाद मन्त्रालयों तथा विभागाध्यक्षो को उनके बजट अनुदानो के विषय म सूचित कर दिया जाता है। व फिर अपने अधीनस्थ अधिकारियो को इसी प्रकार की सूचनाए भेजते हैं। सामान्यत कार्यक्रमो के क्रियान्वन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध अधिकारियो के पास ऐसी सूचनाओ के पहुचने मे एक मास का समय लग जाता है। तब तक देश के अधिकाश भागों मे मानसून वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और बहुत से क्षेत्रो मे विकास कार्य रुक जाता है। वास्तविक कार्य मानसून के बाद ही अर्थात् अक्तूबर के आस-पास शुरू होता है और वित्तीय वर्ष के अन्त तक चलता रहता है। किन्तु अभी दो-तीन महीने समाप्त हुए नही होते कि विभागो को निर्देश दे दिए जाते हैं कि वे आगामी फरवरी के अन्त मे ससद म प्रस्तुत होने वाले बजट म शामिल करने के लिए अपने-अपने कार्यक्रम तथा मागे भेजें इसका परिणाम यह होता है कि बहुत से कार्य न केवल उस वर्ष मे अधूरे रह जाते हैं जिसमे उन्हे प्रारम्भ किया जाता है बल्कि वित्तीय वर्ष के अन्तिम दिनो म या तो अनावश्यक रूप से भारी खर्चा कर दिया जाता है या फिर विभिन्न कार्यों के लिए निश्चित धन-राशि का एक बडा भाग बिना खर्च किए हुए पडा रह जाता है इसके साथ-साथ वर्तमान व्यवस्था के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय जन शक्ति (Man power) का भी अपव्यय होता है। यह व्यवस्था राष्ट्र के प्रतिनिधियो जिनकी सख्या अकेले केन्द्र ही मे ७५० के लगभग है— को ६ मास तक के लिए व्यर्थ बाध कर रख देती है; पहले तीन महीनो मे तो वे बजट पर वाद विवाद म हिस्सा लेने तथा उस पर मतदान करने के लिए एक स्थान पर जमे रहते हैं तथा अगले तीन महीनों मे वे मानसून वर्षा के कारण बधे रहते हैं क्योकि इस मौसम मे उनके लिए अपने-अपने चुनाव क्षेत्रो का दौरा करके वहाँ के लोगो से भेंट करना कठिन हो जाता है।

(४०) यह महसूस किया जाता है कि उपरोक्त कठिनाइयो को वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ की तिथि बदल कर १ अक्तूबर करके दूर किया जा सकता है। जून से अगस्त तक के मानसून महीनों का प्रयोग तब बजट की तैयारी के पूर्व अन्तिम तथा अन्तिम चरणों

के लिए किया जा सकता है। क्योंकि बजट की तैयारी शुरू होने तक सब कार्यों का महत्वपूर्ण भाग समाप्त हो चुकेगा इसलिए नये अनुमानों का निर्माण पहले से अधिक सुनिश्चित व ठीक तरीके से किया जा सकेगा। बजट संसद में अगस्त के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत किया जाकर सितम्बर के अन्त में पास किया जा सकता है। यह भी व्यवस्था की जा सकती है कि इस काल में वित्त, करारोपण तथा अनुदान सम्बन्धी विधेयकों के अलावा किसी अन्य विधेयक पर विचार न हो जब तक कि वह अत्यधिक महत्वपूर्ण ही न हो। क्योंकि प्रस्तावित व्यवस्था में कार्यों का काल (Works season) एक ही वित्तीय वर्ष में पडेगा (वर्तमान व्यवस्था में यह आधा-आधा दो वर्षों में पडता है) इसलिए कार्यों का क्रियान्वन तथा उनके लिए प्रदत्त धनराशि को खर्च करना अधिक सरल हो सकेगा। राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके उपरोक्त सुझाव को शीघ्र मूर्त रूप देना वाछनीय है।

परिशिष्ट ४

कार्य-स्तर विषयक बजट निर्माण
(Performance Budgeting)

कुछ व्यक्तियों ने यह सुझाव दिया है कि संसद के पास कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वह बजट में विभिन्न विभागों को प्रदान किये गये खर्चे का मूल्यांकन कर सके। यह मूल्यांकन यह जानने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए कि जिन ध्येयों के लिये धन स्वीकृत किया गया था उनकी प्राप्ति हुई है कि नहीं। बजट निर्माण को कार्यस्तर से सम्बन्धित करने का यह सुझाव रेलवे विभाग तथा अन्य सरकारी व्यावसायिक एवं औद्योगिक उद्यमों के लिए दिया गया है। बजट में निहित अनुदानों को उन उद्देश्यों के लिए खर्च किया जाता है जिन्हें संसद ने स्वीकृत कर दिया हो। यह देखने के लिए खर्चे का पुनर्निरीक्षण किया जाना जरूरी है कि क्या निर्धारित समय-सीमा, न्यूनतम लागत तथा खर्चे में अधिकतम मितव्ययता बरत कर परिणाम प्राप्त किये गये हैं कि नहीं।

वित्त के उपमन्त्री को इस विचार की उपयोगिता के विषय में सन्देह था और उन्होंने बजट निर्माण को कार्यस्तर से सम्बन्धित करने के सुझाव को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए पाच शर्तें आवश्यक बताईं। उन्होंने कहा

(१) इसके लिए दीर्घावधि के आधार पर सरकारी गतिविधियों के विषय में पहले से कार्यक्रम निर्धारित करने की व्यवस्था करना आवश्यक होगा,

(२) कार्यक्रम के "अन्तिम परिणाम" मापन योग्य होने चाहिए,

(३) बजट में दिखायी गई धनराशि में सम्पूर्ण लागत शामिल होनी चाहिए,

(४) कार्यक्रम को बजट निर्माण करने वाले अभिकरण द्वारा क्रियान्वित किया जाना चाहिए, तथा

(५) बजट में निर्धारित धनराशि इतनी होनी चाहिए कि निश्चित तथा परिवर्तनशील लागत के अनुसार उसका प्रयोग किया जा सके।

उन्होंने अन्त में कहा "ये शर्तें एक सीमा तक ही पूरी की जा सकती हैं और इसमें सन्देह है कि यह सब मूल्यांकन बजट प्रपत्रों की तैयारी के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है।"

फिर भी इस प्रकार के बजट निर्माण के किसी न किसी रूप का प्रयोग किया जा सकता है। योजना उपक्रमों की समिति (Committee on Plan Projects) योजना उपक्रमों में मितव्ययता तथा कार्यकुशलता लाने के लिए अध्ययन सचालित कर सकती है।

BIBLIOGRAPHY

PART I

BROUGHT UP TO DATE JULY, 1963

1 Appleby, Paul H — Morality and Administration in Democratic Government Louisiana State University Press Baton Rouge —1952

2 Appleby, Paul H — Policy and Administration, University of Albama Press, 1949

3 Appleby, Paul H — Big Democracy New York 1945

4 Arnold, Thurman W — The Symbols of Government, New Haven Yale University Press 1935

5 Bruce, Maurice — The Coming of the Welfare State—Bastford 1961

6 Cushman, Robert E — The Independent Regulatory Commission Oxford University Press, 1941

7 Dey, S K — Panchayati Raj Asia Publishing House Bombay, 1961

8 Dimock Marshall E — A Philosophy of Administration, Towards Creative Growth New York, 1958

9 Dimock, Marshall Edward & Dimock, Gladys Ogden — Public Administration, Rinchart and Company, Inc New York, Second Printing 1954

10 Dorey H O — Handbook of Organisation & Methods Teachniques Brussels, 1951

11 Dunsire, A — The Making of an Administration, Manchester University Press, 1956

12 Fayol, Henri — Industrial and General Administration, 1916

13 Fesler, James W — Area and Administration, University Ala, 1949

14	Findaly Ranald M	The Art of Administration Edinburgh, 1952
15	Finer S E	A Primer of Public Administration, Frederic Muller Ltd , London 1950
16	Follett Mary Parker	' How must Business Management Develop in order to posses the Essentials of a profession ? In Henry C. Metcalf and L Urwick (Eds) Dynamic Administratian New York, 1241
17	Gaus John M Leonard D White and Marshall E Dimock	The Frontiers of Public Administration Chicago 1936
18	Gladden E N	An Introduction to Public Adminis tration London, 1949
19	Gladden E N	The Essentials of Public Adminis tration London, 1953
20	Graves W Brooke	Public Administration in a Democra tic Society Boston, 1950
21	Gullick Luther	"Notes on the Theory of Organisation Paper on the Science of Administration Institute of Public Administration 1937
22	Krishnamachari V T	Report on Indian and State Adminis tration Government of India Planning Commission New Delhi 1962
23	Lepawsky, Albert	Administration The Art and Science of Organisation and Management, New York, 1955
24	Maddick Henry	Democration Decentralisation And Development Asia Publishing House, Bombay 1963
25	March James G and Simon Herbert A	Organisations U S A 1958
26	Martin, Roscoe C (Ed)	New Horizons in Public Administra tion University of Albama 1946
27	Marx Fritz Morstein (Ed)	Elements of Public Administration New York 1946

28	Meyer, Paul	Administrative Organisation, A Comparative Study of the Organisation of Public Administration London, 1927
29.	Millett, John D	The Process and Organisation of Government Planning Columbia University Press 1947
30	Moonay, James D	The Principles of Organisation, Harper Brothers, New York
31	Mooney James D & Reiley, Alen C	Ownward Industry, 1931
32	Nigro, Felik (Ed)	Public Administration Readings and Documents New York, 1957
33	Pfiffner, John M	Public Administration, New York, 1946
34	Prakash Om	The Theory and Working of State Corporations, George Allen & Union Ltd London
35	Romani, John H	Changing Dimensions in Public Administration, Digest of the 1962, ASPA National Conference in Detroit, University of Michigan 1962
36	Saloman, Leon I, (Ed)	The Indpendent Federal Regulatory Agencies, The H W Wilson Co, New York, 1959
37	Simon, Herbert A Donald S Smithburg, & Victor A Thompson	Public Administration, New York, 1950
38	Taylor, Frederik	The Principles of Scientific Management, New York, 1947
39	Tead, Ordway	Administration Its Purposes and Performance Harper & Brothers, New York, 1959
40	Tead, Ordway	Democratic Administration Association Bess 1945
41	Truman, David B	Administrative Decentralisation, University of Chicago Press, 1940
42	United Nations	A Handbook of Public Administration, Current Concepts and Practice

		with special reference to developing countries, New York, United Nations Department of Social and Economic Affair, 1961
43	Urwick, L	The Elements of Administration, Harper & Brothers New York, 1944
44	Urwick, L. Metcalf Henry C. (Eds.)	Dynamic Administration, New York, 1941
45	Waldo Dwight	The Administrative State A Study of Political Theory of American Public Administration, New York, The Ronald Press Company, 1941
46	Waldo Dwight (Ed)	Ideas and Issues in Public Administration Mc Graw Hill Book Company M, 1953
47	Waldo Dwight	Perspectives on Administration, University of Albama Press, 1956
48.	Wallace Schuyler	Federal Departmentalization, A Critique of Methods of Organisation, Columbia University Press, 1941.
49	Warner Richard.	The Priciples of Public Administration A Study in the Mechanics of Social Action, London, 1947.
50	White, Leonard D	Introduction to the Study of Public Administration New York, 1948.
51.	White, Leonard D	Trens in Public Administration, McGraw Hill, New York, 1933
52.	Willoughby, W F.	Principles of Public Administration, Baltimore 1927, (Indian Edition is also available)
53	Wilson, Woodrow	"The Study of Administration" Political Science Quarterly, June, 1887, Vol. 2. Reprinted in the Quarterly, Dec., 1941, Vol. 56, pp 481-506

PART II

PERSONNEL ADMINISTRATION

54. Ahmod, Jaleel . The Expert and the Administrator, University of Pittsburg Press, 1959.

55. Banks, A. L., and Hislop, J. A. The Art of Administration University Tutorial Press Ltd, London, 1961

56. Barnard, Chester I. The Functions of the Executive, Harvard, University Press, 1930

57. Blan, Peter M The Dynamics of Bureaucracy, Chicago University of Chicago Press, 1955

58. Burnham, James. .The Managerial Revolution, New York, 1941.

59. Campbell, E A. Civil Service in Britain (Penguin, 1955).

60- Chapman, Brian. The Profession of Government : The Public Service in Europe, London, 1959.

61. Cohen, Emmeline W. The Growth of the British Civil Service, (George Allen & Unwin Ltd. for the Fabian Society, 1937).

62. Craig, Sir John. History of Red Tape, (Macdonald & Evans, 1955)

63. Critchley, T. A The Civil Service Today, London, 1951

64. Dale, E. H. The Higher Civil Service in Great Britain

65. Dimock Marshall E. 'Administrative Vitality, The Conflict with Bureaucracy' Haaper & Brothers, New York, 1959

66. Dimock, Marshall E. The Executive in Action Harper & Brothers, New York, 1945

67	Dunnill Frank	The Civil Service, Some Human Aspects George Allen & Unwin, Landon, 1956
68	Edwin, B Flipps	Principles of Personnel Management, New York 1961
69	Finer Herman	The British Civil Service, George Allen & Unwin Ltd for the Fabian Society 1937
70	Finer Human.	Theory and Practice of Modern Governments London, 1949
71	Gladden, E N	*Civil Service or Bureaucracy ?* (London Staples, 1956)
72	Gladden E N	The Civil Service Its Problems and Future, London, 1941
73	Greaves H R G	The Civil Service in the Changing State, George G Harrap & Co Ltd, 1947
74	Hewart Lord	New Despotism (1929)
75	Hyneman, C S	Bureaucracy in a Democracy, New York, 1950
76	*Kingsley J Donald*	*Representative Bureaucracy (Yellow-springs, Ohio Antiock Press 1944)*
77	Meckenzie, W J M., and Grove, J W	Central Administration in Britain (Longmans, 1957)
78	Merton Robert K (Ed)	Reader in Bureaucracy, (Glencoe, 911 The Free Press, 1952)
79	Mills, C Wright	White Collar, New York, 1956
80	Parkinston A Northcote	Parkinson s Law, Boston, 1957.
81	Roboson, W A (Ed)	The British Civil Service, London, 1937
82	Robson, W A (Ed)	The Civil Service in Britain and France, The Hogarth Press, London, 1956
83		Report of the Machinery of Government, (Haldan Committee) 1918
84		Report of the Royal (Tomlin) Commission on the Civil Service, 1957.

85 Santoy, Peter du — The Civil Service, London, 1957

86 Siffin, William J — Towards the Comparative study of Public Administration, Indian University Press, Bloomington, Indiana, 1959

87. Sisson, C H — The Spirit of British Administration and some European Comparisns, Faber & Faber Ltd , London, 1959

88 Strauss, E. — The Ruling Servants Bureaucracy in Russia France and Britain, George Allen & Unwin Ltd , London 1961

87 Tead, Ordway — The Art of Leadership, (McGraw Hill Book Company Inc 1935)

90. Truman, D B — Governmetal Process Political Interests and Public Opinion, New York, 1957

91. Walker, Harvey — Training Public Employees in Great Britain, 1935

92 Weber, Max. — Essays in Socilogy (Ed Gerth and Mils) 1947, Chapter on Bureaurcy.

93. Wheare, K C — The Machinery of Government, Oxford, 1945

94 White, Leonard D — The Civil Service in the Modern State A Collection of Documents, The University of Chicago Press Chicaga, Illonois, U S A , 1930

55 Whyte William H — 'The Organisation Man,' New York 1956

From the Civil Service Assembly of the United States and Canada

96 — Digest of the State Civil Service Laws, (Chicago, 1943)

97. — Public Relations in Public Personnel Agencies, Chicago, 1947

98 — Readings in Public Personnel Administration Chicago, 1942

99 — Training in the Public Service Chicago 1941

PART III

FINANCIAL ADMINISTRATION

100	Aggarwal, P P	The System of Grants-in-Aid in India Bombay Asia, 1959
101	Anstey, Verma	The Economic Development of India, (Fourth Ed) London, Longmans,
102.	Banerjea, P	Provincial Finance in India London, Macmillan, 1929
103	Bator Francis M	The Question of Government Spending, New York, Harper, 1960
104	Beer, Samuel.	Treasury Control, Oxford, 1956
105	Bridges, Sir Edward	Treasury Control, London, Stamp Memorial Lecture, 1950
106	Brittain, H	The British Budgetary System, London, Allen & Unwin, 1959
107	Buck, A E	Financing Canadian Government Chicago Public Administration Service, 1959
108	Burkhead, Jesse	Government Budgeting, New York, John Wiley & Sons, 1956
109	*Chanda, A.K*	*Aspects of Audit Control*, Bombay, Asia, 1959
110.	Chubb, Basil	The Control of Public Administration Financial Committees of the House of Commons, Oxford, 1952
111	Durell, A J V	The Principles and Practice of the System of Control over Parliamentary Grants, London, Gieves Publishing House, 1917
112.	Dutt, R C	The Economic History of India, 2 Vols Delhi Publications Division, 1960

113. Einzig, Paul. ...The Control of the Purse, London, Secker of warburg, 1959.

114. Gadgil, D R. ...Indian Planning and the Planning Commission, Ahmedabad, Harold Laski Institute of Political Science, 1959.

115. Galloway, Frederick B ..Reform of the Federal Budget, Washington, Library of the Congress, 1953.

116. Ghosh, O. K The Indian Financial System, Allahabad, 1958.

117. Gopal, M H Financial Policy of the Indian Union, 1947-53 Delhi, Delhi School of Ecomics, 1954.

118. Gorwala, A. D. .Report on Efficient Conduct of State Enterprises.

119. Gwyer, Maurice & Appadorai, A. (Eds.) Speeches and Documents on the Indian Constitution 1921-47, New Delhi, Oxford, 1957

120. Gyan Chand .Financial System of India London, 1926.

121. Hanson, A. H. . .Public Enterprise and Economic Development, London, 1958.

122. Heath, T L. The Treasury, 1927.

123. Hicks, Mrs U K. .. Public Finance Survey—India, New York, U. N O. 1951.

124 Indian Institute of Public Administration The Organisation of Government of India, Bombay, Asia, 1957. Budgeting in India, New Delhi, 1960.

125 Jennings, Sir Ivar. .Parliament (Seconded)

126. Jennings, Sir Ivar. Cabinet Government (Second Ed) Cambridge, 1960.

127. Johnson, Eldred A .Acounting Systems in Modern Business, 1956. MC GRAW-Hill.

128 Jones, W H Morris Parliament in India, London, Longmans, 1957.

129. Karve, G. D. .. Public Administration in Democracy.

130	Kaul M N	Conversations on Parliamentary Practice and Procedure, New Delhi 1951
131	Krishnamachari T T	Speeches New Delhi, Govt of India 1958
132.	May Sir Thamas *Erskine*	A Treatise on the Law, Privileges *Proceedings and usage of Parliament,* 13th Edition London
133	Millet John D	Government and Public Administration The Quest for Responsible Performance Chapters 8 9 pp 141-192, Mc Graw Hill Book Company, 1959
134	Millikhan Max (Ed)	Income Stabilisation for Developing Democracy New Haven Yale University Press 1953
135	Misra B R	Economic Aspects of the Indian Constitution Orient Longman 1952.
136	Montgomery Robert H	Auditing Theory and Practice, 6th Ed 1940
137	More S S	Practice and Procedure of Indian Parliament Bombay, Thacker & Co , 1960
138	Morrison Herbert	Government and Parliament, A Survey from the Inside, London 1954
139	Mukherjee A R	Parliamentary Procedure in *India* Oxford University Press
140	Musgrave R A	The Theory of Public Finance, New York 1959
141	Myrdal Gunnar	Indian Economic Planning New Delhi Congress Party in Parliament 1958
142	Oakey, Francis	Principles of Government Accounting and Reporting 1921
143	Pigou, A C	A Study in Public Finance, London, Macmillan 1956
144	Pinto P J J	Financial Administration in India Bombay New Book Depot 1943
145	Reserve Bank of India	Banking and Monetary Statistics of India, Bombay, 1954

146	Royal Institute of Public Administration	Budgeting in Public Authorities, London, Allen & Unwin, 1959
147	Santhanam, K	*Union and State Relations in India*, Bombay, Asia, 1960
148	Shah, K T	Government of India, Bombay Tripathin & Co , 1924
149	Shakdher, S L	Budgetery Systems in various countries, New Delhi, 1957
150	Smithies, Arthur	The Budgetary Process in U S A New York, McGraw Hill, 1955
151	Sovani, N U	Post-War Planning in India, Bombay, 1948
152	Strachey, Sir John	India—Its Administration and Progress, London, Macmillan, 1903
153	Thomas P J	The Growth of Federal Finance in India Oxford, 1639
154	U N O	Budgetary Structure And Classification of Accounts, 1957
155	U N O	Government Accounting and Budgetary Execution 1951
156.	U. N O	National and International Measures for Full Employment, 1951
157	U N O	Standard & Technique of Public Administration, 197
158	Wattal, P K	The System of Financial Administration in British India Bombay, 1924
159		ABC of Government Finances, New Delhi, Government of India, 1943
160		Parliamentary Financial Control in India Simla, Minerva Book Depot, 1953
161	Willoughby, Willoughby and Lindsay	Financial Administration of Great Britain, Washington, The Brookings Institution 1929
162	Wheare K C	Government by Committee, Oxford, 1955
163	Young, Sir Hilton	The National System of Finance (Second Ed) London, John Murray, 1924

REPORTS

164 Report of the Advisory Planning Board, New Delhi, Government of India, 1946
165. Report of N Gopalaswami Aiyyangar, New Delhi, Government of India, 1949
166 Annual Reports of the Ministry of Finance, New Delhi, Ministry of Finance
167 Annual Reports of the O & M Directorate, New Delhi, Cabinet Sectt
168 Audit Reports (Central) New Delhi, Office of the Comptroller & Auditor General
169 Report of the Advisory Planning Board, New Delhi, Government of India, 1949
170 Report of the Economy Committee of the Congress Party in Parliament, New Delhi A, I, C C, 1959
171 Reports of the Estimates Committee, New Delhi, Lok Sabha
172 Reports of the Estimates Committee, London, H M S O
173 Report on the Form of Accounts (Crick Committee) London, H M S O 1950
174 Reports of the Hoover Commission
(i) Report to the Congress on Budgeting and Accounting, Washington 1949
(ii) Report to the Congress on Budgeting and Accounting, Washington 1955
175 Report of the Muddiman Committee on the working of Reforms Government of India 1924
176 Reports of the Public Accounts Committee (Epitone) (U K) H M S O, 1937
177 Report of the Public Accounts Committee (India), New Delhi (2 Vols) Government of India 1960
178 Report of the Plowden Committee on the Control of Public Expenditure London H M S O 1961
179 Report of the Royal Commission on Expenditure, London, 1926
180 Report of the Taxatian Enquiry Commission (3 Vols), New Delhi Government of India 1953
181 Report of Sir Richard Tottenham on the Reorganisation of the Machinery of Government of India, New Delhi, 1945-46

PART IV

CITIZEN AND ADMINISTRATION

182.	Dicey	The Development of Administrative Law in England, April 1915
183	Dickinson, John	Administrative Justice and the Supremacy of Law (Harward University Press, 1927)
184	Harlow, Rex, F	Public Relations in War and Peace, (New York, 1942)
185	James, Hart	An Introduction to Administrative Law, with Selected Cases (New York, 1950)
186	Robson, William A	Justice and Administrative Law A Study of the British Constitution, Stevens London 1951
187	Wade, H W R.	Administrative Law, Oxford, 1961
188	Wright, J H, and B A Christian	Public Relations in Management (New York, 1949)
189		Civil Service Assembly, the United States and Canada, Public Relations in Public Personnel Agencies, (Chicago, 1941)

— o —

PART—V

CONCERNING INDIAN ADMINISTRATION

190	Appleby, Paul H	Re-examination of India's Administrative System with special reference to Administration of Government's Industrial and Commercial Enterprises, Government of India Cabinet Secretariat, Delhi
191	Appleby, Paul H	Public Administration in India, Report of Survey, Government of India, Cabinet Secretariat, New Delhi, 1953
192	Bhambhri, C P	Parliamentary Control Over Finance in India, Jai Prakash Nath & Co, Meerut, 1959
193.	Bhambhri, C P	Parliamentary Control Over State Enterprise in India, Metropolitan, Faiz Bazar, Dec 1960
194.	Chanda, A K	Indian Administration, London Allen & Unwin 1958
195	Dwarka Das	Role of Higher Civil Service in India, Popular Book Depot, 1958
196	Gorwala, A D	The Role of Administration—Past, Present and Future
197	Gorwala, A D	Report on Public Administration, Government of India, Planning Commission, 1951
198	Gorwala, A D	Of Matters Administrative, Bombay, 1958
199.		Commission of Enquiry on Emoluments and Conditions of Service of Central Govornment Employees 1957-59 Report, Ministry of Finance, Government of India

200 Annual Reports of Ministries of the Government of India
201 Annual Reports of the Union Public Service Commission of India
202 Annual Reports of the Organisation and Methods Division in India
203 Descriptive Memoirs of various Ministries of the Government of India
204 Estimates Committee Reports of the Indian Parliament
205 First, Second and Third Five Year Plans, Government of India, Planning Commission
206 Government of India, Reorganiza ion of Machinery of Government Report 1949
207 Hand book of Rules and Regulations for the All India Services (As on 1st October, 1958) Volume I and II issued by the Government of India Ministry of Home Affair, Government of India Press, Delhi 1958
208 Public Accounts Committee Reports of the Indian Parliament
209 Reports of the Committee on Delegated Legislation of the Indian Parliament

JOURNALS

210 Administrative Science Quarterly Graduate School of Business and Public Administration, Cornell University, Ithaca, New York
211 *Journal of the National Academy of Administration*, Mussoorie
212 International Review of Administrative Sciences, Brussels
213 Public Administration Review, U S A
214 Public Administration, London
215 Public Administration Australia
216 The Newzealand Journal of Public Administration
217 The Indian Journal of Public Administration, New Delhi
